काले

# हायर संस्कृत ग्रामर

(धातु कोश सहित)

# हायर संस्कृत ग्रामर

(बृहत् संस्कृत-व्याकरण)

परिमार्जित हिन्दी संस्करण




मूल लेखक

**मोरेश्वर रामचन्द्र काले, बी० ए०**

हिन्दी अनुवादक

डा० कपिलदेव द्विवेदी आचार्य, एम० ए० ( संस्कृत, हिन्दी )

एम० ओ० एल०, डी० फिल्०, पी० ई० एस०

विद्याभास्कर, साहित्यरत्न, व्याकरणाचार्य

अध्यक्ष, संस्कृत विभाग

गवर्नमेंट कालेज, नैनीताल



प्रकाशक

**रामनारायणलाल बेनीप्रसाद**

प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता

इलाहाबाद-२

१९६४

मूल्य ७·५०



यह पुस्तक सर्वश्री रामनारायणलाल बेनीप्रसाद द्वारा प्रकाशित तथा
श्री रामबाबू अग्रवाल द्वारा ज्ञानोदय प्रेस २७३ कटरा इलाहाबाद में मुद्रित हुई ।

# विषय-सूची

# संकेत-सूची

## (क) ग्रन्थों के नामादि

अमर०—अमरकोष
अष्टा०—अष्टाध्यायी, पाणिनिकृत
उत्तर०—उत्तररामचरित
कात्या०—कात्यायन
काद०—कादम्बरी
काव्या०—काव्यादर्श, दण्डिन्कृत
कि०, किराता०—किरातार्जुनीय
कुमार०—कुमारसंभव
तु० करो—तुलना करो
देवी०—देवीभागवत
पा०—पाणिनीय सूत्र
भट्टि०—भट्टिकाव्य
भर्तृ०—भर्तृहरि, नीतिशतक, वैराग्यशतक
मनु०—मनुस्मृति
म० भा०—महाभाष्य, पतंजलिकृत
म० भारत—महाभारत
मालती०—मालतीमाधव
मालविका०—मालविकाग्निमित्र
मुद्रा०—मुद्राराक्षस
मृच्छ०—मृच्छकटिक
मेघ०—मेघदूत
रघु०—रघुवंश, कालिदासकृत
विक्रमो०—विक्रमोर्वशीय
वोप०—वोपदेव
शाकु०—शाकुन्तल
शिशु०—शिशुपालवध
सि० कौ०—सिद्धान्तकौमुदी, भट्टोजि दीक्षितकृत
हितो०—हितोपदेश

## (ख) व्याकरण के पारिभाषिक शब्द

अव्ययी०—अव्ययीभाव समास
आ०, आत्मने०—आत्मनेपद
आ० लिङ—आशीर्लिङ
उ०, उ० पु०—उत्तमपुरुष
उ०, उभय०—उभयपद
एक० या १—एकवचन
कर्म०—कर्मवाच्य
च०—चतुर्थी
तृ०—तृतीया
द्वि०—द्वितीया
द्वि०, द्विव० या २—द्विवचन
निर्बल या ङित्—ङित्, weak
पं०—पंचमी
प०, पर०, परस्मै०—परस्मैपद
पित् या अङित्—सबल, strong
प्र०—प्रथमा
प्र०, प्र० पु०—प्रथमपुरुष
बहु० या ३—बहुवचन
बहु०—बहुव्रीहि समास
म०, म० पु०—मध्यमपुरुष
वि० लिङ—विधिलिङ
ष०—षष्ठी
सं०—संबोधन
स०—सप्तमी
सर्व०—सर्वनाम

# प्राक्कथन



यह संस्कृत-व्याकरण श्री एम० आर० काले के A Higher Sanskrit Grammar का हिन्दी अनुवाद है। मैंने प्रयत्न किया है कि पुस्तक का यथा-संभव शाब्दिक अनुवाद प्रस्तुत किया जाए, परन्तु अनेक स्थानों पर भाव के स्पष्टीकरण को ध्यान में रखते हुए अनुवाद सरल और सुबोध ढंग से प्रस्तुत किया गया है। श्री काले की पुस्तक के जो संस्करण इस समय उपलब्ध होते हैं, उनमें छपाई संबन्धी सैकड़ों अशुद्धियाँ प्राप्त होती हैं। मैंने प्रयत्न किया है कि मूल ग्रन्थों के अनुसार उन सभी अशुद्धियों का परिमार्जन किया जाए। उद्धरणों में और सूत्रों की संख्या आदि के निर्देश में भी जो अत्यधिक अशुद्धियाँ अंग्रेजी के संस्करण में शेष रह गई हैं, उनका भी यथासंभव पूर्णतया परिमार्जन किया गया है। अनेक स्थानों पर जहाँ मूल ग्रन्थ में सूत्रादि-निर्देश नहीं है, वहाँ पर अष्टाध्यायी और सिद्धान्तकौमुदी के आधार पर सूत्रादि-निर्देश कर दिया गया है। कितने ही स्थानों पर अनावश्यक संक्षेप का परित्याग करके अर्थ के स्पष्टीकरण के लिए कुछ विस्तार भी किया गया है।

धातुओं के रूपादि के उल्लेख में अंग्रेजी-पद्धति को न अपनाकर भारतीय पद्धति अपनाई गई है। विद्यार्थियों की सुविधा के लिए यथास्थान अंग्रेजी के पारिभाषिक शब्द भी कोष्ठ में दिए गए हैं। मैंने अनुवाद को यथाशक्ति सरल और सुबोध बनाने का प्रयत्न किया है। आशा है यह अनुवाद संस्कृत-प्रेमी जनता की व्याकरण-संबन्धी आवश्यकता की पूर्ति करेगा और इससे छात्रवृन्द का हित होगा।

सहृदय विद्वज्जन इस पुस्तक में संशोधनादि के जो विचार भेजेंगे, उनका कृतज्ञता के साथ स्वागत किया जाएगा।

रामनवमी, '६३ | कपिलदेव द्विवेदी आचार्य

# उपोद्‌घात

## संस्कृत व्याकरण

संस्कृत भाषा और साहित्य के सम्यक् अध्ययन के लिए संस्कृत व्याकरण का पूर्ण ज्ञान आवश्यक ही नहीं वरन् अनिवार्य है। संस्कृत भाषा में व्याकरण शास्त्र का जितना और जैसा सूक्ष्म, तर्कपूर्ण एवं विस्तृत विवेचन हुआ है, उतना और वैसा विवेचन विश्व की किसी अन्य भाषा में दुर्लभ है। 'मुखं व्याकरणं स्मृतम्' के अनुसार व्याकरण वेद भगवान् का मुख है[1]। मुख के बिना अन्य अंगों का पोषण और परिवर्धन उचित रूप से नहीं हो सकता है। वेदों के सम्यक् अध्ययन, उनके अर्थ-बोध और व्याख्या के लिए वेदाङ्गों का ज्ञान आवश्यक बताया गया है। वेदाङ्ग ६ हैं[2]—१. शिक्षा, २. व्याकरण, ३. छन्द, ४. निरुक्त, ५. ज्योतिष, ६. कल्प। स्पष्ट है कि सम्यक् वेद-ज्ञान के लिए व्याकरण शास्त्र एक आवश्यक अङ्ग है। व्याकरण शास्त्र की यह महत्ता है कि उसके ज्ञान से शब्द के वास्तविक रूप और उसके अर्थ का यथावत् बोध होता है। इसीलिए व्याकरण के अध्ययन को प्राथमिकता दी गई है।[3]

उपर्युक्त विवेचन से एक अन्य तथ्य भी प्रकाश में आ जाता है। वह यह कि व्याकरण शास्त्र का अध्ययन, मनन एवं चिन्तन वैदिक काल से

---

१. छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते ॥४१॥
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
तस्मात् साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते ॥४२॥—पाणिनीय शिक्षा।

२. शिक्षा व्याकरणं छन्दो निरुक्तं ज्योतिषं तथा।
कल्पश्चेति षडङ्गानि वेदस्याहुर्मनीषिणः ॥

३. यद्यपि बहुनाधीषे तथापि पठ पुत्र ! व्याकरणम्।
स्वजनः श्वजनो मा भूत् सकलं शकलं सकृच्छकृत् ॥

ही आरम्भ हो गया था। उसे वैदिक ऋषियों ने भी महत्त्वपूण माना है और इसीलिए वेद के अङ्गों में व्याकरण शास्त्र को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। व्याकरण शास्त्र का प्रारम्भिक रूप हमें 'प्रातिशाख्यों' में देखने को मिलता है। इसके पश्चात् महर्षि यास्क का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'निरुक्त' आता है। निरुक्त में शब्द-निरुक्ति पर विचार किया गया है। यास्क ने शब्दों को चार भागों में विभाजित करके विवेचन उपस्थित किया है। उनके किए हुए चार भाग ये हैं:—नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात। उन्होंने यह भी सिद्ध किया कि धातुओं से ही शब्दों की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार व्याकरण के मूल रूप को विवेचना की ओर मनीषियों का ध्यान गया। विद्वानों ने यास्क का समय ८०० वर्ष ई० पू० बताया है।

**पाणिनिपूर्व व्याकरण**

यास्क के पश्चात् अन्य बहुत से शब्द-शोधक वैयाकरण हुए, जिन्होंने व्याकरण शास्त्र पर महत्त्वपूण काम किया, किन्तु समय की लम्बी अवधि के कारण उनके ग्रन्थ आज हमें अप्राप्त हैं। लेखन सामग्री की पूर्ण सुविधा न होने के कारण भी इन ग्रन्थों की सुरक्षा न हो सकी, परन्तु उनके नामों का पता हमें पाणिनि की अष्टाध्यायी से प्राप्त होता है। आपिशलि, काशकृत्स्न, शाकल्य, शाकटायन, इन्द्र आदि वैयाकरणों के नामों का उल्लेख पाणिनि ने अपने ग्रन्थ में किया है। इन सब में भी ऐन्द्र व्याकरण अधिक चिरायु और प्रिय रहा। इन वैयाकरण मनीषियों के ग्रन्थों का यद्यपि हमें कोई पता नहीं चलता, फिर भी पाणिनि की अष्टाध्यायी को देख कर यह कहा जा सकता है कि पाणिनि ने अपने पूर्ववर्ती प्राप्त ग्रंथों और विचारों तथा विवेचनाओं का पूर्ण सदुपयोग अपनी अष्टाध्यायी में अवश्य किया है। पूर्ववर्ती विचारों और विवेचनाओं को क्रमिक, तार्किक, व्यवस्थित एवं सूत्र रूप देने में पाणिनि अभूतपूर्व रूप से सफल हुए हैं। यह उनकी नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा का ही परिणाम था।

**पाणिनि**

पाणिनि के सामने एक विस्तृत भाषा के नियमित करने की समस्या थी। उनमें अद्भुत प्रतिभा थी। फिर उन्हें कुछ कार्य पूर्ववर्ती आचार्यों का भी प्राप्त हो गया, जिसे उन्होंने प्रौढ़ता और व्यवस्था प्रदान की।

पाणिनि का समय निर्धारित करने में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के विचार से उनका समय ५०० ई० पू० और ४०० वर्ष ई० पू० के बीच है। मैक्समूलर ने ३५० वर्ष ई० पू० पाणिनि की स्थिति स्वीकार की है। डा० वे० वरदाचार्य के अनुसार ७०० ई० पू० और ६०० वर्ष ई० पू० के बीच पाणिनि का समय है। पाणिनि का जीवनवृत्त जो किसी प्रकार हमें प्राप्त होता है वह इस प्रकार है कि पाणिनि अटक के समीप स्थित शालातुर स्थान के निवासी थे। पतञ्जलि के महाभाष्य के अनुसार इनकी माता का नाम दाक्षी था। ये उपवर्ष या वर्ष आचार्य के शिष्य थे। उनके सहपाठी थे—कात्यायन, व्याडि और इन्द्रदत्त। कहा जाता है कि पाणिनि को आचार्य वर्ष से अधिक संतोष नहीं हुआ। फलतः उन्होंने भगवान् शंकर की उपासना की। जिससे प्रसन्न होकर शंकर जी ने इन्हें १४ माहेश्वर सूत्र प्रदान किए। इनके सम्बन्ध में हम आगे लिखेंगे। पञ्चतन्त्र की एक कथा में आया है कि पाणिनि की मृत्यु एक व्याघ्र द्वारा हुई। कुछ विद्वानों का विचार है कि पाणिनि की निधन-तिथि त्रयोदशी है। सम्भवतः इसीलिए वैयाकरण विद्वान् आज भी त्रयोदशी के दिन व्याकरण का अध्ययन-अध्यापन नहीं करते।

पाणिनि की रचना अष्टाध्यायी है। अष्टाध्यायी के नियमों के सम्बन्ध में जितना अधिक कहा जाय उतना थोड़ा है। अष्टाध्यायी में लगभग ४ सहस्र सूत्र हैं। इसका विभाजन आठ अध्यायों में किया गया है। प्रत्येक अध्याय में चार पाद हैं। प्रथम अध्याय में व्याकरण सम्बन्धी संज्ञाओं तथा परिभाषाओं की विवेचना की गई है। दूसरे अध्याय में समास और कारक प्रकरण दिए गए हैं। तीसरे और आठवें अध्याय में कृदन्त का विस्तार से विवेचन किया गया है। चौथे और पाँचवें अध्यायों में स्त्रीप्रत्यय और तद्धित प्रकरण हैं। छठे और सातवें अध्यायों में सन्धि, आदेश और स्वरप्रक्रिया से सम्बन्धित विस्तृत और प्रौढ़ विवरण हैं। जैसा कि हम कह आए हैं, पाणिनि के सामने संस्कृत भाषा का एक विशाल रूप था। उसे सूत्रबद्ध करना उनका उद्देश्य था। व्याकरण की सामग्री किसी न किसी रूप में प्राप्त अवश्य थी, किन्तु वह यत्र-तत्र फैली हुई थी, उसमें प्रौढ़ता और व्यवस्था का अभाव था। इस क्षति की पूर्ति आचार्य पाणिनि ने की। पाणिनि ने बहुत छोटे-छोटे पारिभाषिक और अर्थ

गौरव से पूर्ण सूत्र रखे हैं। पाणिनि का ध्यान संक्षेप की ओर विशेष रूप से था, जिसके लिए उन्होंने प्रत्याहार, अनुबन्ध, संज्ञाओं आदि का पूर्ण आश्रय स्थान-स्थान पर लिया है। इन संक्षेप करने वाली प्रणालियों का वर्णन हम आगे करेंगे। यहाँ हम यह कहना चाहते हैं कि पाणिनि की अष्टाध्यायी में शब्द-रूपों और धातुरूपों का बड़ी सूक्ष्मता के साथ विवेचन हुआ है। उनका ढंग वैज्ञानिक है। इनकी अष्टाध्यायी विश्व का एक आदर्श व्याकरण-ग्रंथ है, जिसमें सर्वाङ्गपूर्ण अनुसन्धान, संक्षेपातिशयता, नियम-बद्धता और तार्किकता अपनी पूर्णता की चरमसीमा को प्राप्त हुई हैं। संक्षेपातिशय का उद्देश्य सम्भवतः व्याकरण के नियमों को कंठाग्र करने योग्य बनाना था। इस प्रवृत्ति का एक बुरा परिणाम यह भी हुआ कि व्याकरण शास्त्र अत्यन्त दुरूह और फलस्वरूप गुरु-मुखापेक्षी हो गया। दूसरी बात यह हुई कि पाणिनि ने भाषा और व्याकरण की बिखरी हुई सामग्री को इस प्रकार नियमों में जकड़ दिया कि उसकी स्वाभाविक सरल गति एक प्रकार से रुद्ध सी हो गई।

**कात्यायन**

कात्यायन का दूसरा नाम वररुचि है। कुछ विद्वानों के अनुसार इनका समय ४०० वर्ष ई० पू० तथा ३०० वर्ष ई० पू० के बीच में है। पाणिनि के पश्चात् कात्यायन दूसरे प्रसिद्ध वैयाकरण हैं, जिनके सम्बन्ध में हमें कुछ ज्ञान है। कात्यायन ने पाणिनि के लगभग १२५० सूत्रों की आलोचनात्मक व्याख्या की है। उन्होंने कमियों के दूर करने का भी कहीं-कहीं प्रयास किया है। इन्होंने वार्तिकों की रचना की है। वार्तिकों की अनुमानित संख्या ४००० है। पाणिनि के नियमों पर विचार करते हुए कहीं-कहीं कात्यायन से भूलें भी हो गई हैं। महाभाष्यकार पतञ्जलि ने कात्यायन की इन भूलों का यत्र-तत्र उल्लेख किया है। कात्यायन ने वाजसनेयो प्रातिशाख्य की भी रचना की है।

**पतञ्जलि**

पतञ्जलि की उत्कृष्ट रचना महाभाष्य है। इनका समय २०० वर्ष ई० पू० तथा प्रथम ईसवीय शती के मध्य माना जाता है। पाणिनि के महत्त्व को विशेष रूप से बढ़ाने वाले पतञ्जलि हैं। पतञ्जलि मौलिक वैयाकरण हैं। आगे आने वाले विद्वानों ने पाणिनि, कात्यायन और पतञ्जलि को मुनित्रय की संज्ञा प्रदान करके तीनों मुनियों के लिए समान सम्मान प्रदर्शित

किया है। डा० बाबूराम सक्सेना के अनुसार पतञ्जलि गोनर्द (सम्भवत: गोंडा) के निवासी थे और उनकी माता का नाम गोणिका था। पतञ्जलि पाणिनि के पोषक हैं। इनकी सबसे बड़ी विशेषता सरल और प्रवाहमय शैली है, जो महाभाष्य के लिखने में अपनाई गई है। पतञ्जलि की व्याख्याओं को 'इष्टि' कहते हैं। पतञ्जलि ने कात्यायन की त्रुटियों का सुधार करके पाणिनि के मत की पुष्टि की है।

**मुनित्रय का परवर्ती काल**

पाणिनि, कात्यायन और पतञ्जलि के पश्चात् मौलिक वैयाकरणों का युग समाप्त सा हो जाता है। इसका कारण यह है कि उपर्युक्त तीनों तप:पूत मनियों ने व्याकरण की विवेचना को चरम सीमा पर पहुँचा दिया था और सम्भवत: उसके आगे नियम-निर्माण करने की आवश्यकता न रह गई थी। फलत: टीका-युग का आरम्भ होता है। इस युग में पाणिनि, कात्यायन और पतञ्जलि के नियमों को समझाने एवं उन्हें बोधगम्य बनाने की विविध विधियाँ निकाली गईं। इन विधियों में टीका-विधि सर्वोत्तम समझी गई। आगे चल कर कुछ विद्वानों ने आवश्यक पाणिनीय सूत्रों का छोटे-छोटे रूपों में संग्रह भी किया और उन्हें नवीन व्यवस्था भी प्रदान की।

सातवीं ई० में जयादित्य और वामन ने अष्टाध्यायी पर टीका लिखी, जो 'काशिका' के नाम से प्रसिद्ध हुई। 'काशिका' पर उपटीकाएँ लिखी गईं। जिनेन्द्र बुद्धि ने न्यास और हरदत्त ने पदमञ्जरी उपटीकाओं की रचना की। महाभाष्य के टीकाकार भर्तृहरि ने 'वाक्यपदीय' ग्रन्थ लिखा। वाक्यपदीय में आगम, वाक्य और प्रकीर्ण ये तीन कांड (अध्याय) हैं। भर्तृहरि का चलाया हुआ स्फोटवाद आज भी प्रसिद्ध है। महाभाष्य पर 'प्रदीप' नामक अन्य टीका ग्रंथ लिखने वाले काश्मीरी पंडित कैयट हैं।

टीकाओं और उपटीकाओं के पश्चात् पाणिनीय सूत्रों की व्यवस्था की ओर विद्वानों का ध्यान गया। इस दिशा में सन् १३५० ई० में विमल सरस्वती ने 'रूपमाला' और १५वीं शती में पंडित रामचन्द्र ने 'प्रक्रियाकौमुदी' की रचना की। १६३० ई० के लगभग भट्टोजिदीक्षित ने पाणिनीय सूत्रों को एक नयी व्यवस्था देकर सिद्धान्त-कौमुदी की रचना की। यह पुस्तक इतनी अधिक

लोकप्रिय हुई कि अष्टाध्यायी का क्रम और उसका अध्ययन-अध्यापन एक प्रकार मे विस्मृत सा हो चला। आज जहाँ भी संस्कृत व्याकरण के अध्ययन-अध्यापन की आवश्यकता होती है, वहाँ सिद्धान्त-कौमुदी से पूरा कार्य-सम्पादन हो जाता है। भट्टोजिदीक्षित ने स्वयं 'प्रौढ-मनोरमा' नाम से सिद्धान्त-कौमुदी की टीका की रचना की। आगे चलकर कोण्डभट्ट ने 'वैयाकरणभूषण' नामक व्याकरण ग्रन्थ की रचना की। पंडितराज जगन्नाथ ने 'प्रौढमनोरमा' पर 'मनोरमा कुचमर्दिनी' नाम से व्याख्या प्रस्तुत की। इसके पश्चात् टीका ग्रन्थों की रचना करने वालों में नागेश भट्ट का स्थान आता है। इन्होंने लगभग १२ टीका-ग्रंथ लिखे। वरदाचार्य ने बालकों के अध्ययन के विचार से 'लघु सिद्धान्त-कौमुदी' और 'मध्य-सिद्धान्त-कौमुदी' की रचना की। ये दोनों रचनाएँ व्याकरण प्रारम्भ करने वाले छात्रों के लिए परमोपयोगी सिद्ध हुईं।

उपर्युक्त पंक्तियों में हमने व्याकरण का अतिसंक्षिप्त और सार रूप इतिहास प्रस्तुत किया है, जिससे छात्रों को व्याकरण के इतिहास के तारतम्य का स्वल्प बोध हो सकेगा। इस विषय को समाप्त करने के पूर्व हम इतना और कह देना चाहते हैं कि व्याकरण की पाणिनीय शाखा के अतिरिक्त चान्द्र, कातन्त्र आदि अन्य शाखाएँ भी आईं। अन्य अनेक वैयाकरणों ने अपने-अपने दृष्टिकोण के अनुसार व्याकरण शास्त्र के सुन्दर ग्रन्थों की रचना और विवेचना की, परन्तु पाणिनीय व्याकरण, उसकी व्यवस्था, सूत्रबद्धता और शैली इतनी मनोरम हुई कि व्याकरण की अन्य शाखाएँ विस्मृत सी हो गईं। आज हमें इन महान् ग्रन्थों और ग्रन्थकारों के सम्बन्ध में कुछ छुटपुट बातों के अतिरिक्त कुछ भी ज्ञात नहीं। यह पाणिनीय व्याकरण की लोकप्रियता ही है।

**पाणिनीय व्याकरण का वैशिष्ट्य**

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, पाणिनि का ध्यान संक्षेप की ओर अत्यधिक था। वे प्रत्येक नियम को सूत्र के रूप में अति संक्षिप्त करके उपस्थित करना चाहते थे। उनके पास भाषा का अपरिमित ऐश्वर्य था तथा व्याकरण के प्रत्येक अंग का रहस्य उन्हें हस्तामलकवत् था। व्याकरण का इतना सूक्ष्म ज्ञान और उसे नियमबद्ध करने की क्षमता पाणिनि जैसे कुछ इने-गिने व्यक्तियों को मिलती है, सब को नहीं।

अपने विषय को अत्यन्त संक्षिप्त रूप में उपस्थित करने में पाणिनि को अनेक विधियों का आश्रय लेना पड़ा। जिनमें कुछ विधियों का वर्णन हम नीचे दे रहे हैं :—

१. **प्रत्याहार**—संक्षेप करने के लिए पाणिनि ने प्रत्याहार विधि को अपनाया है। प्रत्याहार का प्रथम अक्षर ऐसा होता है जो हल् या इत्संज्ञक न हो, दूसरा वर्ण निश्चित रूप से हल् रहता है। इन प्रत्याहारों का निर्माण १४ माहेश्वर सूत्रों के आधार पर होता है। इनमें प्रथम वर्ण से इत्संज्ञक वर्ण तक के बीच आने वाले अक्षरों की गणना होती है। उदाहरणार्थ—अक् प्रत्याहार के अंतर्गत अ, इ, उ, ऋ और लृ वर्णों की गणना होती है। १४ माहेश्वर सूत्र निम्नाङ्कित हैं:—

अइउण्।१। ऋऌक्।२। एओङ्।३। ऐऔच्।४। हयवरट्।५। लण्।६। ञमङणनम्।७। झभञ्।८। घढधष्।९। जबगडदश्।१०। खफछठथचटतव्।११। कपय्।१२। शषसर्।१३। हल्।१४।

इन्हीं १४ माहेश्वर सूत्रों से प्रत्याहार बनते हैं। इनकी संख्या कुल ४२ है। अकारादि क्रम से हम इन्हें नीचे लिख रहे हैं:—

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| १ अक् | ८ अश् | १५ ऐच् | २२ जश् | २९ भष् | ३६ रल् |
| २ अच् | ९ इक् | १६ खय् | २३ झय् | ३० मय् | ३७ वल् |
| ३ अट् | १० इच् | १७ खर् | २४ झर् | ३१ यञ् | ३८ वश् |
| ४ अण् | ११ इण् | १८ ङम् | २५ झल् | ३२ यण् | ३९ शर् |
| ५ अण् | १२ उक् | १९ चय् | २६ झश् | ३३ यम् | ४० शल् |
| ६ अम् | १३ एङ् | २० चर् | २७ झष् | ३४ यय् | ४१ हल् |
| ७ अल् | १४ एच् | २१ छव् | २८ बश् | ३५ यर् | ४२ हश् |

एक श्लोक के अनुसार उपर्युक्त १४ माहेश्वर सूत्र जिनके आधार पर ४२ प्रत्याहार बने हैं, भगवान् शंकर के द्वारा पाणिनि को प्राप्त हुए। प्रत्याहारों के आधार पर पाणिनि अपने नियमों को संक्षेप में उपस्थित करने में पूर्ण सफल हुए।

२. **गण**—जहाँ पाणिनि को ऐसे अनेक शब्दों के उल्लेख करने की आवश्यकता होती है, जिनमें कोई एक ही नियम लगता है, वहाँ वे समस्त शब्दों का उल्लेख सूत्र में नहीं करते। शब्दों में से जो प्रथम शब्द होता है, उसी के नाम से गण का नामकरण कर देते हैं। जिससे समस्त शब्दों का बोध हो जाता है। गण का पूर्ण रूप या विवरण अंत में दे दिया जाता है। इस प्रकार नियम का सूत्रीकरण हो जाता है। उदाहरणार्थ 'सर्वादीनि सर्वनामानि' में सर्व शब्द मात्र है, किंतु सर्वादि गण के अंतर्गत ३५ सर्वनाम हैं, जिनका बोध 'सर्वादीनि' शब्द से हो गया है। इसी प्रकार गर्गादि गण में १०२ शब्द हैं।

३. **अनुबन्ध या इत्संज्ञा**—अष्टाध्यायी में निम्नाङ्कित वर्णों की इत्संज्ञा की गई है— (क) [1]अन्तिम हल् वर्ण, (ख) [2]उपदेश में अनुनासिक अच् (धातु, आगम, प्रत्यय, आदेश के मूल रूप में उपस्थित अनुनासिक स्वर), (ग) [3]धातु के आदि में आने वाले ञि, टु, डु, (घ) [4]किसी भी प्रत्यय के पहले आने वाले चवर्ग और [5]टवर्ग तथा षकार, (ङ) तद्धित प्रत्ययों को छोड़ कर अन्य प्रत्ययों के प्रारम्भ में आने वाले लकार, शकार तथा कवर्ग [6]। इत्संज्ञक वर्णों का लोप अवश्य हो जाता है परन्तु इन्हीं के कारण कभी-कभी वृद्धि, गुण, आगम, आदेश आदि कार्य होते हैं। पाणिनि ने वैदिक भाषा पर नियम-निर्माण करते हुए अनुबन्धों का प्रयोग अधिक किया है।

४. **अनुवृत्ति**—सूत्रों के विस्तार को कम करने के लिए अनुवृत्ति चौथी प्रणाली है। पूर्व सूत्र में कोई एक पद रख दिया गया है तथा आगे के सूत्रों में जहाँ कहीं भी उक्त पद की आवश्यकता हुई है, पूर्व सूत्र से लेकर अन्वय किया गया है। पूर्व सूत्रों से उत्तरवर्ती सूत्रों में पद के इसी प्रकार के अनुवर्तन

---

१. हलन्त्यम् ।१।३।३।

२. धातुसूत्रगणोणादिवाक्यलिङ्गानुशासनम् ।
   आगमप्रत्ययादेशा उपदेशाः प्रकीर्तिताः ॥

३. आदिर्ञिटुडवः ।१।३।५।

४. चुटू ।१।३।७।

५. षः प्रत्ययस्य ।१।३।६।

६. लशक्वतद्धिते ।१।३।८।

को अनुवृत्ति संज्ञा प्रदान की गई है। प्रायः यह अनुवृत्ति निकट स्थित उत्तरवर्ती सूत्र में की जाती है. किन्तु कभी-कभी कुछ बीच के सूत्र छूट जाते हैं और आगे के सूत्र में कहीं दूर पूर्वपद की अनुवृत्ति की जाती है। इसे मण्डूकप्लुप्ति (मेंढक का उछलना) न्याय कह सकते हैं।

५—**संज्ञाएँ तथा परिभाषाएँ**—विस्तार-संकोचन में संज्ञाएँ और भिन्न-भिन्न प्रकार की परिभाषाएँ बहुत सहायक सिद्ध हुई हैं। कुछ परिभाषाओं और संज्ञाओं का निर्माण स्वयं पाणिनि ने किया है और कुछ की रचना उनके पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा हुई है। यहाँ हम कुछ संज्ञाओं और परिभाषाओं का विवरण देते हैं:—

(क) **वृद्धि**—आ, ऐ और औ की वृद्धि संज्ञा होती है। (वृद्धिरादैच् ।१।१।१।)।

(ख) **गुण**—अ, ए और ओ की गुण संज्ञा होती है। (अदेङ गुणः ।१।१।२।)

(ग) **सम्प्रसारण**—य, व्, र्, ल् के स्थान पर आने वाले इ, उ, ऋ, लृ वर्णों की सम्प्रसारण संज्ञा होती है, (इग्यणः सम्प्रसारणम् ।१।१।४५।)

(घ) **संयोग**—दो या दो से अधिक हल् व्यंजनों के मेल को संयोग संज्ञा दी जाती है। (हलोऽनन्तराः संयोगः ।१।१।७।) । यथा—अ+न्+त्+य=अन्त्य ।

(ङ) **लोप**—प्रत्यय आदि का अपने स्थान पर न होना प्रकारान्तर से लोप कहा जाता है। प्रत्यय आदि की जितनी आवश्यकता होती है उतना भाग तो बना रहता है, किन्तु अनावश्यक अंश का लोप हो जाता है, (अदर्शनं लोपः ।१। १।६०।)। स्थानभेद से लोप को लुक्, श्लु और लुप् संज्ञा प्रदान करते हैं।

(च) **आदेश**—किसी वर्ण के स्थान पर उसकी सत्ता मिटा कर दूसरे वर्ण का आगमन आदेश है। इस स्थिति में पहले रूप का कोई चिह्न नहीं रह जाता है। शत्रुवदादेशः—आदेश शत्रुवत् होता है। अर्थात् जिस प्रकार शत्रु अपने विरोधी को पूर्णतया नष्ट करके उसके स्थान पर अपना अधिकार जमा लेता है, उसी प्रकार आदेश होने

पर प्रथम वर्ण का कोई चिह्न अवशिष्ट नहीं रह जाता। यथा-क्त्वा के स्थान पर ल्यप् का आदेश।

(छ) **आगम**—मित्रवदागमः—अर्थात् मित्र के समान आगम होता है। पूर्व वर्तमान वर्ण बना ही रहेगा और अन्य वर्ण का भी आगमन हो जायगा।

(ज) **उपधा**—अंतिम वर्ण के ठीक पहले वाले वर्ण की उपधा संज्ञा होती है। (अलोऽन्त्यात् पूर्व उपधा।१।१।६५।)।

(झ) **टि**—किसी भी शब्द का अंतिम स्वर सहित आगे का भाग टिसंज्ञक होता है। (अचोऽन्त्यादि टि। १। १। ६४।) यथा–गुण में अ।

(ञ) **पद**—सुप् या तिङ प्रत्ययों से युक्त शब्द पद संज्ञक होता है। (सुप्तिङन्तं पदम्।१।४।१४।)। यथा–रामः सुबन्त पद है और गच्छति तिङन्त पद। शब्दों से सुप् आदि और धातुओंसे तिङादि प्रत्यय होते हैं। प्रथमादि सात विभक्तियों में २१ सुप् प्रत्यय होते हैं। इसी प्रकार १८ तिङ प्रत्यय हैं।

(ट) **भ**—यकार या स्वर से प्रारम्भ होने वाले प्रत्ययों के जुड़ने पर पूर्व शब्द की पद संज्ञा न हो कर भ संज्ञा होती है। (यचि भम्।१।४।१८।)

(ठ) **घ**—तरप् और तमप् प्रत्ययों की घ संज्ञा होती है। (तरप्तमपौ घः।१।१।२३।)।

(ड) **विभाषा**—विकल्प की विभाषा संज्ञा होती है, जहाँ किसी कार्य के होने और न होने की संभावना हो। (नवेति विभाषा।१।१।४४)।

(ढ) **निष्ठा**—क्त और क्तवतु निष्ठासंज्ञक होते हैं। (क्तक्तवतू निष्ठा।१।१।२६।)।

(ण) **प्रगृह्य**—ईकारान्त, ऊकारान्त तथा एकारान्त द्विवचनान्त पद प्रगृह्यसंज्ञक होते हैं। (ईदूदेद्द्विवचन प्रगृह्यम्।१।१।११।)।

६—**संधिसम्बन्धित परिभाषाएँ**—(क) एकादेश—जहाँ दो वर्ण मिलकर एक रूप हो जाते हैं, वहाँ एकादेश कहलाता है। (ख) पररूप—पूर्व और पर वर्ण के मिलने पर जहाँ पर वर्ण ही हो, वहाँ पररूप कहलाता है। यथा–प्र+एजते =प्रेजते। (ग) पूर्वरूप—पर और पूर्व वर्ण के आने पर जहाँ पूर्ववर्ण हो जाय,

परवर्ण न हो वहाँ पूर्वरूप कहलाता है । यथा--हरे+अव=हरेऽव। (घ) प्रकृतिभाव--जहाँ वर्णों में कोई प्राप्त विकार नहीं होता और वे वर्ण वैसे ही अपरिवर्तित बने रहते हैं, वहाँ प्रकृतिभाव कहा जाता है। यथा--गो+अग्रम्=गो अग्रम्।

ऊपर हमने पाणिनि की संक्षेप करने की कुछ विधियों पर केवल साधारण सा विचार किया है। पाणिनीय व्याकरण का अध्ययन करने पर हमें बहुत सी अन्य संज्ञाएँ, परिभाषाएँ और संक्षिप्त रूप मिलेंगे । जिनसे पाणिनि ने अपना काम चला लिया है। संक्षेप करने से पाणिनि और पाठकों को कई लाभ हुए। प्रथमतः पाणिनि ने थोड़ा लिख कर बहुत का बोध कराया। दूसरे, थोड़े ही स्थान में काम चल गया। अधिक जगह नहीं घिरी। तीसरे, इन सूत्रों को स्मरण करने में भी सुविधा हुई। अगर इन विधियों का उपयोग न होता तो पाठक को अधिक शब्द या नियमादि स्मरण करने पड़ते। फलतः उनके शीघ्र विस्मृत हो जाने की पूर्ण सम्भावना रहती। चौथे, संक्षिप्त नियम और सूत्र थोड़े समय में ही स्मृति-पथ पर आ जाते हैं। साधारण बालक भी इन्हें कम से कम समय में याद कर लेता है। आवृत्ति करने में भी समय कम लगता है । अगर ये नियम विस्तार से लिखे जाते तो सम्भवतः नियमों का एक विशाल ग्रन्थ बन जाता, जिसका स्मरण करना सम्भव न था। स्पष्ट है कि इस प्रकार बड़ा ग्रंथ अनुपयोगी सिद्ध होता। पाँचवें, संक्षेपीकरण से यह भी लाभ हुआ कि अल्प परिश्रम से ही पाठक का काम चल जाता है। यदि पाणिनि 'सर्वादीनि' शब्द का व्यवहार न करके समस्त शब्दों की सूची नियम में ही रख देते तो पाठक को उनके स्मरण करने में अधिक परिश्रम करना पड़ता, जो कम से कम आज के इस युग में कदापि सम्भव न होता । यही बात लेखन-सामग्री के भी सम्बन्ध में ध्यान देने योग्य है। आज का युग तो वैज्ञानिक युग है । लेखन-सामग्री और मुद्रण आदि कार्यों में धन, श्रम, शक्ति आदि का कम से कम मात्रा में व्यय होता है । इनकी सुविधाएँ भी पर्याप्त हैं । किन्तु महर्षि पाणिनि के समय में एक पुस्तक की प्रतिलिपि तैयार करने में बहुत अधिक समय, शक्ति और श्रम की आवश्यकता थी। उस समय मुद्रण और लेखन सामग्री की असुविधा सी थी। संक्षेप करने से इस दिशा में भी पाठकों और जिज्ञासुओं को सुविधा मिली।

'अति सर्वत्र वर्जयेत्' के अनुसार अति का सर्वत्र निषेध है। पाणिनि के संक्षिप्त नियमों में भी संक्षेप की अति हो गई। फलतः प्रकारान्तर से कुछ असुविधा भी हुई। असुविधा इस विचार से कि अति संक्षिप्त नियम गुरु की व्याख्या की आवश्यकता अनुभव करने लगे। पाठक स्वयं उन्हें समझने में असमर्थ वन गया। अगर उत्तम गुरु प्राप्त न हो तो पाणिनि के सूत्र लोहे के चनों से किसी प्रकार कम नहीं। गुरु की सहायता के बिना पाणिनीय व्याकरण दुर्गम है। यही कारण है कि पाणिनीय व्याकरण का ठोस ज्ञान रखने वाले विद्वानों की न्यूनता सी दृष्टिगोचर हो रही है। अनेक टीकाओं, टिप्पणियों, व्याख्याओं और लघु पुस्तकों के होते हुए भी पाणिनीय व्याकरण कठिन बना ही है। कुछ नियमों का यथा कथंचित् ज्ञान प्राप्त करके अधिकांश पाठक अपना काम चला लेते हैं। सचमुच, आज संस्कृत के वैयाकरण मनीषियों के समक्ष एक समस्या है। और वह यह कि पाणिनीय व्याकरण को किस विधि से सरलतम रीति से अल्पज्ञ पाठक के समक्ष रखा जाय। जब तक यह समस्या हल नहीं होती तब तक संस्कृत व्याकरण और संस्कृत भाषा तथा उसका साहित्य केवल कुछ पंडितों तक ही सीमित बना रहेगा और उसका अधिकाधिक प्रचार न हो सकेगा।

**अध्ययन विधि**

'द्वादशभिवर्षैः व्याकरणं श्रूयते'—अर्थात् व्याकरण शास्त्र के सम्यक् अध्ययन के लिए बारह वर्ष का समय चाहिए। किन्तु आज हमारे पास बारह वर्ष का समय नहीं है। फलतः अल्पकाल में व्याकरण का ज्ञान प्राप्त करने के लिए हमें कुछ संक्षिप्त और सारग्राही विधियाँ अपनानी पड़ेंगी। इन विधियों में उपर्युक्त संज्ञाओं, परिभाषाओं और पाणिनि की संक्षिप्त करने वाली प्रणालियों का ज्ञान यदि बालक को पहले ही करा दिया जाय तो व्याकरण का ज्ञान थोड़े समय में सम्भव हो सकता है। इन विधियों में से कुछ की चर्चा हमने ऊपर की है, किन्तु वह चर्चा मात्र ही है। संक्षिप्त करने वाली विधियों की गाँठों को खोलने के लिए छात्र को गुरु की शरण आवश्यक ही नहीं वरन् अनिवार्य है। जब तक इन विधियों का स्पष्ट ज्ञान न होगा तब तक व्याकरण दुरूह बना रहेगा।

———

# संस्कृत व्याकरण

## अध्याय १

### वर्णमाला

१. संस्कृत परिष्कृत या परिमार्जित भाषा को कहते हैं। यह देवभाषा या देवों की भाषा कही गई है।[१] यह देवनागरी अर्थात् देवों के नगरों में उपयोग में आने वाली वर्णमाला में लिखी जाती है।

(क) संस्कृत वर्णमाला का शुद्ध नाम देवनागरी है। इसको ही संक्षेप में नागरी भी कहते है। देवनागरी शब्द में संभवतः इतिहास भी छिपा हुआ है कि आर्य लोग भारत में आए और वे उत्तरीय भारत में स्थित हो गए। देवनागरी शब्द (दिव् धातु से देव शब्द है, देव अर्थात् सुन्दर और तेजोमय आकृति वाले) में देव शब्द आर्यो का सूचक है। वे भारत के आदिवासियों की अपेक्षा बहुत सुन्दर आकृति वाले थे। नागरी में नगर शब्द आर्यो के उपनिवेशों का सूचक है, जहाँ पर यह भाषा बोली जाती थी।

(ख) संस्कृत भाषा साधारणतया उसी लिपि में लिखी जाती है, जिसमें हिन्दी, बँगला और मराठी आदि भारतीय भाषाएँ लिखी जाती हैं। वास्तविक देवनागरी लिपि वह मानी जाती है, जिसमें अशोक के शिलालेख आदि लिखे हुए है और जो आज भी उत्तरीय भारतवर्ष में प्रचलित है।

---

१. संस्कृतं नाम दैवी वागन्वाख्याता महर्षिभिः। दण्डी।

न ये२[1] रा:०, ऋग्० १०–७८–४, शतचक्रं यो३[1] ह्य:०, ऋग्० १०–१४४–४ ।

इस प्रकार अ, इ, उ, ऋ इन स्वरों में से प्रत्येक के १८ भेद हैं । ऌ, ए, ऐ, ओ और औ के १२ भेद हैं, क्योंकि ऌ दीर्घ नहीं होता और ए, ऐ, ओ, औ, ये ह्रस्व स्वर नहीं होते ।

**४.** व्यंजन वर्ण इन विभागों में बँटे हुए हैं :—(क) स्पर्श (क से लेकर म तक के व्यंजन। इनके उच्चारण में उच्चारणस्थानों का पूर्ण स्पर्श होता है या जीभ विशेष उच्चारण स्थान का स्पर्श करती है। स्वरों के उच्चारण में जीभ उच्चारण स्थान का स्पर्श नहीं करती है, अतः वायु बिना अवरुद्ध हुए बाहर निकलती है), (ख) अन्तःस्थ (य, र, ल, व) इनकी स्थिति स्वर और स्पर्श वर्णों के मध्य की है। (ग) ऊष्म (श, ष, स, ह)।

ये ३३ व्यंजन इस प्रकार वर्णमाला में रक्खे जाते हैं :—

(क) स्पर्श
- (१) कवर्ग या कु—क् ख् ग् घ् ङ्
- (२) चवर्ग या चु—च् छ् ज् झ् ञ्
- (३) टवर्ग या टु—ट् ठ् ड् ढ् ण्
- (४) तवर्ग या तु—त् थ् द् ध् न्
- (५) पवर्ग या पु—प् फ् ब् भ् म्

इनको ही क्रमशः कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग और पवर्ग कहा जाता है।

(ख) अन्तःस्थ—य् र् ल् व्

(ग) ऊष्म—श् ष् स् ह्

इनके अतिरिक्त वेद में अन्य दो वर्ण और मिलते हैं—ळ और ळ्ह (ये प्रायः ड और ढ के स्थान पर प्रयुक्त होते हैं। जैसे-ईडे के स्थान पर ईळे, मीढुषे के स्थान पर मीळ्हुषे, इत्यादि।)। मराठी में संस्कृत शब्दों के अन्तिम ल के स्थान पर ळ का प्रायः प्रयोग होता है।

**५.** पाँचों वर्गों के पहले और दूसरे अक्षर तथा श, ष, स को श्वास और अघोष (अथवा कठोर) व्यंजन कहते हैं। शेष व्यंजनों को नाद और घोष (अथवा कोमल) व्यंजन कहते हैं।

**६.** उपर्युक्त वर्णों के अतिरिक्त संस्कृत में दो नासिक्य ध्वनियाँ हैं :— (१) अनुस्वार—इसका संकेत ं के द्वारा किया जाता है। यह उस अक्षर के

ऊपर विन्दु के रूप में रक्खा जाता है, जिसके बाद इसका उच्चारण होता है। जैसे—कं। (२) अनुनासिक—इसका संकेत ँ के द्वारा किया जाता है। यह अक्षर के ऊपर अर्धचन्द्र के ऊपर विन्दु के रूप में रक्खा जाता है, जिसके बाद इसका उच्चारण होता है। जैसे—सँ।

(क) इनके अतिरिक्त एक कठोर श्वासात्मक ध्वनि विसर्ग है। (संस्कृत व्याकरण में इसको विसर्जनीय भी कहा जाता है)। इसका संकेत : (विसर्ग) के द्वारा किया जाता है। जिस वर्ण के बाद इसका उच्चारण करना होता है, उसके बाद यह विसर्ग रक्खा जाता है। उच्चारण में यह ह् की अपेक्षा कुछ कठोर घोष ध्वनि है। विसर्ग मौलिक वर्ण नहीं है, अपितु यह अन्तिम स् या र् के स्थान पर होता है।

(ख) जिह्वामूलीय और उपध्मानीय ये दोनों अर्धविसर्ग के तुल्य संकेत हैं। क और ख से पहले ⌣ अर्धविसर्ग के तुल्य संकेत को जिह्वामूलीय कहते हैं और प फ से पहले ⌣ अर्धविसर्ग के तुल्य संकेत को उपध्मानीय कहते हैं। इन दोनों को क्रमशः कवर्ग और पवर्ग की काकल ध्वनि माना जा सकता है।

**७.** जो वर्ण थोड़ी प्राणवायु से बोले जाते हैं, उन्हें अल्पप्राण कहते हैं और जो कुछ अधिक प्राणवायु से बोले जाते हैं, उन्हें महाप्राण कहते हैं। अल्पप्राण वर्ण हैं—वर्गों के प्रथम, तृतीय और पंचम अक्षर तथा अन्तःस्थ। शेष सभी वर्ण महाप्राण हैं। सुविधा के लिए वर्गों के प्रथम और तृतीय वर्णों को अघोष वर्ण भी कहा जाता है।

**८.** पृष्ठ ६ की सारणी में उच्चारणस्थान के अनुसार पूरी वर्णमाला का वर्गीकरण दिया गया है।

(क) उच्चारण-स्थान पाँच हैं। ये मुख के अन्दर विद्यमान हैं। इनके नाम हैं—कण्ठ, तालु, मूर्धा, दन्त और ओष्ठ।

**विशेष**—निम्नलिखित सारणी में व्यंजन वर्ण सुविधा के लिए अकारान्त दिए गए हैं। उन्हें हलन्त अर्थात् अ से रहित समझना चाहिए।

| | ५ वर्ग | | | | | अन्तःस्थ | ऊष्म | सामान्य स्वर ह्रस्व दीर्घ | मिश्रित स्वर | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | अघोष | घोष | अघोष | घोष | नासिक्य | | | | | |
| कण्ठ्य | क | ख | ग | घ | ङ | *ह | ⌣ जिह्वा | अ आ | ए ऐ | ओ औ |
| तालव्य | च | छ | ज | झ | ञ | य | श | इ ई | | |
| मूर्धन्य | ट | ठ | ड | ढ | ण | र | ष | ऋ ॠ | | |
| दन्त्य | त | थ | द | ध | न | ल | स | ऌ | | |
| ओष्ठ्य | प | फ | ब | भ | म | व | ⌣ उप० | उ ऊ | | ओ औ |

*ह अन्तःस्थ नहीं है, परन्तु कण्ठ्य होने के कारण यहाँ दिया गया है। उच्चारण-स्थानों को सरलता से स्मरण करने के लिए ये संस्कृत के वाक्य स्मरणीय हैं:—

अकुहविसर्जनीयानां **कण्ठः**।
इचुयशानां **तालु**।
ऋटुरषाणां **मूर्धा**।
ऌतुलसानां **दन्ताः**।
उपूपध्मानीयानाम् **ओष्ठौ**।
ञमङणनानां **नासिका च**।

एदैतोः **कण्ठतालु**।
ओदौतोः **कण्ठोष्ठम्**।
वकारस्य **दन्तोष्ठम्**।
जिह्वामूलीयस्य **जिह्वामूलम्**।
**नासिका**ऽनुस्वारस्य।

ए, ऐ कण्ठ्य और तालव्य दोनों हैं। ओ, औ कण्ठ्य और ओष्ठ्य दोनों हैं। व दन्त्य और ओष्ठ्य है। अनुस्वार नाक से बोला जाता है और जिह्वामूलीय जीभ के मूल अर्थात् जड़ वाले भाग से बोला जाता है।

९. जिन वर्णों का उच्चारण-स्थान एक है और जो एक से प्रयत्न से उच्चारण किए जाते हैं, उन्हें 'सवर्ण' कहते हैं। जो वर्ण इस प्रकार के नहीं हैं, उन्हें 'असवर्ण' कहते हैं।[1]

१०. 'स्वर' उसको कहते हैं, जो व्यंजन की सहायता के बिना भी बोला जा सकता है। 'व्यंजन' उसको कहते हैं, जो स्वर की सहायता से बोला जाता है। अतएव व्यंजनों की अपूर्णता को सूचित करने के लिए उन्हें हलन्त (जैसे—क्, ख् आदि) लिखा जाता है।

(क) अतः उच्चारण की सुविधा को ध्यान में रखते हुए पाणिनीय व्याकरण में व्यंजन वर्णो को अ से युक्त (जैसे—क ख ग आदि) लिखा जाता है।

(ख) पहले उल्लेख किया जा चुका है कि संस्कृत में वर्णों के पृथक् नाम नहीं हैं। क को क ही कहते हैं, ख को ख। दो ध्वनियों को पृथक् नाम दिए हैं— ं को अनुस्वार और : को विसर्ग। र को रेफ भी कहते हैं। किसी विशेष वर्ण को सूचित करने के लिए उस वर्ण के बाद 'कार' लगाया जाता है। जैसे—अकार का अर्थ है 'अ', ककार का अर्थ है 'क', इत्यादि।

११. एक स्वर वर्ण या एक व्यंजन वर्ण, साधारण या संयुक्त, स्वर के साथ संयुक्त होकर एक अक्षर कहा जाता है।

१२. नीचे (क) और (ख) भाग में निर्देश किया गया है कि किसी व्यंजन के साथ संयुक्त होने पर स्वरों का क्या रूप होता है और संयुक्त व्यंजनों का क्या रूप होता है।

(क) किसी व्यंजन के साथ अ लगाने पर उसके बाद का हल् का चिह्न हट जाता है। जैसे—क् + अ = क। अन्य स्वरों का व्यंजन के बाद लगने पर यह स्वरूप होता है। आ—ा, इ—ि, ई—ी, उ—ु, ऊ—ू, ऋ—ृ, ॠ—ॄ, ऌ—ॢ, ए—े, ऐ—ै, ओ—ो, औ—ौ। जैसे—क् + आ = का, क् + इ = कि। इसी प्रकार की, कु, कू, कृ, कॄ, क्ॢ, के, कै, को, कौ आदि बनते हैं।

**अपवाद**—र् के बाद ऋ में परिवर्तन नहीं होता है। जैसे—र्ऋ।

(ख) व्यंजनों को संयुक्त करते समय यह ध्यान रक्खा जाता है कि जिस क्रम से व्यंजनों का उच्चारण होता है, वे उसी क्रम से संयुक्त अक्षर में रक्खे जाते हैं। अन्त वाले व्यंजन में स्वरों की मात्रा आदि लगती है। संयुक्त व्यंजनों

---

१. **तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम् (अष्टा० १-१-९)**

में पहले वाले व्यंजनों के बाद की खड़ी लकीर और हल् का चिह्न हटा दिया जाता है। जैसे—त् + स् + न को त्स्न, इस प्रकार लिखा जायगा और ण् + ण को ण्ण। कुछ संयुक्त व्यंजनों में थोड़ा परिवर्तन होता है और कुछ में पूर्ण परिवर्तन हो जाता है। जैसे—ल् + प = ल्प, त् + र = त्र, श् + च = श्च, ग् + र = ग्र, इत्यादि। र् के बाद कोई व्यंजन (या ऋ स्वर) होगा तो र् ` लिखा जाता है, अर्थात् अगले व्यंजन के ऊपर ` चिह्न होगा। जैसे— र् + क = र्क। ऐसी अवस्था में र् को रेफ कहा जाता है।

(ग) संयुक्त अक्षर क्ष् ( क् + ष् ) और ज्ञ् ( ज् + ञ् ) में मिले हुए अवयव अक्षरों का स्पष्ट बोध नहीं होता है।

(घ) कुछ संयुक्त अक्षर दो प्रकार से लिखे जाते हैं। जैसे—त् + र = त्र, त्र, क् + र = क्र, क्र, क् + त = क्त, क्त, द् + य = द्य, द्य।

(ङ) मुख्य संयुक्त व्यंजन वर्ण ये हैं :—

क्क, क्क्ण, क्क्य, क्ख, क्त, क्थ, क्त्य, क्त्र, क्त्व, क्थ्न, क्न, क्न्य, क्म, क्य, क्र, क्ल, क्व, क्ष, क्ष्ण, क्ष्म, क्ष्य, क्ष्व।

ख्न, ख्य, ख्र।

ग्ध, ग्न, ग्म, ग्र, ग्य, ग्ल, ग्व।

घ्न, घ्न्य, घ्म, घ्य, घ्र, घ्व।

ङ्क, ङ्क्त, ङ्क्ष, ङ्क्ष्व, ङ्ख, ङ्ख्य, ङ्ग, ङ्घ, ङ्घ्य, ङ्घ्र, ङ्ङ, ङ्म, ङ्य।

च्च, च्छ, च्छ्र, च्छ्व, च्ञ, च्म, च्य।

छ्य, छ्र।

ज्ज, ज्झ, ज्ञ, ज्ञ्य, ज्म, ज्य, ज्र, ज्व।

ञ्च, ञ्छ, ञ्ज।

ट्क, ट्ट, ट्य, ठ्य, ठ्र, ड्ग, ड्घ, ड्म, ड्य, ढ्य, ढ्र।

ण्ट, ण्ठ, ण्ड, ण्ढ, ण्ण, ण्म, ण्य, ण्व।

त्क, त्क्र, त्त, त्त्य, त्त्र, त्त्व, त्थ, त्न, त्न्य, त्प, त्म, त्म्य, त्य, त्र, त्र्य, त्व, त्स, त्स्न, त्स्न्य, त्स्य।

थ्न, थ्य, थ्व।

द्ग, द्घ, द्द, द्य, द्ध, द्ध्य, द्ध्व, द्न, द्व, द्ब्र, द्भ, द्भ्य, द्म, द्र, द्र्य, द्व, द्व्य, द्व्र।

ध्न, ध्न्य, ध्म, ध्य, ध्र, ध्र्य, ध्व ।

न्त, न्त्य, न्त्र, न्द्द, न्द्र, न्ध, न्ध्य, न्ध्र, न्न, न्प्र, न्म, न्य, न्र, न्स ।

प्त, प्त्य, प्न, प्प, प्म, प्य, प्र, प्ल, प्व, प्स, प्स्व ।

ब्ज, ब्द, ब्ध, ब्न, ब्ब, ब्भ, ब्य, ब्र, ब्व ।

भ्न, भ्य, भ्र, भ्व ।

म्न, म्प, म्प्र, म्ब, म्भ, म्य, म्र, म्ल, म्व ।

य्य, य्र, य्व ।

र् + क = र्क, र्ख, र्ग, र्क्ष, र्ग्य, र्घ्य, र्त्य, र्क्ष्य, र्त्र्य, र्त्स्य, र्द्ध ।

ल्क, ल्प, ल्म, ल्य, ल्ल, ल्व ।

व्न, व्य, व्र, व्व ।

श्च, श्च्य, श्न, श्य, श्र, श्र्य, श्ल, श्व, श्व्य, श्श ।

ष्ट, ष्ट्य, ष्ट्र, ष्ट्र्य, ष्ट्व, ष्ठ, ष्ठ्य, ष्ण, ष्ण्य, ष्प, ष्प्र, ष्म, ष्य, ष्व ।

स्क, स्ख, स्त, स्त्य, स्त्र, स्त्व, स्थ, स्न, स्न्य, स्प, स्फ, स्म, स्य, स्र, स्व, स्स ।

ह्ण, ह्न, ह्म, ह्र, ह्ल, ह्व ।

कभी-कभी ५ व्यंजन तक संयुक्त हो जाते हैं । जैसे—कार्त्स्न्य में र्त्स्न्य ।

**१३.** संस्कृत में सन्धि-नियमों का बहुत महत्त्व है, अतः वाक्य की समाप्ति पर ही विराम का चिह्न लगाया जाता है। संस्कृत में विराम-चिह्न दो ही हैं—।, ॥ । इनमें से पहला चिह्न (।) वाक्य की समाप्ति पर और श्लोकार्ध की पूर्ति पर लगाया जाता है । दूसरा चिह्न (॥) श्लोक की समाप्ति के सूचनार्थ लगाया जाता है ।

(क) ए और ओ के बाद सन्धि-नियमानुसार हटे हुए अ के सूचनार्थ अवग्रह-चिह्न (ऽ) प्रायः लगाया जाता है । अवग्रह-चिह्न (ऽ) अर्ध अकार का सूचक है । जैसे—ते + अपि = तेऽपि, कालो + अस्ति = कालोऽस्ति । सवर्णदीर्घ सन्धि में हटे हुए अ की सूचना के लिए कभी-कभी ऽऽ चिह्न लगाया जाता है । जैसे—तथा + आस्ते = तथाऽऽस्ते ।

(ख) संस्कृत में ० चिह्न भी लगाया जाता है । इसका अभिप्राय यह है कि वहाँ पर कुछ अंश लुप्त है और उसको प्रसंग आदि के अनुसार समझना चाहिए । शब्दों के संक्षिप्त रूप में भी ० चिह्न का उपयोग किया जाता है ।

जैसे—अ० = अर्जुन, ०प्रार्थी = कवियशः-प्रार्थी, इत्यादि। पं० = पंडित, चि० = चिरंजीवी ।

**१४.** ह्रस्व स्वरों के बाद संयुक्त व्यंजन होते हैं तो उस ह्रस्व स्वर को छन्दःशास्त्र में दीर्घ गिना जाता है ।

**१५.** अ, ए, ओ, अर् और अल् को 'गुण' कहते हैं । आ, ऐ, औ, आर्, और आल् को 'वृद्धि' कहते हैं ।[1] साधारण स्वरों के स्थान पर ये गुण और वृद्धि वाले स्वर होते हैं। निम्नलिखित सारणी के अनुसार इनको समझना चाहिए ।

| सामान्य स्वर | अ | इ, ई | उ, ऊ | ऋ, ॠ | ऌ |
|---|---|---|---|---|---|
| गुण | अ | ए | ओ | अर् | अल् |
| वृद्धि | आ | ऐ | औ | आर् | आल् |

**१६.** य्, ल्, व्, ये तीनों अन्तःस्थ कभी-कभी अनुनासिक भी होते हैं। उस अवस्था में इनके ऊपर अनुनासिक का चिह्न होता है। जैसे—यँ्, लँ्, वँ् ।

**१७.** संस्कृत में अंकों के चिह्न ये हैं—

१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, ०

इन अंकों को ही लेकर बड़ी संख्याएँ बनाई जाती हैं । जैसे—१२५, ५४०, आदि ।

---

१. वृद्धिरादैच् (अष्टा० १-१-१), अदेङ्गुणः (अष्टा० १-१-२), उरण् रपरः (अष्टा० १-१-५१)

## अध्याय २

# सन्धि-नियम

१८. सन्धि शब्द सम् + धा धातु से बना है। सम्—अच्छी तरह से, धा—मिलाना। सन्धि शब्द का अभिप्राय है—दो अक्षरों का अतिसमीप आ जाना।[1]

(क) संहिता या सन्धि इन स्थानों पर अनिवार्य है—एक पद के अन्दर, धातु और उपसर्ग के अन्दर, समस्त अर्थात् समासयुक्त पद के अन्दर। वाक्य में सन्धि लेखक या वक्ता की इच्छा पर निर्भर है, अर्थात् पद के अन्तिम अक्षर और अगले पद के प्रथम अक्षर के साथ सन्धि लेखक की इच्छा पर निर्भर है।[2]

## (क) स्वर-सन्धि या अच्सन्धि

१९. ह्रस्व या दीर्घ स्वर के बाद सवर्ण (वैसा ही) ह्रस्व या दीर्घ स्वर होगा तो दोनों को मिलाकर दीर्घ स्वर अक्षर हो जाएगा।[3] जैसे—दैत्य + अरिः = दैत्यारिः, अत्र + आसीत् = अत्रासीत्, यदा + अभवत् = यदाभवत्, विद्या + आतुरः = विद्यातुरः (विद्या का इच्छुक), इति + इव = इतीव, अपि + ईक्षते = अपीक्षते, श्री + ईशः = श्रीशः, भानु + उदयः = भानूदयः, साधु + ऊचुः = साधूचुः, चमू + ऊर्जः = चमूर्जः (सेना की शक्ति), कर्तृ + ऋजुः = कर्तृजुः, कृ + ऋकारः

---

१. परः संनिकर्षः संहिता (अष्टा० १-४-१०९)। संहिता अर्थात् सन्धि का अर्थ है वर्णों का अत्यन्त समीप हो जाना।

२. संहितैकपदे नित्या नित्या धातूपसर्गयोः। नित्या समासे, वाक्ये तु सा विवक्षामपेक्षते। (सिद्धान्तकौमुदी, भ्वादिगण सूत्रसंख्या २२३२ की व्याख्या)। इस श्लोक में विवरण दिया है कि सन्धि कहाँ पर करनी चाहिए और कहाँ पर ऐच्छिक है।

३. अकः सवर्णे दीर्घः (अष्टा० ६-१-१०१)।

=कॄकारः, होतृ + ऌकारः = होतॄकारः। (ऌ दीर्घ नहीं है, अतः दोनों वर्णों के स्थान पर दीर्घ ॠ हुआ है)। (होता के द्वारा उच्चारण किया गया ऌ)।

(क) ॠ या ऌ के बाद ह्रस्व ऋ या ऌ होगा तो ह्रस्व ऋ या ऌ भी विकल्प से आदेश होता है।[1] होतृ + ऋकारः = होतृकारः और होतॄकारः। होतृॠकारः भी रूप बनता है। (देखो नियम २३ ख)। इस प्रकार सब मिलाकर तीन रूप बनते हैं—होतृकारः, होतॄकारः और होतृॠकारः। होतृ + ऌकारः = होतॢकारः और होतॄकारः। होतृऌकारः भी रूप बनता है।

**२०.** अ या आ के बाद इ या ई होगा तो दोनों के स्थान पर गुणसन्धि होकर 'ए' हो जाएगा। इसी प्रकार अ या आ के बाद उ या ऊ होगा तो 'ओ' गुण होगा। अ या आ के बाद ऋ या ॠ होगा तो 'अर्' गुण होगा। अ या आ के बाद ऌ होगा तो 'अल्' गुण होगा।[2] जैसे—उप + इन्द्र = उपेन्द्रः (विष्णु), परम + ईश्वरः = परमेश्वरः (परमात्मा), रमा + इच्छा = रमेच्छा (रमा की इच्छा), यथा + ईप्सितम् = यथेप्सितम् (इच्छानुसार), हित + उपदेशः = हितोपदेशः (हितकारी उपदेश), कृष्ण + ऊरुः = कृष्णोरुः (कृष्ण की जंघा), गंगा + उदकम् = गंगोदकम्, महा + ऊरुः = महोरुः, कृष्ण + ऋद्धिः = कृष्णर्द्धिः (कृष्ण की समृद्धि), महा + ऋषिः = महर्षिः (महान् ऋषि), तव + ऌकारः = तवल्कारः (तुम्हारे द्वारा उच्चरित ऌकार)।

(क) व्यंजन के बाद झर् (वर्ग के १, २, ३, ४ अक्षर और श्, ष्, स) का विकल्प से लोप होता है, यदि उसके बाद सवर्ण झर् अर्थात् समान अक्षर हों तो।[3] कृष्ण + ऋद्धिः = कृष्णर्द्धिः (नियम २० के अनुसार गुण होकर), कृष्णर् + द् + ध् + इः = कृष्णर्धिः (इस नियम से बीच के द् का लोप होने से)। इसका तीसरा रूप कृष्णर्द्द्धिः भी बनता है। (देखो नियम २२ घ)।

(ख) वर्गों के व्यंजन वर्णों को विकल्प से द्वित्व हो जाता है। यदि अन्तःस्थ के बाद ञ होगा तो नहीं। अतः तवल्कारः में ल् और क् को द्वित्व होने से इसके चार रूप बनते हैं। तवल्कारः, तवल्क्कारः, तवल्ल्कारः, तवल्ल्क्कारः।

---

१. **ऋति सवर्णे ॠ वा। ऌति सवर्णे ॡ वा। (अकः सवर्णे० सूत्र की व्याख्या में वार्तिक)।**

२. **आद्गुणः (अष्टा० ६-१-८७)।**

३. **झरो झरि सवर्णे (अष्टा० ८-४-६५)**

**अपवाद-नियम**—निम्नलिखित स्थानों पर गुण के स्थान पर वृद्धि होती है।[1] :—

(क) शब्द के अ के बाद ऊह् होगा तो वृद्धि होगी। प्र के बाद ऊह, ऊढ और ऊढि होंगे तो वृद्धि होगी। जैसे—प्रष्ठ + ऊहः = प्रष्ठौहः (मुख्य अनुमान); (अथवा यह प्रष्ठवाह् शब्द का द्वितीया बहुवचन का रूप समझना चाहिए। प्रष्ठवाह् का अर्थ है धुरा को ढोने वाला बैल)। प्र + ऊहः = प्रौहः (मुख्य युक्ति)। इसी प्रकार प्रौढः (युवक) और प्रौढिः रूप बनते हैं। वार्तिक में ऊढ का उल्लेख है, ऊढवान् (वह् + क्तवतु) का उल्लेख नहीं है, अतः ऊढवान् के साथ गुण ही होगा। प्र + ऊढवान् = प्रोढवान्।

(ख) अक्ष + ऊहिनी = अक्षौहिणी (एक पूरी विशाल सेना)।[2] (यहाँ पर न् के स्थान पर ण् होने का कारण आगे दिया जाएगा।)

(ग) स्व के बाद ईर और ईरिन् होंगे तो वृद्धि होगी। ये दोनों शब्द ईर् (जाना) धातु से बने हैं। जैसे—स्व + ईरः = स्वैरः (अपनी इच्छा के अनुसार काम करने वाला)। स्व + ईरिणी = स्वैरिणी (इच्छानुसार काम करने वाली स्त्री, कुलटा)। इसी प्रकार स्वैरम् और स्वैरी (स्वेन ईरितुं शीलमस्य इति) रूप बनते हैं।

(घ) यदि अ के बाद ऋत शब्द होगा और तृतीया तत्पुरुष समास होगा

---

१. एत्येधत्यूठ्सु (अष्टा० ६-१-८९)। इस सूत्र का प्रथम भाग (एत्येधति) नियम २१ क का अपवाद नियम है। इस सूत्र पर निम्नलिखित वार्तिक हैं—१. प्रादूहोढोढ्येषैष्येषु, २. अक्षादूहिन्यामुपसंख्यानम्, ३. स्वादीरेरिणोः, ४. ऋते च तृतीयासमासे, ५. प्रवत्सतरकम्बलवसनार्णदशानामृणे।

२. एक अक्षौहिणी सेना में निम्नलिखित रथ आदि होते हैं—२१८७० रथ, २१८७० हाथी, ६५६१० घोड़े और १०९३५० पदाति या पैदल सैनिक। अक्षौहिण्याः प्रसंख्याता रथानां द्विजसत्तमाः। संख्या गणिततत्त्वज्ञैः सहस्राण्येकविंशतिः॥ शतान्युपरि चैवाष्टौ तथा भूयश्च सप्ततिः। गजानां तु परीमाणमेतदेव विनिर्दिशेत्॥ ज्ञेयं शतसहस्रं तु सहस्राणि नवैव तु। नराणामपि पञ्चाशच्छतानि त्रीणि चानघाः॥ पञ्चषष्टिः सहस्राणि तथाश्वानां शतानि च। दशोत्तराणि षट् प्राहुर्यथावदिह संख्यया॥ महाभारत, आदिपर्व २-२३-२६।

तो वृद्धि होगी। जैसे—सुखेन ऋतः का सुख + ऋतः = सुखार्तः (सुखयुक्त)। परन्तु परमश्चासौ ऋतश्च का परम + ऋतः = परमर्तः (अत्यन्त आदरणीय) रूप ही होगा।

(ङ) यदि प्र, वत्सतर, कम्बल, वसन, ऋण और दश शब्द के बाद ऋण शब्द होगा तो वृद्धि होगी। जैसे—प्र + ऋणम् = प्रार्णम् (मुख्य ऋण)। इसी प्रकार वत्सतरार्णम् (बछड़े के लिए ऋण), ऋणार्णम् (ऋण उतारने के लिए लिया गया नया ऋण), दशार्णः (एक देश का नाम। इसका शाब्दिक अर्थ है दस दुर्गों से युक्त देश), दशार्णा नदी (इसका शाब्दिक अर्थ है—जिस नदी में अन्य दस नदियाँ आकर मिलती हैं)।

(च) अकारान्त उपसर्ग के बाद यदि ह्रस्व ऋकार वाली धातु होगी तो दोनों को वृद्धि एकादेश होगी।[1] जैसे—उप + ऋच्छति = उपार्च्छति। प्र + ऋच्छति = प्रार्च्छति। यदि नामधातु वाली ऋकारादि धातु होगी तो वृद्धि विकल्प से होगी।[2] प्र + ऋषभीयति = प्रार्षभीयति, प्रर्षभीयति (बैल के तुल्य आचरण करता है)। व्याकरण में ऋ और ऌ सवर्ण माने जाते हैं, अतः ऌ बाद में होगा तो भी वृद्धि विकल्प से होगी। प्र + ऌकारीयति = प्राल्कारीयति, प्रल्कारीयति। सूत्र में ह्रस्व ऋ का उल्लेख है, अतः दीर्घ ॠ बाद में होगी तो वृद्धि नहीं होगी। उप + ॠकारीयति = उपर्कारीयति।

**२१.** अ या आ के बाद ए या ऐ होगा तो दोनों को ऐ होगा। यदि अ या आ के बाद ओ या औ होगा तो औ वृद्धि होगी।[3] जैसे—कृष्ण + एकत्वम् = कृष्णैकत्वम्। देव + ऐश्वर्यम् = देवैश्वर्यम् (देवों का ऐश्वर्य)। सा + एव = सैव (वही)। भव + ओषधम् = भवौषधम् (जन्म और पुनर्जन्म की ओषधि)। विद्या + औत्सुक्यम् = विद्यौत्सुक्यम् (ज्ञान के लिए उत्सुकता)।

**अपवाद नियम**—यदि अकारान्त उपसर्ग के बाद ए या ओ से प्रारम्भ होने वाली धातु बाद में होगी तो दोनों को ए या ओ एकादेश होगा।[4] प्र + एजते = प्रेजते (जोर से हिलता है)। उप + ओषति = उपोषति (पास में किसी वस्तु को

१. **उपसर्गादृति धातौ** (अष्टा० ६-१-९१)
२. **वा सुप्यापिशलेः** (अष्टा० ६-१-९२)
३. **वृद्धिरेचि** (अष्टा० ६-१-८८)।
४. **एङि पररूपम्** (अष्टा० ६-१-९४)।

जलाता है)। यदि ऐसी धातु नामधातु वाली होगी तो पररूप (ए या ओ) विकल्प से होगा। उप + एडकीयति = उपेडकीयति, उपैडकीयति। प्र + ओघीयति = प्रोघीयति, प्रौघीयति।

अपवाद का अपवाद—निम्नलिखित अवस्थाओं में पररूप न होकर वृद्धि ही होगी। अ के बाद इ (जाना) धातु का और एध् धातु का एकारादि रूप होगा तो वृद्धि होगी।[1] प्र के बाद इष् (दिवादि०, तुदादि०, क्र्यादिगण) धातु के एष या एष्य रूप होंगे तो वृद्धि होगी।[2] उप + एति = उपैति। उप + एधते = उपैधते। परन्तु उप + इतः = उपेतः, अव + आ + इहि या अव + एहि = अवेहि (जानो)। इसका अवैहि रूप नहीं बनेगा। प्र + इदिवत् = प्रेदिवत्। प्र + एषः = प्रैषः (भेजना या निर्देश देना)। प्र + एष्यः = प्रैष्यः (नौकर)। ईष् धातु से बनने वाले ईषः और ईष्यः के साथ गुण होकर प्रेषः और प्रेष्यः रूप बनेंगे।

(ख) अ के बाद अनिश्चय-बोधक 'एव' होगा तो दोनों को ए हो जायगा।[3] क्व + एव = क्वेव भोक्ष्यसे (तुम आज कहाँ भोजन करोगे? इसमें भोजन का स्थान अनिर्दिष्ट है।) किन्तु तव + एव = तवैव (मैं तुम्हारे यहाँ ही भोजन करूँगा।) इसमें स्थान का निर्देश होने से वृद्धि होगी।

(ग) अ के बाद ओम् या आ (उपसर्ग) होगा तो अ हट जाएगा।[4] जैसे – शिवाय + ओं नमः = शिवायों नमः। शिव + एहि (आ + इहि) = शिवेहि।

(घ) शब्द के अ के बाद ओतु (बिलाव) या ओष्ठ (ओष्ठ) शब्द होंगे तो वृद्धि विकल्प से होगी, समास में।[5] स्थूल + ओतुः = स्थूलोतुः, स्थूलौतुः। बिम्ब + ओष्ठः = बिम्बोष्ठः बिम्बौष्ठः।

---

१. एत्येधत्यूठ्सु (अष्टा० ६-१-८९)।
२. प्रादूहोढोढ्येषैष्येषु (अष्टा० ६-१-८९ पर वार्तिक)।
३. एवे चानियोगे (वार्तिक)।
४. ओमाङोश्च (अष्टा० ६-१-९५)
५. ओत्वोष्ठयोः समासे वा। (वार्तिक)

(ङ) समस्त पद में[1] निम्नलिखित शब्द बाद में होंगे तो शब्द के अन्तिम स्वर या व्यञ्जन-सहित अन्तिम स्वर का लोप हो जाएगा।[2] शक (शकों का देश) + अन्धु (कुँआ) = शकन्धुः। कर्क (देश का नाम) + अन्धुः = कर्कन्धुः। कुल + अटा = कुलटा (विभिन्न घरों में जाने वाली, दुश्चरित्र स्त्री)। सीमन् + अन्तः = सीमन्तः (बालों के बीच की माँग), किन्तु सीमा के अन्त अर्थ में सीमान्तः रूप होगा। मनस् + ईषा = मनीषा (बुद्धि)। इसी प्रकार लाङ्गलीषा (हल की नोक), हलीषा, पतन् + अंजलिः = पतंजलिः (अष्टाध्यायी के ऊपर लिखे गए महाभाष्य अर्थात् विशाल भाष्य के सुप्रसिद्ध लेखक)। पतंजलि का शाब्दिक अर्थ है—अंजलियों से प्रणाम के योग्य। अथवा परम्परा के अनुसार इसका अर्थ है कि 'सन्ध्या-पूजन के समय एक ऋषि जब सूर्य को अर्घ्य दे रहे थे, उस समय ये उनके हाथों से गिर पड़े।' सार + अङ्गः = सारङ्गः (एक चितकबरा मृग, मोर आदि)। किन्तु सुन्दर शरीर या सुन्दर अंग वाले के लिए साराङ्ग शब्द होगा। यह एक आकृतिगण है। इसका अभिप्राय यह है कि इस प्रकार से बनने वाले अन्य शब्द भी इस गण में समझने चाहिएं। उनमें भी उपर्युक्त रूप से टि (अन्तिम स्वर या व्यञ्जन सहित अन्तिम स्वर) का लोप हो जाएगा। जैसे—मार्त + अण्डः = मार्तण्डः (मृताण्ड शब्द से यह रूप बना है। मृत अण्डे से बना हुआ, सूर्य)।

**२२.** इ ई को य्, उ ऊ को व्, ऋ ॠ को र् और ऌ को ल् हो जाता है, बाद में असदृश स्वर हो तो।[3] जैसे—इति + आह = इत्याह। सुधी + उपास्यः = सुध्युपास्यः (विद्वानों द्वारा सेवित)। मधु + अरिः = मध्वरिः (मधुनामक राक्षस का शत्रु, विष्णु)। धातृ + अंशः = धात्रंशः (धाता का अंश)। ऌ + आकृतिः = लाकृतिः (ऌ जैसी आकृति), इत्यादि।

**द्रष्टव्य**—उपर्युक्त शब्दों में से कई शब्दों के, सन्धि होने पर, अनेक रूप

---

१. शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्। (वार्तिक)

२. अनुकरणात्मक शब्द के अन्त में अत् हो और बाद में इति हो तो अत् हट जायगा। जैसे—पटत् + इति = पटिति। एक वर्ण वाले शब्द में अत् नहीं हटेगा। श्रद् + इति = श्रदिति। द्विरुक्त अर्थात् दो बार पढ़े हुए शब्द में केवल अन्तिम त् विकल्प से हटेगा। जैसे—पटत्पटत् + इति = पटत्पटेति, पटत्पटदिति।

३. इको यणचि। (अष्टा० ६-१-७७)

हो जाते हैं। जैसे—सुधी + उपास्यः = सुध्य् + उपास्यः = सुध्युपास्यः। पूर्व नियमानुसार।

सूचना—निम्नलिखित नियम और नियम २० के अन्तर्गत दिए गए (क), (ख) यद्यपि अगले विभाग के अन्दर आने चाहिएं तथापि भ्रम-निवारणार्थ यहाँ दिए गए हैं। सामान्य विद्यार्थी इस नियम के (ख) भाग के अतिरिक्त शेष अंश को छोड़ सकते हैं।

(क) स्वर के बाद ह् को छोड़कर शेष सभी व्यंजनों को विकल्प से द्वित्व हो जाता है, यदि बाद में स्वर न हो तो।[1] सुध्य् + उपास्यः = सुध्युपास्यः और सुध्ध्य् + उपास्यः।

(ख) झलों (वर्ग के १, २, ३, ४ और श ष स ह) को जश् (अपने वर्ग का तीसरा वर्ण) हो जाता है, यदि बाद में झश् (वर्ग के ३, ४) हो तो।[2] सुध्ध्य् + उपास्यः = सुद्ध्युपास्यः।

(ग) यण् (अन्तःस्थ, य् र् ल् व्) के बाद मय् (ञ् को छोड़कर पाँचों वर्गों के सभी अक्षर) को विकल्प से द्वित्व हो जाता है।[3] इस प्रकार चार रूप बन जाते हैं। सुध्य् + उपास्यः = सुध्युपास्यः। सुध्ध्य् + उपास्यः = सुद्ध्युपास्यः। सुध्य्य् + उपास्यः = सुध्य्युपास्यः। सुध्ध्य्य् + उपास्यः = सुद्ध्य्युपास्यः।

इसी प्रकार मधु + अरिः के भी चार रूप होते हैं—मध्वरिः, मध्व्वरिः, मद्ध्वरिः और मद्ध्व्वरिः। धातृ + अंशः के दो रूप होते हैं—धात्रंशः, धात्त्रंशः। लृ + आकृतिः = लाकृतिः का एक ही रूप बनता है।

(घ) स्वर के बाद र् या ह् हो और उसके बाद कोई यर् (ह् को छोड़कर सभी व्यञ्जन) हो तो उसे विकल्प से द्वित्व हो जाता है।[4] जैसे—हरि + अनुभवः = हर्य् + अनुभवः = हर्यनुभवः, साधारण नियमानुसार तथा इस नियम के अनुसार विकल्प से हर्य्य् + अनुभवः = हर्य्यनुभवः (हरि का अनुभव)। इसी प्रकार न हि + अस्ति = न ह्यस्ति, न ह्य्यस्ति।

१. **अनचि च।** (अष्टा० ८-४-४७)
२. **झलां जश् झशि।** (अष्टा० ८-४-५३)
३. **यणो मयो द्वे वाच्ये।** (वार्तिक)
४. **अचो रहाभ्यां द्वे।** (अष्टा० ८-४-४६)

**२३.** (क) पद के अन्तिम इक् (इ ई, उ ऊ, ऋ ॠ और ऌ) के बाद यदि कोई असवर्ण स्वर हो तो वहाँ पर विकल्प से कोई भी सन्धि नहीं होती और सन्धि के अभाव की अवस्था में यदि दीर्घ स्वर है तो उसे ह्रस्व हो जाता है।[1] जैसे—चक्री + अत्र = चक्र्यत्र, चक्रि अत्र (विष्णु यहाँ आवो)। यह नियम समास में नहीं लगता है।[2] वापी + अश्वः = वाप्यश्वः। गौरी + औ = गौर्यौ ही रूप होगा।

(ख) पद के अन्तिम अक् (अ आ, इ ई, उ ऊ, ऋ ॠ, ऌ) के बाद ऋ हो तो वहाँ पर विकल्प से सन्धि नहीं होगी और सन्धि के अभाव की स्थिति में यदि दीर्घ स्वर है तो उसे ह्रस्व हो जाएगा।[3] जैसे—ब्रह्मा + ऋषिः = ब्रह्म-ऋषिः, ब्रह्मर्षिः (एक ब्राह्मण ऋषि)। समास में भी यह नियम लगता है। सप्त + ऋषीणाम् = सप्त ऋषीणाम्, सप्तर्षीणाम् (सात ऋषियों का)।

**२४.** ए को अय्, ओ को अव्, ऐ को आय् और औ को आव् हो जाता है, बाद में कोई स्वर हो तो।[4] जैसे – हरे + ए = हरये (हरि के लिए)। विष्णो + ए = विष्णवे (विष्णु के लिए)। नै + अकः = नायकः (नेता)। पौ + अकः = पावकः (पवित्र करने वाला, अग्नि)।

(क) अ या आ के बाद पद के अन्तिम य् और व् का विकल्प से लोप हो जाता है, बाद में अश् (स्वर, अन्तःस्थ, ह, वर्ग के ३, ४, ५) हो तो।[5] जैसे – हरे + एहि = हर एहि, हरयेहि। विष्णो + इह = विष्ण इह, विष्णविह। श्रियै + उद्यतः = श्रिया उद्यतः, श्रियायुद्यतः (धन के लिए तत्पर)। गुरौ + उत्कः = गुरा उत्कः, गुरावुत्कः (गुरुदर्शन के लिए उत्सुक)।

**विशेष**—मध्यगत व्यंजन या विसर्ग के लोप होने पर यदि दो स्वर समीपस्थ होते हैं तो उनमें सन्धि नहीं होती है।

(ख) ओ को अव् और औ को आव् हो जाता है, बाद में यकारादि प्रत्यय

---

१. **इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च।** (अष्टा० ६-१-१२७)
२. **न समासे।** (वार्तिक)
३. **ऋत्यकः।** (अष्टा० ६-१-१२८)
४. **एचोऽयवायावः।** (अष्टा० ६-१-७८)
५. **लोपः शाकल्यस्य।** (अष्टा० ८-३-१९)

हो तो ।[1] जैसे – गो + यम् = गव्यम् (गाय से होने वाला, घी, दूध आदि) । नौ + यम् = नाव्यम् (नौका से पार होने योग्य) ।

**सूचना**—यह नियम धातुओं में तभी लगता है, जब यकारादि प्रत्यय के द्वारा ही धातु में ओ या औ हुआ हो ।[2] जैसे—लू + यम् = लो + यम् = लव्यम् (काटने के योग्य) । अवश्यलू + यम् = अवश्यलौ + यम् = अवश्यलाव्यम् (जिसको अवश्य काटना चाहिए)।

(ग) गो शब्द के ओ को अव् हो जाता है, बाद में यूति शब्द हो तो । यह नियम वेद में तथा लौकिक संस्कृत में लगता है, जब यह शब्द मार्ग की लम्बाई का बोधक हो ।[3] जैसे—गो + यूतिः = गव्यूतिः (चार मील)।

(घ) क्षि और जि धातु से कृत्य प्रत्यय य होने पर शक्य (करना संभव है) अर्थ में दोनों धातुओं के ए को अय् हो जाता है ।[4] जैसे—क्षि + य = क्षे + य = क्षय्यम् (जिसको नष्ट किया जा सकता है)। इसी प्रकार जय्यम् (जिसको जीता जा सकता है)। जहाँ पर वैसा करना संभव नहीं होगा, वहाँ पर ए को अय् नहीं होगा । जैसे—क्षेतुं योग्यं क्षेयं पापम् (पाप को नष्ट करना चाहिए, परन्तु नष्ट करना संभव नहीं है)। जेतुं योग्यं जेयं मनः (मन को जीतना चाहिए, परन्तु उसको जीतना संभव नहीं है )।

**२५.** पद के अन्तिम ए या ओ के बाद अ होगा तो अ को पूर्वरूप (ए या ओ जैसा रूप) हो जाएगा ।[5] अ हटा है, इस बात के सूचनार्थ कभी-कभी ऽ (अवग्रह-चिह्न) लगाया जाता है । जैसे—हरे + अव = हरेऽव (हे हरि, रक्षा करो)। विष्णो + अव = विष्णोऽव ।

(क) ओकारान्त गो शब्द के बाद अ होगा तो वहाँ पर विकल्प से सन्धि का अभाव होगा ।[6] दूसरे स्थान पर पूर्वरूप होगा । गो के बाद यदि कोई स्वर

---

१. वान्तो यि प्रत्यये । (अष्टा० ६-१-७९)
२. धातोस्तन्निमित्तस्यैव । (अष्टा० ६-१-८०)
३. गोर्यूतौ छन्दस्युपसंख्यानम् । अध्वपरिमाणे च । (वार्तिक)
४. क्षय्यजय्यौ शक्यार्थे । (अष्टा० ६-१-८१)
५. एङः पदान्तादति (अष्टा० ६-१-१०९)
६. सर्वत्र विभाषा गोः । (अष्टा० ६-१-१२२)

होगा तो ओ को अव विकल्प से हो जाएगा ।[1] गो + अग्रम् = गोअग्रम्, गोऽग्रम्, गवाग्रम् (गायों का समूह या गायों में मुख्य)। यदि गो के बाद इन्द्र या अक्ष होगा तो ओ को अव नित्य होगा । गो + इन्द्रः = गवेन्द्रः (श्रेष्ठ बैल)। गो + अक्षः = गवाक्षः (खिड़की, झरोखा)।

**२६.** इन स्थानों पर कोई सन्धि नहीं होगी :—

(१) जिन स्थानों पर प्रगृह्य संज्ञा होती है,[3] अर्थात्—

(क) द्विवचन के ई, ऊ और ए के बाद सन्धि नहीं होगी । ये ई आदि संज्ञा शब्द, सर्वनाम या धातु किसी के भी हों । जैसे—हरी एतौ, विष्णू इमौ, गङ्गे अमू, पचेते इमौ ।

(ख) अदस् शब्द के म् के बाद ई या ऊ होंगे तो वहाँ पर सन्धि नहीं होगी । जैसे—अमी ईशाः (ये ईश्वर)। अमू आसाते (ये दो बैठे हैं)।[4]

**विशेष**—वैदिक रूप अस्मे और युष्मे के ए के साथ भी सन्धि नहीं होती है ।[5] जैसे—अस्मे इन्द्राबृहस्पती०, ऋग्० ४-४९-४ । इसी प्रकार यदि कोई वैदिक रूप सप्तमी के अर्थ में होते हुए भी ईकारान्त या ऊकारान्त हो तो उसके साथ सन्धि नहीं होती ।[6] जैसे—सोमो गौरी अधिश्रितः०, ऋग्० १०-१२-३ । यहाँ पर गौरी गौर्याम् सप्तमी के अर्थ में है । यहाँ पर सुपां सुलुक्० (अष्टा० ७-१-३९) से सप्तमी का लोप है । इसी प्रकार मामकी तनू इति ।

(ग) एक स्वर वाले निपातों के साथ सन्धि नहीं होती, आ को छोड़कर ।[7] इन अर्थों वाले आ के साथ सन्धि होगी—थोड़े अर्थ में, क्रिया के साथ होने पर, सीमा की मर्यादा अर्थ में—उससे पूर्व या उसको लेते हुए अर्थ में । जैसे—इ इन्द्रः (ओ इन्द्र) । उ उमेशः । आ एवं नु मन्यसे ( अच्छा, आप ऐसा मानते हैं )। किन्तु आ + उष्णम् = ओष्णम् (कुछ गर्म), आदि ।

---

१. **अवङ् स्फोटायनस्य । (अष्टा० ६-१-१२३)**
२. **इन्द्रे च । (अष्टा० ६-१-१२४)**
३. **प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम् । (अष्टा० ६-१-१२५)**
४. **ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम् । (अष्टा० १-१-११)**
५. **शे । (अष्टा० १-१-१३)**
६. **ईदूतौ च सप्तम्यर्थे । (अष्टा० १-१-१९)**
७. **निपात एकाजनाङ् (अष्टा० १-१-१४) ।**

(घ) ओकारान्त निपात के साथ सन्धि नहीं होती।[1] जैसे—अहो ईशाः। संबोधन के ओ के बाद इति शब्द हो तो विकल्प से सन्धि का अभाव होगा।[2] जैसे—विष्णो + इति = विष्णो इति, विष्णविति। नियम २८ (क) के अनुसार विष्ण इति भी रूप होगा।

**सूचना**—उपर्युक्त अर्थों में आने वाले शब्दों तथा विशेष स्वर जिनके साथ सन्धि नहीं होती, उनका पारिभाषिक नाम प्रगृह्य है।

(२) प्लुत स्वरों के साथ सन्धि नहीं होती। जैसे—एहि कृष्ण ३ अत्र गौश्चरति (कृष्ण आवो, यहाँ गाय चर रही है)।

निम्नलिखित अवस्थाओं में स्वर को प्लुत हो जाता है :—[3]

(१) अभिवादन के प्रत्युत्तर वाले वाक्य में अन्तिम स्वर को प्लुत हो जाता है। अभिवादनकर्त्ता पुरुष होना चाहिए और वह शूद्र न हो। प्रत्युत्तर वाले वाक्य में अन्त में व्यक्ति का नाम या गोत्र होने पर ही प्लुत होता है। जैसे—देवदत्त ने कहा—'अभिवादये देवदत्तोऽहम्' (मैं देवदत्त आपको प्रणाम करता हूँ), उसके प्रत्युत्तर में कहा गया कि—'भो आयुष्मानेधि देवदत्त ३' (हे देवदत्त, तुम चिरंजीवी हो)। प्रत्यभिवादन में स्त्री के नाम को प्लुत नहीं होगा। अतः 'भो आष्युमती भव गार्गि' में इ को प्लुत नहीं हुआ। 'आयुष्मानेधि' में अन्त में नाम या गोत्र नहीं है, अतः इ को प्लुत नहीं हुआ।

यदि वाक्य के अन्त में भोः शब्द, क्षत्रिय या वैश्य का नाम हो तो विकल्प से प्लुत होगा। जैसे—आयुष्मानेधि भोः३ या भोः, आयुष्मानेधीन्द्रवर्म३न् या –वर्मन्, आयुष्मानेधीन्द्रपालित ३ या—पालित।

(२) दूर से किसी को पुकारने में वाक्य के अन्तिम स्वर को प्लुत होता है। इस प्रकार के वाक्य में यदि हे या है होगा तो उसे प्लुत होगा। जैसे—सक्तून् पिब देवदत्त ३। हे ३ राम। राम है ३।

---

१. ओत्। (अष्टा० १-१-१५)
२. संबुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे (अष्टा० १-१-१६)
३. वाक्यस्य टेः प्लुत उदात्तः (अष्टा० ८-२-८२)। प्रत्यभिवादेऽशूद्रे (अष्टा० ८-२-८३)। स्त्रियां न (वार्तिक)। भोराजन्यविशां वेति वाच्यम् (वार्तिक)। दूराद्धूते च (अष्टा० ८-२-८४)। हैहेप्रयोगे हैहयोः (अष्टा० ८-२-८५)

**२७.** मय् (ञ् को छोड़कर वर्गो का कोई भी अक्षर) के बाद उ निपात को विकल्प से व् हो जाता है, बाद में कोई स्वर हो तो ।[1] किमु + उक्तम् = किमु उक्तम्, किम्वुक्तम् । (नियम २६ ग भी लगेगा)।

## (ख) हल्-सन्धि या व्यंजन-सन्धि

**२८.** स् या तवर्ग के साथ यदि ये वर्ण होंगे तो—

(क) स् या तवर्ग के साथ (पहले या बाद में) श् या चवर्ग होगा तो स् को श् हो जाएगा और तवर्ग को चवर्ग हो जाएगा ।[2] हरिस् + शेते = हरिश्शेते (हरि सोता है)। रामस् + चिनोति = रामश्चिनोति (राम चुनता है)। सत् + चित् = सच्चित् (सत्ता और ज्ञान)। शार्ङ्गिन् + जय = शार्ङ्गिञ्जय (हे कृष्ण, तुम्हारी जय हो)।

**अपवाद**—श् के बाद यदि कोई तवर्ग है तो उसको चवर्ग नहीं होता ।[3] जैसे—विश्नः (तेज, प्रकाश), प्रश्नः ।

(ख) स् या तवर्ग के साथ ष् या टवर्ग होगा तो स् को ष् हो जाएगा और तवर्ग को टवर्ग हो जाएगा ।[4] रामस् + षष्ठः = रामष्षष्ठः (छठा राम)। रामस् + टीकते = रामष्टीकते (राम जाता है)। तत् + टीका = तट्टीका (उसकी टीका)। चक्रिन् + ढौकसे = चक्रिण्ढौकसे (हे कृष्ण, तुम जाते हो )। पेष् + ता = पेष्टा (पीसने वाला)।

**अपवाद**—पद के अन्तिम टवर्ग के बाद यदि स् या तवर्ग है तो उसे ष् या टवर्ग नहीं होगा। यदि बाद में नाम्, नवति या नगरी होंगे तो ष्टुत्व सन्धि होगी ।[5] षट् + सन्तः = षट् सन्तः (६ सज्जन) (देखो नियम ३९ भी)। षट् + ते = षट्ते (वे ६)। किन्तु ईट् + ते = ईट्टे (वह स्तुति करता है)। यहाँ पर ट् पद का अन्तिम अक्षर नहीं है, अतः सन्धि होगी । इसी प्रकार षण्णाम्

---

१. **मय उञो वो वा** (अष्टा० ८-३-३३)
२. **स्तोः श्चुना श्चुः** (अष्टा० ८-४-४०)
३. **शात्** (अष्टा० ८-४-४४)
४. **ष्टुना ष्टुः ।** (अष्टा० ८-४-४१)
५. **न पदान्ताट्टोरनाम्** (अष्टा० ८-४-४२)। **अनाम्नवतिनगरीणामिति वाच्यम्** (वार्तिक)

(६ का), षण्णवतिः (९६), षण्णगर्यः (६ नगर) में ष्टुत्व होगा । सर्पिष् + तमम् = सर्पिष्टमम् (घी की अधिकता) में सन्धि होगी, क्योंकि टवर्ग के बाद ही सन्धि का निषेध है ।

**२९.** तवर्ग के बाद ष होगा तो तवर्ग को टवर्ग नहीं होगा ।[1] सन् + षष्ठः = सन्षष्ठः (छठा सज्जन)।

**३०.** यदि पद के अन्तिम यर् (श्, ष्, स्, ह् को छोड़कर सभी व्यंजन) के बाद वर्ग का कोई पंचम अक्षर होगा तो यर् को अपने वर्ग का पंचम अक्षर विकल्प से हो जाएगा ।[2] एतद् + मुरारिः = एतन्मुरारिः, एतद्मुरारिः (यह मुरारि)। (देखो नियम २२ ख)। षट् + मासाः = षण्मासाः, षड्मासाः (६ मास)।

**सूचना**—यदि बाद में प्रत्यय का अनुनासिक (पंचम वर्ण) होगा तो यह सन्धि नित्य होगी ।[3] तत् + मात्रम् = तन्मात्रम् (वही)। चिन्मात्रम् (केवल ज्ञान)। वाक् + मय = वाङ्मय । ककुद्मत् (रघुवंश ४-२२) शब्द अनियमित प्रयोग है ।

**३१.** तवर्ग के बाद ल होगा तो तवर्ग को ल् हो जाएगा । न् के स्थान पर अनुनासिक ल् होगा ।[4] तत् + लयः = तल्लयः (तल्लीन)। विद्वान् + लिखति = विद्वाँल्लिखति (विद्वान् लिखता है) ।

**३२.** उद् उपसर्ग के बाद स्था और स्तम्भ् के स् को थ् हो जाता है ।[5] उद् + स्थानम् = उद् + थ्थानम् = उद्थानम्, उद्थ्थानम् (देखो नियम २० क), फिर इसके रूप बनेंगे—उत्थानम्, उत्थ्थानम् (उठना)। इसी प्रकार उत्तम्भनम् और उत्थ्तम्भनम् (रोकना, थामना) ।

**३३.** झय् (वर्ग के १ से ४) के बाद ह् होगा तो उसको पूर्व अक्षर के वर्ग का चतुर्थ अक्षर विकल्प से होगा ।[6] वाक् + हरिः = वाग्घरिः, वाग्हरिः (देखो नियम २२ ख)।(वाचां हरिः, बृहस्पति)।

---

१. तोः षि । (अष्टा० ८-४-४३)
२. यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा । (अष्टा० ८-४-४५)
३. प्रत्यये भाषायां नित्यम् । (वार्तिक) ।
४. तोर्लि । (अष्टा० ८-४-६०)
५. उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य । (अष्टा० ८-४-६१)
६. झयो होऽन्यतरस्याम् । (अष्टा० ८-४-६२)

**३४.** झलों (अन्तःस्थ और वर्ग के ५ अक्षर को छोड़कर सभी व्यंजन) को चर् (अपने वर्ग का प्रथम अक्षर) हो जाता है, बाद में खर् (वर्ग के १, २ और श ष स) हो तो।[1] यदि बाद में कुछ न हो तो अपने वर्ग के प्रथम और तृतीय वर्ण होंगे। वाक्, वाग्।

**३५.** झय् (वर्ग के १ से ४) के बाद श् को छ् विकल्प से होता है। यदि श् के बाद अम् (स्वर, अन्तःस्थ, ह् और वर्ग के पंचम अक्षर) हो तो।[2] जैसे—तद् + शिवः = तद् + शिवः, तद् + छिवः और फिर पूर्व नियम से तत् + शिवः, तत् + छिवः और अन्त में तच्शिवः, तच्छिवः (वह शिव) (देखो नियम २८ क)। इसी प्रकार तिच्छ्लोकेन, तच्श्लोकेन। किन्तु जहाँ पर श् के बाद अम् नहीं है, वहाँ पर श् को छ् नहीं होगा। वाक् श्च्योतति (वाणी लड़खड़ाती है)।

**३६.** पद के अन्तिम म् को अनुस्वार हो जाता है, बाद में कोई व्यंजन हो तो।[3] जैसे – हरिम् + वन्दे = हरिं वन्दे (हरि को नमस्कार)। गम् + यते = गम्यते, यहाँ पर म् पद का अन्तिम अक्षर नहीं है। सम् + राट् = सम्राट्, यहाँ पर म् को अनुस्वार नहीं होता है।[4]

(क) अपदान्त (पद या शब्द के मध्यगत) न् और म् को अनुस्वार हो जाता है, बाद में झल् (वर्ग के १ से ४ और ऊष्म) हो तो।[5] आक्रम् + स्यते = आक्रंस्यते (वह आक्रमण करेगा)। यशान् + सि = यशांसि। (यशस् शब्द का बहु०)। किन्तु मन् + यते = मन्यते, यहाँ पर न् के बाद झल् नहीं है। ग्रामान् + गच्छति = ग्रामान् गच्छति, यहाँ पर न् पद का अन्तिम अक्षर है, अतः अनुस्वार नहीं हुआ। (पद अर्थात् सुबन्त या तिङन्त शब्द।)

(ख) यदि म-परक ह् बाद में हो तो म् को अनुस्वार विकल्प से होता है।[6] जैसे – किम् + ह्मलयति = किम् ह्मलयति, किं ह्मलयति (वह क्या वस्तु

---

१. खरि च। (अष्टा० ८–४–५५)
२. शश्छोऽटि। (अष्टा० ८–४–६३)। छत्वममीति वाच्यम् (वार्तिक)।
३. मोऽनुस्वारः। (अष्टा० ८–३–२३)
४. मो राजि समः क्वौ। (अष्टा० ८–३–२५)
५. नश्चापदान्तस्य झलि। (अष्टा० ८–३–२४)
६. हे मपरे वा। (अष्टा० ८–३–२६)

हिलाता है)। यदि न-परक ह् हो तो म् को न् विकल्प से हो जाएगा।[१] जैसे –किम्+ह्नुते=किन्ह्नुते, किं ह्नुते (वह क्या छिपाता है ?)। यदि ह् के बाद य्, व्, ल् होंगे तो म् को विकल्प से अनुस्वारसहित य्, व्, ल् होंगे।[२] किम्+ह्यः=किं ह्यः, किंय्ह्यः। इसी प्रकार किंह्वलयति, किंव् ह्वलयति। किंह्लादयति, किंल्ह्लादयति। किन्तु अहम्+आगतः=अहमागतः।

**३७.** अनुस्वार के बाद यय् (श् ष् स् ह् को छोड़कर सभी व्यंजन) होगा तो अनुस्वार को परसवर्ण (अगले वर्ण के वर्ग का पंचम अक्षर) हो जाएगा। यह नियम शब्द के मध्य में अवश्य लगेगा और शब्द के अन्त में विकल्प से।[३] जैसे – अन्क्+इतः=अं+क्+इतः (पूर्व नियमानुसार और फिर)=अंकितः (चिह्नित)। इसी प्रकार अन्च्+इतः=अञ्चितः (पूजित), कुण्ठितः (कुण्ठित), शान्तः (शान्त), गुम्फितः (बुना हुआ)। त्वम्+करोषि=त्वं करोषि, त्वङ्करोषि (तुम करते हो)। इसी प्रकार संयन्ता-सँय्यन्ता (संयम करने वाला), संवत्सरः–सँव्वत्सरः (वर्ष), यंलोकम्-यँल्लोकम् (जिस व्यक्ति को)।

**३८.** ङ और ण् के बाद शर् (श्, ष्, स्) होगा तो बीच में विकल्प से क् और ट् जुड़ जाएगा।[४] शर् बाद में होने पर क् को ख् और ट् को ठ् विकल्प से हो जाता है। प्राङ+षष्ठः=प्राङ षष्ठः, प्राङक्षष्ठः, प्राङख्षष्ठः (छठा व्यक्ति आगे गया)। सुगण्+षष्ठः=सुगण्षष्ठः, सुगण्ट्षष्ठः, सुगण्ठ्षष्ठः (छठा अच्छा गणक)।

**३९.** ड् या न् के बाद स् होगा तो बीच में विकल्प से ध् हो जाएगा[५] इस ध् को त् हो जाता है। जैसे—षड्+सन्तः=षट् सन्तः, या षड्+ध्+सन्तः=षट्त्सन्तः (६ सज्जन)। इसी प्रकार सन्+सः=सन्सः, सन्त्सः (वह सज्जन)।

---

१. नपरे नः। (अष्टा० ८–३–२७)
२. यवलपरे यवला वेति वक्तव्यम्। (वार्तिक)
३. अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः। (अष्टा० ८–४–५८)। वा पदान्तस्य (अष्टा० ८–४–५९)
४. ङणोः कुक्टुक् शरि। (अष्टा० ८–३–२८)
५. डः सि धुट् (अष्टा० ८-३-२९)। नश्च (अष्टा० ८-३-३०)

(क) ह्रस्व स्वर के बाद पद के अन्तिम ङ् ण् न् को द्वित्व हो जाता है, बाद में कोई स्वर हो तो।[१] जैसे—प्रत्यङ् + आत्मा = प्रत्यङ्ङात्मा (जीवात्मा)। इसी प्रकार सुगण्णीशः (गणकों का स्वामी), सन्नच्युतः (सज्जन अच्युत)।

**४०.** पद के अन्तिम न् के बाद श् होगा तो बीच में विकल्प से त् जुड़ जाएगा।[२] जैसे – सन् + शम्भुः = सन्शम्भुः, सन्त्शम्भुः। यहाँ पर नियम ३० से विकल्प से श् को छ् और बाद में नियम २८ (क) से न् को ञ् और त् को च् और अन्त में नियम २० (क) से विकल्प से च् का लोप होगा। इस प्रकार इसके चार रूप हो जाएंगे—सञ्छम्भुः, सञ्च्छम्भुः, सञ्च्शम्भुः और सञ्शम्भुः।

**४१.** र्, ष् और ऋ ॠ के बाद न् को ण् हो जाता है, एक ही शब्द में हो तो।[३] यदि र्, ष्, ऋ, ॠ और न् के बीच में ये अक्षर आते हैं तो भी न् को ण् हो जाएगा—स्वर, य्, र्, व्, ह्, कवर्ग, पवर्ग, और न्।[४] जैसे – रामेन = रामेण। पूष् + ना = पूष्णा (सूर्य ने)। पितॄणाम् आदि। किन्तु राम + नाम = राम नाम, में न् को ण् नहीं होगा, क्योंकि ये दो पृथक् शब्द हैं। शब्द के अन्त में न् होगा तो उसे ण् नहीं होगा।[५] जैसे—रामान्।

**४२.** इण् (अ, आ को छोड़कर सभी स्वर, अन्तःस्थ और ह्) और कवर्ग के बाद स् को ष् हो जाता है। वह स् पद का अन्तिम अक्षर नहीं होना चाहिए और वह आदेश का हो या प्रत्यय का अवयव स् होना चाहिए।[६] जैसे—रामे + सु = रामेषु किन्तु रामस्य में ष् नहीं होगा, क्योंकि यहाँ पर उससे पूर्व अ है। सुपीः, सुपिसौ, सुपिसः में स् सुपिस् शब्द का है, आदेश या प्रत्यय का नहीं है, अतः ष् नहीं होगा। यदि बीच में न् या न् का अनुस्वार,

---

१. ङमो ह्रस्वादचि ङमुण्नित्यम्। (अष्टा० ८-३-३२)
२. शि तुक् (अष्टा० ८-३-३१)
३. रषाभ्यां नो णः समानपदे (अष्टा० ८-४-१)
४. अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि। (अष्टा० ८-४-२)
५. पदान्तस्य। (अष्टा० ८-४-३७)
६. अपदान्तस्य मूर्धन्यः (८-३-५५), इण्कोः (८-३-५७), आदेशप्रत्यययोः (८-३-५९)

विसर्ग, श् ष् स् होंगे तो भी स् को ष् हो जाएगा।[1] धनून् + सि = धनूँषि (धनुष् का प्र० बहु०)। पिपठीष् + सु = पिपठीष्षु।

**४३.** सम् के म् को अनुस्वार और स् (ं स्) हो जाता है, बाद में कृ धातु का कोई रूप हो तो। कृ धातु से पहले स् लगा हुआ होना चाहिए।[2] इस अनुस्वार को विकल्प से अनुनासिक (ँ) हो जाता है। जैसे—सम् + स्कर्ता=संस्स्कर्ता, सँस्स्कर्ता। पहले स् का विकल्प से लोप हो जाता है। संस्कर्ता, सँस्कर्ता। सम्, पुम्, कान्, इनके विसर्ग को नित्य स् होता है।[3]

**सूचना**—संस्कर्ता में अन्य कई सूत्र लगते हैं और इसके १०८ रूप बनते हैं। इन रूपों को बनाना कठिन है और विशेष लाभप्रद नहीं है, अतः उन्हें यहाँ नहीं दिया गया है।

नीचे के क, ख, ग और घ भागों को प्रारम्भिक छात्र छोड़ सकते हैं।

(क) पुम् के म् को अनुस्वार और स् (ं स् या ँ स्) हो जाता है, यदि बाद में खय् (वर्ग के १, २ वर्ण) हो और उस खय् के बाद अम् (स्वर, अन्तःस्थ, ह, वर्ग के ५ वर्ण) हो तो।[4] पुम् + कोकिलः = पुंस्कोकिलः, पुँस्कोकिलः (पुंलिंग कोयल)। इसी प्रकार पुंस्पुत्रः, पुँस्पुत्रः (पुत्र, युवक)। किन्तु पुंक्षीरम् (पुरुष के लिए दूध), पुंदासः (नौकर) में म् को स् नहीं होगा, क्योंकि इनमें उपर्युक्त विशेषताएँ नहीं हैं। ख्या धातु बाद में होगी तो भी म् को स् नहीं होगा।[5] पुंख्यानम्।

(ख) पद के अन्तिम न् को अनुस्वार और स् (ं स् या ँ स्) हो जाता है, बाद में छव् (च्, छ्, ट्, ठ्, त्, थ्) हो और उसके बाद में अम् (स्वर, अन्तःस्थ, ह् और वर्ग के पंचम अक्षर) हो तो।[6] यह नियम प्रशान् शब्द में नहीं लगता है। जैसे—शार्ङ्गिन् + छिन्धि = शार्ङ्गिन् + स् + छिन्धि = शार्ङ्गिन् + श् + छिन्धि (नियम २८ क के अनुसार)। शार्ङ्गिंश्छिन्धि, शार्ङ्गिँश्छिन्धि)।

१. नुम्विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि। (८-३-५८)
२. समः सुटि (८-३-५)।
३. संपुंकानां सो वक्तव्यः। (वार्तिक)
४. पुमः खय्यम्परे (८-३-६)
५. ख्याञादेशे न। (वार्तिक)
६. नश्छव्यप्रशान् (८-३-७)

(हे कृष्ण, काटो)। इसी प्रकार चक्रिन् + त्रायस्व = चक्रिंस्त्रायस्व, चक्रिँस्त्रायस्व (हे कृष्ण, रक्षा करो)। किन्तु हन् + ति = हन्ति में यह नियम नहीं लगेगा। यहाँ पर न् पद का अन्तिम अक्षर नहीं है। सन् + त्सरुः = सन्त्सरुः, यहाँ पर त् के बाद अम् नहीं है, (सुन्दर मूँठ)। प्रशान् + तनोति = प्रशान्तनोति।

(ग) नॄन् के न् के बाद प होगा तो उसे अनुस्वार और विसर्ग विकल्प से होगा।[1] नॄन् + पाहि = नॄंपाहि, नॄःपाहि, नॄँःपाहि।

(घ) कान् के न् को अनुस्वार और स् (ंस् या ँस्) विकल्प से हो जाएगा, बाद में कान् शब्द हो तो। कान् + कान् = कांस्कान्, काँस्कान् (किनको)। निम्नलिखित स्थानों पर विसर्ग को स् या ष् हो जाता है:—कः + कः = कस्कः। इसी प्रकार कौतस्कुतः (कहाँ से), भ्रातुष्पुत्रः, सद्यस्कालः (वर्तमान समय), सर्पिष्कुण्डिका (घी का बर्तन), धनुष्कपालम् (धनुष् का डंडा), यजुष्पात्रम् (यज्ञ-पात्र), अयस्कान्तः (चुम्बक), तमस्काण्डः (घोर अंधेरा), अयस्काण्डः, भास्करः, अहस्करः (सूर्य)।

**४४.** ह्रस्व या दीर्घ स्वर के बाद छ होगा तो वहाँ पर बीच में च् का आगम नित्य होगा। यदि पदान्त दीर्घ स्वर के बाद छ होगा तो विकल्प से च् का आगम होगा। आ और मा के बाद छ होगा तो च् का आगम नित्य होगा।[2] जैसे—शिव + छाया = शिवच्छाया (शिव की छाया)। इसी प्रकार स्वच्छाया, चेच्छिद्यते (बार बार काटता है)। लक्ष्मी + छाया = लक्ष्मीच्छाया, लक्ष्मीछाया, मा + छिदत् = माच्छिदत् (मत काटे), आ + छादयति = आच्छादयति (वह ढकता है)।

## विसर्ग-सन्धि

**४५.** स् के बाद कोई वर्ण हो या न हो, उसे विसर्ग होता है। सजुष् के ष् को और र् को विसर्ग होता है, बाद में खर् (वर्ग के १, २, श्, ष्, स्) हो तो। जैसे—रामः पठति (राम पढ़ता है)। पितर् = पितः (हे पिता)। भ्रातुः कन्यका (भाई की लड़की)।

---

१. नॄन् पे (८-३-१०)

२. छे च (६-१-७३), आङ्माङोश्च (६-१-७४), दीर्घात् (६-१-७५), पदान्ताद् वा (६-१-७६)। वस्तुतः यहाँ पर बीच में त् का ही आगम होता है, उसे नियम २८ से च् हो जाता है।

४९. विसर्ग को स् हो जाता है, बाद में खर् (वर्ग के १,२, श् ष् स्) हो तो। इस खर् के बाद कोई श् प् स् नहीं होना चाहिए।[1] जैसे—विष्णुः + त्राता = विष्णुस्त्राता (रक्षक विष्णु)। हरिश्चरति (हरि चलता है)। रामष्टीकते (राम जाता है)। (देखो नियम २८)। किन्तु कः त्सरुः, यहाँ पर त् के बाद स् है, अतः विसर्ग ही होगा। विसर्ग के बाद श्, ष्, स् होंगे तो विसर्ग को स् विकल्प से होगा।[2] रामः + स्थाता = रामः स्थाता, रामस्स्थाता। हरिः + शेते = हरिः शेते, हरिश्शेते, इत्यादि।

(क) अ पहले हो तो विसर्ग को स् हो जाता है, बाद में पाश, कल्प, क, काम्य हों तो। यह विसर्ग अव्यय का नहीं होना चाहिए।[3] यदि विसर्ग से पहले इ ई, उ ऊ होगा तो विसर्ग को ष् होगा, पाश आदि बाद में होंगे तो।[4] जैसे—पयस्पाशम् (खराब दूध), यशस्कल्पम् (कुछ कम यश), यशस्कम् (यशयुक्त), यशस्काम्यति (यश चाहता है)। किन्तु प्रातःकल्पम् (लगभग सवेरा), यहाँ प्रातः अव्यय है, अतः स् नहीं हुआ। सर्पिष्पाशम् (खराब घी), सर्पिष्कल्पम्, सर्पिष्कम्, सर्पिष्काम्यति। काम्य बाद में होगा तो र् के विसर्ग को स् नहीं होगा।[5] जैसे—गीः काम्यति (वाणी की इच्छा करता है)। यहाँ पर गिर् के र् को विसर्ग है।

(ख) धातु से पहले अव्यय की तरह प्रयुक्त नमः और पुरः के विसर्ग को स् हो जाता है, वाद में कवर्ग या पवर्ग हो तो।[6] नमः में यह नियम विकल्प से लगेगा और पुरः में नित्य। जैसे—नमस्करोति, नमः करोति, पुरस्करोति (सामने रखता है)। किन्तु पुरः प्रवेष्टव्याः में नहीं होगा, यहाँ पर पुर् शब्द है।

---

१. **विसर्जनीयस्य सः (८-३-३४), शर्परे विसर्जनीयः (८-३-३५)**
२. **वा शरि (८-३-३६)**
३. **सोऽपदादौ (८-३-३८)। पाशकल्पककाम्येष्विति वाच्यम्। अनव्ययस्येति वाच्यम्। (वार्तिक)**
४. **इणः षः (८-३-३९)**
५. **काम्ये रोरेवेति वाच्यम्। (वार्तिक)**
६. **नमस्पुरसोर्गत्योः (८-३-४०)**

(ग) इ या उ पहले हो तो प्रत्यय-भिन्न विसर्ग को ष् हो जाता है, बाद में कवर्ग या पवर्ग हो तो।[१] यह नियम मुहुः में नहीं लगेगा। जैसे—निः + प्रत्यूहम् = निष्प्रत्यूहम् (विना विघ्न के)। आविष्कृतम् (प्रकट किया), दुष्कृतम् (कुकर्म)। किन्तु मुहुः कृतम्। अग्निः करोति में विसर्ग स् प्रत्यय का है। इसी प्रकार मातुः कृपा में भी ष् नहीं होगा और मातुष्कृपा रूप नहीं बनेगा। भ्रातुष्पुत्रः कस्कादि गण में होने के कारण बनता है।

(घ) तिरस् के विसर्ग को विकल्प से स् हो जाता है, बाद में कवर्ग या पवर्ग हो तो।[२] तिरःकरोति, तिरस्करोति (छिपाता है या तिरस्कार करता है)।

द्विः, त्रिः और चतुः के विसर्ग को विकल्प से ष् हो जाता है, बाद में कवर्ग या पवर्ग हो तो।[३] द्विः आदि बार अर्थ के बोधक क्रियाविशेषण होने चाहिएँ। द्विष्करोति, द्विःकरोति (दो बार करता है), किन्तु चतुष्कपालम् में चतुर् शब्द है, अतः विकल्प से ष् नहीं हुआ। (चार कपाल या भाग वाला)।

(ङ) शब्द के अन्तिम इस् (इः) और उस् (उः) के विसर्ग को विकल्प से ष् हो जाता है, बाद में कवर्ग और पवर्ग हो तो।[४] इसमें बाद वाला शब्द अर्थ की पूर्ति के लिए आया हुआ होना चाहिए। सर्पिष्करोति, सर्पिः करोति (घी बनाता है)। धनुष्करोति, धनुःकरोति (धनुष बनाता है)। किन्तु तिष्ठतु सर्पिः, पिब त्वमुदकम्, में सर्पिः और पिब का कोई सम्बन्ध नहीं है।

यदि ऐसा शब्द समास में प्रथम पद है तो ष् अवश्य होगा।[५] जैसे—सर्पिष्कुण्डिका (घी का बर्तन या घी की हांडी)। किन्तु परमसर्पिःकुण्डिका में ष् नहीं होगा, क्योंकि यहाँ पर सर्पिः प्रथम पद नहीं है।

(च) अ के बाद विसर्ग को स् हो जाता है, समास में, बाद में कृ या कम् धातु का कोई रूप हो या कंस, कुम्भ, पात्र, कुशा या कर्णी शब्द हो। यह विसर्ग समस्त पद का प्रथम पद होना चाहिए और अव्यय का विसर्ग नहीं होना

---

१. इदुदुपधस्य चाप्रत्ययस्य (८-३-४१)
२. तिरसोऽन्यतरस्याम् (८-३-४२)
३. द्विस्त्रिश्चतुरिति कृत्वोऽर्थे (८-३-४३)
४. इसुसोः सामर्थ्ये (८-३-४४)
५. नित्यं समासेऽनुत्तरपदस्थस्य (८-३-४५)

चाहिए।[1] जैसे--अयस्कारः (लोहार), अयस्कामः (लोहे का इच्छुक), अयस्कंसः (लोहे का पात्र), अयस्कुम्भः, अयस्पात्रम्, अयस्कुशा, अयस्कर्णी (लोहे का एक पात्र)। किन्तु निम्नलिखित स्थानों पर विसर्ग को स् नहीं होगा। गीःकारः (बृहस्पति), विसर्ग अ के बाद नहीं है। स्वःकामः (स्वर्ग का इच्छुक), विसर्ग स्वर् अव्यय का है। यशःकरोति, यहाँ समास नहीं है। परमयशःकारः (श्रेष्ठ यश का कर्ता), यहाँ यशस् शब्द प्रथम पद नहीं है।

(छ) अधः और शिरः के विसर्गों को स् हो जाता है, बाद में पद शब्द हो तो।[2] यह नियम भी पूर्वोक्त स्थितियों में ही लगता है। अधस्पदम्, शिरस्पदम्। किन्तु अधःपदम् यहाँ समास नहीं है। परमशिरःपदम् यहाँ पर शिरः प्रथम पद नहीं है, अपितु उत्तरपद है।

**४७.** ह्रस्व अ के बाद विसर्ग को उ हो जाता है, बाद में ह्रस्व अ या हश् (ह, अन्तःस्थ, वर्ग के ३, ४, ५) हो तो।[3] यह विसर्ग स् का होना चाहिए, र् का नहीं। शिवः + अर्च्यः = शिव + उ + अर्च्यः = शिवो + अर्च्यः = शिवोऽर्च्यः (देखो नियम २५), (शिव पूज्य है)। देवः + वन्द्यः = देवो वन्द्यः (परमात्मा वन्दनीय है)। किन्तु तिष्ठतु पय अ३ग्निदत्त, में पयः के बाद का अ प्लुत है, अतः विसर्ग को उ नहीं हुआ। प्रातः + अत्र = प्रातरत्र, यहाँ पर विसर्ग र् के स्थान पर हुआ है। इसी प्रकार प्रातर्गच्छ इत्यादि।

**४८.** आ के बाद विसर्ग का नित्य लोप हो जाता है, यदि उसके बाद हश् (कोमल व्यंजन अर्थात् ह्, अन्तःस्थ, वर्ग के ३, ४, ५) हो तो। यदि विसर्ग के बाद स्वर होगा तो विसर्ग का लोप विकल्प से होगा। ह्रस्व अ के बाद भी विसर्ग का लोप विकल्प से हो जाता है, यदि बाद में अ को छोड़कर कोई भी स्वर हो तो। जहाँ पर विसर्ग का लोप नहीं होता है, वहाँ पर अ या आ के बाद विसर्ग को य् हो जाता है। देवाः + नम्याः = देवा नम्याः। देवाः + इह = देवा इह, देवायिह।

**४९.** (क) अ या आ को छोड़कर अन्य किसी भी स्वर के बाद विसर्ग

---

१. **अतः कृकमिकंसकुम्भपात्रकुशाकर्णीष्वनव्ययस्य** (८-३-४६)
२. **अधःशिरसी पदे** (८-३-४७)
३. **अतो रोरप्लुतादप्लुते** (६-१-११३), **हशि च** (६-१-११४)

को र् हो जाता है, वाद में कोई स्वर या हश् (कोमल व्यंजन) हो तो। हरिः + जयति = हरिर्जयति (हरि जीतता है)। इसी प्रकार भानुरुदेति (सूर्य उदय होता है)। गौरागच्छति (गाय आती है)।

**अपवाद**—भोः, भगोः और अघोः निपातों के विसर्ग का नियम ४८ के अनुसार विकल्प से लोप होता है। जैसे—भोः + अच्युत = भो अच्युत, भोयच्युत (ओ अच्युत)। भगो नमस्ते (भगो, आपको नमस्कार)। अघो याहि (ओ, जावो)।

(ख) अहन् के न् को र् हो जाता है, वाद में कोई सुप् (विभक्ति-प्रत्यय) हो तो नहीं। यदि अहन् के वाद रूप, रात्रि या रथन्तर शब्द होगा तो न् को रु होकर उ हो जायगा। अहन्, गिर् और धुर् आदि शब्दों के बाद पति शब्द होगा तो न् को र् विकल्प से होगा।[1] जहाँ र् नहीं होगा, वहाँ विसर्ग रहेगा। अहः,अहरहः (प्रतिदिन), अहःपतिः – अहर्पतिः (दिन का स्वामी, सूर्य), गीर्पतिः – गीष्पतिः (बृहस्पति), धूर्पतिः – धूष्पतिः (नेता)। उपर्युक्त नियमानुसार इन स्थानों पर र् नहीं होगा—अहोभ्याम् (तृ० द्विवचन), अहोरूपम् (दिन का-स्वरूप), गतमहो रात्रिरेषा, अहोरात्रः (दिन-रात), अहोरथन्तरम् (दिन में गाने योग्य रथन्तर नामक सामगान)।

(ग) र् बाद में हो तो र् का लोप होता है और ढ् बाद में हो तो ढ् का। यदि लुप्त र् और ढ् से पहले ह्रस्व अ, इ, उ होंगे तो उन्हें दीर्घ हो जाएगा।[2] पुनर् + रमते = पुना रमते (फिर क्रीड़ा करता है)। हरिः + रम्यः = हरिर् + रम्यः = हरी रम्यः (हरि सुन्दर है)। किन्तु वृढ् + ढः = वृढः। यह वर्धनार्थक वृह् धातु का क्त प्रत्ययान्त रूप है। यहाँ पर ऋ को दीर्घ नहीं हुआ।

**५०.** (क) सः और एषः के विसर्ग का लोप हो जाता है, बाद में कोई व्यंजन हो तो। नञ् तत्पुरुष समास में और अन्त में क होगा तो विसर्ग का लोप नहीं होगा।[3] जैसे—स शम्भुः, एष विष्णुः। किन्तु इन स्थानों पर विसर्ग

---

१. **रोऽसुपि (८-२-६९)। रूपरात्रिरथन्तरेषु रुत्वं वाच्यम् (वार्तिक)। अहरादीनां पत्यादिषु वा रेफः (वार्तिक)।**

२. **रो रि (८-३-१४)। ढ्लोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः (६-३-१११)**

३. **एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि (६-१-१३२)**

का लोप नहीं होगा—एष को रुद्रः (यह रुद्र), असश्शिवः – असः शिवः (वह शिव नहीं है, नञ् समास), एषो ऽत्र ।

(ख) छन्द में श्लोक के पाद (चरण) की पूर्ति के लिए भी सः के विसर्ग का लोप हो जाता है, यदि बाद में अ को छोड़कर अन्य कोई स्वर हो तो।[1] विसर्ग का लोप होने पर सन्धि हो जाती है। जैसे—सेमामविड्ढि प्रभृतिं य ईशिषे० (ऋग्० २-२४-१)

सैष दाशरथी रामः सैष राजा युधिष्ठिरः ।
सैष कर्णो महात्यागी सैष भीमो महाबलः ॥

---

१. सोऽचि लोपे चेत्पादपूरणम् । (६-१-१३४)

# अध्याय ३

## सुबन्त या शब्दरूप

५१. इस अध्याय में संज्ञा-शब्दों या प्रातिपदिकों के शब्दरूपों (Declension) का विचार किया गया है।

५२. संज्ञाशब्दों के मूलरूप को, जिसके साथ विभक्तियाँ नहीं लगी हैं, व्याकरण में प्रातिपदिक नाम दिया गया है।[1] इस सार्थक शब्द के साथ ही विभक्तियाँ लगती हैं।

५३. संज्ञाशब्द तीन लिंगों (Genders) में आते हैं--पुंलिंग (पुं०), स्त्रीलिंग (स्त्री०) और नपुंसकलिंग (नपुं०)। संज्ञाशब्दों का लिंग-विचार आगे एक स्वतन्त्र अध्याय (अध्याय १०) में किया गया है।

५४. संस्कृत में तीन वचन (Numbers) होते हैं-- एकवचन (एक०), द्विवचन (द्वि०) और बहुवचन (बहु०)। एकवचन एक के लिए आता है, द्विवचन दो के लिए और बहुवचन तीन या उससे अधिक के लिए।[2]

५५. संस्कृत में ८ विभक्तियाँ होती हैं। ये तीनों वचनों में होती हैं। इनके नामादि हैं--प्रथमा (प्र०, Nominative), संबोधन (सं०, Vocative), द्वितीया (द्वि०, Accusative), तृतीया (तृ०, Instrumental), चतुर्थी (च०, Dative), पंचमी (पं०, Ablative), षष्ठी (ष०, Genitive), सप्तमी (स०, Locative)। ये विभक्तियाँ वाक्य के अन्दर शब्दों के प्रायः सभी संबन्धों को बताती हैं।

**सूचना**--आगे शब्दरूपों में सुविधा के लिए लिंग, वचन और विभक्तियों के संक्षिप्त रूपों का ही प्रयोग किया गया है। इनके संक्षिप्त रूप ऊपर कोष्ठ में दिए हैं।

---

१. अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्। (अष्टा० १-२-४५)

२. द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने (अष्टा० १-४-२२), बहुषु बहुवचनम्। (अष्टा० १-४-२१)

५६. संस्कृत में शब्दों के अन्त में लगने वाले विभक्ति-चिह्नों का पारिभाषिक नाम सुप् है।[1] शब्दरूपों को बनाने में प्रातिपदिक या संज्ञा शब्दों के साथ ये सुप् या विभक्ति-चिह्न लगाये जाते हैं।

५७. साधारणतया ये विभक्ति-चिह्न लगते हैं :—

| | पुंलिंग और स्त्रीलिंग | | | | नपुंसकलिंग | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | एक० | द्वि० | बहु० | | एक० | द्वि० | बहु० |
| प्र०, सं० | स् | औ | अस् | प्र०, द्वि० | अम् | ई | इ |
| द्वि० | अम् | औ | अस् | सं० | — | ई | इ |
| तृ० | आ | भ्याम् | भिस् | शेष पुंलिंग के तुल्य | | | |
| च० | ए | भ्याम् | भ्यस् | | | | |
| पं० | अस् | भ्याम् | भ्यस् | | | | |
| ष० | अस् | ओस् | आम् | | | | |
| स० | इ | ओस् | सु | | | | |

१. पाणिनि ने सुपों या विभक्ति-चिह्नों के ये नाम दिए हैं—
**स्वौजसमौट्छष्टाभ्याम्भिस्ङेभ्याम्भ्यस्ङसिभ्याम्भ्यस्ङसोसाम्ङ्योस्सुप्** (अष्टा० ४-१-२)। ये विभक्ति-चिह्न इस प्रकार से हैं—

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्रथमा— | सु (स्,:) | औ | जस् (अस्, अः) |
| द्वितीया— | अम् | औट् (औ) | शस् (अस्, अः) |
| तृतीया— | टा (आ) | भ्याम् | भिस् (भिः) |
| चतुर्थी— | ङे (ए) | भ्याम् | भ्यस् (भ्यः) |
| पंचमी— | ङसि (अस्, अः) | भ्याम् | भ्यस् (भ्यः) |
| षष्ठी— | ङस् (अस्, अः) | ओस् (ओः) | आम् |
| सप्तमी— | ङि (इ) | ओस् (ओः) | सुप् (सु) |

उपर्युक्त विभक्ति-चिह्नों को देखने से ज्ञात होगा कि इनमें कुछ इत् (हट जाने वाले) अक्षर प्रारम्भ में या अन्त में जुड़े हुए हैं। ये बाद में हट जाते हैं। जैसे—सु में उ, जस् में ज् आदि। सुप् यह प्रत्याहार है। यह सु से प्रारम्भ होकर अन्तिम सुप् के इत् प् को लेकर बना है। सुप् का अर्थ होता है—सु से लेकर सुप् तक के सारे विभक्ति-चिह्न।

५८. संबोधन प्रथमा का ही एक रूपान्तर माना जाता है। यह द्विवचन और बहुवचन में प्रथमा के समान ही होता है। अतः सम्बोधन के विभक्ति-चिह्न पृथक् नहीं होते हैं। सम्बोधन एकवचन में कहीं शब्द का मूलरूप रहता है, कहीं पर प्रथमा वाला रूप रहता है और कहीं पर सर्वथा भिन्न रूप बनता है।

### संज्ञा और विशेषण शब्दों के रूप

५९. सुविधा के लिए शब्दरूपों को दो भागों में विभक्त किया गया है—

(क) अजन्त (ऐसे शब्द जिनके अन्त में स्वर हैं)।

(ख) हलन्त (ऐसे शब्द जिनके अन्त में व्यंजन हैं)।

६०. साधारणतया संज्ञा शब्दों और विशेषण शब्दों के शब्दरूप में कोई अन्तर नहीं होता है। अतः दोनों का पृथक् वर्णन नहीं किया गया है। जहाँ पर दोनों में कोई भेद है, वहाँ पर उसका उल्लेख किया गया है।

## भाग १

## १. अजन्त शब्द

**विशेष**—अजन्त शब्दों के बाद सुप् या विभक्ति-चिह्न लगाने पर उनमें इतने अधिक अन्तर या परिवर्तन होते हैं कि उनका उल्लेख यहाँ पर करना उचित प्रतीत नहीं होता है। अतः यहाँ पर शब्दों के पूरे रूप ही दे दिए गए हैं। विद्यार्थी स्वयं विभक्ति-चिह्नों के परिवर्तन आदि पर विचार करें। यहाँ पर जिन शब्दों के रूप दिए गए हैं, उन्हें आदर्श शब्द समझना चाहिए। उस प्रकार के अन्य शब्दों के रूप आदर्श शब्दों के तुल्य चलाना चाहिए।

अकारान्त पुंलिग और नपुंसकलिंग शब्द

६१. राम (राम) पुं० — ज्ञान (ज्ञान) नपुं०

| | एक | द्वि० | बहु० | | एक० | द्वि० | बहु० |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | रामः | रामौ | रामाः | प्र० | ज्ञानम् | ज्ञाने | ज्ञानानि |
| सं० | राम | रामौ | रामाः | सं० | ज्ञान | ज्ञाने | ज्ञानानि |
| द्वि० | रामम् | रामौ | रामान् | द्वि० | ज्ञानम् | ज्ञाने | ज्ञानानि |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| तृ० | रामेण[1] | रामाभ्याम् | रामैः | शेष रामवत् |
| च० | रामाय | रामाभ्याम् | रामेभ्यः | |
| पं० | रामात् | रामाभ्याम् | रामेभ्यः | |
| ष० | रामस्य | रामयोः | रामाणाम् | |
| स० | रामे | रामयोः | रामेषु | |

**६२.** सभी अकारान्त पुं० और नपुं० शब्दों के रूप राम और ज्ञान के तुल्य चलेंगे।

(क) जिन शब्दों के अन्त में अह्न लगा हुआ है, उनके सप्तमी एकवचन में तीन रूप बनते हैं—एक राम के तुल्य और अन्य नकारान्त शब्दों के तुल्य। (तत्पुरुष समास के अन्त में अहन् को अह्न हो जाता है)। जैसे द्व्यह्न के रूप होते हैं—द्व्यह्ने, द्व्यह्नि, द्व्यहनि। इसी प्रकार व्यह्न के रूप होते हैं—व्यह्ने, व्यह्नि, व्यहनि इत्यादि। देखो आगे राजन् शब्द के रूप।

### आकारान्त पुंलिंग और स्त्रीलिंग शब्द

**६३.** गोपा—(ग्वाला) पुंलिंग

(क) आकारान्त पुंलिंग शब्दों के अन्त में साधारण विभक्ति-चिह्न लगते हैं। द्वितीया बहुवचन से लेकर आगे की स्वरादि विभक्तियों से पहले शब्द के अन्तिम आ का लोप हो जाता है।

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र०, सं० | गोपाः | गोपौ | गोपाः |
| द्वि० | गोपाम् | गोपौ | गोपः |
| तृ० | गोपा | गोपाभ्याम् | गोपाभिः |
| च० | गोपे | गोपाभ्याम् | गोपाभ्यः |
| पं० | गोपः | गोपाभ्याम् | गोपाभ्यः |
| ष० | गोपः | गोपोः | गोपाम् |
| स० | गोपि | गोपोः | गोपासु |

**६४.** इसी प्रकार इन शब्दों के भी रूप चलेंगे—विश्वपा (संसार का रक्षक), शंखध्मा (शंख बजाने वाला), सोमपा (सोमरस का पान करने वाला),

---

**१. नियम ४१ के अनुसार इनके न को ण हुआ है। जन का तृ० एक० में जनेन रूप होगा।**

धूम्रपा (धूम्र पान करने वाला), बलदा (बल देने वाला या इन्द्र) तथा अन्य संज्ञा शब्द जो आकारान्त धातुओं के साथ समास होकर बने हैं।

(क) यदि शब्द का उत्तरपद आकारान्त धातु नहीं है तो उस आ का लोप नहीं होगा। जैसे—हाहा (एक गन्धर्व का नाम) के रूप इस प्रकार होंगे—द्वि० बहु० हाहान्, तृ०, च०, पं०, ष० और स० एकवचन में क्रमशः ये रूप होंगे—हाहा, हाहै, हाहाः, हाहाः और हाहे। षष्ठी और सप्तमी द्विवचन में हाहौः रूप होगा। शेष रूप गोपा के तुल्य होंगे।

**६५.** रमा (लक्ष्मी), स्त्रीलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | रमा | रमे | रमाः |
| सं० | रमे | रमे | रमाः |
| द्वि० | रमाम् | रमे | रमाः |
| तृ० | रमया | रमाभ्याम् | रमाभिः |
| च० | रमायै | रमाभ्याम् | रमाभ्यः |
| पं० | रमायाः | रमाभ्याम् | रमाभ्यः |
| ष० | रमायाः | रमयोः | रमाणाम् |
| स० | रमायाम् | रमयोः | रमासु |

**६६.** इसी प्रकार सभी आकारान्त स्त्रीलिंग शब्दों के रूप चलेंगे।

**६७.** अपवाद शब्द—माता अर्थ वाले अम्बा, अल्ला और अक्का शब्दों के संबोधन एक० में क्रमशः ये रूप होते हैं—अम्ब, अल्ल, अक्क।

**६८.** कुछ अकारान्त विशेषण शब्दों के रूप सर्वनाम शब्दों के तुल्य चलते हैं, उनके लिए सर्वनाम वाला अध्याय (अध्याय ४) देखें।

इकारान्त, उकारान्त पुं०, स्त्री० और नपुं० शब्द

**६९.** हरि आदि शब्द :—

**हरि** (हरि, विष्णु), पुंलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | हरिः | हरी | हरयः |
| सं० | हरे | हरी | हरयः |
| द्वि० | हरिम् | हरी | हरीन् |
| तृ० | हरिणा | हरिभ्याम् | हरिभिः |
| च० | हरये | हरिभ्याम् | हरिभ्यः |

| | | | |
|---|---|---|---|
| पं० | हरेः | हरिभ्याम् | हरिभ्यः |
| ष० | हरेः | हर्योः | हरीणाम् |
| स० | हरौ | हर्योः | हरिषु |

**मति** (बुद्धि), स्त्रीलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | मतिः | मती | मतयः |
| सं० | मते | मती | मतयः |
| द्वि० | मतिम् | मती | मतीः |
| तृ० | मत्या | मतिभ्याम् | मतिभिः |
| च० | मत्यै, मतये | मतिभ्याम् | मतिभ्यः |
| पं० | मत्याः, मतेः | मतिभ्याम् | मतिभ्यः |
| ष० | मत्याः, मतेः | मत्योः | मतीनाम् |
| स० | मत्याम्, मतौ | मत्योः | मतिषु |

**गुरु** (गुरु), पुंलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | गुरुः | गुरू | गुरवः |
| सं० | गुरो | गुरू | गुरवः |
| द्वि० | गुरुम् | गुरू | गुरून् |
| तृ० | गुरुणा | गुरुभ्याम् | गुरुभिः |
| च० | गुरवे | गुरुभ्याम् | गुरुभ्यः |
| पं० | गुरोः | गुरुभ्याम् | गुरुभ्यः |
| ष० | गुरोः | गुर्वोः | गुरूणाम् |
| स० | गुरौ | गुर्वोः | गुरुषु |

**धेनु** (गाय), स्त्रीलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | धेनुः | धेनू | धेनवः |
| सं० | धेनो | धेनू | धेनवः |
| द्वि० | धेनुम् | धेनू | धेनूः |
| तृ० | धेन्वा | धेनुभ्याम् | धेनुभिः |
| च० | धेन्वै, धेनवे | धेनुभ्याम् | धेनुभ्यः |
| पं० | धेन्वाः, धेनोः | धेनुभ्याम् | धेनुभ्यः |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ष० | धेन्वाः, धेनोः | धेन्वोः | धेनूनाम् |
| स० | धेन्वाम्, धेनौ | धेन्वोः | धेनुषु |

**वारि** (जल), नपुंसकलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | वारि | वारिणी[1] | वारीणि |
| सं० | वारे, वारि | वारिणी | वारीणि |
| द्वि० | वारि | वारिणी | वारीणि |
| तृ० | वारिणा | वारिभ्याम् | वारिभिः |
| च० | वारिणे | वारिभ्याम् | वारिभ्यः |
| पं० | वारिणः | वारिभ्याम् | वारिभ्यः |
| ष० | वारिणः | वारिणोः | वारीणाम् |
| स० | वारिणि | वारिणोः | वारिषु |

**मधु** (शहद), नपुंसकलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | मधु | मधुनी | मधूनि |
| सं० | मधो, मधु | मधुनी | मधूनि |
| द्वि० | मधु | मधुनी | मधूनि |
| तृ० | मधुना | मधुभ्याम् | मधुभिः |
| च० | मधुने | मधुभ्याम् | मधुभ्यः |
| पं० | मधुनः | मधुभ्याम् | मधुभ्यः |
| ष० | मधुनः | मधुनोः | मधूनाम् |
| स० | मधुनि | मधुनोः | मधुषु |

**७०.** इकारान्त, उकाराप्त विशेषण शब्द जब नपुंसकलिंग विशेष्य के साथ प्रयुक्त होते हैं, तब उनके रूप इकारान्त, उकारान्त पुंलिंग शब्दों के तुल्य भी च०, पं०, ष० और स० एक० में तथा ष०. स० द्विवचन में होते हैं। जैसे—शुचि (पवित्र, श्वेत) नपुं०, गुरु (भारी) नपुं० :—

**शुचि**—नपुंसकलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | शुचि | शुचिनी | शुचीनि |

१. इकोऽचि **विभक्तौ** (अष्टा० ७-१-७३)। इ, उ, ऋ, लृ अन्त वाले नपुंसकलिंग शब्दों को स्वर-आदि वाले प्रत्यय के बाद में होने पर न् का आगम होता है।

| | | | |
|---|---|---|---|
| सं० | शुचि, शुचे | शुचिनी | शुचीनि |
| द्वि० | शुचि | शुचिनी | शुचीनि |
| तृ० | शुचिना | शुचिभ्याम् | शुचिभिः |
| च० | शुचये, शुचिने | शुचिभ्याम् | शुचिभ्यः |
| पं० | शुचेः, शुचिनः | शुचिभ्याम् | शुचिभ्यः |
| ष० | शुचेः, शुचिनः | शुच्योः, शुचिनोः | शुचीनाम् |
| स० | शुचौ, शुचिनि | शुच्योः, शुचिनोः | शुचिषु |

गुरु—नपुंसकलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | गुरु | गुरुणी | गुरूणि |
| सं० | गुरु, गुरो | गुरुणी | गुरूणि |
| द्वि० | गुरु | गुरुणी | गुरूणि |
| तृ० | गुरुणा | गुरुभ्याम् | गुरुभिः |
| च० | गुरवे, गुरुणे | गुरुभ्याम् | गुरुभ्यः |
| पं० | गुरोः, गुरुणः | गुरुभ्याम् | गुरुभ्यः |
| ष० | गुरोः, गुरुणः | गुर्वोः, गुरुणोः | गुरूणाम् |
| स० | गुरौ, गुरुणि | गुर्वोः, गुरुणोः | गुरुषु |

७१. सभी इकारान्त, उकारान्त पुं०, स्त्री०, नपुं० संज्ञा और विशेषण शब्दों के रूप इसी प्रकार चलेंगे ।

७२. अनियमित रूप से चलने वाले शब्द :—

**सखि** (मित्र), पुंलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | सखा | सखायौ | सखायः |
| सं० | सखे | सखायौ | सखायः |
| द्वि० | सखायम् | सखायौ | सखीन् |
| तृ० | सख्या | सखिभ्याम् | सखिभिः |
| च० | सख्ये | सखिभ्याम् | सखिभ्यः |
| पं० | सख्युः | सखिभ्याम् | सखिभ्यः |
| ष० | सख्युः | सख्योः | सखीनाम् |
| स० | सख्यौ | सख्योः | सखिषु |

**विशेष**—(क) निम्नलिखित शब्दों के रूप प्र०, सं० और द्वि० में सखि के तुल्य चलते हैं और शेष विभक्तियों में हरि के तुल्य चलते हैं—सुसखि (शोभनः सखा, अच्छा मित्र), अतिसखि (अतिशयितः सखा, घनिष्ठ मित्र), परमसखि (परमः सखा यस्य, परमः सखा वा, श्रेष्ठ मित्र से युक्त या श्रेष्ठ मित्र)। अतिसखि (सखीमतिक्रान्तः, जिसने अपनी सखी को छोड़ दिया है) शब्द के रूप हरि के तुल्य चलते हैं।

**सूचना**—सखी शब्द ईकारान्त स्त्रीलिंग है और उसके रूप नदी के तुल्य चलते हैं।

**पति** (पति, स्वामी), पुंलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | पतिः | पती | पतयः |
| सं० | पते | पती | पतयः |
| द्वि० | पतिम् | पती | पतीन् |
| तृ० | पत्या | पतिभ्याम् | पतिभिः |
| च० | पत्ये | पतिभ्याम् | पतिभ्यः |
| पं० | पत्युः | पतिभ्याम् | पतिभ्यः |
| ष० | पत्युः | पत्योः | पतीनाम् |
| स० | पत्यौ | पत्योः | पतिषु |

**७३.** समस्त शब्द जिनके अन्त में पति शब्द होता है, जैसे भूपति आदि, उनके रूप हरि के तुल्य चलते हैं। प्रियत्रि (प्रियाः त्रयः यस्य यस्या वा) शब्द पुंलिंग के रूप हरि के तुल्य चलते हैं और स्त्रीलिंग में मति के तुल्य। इसके षष्ठी बहुवचन में दो रूप होते हैं—एक त्रि के तुल्य और दूसरा हरि या मति के तुल्य। जैसे—प्रियत्रीणाम्, प्रियत्रयाणाम्।

**७४. विशेष**—(क) औडुलोमि (उडुलोम्नः अपत्यं पुमान्, उडुलोमन् का पुत्र) शब्द के रूप एक० और द्वि० में हरि के तुल्य चलते हैं और बहु० में राम के तुल्य। बहुवचन में औडुलोमन् को उडुलोम हो जाता है।[1] जैसे—औडुलोमिः, औडुलोमी, उडुलोमाः इत्यादि।

---

१. **उडुलोमन्** (एक ऋषि का नाम) शब्द से अपत्य (सन्तान) अर्थ में **बाह्वादिभ्यश्च** (अष्टा० ४-१-९६) से इञ् (इ) प्रत्यय और **नस्तद्धिते** (अष्टा० ६-४-१४४) से लोमन् के अन् का लोप होकर औडुलोमि शब्द बनता है।

(ख) इस प्रकार के अन्य शब्द भी बहुवचन में मूल-शब्द हो जाते हैं। (देखो अष्टा० २-४-६२, ६३, ६५, ६६ और ४-१-१०५)। जैसे—गर्गस्य अपत्यं गार्ग्यः। इसके रूप चलेंगे—गार्ग्यः गार्ग्यौ, गर्गाः इत्यादि।

ईकारान्त, ऊकारान्त, पुंलिंग और स्त्रीलिंग शब्द

**७५.** नदी (नदी) स्त्री०, वधू (वधू) स्त्री०।

**नदी—स्त्रीलिंग**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | नदी | नद्यौ | नद्यः |
| सं० | नदि | नद्यौ | नद्यः |
| द्वि० | नदीम् | नद्यौ | नदीः |
| तृ० | नद्या | नदीभ्याम् | नदीभिः |
| च० | नद्यै | नदीभ्याम् | नदीभ्यः |
| पं० | नद्याः | नदीभ्याम् | नदीभ्यः |
| ष० | नद्याः | नद्योः | नदीनाम् |
| स० | नद्याम् | नद्योः | नदीषु |

सभी ईकारान्त स्त्रीलिंग शब्दों के रूप नदी के तुल्य चलेंगे।

(क) निम्नलिखित सात ईकारान्त स्त्रीलिंग शब्दों के प्रथमा एकवचन में विसर्ग (स्) का लोप नहीं होता है।[1] अवी (रजस्वला स्त्री), तन्त्री (वीणा), तरी (नौका), लक्ष्मी (सम्पत्ति), धी (बुद्धि), ह्री (लज्जा) और श्री (लक्ष्मी)। जैसे—अवीः, लक्ष्मीः, धीः आदि।

**वधू—स्त्रीलिंग**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | वधूः | वध्वौ | वध्वः |
| सं० | वधु | वध्वौ | वध्वः |
| द्वि० | वधूम् | वध्वौ | वधूः |
| तृ० | वध्वा | वधूभ्याम् | वधूभिः |
| च० | वध्वै | वधूभ्याम् | वधूभ्यः |
| पं० | वध्वाः | वधूभ्याम् | वधूभ्यः |

१. अवीतन्त्रीतरीलक्ष्मीधीह्रीश्रीणामुणादिषु। सप्तस्त्रीलिंगशब्दानां न सुलोपः कदाचन।

| | | | |
|---|---|---|---|
| ष० | वध्वा: | वध्वो: | वधूनाम् |
| स० | वध्वाम् | वध्वो: | वधूषु |

सभी ऊकारान्त स्त्रीलिंग शब्दों के रूप वधू के तुल्य चलते हैं। जैसे—श्वश्रू (सास), चमू (सेना), कर्कन्धू (बेर), कफेलू (कफ वाली स्त्री), यवागू (जौ या चावल के मांड की काँजी), चम्पू (गद्य-पद्यमिश्रित प्रबन्ध) इत्यादि। अतिचमू शब्द पुं० और स्त्री० के रूप चमू शब्द के तुल्य चलते हैं। पुंलिंग में द्वि० बहु० में अतिचमून् रूप होगा, शेष चमूवत्।

**७६.** ईकारान्त पुंलिंग शब्द :—

**वातप्रमी** (वातं प्रमिमीते असौ, वायु के तुल्य तीव्र दौड़ने वाला मृग। वात + प्रमा + ई, उणादि० ४-१)।

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | वातप्रमी: | वातप्रम्यौ | वातप्रम्य: |
| सं० | वातप्रमी: | वातप्रम्यौ | वातप्रम्य: |
| द्वि० | वातप्रमीम् | वातप्रम्यौ | वातप्रमीन् |
| तृ० | वातप्रम्या | वातप्रमीभ्याम् | वातप्रमीभि: |
| च० | वातप्रम्ये | वातप्रमीभ्याम् | वातप्रमीभ्य: |
| पं० | वातप्रम्य: | वातप्रमीभ्याम् | वातप्रमीभ्य: |
| ष० | वातप्रम्य: | वातप्रम्यो: | वातप्रम्याम् |
| स० | वातप्रमी | वातप्रम्यो: | वातप्रमीषु |

इसी प्रकार इन शब्दों के रूप चलेंगे—ययी (यान्ति अनेन इति, मार्ग या घोड़ा), पपी (पाति लोकम् इति, सूर्य)

**विशेष**—बहुश्रेयसी (बह्व्य: श्रेयस्यो यस्य स:, जिसकी बहुत-सी सुन्दर स्त्रियाँ हैं) पुंलिंग और अतिलक्ष्मी (लक्ष्मीम् अतिक्रान्त:, लक्ष्मी को अतिक्रमण करने वाला) पुंलिंग के रूप द्वि० बहु० को छोड़कर अन्यत्र नदी के तुल्य चलेंगे। द्वि० बहु० में बहुश्रेयसीन् और अतिलक्ष्मीन् रूप होंगे। अतिलक्ष्मी शब्द स्त्रीलिंग के रूप लक्ष्मी के तुल्य चलेंगे।

क्विप् प्रत्ययान्त वातप्रमी शब्द के रूप प्रधी के तुल्य चलेंगे।

**७७.** ईकारान्त और ऊकारान्त पुं०, स्त्री०, नपुं० धातुनिर्मित शब्द।

**सन्धि-नियम**—(क) धातु से क्विप् (०) प्रत्यय लगाकर बने हुए इका-

रान्त और ईकारान्त शब्दों को अजादि (स्वरों से प्रारम्भ होने वाले) प्रत्यय बाद में होने पर इ या ई को इय् हो जाता है और उकारान्त या ऊकारान्त शब्दों के उ या ऊ को उव् हो जाता है। भ्रू के ऊ को भी पूर्वोक्त स्थानों पर उव् हो जाता है।[१] पूर्वोक्त प्रकार के स्त्रीलिंग इकारान्त और ईकारान्त शब्दों के रूप च०, पं०, ष०, स० के एक० और ष० बहु० में नदी के तुल्य भी चलते हैं।

(ख) निम्नलिखित अवस्थाओं में इय्, उव् न होकर य् और व् होंगे—१. धातु अनेकाच् (अनेक स्वरों वाली) हो और उसके प्रारम्भ में संयुक्त अक्षर वाली धातु न हो।[२] २. यदि धातु-शब्द से पूर्व गतिसंज्ञक (अर्थात् धातु से पूर्व आने वाले उपसर्ग आदि) या कारक होगा तो य्, व् होंगे।[३] भू और सुधी शब्द में यह नियम नहीं लगेगा, अर्थात् इनको इय् और उव् ही होगा।[४]

धी—स्त्रीलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | धीः | धियौ | धियः |
| सं० | धीः | धियौ | धियः |
| द्वि० | धियम् | धियौ | धियः |
| तृ० | धिया | धीभ्याम् | धीभिः |
| च० | धियै, धिये | धीभ्याम् | धीभ्यः |
| पं० | धियाः, धियः | धीभ्याम् | धीभ्यः |
| ष० | धियाः, धियः | धियोः | धियाम्, धीनाम् |
| स० | धियाम्, धियि | धियोः | धीषु |

इसी प्रकार ह्री, श्री, सुश्री, सुधी, शुद्धधी, दुर्धी, भी, वृश्चिकभी आदि के रूप चलेंगे।

भू—स्त्रीलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | भूः | भुवौ | भुवः |
| सं० | भूः | भुवौ | भुवः |

१. अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ। (अष्टा० ६-४-७७)
२. एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य। (अष्टा० ६-४-८२), ओः सुपि (अष्टा० ६-४-८३)
३. गतिकारकेतरपूर्वपदस्य यण् नेष्यते। (वार्तिक, एरनेकाचो० सूत्र पर)
४. न भूसुधियोः। (अष्टा० ६-४-८५)

| | | | |
|---|---|---|---|
| द्वि० | भुवम् | भुवौ | भुवः |
| तृ० | भुवा | भूभ्याम् | भूभिः |
| च० | भुवै, भुवे | भूभ्याम् | भूभ्यः |
| पं० | भुवाः, भुवः | भूभ्याम् | भूभ्यः |
| ष० | भुवाः, भुवः | भुवोः | भुवाम्, भूनाम् |
| स० | भुवाम्, भुवि | भुवोः | भूषु |

इसी प्रकार सू, जू, सुभू, भ्रू, सुभ्रू आदि के रूप चलेंगे।

**प्रधी**—पुंलिंग (प्रकृष्टं ध्यायति)

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | प्रधीः | प्रध्यौ | प्रध्यः |
| सं० | प्रधी | प्रध्यौ | प्रध्यः |
| द्वि० | प्रध्यम् | प्रध्यौ | प्रध्यः |
| तृ० | प्रध्या | प्रधीभ्याम् | प्रधीभिः |
| च० | प्रध्ये | प्रधीभ्याम् | प्रधीभ्यः |
| पं० | प्रध्यः | प्रधीभ्याम् | प्रधीभ्यः |
| ष० | प्रध्यः | प्रध्योः | प्रध्याम् |
| स० | प्रध्यि | प्रध्योः | प्रधीषु |

इसी प्रकार इन शब्दों के रूप चलेंगे—वेगी (वेगम् इच्छति), जलपी, उन्नी, ग्रामणी, सेनानी आदि पुंलिंग और स्त्रीलिंग शब्द। जिन शब्दों के अन्त में नी धातु लगी हुई है, उनको सप्तमी एक० में आम् लगाकर रूप बनेगा।[1] जैसे—उन्न्याम्, ग्रामण्याम्, सेनान्याम् आदि।

**खलपू**—पुंलिंग (खलं पुनाति)

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | खलपूः | खलप्वौ | खलप्वः |
| सं० | खलपूः | खलप्वौ | खलप्वः |
| द्वि० | खलप्वम् | खलप्वौ | खलप्वः |
| तृ० | खलप्वा | खलपूभ्याम् | खलपूभिः |
| च० | खलप्वे | खलपूभ्याम् | खलपूभ्यः |

१. ङेराम्नद्याम्नीभ्यः (अष्टा० ७-३-११६)। ईकारान्त, ऊकारान्त स्त्रीलिंग शब्दों, आकारान्त (टाप् प्रत्यय वाले) शब्दों और नी शब्द के बाद के ङि (स० एक०) को आम् हो जाता है।

| | | | |
|---|---|---|---|
| पं० | खलप्व: | खलपूभ्याम् | खलपूभ्य: |
| ष० | खलप्व: | खलप्वो: | खलप्वाम् |
| स० | खलप्वि | खलप्वो: | खलपूषु |

इसी प्रकार इन शब्दों के रूप चलेंगे—सुलू (सुष्ठु लुनाति), दृम्भू (इन्द्र का वज्र या यम), करभू, पुनर्भू, वर्षाभू आदि पुंलिंग और स्त्रीलिंग शब्द।

**प्रधि**—नपुं० (वारिवत्)

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | प्रधि | प्रधिनी | प्रधीनि |
| सं० | प्रधि, प्रधे | प्रधिनी | प्रधीनि |
| द्वि० | प्रधि | प्रधिनी | प्रधीनि |
| तृ० | प्रध्या, प्रधिना | प्रधिभ्याम् | प्रधिभि: |

प्रधि के रूप वारि के तुल्य चलेंगे। अजादि विभक्तियों में पुंलिंग के तुल्य भी रूप चलेंगे।

खलपु[1]—नपुं० (मधुवत्)

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | खलपु | खलपुनी | खलपूनि |
| सं० | खलपु, खलपो | खलपुनी | खलपूनि |
| द्वि० | खलपु | खलपुनी | खलपूनि |
| तृ० | खलपुना, खलप्वा | खलपुभ्याम् | खलपुभि: |

खलपु के रूप मधु के तुल्य चलेंगे। अजादि विभक्तियों में पुंलिंग के तुल्य भी रूप चलेंगे।

**प्रधी**—पुं० और स्त्रीलिंग

(प्रकृष्टा धी:, स्त्रीलिंग, प्रकृष्टा धी: यस्या: यस्य वा, स्त्री०, पुं०) इसके रूप सं०, च०, पं० ष० और स० के एक० में तथा षष्ठी बहु० में नदी के तुल्य चलेंगे। शेष स्थानों पर प्रधी पुं० के तुल्य। जैसे—

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | प्रधी: | प्रध्यौ | प्रध्य: |
| सं० | प्रधि | प्रध्यौ | प्रध्य: |
| द्वि० | प्रध्यम् | प्रध्यौ | प्रध्य: |

---

१. ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य (अष्टा० १–२–४७)। नपुंसकलिंग में प्रातिपदिक (शब्द) के अन्तिम दीर्घ स्वर को ह्रस्व स्वर हो जाता है।

| | | | |
|---|---|---|---|
| तृ० | प्रध्या | प्रधीभ्याम् | प्रधीभिः |
| च० | प्रध्यै | प्रधीभ्याम् | प्रधीभ्यः |
| पं० | प्रध्याः | प्रधीभ्याम् | प्रधीभ्यः |
| ष० | प्रध्याः | प्रध्योः | प्रधीनाम् |
| स० | प्रध्याम् | प्रध्योः | प्रधीषु |

इसी प्रकार कुमारी (कुमारीम् इच्छतीति, कुमारीव आचरतीति वा) के रूप चलेंगे। इसका प्र० एक० में कुमारी रूप होगा, शेष प्रधीवत्।

**सुधी**—(सुष्ठु ध्यायति) पुंलिंग
(कैयट के अनुसार स्त्रीलिंग में भी)

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | सुधीः | सुधियौ | सुधियः |
| सं० | सुधीः | सुधियौ | सुधियः |
| द्वि० | सुधियम् | सुधियौ | सुधियः |
| तृ० | सुधिया | सुधीभ्याम् | सुधीभिः |
| च० | सुधिये | सुधीभ्याम् | सुधीभ्यः |
| पं० | सुधियः | सुधीभ्याम् | सुधीभ्यः |
| ष० | सुधियः | सुधियोः | सुधियाम् |
| स० | सुधियि | सुधियोः | सुधीषु |

इसी प्रकार सुश्री, शुद्धधी, परमधी, नी आदि के पुं० और स्त्रीलिंग में रूप चलेंगे। नी का स० एक० में नियाम् रूप होगा।

**स्वभू**—पुंलिंग (स्वेन भवति, स्वयं सत्ता वाला)

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | स्वभूः | स्वभुवौ | स्वभुवः |
| सं० | स्वभूः | स्वभुवौ | स्वभुवः |
| द्वि० | स्वभुवम् | स्वभुवौ | स्वभुवः |
| तृ० | स्वभुवा | स्वभूभ्याम् | स्वभूभिः |
| च० | स्वभुवे | स्वभूभ्याम् | स्वभूभ्यः |
| पं० | स्वभुवः | स्वभूभ्याम् | स्वभूभ्यः |
| ष० | स्वभुवः | स्वभुवोः | स्वभुवाम् |
| स० | स्वभुवि | स्वभुवोः | स्वभूषु |

इसी प्रकार स्वयंभू, परमलू (परमश्चासौ लूश्च), दृग्भू, काराभू आदि पुं० और स्त्री० शब्दों के रूप चलेंगे।

**सुधि**—नपुं०, वारिवत्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | सुधि | सुधिनी | सुधीनि |
| सं० | सुधे, सुधि | सुधिनी | सुधीनि |
| द्वि० | सुधि | सुधिनी | सुधीनि |
| तृ० | सुधिना, सुधिया | सुधिभ्याम् | सुधिभिः |

अजादि प्रत्ययों से पूर्व पुंलिग के तुल्य भी रूप चलेंगे। षष्ठी और स० द्वि० में सुधियोः, सुधिनोः।

**स्वभु**—नपुं०, मधुवत्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | स्वभु | स्वभुनी | स्वभूनि |
| सं० | स्वभो, स्वभु | स्वभुनी | स्वभूनि |
| द्वि० | स्वभु | स्वभुनी | स्वभूनि |
| तृ० | स्वभुवा, स्वभुना | स्वभुभ्याम् | स्वभुभिः |

अजादि प्रत्यय वाद में होंगे तो पुंलिग के तुल्य भी रूप चलेंगे।

**वर्षाभू**—स्त्रीलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | वर्षाभूः | वर्षाभ्वौ | वर्षाभ्वः |
| सं० | वर्षाभु | वर्षाभ्वौ | वर्षाभ्वः |
| द्वि० | वर्षाभ्वम् | वर्षाभ्वौ | वर्षाभूः |
| तृ० | वर्षाभ्वा | वर्षाभूभ्याम् | वर्षाभूभिः |
| च० | वर्षाभ्वै | वर्षाभूभ्याम् | वर्षाभूभ्यः |
| पं० | वर्षाभ्वाः | वर्षाभूभ्याम् | वर्षाभूभ्यः |
| ष० | वर्षाभ्वाः | वर्षाभ्वोः | वर्षाभूणाम् |
| स० | वर्षाभ्वाम् | वर्षाभ्वोः | वर्षाभूषु |

इसी प्रकार प्रसू, वीरसू, पुनर्भू (पुनर्विवाहिता विधवा) आदि के रूप चलेंगे।

**७८. सूचना**—सखी (सखायम् इच्छतीति), सखी (सह खेन वर्तते इति सखः, तमिच्छतीति), सुती (सुतम् इच्छीतीति), सुखी (सुखम् इच्छतीति),

लूनी (लूनम् इच्छतीति), क्षामी (क्षामम् इच्छतीति), प्रस्तीमी (प्रस्तीमम् इच्छतीति), इत्यादि।

सखी—(सखायम् इच्छतीति)

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | सखा | सखायौ | सखायः |
| सं० | सखीः | सखायौ | सखायः |
| द्वि० | सखायम् | सखायौ | सख्यः |
| तृ० | सख्या | सखीभ्याम् | सखीभिः |
| च० | सख्ये | सखीभ्याम् | सखीभ्यः |
| पं० | सख्युः | सखीभ्याम् | सखीभ्यः |
| ष० | सख्युः | सख्योः | सख्याम् |
| स० | सख्यि | सख्योः | सखीषु |

सखी (सखम् इच्छतीति)

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | सखीः | सख्यौ | सख्यः |
| सं० | सखीः | सख्यौ | सख्यः |
| द्वि० | सख्यम् | सख्यौ | सख्यः |

शेष रूप पूर्वोक्त सखी के तुल्य। इसी प्रकार सुखी, सुती, लूनी, क्षामी, प्रस्तीमी आदि के रूप चलेंगे।

शुष्की, पक्वी आदि के रूप सुधी के तुल्य चलेंगे।

७६. **स्त्री** (स्त्री)—स्त्रीलिंग[1]

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | स्त्री | स्त्रियौ | स्त्रियः |
| सं० | स्त्रि | स्त्रियौ | स्त्रियः |
| द्वि० | स्त्रियम्, स्त्रीम् | स्त्रियौ | स्त्रियः, स्त्रीः |
| तृ० | स्त्रिया | स्त्रीभ्याम् | स्त्रीभिः |
| च० | स्त्रियै | स्त्रीभ्याम् | स्त्रीभ्यः |
| पं० | स्त्रियाः | स्त्रीभ्याम् | स्त्रीभ्यः |
| ष० | स्त्रियाः | स्त्रियोः | स्त्रीणाम् |
| स० | स्त्रियाम् | स्त्रियोः | स्त्रीषु |

१. स्त्रियाः (अष्टा० ६-४-७९)। वाम्शसोः (अष्टा० ६-४-८०)

सूचना—अतिस्त्रि—पुं०, स्त्री०, नपुं० है।

अतिस्त्रि—पुंलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | अतिस्त्रिः | अतिस्त्रियौ | अतिस्त्रियः |
| सं० | अतिस्त्रे | अतिस्त्रियौ | अतिस्त्रियः |
| द्वि० | अतिस्त्रियम्, अतिस्त्रिम् | अतिस्त्रियौ | अतिस्त्रियः, अतिस्त्रीन् |
| तृ० | अतिस्त्रिणा | अतिस्त्रिभ्याम् | अतिस्त्रिभिः |
| च० | अतिस्त्रये | अतिस्त्रिभ्याम् | अतिस्त्रिभ्यः |
| पं० | अतिस्त्रेः | अतिस्त्रिभ्याम् | अतिस्त्रिभ्यः |
| ष० | ,, | अतिस्त्रियोः | अतिस्त्रीणाम् |
| स० | अतिस्त्रौ | अतिस्त्रियोः | अतिस्त्रिषु |

अतिस्त्रि—स्त्रीलिंग

अतिस्त्रि के रूप निम्नलिखित स्थानों को छोड़कर पुंलिंग के तुल्य चलेंगे। द्वि० बहु० अतिस्त्रियः, अतिस्त्रीः, तृ० एक० अतिस्त्रिया, च० एक० अतिस्त्रियै-अतिस्त्रिये, पं० एक० अतिस्त्रियाः-अतिस्त्रेः, ष० एक० अतिस्त्रियाः-अतिस्त्रेः, स० एक० अतिस्त्रियाम्-अतिस्त्रौ।

अतिस्त्रि—नपुंसक०

इसके रूप शुचि के तुल्य चलेंगे, केवल षष्ठी और सप्तमी के द्वि० में अतिस्त्रियोः—अतिस्त्रिणोः रूप होंगे।

८०. ऊकारान्त पुंलिंग शब्द, जो कि धातुज नहीं हैं। जैसे—

हूहू—(एक गन्धर्व का नाम)

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | हूहूः | हूह्वौ | हूह्वः |
| सं० | हूहूः | हूह्वौ | हूह्वः |
| द्वि० | हूहूम् | हूह्वौ | हूहून् |
| तृ० | हूह्वा | हूहूभ्याम् | हूहूभिः |
| च० | हूह्वे | हूहूभ्याम् | हूहूभ्यः |
| पं० | हूह्वः | हूहूभ्याम् | हूहूभ्यः |
| ष० | हूह्वः | हूह्वोः | हूह्वाम् |
| स० | हूह्वि | हूह्वोः | हूहूषु |

इसी प्रकार दृम्भू (दृम्भति इति, ग्रन्थ आदि बाँधने वाला) के रूप चलेंगे।

## ऋकारान्त पुं०, स्त्री० और नपुं० शब्द

८. धातु से तृ (तृच्, अष्टा० ३-१-१३३ और तृन्, अष्टा० ३-२-१३५) प्रत्यय लगाकर बने हुए शब्द जैसे—कर्तृ (करने वाला) आदि तथा स्वसृ (स्त्रीलिंग), नप्तृ, नेष्टृ, त्वष्टृ, क्षत्तृ, होतृ, पोतृ, प्रशास्तृ और उद्गातृ शब्दों को प्रथमा एक० में ऋ के स्थान पर आ हो जाता है और प्रथम पाँच विभक्तियों में ऋ को आर् हो जाता है।[1] द्वि० और षष्ठी बहु० में ऋ को दीर्घ ॠ हो जाता है। पं० और ष० एक० में ऋ को उर् हो जाता है। संबोधन एक० में ऋ का अर् (अः) हो जाता है।

### धातृ (प्रजापति)—पुंलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | धाता | धातारौ | धातारः |
| सं० | धातः | धातारौ | धातारः |
| द्वि० | धातारम् | धातारौ | धातॄन् |
| तृ० | धात्रा | धातृभ्याम् | धातृभिः |
| च० | धात्रे | धातृभ्याम् | धातृभ्यः |
| पं० | धातुः | धातृभ्याम् | धातृभ्यः |
| ष० | धातुः | धात्रोः | धातॄणाम् |
| स० | धातरि | धात्रोः | धातृषु |

इसी प्रकार कर्तृ, नेतृ, नप्तृ, प्रशास्तृ, उद्गातृ आदि के रूप चलेंगे।

### धातृ—नपुंसक०

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | धातृ | धातृणी | धातॄणि |
| सं० | धातः, धातृ | धातृणी | धातॄणि |
| द्वि० | धातृ | धातृणी | धातॄणि |
| तृ० | धात्रा, धातृणा | धातृभ्याम् | धातृभिः |
| च० | धात्रे, धातृणे | धातृभ्याम् | धातृभ्यः |
| पं० | धातुः, धातृणः | धातृभ्याम् | धातृभ्यः |

---

१. अप्तृन्तृच्स्वसृनप्तृनेष्टृत्वष्टृक्षत्तृहोतृपोतृप्रशास्तॄणाम्। (अष्टा० ६-४-११)। उद्गातृशब्दस्य भवत्येव समर्थसूत्रे 'उद्गातारः' इति भाष्यप्रयोगात्। (सिद्धान्तकौमुदी)

| | | | |
|---|---|---|---|
| प० | धातुः, धातृणः | धात्रोः, धातृणोः | धातॄणाम् |
| स० | धातरि | धात्रोः, धातृणोः | धातृषु |

इसी प्रकार कर्तृ, नेतृ, ज्ञातृ आदि के रूप चलेंगे।

स्वसृ आदि स्त्रीलिंग शब्दों के रूप धातृ के तुल्य चलेंगे। केवल द्वि० बहु० में स्वसृः आदि रूप बनेंगे। आगे देखिए।

**८२.** सम्बन्ध-बोधक शब्द पितृ (पुं०, पिता), मातृ (स्त्री०, माता), देवृ (पुं०, देवर) आदि शब्दों को प्रथमा द्विवचन, बहु० और द्वितीया एक० द्विवचन में ऋ के स्थान पर आर् न होकर अर् होता है। निम्नलिखित शब्दों में प्रथम पाँच विभक्तियों में आर् ही होता है—नप्तृ (नाती), भर्तृ (पति), स्वसृ (बहिन), शंस्तृ (प्रशंसक) (उणादि०२-९२), नृ (मनुष्य) (उणादि० २-९८), सव्येष्टृ (सारथि)।

जैसे—

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | पिता | पितरौ | पितरः |
| सं० | पितः | पितरौ | पितरः |
| द्वि० | पितरम् | पितरौ | पितॄन् |

शेष धातृवत्।

इसी प्रकार भ्रातृ, जामातृ, देवृ, शंस्तृ, सव्येष्टृ और नृ के रूप चलेंगे। नृ के षष्ठी बहु० में दो रूप होते हैं—नृणाम्, नॄणाम्।[1]

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | माता | मातरौ | मातरः |
| सं० | मातः | मातरौ | मातरः |
| द्वि० | मातरम् | मातरौ | मातॄः |

शेष स्वसृवत्।

इसी प्रकार यातृ (देवरानी), दुहितृ (पुत्री), और ननान्दृ या ननन्दृ (ननंद, पति की बहन) के रूप चलेंगे।[2]

---

१. **नृ च (अष्टा० ६-४-९)। नृ इत्येतस्य नामि वा दीर्घः स्यात्। (सि० कौ०)**

२. **नञ्जि च नन्देः** (उणादि० २-९७)। **न नन्दति ननान्दा। इह वृद्धिर्नानुवर्तते इत्येके। 'ननान्दा तु स्वसा पत्युर्ननन्दा नन्दिनी च सा' इति शब्दार्णवः। (सि० कौ०)**

**८३.** क्रोष्टु (गीदड़) शब्द के रूप ऋकारान्त क्रोष्टृ शब्द के तुल्य चलते हैं। प्रथम पाँच विभक्तियों में ऋकारान्त के ही रूप चलते हैं। तृ० एक० से लेकर आगे की अजादि विभक्तियों में विकल्प से ऋकारान्त के तुल्य रूप चलेंगे। षष्ठी बहु० में क्रोष्टु शब्द ही रहेगा।[1] जैसे—

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | क्रोष्टा | क्रोष्टारौ | क्रोष्टारः |
| सं० | क्रोष्टो | क्रोष्टारौ | क्रोष्टारः |
| द्वि० | क्रोष्टारम् | क्रोष्टारौ | क्रोष्टून् |
| तृ० | क्रोष्ट्रा, क्रोष्टुना | क्रोष्टुभ्याम् | क्रोष्टुभिः |
| च० | क्रोष्ट्रे, क्रोष्टवे | क्रोष्टुभ्याम् | क्रोष्टुभ्यः |
| पं० | क्रोष्टुः, क्रोष्टोः | क्रोष्टुभ्याम् | क्रोष्टुभ्यः |
| ष० | क्रोष्टुः, क्रोष्टोः | क्रोष्ट्रोः, क्रोष्ट्वोः | क्रोष्टूनाम् |
| स० | क्रोष्टरि, क्रोष्टौ | क्रोष्ट्रोः, क्रोष्ट्वोः | क्रोष्टुषु |

(क) क्रोष्टु शब्द को स्त्रीलिंग में भी क्रोष्टृ हो जाता है (स्त्रियां च, अष्टा० ७-१-९६)। उससे स्त्रीलिंगबोधक ङीप् (ई) प्रत्यय होने पर क्रोष्ट्री शब्द हो जाता है। इसके रूप नदी के तुल्य चलेंगे।

**सूचना**—प्रियक्रोष्टु नपुं० के रूप मधु के तुल्य चलेंगे। तृतीया से लेकर आगे की अजादि विभक्तियों में क्रोष्टु पुंलिंग के तुल्य भी रूप चलेंगे। जैसे—च० एक० में प्रियक्रोष्ट्रे, प्रियक्रोष्टवे, प्रियक्रोष्टुने।

### ॠकारान्त और ऌकारान्त शब्द

**८४.** वस्तुतः ॠकारान्त और ऌकारान्त शब्द नहीं हैं। अतएव कॄ, तॄ, गम्ऌ और शक्ऌ धातुओं के अनुकरणमूलक शब्द मानकर ॠकारान्त और ऌकारान्त शब्दों के रूप दिखाये गये हैं कि इनके रूप इस प्रकार चलेंगे।

कॄ—पुंलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | कीः, कॄः | किरौ, क्रौ | किरः, क्रः |
| सं० | कीः, कॄः | किरौ, क्रौ | किरः, क्रः |

1. तृज्वत्क्रोष्टुः (अष्टा० ७-१-९५)। विभाषा तृतीयादिष्वचि (अष्टा० ७-१-९७)

| द्वि० | किरम्, कॄम् | किरौ, क्रौ | किरः, कॄन् |
|---|---|---|---|
| तृ० | किरा, क्रा | कीर्भ्याम्, कॄभ्याम् | कीर्भिः, कॄभिः |
| च० | किरे, क्रे | कीर्भ्याम्, कॄभ्याम् | कीर्भ्यः, कॄभ्यः |
| पं० | किरः, क्रः | कीर्भ्याम्, कॄभ्याम् | कीर्भ्यः कॄभ्यः |
| ष० | किरः, क्रः | किरोः, क्रोः | किराम्, क्राम् |
| स० | किरि, क्रि | किरोः, क्रोः | कीर्षु, कॄषु |

इसी प्रकार तॄ के रूप चलेंगे।

गम्लॄ—पुंलिंग

| प्र० | गमा | गमलौ | गमलः |
|---|---|---|---|
| सं० | गमल् | गमलौ | गमलः |
| द्वि० | गमलम् | गमलौ | गमॄन् |
| तृ० | गम्ला | गम्लॄभ्याम् | गम्लॄभिः |
| च० | गम्ले | गम्लॄभ्याम् | गम्लॄभ्यः |
| पं० | गमुल् | गम्लॄभ्याम् | गम्लॄभ्यः |
| ष० | गमुल् | गम्लोः | गमॄणाम् |
| स० | गमलि | गम्लोः | गम्लॄषु |

इसी प्रकार शक्लॄ के रूप चलेंगे।

**एकारान्त** और **ऐकारान्त शब्द**

**८५.** एकारान्त और ऐकारान्त शब्दों में विभक्तियाँ जोड़ दी जाती हैं और सन्धि-नियम लगते हैं।

**से** (सह इना कामेन वर्ततेऽसौ)

| प्र० | सेः | सयौ | सयः |
|---|---|---|---|
| सं० | से[1] | सयौ | सयः |

१. सिद्धान्तकौमुदी में इस रूप का स्पष्टतया उल्लेख नहीं है। जिस प्रकार रै, गो, स्मृतो आदि शब्दों के प्रथमा के रूप देकर शेष छोड़ दिया है, उसी प्रकार से शब्द के भी प्रथमा के ही रूप दिये गये हैं। इसका अभिप्राय यह है कि सम्बोधन के रूप भी प्रथमा के तुल्य ही होंगे। किन्तु यहाँ पर एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धेः (अष्टा० ६-१-६९) (एङन्ताद् ह्रस्वान्ताच्च अङ्गाद् हल् लुप्यते सम्बुद्धेः चेत्, सिद्धान्तकौमुदी) सूत्र लगने से स् का लोप होकर 'से' रूप ही बनेगा।

| | | | |
|---|---|---|---|
| द्वि० | सयम् | सयौ | सयः |
| तृ० | सया | सेभ्याम् | सेभिः |
| च० | सये | सेभ्याम् | सेभ्यः |
| पं० | सेः | सेभ्याम् | सेभ्यः |
| ष० | सेः | सयोः | सयाम् |
| स० | सयि | सयोः | सेषु |

इसी प्रकार स्मृते (स्मृतः इः येन, जिसने कामदेव का स्मरण किया है) के रूप चलेंगे।

रै (धन)--पुं०, स्त्री०

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | राः | रायौ | रायः |
| सं० | राः | रायौ | रायः |
| द्वि० | रायम् | रायौ | रायः |
| तृ० | राया | राभ्याम् | राभिः |
| च० | राये | राभ्याम् | राभ्यः |
| पं० | रायः | राभ्याम् | राभ्यः |
| ष० | रायः | रायोः | रायाम् |
| स० | रायि | रायोः | रासु |

नपुंसक लिंग में प्ररै को प्ररि हो जाता है।(प्रकृष्टा रै यस्य तत्)। रै को एच इग्घ्रस्वादेशे (अष्टा० १-१-४८) तथा ह्रस्वो नपुंसके० (अष्टा० १-२-४७) से रि हो जाता है। प्ररि के रूप हलादि (व्यंजन से प्रारम्भ होने वाले ) विभक्तियों में रै पुं०, स्त्री० के तुल्य चलेंगे और शेष स्थानों पर वारि के तुल्य।

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | प्ररि | प्ररिणी | प्ररीणि |
| द्वि० | प्ररि | प्ररिणी | प्ररीणि |
| तृ०, इत्यादि | प्ररिणा | प्रराभ्याम् | प्रराभिः |

**ओकारान्त और औकारान्त शब्द**

**८६.** ओकारान्त शब्दों के ओ के स्थान पर प्रथम पाँच विभक्तियों में (द्वितीया एक० को छोड़कर) औ हो जाता है। द्वितीया एक० और द्वितीया बहु० में ओ को आ हो जाता है।[1] औकारान्त शब्दों के रूप सामान्यतया चलेंगे।

१. गोतो णित् (अष्टा० ७-१-९०)। औतोऽम्शसोः (अष्टा० ६-१-९३)

गो (बैल, गाय)—पुंलिंग और स्त्रीलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | गौः | गावौ | गावः |
| सं० | गौः | गावौ | गावः |
| द्वि० | गाम् | गावौ | गाः |
| तृ० | गवा | गोभ्याम् | गोभिः |
| च० | गवे | गोभ्याम् | गोभ्यः |
| पं० | गोः | गोभ्याम् | गोभ्यः |
| ष० | गोः | गवोः | गवाम् |
| स० | गवि | गवोः | गोषु |

इसी प्रकार स्मृतो (स्मृतः उः शंकरः येन) और द्यो (आकाश, स्त्रीलिंग) के रूप चलेंगे। नपुंसकलिंग प्रद्यो (प्रकृष्टा द्यौः यस्मिन् तत्) का प्रद्यु हो जाता है और इसके रूप मधु के तुल्य चलेंगे।

ग्लौ (चन्द्रमा)—पुंलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | ग्लौः | ग्लावौ | ग्लावः |
| सं० | ग्लौः | ग्लावौ | ग्लावः |
| द्वि० | ग्लावम् | ग्लावौ | ग्लावः |
| तृ० | ग्लावा | ग्लौभ्याम् | ग्लौभिः |
| च० | ग्लावे | ग्लौभ्याम् | ग्लौभ्यः |
| पं० | ग्लावः | ग्लौभ्याम् | ग्लौभ्यः |
| ष० | ग्लावः | ग्लावोः | ग्लावाम् |
| स० | ग्लावि | ग्लावोः | ग्लौषु |

इसी प्रकार नौ (स्त्रीलिंग, नाव, जहाज) के रूप चलेंगे। नपुंसकलिंग सुनौ (सुष्ठु नौः यस्मिन्) का सुनु हो जाता है और इसके रूप मधु के तुल्य चलेंगे।

## भाग २

## हलन्त (व्यंजनान्त) शब्द.

८७. हलन्त शब्दों में इस प्रकार के शब्द आते हैं—अन्त में वर्ग के प्रथम चार वर्णों में से कोई एक वर्ण वाला, ण्, र्, ल्, श्, ष्, स् और ह् अन्त वाले

शब्द। हलन्त शब्दों में प्रायः विभक्तियाँ जोड़ दी जाती हैं और सन्धि-नियमों का प्रयोग किया जाता है।

८८. र्, ल् और ण् अन्त वाले शब्द।

८९. (क) ल् के बाद सप्तमी बहु० के सु को षु हो जाता है।

(ख) ल् और सु के बीच में विकल्प से ट् भी जुड़ जाता है। इस ट् को ठ् भी विकल्प से होता है।

कमल्—पुं०, स्त्री०, नपुं०

(कमलं कमलां वा आचक्षाणाः, आचक्षाणा, आचक्षाणं वा, कमल या लक्ष्मी का कथन करना)

**कमल्**—पुं० और स्त्री०

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | कमल्[1] | कमलौ | कमलः |
| सं० | कमल् | कमलौ | कमलः |
| द्वि० | कमलम् | कमलौ | कमलः |
| तृ० | कमला | कमल्भ्याम् | कमल्भिः |
| च० | कमले | कमल्भ्याम् | कमल्भ्यः |
| पं० | कमलः | कमल्भ्याम् | कमल्भ्यः |
| ष० | कमलः | कमलोः | कमलाम् |
| स० | कमलि | कमलोः | कमल्षु |

इसी प्रकार इन शब्दों के रूप चलेंगे—सुगण्, सुगाण् (पुं० और स्त्री०, गिनने में चतुर व्यक्ति), द्वार् (स्त्री०, द्वार) और र् या ल् अन्त वाले अन्य शब्द। सुगण् के सप्तमी बहु० में रूप होते हैं—सुगण्सु, सुगण्ट्सु, सुगण्ठ्सु। द्वार् का प्र० एक० में द्वाः रूप होता है।

कमल्—नपुं०

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र०, सं०, द्वि० | कमल् | कमली | कमलि |

शेष पुंलिंग के तुल्य।

इसी प्रकार सुगण्, वार् तथा अन्य ण्, र् या ल् अन्त वाले शब्दों के रूप चलेंगे। जैसे—

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र०, द्वि० | वाः | वारी | वारि |

[1] देखो नियम ९१ क।

| | | | |
|---|---|---|---|
| तृ० | वारा | वार्भ्याम् | वार्भिः |
| स० | वारि | वारोः | वार्षु |

९०. शब्द जिनके अन्त में ये वर्ण हैं—क्, ख्, ग्, घ्, ट्, ठ्, ड्, ढ्, त्, थ्, द्, ध् और प्, फ्, ब्, भ् ।

९१. (क) सामान्यतया प्र० एक० के स् का लोप हो जाता है। यदि अन्त में संयुक्त वर्ण होते हैं तो उनमें से पहला रह जाता है और अन्तिम हट जाता है।

(ख) यदि पद का अन्तिम वर्ण है तो अन्तिम वर्ण को अपने वर्ग का पहला या तीसरा वर्ण हो जाता है। यदि कोमल (Soft) व्यंजन बाद में होगा तो अपने वर्ग का तृतीय वर्ण होगा और यदि कठोर (Hard) वर्ण बाद में होगा तो अपने वर्ग का प्रथम वर्ण होगा। अजादि विभक्तियाँ बाद में होंगी तो कोई परिवर्तन नहीं होगा।

(ग) नपुंसकलिंग में झलन्त (वर्ग के १ से ४, श्, ष्, स् अन्त वाले) शब्दों में प्र० और द्वितीया वहु० में इ से पूर्व न् और जुड़ जाता है।[1] यदि यङ्लुगन्त शब्द होगा तो उसमें न् नहीं लगेगा।

९२. उदाहरण—

**समिध्** (समिधा) स्त्री०

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र०, सं० | समित् | समिधौ | समिधः |
| द्वि० | समिधम् | समिधौ | समिधः |
| तृ० | समिधा | समिद्भ्याम् | समिद्भिः |
| च० | समिधे | समिद्भ्याम् | समिद्भ्यः |
| पं० | समिधः | समिद्भ्याम् | समिद्भ्यः |
| ष० | समिधः | समिधोः | समिधाम् |
| स० | समिधि | समिधोः | समित्सु |

सुसमिध्—नपुं० (शोभनाः समिधः यस्मिन्)

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र०, सं०, द्वि० | सुसमित् | सुसमिधी | सुसमिन्धि |

शेष समिध् (स्त्री०) के तुल्य।

---

१. **नपुंसकस्य झलचः** (अष्टा० ७-१-७२)

इसी प्रकार इन शब्दों के रूप चलेंगे—सर्वशक्, चित्रलिख्, भूभृत्, मरुत्, सरित्, हरित्, विश्वजित्, अग्निमथ्, तमोनुद्, दृषद्, शरद्, बेभिद्, चेच्छिद्, युयुध्, क्षुध्, गुप्, ककुभ् आदि । जैसे—

| | प्र० एक० | प्र० द्वि० | तृ० द्वि० | स० बहु० |
|---|---|---|---|---|
| सर्वशक् | सर्वशक्-ग् | सर्वशकौ | सर्वशग्भ्याम् | सर्वशक्षु |
| चित्रलिख् | चित्रलिक्-ग् | चित्रलिखौ | चित्रलिग्भ्याम् | चित्रलिक्षु |
| भूभृत् | भूभृत्-द् | भूभृतौ | भूभृद्भ्याम् | भूभृत्सु |
| अग्निमथ् | अग्निमत्-द् | अग्निमथौ | अग्निमद्भ्याम् | अग्निमत्सु |
| तमोनुद् | तमोनुत्-द् | तमोनुदौ | तमोनुद्भ्याम् | तमोनुत्सु |
| गुप् | गुप्-ब् | गुपौ | गुब्भ्याम् | गुप्सु |

नपुंसकलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र०, सं०, द्वितीया | सर्वशक् | सर्वशकी | सर्वशङ्कि |
| प्र०, सं०, द्वितीया | हरित् | हरिती | हरिन्ति |
| प्र०, सं०, द्वितीया | सुयुत् | सुयुधी | सुयुन्धि |
| प्र०, सं०, द्वितीया | अग्निमत् | अग्निमथी | अग्निमन्थि |
| प्र०, सं०, द्वितीया | तमोनुद् | तमोनुदी | तमोनुन्दि |
| प्र०, सं०, द्वितीया | बेभिद् | बेभिदी | बेभिदि |

इसी प्रकार चेच्छिदि प्र०, सं०, द्वि० के बहु० में बनेगा। शेष रूप पुंलिंग के तुल्य चलेंगे।

**९३.** शब्द जिनके अन्त में ये वर्ण हैं—च्, छ्, ज्, झ्, श्, ष्, ह्।

**९४.** (क) च् और ज् को क् हो जाता है, यदि बाद में कुछ न हो या कठोर व्यंजन हो। यदि कोमल व्यंजन बाद में होगा तो च् और ज् को ग् होगा।[1]

(ख) व्रश्च्, भ्रस्ज्, सृज्, मृज्, यज्, राज्, भ्राज् और छ् या श् अन्त वाले धातुज शब्दों के अन्तिम अक्षर के स्थान पर ष् हो जाता है, पदान्त में और बाद में झल् (वर्ग के १ से ४, श्, ष्, स्, ह्) हो तो।[2] पद के अन्त में इस ष् को

१. चोः कुः (अष्टा० ८-२-३०)

२. व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः (अष्टा० ८-२-३६)

ट् या ड् हो जाते हैं और कोमल व्यंजन बाद में हो तो इस ष् को ड् होता है। परिव्राज् के ज् को भी ट्, ड् होते हैं।

(ग) किन्तु इन धातुज शब्दों के श् को क् हो जाता है--दिश्, दृश्, स्पृश् और मृश्। दधृष् (साहसी पुरुष) के ष् को और क्ष् अन्त वाले विपक्ष् आदि शब्दों के क्ष् को क् हो जाता है। नश् धातु के श् को ट् और क् दोनों होते हैं। तक्ष् और गोरक्ष् के क्ष् को भी ट् और क् होते हैं। ऋत्विज् के ज् को क् हो जाता है।

(घ) सप्तमी बहु० में ट् और सु के बीच में विकल्प से त् भी होता है।

(ङ) अजादि विभक्तियाँ बाद में होने पर अन्तिम छ् को विकल्प से श् हो जाता है।

**९५.** (क) शब्द के अन्तिम ह् को ढ् हो जाता है, पदान्त में या बाद में झल् (वर्ग के १, २, ३, ४, श, ष, स, ह) हो तो।[1] (ख) दकारादि धातुओं के ह् को घ् हो जाता है, पूर्वोक्त स्थितियों में।[2] (ग) द्रुह्, मुह्, स्नुह् और स्निह् के ह् को ढ् और घ् दोनों होते हैं, पूर्वोक्त स्थितियों में।[3] (घ) नह् के ह् को ध् होता है, पूर्वोक्त स्थितियों में।[4]

(ङ) उष्णिह् (स्त्री०, एक छन्द) के ह् को क् हो जाता है, खर् (कठोर व्यंजन) बाद में हो तो और हश् (कोमल व्यंजन) बाद में हो तो ग् हो जाता है। (ऋत्विग्दधृक्० ३-२-५९)

**९६.** एक स्वर वाली झषन्त (अन्त में वर्ग के चतुर्थ अक्षर वाली) और बश् (ज् को छोड़कर वर्ग के तृतीय अक्षर) आदि वाली धातु (या धातुज शब्द) के ब् को भ्, ग् को घ् और द् को ध् हो जाता है, पद के अन्त (अर्थात् सु, भ्याम्, भिः, भ्यः) में, अथवा बाद में स् या ध्व हो तो।[5]

**९७.** उदाहरण--वाच् (स्त्री०, वाणी), राज् (चमकना), मुह् (बेहोश होना) आदि।

---

१. हो ढः (८-२-३१)
२. दादेर्धातोर्घः (८-२-३२)
३. वा द्रुहमुहष्णुहष्णिहाम् (८-२-३३)
४. नहो धः (८-२-३४)
५. एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः (८-२-३७)

**वाच्**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र०, सं० | वाक् | वाचौ | वाचः |
| द्वि० | वाचम् | वाचौ | वाचः |
| तृ० | वाचा | वाग्भ्याम् | वाग्भिः |
| च० | वाचे | वाग्भ्याम् | वाग्भ्यः |
| पं० | वाचः | वाग्भ्याम् | वाग्भ्यः |
| ष० | वाचः | वाचोः | वाचाम् |
| स० | वाचि | वाचोः | वाक्षु |

इसी प्रकार इन शब्दों के रूप चलेंगे—पयोमुच्, ऋत्विज्, भिषज्, रुज्, स्रज्, सुयुज्, विभ्राज्[1], दिश्, दृश् तथा दृश् अन्त वाले अन्य शब्द, स्पृश्, दधृष्, उष्णिह्, विपक्ष्, विचक्ष्, दिधक्ष्, विविक्ष् तथा च् और ज् अन्त वाले शब्द।

**राज्**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र०, सं० | राट्, राड् | राजौ | राजः |
| द्वि० | राजम् | राजौ | राजः |
| तृ० | राजा | राड्भ्याम् | राड्भिः |
| च० | राजे | राड्भ्याम् | राड्भ्यः |
| प० | राजः | राड्भ्याम् | राड्भ्यः |
| ष० | राजः | राजोः | राजाम् |
| स० | राजि | राजोः | राट्सु, राट्त्सु |

इसी प्रकार इन शब्दों के रूप चलेंगे—सुवृश्च्, सर्वप्राश्, भृज्ज्, विश्वसृज्, सम्राज्, परिव्राज्, परिमृज्, देवेज्, विभ्राज्, (सूर्य), विष्, प्राश्, त्विष्, द्विष्, मुष्, प्रावृष्, लिह्, प्रच्छ् तथा छ्, श्, ष्, और ह् अन्त वाले धातुज शब्द।

उदाहरण—

| | प्र० एक० | प्र० द्विव० | तृ० द्विव० | स० बहु० |
|---|---|---|---|---|
| पयोमुच् | पयोमुक्[2] | पयोमुचौ | पयोमुग्भ्याम् | पयोमुक्षु |

१. एज् आदि के साथ पठित भ्राज् धातु को क्, ग् होते हैं। यह भ्राज् शब्द भ्राज् धातु से बना है और एज् आदि के साथ पठित है। यस्तु एजृ भ्रेजृ-भ्राजृ दीप्ताविति तस्य कुत्वमेव (सिद्धान्तकौमुदी)। दूसरा विभ्राज् शब्द टुभ्राजृ दीप्तौ धातु जो फणादि गण में है, उससे बना है। उसको ट्, ड् होते हैं।

२. आगे केवल प्रथम वर्ण वाला रूप दिया जाएगा। ऐसे स्थानों पर तृतीय वर्ण वाला रूप स्वयं समझ लेना चाहिए।

| | प्र० एक० | प्र० द्विव० | तृ० द्विव० | स० बहु० |
|---|---|---|---|---|
| भिषज् | भिषक् | भिषजौ | भिषग्भ्याम् | भिषक्षु |
| स्रज् | स्रक् | स्रजौ | स्रग्भ्याम् | स्रक्षु |
| दृश् | दृक् | दृशौ | दृग्भ्याम् | दृक्षु |
| दधृष् | दधृक् | दधृषौ | दधृग्भ्याम् | दधृक्षु |
| उष्णिह् | उष्णिक् | उष्णिहौ | उष्णिग्भ्याम् | उष्णिक्षु |
| विविक्ष् | विविक् | विविक्षौ | विविग्भ्याम् | विविक्षु |

---

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| सुवृश्च् | सुवृट्-ड् | सुवृश्चौ | सुवृड्भ्याम् | सुवृट्सु-ट्त्सु |
| सर्वप्राच्छ्-श् | सर्वप्राट् | सर्वप्राच्छौ-शौ | सर्वप्राड्भ्याम् | सर्वप्राट्सु-ट्त्सु |
| भृज्ज् | भृट् | भृज्जौ | भृड्भ्याम् | भृट्सु-ट्त्सु |
| विश्वसृज् | विश्वसृट् | विश्वसृजौ | विश्वसृड्भ्याम् | विश्वसृट्सु-ट्त्सु |
| देवेज् | देवेट् | देवेजौ | देवेड्भ्याम् | देवेट्सु-ट्त्सु |
| विश् | विट् | विशौ | विड्भ्याम् | विट्सु-ट्त्सु |
| त्विष् | त्विट् | त्विषौ | त्विड्भ्याम् | त्विट्सु-ट्त्सु |
| प्रच्छ् | प्रट् | प्रच्छौ | प्रड्भ्याम् | प्रट्सु-टत्सु |
| लिह् | लिट् | लिहौ | लिड्भ्याम् | लिट्सु-ट्त्सु |

अनियमित चलने वाले शब्द :—

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र०, सं०, युज्— | युङ् | युञ्जौ | युञ्जः |
| द्वि० | युञ्जम् | युञ्जौ | युजः |

शेष सुयुज् के तुल्य।

## मुह्—पुंलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र०, सं० | मुक्, मुट् | मुहौ | मुहः |
| द्वि० | मुहम् | मुहौ | मुहः |
| तृ० | मुहा | मुग्भ्याम्, मुड्भ्याम् | मुग्भिः, मुड्भिः |
| च० | मुहे | मुग्भ्याम्, मुड्भ्याम् | मुग्भ्यः, मुड्भ्यः |

| | | | |
|---|---|---|---|
| पं० | मुहः | मुग्भ्याम्, मुड्भ्याम् | मुग्भ्यः, मुड्भ्यः |
| प० | मुहः | मुहोः | मुहाम् |
| स० | मुहि | मुहोः | मुक्षु, मुट्सु, मुट्त्सु |

इसी प्रकार इन शब्दों के रूप चलेंगे—स्निह्, स्नुह्, नश्, तक्ष्, गोरक्ष् और द्रुह् आदि :—

| | प्र० एक० | प्र० द्विव० | तृ० द्विव० | स० बहु० |
|---|---|---|---|---|
| स्निह् | स्निक्-ट् | स्निहौ | स्निग्भ्याम्-ड्भ्याम् | स्निक्षु-ट्सु-ट्त्सु |
| स्नुह् | स्नुक्-ट् | स्नुहौ | स्नुग्भ्याम्-ड्भ्याम् | स्नुक्षु-ट्सु-ट्त्सु |
| नश् | नक्-ट् | नशौ | नग्भ्याम्-ड्भ्याम् | नक्षु-ट्सु-ट्त्सु |
| तक्ष् | तक्-ट् | तक्षौ | तग्भ्याम्-ड्भ्याम् | तक्षु-ट्सु-ट्त्सु |
| गोरक्ष् | गोरक्-ट् | गोरक्षौ | गोरग्भ्याम्-ड्भ्याम् | गोरक्षु-ट्सु-ट्त्सु |
| द्रुह् | ध्रुक्-ट् | द्रुहौ | ध्रुग्भ्याम्-ड्भ्याम् | ध्रुक्षु-ट्सु-ट्त्सु |
| दुह् | धुक् | दुहौ | धुग्भ्याम् | धुक्षु |
| गुह् | घुट् | गुहौ | घुड्भ्याम् | घुट्सु-ट्त्सु |
| बुध् | भुत् | बुधौ | भुद्भ्याम् | भुत्सु |

## नपुंसकलिंग

इन शब्दों के नपुंसकलिंग में पूर्वोक्त अन्तर होंगे, अन्य कुछ नहीं। जैसे—

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र०, सं०, द्वि० | घृतस्पृक् | घृतस्पृशी | घृतस्पृंशि |
| प्र०, सं०, द्वि० | सत्यवाक् | सत्यवाची | सत्यवांचि |
| प्र०, सं०, द्वि० | लिट् | लिही | लिंहि |
| प्र०, सं०, द्वि० | विश्वसृट् | विश्वसृजी | विश्वसृञ्जि |
| प्र०, सं०, द्वि० | मुक्-ट् | मुही | मुंहि |
| प्र०, सं०, द्वि० | भुक् | भुजी | भुञ्जि |
| प्र०, सं०, द्वि० | दधृक् | दधृषी | दधृंषि |
| प्र०, सं०, द्वि० | प्राट् | प्राच्छी, प्राशी | प्राञ्छि, प्रांशि |

शेष रूप पुंलिंग और स्त्रीलिंग के तुल्य चलेंगे।

## अनियमित रूप से चलने वाले शब्द

**९८.** तुरासाह् (इन्द्र) के स् को ष् हो जाता है, हलादि विभक्ति बाद में हों तो।[1] जैसे—

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र०, सं० | तुराषाट् | तुरासाहौ | तुरासाहः |
| द्वि० | तुरासाहम् | तुरासाहौ | तुरासाहः |
| तृ० | तुरासाहा | तुराषाड्भ्याम् | तुराषाड्भिः |
| स० | तुरासाहि | तुरासाहोः | तुराषाट्सु |

**९९.** विश्व शब्द को विश्वा हो जाता है, बाद में राट् या राड् (धातुज शब्द राज् का विशेष रूप) हो तो[2]—

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र०, सं० | विश्वाराट् | विश्वराजौ | विश्वराजः |
| द्वि० | विश्वराजम् | विश्वराजौ | विश्वराजः |
| तृ० | विश्वराजा | विश्वाराड्भ्याम् | विश्वाराड्भिः |
| स० | विश्वराजि | विश्वराजोः | विश्वाराट्सु-ट्सु |

**१००.** धातुज वाह् अन्त वाले शब्दों के वा के स्थान पर ऊ हो जाता है, द्वितीया बहु० से लेकर आगे की अजादि विभक्तियों में।[3] जैसे—विश्ववाह् (पुं०, संसार का धर्ता, स्वामी) :—

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र०, सं० | विश्ववाट् | विश्ववाहौ | विश्ववाहः |
| द्वि० | विश्ववाहम् | विश्ववाहौ | विश्वौहः |
| तृ० | विश्वौहा | विश्ववाड्भ्याम् | विश्ववाड्भिः |
| च० | विश्वौहे | विश्ववाड्भ्याम् | विश्ववाड्भ्यः |
| पं० | विश्वौहः | विश्ववाड्भ्याम् | विश्ववाड्भ्यः |
| ष० | विश्वौहः | विश्वौहोः | विश्वौहाम् |
| स० | विश्वौहि | विश्वौहोः | विश्ववाट्सु |

---

१. **सहेः साडः सः** (८-३-५६)

२. **विश्वस्य वसुराटोः** (६-३-१२८)

३. **वाह ऊठ्** (६-४-१३२), **संप्रसारणाच्च** (६-१-१०८)। **आ और ऊ को एत्येधत्यूठ्सु** (६-१-८९) **से वृद्धि होकर औ हो जाता है।**

इसी प्रकार इन शब्दों के रूप चलेंगे—हव्यवाह्, भारवाह्, भूवाह्, श्वेतवाह् आदि। भूवाह् के द्वि० बहु०, तृ० एक० आदि में ये रूप होंगे—भूहः, भूहा आदि।

१०१. उपानह् (स्त्री०, जूता) के ह् को स् से पहले त् हो जाता है और भ् से पहले द्। जैसे—

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | उपानत् | उपानहौ | उपानहः |
| तृ० | उपानहा | उपानद्भ्याम् | उपानद्भिः |
| स० | उपानहि | उपानहोः | उपानत्सु |

१०२. अनडुह्—पुं०-(बैल)

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | अनड्वान् | अनड्वाहौ | अनड्वाहः |
| सं० | अनड्वन् | अनड्वाहौ | अनड्वाहः |
| द्वि० | अनड्वाहम् | अनड्वाहौ | अनडुहः |
| तृ० | अनडुहा | अनडुद्भ्याम् | अनडुद्भिः |
| च० | अनडुहे | अनडुद्भ्याम् | अनडुद्भ्यः |
| पं० | अनडुहः | अनडुद्भ्याम् | अनडुद्भ्यः |
| ष० | अनडुहः | अनडुहोः | अनडुहाम् |
| स० | अनडुहि | अनडुहोः | अनडुत्सु |

स्वनडुह् (नपुं०, शोभनः अनड्वान् यस्मिन् तत्)

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र०, सं०, द्वि० | स्वनडुत् | स्वनडुही | स्वनड्वांहि |

शेष अनडुह् (पुं०) के तुल्य।

१०३. हलादि विभक्तियाँ बाद में होने पर अवयाज् को अवयस् हो जाता है और पुरोडाश् (यज्ञिय अन्न) को पुरोडस्।

**अवयाज्**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र०, सं० | अवयाः | अवयाजौ | अवयाजः |
| द्वि० | अवयाजम् | अवयाजौ | अवयाजः |
| तृ० | अवयाजा | अवयोभ्याम् | अवयोभिः |
| स० | अवयाजि | अवयाजोः | अवयस्सु |

पुरोडाश्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र०, सं० | पुरोडाः | पुरोडाशौ | पुरोडाशः |
| द्वि० | पुरोडाशम् | पुरोडाशौ | पुरोडाशः |
| तृ० | पुरोडाशा | पुरोडोभ्याम् | पुरोडोभिः |
| स० | पुरोडाशि | पुरोडाशोः | पुरोडस्सु |

अञ्च् (जाना, पूजा करना) धातु से बने हुए शब्द।

१०४. जाना अर्थ वाली अञ्च् धातु से क्विन्, क्विप् आदि प्रत्यय करके ये शब्द बनते हैं--प्राञ्च् (प्र+अञ्च्, पूर्वी), प्रत्यञ्च् (प्रति+अञ्च्, पश्चिमी), सध्र्यञ्च् (सह+अञ्च्, साथी), तिर्यञ्च् (तिरस्+अञ्च्, तिरछा चलना), सम्यञ्च् (सम्+अञ्च्, ठीक जाना या साथ जाना), विष्वञ्च् (विष्वक्+अञ्च्, पीछे चलना), देवद्र्यञ्च् (देव+अञ्च्, देवता की पूजा), सर्वद्र्यञ्च् (सर्व+अञ्च्, चारों ओर जाना), उदञ्च् (उत्तरीय), अन्वञ्च् (पीछे चलना), अदद्र्यञ्च्, अदमुयञ्च्, अमुमुयञ्च् (उसकी ओर जाना, ये सभी शब्द अदस्+अञ्च् से बने हैं), गोअञ्च् आदि।

(क) प्रथमा एक० में अञ्च् को अङ हो जाता है। द्वितीया बहु० से लेकर आगे की अजादि विभक्तियों में अञ्च् का अच् रह जाता है। अञ्च् से पहले विद्यमान अन्तःस्थ को स्व-समान दीर्घ स्वर हो जाता है और तत्पश्चात् अञ्च् का अ भी हट जाता है। जब अञ्च् से पहले अन्तःस्थ वर्ण नहीं होता है, उस समय अञ्च् के अ को ई हो जाता है। यदि अञ्च् से पहले दीर्घ स्वर होगा तो अञ्च् के अ को ई नहीं होगा। पूर्वोक्त स्थितियों में तिर्यञ्च् को तिरश्च् हो जाता है। अन्य स्थानों पर इन शब्दों के रूप चकारान्त शब्द के तुल्य चलते हैं।

प्राञ्च्—पुंलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र०, सं० | प्राङ | प्राञ्चौ | प्राञ्चः |
| द्वि० | प्राञ्चम् | प्राञ्चौ | प्राचः |
| तृ० | प्राचा | प्राग्भ्याम् | प्राग्भिः |
| च० | प्राचे | प्राग्भ्याम् | प्राग्भ्यः |
| पं० | प्राचः | प्राग्भ्याम् | प्राग्भ्यः |
| ष० | प्राचः | प्राचोः | प्राचाम् |
| स० | प्राचि | प्राचोः | प्राक्षु |

प्रत्यञ्च्—पुंलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र०, सं० | प्रत्यङ् | प्रत्यञ्चौ | प्रत्यञ्चः |
| द्वि० | प्रत्यञ्चम् | प्रत्यञ्चौ | प्रतीचः |
| तृ० | प्रतीचा | प्रत्यग्भ्याम् | प्रत्यग्भिः |
| च० | प्रतीचे | प्रत्यग्भ्याम् | प्रत्यग्भ्यः |
| पं० | प्रतीचः | प्रत्यग्भ्याम् | प्रत्यग्भ्यः |
| ष० | प्रतीचः | प्रतीचोः | प्रतीचाम् |
| स० | प्रतीचि | प्रतीचोः | प्रत्यक्षु |

तिर्यञ्च्—पुंलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र०, सं० | तिर्यङ् | तिर्यञ्चौ | तिर्यञ्चः |
| द्वि० | तिर्यञ्चम् | तिर्यञ्चौ | तिरश्चः |
| तृ० | तिरश्चा | तिर्यग्भ्याम् | तिर्यग्भिः |
| स० | तिरश्चि | तिरश्चोः | तिर्यक्षु |

अन्य शब्दों के रूप इसी प्रकार बनाने चाहिएँ। जैसे—

| प्र० एक० | प्र० बहु० | द्वि० बहु० | तृ० द्विव० | स० बहु० |
|---|---|---|---|---|
| सध्र्यङ् | सध्र्यञ्चः | सध्रीचः | सध्र्यग्भ्याम् | सध्र्यक्षु |
| सम्यङ् | सम्यञ्चः | समीचः | सम्यग्भ्याम् | सम्यक्षु |
| विष्वङ् | विष्वञ्चः | विषूचः | विष्वग्भ्याम् | विष्वक्षु |
| देवद्र्यङ् | देवद्र्यञ्चः | देवद्रीचः | देवद्र्यग्भ्याम् | देवद्र्यक्षु |
| उदङ् | उदञ्चः | उदीचः | उदग्भ्याम् | उदक्षु |
| अन्वङ् | अन्वञ्चः | अनूचः | अन्वग्भ्याम् | अन्वक्षु |
| अदद्र्यङ् | अदद्र्यञ्चः | अदद्रीचः | अदद्र्यग्भ्याम् | अदद्र्यक्षु |
| अदमुयङ् | अदमुयञ्चः | अदमुईचः | अदमुयग्भ्याम् | अदमुयक्षु |
| गवाङ् | गवाञ्चः | गोचः | गवाग्भ्याम् | गवाक्षु |
| गोअङ् | गोअञ्चः | गोचः | गोअग्भ्याम् | गोअक्षु |
| गोङ् | गोञ्चः | गोचः | गोग्भ्याम् | गोक्षु |

नपुंसकलिंग

नपुंसकलिंग के रूप भी इसी प्रकार बनाने चाहिएँ।

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र०, सं०, द्वि० | प्राक् | प्राची | प्राञ्चि |

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र०, सं०, द्वि० | प्रत्यक् | प्रतीची | प्रत्यञ्चि |
| प्र ०, सं०, द्वि० | तिर्यक् | तिरश्ची | तिर्यञ्चि |
| प्र०, सं०, द्वि० | सध्र्यक् | सध्रीची | सध्र्यञ्चि |
| प्र०, सं०, द्वि० | सम्यक् | समीची | सम्यञ्चि |
| प्र०, सं०, द्वि० | विष्वक् | विषूची | विष्वञ्चि |
| प्र०, सं०, द्वि० | देवद्रचक् | देवद्रीची | देवद्रचञ्चि |
| प्र०, सं०, द्वि० | उदक् | उदीची | उदञ्चि |
| प्र०, सं०, द्वि० | अन्वक् | अनूची | अन्वञ्चि |
| प्र०, सं०, द्वि० | अदद्रचक् | अदद्रीची | अदद्रचञ्चि |
| प्र०, सं०, द्वि० | अदमुयक् | अदमुईची | अदमुयञ्चि |
| प्र०, सं०, द्वि० | गवाक् | गोची | गवाञ्चि |
| प्र०, सं०, द्वि० | गोअक् | गोची | गोअञ्चि |
| प्र०, सं०, द्वि० | गोक् | गोची | गोञ्चि |

शेष पुंलिंग के तुल्य।

(ख) जब अञ्च् धातु का अर्थ पूजा या आदर करना होता है, तब अञ्च् के न् का लोप नहीं होता है। इन शब्दों के रूप नियमित ढंग से चलते हैं।[1] हलादि विभक्तियाँ बाद में होने पर अञ्च् के च् का लोप हो जाता है। जैसे—

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र०, सं० | प्राङ् | प्राञ्चौ | प्राञ्चः |
| द्वि० | प्राञ्चम् | प्राञ्चौ | प्राञ्चः |
| तृ० | प्राञ्चा | प्राङ्भ्याम् | प्राङ्भिः |
| च० इत्यादि | प्राञ्चे | प्राङ्भ्याम् | प्राङ्भ्यः |
| स० | प्राञ्चि | प्राञ्चोः | प्राङ्षु, प्राङ्क्षु |

**तिर्यञ्च्**—पुंल्लिग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र०, सं० | तिर्यङ् | तिर्यञ्चौ | तिर्यञ्चः |
| द्वि० | तिर्यञ्चम् | तिर्यञ्चौ | तिर्यञ्चः |
| तृ० इत्यादि | तिर्यञ्चा | तिर्यङ्भ्याम् | तिर्यङ्भिः |
| स० | तिर्यञ्चि | तिर्यञ्चोः | तिर्यङ्षु, तिर्यङ्क्ष |

शेष रूप इसी प्रकार चलावें।

---

१. **नाञ्चेः पूजायाम्** (६-४-३०)

नपुंसकलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र०, सं०, द्वि० | तिर्यङ् | तिर्यञ्ची | तिर्यञ्चि |

**अनियमित शब्द**

**१०५.** क्रुञ्च् (कुटिल आदि, क्रुञ्च् कौटिल्याल्पीभावयोः, धातु से बना हुआ शब्द), खञ्ज् (लँगड़ा) और सुवल्ग् (सुन्दर गति वाला) को हलादि विभक्तियाँ बाद में होने पर क्रमशः क्रुङ्, खन् और सुवल् हो जाते हैं। जैसे—

| प्र० एक० | प्र० द्विव० | तृ० द्विव० | स० बहु० |
|---|---|---|---|
| क्रुङ् | क्रुञ्चौ | क्रुङ्भ्याम् | क्रुङ्षु-क्षु |
| खन् | खञ्जौ | खन्भ्याम् | खन्सु |
| सुवल् | सुवल्गौ | सुवल्भ्याम् | सुवल्सु |

शेष रूप इसी प्रकार बना लें।

नपुंसकलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र०, सं०, द्वि० | क्रुङ् | क्रुञ्ची | क्रुञ्चि |
| प्र०, सं०, द्वि० | खन् | खञ्जी | खञ्जि |

शेष पुंलिंग के तुल्य।

**१०६.** ऊर्ज् (पुं०, नपुं०, बल) के रूप सामान्य ढंग से चलेंगे। जैसे—

पुंलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | ऊर्क्-ग् | ऊर्जौ | ऊर्जः |
| तृ० | ऊर्जा | ऊर्ग्भ्याम् | ऊर्ग्भिः |
| स० | ऊर्जि | ऊर्जोः | ऊर्क्षु |

नपुंसकलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र०, सं०, द्वि० | ऊर्क | ऊर्जी | ऊर्न्जि[1] |

शेष पुंलिंग के तुल्य।

बहु के साथ—बहूर्क्, बहूर्जी, बहूर्जि, बहूर्न्जि[2]।

**१०७.** मकारान्त शब्द। धातुज मकारान्त शब्दों की संख्या बहुत कम है। मकारान्त शब्दों के म् को न् हो जाता है, हलादि विभक्ति बाद में होने पर।

१. **नरजानां संयोगः। (सि० कौ०)**

२. **बहूर्जि नुम्प्रतिषेधः। अन्त्यात् पूर्वो वा नुम्। (वार्तिक)**

इनमें अन्य कोई परिवर्तन नहीं होता है। जैसे--प्रशाम् (पुं०, स्त्री०, शान्त व्यक्ति)।

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | प्रशान् | प्रशामौ | प्रशामः |
| द्वि० | प्रशामम् | प्रशामौ | प्रशामः |
| तृ० | प्रशामा | प्रशान्भ्याम् | प्रशान्भिः |
| स० | प्रशामि | प्रशामोः | प्रशान्सु, प्रशांसु |

नपुंसकलिंग

| | | |
|---|---|---|
| प्र०, सं०, द्वि० प्रशाम् | प्रशामी | प्रशामि |

शेष पुंवत् (पुंलिग के तुल्य)।

**सकारान्त शब्द**

**१०८.** सकारान्त शब्दों को प्रथमा एक० में उपधा (अन्तिम अक्षर से पहला स्वर) के अ को दीर्घ हो जाता है, संबोधन और धातुज शब्दों को छोड़कर।[1]

**चन्द्रमस्** (पुं०, चन्द्रमा)

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | चन्द्रमाः | चन्द्रमसौ | चन्द्रमसः |
| सं० | चन्द्रमः | चन्द्रमसौ | चन्द्रमसः |
| द्वि० | चन्द्रमसम् | चन्द्रमसौ | चन्द्रमसः |
| तृ० | चन्द्रमसा | चन्द्रमोभ्याम् | चन्द्रमोभिः |
| च० | चन्द्रमसे | चन्द्रमोभ्याम् | चन्द्रमोभ्यः |
| पं० | चन्द्रमसः | चन्द्रमोभ्याम् | चन्द्रमोभ्यः |
| ष० | चन्द्रमसः | चन्द्रमसोः | चन्द्रमसाम् |
| स० | चन्द्रमसि | चन्द्रमसोः | चन्द्रमःसु-स्सु |

इसी प्रकार इन शब्दों के रूप चलेंगे--वेधस् (ब्रह्मा), सुमनस् (अच्छे मन वाला), दुर्मनस् (बुरे विचार वाला), उन्मनस् (उत्कंठित मन वाला), इत्यादि।

मनस्--(नपुं०, मन)

| | | |
|---|---|---|
| प्र०, सं०, द्वि० मनः | मनसी | मनांसि |

शेष चन्द्रमस् के तुल्य।

---

**१. अत्वसन्तस्य चाधातोः (६-४-१४) मत् या वत् अन्त वाले शब्दों की उपधा को दीर्घ हो जाता है, संबोधन भिन्न सु (स्) परे होने पर। इसी प्रकार धातुभिन्न असन्त की उपधा को दीर्घ होता है, पर्वोक्त स्थितियों में।**

इसी प्रकार इन शब्दों के रूप चलेंगे—पयस् (दूध), वयस् (आयु), अवस् (रक्षा, यश आदि), श्रेयस् (कल्याण), सरस्, वचस्, इत्यादि।

(क) इस्, उस्, ओस् अन्त वाले शब्दों के रूप इसी प्रकार चलते हैं। जैसे—उदर्चिस् (ऊपर को लपट वाली), अचक्षुस् (अन्धा), दीर्घायुस् (दीर्घायु), दोस् (भुजा), इत्यादि। जैसे—

| | प्र० एक० | प्र० द्विव० | तृ० एक० | तृ० द्विव० | स० बहु० |
|---|---|---|---|---|---|
| उदर्चिस् | उदर्चिः | उदर्चिषौ | उदर्चिषा | उदर्चिर्भ्याम् | उदर्चिष्षु–ःषु |
| अचक्षुस् | अचक्षुः | अचक्षुषौ | अचक्षुषा | अचक्षुर्भ्याम् | अचक्षुष्षु–ःषु |
| दीर्घायुस् | दीर्घायुः | दीर्घायुषौ | दीर्घायुषा | दीर्घायुर्भ्याम् | दीर्घायुष्षु–ःषु |
| दोस् | दोः | दोषौ | दोषा | दोर्भ्याम् | दोष्षु –ःषु |

नपुंसकलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र०, सं०, द्वि० | उदर्चिः | उदर्चिषी | उदर्चींषि |
| प्र०, सं०, द्वि० | अचक्षुः | अचक्षुषी | अचक्षूंषि |
| प्र०, सं०, द्वि० | दोः | दोषी | दोंषि |

इसी प्रकार इन शब्दों के रूप चलेंगे—ज्योतिस् (प्रकाश), हविस् (हवि, सामग्री), चक्षुस् (आँख), धनुस् (धनुष), आदि।

सुवस् (सुष्ठु वस्ते, ठीक ढंग से वस्त्र पहनने वाला)।

पुंलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | सुवः | सुवसौ | सुवसः |

शेष चन्द्रमस् के तुल्य।

नपुंसकलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र०, सं०, द्वि० | सुवः | सुवसी | सुवांसि |

शेष मनस् के तुल्य।

इसी प्रकार इनके रूप चलेंगे—पिण्डग्रस्, पिण्डग्लस् इत्यादि।

१०९. इन शब्दों के प्रथमा एक० में ये रूप बनेंगे—अनेहस् (समय)—अनेहा, पुरुदंसस् (इन्द्र)—पुरुदंसा और उशनस् (शुक्राचार्य)—उशना। उशनस् के सम्बोधन में ये रूप बनते हैं—उशनन्, उशन और उशनः। शेष रूप चन्द्रमस् के तुल्य चलेंगे।

११०. सकारान्त स्त्रीलिंग शब्दों में केवल विभक्तियाँ जोड़ दी जाती हैं।

**भास्** (स्त्रीलिंग, प्रकाश, कान्ति)

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | भाः | भासौ | भासः |
| तृ० | भासा | भाभ्याम् | भाभिः |
| स० | भासि | भासोः | भास्सु |

१११. **विशेष**—उक्थशास् (मन्त्रोच्चारणकर्ता) के शास् को शस् हो जाता है, हलादि विभक्तियाँ बाद में हों तो। प्रथमा एक० में नहीं। जैसे—

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | उक्थशाः | उक्थशासौ | उक्थशासः |
| तृ० | उक्थशासा | उक्थशोभ्याम् | उक्थशोभिः |
| स० | उक्थशासि | उक्थशासोः | उक्थशःसु-स्सु |

अनियमित शब्द

११२. स्रस् (गिरने वाला), ध्वस् (नष्ट करने वाला), सुहिंस् (अच्छे प्रकार से हिंसा करने वाला), जिघांस् (मारने की इच्छा वाला)। स्रस् और ध्वस् के स् को त् हो जाता है, हलादि विभक्ति बाद में होने पर। सुहिंस् और जिघांस् को हलादि विभक्ति बाद में होने पर सुहिन् और जिघान् हो जाता है।

पुंलिंग

| | प्र० एक० | प्र० द्विव० | तृ० एक० | तृ० द्विव० | स० वहु० |
|---|---|---|---|---|---|
| स्रस् | स्रत् | स्रसौ | स्रसा | स्रद्भ्याम् | स्रत्सु |
| ध्वस् | ध्वन् | ध्वसौ | ध्वसा | ध्वद्भ्याम् | ध्वत्सु |
| सुहिंस् | सुहिन् | सुहिंसौ | सुहिंसा | सुहिन्भ्याम् | सुहिन्सु |
| जिघांस् | जिघान् | जिघांसौ | जिघांसा | जिघान्भ्याम् | जिघान्सु |

शेष रूप इसी प्रकार विभक्तियाँ लगाकर बनावें।

नपुंसकलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र०, सं०, द्वि० | स्रत् | स्रसी | स्रंसि |
| प्र०, सं०, द्वि० | ध्वत् | ध्वसी | ध्वंसि |
| प्र०, सं०, द्वि० | सुहिन् | सुहिंसी | सुहिंसि |

शेष रूप पुंवत्।

११३. **पुंस्** (पुं०, पुरुष)

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | पुमान् | पुमांसौ | पुमांसः |

| | | | |
|---|---|---|---|
| सं० | पुमन् | पुमांसौ | पुमांसः |
| द्वि० | पुमांसम् | पुमांसौ | पुंसः |
| तृ० | पुंसा | पुंभ्याम् | पुंभिः |
| च० | पुंसे | पुंभ्याम् | पुंभ्यः |
| पं० | पुंसः | पुंभ्याम् | पुंभ्यः |
| ष० | पुंसः | पुंसोः | पुंसाम् |
| स० | पुंसि | पुंसोः | पुंसु |

नपुंसक०

सुपुंस् (शोभनाः पुमांसः यस्मिन् तत्)

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र०, सं०, द्वि० | सुपुम् | सुपुंसी | सुपुमांसि |

शेष पुंवत् ।

११४. इन शब्दों के उपधा के इ और उ को हलादि विभक्ति बाद में होने पर दीर्घ हो जाता है और प्रथमा एक० में इनके अन्तिम अक्षर को विसर्ग हो जाता है—पिपठिष् (पढ़ने का इच्छुक), सजुष् (पुं०, स्त्री०, साथी), चिकीर्ष् (करने का इच्छुक), सुपिस् (ठीक पैर रखने वाला), आशिष् (स्त्री०, आशीर्वाद), सुतुस् (ठीक काटने वाला), गिर् (वाणी), धुर् (धुरा), पुर् (नगर)। गिर् आदि तीनों शब्द स्त्रीलिंग हैं। जैसे—

**पिपठिष्—**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र०, सं० | पिपठीः | पिपठिषौ | पिपठिषः |
| द्वि० | पिपठिषम् | पिपठिषौ | पिपठिषः |
| तृ० | पिपठिषा | पिपठीर्भ्याम् | पिपठीर्भिः |
| च० | पिपठिषे | पिपठीर्भ्याम् | पिपठीर्भ्यः |
| स० | पिपठिषि | पिपठिषोः | पिपठीष्षु—:षु[1] |

इसी प्रकार अन्य विभक्तियाँ लगाकर रूप बनावें। सजुष् और अन्य आगे लिखित शब्दों के रूप इसी प्रकार चलावें।

---

**१. नुम्विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि (८–३–५८)। इ ई, उ ऊ और कवर्ग के बाद प्रत्यय के स् को ष् हो जाता है, यदि बीच में न्, विसर्ग और श् ष् स् में से कोई होगा तो भी स् को ष् हो जाएगा।**

| | प्र० एक० | प्र० द्विव० | तृ० एक० | तृ० द्विव० | स० बहु० |
|---|---|---|---|---|---|
| सजुप् (स्त्री०) | सजूः | सजुषौ | सजुषा | सजूर्भ्याम् | सजूष्षु—:षु |
| चिकीर्ष् | चिकीः | चिकीर्षौ | चिकीर्षा | चिकीर्भ्याम् | चिकीर्षु |
| सुपिस् | सुपीः | सुपिसौ | सुपिसा | सुपीर्भ्याम् | सुपीष्षु—:षु |
| आशिष् | आशीः | आशिषौ | आशिषा | आशीर्भ्याम् | आशीष्षु—:षु |
| सुतुस् | सुतूः | सुतुसौ | सुतुसा | सुतूर्भ्याम् | सुतूष्षु—:षु |
| गिर्, (स्त्री०) | गीः | गिरौ | गिरा | गीर्भ्याम् | गीर्षु |
| धुर् (स्त्री०) | धूः | धुरौ | धुरा | धूर्भ्याम् | धूर्षु |
| पुर्, (स्त्री०) | पूः | पुरौ | पुरा | पूर्भ्याम् | पूर्षु |

नपुंसकलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र०, सं०, द्वि० | पिपठीः | पिपठिषी | पिपठिषि |
| प्र०, सं०, द्वि० | चिकीः | चिकीर्षी | चिकीर्षि |
| प्र०, सं०, द्वि० | सुपीः | सुपिसी | सुंपिसि |
| प्र०, सं०, द्वि० | सुतूः | सुतुसी | सुतुंसि |

शेष रूप पुंलिंग या स्त्रीलिंग के तुल्य चलेंगे ।

**अत्, मत् और वत् अन्त वाले शब्द :—**

११५. प्रथमा एक० में अ को दीर्घ हो जाता है ।[1] प्रथम पाँच विभक्तियों में अ और त् के बीच में न् और जुड़ जाता है । प्रथमा एक० में अन्तिम त् हट जाता है । महत् शब्द में ह के अ को दीर्घ हो जाता है, प्रथम पाँच विभक्तियों में, संबोधन में दीर्घ नहीं होगा ।

**धीमत्**—(पुंलिंग, बुद्धिमान्)

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | धीमान् | धीमन्तौ | धीमन्तः |
| सं० | धीमन् | धीमन्तौ | धीमन्तः |
| द्वि० | धीमन्तम् | धीमन्तौ | धीमतः |
| तृ० | धीमता | धीमद्भ्याम् | धीमद्भिः |
| च० | धीमते | धीमद्भ्याम् | धीमद्भ्यः |

१. अत्वसन्तस्य चाधातोः (६-४-१४)

| | | | |
|---|---|---|---|
| | धीमतः | धीमद्भ्याम् | धीमद्भ्यः |
| ष० | धीमतः | धीमतोः | धीमताम् |
| स० | धीमति | धीमतोः | धीमत्सु |

नपुंसकलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र०, सं० द्वि० | धीमत् | धीमती | धीमन्ति |

शेष पुंवत् ।

इसी प्रकार इन शब्दों के रूप चलेंगे—गोमत् (गायों वाला), विद्यावत्, श्रीमत्, बुद्धिमत्, भगवत्, मघवत् (पुं०, इन्द्र), भवत् (सर्वनाम), यावत्, तावत्, एतावत्, कियत्, इयत्, इत्यादि ।

**महत्**—(पुंलिंग, महान्)

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | महान् | महान्तौ | महान्तः |
| सं० | महन् | महान्तौ | महान्तः |
| द्वि० | महान्तम् | महान्तौ | महतः |

शेष रूप धीमत् के तुल्य ।

नपुंसकलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र०, सं०, द्वि० | महत् | महती | महान्ति |

शेष पुंलिंग के तुल्य ।

११६. शतृ (अत्) प्रत्ययान्त शब्द :—

(क) शतृ (अत्) प्रत्ययान्त शब्दों के रूप साधारणतया मत् अन्त वाले शब्दों के तुल्य चलते हैं, केवल अन्तर यह है कि इसमें प्रथमा एक० में पुंलिंग में अत् को दीर्घ नहीं होता है। नपुंसकलिंग में प्रथमा, संबोधन और द्वितीया के द्विवचन में इन स्थानों पर त् से पहिले न् अवश्य लगता है—भ्वादि०, दिवादि० और चुरादिगण की धातुओं से बने रूपों में, णिच्, सन् और नामधातु प्रत्ययान्त धातुरूपों में । इन स्थानों पर विकल्प से न् लगेगा—तुदादिगणी धातुओं, अदादिगण की आकारान्त धातुओं और स्यत् या ष्यत् वाले लृट् के रूपों में। अन्य स्थानों पर बीच में न् सर्वथा नहीं लगेगा ।

**भवत्**—पुंलिंग (होता हुआ)

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र०, सं० | भवन् | भवन्तौ | भवन्तः |
| द्वि० | भवन्तम् | भवन्तौ | भवतः |

शेष धीमत् के तुल्य ।

**अदत्**—पुंलिंग (खाता हुआ)

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र०, सं० | अदन् | अदन्तौ | अदन्तः |
| द्वि० | अदन्तम् | अदन्तौ | अदतः |

शेष धीमत् के तुल्य।

इसी प्रकार इनके रूप चलेंगे—सभी वर्तमान और भविष्यत् परस्मैपद वाले अत् और स्यत् या इष्यत् अन्त वाले शब्दों के पुंलिंग में रूप।

नपुंसकलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र०, सं०, द्वि० | भवत्—भवत् | भवन्ती | भवन्ति |
| ,, | अदत्—अदत् | अदती | अदन्ति |
| ,, | यात्—यात् | याती, यान्ती | यान्ति |
| ,, | दास्यत्—दास्यत् | दास्यती-न्ती | दास्यन्ति |
| ,, | तुदत्—तुदत् | तुदती–न्ती | तुदन्ति |

शेष पुंलिंग के तुल्य।

पचत्, दीव्यत्, चोरयत्, चिकीर्षत्, बुबोधिषत्, पुत्रीयत् आदि के रूप भवत् के तुल्य चलेंगे। करिष्यत् आदि के रूप तुदत् के तुल्य चलेंगे। सुन्वत्, तन्वत्, रुन्धत्, क्रीणत् आदि के रूप अदत् के तुल्य चलेंगे।

**सूचना**—स्त्रीलिंग में इन शब्दों के अन्त में ई लग जाता है और इनका स्त्रीलिंग में वही रूप होता है जो नपुं० प्रथमा द्विवचन में होता है। इनके रूप नदी के तुल्य चलेंगे।

इन शब्दों के रूप अदत् पुं० और नपुं० के तुल्य चलेंग—बृहत् (बड़ा) पुं०, नपुं०, पृषत् (पुं० मृग) (नपुं० जल की बूंद), जगत् (संसार)।

(ख) इन धातुओं से शतृ प्रत्यय करने पर बीच में न् सर्वथा नहीं लगता है—जुहोत्यादिगण की धातुएँ, अदादिगण की जक्ष् आदि सात धातुएँ (जक्ष्, जागृ, दरिद्रा, शास्, चकास्, दीधी, वेवी)। जक्षत्, जाग्रत्, दरिद्रत्, शासत्, चकासत्, दीध्यत् और वेव्यत्)। इनमें नपुं० प्रथमा, संबोधन और द्वितीया बहुवचन में विकल्प से न् लगता है :—

**ददत्** (देता हुआ)—पुंलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र०, सं० | ददत् | ददतौ | ददतः |
| द्वि०, इत्यादि | ददतम् | ददतौ | ददतः |

जाग्रत् (जागता हुआ)—पुंलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र०, सं० | जाग्रत् | जाग्रतौ | जाग्रतः |
| द्वि०, इत्यादि | जाग्रतम् | जाग्रतौ | जाग्रतः |

नपुंसक० लिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र०, सं०, द्वि० | ददत | ददती | ददन्ति–ति |

शेष भवत् के तुल्य ।

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र०, सं०, द्वि० | जाग्रत् | जाग्रती | जाग्रन्ति–ति |

शेष भवत् तुल्य ।

### अन् और इन् अन्त वाले शब्द

**११७.** प्रथमा एक० में और सभी हलादि विभक्तियों से पहले न् का लोप हो जाता है । पुंलिंग में अन् अन्त वाले शब्दों में प्रथम पाँच विभक्तियों में अ को आ हो जाता है और इन् अन्त वाले शब्दों में केवल प्रथमा एक० में इ को ई होता है । नपुंसकलिंग में प्रथमा, संबोधन और द्वितीया बहु० में अ और इ को दीर्घ होता है। द्वितीया बहु० से लेकर आगे की अजादि विभक्तियों में अ का लोप हो जाता है, यदि अन् से पहले संयुक्त वर्ण है और उनमें अन्त में व् या म् है तो अ का लोप नहीं होगा । पुं० और नपुं० में सप्तमी एक० में अ का लोप विकल्प से होता हैं । नपुं० में प्रथमा, संबोधन और द्वितीया के द्विवचन में अ का लोप विकल्प से होता है ।

नपुंसकलिंग में संबोधन एक० में न् का लोप विकल्प से होता है ।

### अन्नन्त शब्द

**ब्रह्मन्** (ब्रह्मा)—पुंलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | ब्रह्मा | ब्रह्माणौ | ब्रह्माणः |
| सं० | ब्रह्मन् | ब्रह्माणौ | ब्रह्माणः |
| द्वि० | ब्रह्माणम् | ब्रह्माणौ | ब्रह्मणः |
| तृ० | ब्रह्मणा | ब्रह्मभ्याम् | ब्रह्मभिः |
| च० | ब्रह्मणे | ब्रह्मभ्याम् | ब्रह्मभ्यः |
| पं० | ब्रह्मणः | ब्रह्मभ्याम् | ब्रह्मभ्यः |
| ष० | ब्रह्मणः | ब्रह्मणोः | ब्रह्मणाम् |
| स० | ब्रह्मणि | ब्रह्मणोः | ब्रह्मसु |

इसी प्रकार इन शब्दों के रूप चलेंगे—आत्मन् (आत्मा), यज्वन् (यज्ञ करने वाला), सुशर्मन्, कृष्णवर्मन् आदि ।

**राजन्** (राजा)—पुंलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | राजा | राजानौ | राजानः |
| सं० | राजन् | राजानौ | राजानः |
| द्वि० | राजानम् | राजानौ | राज्ञः |
| तृ० | राज्ञा | राजभ्याम् | राजभिः |
| च० | राज्ञे | राजभ्याम् | राजभ्यः |
| पं० | राज्ञः | राजभ्याम् | राजभ्यः |
| ष० | राज्ञः | राज्ञोः | राज्ञाम् |
| स० | राज्ञि, राजनि | राज्ञोः | राजसु |

इसी प्रकार इन शब्दों के रूप चलेंगे—सीमन् (स्त्री०, सीमा), तक्षन् (बढ़ई), मज्जन् (पुं०, मज्जा), गरिमन् (गौरव), महिमन्, लघिमन्, अणिमन् आदि, सुनामन् (सुन्दर नाम वाला), दुर्नामन्, प्रतिदिवन् (दिन, सूर्य) । जहाँ पर प्रतिदिवन् में से अ का लोप होगा, वहाँ पर दि को दी हो जाएगा, इत्यादि ।

उदाहरण—

| | प्र० एक० | द्वि० बहु० | स० एक० |
|---|---|---|---|
| सीमन् | सीमा | सीम्नः | सीम्नि-मनि |
| तक्षन् | तक्षा | तक्ष्णः | तक्ष्णि-क्षणि |
| मज्जन् | मज्जा | मज्ज्ञः | मज्ज्ञि-ज्जनि |
| गरिमन् | गरिमा | गरिम्णः | गरिम्णि-मणि |
| महिमन् | महिमा | महिम्नः | महिम्नि-मनि |
| लघिमन् | लघिमा | लघिम्नः | लघिम्नि-मनि |
| अणिमन् | अणिमा | अणिम्नः | अणिम्नि-मनि |
| सुनामन् | सुनामा | सुनाम्नः | सुनाम्नि-मनि |
| प्रतिदिवन् | प्रतिदिवा | प्रतिदीव्नः | प्रतिदीव्नि-दिवनि |

नपुंसकलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | ब्रह्म | ब्रह्मणी | ब्रह्माणि |

| | | | |
|---|---|---|---|
| सं० | ब्रह्म, ब्रह्मन् | ब्रह्मणी | ब्रह्माणि |
| द्वि० | ब्रह्म | ब्रह्मणी | ब्रह्माणि |

शेप पुंवत् ।

इसी प्रकार इन शब्दों के रूप चलेंगे—चर्मन् (चमड़ा), वर्मन् (कवच), भर्मन् (गृह, पुराना आदि), शर्मन् (कल्याण), नर्मन् (क्रीड़ा, मनोरंजन), जन्मन्, पर्वन् (जोड़, पर्व), आदि ।

**नामन्**—नपुंसकलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | नाम | नामनी, नाम्नी | नामानि |
| सं० | नाम, नामन् | नामनी, नाम्नी | नामानि |
| द्वि० | नाम | नामनी, नाम्नी | नामानि |
| तृ० | नाम्ना | नामभ्याम् | नामभिः |
| च० | नाम्ने | नामभ्याम् | नामभ्यः |
| पं० | नाम्नः | नामभ्याम् | नामभ्यः |
| ष० | नाम्नः | नाम्नोः | नाम्नाम् |
| स० | नाम्नि, नामनि | नाम्नोः | नामसु |

इसी प्रकार इन शब्दों के रूप चलेंगे—व्योमन् (आकाश), क्लोमन्, प्रेमन् (प्रेम), सामन् (सामवेद का मन्त्र), धामन् (घर, तेज), इत्यादि ।

---

अपवाद शब्द

**११८.** पूषन्, अर्यमन् और हन् अन्त वाले शब्दों को प्रथमा एक० में ही दीर्घ होता है। ह् के वाद हन् के न् को ण् हो जाता है। जैसे—

**पूषन्** (सूर्य)—पुंलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | पूषा | पूषणौ | पूषणः |
| सं० | पूषन् | पूषणौ | पूषणः |
| द्वि० | पूषणम् | पूषणौ | पूष्णः |
| तृ० | पूष्णा | पूषभ्याम् | पूषभिः |
| च० | पूष्णे | पूषभ्याम् | पूषभ्यः |
| पं० | पूष्णः | पूषभ्याम् | पूषभ्यः |
| ष० | पूष्णः | पूष्णोः | पूष्णाम् |
| स० | पूष्णि-षणि | पूष्णोः | पूषसु |

**वृत्रहन्** (इन्द्र)—पुंलिग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | वृत्रहा | वृत्रहणौ | वृत्रहण: |
| सं० | वृत्रहन् | वृत्रहणौ | वृत्रहण: |
| द्वि० | वृत्रहणम् | वृत्रहणौ | वृत्रघ्न: |
| तृ० | वृत्रघ्ना | वृत्रहभ्याम् | वृत्रहभि: |
| च० | वृत्रघ्ने | वृत्रहभ्याम् | वृत्रहभ्य: |
| पं० | वृत्रघ्न: | वृत्रहभ्याम् | वृत्रहभ्य: |
| प० | वृत्रघ्न: | वृत्रघ्नो: | वृत्रघ्नाम् |
| स० | वृत्रघ्नि, वृत्रहणि | वृत्रघ्नो: | वृत्रहसु |

**अर्यमन्** (अर्यमा देवता)—पुंलिग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | अर्यमा | अर्यमणौ | अर्यमण: |
| सं० | अर्यमन् | अर्यमणौ | अर्यमण: |
| द्वि०, इत्यादि | अर्यमणम् | अर्यमणौ | अर्यम्ण: |

वहुपूषन्, वह्वर्यमन्, वहुवृत्रहन्—नपुंसकलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र०, सं०, द्वि० | वहुपूषन् | बहुपूष्णी-षणी | वहुपूषाणि |
| प्र०, सं०, द्वि० | वह्वर्यमन् | वह्वर्यम्णी-मणी | वह्वर्यमाणि |
| प्र०, सं०, द्वि० | वहुवृत्रहन् | बहुवृत्रघ्नी-हणी | बहुवृत्रहाणि |

**११९.** द्वितीया बहु० से लेकर आगे की अजादि विभक्तियों में इन शब्दों के व को उ हो जाता है—श्वन् (पुं०, कुत्ता), युवन् (पुं०, युवक), मघवन् (पुं०, इन्द्र)।[1]

**श्वन्**—पुंलिग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | श्वा | श्वानौ | श्वान: |
| सं० | श्वन् | श्वानौ | श्वान: |
| द्वि० | श्वानम् | श्वानौ | शुन: |
| तृ० | शुना | श्वभ्याम् | श्वभि: |
| च० | शुने | श्वभ्याम् | श्वभ्य: |
| पं० | शुन: | श्वभ्याम् | श्वभ्य: |

१. **श्वयुवमघोनामतद्धिते** (६-४-१३३)।

| | | | |
|---|---|---|---|
| ष० | शुनः | शुनोः | शुनाम् |
| स० | शुनि | शुनोः | श्वसु |

**मघवन्**—पुंलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | मघवा | मघवानौ | मघवानः |
| सं० | मघवन् | मघवानौ | मघवानः |
| द्वि० | मघवानम् | मघवानौ | मघोनः |
| तृ०, इत्यादि | मघोना | मघवभ्याम् | मघवभिः |
| स० | मघोनि | मघोनोः | मघवसु |

**युवन्**—पुंलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | युवा | युवानौ | युवानः |
| सं० | युवन् | युवानौ | युवानः |
| द्वि० | युवानम् | युवानौ | यूनः |
| तृ०, इत्यादि | यूना | युवभ्याम् | युवभिः |
| स० | यूनि | यूनोः | युवसु |

**बहुश्वन्, बहुयुवन्**—नपुंसकलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र०, सं०, द्वि० | बहुश्व[1] | बहुशुनी | बहुश्वानि |
| प्र०, सं०, द्वि० | बहुयुव[2] | बहुयूनी | बहुयुवानि |

शेष पुंलिंग के तुल्य।

**१२०.** अहन् ( नपुं०, दिन ) के न् को र् होकर विसर्ग हो जाता है, पदान्त में या बाद में कोई हलादि विभक्ति हो तो। शेष स्थानों पर नामन् के तुल्य रूप चलेंगे।

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र०, सं० | अहः | अह्नी, अहनी | अहानि |
| द्वि० | ,, | ,, ,, | ,, |
| तृ० | अह्ना | अहोभ्याम् | अहोभिः |
| च० | अह्ने | ,, | अहोभ्यः |
| पं० | अह्नः | अहोभ्याम् | अहोभ्यः |
| ष० | ,, | अह्नोः | अह्नाम् |
| स० | अह्नि, अहनि | ,, | अहस्सु, अहःसु |

**१-२. संबोधन एक० में बहुश्वन्, बहुयुवन् रूप भी बनेगा।**

**विशेष**—दीर्घाहन् शब्द के पुंलिंग में हलादि विभक्तियाँ बाद में होने पर चन्द्रमस् शब्द के तुल्य रूप चलेंगे और अजादि विभक्तियाँ बाद में होने पर राजन् के तुल्य। इसके नपुंसकलिंग में अहन् के तुल्य रूप चलेंगे।

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | दीर्घाहा: | दीर्घाहाणौ[1] | दीर्घाहाण: |
| सं० | दीर्घाहः | ,, | ,, |
| द्वि० | दीर्घाहाणम् | ,, | दीर्घाह्नः |
| तृ० | दीर्घाह्ना | दीर्घाहोभ्याम् | दीर्घाहोभिः |
| च० | दीर्घाह्ने | ,, | दीर्घाहोभ्य: |
| पं० | दीर्घाह्नः | ,, | ,, |
| ष० | ,, | दीर्घाह्नोः | दीर्घाह्नाम् |
| स० | दीर्घाह्नि | ,, | दीर्घाहस्सु |

नपुंसकलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र०, सं०, द्वि० | दीर्घाहः | दीर्घाहिणि, दीर्घाह्नी | दीर्घाहाणि |

शेष पुंलिंग के तुल्य।

**१२१.** अर्वन् (पुं० घोड़ा) को अर्वत् शब्द हो जाता है और इसके रूप तकारान्त धीमत् आदि के तुल्य चलेंगे। प्र० और सं० एकवचन में तथा नञ् तत्पुरुष समास करने पर अर्वन् को अर्वत् नहीं होगा। जैसे—अर्वा अर्वन्तौ अर्वन्तः प्र०, अर्वन् अर्वन्तौ अर्वन्त: सं०, अर्वन्तम् अर्वन्तौ अर्वत: द्वि० आदि। किन्तु नञ् समास वाले अनर्वन् (न अर्वा, न विद्यते अर्वा यस्य वा) के रूप यज्वन् के तुल्य चलेंगे।

अनर्वा अनर्वाणौ आदि।

स्वर्वन् नपुं० के रूप इस प्रकार चलेंगे—स्वर्वत् स्वर्वती स्वर्वन्ति प्र०, सं०, द्वि०। शेष रूप अर्वन् पुंलिंग के तुल्य।

**१२२.** इन् अन्त वाले शब्द—

करिन्—पुंलिंग (हाथी)

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | करी | करिणौ | करिण: |
| सं० | करिन् | करिणौ | करिण: |

१. अष्टा० ८-४-११ के नियमानुसार दीर्घाहानौ आदि रूप भी बनेंगे और उनमें विकल्प से न् रहेगा।

| | | | |
|---|---|---|---|
| द्वि० | करिणम् | करिणौ | करिणः |
| तृ० | करिणा | करिभ्याम् | करिभिः |
| च० | करिणे | करिभ्याम् | करिभ्यः |
| पं० | करिणः | करिभ्याम् | करिभ्यः |
| ष० | करिणः | करिणोः | करिणाम् |
| स० | करिणि | करिणोः | करिषु |

इसी प्रकार इन शब्दों के रूप चलेंगे—शशिन् (चन्द्रमा), दण्डिन् (दण्डधारी), धनिन् (धनवान्), हस्तिन् (हाथी), स्रग्विन् (मालाधारी), आततायिन् तथा अन्य सभी इन् अन्त वाले शब्द।

**दण्डिन्**—नपुंसकलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र०, सं० | दण्डि | दण्डिनी | दण्डीनि |
| द्वि० | दण्डि—न् | दण्डिनी | दण्डीनि |

शेष पुंलिंग के तुल्य। इसी प्रकार स्रग्विन् (नपुं०), वाग्मिन् (नपुं०, योग्य वक्ता), भाविन् (नपुं०) आदि के रूप चलेंगे।

**अपवाद शब्द**

**१२३.** पथिन् (मार्ग), मथिन् (मथनी) और ऋभुक्षिन् (इन्द्र का नाम) के रूप प्रथम पाँच स्थानों पर विशेष रूप से चलते हैं।[1] द्वितीया बहु० से लेकर आगे की अजादि विभक्तियाँ बाद में होने पर इनका इन् हट जाता है।

**पथिन्**—पुंलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र०, सं० | पन्थाः | पन्थानौ | पन्थानः |
| द्वि० | पन्थानम् | पन्थानौ | पथः |
| तृ० | पथा | पथिभ्याम् | पथिभिः |
| च० | पथे | पथिभ्याम् | पथिभ्यः |
| पं० | पथः | पथिभ्याम् | पथिभ्यः |
| ष० | पथः | पथोः | पथाम् |
| स० | पथि | पथोः | पथिषु |

१. इन शब्दों में ये सूत्र लगते हैं—**पथिमथ्यृभुक्षामात्। इतोऽत् सर्वनामस्थाने। थो न्थः। भस्य टेर्लोपः।** (अष्टा० ७–१–८५ से ८८)

इसी प्रकार मथिन् और ऋभुक्षिन् के रूप चलेंगे। ऋभुक्षिन् में प्रथम पाँच विभक्तियों में पथिन् के तुल्य बीच में न् नहीं जुड़ेगा। जैसे—मन्थाः मन्थानौ मन्थानः प्र०, मन्थानम् मन्थानौ मथः द्वि० आदि। ऋभुक्षा ऋभुक्षाणौ ऋभुक्षाणः प्र०, ऋभुक्षाणम् ऋभुक्षाणौ ऋभुक्षः द्वि० आदि।

**वस् इवस् अन्त वाले शब्द**

**१२४.** ये शब्द धातु से लिट् लकार के स्थान पर क्वसु (वस्) कृत् प्रत्यय करने पर बनते हैं। इनमें कुछ स्थानों पर वस् से पहले इ भी लग जाता है। इन शब्दों में प्रथम पाँच स्थानों पर स् से पहले न् लगता है और व के अ को दीर्घ हो जाता है। पुंलिंग में प्र० एक० में अन्तिम स् हट जाता है और संबोधन एक० में अन्त में वन् रहता है। द्वितीया बहु० से लेकर आगे की अजादि विभक्तियों में और नपुं० के प्रथमा, सं० और द्वितीया के द्विवचन के ई बाद में होने पर इन शब्दों के व को उ हो जाता है तथा जहाँ पर व से पहले इ है, वह हट जाता है। धातु के अन्तिम म् को न् हो जाता है, बाद में वस् होगा तो, किन्तु बाद में उ होने पर म् फिर बना रहता है। हलादि विभक्तियाँ बाद में होने पर तथा नपुं० में प्र०, सं०, द्वि० के एकवचन में वस् के स् को द् हो जाता है।

विद्वस्—पुंलिंग (विद्वान्)

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | विद्वान् | विद्वांसौ | विद्वांसः |
| सं० | विद्वन् | विद्वांसौ | विद्वांसः |
| द्वि० | विद्वांसम् | विद्वांसौ | विदुषः |
| तृ० | विदुषा | विद्वद्भ्याम् | विद्वद्भिः |
| च० | विदुषे | विद्वद्भ्याम् | विद्वद्भ्यः |
| पं० | विदुषः | विद्वद्भ्याम् | विद्वद्भ्यः |
| ष० | विदुषः | विदुषोः | विदुषाम् |
| स० | विदुषि | विदुषोः | विद्वत्सु |

नपुंसकलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र०, सं०, द्वि० | विद्वत् | विदुषी | विद्वांसि |

शेष पुंलिंग के तुल्य।

इसी प्रकार इन शब्दों के रूप चलेंगे—जग्मिवस् या जगन्वस् (गया हुआ), तस्थिवस् (रुका हुआ), निनीवस् (जो ले गया है), मीढ्वस् (उदार, दानी),

शुश्रुवस् (जिसने सुना है), सेदिवस् (बैठा हुआ), दाश्वस् (दानी, देवों का सेवक या आदरकर्ता), इत्यादि शब्द पुं० और नपु० में । जैसे—

| **प्र० एक०** | **प्र० द्वि०** | **तृ० एक०** | **तृ० द्वि०** |
|---|---|---|---|
| जग्मिवान् | जग्मिवांसौ | जग्मुषा | जग्मिवद्भ्याम् |
| जगन्वान् | जगन्वांसौ | जग्मुषा | जगन्वद्भ्याम् |
| तस्थिवान् | तस्थिवांसौ | तस्थुषा | तस्थिवद्भ्याम् |
| निनीवान् | निनीवांसौ | निन्युषा | निनीवद्भ्याम् |
| मीढ्वान् | मीढ्वांसौ | मीढुषा | मीढ्वद्भ्याम् |
| शुश्रुवान् | शुश्रुवांसौ | शुश्रुवुषा | शुश्रुवद्भ्याम् |
| सेदिवान् | सेदिवांसौ | सेदुषा | सेदिवद्भ्याम् |
| दाश्वान् | दाश्वांसौ | दाशुषा | दाश्वद्भ्याम् |

### यस् या ईयस् अन्त वाले शब्द

**१२५.** यस् अन्त वाले तुलनार्थक शब्दों के प्रथम पाँच विभक्तियों में रूप यस् अन्त वाले शब्दों के तुल्य चलते हैं और शेष स्थानों पर अस् अन्त वाले शब्दों के तुल्य। जैसे—

**श्रेयस्** (प्रशस्य + ईयस्) (अधिक प्रशंसनीय)

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | श्रेयान् | श्रेयांसौ | श्रेयांसः |
| सं० | श्रेयन् | श्रेयांसौ | श्रेयांसः |
| द्वि० | श्रेयांसम् | श्रेयांसौ | श्रेयसः |
| तृ० | श्रेयसा | श्रेयोभ्याम् | श्रेयोभिः |

शेष चन्द्रमस् के तुल्य ।

इसी प्रकार सभी तुलनार्थक ईयस् प्रत्ययान्त शब्दों के रूप चलेंगे। जैसे—गरीयस्, लघीयस्, द्राघीयस् आदि ।

नपुंसकलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र०, सं०, द्वि० | श्रेयः | श्रेयसी | श्रेयांसि |

शेष मनस् के तुल्य। अन्य ईयस् प्रत्ययान्त नपुं० के रूप इसी प्रकार ऐसे ही चलेंगे ।

### अपवाद शब्द

**१२६.** अस्थि (नपुं०, हड्डी), दधि (नपुं०, दही), सक्थि (नपुं०, जाँघ) और अक्षि (नपुं०, आँख) को क्रमशः अस्थन्, दधन्, सक्थन् और अक्षन् हो जाता है, तृ० एक० से लेकर आगे की अजादि विभक्ति बाद में हो तो।[1] इनके रूप नकारान्त शब्दों के तुल्य चलते हैं। अन्य स्थानों पर अस्थि आदि के रूप वारि के तुल्य चलेंगे।

**अस्थि**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | अस्थि | अस्थिनी | अस्थीनि |
| सं० | अस्थे, अस्थि | अस्थिनी | अस्थीनि |
| द्वि० | अस्थि | अस्थिनी | अस्थीनि |
| तृ० | अस्थ्ना | अस्थिभ्याम् | अस्थिभिः |
| च० | अस्थ्ने | अस्थिभ्याम् | अस्थिभ्यः |
| पं० | अस्थ्नः | अस्थिभ्याम् | अस्थिभ्यः |
| ष० | अस्थ्नः | अस्थ्नोः | अस्थ्नाम् |
| स० | अस्थ्नि, अस्थनि | अस्थ्नोः | अस्थिषु |

इसी प्रकार दधि, सक्थि, अक्षि के रूप चलेंगे।

**१२७.** अप् (स्त्रीलिंग, जल) के रूप केवल बहुवचन में चलते हैं। प्र० में इसके अ को दीर्घ हो जाता है और हलादि विभक्तियाँ बाद में होने पर प् को द् हो जाता है। आपः, अपः, अद्भिः, अद्भ्यः, अपाम्, अप्सु।

**१२८.** जरा (स्त्री०, बुढ़ापा), अजर (पुं०, वृद्धावस्था से रहित) और निर्जर (पुं०, देवता) को अजादि विभक्तियाँ बाद में होने पर विकल्प से जरस्, अजरस् और निर्जरस् हो जाता है।

**जरा—स्त्रीलिंग**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | जरा | जरे, जरसौ | जराः, जरसः |
| सं० | जरे | जरे, जरसौ | जराः, जरसः |
| द्वि० | जराम्, जरसम् | जरे, जरसौ | जराः, जरसः |
| तृ० | जरया, जरसा | जराभ्याम् | जराभिः |

१. अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णामनङुदात्तः (७-१-७५)।

| | | | |
|---|---|---|---|
| च० | जरायै, जरसे | जराभ्याम् | जराभ्यः |
| पं० | जरायाः, जरसः | जराभ्याम् | जराभ्यः |
| प० | जरायाः, जरसः | जरयोः, जरसोः | जराणाम्, जरासाम् |
| स० | जरायाम्, जरसि | जरयोः, जरसोः | जरासु |

**निर्जर** आदि के रूप राम और चन्द्रमस् के तुल्य चलेंगे—

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | निर्जरः | निर्जरौ, निर्जरसौ | निर्जराः, निर्जरसः |
| द्वि० | निर्जरम्, निर्जरसम् | निर्जरौ, निर्जरसौ | निर्जरान्, निर्जरसः |
| तृ० | निर्जरेण, निर्जरसा | निर्जराभ्याम् | निर्जरैः |
| च० | निर्जराय, निर्जरसे | निर्जराभ्याम् | निर्जरेभ्यः |
| पं० | निर्जरात्, निर्जरसः | निर्जराभ्याम् | निर्जरेभ्यः |
| प० | निर्जरस्य, निर्जरसः | निर्जरयोः, निर्जरसोः | निर्जराणाम्, निर्जरसाम् |
| स० | निर्जरे, निर्जरसि | निर्जरयोः, निर्जरसोः | निर्जरेषु |

अजर पुं० के रूप निर्जर के तुल्य चलेंगे ।

**अजर**—नपुंसकलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | अजरम् | अजरे, अजरसी | अजराणि, अजरांसि |
| स० | अजर | अजरे, अजरसी | अजराणि, अजरांसि |
| द्वि० | अजरम् | अजरे, अजरसी | अजराणि, अजरांसि |

शेष पुंवत् ।

**१२६.** निम्नलिखित शब्दों को द्वितीया बहु० से लेकर आगे की सभी विभक्तियों में विकल्प से ये आदेश हो जाते हैं। पाद को पद्, दन्त—दत्, नासिका—नस्, मास—मास्, हृदय—हृद्, निशा—निश्, असृज्—असन्, यूष—यूषन्, दोष—दोषन्, यकृत्—यकन्, शकृत्-शकन्, उदक्-उदन्, आस्य-आसन्, मांस-मांस्, पृतना—पृत्, सानु-स्नु ।[1]

**दोस्**—पुंल्लिंग (हाथ)

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र०, सं० | दोः | दोषौ | दोषः |
| द्वि० | दोः | दोषौ | दोषः, दोष्णः |
| तृ० | दोषा, दोष्णा | दोर्भ्याम्, दोषभ्याम् | दोर्भिः, दोषभिः |

---

१. **पद्दन्नोमासहृन्निशसन्यूषन्दोषन्यकञ्छकन्नुदन्नासञ्छस्प्रभृतिषु** । (६–१–६३)
**मांसपृतनासानूनां मांस्पृत्स्नवो वाच्याः शसादौ वा** । (वार्तिक)

| | | | |
|---|---|---|---|
| च० | दोपे, दोष्णे | दोर्भ्याम्, दोषभ्याम् | दोर्भ्यः, दोषभ्यः |
| पं० | दोषः, दोष्णः | दोर्भ्याम्, दोषोभ्याम् | दोर्भ्यः, दोषभ्यः |
| ष० | दोषः, दोष्णः | दोषोः, दोष्णोः | दोषाम्, दोष्णाम् |
| स० | दोपि, दोष्णि-षणि | दोषोः, दोष्णोः | दोष्षु–ःषु, दोपष |

नपुंसकलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र०, सं०, द्वि० | दोः | दोपी | दोंपि |

शेप पुंवत् ।

**निशा—स्त्रीलिंग (रात्रि)**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | निशा | निशे | निशाः |
| सं० | निशे | निशे | निशाः |
| द्वि० | निशाम् | निशे | निशाः |
| तृ० | निशया, निशा | निशाभ्याम्, निज्भ्याम्, निड्भ्याम् | निशाभिः, निज्भिः निड्भिः |
| च० | निशायै, निशे | निशाभ्याम्, निज्भ्याम्, निड्भ्याम् | निशाभ्यः निज्भ्यः, निड्भ्यः |
| पं० | निशायाः, निशः, | निशाभ्याम्, निज्भ्याम्, निड्भ्याम् | निशाभ्यः, निज्भ्यः, निड्भ्यः |
| ष० | निशायाः, निशः | निशयोः-शोः | निशानाम्-शाम् |
| स० | निशायाम्, निशि | निशयोः-शोः | निशासु, निच्सु, निट्सु, निट्त्सु |

**सानु—नपुंसकलिंग (शिखर, पहाड़ आदि की चोटी)**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | सानु | सानुनी | सानूनि |
| सं० | सानु-नो | ,, | ,, |
| द्वि० | सानु | ,, | ,, |
| तृ० | सानुना, स्नुना | सानुभ्याम्, स्नुभ्याम् | सानुभिः, स्नुभिः |
| च० | सानुने, स्नुने | ,, ,, | सानुभ्यः, स्नुभ्यः |
| पं० | सानुनः, स्नुनः | सानुभ्याम्, स्नुभ्याम् | 'सानुभ्यः, स्नुभ्यः |
| ष० | ,, ,, | सानुनोः, स्नुनोः | सानूनाम्, स्नूनाम् |
| स० | सानुनि, स्नुनि | ,, ,, | सानुषु, स्नुपु |

सानु शब्द पुंलिंग भी है। पुं० में इसके रूप गुरु के तुल्य चलावें। द्वितीया वहुवचन से स्नु वाला भी रूप चलेगा। जैसे—सानून्, स्नून् आदि।

शेष शब्दों के रूप अन्तिम अक्षर को देखकर तदनुसार चलावें।

**पाद**—पुंलिंग (पैर)

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | पादः | पादौ | पादाः |
| सं० | पाद | पादौ | पादाः |
| द्वि० | पादम् | पादौ | पादान्, पदः |
| तृ० | पादेन, पदा | पादाभ्याम्, पद्भ्याम् | पादैः, पद्भिः |
| स० | पादे, पदि | पादयोः, पदोः | पादेषु, पत्सु |

**दन्त**—पुंलिंग (दाँत)

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | दन्तः | दन्तौ | दन्ताः |
| द्वि० | दन्तम् | दन्तौ | दन्तान्, दतः |
| तृ० | दन्तेन, दता | दन्ताभ्याम्, दद्भ्याम् | दन्तैः, दद्भिः |
| स० | दन्ते, दति | दन्तयोः, दतोः | दन्तेषु, दत्सु |

**नासिका**—स्त्रीलिंग (नाक)

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | नासिका | नासिके | नासिकाः |
| द्वि० | नासिकाम् | नासिके | नासिकाः, नसः |
| तृ० | नासिकया, नसा | नासिकाभ्याम्, नोभ्याम् | नासिकाभिः, नोभिः |
| च० | नासिकायै, नसे | नासिकाभ्याम्, नोभ्याम् | नासिकाभ्यः, नोभ्यः |
| स० | नासिकायाम्, नसि | नासिकयोः, नसोः | नासिकासु, नस्सु |

**मास**—पुंलिंग (मास)

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | मासः | मासौ | मासाः |
| द्वि० | मासम् | मासौ | मासान्, मासः |
| तृ० | मासेन, मासा | मासाभ्याम्, माभ्याम् | मासैः, माभिः |
| स० | मासे, मासि | मासयोः, मासोः | मासेषु, मास्सु |

**हृदय**—नपुंसकलिंग (हृदय)

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | हृदयम् | हृदये | हृदयानि |
| द्वि० | हृदयम् | हृदये | हृदयानि, हृन्दि |
| तृ० | हृदयेन, हृदा | हृदयाभ्याम्, हृद्भ्याम् | हृदयैः, हृद्भिः |

| | | | |
|---|---|---|---|
| स० | हृदये, हृदि | हृदययोः, हृदोः | हृदयेषु, हृत्सु |

**असृज्**—नपुंसकलिंग (खून)

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | असृक्-ग् | असृजी | असृञ्जि |
| द्वि० | असृक्-ग् | असृजी | असृञ्जि, असानि |
| तृ० | असृजा, अस्ना | असृग्भ्याम्, असभ्याम् | असृग्भिः, असभिः |
| च० | असृजे, अस्ने | असृग्भ्याम्, असभ्याम् | असृग्भ्यः, असभ्यः |
| स० | असृजि, अस्नि, असनि | असृजोः, अस्नोः | असृक्षु, अससु |

**यूष**—पुंल्लिंग (दाल आदि का जूस या रसा)

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | यूषः | यूषौ | यूषाः |
| द्वि० | यूषम् | यूषौ | यूषान्, यूष्णः |
| तृ० | यूषेण, यूष्णा | यूषाभ्याम्, यूषभ्याम् | यूषैः, यूषभिः |
| स० | यूषे, यूष्णि-षणि | यूषयोः, यूष्णोः | यूषेषु, यूषसु |

**यकृत्**—नपुंसकलिंग (जिगर)

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | यकृत्-द् | यकृती | यकृन्ति |
| द्वि० | यकृत्-द् | यकृती | यकृन्ति, यकानि |
| तृ० | यकृता, यक्ना | यकृद्भ्याम्, यकभ्याम् | यकृद्भिः, यकभिः |
| स० | यकृति, यकनि-क्नि | यकृतोः, यक्नोः | यकृत्सु, यकसु |

**शकृत्**—नपुंसकलिंग (शौच, विष्ठा)

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | शकृत्-द् | शकृती | शकृन्ति |
| द्वि० | शकृत्-द् | शकृती | शकृन्ति, शकानि |
| तृ० | शकृता, शक्ना | शकृद्भ्याम्, शकभ्याम् | शकृद्भिः, शकभिः |
| स० | शकृति, शकनि-क्नि | शकृतोः, शक्नोः | शकृत्सु, शकसु |

**उदक**—नपुंसकलिंग (जल)

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | उदकम् | उदके | उदकानि |
| द्वि० | उदकम् | उदके | उदकानि, उदानि |
| तृ० | उदकेन, उद्ना | उदकाभ्याम्, उदभ्याम् | उदकैः, उदभिः |
| स० | उदके, उदनि-द्नि | उदकयोः, उद्नोः | उदकेषु, उदसु |

**आस्य**—नपुंसकलिंग (मुँह)

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | आस्यम् | आस्ये | आस्यानि |

| | | | |
|---|---|---|---|
| द्वि० | आस्यम् | आस्ये | आस्यानि, आसानि |
| तृ० | आस्येन, आस्ना | आस्याभ्याम्, आसभ्याम् | आस्यैः, आसभिः |
| स० | आस्ये, आसनि, आस्नि | आस्ययोः, आस्नोः | आस्येषु, आससु |

**मांस**—नपुंसक (मांस)

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | मांसम् | मांसे | मांसानि |
| द्वि० | मांसम् | मांसे | मांसानि, मांसि |
| तृ० | मांसेन, मांसा | मांसाभ्याम्, मान्भ्याम् | मांसैः, मान्भिः |
| स० | मांसे, मांसि | मांसयोः, मांसोः | मांसेषु, मान्सु |

**पृतना**—स्त्रीलिंग (सेना)

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | पृतना | पृतने | पृतनाः |
| द्वि० | पृतनाम् | पृतने | पृतनाः, पृतः |
| तृ० | पृतनया, पृता | पृतनाभ्याम्, पृद्भ्याम् | पृतनाभिः, पृद्भिः |
| च० | पृतनायै, पृते | पृतनाभ्याम्, पृद्भ्याम् | पृतनाभ्यः, पृद्भ्यः |
| स० | पृतनायाम्, पृति | पृतनयोः, पृतोः | पृतनासु, पृत्सु |

**१३०.** विभक्तियों के अर्थों को प्रकट करने के लिए निम्नलिखित प्रत्यय शब्दों से होते हैं।

(क) पंचमी के अर्थ में तसिल् (तस् या तः) प्रत्यय शब्दों से होता है।[1] जैसे—प्रमादतः (प्रमाद से), वस्तुतः (वास्तविक रूप से, यथार्थ रूप से), ज्ञानतः (ज्ञान से), बहुतः (बहुतों से) आदि।

(ख) सप्तमी के अर्थ में त्रल् (त्र) प्रत्यय होता है। यह साधारणतया सर्वनाम शब्दों से होता है।[2] जैसे—तत्र (उस स्थान पर, वहाँ), सर्वत्र (सभी स्थानों पर) आदि।

**१३१.** कुछ शब्द अव्यय हैं और इनके रूप नहीं चलते हैं। जैसे—भूर् (सबसे नीचे का लोक), स्वर् (स्वर्ग), संवत् (वर्ष), अस्तम् (अस्त होना), शम् (शान्ति), नमस् (नमस्कम्) स्वस्ति (आशीर्वाद) आदि।

---

१. पंचम्यास्तसिल् (५-३-७)

२. सप्तम्यास्त्रल् (५-३-१०)। इतराभ्योऽपि दृश्यन्ते (५-३-१४) नियम से प्रथमा को छोड़कर अन्य विभक्तियों के स्थान पर भी तः और त्र आदि हो जाते हैं। (ऐसे बने हुए शब्द प्रथमा के अर्थ में भी प्रयुक्त होते हैं।)

# अध्याय ४

## सर्वनाम शब्द और उनके रूप

**१३२.** संस्कृत में निम्नलिखित ३५ शब्द सर्वनाम कहे जाते हैं--सर्व, विश्व, उभ, उभय, डतर, डतम (अर्थात् किम्, यद् और तद् शब्दों से अतर और अतम प्रत्यय करके बने हुए रूप। इन प्रत्ययों के करने पर किम् को क, यद् को य और तद् को त हो जाता है और ये रूप बनते हैं—कतर, कतम, यतर, यतम, ततर और ततम), अन्य, अन्यतर, इतर, त्वत् त्व, नेम, सम, सिम, पूर्व, पर, अवर, दक्षिण, उत्तर, अपर, अवर, स्व, अन्तर, त्यद्, तद्, यद्, एतद्, इदम्, अदस्, एक, द्वि, युष्मद्, अस्मद्, भवत् और किम्।

### १. पुरुषवाचक सर्वनाम (Personal Pronouns)

**१३३.** अस्मद् (मैं), युष्मद् (तू) और भवत् (आप) सर्वनाम :--

**सूचना**--अस्मद् और युष्मद् शब्दों के तीनों लिंगों में एक ही रूप होते हैं।

**अस्मद्**[1]--पुं०, स्त्री०, नपुं०

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | अहम् | आवाम् | वयम् |
| द्वि० | माम्, मा | आवाम्, नौ | अस्मान्, नः |
| तृ० | मया | आवाभ्याम् | अस्माभिः |
| च० | मह्यम्, मे | आवाभ्याम्, नौ | अस्मभ्यम्, नः |
| प० | मत् | आवाभ्याम् | अस्मत् |
| ष० | मम, मे | आवयोः, नौ | अस्माकम्, नः |
| स० | मयि | आवयोः | अस्मासु |

**युष्मद्**--पुं०, स्त्री०, नपुं०

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | त्वम् | युवाम् | यूयम् |
| द्वि० | त्वाम्, त्वा | युवाम्, वाम् | युष्मान्, वः |

---

१. **युष्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्वांनावौ।** (८-१-२०)
**बहुवचनस्य वस्नसौ।** (८-१-२१)
**तेमयावेकवचनस्य।** (८-१-२२)
**त्वामौ द्वितीयायाः।** (८-१-२३)

| | | | |
|---|---|---|---|
| तृ० | त्वया | युवाभ्याम् | युष्माभिः |
| च० | तुभ्यम्, ते | युवाभ्याम्, वाम् | युष्मभ्यम्, वः |
| पं० | त्वत् | युवाभ्याम् | युष्मत् |
| ष० | तव, ते | युवयोः, वाम् | युष्माकम्, वः |
| स० | त्वयि | युवयोः | युष्मासु |

भवत् के रूप भगवत् के तुल्य चलते हैं। भवान् भवन्तौ भवन्तः प्र०, भवन्तम् भवन्तौ भवतः, द्वि० इत्यादि। अत्रभवत् और तत्रभवत् के भी रूप इसी प्रकार चलते हैं। (देखो वाक्य-विन्यास में सर्वनाम)।

**१३४.** (क) युष्मद् और अस्मद् सर्वनामों के छोटे रूप ते मे आदि वाक्य के प्रारम्भ में और श्लोक के पाद के प्रारम्भ में नहीं होते हैं।[1] च, वा, ह, अह और एव निपातों से पहले भी ये छोटे रूप नहीं होते हैं।[2] जैसे—'मम गृहम्' (मेरा घर) होगा, 'मे गृहम्' प्रयोग नहीं होगा। वेदैरशेषैः संवेद्योऽस्मान् कृष्णः सर्वदाऽवतु (सिद्धान्तकौमुदी) (समस्त वेदों के द्वारा ज्ञेय कृष्ण सदा हमारी रक्षा करें) में 'नः कृष्णः' प्रयोग नहीं होगा। तवैव कृत्यमेतत् (यह तुम्हारा ही कार्य है) में 'ते एव' प्रयोग नहीं होगा। यदि च आदि का साक्षात् संबन्ध नहीं है तो इन छोटे रूपों का प्रयोग हो सकता है।[3] जैसे—हरो हरिश्च मे स्वामी (सिद्धान्तकौमुदी) (हर और हरि मेरे स्वामी हैं), इत्यादि।

**विशेष**—(ख) यदि वाक्य में एक क्रिया है तो इन छोटे रूपों का प्रयोग हो सकता है। जैसे शालीनां ते ओदनं दास्यामि। किन्तु ओदनं पच तव भविष्यति में दो क्रियाएँ हैं, अतः तव के स्थान पर ते प्रयोग नहीं होगा।[4]

---

१. पदात्। (८-१-१७)। अनुदात्तं सर्वमपादादौ (८-१-१८)। निम्नलिखित श्लोक में इन छोटे रूपों का प्रयोग स्पष्ट किया गया है—
श्रीशस्त्वावतु मापीह, दत्तात् ते मेऽपि शर्म सः।
स्वामी ते मेऽपि स हरिः, पातु वामपि नौ विभुः॥
सुखं वां नौ ददात्वीशः, पतिर्वामपि नौ हरिः।
सोऽव्याद् वो नः शिवं वो नो, दद्यात् सेव्योऽत्र वः स नः॥ (सि० कौ०)।

२. न चवाहाहैवयुक्ते। (८-१-२४)

३. युक्तग्रहणात् साक्षाद्योगेऽयं निषेधः। परम्परासंबन्धे त्वादेशः स्यादेव। (सि० कौ०)

४. समानवाक्ये निघातयुष्मदस्मदादेशा वक्तव्याः। (वार्तिक)

(ग) संबोधन के तुरन्त बाद इन छोटे रूपों का प्रयोग नहीं होगा।[1] यदि संबोधन के बाद उसका कोई विशेषण है तो इन छोटे रूपों का प्रयोग होगा।[2] जैसे—देवास्मान् पाहि सर्वदा ( सिद्धान्तकौमुदी ) (हे देव, सदा हमारी रक्षा कीजिए) में 'देव नः' प्रयोग नहीं होगा। किन्तु—हरे दयालो नः पाहि (सि० कौ०) (हे दयालु हरि, हमारी रक्षा करो) में अस्मान् के स्थान पर नः प्रयोग होगा।

(घ) जहाँ पर अन्वादेश (वर्णित विषय का पुनः उल्लेख) नहीं है, वहाँ पर इन छोटे रूपों का प्रयोग ऐच्छिक है। परन्तु जहाँ पर अन्वादेश है, वहाँ पर छोटे रूपों का प्रयोग अनिवार्य है।[3] जैसे—धाता ते भक्तोऽस्ति, धाता तव भक्तोऽस्ति, इति वा। किन्तु इस वाक्य के बाद 'तस्मै ते नमः' में तुभ्यम् के स्थान पर ते का ही प्रयोग होगा, क्योंकि यहाँ पर (पूर्वोक्त का पुनः उल्लेख) है।

## २---संकेतवाचक सर्वनाम (Demonstrative Pronouns)

**१३५.** तद् (वह पुरुष, स्त्री या नपुंसक), एतद् (यह), इदम् (यह) और अदस् (वह) सर्वनाम। तद् और एतद् के प्रथमा एक० पुं० में क्रमशः सः और एषः रूप होते हैं और स्त्रीलिंग में प्र० एक० में क्रमशः सा और एषा रूप होते हैं। अन्य स्थानों पर तद् को त और एतद् को एत हो जाता है और इनके रूप निम्नलिखित स्थानों को छोड़कर राम या रमा के तुल्य चलेंगे। पुंलिंग में इन स्थानों पर राम शब्द से अन्तर होता है—प्र० बहु० में ई लगेगा, च० एक० में स्मै, पं० एक० में स्मात्, ष० एक० में ष्याम् और स० एक० में स्मिन्। स्त्रीलिंग में रमा शब्द से ये अन्तर होते हैं—च० एक० में स्यै, पं० एक० में स्याः, ष० एक० में स्याः, ष० बहु० में साम् और स० एक० में स्याम् लगेगा। अकारान्त सभी सर्वनामों के रूप इसी प्रकार चलेंगे।

तद्—पुंलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | सः | तौ | ते |
| द्वि० | तम् | तौ | तान् |

१. आमन्त्रितं पूर्वमविद्यमानवत्। (८-१-७२)
२. नामन्त्रिते समानाधिकरणे० (८-१-७३)
३. एते वांनावादय आदेशा अनन्वादेशे वा वक्तव्याः। (वार्तिक)

| | | | |
|---|---|---|---|
| तृ० | तेन | ताभ्याम् | तैः |
| च० | तस्मै | ताभ्याम् | तेभ्यः |
| पं० | तस्मात् | ताभ्याम् | तेभ्यः |
| ष० | तस्य | तयोः | तेषाम् |
| स० | तस्मिन् | तयोः | तेषु |

**तद्—स्त्रीलिंग**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | सा | ते | ताः |
| द्वि० | ताम् | ते | ताः |
| तृ० | तया | ताभ्याम् | ताभिः |
| च० | तस्यै | ताभ्याम् | ताभ्यः |
| पं० | तस्याः | ताभ्याम् | ताभ्यः |
| ष० | तस्याः | तयोः | तासाम् |
| स० | तस्याम् | तयोः | तासु |

इसी प्रकार त्यद् (वह) के रूप चलेंगे। जैसे—स्यः त्यौ त्ये प्र०, त्यम् त्यौ त्यान् द्वि० आदि।

**तद्—नपुंसकलिंग**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र०, द्वि० | तत् | ते | तानि |

शेष पुंवत्।

**एतद्—पुंलिंग**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | एषः | एतौ | एते |
| द्वि० | एतम्, एनम्[1] | एतौ, एनौ | एतान्, एनान् |
| तृ० | एतेन, एनेन | एताभ्याम् | एतैः |
| च० | एतस्मै | एताभ्याम् | एतेभ्यः |
| पं० | एतस्मात् | एताभ्याम् | एतेभ्यः |
| ष० | एतस्य | एतयोः, एनयोः | एतेषाम् |
| स० | एतस्मिन् | एतयोः, एनयोः | एतेषु |

---

**१. द्वितीयाटौस्स्वेनः (२-४-३४)। इदम् और एतद् शब्दों को द्वितीया और तृतीया एक०, ष० और स० द्विवचन में विकल्प से एन शब्द हो जाता है, अन्वादेश में। (देखो नियम १३७)**

**एतद्**—स्त्रीलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | एषा | एते | एताः |
| द्वि० | एताम्, एनाम् | एते, एने | एताः, एनाः |
| तृ० | एतया, एनया | एताभ्याम् | एताभिः |
| च० | एतस्यै | एताभ्याम् | एताभ्यः |
| पं० | एतस्याः | एताभ्याम् | एताभ्यः |
| ष० | एतस्याः | एतयोः, एनयोः | एतासाम् |
| स० | एतस्याम् | एतयोः, एनयोः | एतासु |

**एतद्**—नपुंसकलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | एतत् | एते | एतानि |
| द्वि० | एतत्, एनत् | एते, एने | एतानि, एनानि |

शेष पुंवत् ।

**सूचना**—सः और एषः के विसर्गों का लोप हो जाता है, बाद में अ को छोड़कर कोई भी स्वर या व्यंजन हो तो । बाद में अ होगा तो उ होकर ओऽ सन्धि होगी । जैसे—स गच्छतु, एष आयाति । किन्तु एषोऽगच्छत् होगा । (देखो नियम ५०)

**इदम्**—पुंलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | अयम् | इमौ | इमे |
| द्वि० | इमम्, एनम् | इमौ, एनौ | इमान्, एनान् |
| तृ० | अनेन, एनेन | आभ्याम् | एभिः |
| च० | अस्मै | आभ्याम् | एभ्यः |
| पं० | अस्मात् | आभ्याम् | एभ्यः |
| ष० | अस्य | अनयोः, एनयोः | एषाम् |
| स० | अस्मिन् | अनयोः, एनयोः | एषु |

**इदम्**—स्त्रीलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | इयम् | इमे | इमाः |
| द्वि० | इमाम्, एनाम् | इमे, एने | इमाः, एनाः |
| तृ० | अनया, एनया | आभ्याम् | आभिः |
| च० | अस्यै | आभ्याम् | आभ्यः |

| | | | |
|---|---|---|---|
| पं० | अस्याः | आभ्याम् | आभ्यः |
| ष० | अस्याः | अनयोः, एनयोः | आसाम् |
| स० | अस्याम् | अनयोः, एनयोः | आसु |

**इदम्**—नपुंसकलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | इदम् | इमे | इमानि |
| द्वि० | इदम्, एनत् | इमे, एने | इमानि, एनानि |

शेष पुंवत् ।

**अदस्**—पुंलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | असौ | अमू | अमी |
| द्वि० | अमुम् | अमू | अमून् |
| तृ० | अमुना | अमूभ्याम् | अमीभिः |
| च० | अमुष्मै | अमूभ्याम् | अमीभ्यः |
| पं० | अमुष्मात् | अमूभ्याम् | अमीभ्यः |
| ष० | अमुष्य | अमुयोः | अमीषाम् |
| स० | अमुष्मिन् | अमुयोः | अमीषु |

**अदस्**—स्त्रीलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | असौ | अमू | अमूः |
| द्वि० | अमूम् | अमू | अमूः |
| तृ० | अमुया | अमूभ्याम् | अमूभिः |
| च० | अमुष्यै | अमूभ्याम् | अमूभ्यः |
| पं० | अमुष्याः | अमूभ्याम् | अमूभ्यः |
| ष० | अमुष्याः | अमुयोः | अमूषाम् |
| स० | अमुष्याम् | अमुयोः | अमूषु |

**अदस्**—नपुंसकलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र०, द्वि० | अदः | अमू | अमूनि |

शेष पुंवत् ।

**२३६.** आगे लिखित कारिका में इन सर्वनामों के शुद्ध प्रयोग का नियम गया है :—

इदमस्तु सन्निकृष्टं समीपतरवर्ति चैतदो रूपम् ।
अदसस्तु विप्रकृष्टं तदिति परोक्षे विजानीयात् ॥

इदम् का प्रयोग समीपस्थ व्यक्ति या वस्तु के लिए होता है और एतद् का उससे भी समीपस्थ के लिए। अदस् का प्रयोग दूरस्थ व्यक्ति या वस्तु के लिए होता है और तद् का प्रयोग परोक्ष या अनुपस्थित व्यक्ति या वस्तु के लिए।

**१३७.** इदम् और एतद् शब्दों के एन वाले जो वैकल्पिक रूप द्वितीया और तृतीया एक०, षष्ठी और सप्तमी द्विवचन में दिए गए हैं, उनका प्रयोग अन्वादेश में ही होता है। अन्वादेश का अर्थ है—किसी कार्य के लिए उल्लिखित व्यक्ति या वस्तु का पुनः उल्लेख करना।[1] जैसे—अनेन व्याकरणमधीतम्, एनं छन्दोऽध्यापय (इसने व्याकरण पढ़ लिया है, इसे छन्द पढ़ाओ)। अनयोः पवित्रं कुलम्, एनयोः प्रभूतं स्वम् ( इन दोनों का कुल पवित्र है, इनके पास विशाल सम्पत्ति है )।

## ३. संबन्धवाचक सर्वनाम (Relative Pronouns)

**१३८.** यद् (जो, व्यक्ति या वस्तु) सर्वनाम। यद् को पुंलिंग में य हो जाता है और स्त्रीलिंग में या।

यद्—पुंलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | यः | यौ | ये |
| द्वि० | यम् | यौ | यान् |
| तृ० | येन | याभ्याम् | यैः |
| च० | यस्मै | याभ्याम् | येभ्यः |
| पं० | यस्मात् | याभ्याम् | येभ्यः |
| ष० | यस्य | ययोः | येषाम् |
| स० | यस्मिन् | ययोः | येषु |

यद्—स्त्रीलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | या | ये | याः |

१. किंचित्कार्यं विधातुमुपात्तस्य कार्यान्तरं विधातुं पुनरुपादानमन्वादेशः। (सि० कौ०)

| | | | |
|---|---|---|---|
| द्वि० | याम् | ये | याः |
| तृ० | यया | याभ्याम् | याभिः |
| च० | यस्यै | याभ्याम् | याभ्यः |
| पं० | यस्याः | याभ्याम् | याभ्यः |
| ष० | यस्याः | ययोः | यासाम् |
| स० | यस्याम् | ययोः | यासु |

**यद्**—नपुंसकलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र०, द्वि० | यत् | ये | यानि |

शेष पुंवत्।

## ४. प्रश्नवाचक सर्वनाम (Interrogative Pronouns)

**१३९.** किम् (कौन) सर्वनाम। इसको पुंलिंग में क और स्त्रीलिंग में का होता है।

**किम्**—पुंलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | कः | कौ | के |
| द्वि० | कम् | कौ | कान् |
| तृ० | केन | काभ्याम् | कैः |
| च० | कस्मै | काभ्याम् | केभ्यः |
| पं० | कस्मात् | काभ्याम् | केभ्यः |
| ष० | कस्य | कयोः | केषाम् |
| स० | कस्मिन् | कयोः | केषु |

**किम्**—स्त्रीलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | का | के | काः |
| द्वि० | काम् | के | काः |
| तृ० | कया | काभ्याम् | काभिः |
| च० | कस्यै | काभ्याम् | काभ्यः |
| पं० | कस्याः | काभ्याम् | काभ्यः |
| ष० | कस्याः | कयोः | कासाम् |
| स० | कस्याम् | कयोः | कासु |

किम्—नपुंसक०

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र०, द्वि० | किम् | के | कानि |

शेष पुंवत् ।

## ५. स्व-वाचक सर्वनाम (Reflexive Pronouns)

**१४०.** संस्कृत में स्व-वाचक सर्वनाम का भाव आत्मन् (आत्मा) शब्द से तथा स्वयम् शब्द से प्रकट किया जाता है। आत्मन् शब्द का प्रयोग पुंलिंग में ही होता है और वह भी एक० में ही । जैसे-गुप्तं ददृशुरात्मानं सर्वाः स्वप्नेषु वामनैः (सभी दशरथ की स्त्रियों ने स्वप्न में देखा कि वे बौनों के द्वारा रक्षित हैं) । इसी प्रकार—स (सा) कृतापराधमिव आत्मानमवगच्छति । राजा स्वयं समरभूमिं जगाम, इत्यादि ।

## ६. अनिश्चय-वाचक सर्वनाम (Indefinite Pronouns)

**१४१.** अनिश्चय-वाचक सर्वनाम किम् शब्द के किसी भी लिंग के किसी वचन के रूप के साथ चित्, चन, अपि या स्वित् लगाकर बनाए जाते हैं। जैसे—कश्चित्, कश्चन (कोई), कोऽपि, केनापि, कयाचन, कयाऽपि, कास्वित् आदि ।

**१४२.** उपर्युक्त चित्, चन आदि निपात प्रश्नवाचक क्रियाविशेषणों के साथ भी अनिश्चय का अर्थ बताने के लिए लगाए जाते हैं । जैसे—कदाचित् (कभी), कदाचन, कतिचित् (कुछ), क्वचित् (कहीं), आदि ।

## ७. परिमाण और सादृश्य-वाचक सर्वनाम
## ( Correlative Pronouns )

**१४३.** परिमाण और सादृश्य-वाचक सर्वनाम यद्, तद् और एतद् शब्दों से वत् प्रत्यय लगाकर तथा इदम् और किम् शब्दों से यत्, दृश् और दृश लगाकर बनाए जाते हैं । इन प्रत्ययों को लगाने पर तद् को ता, एतद् को एता और यद् को या हो जाता है। यत् प्रत्यय लगाने पर इदम् का इयत् रूप हो जाता है और किम् का कियत् । दृश् और दृश बाद में होने पर इदम् को ई हो जाता है और किम् को की । जैसे—तावत् (तत् परिमाणमस्य), इयत् (इदं परिमाणमस्य), तादृश (वैसा), ईदृश (ऐसा), कियत् (कितना), आदि ।

**१४४.** संख्या या परिमाण अर्थ को सूचित करने के लिए तद्, यद् और **किम्** शब्दों से अति प्रत्यय हो जाता है। जैसे—तति (उतने), यति (जितने)

और कति (कितने)। इनके रूप बहुवचन में ही चलते हैं। प्रथमा और द्वितीया में इनके आगे की विभक्ति का लोप हो जाता है। जैसे—कति, कति, कतिभिः, कतिभ्यः, कतिभ्यः, कतीनाम्, कतिषु। प्रथम दो स्थानों को छोड़कर शेष रूप हरिवत्।

### ८. परस्पर-संबन्ध-बोधक सर्वनाम (Reciprocal Pronouns)

**१४५.** अन्य, इतर और पर शब्दों की द्विरुक्ति के द्वारा पारस्परिक संबन्ध का बोध कराया जाता है। जैसे—अन्योन्य, इतरेतर और परस्पर। इनका प्रयोग साधारणतया एकवचन में होता है और ये क्रियाविशेषण के तुल्य प्रयुक्त होते हैं। जैसे—परस्परेण स्पृहणीयशोभम्० (रघु० ७–१४), परस्परं विवदन्ते, आदि। समस्त पदों में इनको प्रायः सबसे प्रथम रक्खा जाता है। जैसे—अन्योन्य-शोभाजननाद् बभूव (कुमार० १-४४), इतरेतरयोगाः (शिशुपाल० १०-२४), इत्यादि।

### ९. स्वामित्व-बोधक सर्वनाम (Possessive Pronouns)

**१४६.** स्वामित्व-बोधक सर्वनाम इस प्रकार बनाए जाते हैं—(क) तद्, एतद्, अस्मद् और युष्मद् शब्दों से ईय प्रत्यय लगाकर, (ख) अस्मद् और युष्मद् शब्दों से अ और ईन प्रत्यय लगाकर। अ और ईन प्रत्यय लगाने पर एकवचन में अस्मद् को मामक् और युष्मद् को तावक् हो जाता है तथा बहु-वचन में इनको क्रमशः आस्माक् और यौष्माक् हो जाता है। जैसे—

**अस्मद्**—पुंलिंग

| एकवचन | बहुवचन |
|---|---|
| मदीय (मेरा) | अस्मदीय (हमारा) |
| मामक (मेरा) | आस्माक (हमारा) |
| मामकीन (मेरा) | आस्माकीन (हमारा) |

**अस्मद्**—स्त्रीलिंग

| एक० | बहु० |
|---|---|
| मदीया (मेरी) | अस्मदीया (हमारी) |
| मामिका (मेरी) | आस्माकी (हमारी) |
| मामकीना (मेरी) | आस्माकीना (हमारी) |

**युष्मद्**--पुंलिंग

| एक० | | बहु० | |
|---|---|---|---|
| त्वदीय | (तेरा) | युष्मदीय | (तुम्हारा) |
| तावक | (तेरा) | यौष्माक | (तुम्हारा) |
| तावकीन | (तेरा) | यौष्माकीण | (तुम्हारा) |

**युष्मद्**--स्त्रीलिंग

| एक० | | बहु० | |
|---|---|---|---|
| त्वदीया | (तेरा) | युष्मदीया | (तुम्हारा) |
| तावकी | (तेरा) | यौष्माकी | (तुम्हारा) |
| तावकीना | (तेरा) | यौष्माकीणा | (तुम्हारा) |

**तद्**

पुंलिंग--तदीय, स्त्रीलिंग--तदीया

**एतद्**

पुंलिंग--एतदीय, स्त्रीलिंग--एतदीया

**सूचना**--इनके रूप राम, रमा और नदी के तुल्य चलावें। स्व शब्द सर्वनाम है। उसके रूप सर्वनाम शब्दों के तुल्य चलेंगे।

## १०. सर्वनाम-संबन्धी विशेषण (Pronominal Adjectives)

**१४७.** अन्य (और), अन्यतर (दो में से एक), इतर (दूसरा), एकतम (बहुतों में से एक), कतर (कौन, दो में से), कतम (कौन, बहुतों में से), यतर (जो, दो में से), यतम (जो, बहुतों में से), ततर (वह, दो में से), ततम (वह, बहुतों में से), इनके रूप तीनों लिंगों में यद् के तुल्य चलेंगे। जैसे--

| | | | |
|---|---|---|---|
| पुंलिंग -- | कतरः | कतरौ | कतरे प्र०, इत्यादि। |
| स्त्रीलिंग -- | कतरा | कतरे | कतराः प्र०, इत्यादि। |
| नपुंसकलिंग-- | कतरत् | कतरे | कतराणि प्र०, इत्यादि। |

**सूचना**--अन्यतम शब्द सर्वनाम नहीं है, क्योंकि इसका सर्वादिगण में उल्लेख नहीं है। (तत्रान्यतमशब्दस्य गणे पाठाभावान्न संज्ञा, सि० कौ०) इसलिए इसके रूप रामवत् चलेंगे।

**१४८.** आगे लिखित शब्दों के रूप यद् शब्द के तुल्य चलेंगे, केवल नपुंसक० प्र० द्वि० के एकवचन में अन्त में म् लगेगा। सर्व, विश्व, सम, सिम (चारों का अर्थ है सब), उभ (केवल द्विवचन में रूप चलते हैं), उभय (कैयट और अन्य

वैयाकरणों के अनुसार इसके रूप द्विवचन में नहीं चलते हैं)। (उभ उभय दोनों का अर्थ है--दोनों), इतर, एकतर (दो में से एक)। जैसे--

सर्व—पुंलिंग (सव)

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | सर्वः | सर्वौ | सर्वे |
| द्वि० | सर्वम् | सर्वौ | सर्वान् |
| तृ० | सर्वेण | सर्वाभ्याम् | सर्वैः |
| च० | सर्वस्मै | सर्वाभ्याम् | सर्वेभ्यः |
| पं० | सर्वस्मात् | सर्वाभ्याम् | सर्वेभ्यः |
| ष० | सर्वस्य | सर्वयोः | सर्वेषाम् |
| स० | सर्वस्मिन् | सर्वयोः | सर्वेषु |

स्त्रीलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | सर्वा | सर्वे | सर्वाः |
| द्वि० | सर्वाम् | सर्वे | सर्वाः |
| तृ० | सर्वया | सर्वाभ्याम् | सर्वाभिः |
| च० | सर्वस्यै | सर्वाभ्याम् | सर्वाभ्यः |
| पं० | सर्वस्याः | सर्वाभ्याम् | सर्वाभ्यः |
| ष० | सर्वस्याः | सर्वयोः | सर्वासाम् |
| स० | सर्वस्याम् | सर्वयोः | सर्वासु |

नपुंसकलिंग

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र०, द्वि० | सर्वम् | सर्वे | सर्वाणि |

शेष पुंलिंग के तुल्य।

(क) सम शब्द 'बराबर' अर्थ में सर्वनाम नहीं है। इस अर्थ में इसके रूप रामवत् चलेंगे। जैसे--समः समौ समाः प्र०, समाय च० एक०, समानाम् ष० बहु०। जैसा कि पाणिनि के इस सूत्र में प्रयोग है--यथासंख्यमनुदेशः समानाम् (१-३-१०)।

**१४६. विशेष**—त्व और त्व (सर्वादिगण में १०वाँ और ११वाँ) का अर्थ है—अन्य (दूसरा)। इनमें से पहला शब्द उदात्त है और दूसरा अनुदात्त। दोनों अकारान्त हैं और इनके रूप सर्व के तुल्य चलेंगे। कुछ वैयाकरणों का मत है कि इनमें से पहला शब्द तकारान्त त्वत् है और इसके रूप तकारान्त शब्दों के तुल्य चलेंगे। जैसे--त्वत् त्वतौ त्वतः प्र०, इत्यादि।

**१५०.** ज्ञाति (संबन्धी) और धन अर्थ को छोड़कर शप अर्थों में स्व शब्द सर्वनाम है और इसके रूप तीनों लिंगों में सर्व के तुल्य चलेंगे। [१] स्व शब्द के प्र० बहु०, पं० एक०, स० एक० में राम और सर्व दोनों के तुल्य रूप चलते हैं। जैसे—स्वे स्वाः (अपने) प्र० बहु०, किन्तु स्वाः (अपने संबन्धी) ही रूप ज्ञाति अर्थ में बनेगा और रामवत् रूप चलेंगे।

**१५१.** अन्तर शब्द बाहर और बाहरपहनने योग्य वस्त्रादि के अर्थ में सर्वनाम है। इसके रूप तीनों लिगों में सर्व के तुल्य चलेंगे।[२] पुर् शब्द बाद में होगा तो यह सर्वनाम नहीं होगा।[३] प्र० बहु०, पं० एक० और स० एक० में यह विकल्प से सर्वनाम होगा, अतः इन स्थानों पर राम और सर्व दोनों के तुल्य रूप चलेंगे। जैसे—अन्तरे अन्तरा वा गृहाः। अन्तरे अन्तरा वा शाटकाः (वस्त्र)। किन्तु पुर् बाद में होने पर अन्तरायां पुरि ही रूप बनेगा।

**१५२.** नेम शब्द 'आधा' अर्थ में सर्वनाम है और इसके रूप सर्व शब्द के तुल्य चलते हैं। प्र० बहु० में राम के तुल्य भी रूप होता है—नेमे—नेमाः। शेष सर्ववत्।

**१५३.** पूर्व (पहले, पूर्व दिशा), पर और अवर (बाद का, पश्चिम दिशा), दक्षिण (दक्षिण दिशा), उत्तर (श्रेष्ठ, उत्तर दिशा, बाद का), अपर (दूसरा) और अधर (नीचा, छोटा), जब ये शब्द किसी वस्तु या समय आदि से संबद्ध स्थान, काल या व्यक्ति का निर्देश करते हैं, तब ये सर्वनाम शब्द होते हैं, किसी की संज्ञा या नाम होंगे तो नहीं।[४] इनके रूप सर्व के तुल्य चलेंगे। किन्तु प्र० बहु०, पं० एक और स० एक० में इनके रूप विकल्प से रामवत् भी होंगे। जैसे—पूर्वः पूर्वौ पूर्वे-पूर्वाः प्र०, पूर्वस्मात्-पूर्वात् पूर्वाभ्याम् पूर्वेभ्यः पं०, पूर्वस्मिन्—पूर्वे सप्तमी, इत्यादि। चतुर अर्थ वाले दक्षिण शब्द के रूप रामवत् चलेंगे, अतः दक्षिणा गायकाः (कुशल गायक) में दक्षिणाः ही रूप होगा, दक्षिणे नहीं। संज्ञावाचक उत्तर शब्द के रूप रामवत् चलेंगे। अतः उत्तराः कुरवः (उत्तरकुरु देश)। यहाँ उत्तरे रूप नहीं होगा।

१. **स्वमज्ञातिधनाख्यायाम्** (१-१-३५)।
२. **अन्तरं बहिर्योगोपसंख्यानयोः** (१-१-३६)।
३. **अन्तरं बहिर्योगेति गणसूत्रे अपुरि इति वक्तव्यम्** (वार्तिक)।
४. **पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम्** (१-१-३४)।

**१५४.** संख्यावाचक एक शब्द के रूप एकवचन में ही चलते हैं और द्वि शब्द के द्विवचन में। दोनों शब्दों के रूप तीनों लिंगों में सर्व के तुल्य चलते हैं। रूप चलाने में द्वि का द्व हो जाता है।

| | एक | | द्वि० | |
|---|---|---|---|---|
| | पुं० | स्त्री० | पुं० | स्त्री० नपुं० |
| प्र० | एकः | एका | द्वौ | द्वे |
| द्वि० | एकम् | एकाम् | द्वौ | द्वे |
| तृ० | एकेन | एकया | द्वाभ्याम् | द्वाभ्याम् |
| च० | एकस्मै | एकस्यै | द्वाभ्याम् | द्वाभ्याम् |
| पं० | एकस्मात् | एकस्याः | द्वाभ्याम् | द्वाभ्याम् |
| ष० | एकस्य | एकस्याः | द्वयोः | द्वयोः |
| स० | एकस्मिन् | एकस्याम् | द्वयोः | द्वयोः |

एक० नपुं०—एकम् प्र०, द्वि०। शेष पुंवत्।

जब एक शब्द का एक संख्या अर्थ नहीं होता तो इसके रूप द्विवचन और बहुवचन में भी चलेंगे।

**१५५.** एक शब्द का इन विभिन्न अर्थों में प्रयोग होता है :—

एकोऽल्पार्थे प्रधाने च प्रथमे केवले तथा।
साधारणे समानेऽपि संख्यायां च प्रयुज्यते॥

अल्प (थोड़ा), प्रधान (मुख्य, प्रमुख), प्रथम (पहला), केवल (अकेला), साधारण (सामान्य, जैसे—अविमृश्यकारित्वं हि आपद एको हेतुः), समान (तुल्य, जैसे—अयम् एकान्वयो मम), संख्या (एक संख्या)।

**१५६.** प्रथम, चरम, अल्प, अर्ध, कतिपय और तय-प्रत्ययान्त शब्दों के प्रथमा बहु० में सर्व के तुल्य भी रूप बनते हैं। जैसे—प्रथमे-प्रथमाः, कतिपये—कतिपयाः, द्वितये-द्वितयाः इत्यादि।

## ११. सर्वनाम-संबन्धी क्रियाविशेषण (Pronominal Adverbs)

**१५७.** अधिक प्रचलित सर्वनाम-संबन्धी क्रियाविशेषण शब्द तद्, एतद्, यद्, इदम्, किम् और सर्व इन सर्वनाम शब्दों से तथा पूर्व, पर आदि सर्वनाम-विशेषण शब्दों से निम्नलिखित प्रत्यय लगाकर बनाए जाते हैं :—(क) पंचमी

या सप्तमी के अर्थ में होने वाले तः, त्र, ह,[1] क्व आदि, (ख) समय-बोधक दा, दानीम्, र्हि आदि,[2] (ग) दिशा, स्थान और समयबोधक तात् प्रत्यय,[3] (घ) दिशाबोधक आ, आत्, आहि[4] आदि, (ङ) प्रकार या ढंग के वाचक था, थम् आदि प्रत्यय। जैसे—

तद् ... तदा (तब), तदानीम् (उस समय), तर्हि (तब, तो), तथा (वैसे), तत्र (वहाँ), ततः (वहाँ से, तत्पश्चात्, तब) आदि।

इदम् ... इदानीम् (अब), इत्थम् (इस प्रकार), अत्र (यहाँ), अतः (इसलिए), इतः (यहाँ से), अधुना (अब), इह (यहाँ)।

एतद् .. एतर्हि (अब), इत्थम् (इस प्रकार), अतः (इसलिए, यहाँ से), अत्र (यहाँ)।

यद् ... यर्हि (जब), यदा (जब), यथा (जैसे), यत्र (जहाँ), यतः (जहाँ से, क्योंकि)।

किम् ... कर्हि (कब), कदा (कब), कथम् (क्यों), कुत्र (कहाँ), क्व (कहाँ), कुतः (कहाँ से, कहाँ), कुह (कहाँ से, कैसे)।

सर्व ... सर्वदा (सदा), सदा (हमेशा), सर्वतः (सभी ओर, सर्वत्र), सर्वत्र (सभी जगह, सभी स्थानों पर)।

पर ... परतः (आगे, आगे की ओर) आदि।

पूर्व ... पुरः, पुरस्तात् (सामने, आगे) आदि।

अधर ... अधः, अधस्तात् या अधरस्तात्, अधरतः, अधरात् (नीचे, नीचे की ओर)।

---

१. देखो नियम ३०।

२. सर्वैकान्यकियत्तदः काले दा ((५-३-१५)। इदमोर्हिल् (५-३-१६)। अधुना (५-३-१७)। दानीं च (५-३-१८)। तदो दा च (५-३-१९)। अनद्यतने र्हिलन्यतरस्याम् (५-३-२१)।

३. दिक् शब्देभ्यः सप्तमीपंचमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्तातिः (५-३-२७)।

४. उत्तराधरदक्षिणादातिः (५-३-३४)। दक्षिणादाच् (५-३-३६)। आहि च दूरे (५-३-३७)। प्रकारवचने थाल् (५-३-२३)। इदमस्थमुः (५-३-२४)। किमश्च (५-३-२५)।

अवर ... अधः, अवस्तात् या अवरस्तात्, अवरतः (पीछे, नीचे, नीचे की ओर)।

अपर ... पश्चात् (पीछे से, बाद में, पश्चिम की ओर) आदि।

दक्षिण ... दक्षिणा, दक्षिणात्, दक्षिणाहि (दाहिनी ओर, दक्षिण की ओर)।

उत्तर ... उत्तरा, उत्तरात्, उत्तराहि (उत्तर की ओर)।

**१५८.** निम्नलिखित स्थानों पर सर्व आदि शब्द सर्वनाम नहीं माने जाते हैं और उनके रूप सर्वनाम शब्दों के तुल्य नहीं चलेंगे—(क) किसी के नाम-वाचक होने पर, (ख) समास में गौणरूप से प्रयोग होने पर, (ग) तृतीया-तत्पुरुष समास होने पर या तृतीया तत्पुरुष अर्थ वाले वाक्य के अन्त में होने पर, (घ) द्वन्द्व समास का अन्तिम शब्द होने पर।[1] जैसे—अतिक्रान्तः सर्वम् अतिसर्वः, तस्मै अतिसर्वाय। इसका अतिसर्वस्मै रूप नहीं होगा। इसी प्रकार अतिकतरं कुलम्, मासपूर्वाय या मासेन पूर्वाय (इसका मासपूर्वस्मै रूप नहीं होगा), वर्णाश्रमेतराणाम् आदि। द्वन्द्व समास में प्रथमा बहु० में विकल्प से सर्वनाम होगा।[2] जैसे—वर्णाश्रमेतरे, वर्णाश्रमेतराः।

———

१. संज्ञोपसर्जनीभूतास्तु न सर्वादयः (वार्तिक)। तृतीयासमासे (१-१-३०)। द्वन्द्वे च (१-१-३१)।

२. विभाषा जसि (१-१-३२)।

# अध्याय ५

## संख्यावाचक शब्द और उनके रूप

( Numerals And Their Declension )

१५६. संख्याशब्द (Cardinals) संख्येय शब्द (Ordinals)

| | संख्याशब्द (Cardinals) | पुंलिग, नपुं० | स्त्रीलिंग |
|---|---|---|---|
| १. | एक | प्रथम, अग्रिम, आदिम, | प्रथमा |
| २. | द्वि | द्वितीय, | ० या |
| ३. | त्रि | तृतीय, | ० या |
| ४. | चतुर् | चतुर्थ, | ० र्थी |
| ५. | पञ्चन् | पञ्चम, | ० मी |
| ६. | षष् | षष्ठ, | ० ष्ठी |
| ७. | सप्तन् | सप्तम, | ० मी |
| ८. | अष्टन् | अष्टम, | ० मी |
| ९. | नवन् | नवम, | ० मी |
| १०. | दशन्[1] | दशम, | ० मी |
| ११. | एकादशन् | एकादश, | ० शी |
| १२. | द्वादशन् | द्वादश, | ० शी |
| १३. | त्रयोदशन् | त्रयोदश, | ० शी |
| १४. | चतुर्दशन् | चतुर्दश, | ० शी |
| १५. | पञ्चदशन् | पञ्चदश, | ० शी |
| १६. | षोडशन्[2] | षोडश, | ० शी |
| १७. | सप्तदशन् | सप्तदश, | ० शी |
| १८. | अष्टादशन् | अष्टादश, | ० शी |

१. पंक्ति शब्द का भी अर्थ दस है। देखो रघु० ९–७४।

२. षष् को षो अवश्य हो जाता है, बाद में दत् (दन्त शब्द को दत् होने पर) या दश शब्द हो तो। धा बाद में होने पर षोढा और षड्धा रूप बनते हैं। षो के बाद द को ड हो जाता है। देखो नियम १६९ ख।

| | | पुंलिंग, नपुं० | | स्त्रीलिंग | |
|---|---|---|---|---|---|
| १९. | नवदशन् | नवदश, | ० शी | | |
| | एकोनविंशति | एकोनविंश, | ० शी, | ० विंशतितम, | ० मी |
| | ऊनविंशति | ऊनविंश, | ० शी, | ० ,, , | ० मी |
| | एकान्नविंशति | एकान्नविंश, | ० शी, | ० ,, , | ० मी |
| २०. | विंशति (स्त्री०) | विंश, | ० शी, | विंशतितम, | ० मी |
| २१. | एकविंशति | एकविंश, | ० शी, | ० ,, , | ० ,, |
| २२. | द्वाविंशति | द्वाविंश, | ० शी, | ० ,, , | ० ,, |
| २३. | त्रयोविंशति | त्रयोविंश, | ० शी, | ० ,, , | ० ,, |
| २४. | चतुर्विंशति | चतुर्विंश, | ० शी, | ,, , | ० ,, |
| २५. | पञ्चविंशति | पञ्चविंश, | ० शी, | ,, , | ० ,, |
| २६. | षड्विंशति | षड्विंश, | ० शी, | ,, , | ० ,, |
| २७. | सप्तविंशति | सप्तविंश, | ० शी, | ,, , | ,, |
| २८. | अष्टाविंशति | अष्टाविंश, | ० शी, | ,, , | ,, |
| २९. | नवविंशति | नवविंश, | ० शी, | नवविंशतितम, | ० मी |
| | एकोनत्रिंशत् | एकोनत्रिंश, | ० शी, | ० त्रिंशत्तम, | ० मी |
| | ऊनत्रिंशत् | ऊनत्रिंश, | ० शी, | ० ,, , | ० ,, |
| | एकान्नत्रिंशत् | एकान्नत्रिंश, | ० शी, | ० ,, , | ,, |
| ३०. | त्रिंशत् (स्त्री) | त्रिंश, | ० शी, | त्रिंशत्तम, | ० मी |
| ३१. | एकत्रिंशत् | एकत्रिंश, | ० शी, | एकत्रिंशत्तम, | ० मी |
| ३२. | द्वात्रिंशत् | | | | |
| ३३. | त्रयस्त्रिंशत् | | | | |
| ३४. | चतुस्त्रिंशत् | | | | |
| ३५. | पञ्चत्रिंशत् | | | | |
| ३६. | षट्त्रिंशत् | | | | |
| ३७. | सप्तत्रिंशत् | | | | |
| ३८. | अष्टात्रिंशत् | | | | |
| ३९. | नवत्रिंशत् या एकोनचत्वारिंशत्, आदि | | | | |
| ४०. | चत्वारिंशत् (स्त्री०) | चत्वारिंश, | ० शी, | चत्वारिंशत्तम, | ० मी |

४१. एकचत्वारिंशत्
४२. द्वाचत्वारिंशत् या द्विचत्वारिंशत्
४३. त्रयश्चत्वारिंशत् या त्रिचत्वारिंशत्
४४. चतुश्चत्वारिंशत्
४५. पञ्चचत्वारिंशत्
४६. षट्चत्वारिंशत्
४७. सप्तचत्वारिंशत्
४८. अष्टचत्वारिंशत् या अष्टाचत्वारिंशत्
४९. नवचत्वारिंशत् या एकोनपञ्चाशत्, आदि
५०. पञ्चाशत् (स्त्री०) पञ्चाश, ० शी, पञ्चाशत्तम, ० मी
५१. एकपञ्चाशत्
५२. द्वापञ्चाशत् या द्विपञ्चाशत्
५३. त्रयःपञ्चाशत् या त्रिपञ्चाशत्
५४. चतुःपञ्चाशत्
५५. पञ्चपञ्चाशत्
५६. षट्पञ्चाशत्
५७. सप्तपञ्चाशत्
५८. अष्टपञ्चाशत् या अष्टापञ्चाशत्
५९. नवपञ्चाशत् या एकोनषष्टि, आदि
६०. षष्टि (स्त्री०) षष्टितम, ० मी
६१. एकषष्टि एकषष्ट, ० ष्टी, एकषष्टितम, ० मी
६२. द्वाषष्टि, द्विषष्टि
६३. त्रयःषष्टि, त्रिषष्टि
६४. चतुष्षष्टि
६५. पञ्चषष्टि
६६. षट्षष्टि
६७. सप्तषष्टि
६८. अष्टषष्टि, अष्टाषष्टि
६९. नवषष्टि, या एकोनसप्तति, आदि

७०. सप्तति (स्त्री०) सप्ततितम, ० मी

७१. एकसप्तति एकसप्तत, ० ती, एकसप्ततितम, ० म

७२. द्वासप्तति, द्विसप्तति

७३. त्रयःसप्तति, त्रिसप्तति

७४. चतुस्सप्तति

७५. पञ्चसप्तति

७६. षट्सप्तति

७७. सप्तसप्तति

७८. अष्टसप्तति या अष्टासप्तति

७९. नवसप्तति या एकोनाशीति, आदि

८०. अशीति (स्त्री०) अशीतितम, ० मी

८१. एकाशीति एकाशीत, ० ती, एकाशीतितम, ० मी

८२. द्व्यशीति

८३. त्र्यशीति

८४. चतुरशीति

८५. पञ्चाशीति

८६. षडशीति

८७. सप्ताशीति

८८. अष्टाशीति

८९. नवाशीति या एकोननवति, आदि

९०. नवति (स्त्री०) नवतितम, ० मी

९१. एकनवति एकनवत, ० ती, एकनवतितम, ० मी

९२. द्वानवति या द्विनवति

९३. त्रयोनवति या त्रिनवति

९४. चतुर्नवति

९५. पञ्चनवति

९६. षण्णवति

९७. सप्तनवति

९८. अष्टनवति या अष्टानवति

९९. नवनवति या एकोनशतम्, आदि

१००. शतम् (नपुं०) शततम (पुं०, नपुं०), ० मी (स्त्री०)

२००. द्विशत (नपुं०) या द्वे शते

३००. त्रिशत (नपुं०) या त्रीणि शतानि

१०००. सहस्र (नपुं०) सहस्रतम, ० मी या दशशत (नपुं०) दशशती

१०,००० अयुत (नपुं०), १००,००० लक्ष (नपुं०), लक्षा (स्त्री), प्रयुत (नपुं०), कोटि (स्त्री०), अर्बुद (नपुं०), अब्ज (नपुं०), खर्व (पुं०, नपुं०), निखर्व (पुं०, नपुं०), महापद्म (पुं०), शंकु (पुं०), जलधि (पुं०), अन्त्य (नपुं०), मध्य (नपुं०), परार्ध (नपुं०)। इनमें से प्रत्येक पहली संख्या से दस गुना है।[1]

**१६०.** **संख्या**-शब्दों के बनाने में इन बातों का ध्यान रक्खें—विंशति, त्रिंशत्, चत्वारिंशत् आदि से पहले एक, द्वि आदि शब्द नवन् तक लगाकर आगे की संख्याएँ बनाई जाती हैं। १९, २९, ३९ आदि ९ की संख्या वाले शब्दों को दो प्रकार से बनाया जाता है—(क) पहली दशक वाली संख्या से पहले नव शब्द लगाकर। जैसे—नवदश, नवविंशति आदि। (ख) अगली दशक वाली संख्या लेकर उससे पहले एकोन, ऊन या एकान्न शब्द लगाकर। जैसे—एकोनविंशति (१९), ऊनविंशति, एकान्नविंशति आदि। विंशति और त्रिंशत् से पहले द्वि को द्वा, त्रि को त्रयः और अष्टन् को अष्टा अवश्य हो जाता है। चत्वारिंशत् आदि आगे की संख्याओं से पहले द्वि, त्रि, अष्टन् को ये आदेश विकल्प से होते हैं। अशीति से पहले इन संख्याओं में कोई परिवर्तन नहीं होता है।[2]

**१६१.** १००, २००, ३०० आदि के बीच की संख्याओं का बोध जितनी संख्या सौ आदि से अधिक है, उस संख्या के बाद अधिक शब्द का प्रयोग करके

---

१. **एकदशशतसहस्रायुतलक्षप्रयुतकोटयः क्रमशः।**
**अर्बुदमब्जं खर्वनिखर्वमहापद्मशंकवस्तस्मात्॥**
**जलधिश्चान्त्यं मध्यं परार्धमिति दशगुणोत्तराः संज्ञाः।**
**संख्यायाः स्थानानां व्यवहारार्थं कृताः पूर्वैः॥**

२. **द्व्यष्टनः संख्यायामबहुव्रीह्यशीत्योः (६-३-४७)। त्रेस्त्रयः (६-३-४८)।**
**विभाषा चत्वारिंशत्प्रभृतौ सर्वेषाम् (६-३-४९)**

उसे प्रायः १०० आदि की संख्या से पहले रख देते हैं। जैसे—१०१ के लिए एकाधिकं शतम् या एकाधिकशतम्, ११२ के लिए द्वादशाधिकं शतम् या द्वादशाधिकशतम्, १५० के लिए पञ्चाशदधिकं शतम् इत्यादि। १००० से अधिक संख्या वाले स्थलों पर सैकड़ा और दहाई के बोधक शब्दों के साथ भी अधिक शब्द लगेगा। जैसे—१८९२ के लिए द्वि–द्वानवत्यधिकाष्टशताधिक-सहस्रम्, १७७६३९ के लिए एकोनचत्वारिंशदधिकषट्शताधिकसप्तसप्तति-सहस्राधिकं लक्षम्, इत्यादि। इसी प्रकार अधिक शब्द के स्थान पर उत्तर शब्द का भी प्रयोग किया जा सकता है। जैसे–७५४ के लिए चतुःपञ्चाशदुत्तरं सप्तशतम्। कभी-कभी 'च' (और) अव्यय का प्रयोग करके भी संख्याओं का बोध कराया जाता है। जैसे—७२० के लिए सप्त च शतानि विंशतिश्च।

**१६२.** निम्नलिखित स्थानों पर अधिक शब्द के स्थान पर तद्धित प्रत्यय ड (अ) करके भी प्रयोग किया जा सकता है। दशन् और शत् अन्त वाले शब्दों तथा विंशति शब्द से यह ड (अ) प्रत्यय होता है।[1] अ प्रत्यय करने पर दशन् के अन्, विंशति के अति और शत् के अत् का लोप हो जाता है। ये संख्याएँ शत या सहस्र की विशेषण होनी चाहिएँ। १११ से १५९ तक, २११ से २५९ तक, ३११ से ३५९ तक संख्याएँ इस श्रेणी में आती हैं। जैसे—**१११**-एकादशं शतम्, १२० विंशं शतम्, १५० पञ्चाशं शतम्, २१७ सप्तदशं द्विशतम्, ३३० त्रिंशं त्रिशतम्, इत्यादि।

**१६३.** एक, द्वि, त्रि, चतुर् और षष् शब्दों के संख्येय शब्द विशेष रूप से बनते हैं।[2] दशन् तक की अन्य संख्याओं के संख्येय शब्द बनाने का प्रकार यह है कि इनके अन्तिम न् को हटा दिया जाता है और म जोड़ दिया जाता है। एकादशन् से नवदशन् तक अन्तिम न् हटा दिया जाता है। विंशति से लेकर आगे की संख्याओं से संख्येय बनाने का प्रकार यह है कि उनमें अन्त में तम लगा दिया जाता है अथवा विंशति का ति हटाया जाता है तथा त्रिंशत् आदि

१. **तदस्मिन्नधिकमिति दशान्ताड्डः। (५-२-४५)। शदन्तविंशतेश्च (५-२-४६), शतसहस्रयोरेवेष्यते (वार्तिक)।**

२. **षट्कतिकतिपयचतुरां थुक् (५-२-५१)। इससे कतिथः, चतुर्थः आदि रूप बनते हैं। 'चतुरश्छयतावाद्यक्षरलोपश्च' (वार्तिक)। तुरीयः, तुर्यः। द्वेस्तीयः (५-२-५४)। द्वितीयः। त्रेः संप्रसारणं च (५-२-५५)। तृतीयः।**

का अन्तिम अक्षर ।[1] षष्टि, सप्तति, अशीति, नवति शब्दों से तम प्रत्यय लगा कर ही संख्येय शब्द बनते हैं, किन्तु समासयुक्त स्थलों पर इनके अन्तिम स्वर इ के स्थान पर अ हो जाता है और तम प्रत्यय वाला भी रूप बनता है। जैसे—६१वाँ एकषष्टः या एकषष्टितमः, किन्तु ६०वाँ का षष्टितमः ही रूप बनेगा। शत का शततम ही रूप बनता है।

## संख्या और संख्येय शब्दों के रूप

**१६४.** एक (स्त्री० एका), द्वि (स्त्री० द्वा), त्रि (स्त्री० तिसृ)[2], चतुर् (स्त्री० चतसृ), ये विशेषण शब्द हैं। इनके लिंग, वचन और विभक्ति विशेष्य के तुल्य होते हैं।

**१६५.** एक शब्द के रूप एकवचन में चलते हैं। इसके रूप द्विवचन और बहुवचन में भी चल सकते हैं। द्वि शब्द के रूप केवल द्विवचन में ही चलते हैं। विशेष विवरण के लिए देखो नियम १५४। त्रि और चतुर् शब्द के रूप बहुवचन में ही चलते हैं। जैसे—

**त्रि**

| | पुं० | स्त्री० | नपुं० |
|---|---|---|---|
| प्र० | त्रयः | तिस्रः | त्रीणि |
| द्वि० | त्रीन् | तिस्रः | त्रीणि |
| तृ० | त्रिभिः | तिसृभिः | त्रिभिः |
| च० | त्रिभ्यः | तिसृभ्यः | त्रिभ्यः |
| प० | त्रिभ्यः | तिसृभ्यः | त्रिभ्यः |
| ष० | त्रयाणाम् | तिसृणाम् | त्रयाणाम् |
| स० | त्रिषु | तिसृषु | त्रिषु |

**चतुर्**

| | पुं० | स्त्री० | नपुं० |
|---|---|---|---|
| प्र० | चत्वारः | चतस्रः | चत्वारि |
| द्वि० | चतुरः | चतस्रः | चत्वारि |
| तृ० | चतुर्भिः | चतसृभिः | चतुर्भिः |
| च० | चतुर्भ्यः | चतसृभ्यः | चतुर्भ्यः |

---

१. विंशत्यादिभ्यस्तमडन्यतरस्याम् (५-२-५६)। षष्ट्यादेश्चासंख्यादेः (५-२-५८)।
२. त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ। (७-२-९९)

| | | | |
|---|---|---|---|
| पं० | चतुर्भ्यः | चतसृभ्यः | चतुर्भ्यः |
| ष० | चतुर्णाम् | चतसृणाम् | चतुर्णाम् |
| स० | चतुर्षु | चतसृषु | चतुर्षु |

**१६६.** पञ्चन् से नवदशन्। ये भी विशेषण शब्द हैं। विशेष्य के तुल्य इनकी विभक्तियाँ होती हैं। इनके रूप केवल बहुवचन में चलते हैं। इनके रूप तीनों लिंगों में एक ही प्रकार के होते हैं।

| | **पञ्चन्** | **षष्** | **अष्टन्** |
|---|---|---|---|
| प्र० | पञ्च | षट्-ड् | अष्ट-अष्टौ |
| द्वि० | पञ्च | षट्-ड् | अष्ट-अष्टौ |
| तृ० | पञ्चभिः | षड्भिः | अष्टभिः-अष्टाभिः |
| च० | पञ्चभ्यः | षड्भ्यः | अष्टभ्यः-अष्टाभ्यः |
| पं० | पञ्चभ्यः | षड्भ्यः | अष्टभ्यः-अष्टाभ्यः |
| ष० | पञ्चानाम् | षण्णाम् | अष्टानाम्-अष्टानाम् |
| स० | पञ्चसु | षट्सु | अष्टसु-अष्टासु |

सप्तन्, नवन् तथा नवदशन् तक अन्य संख्याओं के रूप पञ्चन् के तुल्य चलेंगे।

**१६७.** ऊर्नावशति तथा विंशति से लेकर नवनवति तक सारे संख्या-शब्द स्त्रीलिंग हैं। शत, सहस्र आदि सभी शब्द नपुंसक० हैं, पर लक्ष नपुं० और स्त्री० दोनों है, कोटि स्त्री० है, शंकु और जलधि दोनों पुंलिंग हैं तथा इनके रूप सामान्य शब्दों के तुल्य चलेंगे। इन शब्दों के रूप एकवचन में ही चलते हैं। बहुवचन विशेष्य के साथ भी एकवचन वाले रूप का प्रयोग होगा। जैसे—पंचविंशतिर्ब्राह्मणाः (२५ ब्राह्मण), एकादशाधिकेन या एकादशोत्तरेण शतेन नरैः स्त्रीभिर्वा (१११ पुरुषों या स्त्रियों के द्वारा), एकोनसहस्रेण रूपकैः (९९९ रु० के द्वारा), इत्यादि। गणना के विविध प्रकारों में इनका द्विवचन और बहुवचन में भी प्रयोग हो सकता है। जैसे—ब्राह्मणानां विंशतयः (ब्राह्मणों की कई विंशति), द्वे शते नारीणाम् (२०० नारियाँ), इत्यादि।

**१६८.** निम्नलिखित शब्दों को छोड़कर अन्य संख्येय शब्दों के रूप सामान्य शब्दों के तुल्य चलते हैं:—

प्रथम (देखो नियम १५६), द्वितीय और तृतीय शब्दों के रूप च०, पं०,

ष० और स० के एकवचन में विकल्प से सर्वनाम शब्दों के तुल्य चलते हैं। जैसे——द्वितीयस्मै-द्वितीयाय, द्वितीयस्याः-द्वितीयायाः, इत्यादि।

## संख्या-संबन्धी क्रियाविशेषण (Numeral Adverbs)

१६९. (क) सकृत् (एक बार), द्विः (दो बार), त्रिः (तीन बार), चतुः (चार बार) तथा पंचन् से लेकर आगे के बार अर्थ के सूचक शब्दों के साथ कृत्वः प्रत्यय लगता है और उससे पूर्ववर्ती शब्द के अन्तिम न् का लोप हो जाता है। जैसे—पञ्चकृत्वः (पाँच बार), सप्तकृत्वः (सात बार), आदि।

(ख) प्रकार अर्थ वाले क्रियाविशेषण ये हैं :—एकधा या ऐकध्यम्[1] (एक प्रकार से), द्विधा-द्वेधा या द्वैधम् (दो प्रकार से, या दो भागों में), त्रिधा-त्रेधा या त्रैधम् (तीन प्रकार से), चतुर्धा (चार प्रकार से), षोढा या षड्धा (६ प्रकार से), सप्तधा, अष्टधा आदि।

(ग) एकशः (एक-एक करके), द्विशः (दो-दो करके)। इसी प्रकार त्रिशः, शतशः आदि।

१७०. संख्या-शब्दों से बने अन्य शब्द :—

(क) शत् और ति अन्त वाले संख्या-शब्दों आदि से तद्धित प्रत्यय क होता है। जैसे—पञ्चकः (५ रुपये से खरीदी हुई वस्तु), चत्वारिंशत्कः (४० रु० से खरीदी हुई वस्तु), वैंशतिकः (२० रु० से खरीदी हुई वस्तु)।

(ख) 'भागों से युक्त' या 'समूह' अर्थ में तय प्रत्यय लगता है।[2] जैसे—चतुष्टय (स्त्री०, चतुष्टयी) (चार भागों से युक्त या चार का समूह)। इसी प्रकार पञ्चतय (स्त्री० पंचतयी)। द्वि और त्रि शब्द के बाद तय को अय विकल्प से हो जाता है। जैसे—द्वय, द्वितय (स्त्री०, द्वितयी) (दो भागों से युक्त या दुहरी), त्रय, त्रितय (स्त्री० त्रितयी) (तिहरी या तीन भागों से युक्त)।

(ग) क या अत् प्रत्यय लगाकर। जैसे—षट्क (६ का समूह), पञ्चत् (५ का समूह), दशत् (१० का समूह, दशक), आदि।

---

१. संख्याया विधार्थे धा (५-३-४२)। अधिकरणविचाले च (५-३-४३)। एकाद्धो ध्यमुञन्यतरस्याम् (५-३-४४)। द्वित्र्योश्च धमुञ् (५-३-४५)। एधाच्च (५-३-४६)।

२. देखो अध्याय ९ में प्रारम्भिक नियम।

## अध्याय ६

## तुलनार्थक प्रत्यय (Degree of Comparison)

**१७१.** दो की तुलना में तर और बहुतों की तुलना में तम प्रत्यय का बहुत अधिक प्रयोग होता है।[1] साधारणतया शब्दों का तृतीया द्विवचन में भ्याम् से पहले जो रूप रह जाता है, वही तर और तम से पहले भी रहता है। जैसे—अयम् एतयोरतिशयेन लघुः—लघुतरः, अयम् एषामतिशयेन लघुः—लघुतमः। इसी प्रकार युवन्-युवतर, युवतम; विद्वस्-विद्वत्तर, विद्वत्तम; प्राच्-प्राक्तर, प्राक्तम; धनिन्-धनितर, धनितम; धर्मवुध्-धर्मभुत्तर, धर्मभुत्तम; गुरु-गुरुतर, गुरुतम; आदि। अति-अतितर, अतितम; उत्-उत्तर, उत्तम आदि।

**१७२.** तर और तम से पहले शब्द के अन्तिम ई और ऊ को विकल्प से ह्रस्व हो जाता है। जैसे—श्रीतरा-श्रितरा, श्रीतमा-श्रितमा, घेमूतरा-घेमुतरा (अधिक लँगड़ा), घेमूतमा-घेमुतमा, इत्यादि।

**१७३.** तर और तम प्रत्यय जब क्रिया और क्रियाविशेषण के रूप में प्रयुक्त होने वाले अव्ययों से होते हैं, तो इनका रूप तराम् और तमाम् हो जाता है।[2] पचतितराम्, पचतितमाम्; उच्चैस्तराम्, उच्चैस्तमाम्; नितराम्, नितमाम्; सुतराम्, आदि। किन्तु विशेषण शब्द उच्चैस्तरः (अधिक ऊँचा) ही होगा।

**१७४.** दो की तुलना में ईयस् और बहुतों की तुलना में इष्ठ प्रत्यय भी होते हैं। ये दोनों प्रत्यय गुणवाचक शब्दों से ही होते हैं।[3] ये दोनों प्रत्यय बाद

---

१. अतिशायने तमबिष्ठनौ (५-३-५५)। द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ (५-३-५७)। तिङश्च (५-३-५६)। तरप्तमपौ घः (१-१-२२)। जब बहुतों में से एक वस्तु को बढ़कर बताया जाता है, तब तम और इष्ठ प्रत्यय होते हैं। जब दो की तुलना होती है और उनमें से एक को बढ़कर बताया जाता है, तब तर और ईयस् प्रत्यय होते हैं। तर और तम प्रत्यय धातुओं से भी होते हैं।

२. किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे (५-४-११)। किम्, एकारान्त शब्द, तिङन्त धातुरूप और अव्ययों के बाद तर और तम होगा तो उनके बाद आम् और लगेगा। यदि ये शब्द विशेषण होंगे तो आम् नहीं लगेगा।

३. अजादी गुणवचनादेव (५-३-५८)। अजादी अर्थात् ईयस् और इष्ठ।

में होंगे तो शब्द की टि (अन्तिम स्वर या अन्तिम स्वर और उसके बाद का व्यंजन) का लोप हो जाएगा। जैसे—लघु-लघीयस्, लघिष्ठ; पटु-पटीयस्, पटिष्ठ; महत्-महीयस्, महिष्ठ, आदि। किन्तु पाचक के पाचकतर, पाचकतम ही रूप बनेंगे।

**१७५.** मत्वर्थक प्रत्यय विन् और मत् का तथा तृ प्रत्यय का लोप हो जाता है, बाद में ईयस् या इष्ठ प्रत्यय हो तो।[1] ईयस् या इष्ठ लगने से पूर्व टि लोप वाला नियम भी लगेगा। जैसे—मतिमत् (बुद्धिमान्)—मतीयस्, मतिष्ठ; मेधाविन्—मेधीयस्, मेधिष्ठ; धनिन्—धनीयस्, धनिष्ठ; कर्तृ—करीयस्, करिष्ठ (अतिशयेन कर्ता), स्तोतृ—स्तवीयस्, स्तविष्ठ। इसी प्रकार स्रग्विन् (मालाधारी) से स्रजीयस् और स्रजिष्ठ रूप होंगे।

**१७६.** ईयस्, इष्ठ और इमन् प्रत्यय बाद में होने पर ह्रस्व ऋ के स्थान पर र हो जाता है। शब्द के प्रारम्भ में कोई व्यंजन अक्षर होना चाहिए।[2] जैसे—

| **शब्द**(Positive) | **ईयस् प्रत्यय**(comparative) | **इष्ठ प्रत्यय**(Superlative) |
|---|---|---|
| कृश (दुर्बल) | क्रशीयस् | क्रशिष्ठ |
| दृढ (बलवान्) | द्रढीयस् | द्रढिष्ठ |
| परिवृढ (मुख्य) | परिव्रढीयस् | परिव्रढिष्ठ |
| पृथु (विशाल, चौड़ा) | प्रथीयस् | प्रथिष्ठ |
| भृश (अधिक) | भ्रशीयस् | भ्रशिष्ठ |
| मृदु (कोमल) | म्रदीयस् | म्रदिष्ठ |

**१७७.** अधिक प्रचलित शब्दों के ईयस् और इष्ठ प्रत्यय से बनने वाले रूप नीचे दिए गए हैं। ये अपवाद शब्द हैं और अकारादि-क्रम से दिए गए हैं :—

| **शब्द** (Positive) | **ईयस् प्रत्यय** (Comparative) | **इष्ठ प्रत्यय** (Superlative) |
|---|---|---|
| अन्तिक (समीप)[3] | नेदीयस् | नेदिष्ठ |
| अल्प (थोड़ा)[4] | अल्पीयस्, कनीयस् | अल्पिष्ठ, कनिष्ठ |

१. **विन्मतोर्लुक् (५-३-६५)। तुरिष्ठेमेयःसु (६-४-१५४)।**
२. **र ऋतो हलादेर्लघोः (६-४-१६१)।**
३. **अन्तिकबाढयोर्नेदसाधौ (५-३-६३)**
४. **युवाल्पयोः कनन्यतरस्याम् (५-३-६४)**

| | | |
|---|---|---|
| उरु (विशाल)[1] | वरीयस् | वरिष्ठ |
| क्षिप्र (तीव्र)[2] | क्षेपीयस् | क्षेपिष्ठ |
| क्षुद्र (तुच्छ) | क्षोदीयस् | क्षोदिष्ठ |
| गुरु (भारी) | गरीयस् | गरिष्ठ |
| तृप्र (चिन्तित, सन्तुष्ट) | त्रपीयस् | त्रपिष्ठ |
| दीर्घ (लम्बा) | द्राघीयस् | द्राघिष्ठ |
| दूर (दूर) | दवीयस् | दविष्ठ |
| प्रशस्य (प्रशंसनीय)[3] | श्रेयस्, ज्यायस् | श्रेष्ठ, ज्येष्ठ |
| प्रिय (प्रिय) | प्रेयस् | प्रेष्ठ |
| बहु (अधिक)[4] | भूयस् | भूयिष्ठ |
| बहुल (अधिक) | बंहीयस् | बंहिष्ठ |
| बाढ (दृढ, ठीक) | साधीयस् | साधिष्ठ |
| युवन् (युवक) | यवीयस्, कनीयस् | यविष्ठ, कनिष्ठ |
| विपुल (बहुत) | ज्यायस् | ज्येष्ठ |
| वृद्ध (वृद्ध) | वर्षीयस्, ज्यायस् | वर्षिष्ठ, ज्येष्ठ |
| वृन्दारक (बहुत सुन्दर) | वृन्दीयस् | वृन्दिष्ठ |
| स्थिर (स्थायी) | स्थेयस् | स्थेष्ठ |
| स्थूल (बड़ा, मोटा) | स्थवीयस् | स्थविष्ठ |
| स्फिर (बहुत) | स्फेयस् | स्फेष्ठ |
| ह्रस्व (छोटा) | ह्रसीयस् | ह्रसिष्ठ |

**१७८.** ईयस् और इष्ठ प्रत्ययान्त के बाद भी अर्थ के महत्त्व को बढ़ाने के लिए तर और तम प्रत्यय कहीं-कहीं लगाए जाते हैं। जैसे—पापीयस्तर, पापीयस्तम; श्रेष्ठतर, श्रेष्ठतम।

---

१. **प्रियस्थिरस्फिरोरुबहुलगुरुवृद्धतृप्रदीर्घवृन्दारकाणां प्रस्थस्फवर्बंहिगर्वर्षित्रब्द्राघिवृन्दाः (६-४-१५७)। प्रिय, स्थिर, स्फिर आदि के स्थान पर क्रमशः प्र, स्थ, स्फ, वर् आदि आदेश होते हैं।**

२. **स्थूलदूरयुवह्रस्वक्षिप्रक्षुद्राणां यणादिपरं पूर्वस्य च गुणः (६-४-१५६)। स्थूल आदि शब्दों के अन्तिम य, र, ल, व का लोप हो जाता है और उससे पूर्ववर्ती स्वर को गुण हो जाता है।**

३. **प्रशस्यस्य श्रः (५-३-६०)। ज्य च (५-३-६१)। वृद्धस्य च (५-३-६२)।**

४. **बहोर्लोपो भू च बहोः (६-४-१५८)। इष्ठस्य यिट् च (६-४-१५९)।**

# अध्याय ७

## समास (Compounds)

**१७९.** संस्कृत व्याकरण में वृत्ति शब्द क्लिष्ट शब्द-रचना के अर्थ को प्रकट करता है, जिनकी व्याख्या की आवश्यकता होती है। वृत्ति का अर्थ है—परार्थाभिधान अर्थात् दूसरे (प्रत्यय, पदार्थ) के अर्थ को कहना। वृत्तियाँ ५ होती हैं :—(१) कृद्वृत्ति—धातुओं के साथ कृत् प्रत्ययों को लगा कर रूप बनाना, (२) तद्धितवृत्ति—शब्दों से तद्धित प्रत्ययों को लगाकर रूप बनाना, (३) धातुवृत्ति या सनाद्यन्त धातुवृत्ति—धातुओं से सन् प्रत्यय आदि लगाकर रूप बनाना। (४) समासवृत्ति—एक से अधिक शब्दों का समास करके समस्त शब्द बनाना। (५) एकशेषवृत्ति—समान रूप या अर्थ वाले अनेक शब्दों में से एक शब्द का शेष रहना और सभी शब्दों का अर्थ प्रकट करना। प्रथम तीन का आगे यथास्थान वर्णन किया जाएगा। इस अध्याय में अन्तिम दो वृत्तियों का विवरण दिया जाएगा।

**१८०.** संस्कृत में प्रातिपदिक, विशेषण, क्रिया-शब्द और अव्यय, इन शब्दों में सामर्थ्य है कि वे एक दूसरे के साथ मिल सकें और मिलकर समास-युक्त शब्द या समस्त शब्द बना सकें।[1]

(क) इस प्रकार से बने हुए समस्त शब्द का फिर साधारण या समस्त शब्द के साथ समास हो सकता है और यह समस्त पद फिर किसी समस्त पद का अवयव हो सकता है।

**१८१.** साधारणतया समास में कई शब्दों को मिला दिया जाता है। विग्रह की अवस्था में प्रत्येक पद अपने पारस्परिक संबन्धों का बोध नहीं कराता है। समस्त पद ही अपने अवयवों में विद्यमान विभिन्न सम्बन्धों का बोध कराता है। अन्तिम शब्द के बाद में ही विभक्तियाँ लगती हैं और वाक्य में अपने संबन्ध के अनुसार उसमें लिंग आदि होते हैं। शेष शब्दों (व्यंजनान्त

---

१. **समास का अर्थ है—सम् + अस्, अच्छे प्रकार से मिलाना।**

शब्दों) का प्रायः वही रूप रहता है, जो हलादि विभक्तियों से पहले रहता है। जैसे—विद्वस् + जनः = विद्वज्जनः, राजन् + पुरुषः = राजपुरुषः आदि।

**१८२.** समस्त पदों में स्वरान्त या व्यंजनान्त प्रथम शब्द का अगले शब्द के प्रथम अक्षर के साथ मेल होने पर सामान्यतया जो सन्धि-नियम लागू होते हैं, वे लगेंगे।

**१८३.** कुछ समस्त पदों में बीच की विभक्तियों का लोप नहीं होता है, ऐसे समास को अलुक् समास कहते हैं। जैसे—देवानां प्रियः (मूर्ख), युधिष्ठिरः (पाण्डवों में सबसे बड़े भाई का नाम)।

**१८४.** समासों को स्पष्ट करने वाले वाक्यों को विग्रह-वाक्य कहते हैं। इन विग्रह-वाक्यों में वे विभक्तियाँ लगाई जाती हैं, जिनके द्वारा समस्त पद के प्रत्येक शब्द का पारस्परिक संबन्ध ठीक ढंग से स्पष्ट हो सके।

(क) जिन स्थानों पर समस्त पद के ही विविध शब्द विग्रह में न दिए जा सकें या जिनका विग्रह-वाक्य देना संभव न हो, ऐसे समास को नित्य समास कहते हैं। (अविग्रहो नित्यसमासः, अस्वपदविग्रहो वा, सि० कौ०)

**१८५.** समासों को मुख्यतया चार भागों में बाँटा गया है :—

(१) द्वन्द्व (copulative), (२) तत्पुरुष (Determinative), (३) बहुव्रीहि (Attributive), (४) अव्ययीभाव (Adverbial) [1]

**विशेष**—समासों के ये नाम अपने नाम मात्र से किसी अर्थ को स्पष्ट नहीं करते हैं, अर्थात् ये नाम समासों की मुख्य विशेषताओं को प्रकट नहीं करते हैं।

---

१. साधारण रूप से कहने पर समास के चार भेद होते हैं। समास का पाँचवाँ भेद भी है—सहसुपा समास। चारों समासों में दिए गए नियम इस समास पर लागू नहीं होते हैं। इस समास का अभिप्राय है कि किसी भी सुबन्त पद का किसी भी सुबन्त पद के साथ समास हो सकता है। कुछ वैयाकरणों के मतानुसार समास के ६ भेद हैं—सुपां सुपा तिङा नाम्ना धातुनाऽथ तिङां तिङा सुबन्तेनेति विज्ञेयः समासः षड्विधो बुधैः। अर्थात् सुपां सुपा—राजपुरुषः। तिङा—पर्यभूषत्। नाम्ना—कुम्भकारः। धातुना—कटप्रूः, अजस्रम्। तिङां तिङा—पिबतखादता, खादतमोदता। तिङां सुपा—कृन्तविचक्षणेति यस्यां क्रियायां सा कृन्तविचक्षणा। एहीडादयोऽन्यपदार्थे इति मयूरव्यंसकादौ पाठात् समासः। (सि० कौ०)

समासों के नामों में अन्तर करने के लिए ये शब्द अपनाए गए हैं। ये नाम सामान्य संज्ञाशब्दों के तुल्य समझने चाहिएँ।

## १. द्वन्द्व समास (Copulative compounds)

**१८६.** द्वन्द्व समास में दो या अधिक संज्ञा-शब्दों का समास होता है। य शब्द विग्रह की अवस्था में च (और) अव्यय के द्वारा संवद्ध होते हैं।[1] जैसे—रामकृष्णौ और रामः च कृष्णः च, ये दोनों समानार्थक हैं। पाणिपादम् और पाणी च पादौ च, ये दोनों समानार्थक हैं। द्वन्द्व समास के तीन भेद हैं—इतरेतर, समाहार द्वन्द्व और एकशेष।[2]

**१८७.** जहाँ पर द्वन्द्वसमास में समस्त पदों का पृथक् पृथक् अर्थ लिया जाता है, वहाँ पर इतरेतर द्वन्द्व होता है। जैसे—धवखदिरौ छिन्धि (धव और खैर के पेड़ों को काटो)। इस वाक्य में धव और खदिर दोनों शब्द स्वतन्त्र हैं और दोनों का महत्त्व समान है। वर्णित वस्तुओं की संख्या के अनुसार द्विवचन या बहुवचन होता है। इस समास में अन्तिम पद का जो लिंग होता है, वही पूरे समस्त पद का लिंग होता है।[3] जैसे—कुक्कुटश्च मयूरी च—कुक्कुटमयूर्यौ इमे। मयूरी स्त्रीलिंग है, अतः स्त्रीलिंग द्विवचन मानकर इदम् स्त्री० का द्वि० इमे प्रयुक्त हुआ है। मयूरी च कुक्कुटश्च—मयूरीकुक्कुटौ इमौ। कुक्कुट के कारण पुंलिंग इमौ का प्रयोग है। रामश्च लक्ष्मणश्च भरतश्च शत्रुघ्नश्च—रामलक्ष्मण-भरतशत्रुघ्नाः, इत्यादि।

---

१. चार्थे द्वन्द्वः (२–२–२९)

२. वस्तुतः एकशेष को द्वन्द्व का उपभेद कहना ठीक नहीं है। एकशेष स्वयं एक पृथक् वृत्ति है। (देखो नियम १७९)। संस्कृत-वैयाकरण एकशेष को द्वन्द्व नहीं मानते हैं। सुविधा के लिए इसको द्वन्द्व मान लिया जाता है। भट्टोजि दीक्षित का कथन है कि एकशेष में एक से अधिक सुबन्त नहीं होते हैं, अतः इसे द्वन्द्व नहीं कहना चाहिये। (अनेकसुबन्ताभावाद् न द्वन्द्वः)। यहाँ यह भी स्मरण रखना चाहिए कि द्वन्द्व समास का अन्तिम स्वर उदात्त होता है, परन्तु एकशेष की समास में गणना नहीं है, अतः इसका अन्तिम स्वर उदात्त नहीं होता है।

३. परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः। (२–४–२६)

**अपवाद**––अश्वश्च वडवा च अश्ववडवौ (पुं० द्विव०) (घोड़ा और खच्चर), अहश्च रात्रिश्च अहोरात्रः (पुं० द्विव०, दिन और रात)।

**१८८.** समाहार द्वन्द्व द्वन्द्वसमास का वह भेद है, जिसमें अनेक वस्तुओं के समूह या संग्रह का भाव प्रदर्शित किया जाता है। इसमें सदा नपुंसकलिंग और एकवचन ही होता है। जैसे––आहारनिद्राभयम् का अर्थ केवल भोजन, नींद और भय ही नहीं, अपितु पशु-जीवन की सभी विशेषताएँ इसम निहित हैं। इस समास में समूह का अर्थ मुख्य होता है और विभिन्न पदों का अर्थ गौण।

**१८९.** इन स्थानों पर समाहार द्वन्द्व होता है––शरीर के अंगों के वाचक शब्दों का, विविध वाद्यों को वजाने वालों का, सेना के अंगवाचक शब्दों का, निर्जीव वस्तुओं का (वस्तुओं या द्रव्यों का ही, गुणों का नहीं), भिन्न लिंग वाले नदीवाचक शब्दों का और देशों का (ग्रामों का नहीं), क्षुद्र जन्तुओं कीटादि का, जिन जीवों में स्वाभाविक विरोध है उनका।[1] जैसे––पाणी च पादौ च––पाणिपादम् (हाथ-पैर), रथिकाश्च अश्वारोहाश्च––रथिकाश्वारोहम् (रथी और घुड़सवार), मार्दङगिकाश्च पाणविकाश्च––मार्दङगिकपाणविकम् (मृदंग और पणव अर्थात् ढोल वजाने वाले), धानाश्च शष्कुल्यश्च–धाना-शष्कुलि (भुने धान और पूड़ी)। रूपं च रसश्च–रूपरसौ (रूप और रस), गुणवाचक होने से यहाँ द्विवचन है। गङगा च शोणश्च––गङगाशोणम् (गंगा और सोन नदियाँ)। गंगा च यमुना च–गंगायमुने। दोनों में लिंगभेद नहीं है, अतः द्विवचन है। कुरवश्च कुरुक्षेत्रं च–कुरुकुरुक्षेत्रम् (दो देशों के नाम)। इन स्थानों पर समाहार नहीं होगा— जाम्बवं च शालूकिनी च—जाम्बवशालूकिन्यौ (इनमें शालकिनी गाँव का नाम है)। मद्राश्च केकयाश्च—मद्रकेकयाः (दोनों में लिंगभेद नहीं है। दो देशों के नाम हैं)। यूका च लिक्षा च—यूकालिक्षम् (जूँ और लीख)। अहिश्च नकुलश्च—अहिनकुलम् (साँप और न्योला)।

**१९०.** निम्नलिखित स्थानों पर विकल्प से समाहार द्वन्द्व होता है, अतः एकवचन भी होगा और द्विव० बहु० भी। वृक्षवाचक शब्दों का, मृगवाचक शब्दों

---

१. **द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङगानाम्** (२–४–२), **जातिरप्राणिनाम्** (२–४–६), **विशिष्टलिङगो नदीदेशोऽग्रामाः** (२–४–७), **क्षुद्रजन्तवः** (२–४–८), **येषां च विरोधः शाश्वतिकः** (२–४–९)।

का, तृणों का, धान्य या अनाजों का, व्यंजनों का, पशुओं का, पक्षियों का, अश्व-वडव, पूर्वापर, अधरोत्तर इन शब्दों का, विरोधी अर्थ वाले शब्दों का यदि वे द्रव्यवाचक न हों तो।[1] क्रमशः उदाहरण ये हैं––प्लक्षाश्च न्यग्रोधाश्च––प्लक्षन्यग्रोधम्-धाः। इसी प्रकार रुरुपृषतम्-ताः (मृगों के भेद)। कुशकाशम्-शाः (घास के भेद), व्रीहियवम्-वाः (अनाज के भेद), दधिघृतम्–ते, गोमहिषम्–षाः, शुकबकम्––काः, अश्ववडवम्–वौ, पूर्वापरम्–रे, अधरोत्तरम्–रे। शीतोष्णम्–ष्णे। किन्तु जलवाचक में द्विवचन ही होगा––शीतोष्णे उदके स्तः।

**१६१.** निम्नलिखित स्थानों पर बहुवचन वाले शब्दों का ही समाहार द्वन्द्व और एकवचन होता है, अन्यत्र नहीं––फलों का, सेना के अंगों का, वनस्पतियों का, मृगों का, पक्षियों का, क्षुद्र जीवों का, अन्नों का और तृणों का।[2] जैसे––बदराणि च आमलकानि च––बदरामलकम्। यदि बहुवचन वाला प्रयोग नहीं होगा तो समाहार नहीं होगा––बदरं च आमलकं च––बदरामलके। रथिकश्च अश्वारोहश्च––रथिकाश्वारोहौ, इत्यादि।

**१६२.** निम्नलिखित स्थानों पर ये रूप बनते हैं। नियमानुसार ये रूप नहीं बन सकते हैं, अतः इनका निपातन (ऐसा ही रूप बनेगा) किया गया है। वे हैं––

(क) **समाहार द्वन्द्व**––गावश्च अश्वाश्च––गवाश्वम्, पुत्राश्च पौत्राश्च––पुत्रपौत्रम्। इसी प्रकार स्त्रीकुमारम्, उष्ट्रखरम् (ऊँट और गधा), उष्ट्रशशम् (ऊँट और खरगोश), मांसशोणितम्, दर्भशरम् (कुशा और सरकंडा), तृणोलपम् (तिनका और घास या झाड़ी), दासीदासम् आदि।

(ख) **इतरेतर द्वन्द्व**––दधिपयसी (दही और दूध), इध्माबर्हिषी (समिधाएँ और घास), सर्पिर्मधुनी, मधुसर्पिषी (शहद और घी), शुक्लकृष्णौ, अध्ययनतपसी, आद्यवसाने, उलूखलमुसले, ऋक्सामे (ऋक् + सामन्) (ऋग्वेद और सामवेद के मन्त्र), वाङ्मनसे (वाक् + मनस्) (वाणी और मन)। (सूत्र

---

१. **विभाषा वृक्षमृगतृणधान्यव्यंजनपशुशकुन्यश्ववडवपूर्वापराधरोत्तराणाम्। (२-४-१२)। विप्रतिषिद्धं चानधिकरणवाचि (२-४-१३)**

२. **फलसेनाङ्गवनस्पतिमृगशकुनिक्षुद्रजन्तुधान्यतृणानां बहुप्रकृतिरेव द्वन्द्व एकवदिति वाच्यम्। (वार्तिक)।**

५-४-७७ से निपातन के द्वारा ऋक्सामे में सामन् के न् का लोप और वाङ्-मनसे में मनस् के अन्त में अ प्रत्यय)।

**१९३.** विद्या-संबन्ध या योनि (रक्त) संबन्ध से सम्बद्ध ऋकारान्त शब्दों का द्वन्द्व समास होने पर अन्तिम शब्द से पूर्ववर्ती ऋकारान्त शब्द के ऋ के स्थान पर आ हो जाएगा। पुत्र शब्द बाद में होगा तो भी विद्या और योनि संबन्ध वाले ऋकारान्त के ऋ को आ हो जाएगा।[1] होता च पोता च—होतापोतारौ (होता और पोता नामक दो यज्ञकर्ता)। होता च पोता च नेष्टा च उद्गाता च—होतृपोतृनेष्टोद्गातारः। यदि इनमें से दो दो शब्दों का समास किया जाएगा तो सभी पूर्वपदों में ऋ के स्थान पर आ रहेगा। जैसे—होता च पोता च—होतापोतारौ, तौ च उद्गाता च—होतापोतोद्गातारः, इत्यादि। पिता च पुत्रश्च—पितापुत्रौ, माता च पिता च—मातापितरौ। माता च पिता च—मातरपितरौ (६-३-३२) और पितरौ (देखो नियम १९७ क) भी रूप बनते हैं।

**१९४.** (क) प्रसिद्ध साहचर्य वाले देवतावाचक शब्दों का द्वन्द्व समास होने पर पूर्ववर्ती शब्द के अन्तिम अक्षर के स्थान पर आ हो जाता है। वायु शब्द साथ में होगा तो यह नियम नहीं लगेगा।[2] जैसे—मित्रावरुणौ, सूर्याचन्द्र-मसौ, अग्नामरुतौ, आदि। किन्तु अग्निवायू और वाय्वग्नी ही रूप बनेंगे।

(ख) सोम या वरुण शब्द बाद में होगा तो अग्नि के इ को ई हो जाएगा।[3] जैसे—अग्नीषोमौ, अग्नीवरुणौ।

**१९५.** यदि समाहार द्वन्द्व समास होने पर अन्तिम शब्द के अन्त में चवर्ग, द्, ष्, ह् होंगे तो उनमें अन्त में अ जुड़ जाएगा।[4] वाक् च त्वक् च—वाक्-त्वचम् (वाणी और त्वचा), त्वक्स्रजम् (त्वचा और माला), शमीदृषदम्, वाक्त्विषम्, छत्रोपानहम् (छाता और जूता), इत्यादि। समाहार द्वन्द्व न होने के कारण प्रावृट्शरदौ में अन्त में अ नहीं लगा है।

---

१. **आनङ् ऋतो द्वन्द्वे (६-३-२५)। द्वयोर्द्वयोर्द्वन्द्वं कृत्वा पुनर्द्वन्द्वे तु होतापो-तोद्गातारः। (सि० कौ०)**
२. **देवताद्वन्द्वे च (६-३-२६)। वायुशब्दप्रयोगे प्रतिषेधः (वार्तिक)।**
३. **ईदग्नेः सोमवरुणयोः (६-३-२७)।**
४. **द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात् समाहारे (५-४-१०६)।**

**१९६.** निम्नलिखित स्थानों पर द्वन्द्व समास करने पर ये रूप बनते हैं :—

(क) द्यौश्च पृथिवी च—द्यावापृथिव्यौ, दिवस्पृथिव्यौ ।[१] (द्युलोक और पृथिवी)। इसी प्रकार द्यावाभूमी, द्यावाक्षामा । उषस्+सूर्य=उषासासूर्यम् (उषा और सूर्य) ।[२]

(ख) जाया+पति=दम्पती, जम्पती, जायापती (पति-पत्नी) ।[३]

(ग) स्त्री च पुमान् च—स्त्रीपुंसौ, धेनुश्च अनड्वान् च—धेन्वनडुहौ, अक्षिणी च भ्रुवौ च—अक्षिभ्रुवम्, दाराश्च गावश्च—दारगवम्, ऊरू च अष्ठीवन्तौ च—ऊर्वष्ठीवम् (जाँघ और घुटने), पादौ च अष्ठीवन्तौ च—पादष्ठीवम् । नक्तं च दिवा च—नक्तन्दिवम्, रात्रौ च दिवा च—रात्रिन्दिवम्, अहनि च दिवा च—अहर्दिवम् (तीनों का अर्थ है—दिन और रात) ।[४]

**१९७.** जब एक अर्थ और एक रूप वाले अनेक शब्दों का (या एक अर्थ वाले विरूप शब्दों का)[५] समास होता है तो उनमें से एक शब्द शेष रहता है और उससे आवश्यक वचन होते हैं। जैसे—रामश्च रामश्च रामौ, रामश्च रामश्च रामश्च रामाः । इसको एकशेष द्वन्द्व कहते है । जहाँ पर पुंलिग और स्त्रीलिंग का समास होता है, वहाँ पुंलिग शेष रहता है और उससे द्विवचन आदि होते हैं। जैसे—हंसी च हंसश्च—हंसौ । इसी प्रकार ब्राह्मणौ, शूद्रौ, अजौ, आदि ।

(क) यह एकशेष का नियम कुछ विरूप शब्दों में भी लगता है । जैसे—भ्राता च स्वसा च—भ्रातरौ। पुत्रश्च दुहिता च—पुत्रौ।[६] माता च पिता च—पितरौ (देखो नियम १९३)।[७] श्वश्रूश्च श्वशुरश्च—श्वशुरौ, श्वश्रूश्वशुरौ।[८] स च

---

१. दिवो द्यावा ( ६-३-२९ ) । दिवसश्च पृथिव्याम् ( ६-३-३० )
२. उषासोषसः ( ६-३-३१ )
३. कुछ विद्वान् दम्पती शब्द को नियमित रूप से बना हुआ शब्द मानते हैं। वेद में दम् का अर्थ है—घर, पति-स्वामी, अतः दम्पती का अर्थ होगा—घर की स्वामिनी ।
४. अचतुर० ( ५-४-७७ ) सूत्र से इन शब्दों में समासान्त अ प्रत्यय लगा है। आगे नियम २८४ में यह सूत्र उद्धृत किया गया है ।
५. विरूपाणामपि समानार्थानाम् । ( वार्तिक ) । वक्रदण्डश्च कुटिलदण्डश्च वक्रदण्डौ, कुटिलदण्डौ ।
६. भ्रातृपुत्रौ स्वसृदुहितृभ्याम् । ( १-२-६८ )
७. पिता मात्रा । ( १-२-७० )
८. श्वशुरः श्वश्र्वा ( १-२-७१ ) । त्यदादीनि सर्वैर्नित्यम् ( १-२-७२ )

सा च तौ, स च देवदत्तश्च तौ, स च यश्च यौ, तौ ।[1] जहाँ पर पुंलिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसक० तीनों लिंगों के शब्द हों, वहाँ नपुंसकलिंग शेष रहेगा । जैसे—तच्च देवदत्तश्च—ते, तच्च देवदत्तश्च यज्ञदत्ता च—तानि ।

**१६८.** द्वन्द्व समास में समस्त पदों के पौर्वापर्य के विषय में निम्नलिखित नियमों का ध्यान रखना चाहिए :—

(क) इकारान्त और उकारान्त शब्दों को सब से पहले रखना चाहिए । जहाँ पर एक से अधिक इस प्रकार के शब्द हैं, वहाँ पर किसी एक शब्द को पहले रखना चाहिए और शेष शब्दों के विषय में यह नियम नहीं लगेगा ।[2] जैसे—हरिहरौ, हरिहरगुरवः, हरिगुरुहराः, इत्यादि ।

(ख) ऐसे शब्द को पहले रखना चाहिए, जिसके प्रारम्भ में स्वर हो और अन्त में अ हो ।[3] जैसे—अश्वरथेन्द्राः, इन्द्राश्वरथाः । जहाँ पर पहला और यह दोनों नियम लागू हों, वहाँ पर यह नियम ही लगेगा । जैसे—इन्द्राग्नी ।

(ग) जिस शब्द में कम स्वर हों, उसे पहले रखना चाहिए । जहाँ पर एक से अधिक शब्द समान मात्रा वाले हों, वहाँ पर लघु या कम अक्षर वाला शब्द पहले रखना चाहिए । जैसे—शिवकेशवौ, ग्रीष्मवसन्तौ, कुशकाशम्, आदि । ऋतु और नक्षत्रवाची शब्दों में जहाँ बराबर अक्षर वाले शब्द हों, वहाँ उनको ज्योतिष के क्रम के अनुसार रखना चाहिए । जैसे—हेमन्तशिशिरवसन्ताः, कृत्तिकारोहिण्यौ, आदि । अधिक सम्माननीय का पहले प्रयोग होगा । जैसे—तापसपर्वतौ ।[4]

(घ) वर्णों के नाम क्रम से देने चाहिएं । भाइयों के नाम भी बड़े से प्रारम्भ करके देने चाहिएँ ।[5] जैसे—ब्राह्मणक्षत्रियविट्शूद्राः, युधिष्ठिरार्जुनौ ।

**१६९.** राजदन्तादि शब्दों में पूर्व प्रयोग के योग्य शब्द का बाद में प्रयोग होगा । किन्तु इस गण के ही उपभेद धर्मादि शब्दों में यह नियम विकल्प से लगेगा ।[6]

---

१. पूर्वशेषोऽपि दृश्यत इति भाष्यम् । ( सूत्र १-२-७२ पर सि० कौ० )
२. द्वन्द्वे घि ( २-२-३२ ) । अनेकप्राप्तावेकत्र नियमोऽनियमः शेषे (वार्तिक)
३. अजाद्यदन्तम् ( २-२-३३ )
४. अल्पाच्तरम् ( २-२-३४ ) । लघ्वक्षरं पूर्वम् । ऋतुनक्षत्राणां समाक्षराणामानुपूर्व्येण । अभ्यर्हितं च । ( वार्तिक )
५. वर्णानामानुपूर्व्येण ( वार्तिक) । भ्रातुर्ज्यायसः ( वार्तिक ) ।
६. राजदन्तादिषु परम् ( २-२-३१ ) । धर्मादिष्वनियमः (वार्तिक ) ।

जैसे—दन्तानां राजा—राजदन्तः, शूद्रार्यम् (शूद्र और आर्य) । धर्मश्च अर्थश्च—धर्माथौं, अर्थधर्मौ । इसी प्रकार शब्दार्थौ-अर्थशब्दौ, अर्थकामौ-कामार्थौ आदि ।

## २. तत्पुरुष समास (Determinative Compounds)

**२००.** तत्पुरुष समास में दो या अधिक पदों का समास होता है । इसमें बाद वाले शब्द का अर्थ मुख्य होता है । उससे ही समस्त पद के अर्थ का निर्णय होता है ।

**२०१.** तत्पुरुष समास को ६ भागों में विभक्त किया गया है :—( १ ) तत्पुरुष, सामान्य ( Infectional )—जिसमें मध्यगत विभक्तियों का लोप होता है । ( २ ) नञ् ( Negative ) तत्पुरुष । ( ३ ) कर्मधारय ( Appositional ), इसमें द्विगुसमास का भी संग्रह समझना चाहिए । ( ४ ) प्रादि ( Prepositional ) तत्पुरुष । ( ५ ) गति ( Prepositional ) तत्पुरुष । (६) उपपद-समास । ये उपपद संज्ञा, विशेषण या क्रियाविशेषण शब्द होते हैं ।

**२०२.** स्त्रीलिंग शब्द के अन्तिम स्वर आ, ई या ऊ को ह्रस्व हो जाता है, यदि यह स्त्रीलिंग शब्द समास का उत्तरपद हो और विशेषण के रूप में प्रयुक्त हो । इन्हीं अवस्थाओं में गो शब्द के ओ को उ हो जाता है ।[1] जैसे—प्राप्त + जीविका = प्राप्तजीविकः (तत्पुरुष), अतिमालः (तत्पुरुष), पञ्चगुः (५ गायों वाला) । बह्व्यो नाड्यो यस्मिन् सः बहुनाडिः (देहः, बहुव्रीहि) (बहुत नाडियों वाला शरीर) । चित्रा गावो यस्य सः चित्रगुः (जिसके पास विचित्र वर्ण वाली गौएँ हैं), आदि । किन्तु कल्याणपञ्चमीकः में ई को ह्रस्व नहीं होगा, क्योंकि यह अन्तिम अक्षर नहीं है ।

(क) यदि अन्तिम ई और ऊ स्त्रीप्रत्यय का नहीं है तो उसे ह्रस्व नहीं होगा । सुष्ठु धीः—सुधीः, बहुतन्त्रीर्धमनी ।

### (१) तत्पुरुष

**२०३.** तत्पुरुष समास का प्रथम भेद वह है, जहाँ पर द्वितीया से लेकर सप्तमी तक किसी भी विभक्ति का समास होता है । द्वितीया से सप्तमी तक ६ विभक्तियों के आधार पर इसके भी ६ भेद हैं ।

---

१. **गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य ( १-२-४८ ) ।**

**२०४.** (क) द्वितीयान्त शब्द का श्रित, अतीत, पतित, गत, अत्यस्त, प्राप्त, आपन्न, गमी, बुभुक्षु आदि शब्दों के साथ समास होता है।[१] जैसे—कृष्णं श्रितः—कृष्णश्रितः (कृष्ण का आश्रय लेने वाला), दुःखम् अतीतः—दुःखातीतः (जिसने दुःख को पार कर लिया है), सुखम् आपन्नः—सुखापन्नः (जिसने सुख प्राप्त कर लिया है), ग्रामं गमी—ग्रामगमी (गाँव को जाने वाला, यात्री), अन्नं बुभुक्षुः—अन्नबुभुक्षुः, इत्यादि।

**सूचना**—प्राप्त और आपन्न का पहले भी प्रयोग हो सकता है। जैसे—प्राप्तो जीविकाम्—प्राप्तजीविकः, जीविकाप्राप्तः (जिसने आजीविका प्राप्त कर ली है)। इसी प्रकार आपन्नजीविकः, जीविकापन्नः, प्राप्तजीविका स्त्री, इत्यादि।

(ख) कालवाचक द्वितीयान्त शब्द का द्वितीयान्त शब्द के साथ समास होता है, अत्यन्त संयोग अर्थ में।[२] जैसे—मुहूर्तं सुखम्—मुहूर्तसुखम् (क्षणभर का सुख)। संवत्सरं वासः—संवत्सरवासः (सालभर रहना), इत्यादि।

(ग) द्वितीयान्त खट्वा शब्द का क्त-प्रत्ययान्त के साथ समास होता है, निन्दा अर्थ में।[३] जैसे—खट्वाम् आरूढः—खट्वारूढः (मूर्ख)। देखो भट्टि० ५–१०।

(घ) सामि अव्यय और कालवाचक द्वितीयान्त शब्दों का क्त-प्रत्ययान्त के साथ समास होता है।[४] जैसे—सामिकृतम् (आधा किया)। मासं प्रमितः—मास-प्रमितः प्रतिपच्चन्द्रः (प्रतिपदा का चन्द्रमा नए मास के प्रारम्भ का सूचक है)।

## तृतीया-समास

**२०५.** (क) तृतीयान्त शब्द का उसके द्वारा किए गए कार्य के साथ तथा अर्थ शब्द के साथ समास होता है।[५] जैसे—शंकुलया खण्डः—शंकुलाखण्डः (सरौते से किया गया टुकड़ा)। धान्येन अर्थः—धान्यार्थः (धान्य के द्वारा प्राप्त धन)।

(ख) कर्ता या करण में हुई तृतीया वाले तृतीयान्त शब्द का कृदन्त के साथ

१. **द्वितीया श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः ( २-१-२४ )। गम्यादीनामुपसंख्यानम् ( वार्तिक )।**
२. **अत्यन्तसंयोगे च ( २-१-२९ )।**
३. **खट्वा क्षेपे ( २-१-२६ )।**
४. **सामि ( २-१-२७ )। कालाः ( २-१-२८ )।**
५. **तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन ( २-१-३० )।**

समास होता है ।[1] जैसे—हरिणा त्रातः—हरित्रातः (हरि के द्वारा रक्षित), नखैर्भिन्नः—नखभिन्नः (नाखून से फाड़ा हुआ), इत्यादि ।

(ग) तृतीयान्त का इन शब्दों के साथ समास होता है—पूर्व, सदृश, सम, ऊन, ऊन अर्थ वाले अन्य शब्द, कलह, निपुण, मिश्र, श्लक्ष्ण और अवर ।[2] जैसे—मासेन पूर्वः—मासपूर्वः । मात्रा सदृशः—मातृसदृशः (माता के तुल्य), पितृसमः (पिता के तुल्य), माषेण ऊनम्—माषोनम् । इसी प्रकार माषविकलम् (१ माशा भर कम) । वाचा कलहः—वाक्कलहः (मौखिक युद्ध), आचारनिपुणः, गुडमिश्रः, आचारश्लक्ष्णः (आचार के नियमों के पालन से कृश), मासेन अवरः—मासावरः (१ महीना छोटा) ।

(घ) किसी व्यंजनवाचक तृतीयान्त शब्द का अन्न के साथ समास होता है । तृतीयान्त मिश्रण की वस्तु का भक्ष्य वस्तु के साथ समास होता है ।[3] दध्ना ओदनः—दध्योदनः (दही मिश्रित चावल) । गुडेन धानाः—गुडधानाः (गुड़ मिश्रित भुने हुए धान) ।

(ङ) कभी-कभी स्वयम् शब्द तृतीयान्त का अर्थ बताता है और उसका समास होता है । जैसे—स्वयंकृतः (स्वयं किया गया) ।

**२०६.** कुछ स्थानों पर तृतीया तत्पुरुष समास करने पर बीच की तृतीया विभक्ति का लोप नहीं होता है । इसको अलुक्समास कहते हैं ।[4] जैसे—अञ्जसा कृतम्—अञ्जसाकृतम् (सरलता से किया) । ओजसाकृतम् (शक्ति से किया), पुंसानुजः (जिसका बड़ा भाई है), जनुषान्धः (जन्म से अन्धा) । मनसागुप्ता, मनसाज्ञायी (जब ये संज्ञावाचक हों) । अन्यथा मनोगुप्ता, मनोज्ञायी आदि । आत्मन् की तृतीया का अलुक् होता है, बाद में कोई संख्येय शब्द हो तो ।[5] जैसे—आत्मना पञ्चमः—आत्मनापञ्चमः ।

---

१. कर्तृकरणे कृता बहुलम् ( २-१-३२ ) ।
२. पूर्वसदृशसमोनार्थकलहनिपुणमिश्रश्लक्ष्णैः ( २-१-३१ ) ।
३. अन्नेन व्यंजनम् ( २-१-३४ ) । भक्ष्येण मिश्रीकरणम् ( २-१-३५ ) ।
४. ओजःसहोम्भस्तमसस्तृतीयायाः ( ६-३-३ ) । अञ्जस उपसंख्यानम् ( वार्तिक ) । पुंसानुजो जनुषान्ध इति च ( वार्तिक ) । मनसश्च संज्ञायाम् ( ६-३-४ ) ।
५. आत्मनश्च ( ६-३-६ ) । पूरण इति वक्तव्यम् ( वार्तिक ) ।

## चतुर्थी-समास[1]

**२०७.** (क) चतुर्थ्यन्त का उस वस्तु के साथ समास होता है, जिससे वह चीज बनी है। जैसे—यूपाय दारु—यूपदारु (यज्ञिय स्तम्भ के लिए लकड़ी)।

(ख) चतुर्थ्यन्त का इन शब्दों के साथ समास होता है :—अर्थ, बलि, हित, सुख और रक्षित। अर्थ शब्द के साथ नित्य समास होता है और विशेष्य के अनुसार इसका लिंग होता है। द्विजाय अयम्—द्विजार्थः सूपः (ब्राह्मण के लिए दाल), द्विजाय इयं—द्विजार्था यवागूः (ब्राह्मण के लिए जौ की लप्सी), द्विजाय इदं—द्विजार्थं पयः, भूतेभ्यो बलिः—भूतबलिः (भूतों या जीवों के लिए अन्नदान), गवे हितम्—गोहितम् (गाय के लिए हितकारी), गवे सुखम्—गोसुखम्, गवे रक्षितं—गोरक्षितम्।

**२०८.** चतुर्थी विभक्ति के अलुक् के उदाहरण :—परस्मैपदम्, परस्मैभाषा; आत्मनेपदम्, आत्मनेभाषा।

## पञ्चमी-समास

**२०९.** (क) पञ्चम्यन्त शब्दों का भयवाचक, भय, भीत, भीति और भीः शब्दों के साथ समास होता है।[2] जैसे—चोराद् भयम् चोरभयम् (चोर से भय)। वृकाद् भीतः—वृकभीतः (भेड़िए से डरा हुआ), इत्यादि।

(ख) कुछ विशिष्ट स्थानों पर इन शब्दों के साथ पञ्चम्यन्त का समास होता है :—अपेत, अपोढ, मुक्त, पतित और अपत्रस्त।[3] जैसे—सुखादपेतः—सुखापेतः (सुख से वंचित), कल्पनाया अपोढः—कल्पनापोढः (कल्पना से रहित, विचारहीन, मूर्ख), चक्रमुक्तः, स्वर्गपतितः (स्वर्ग से पतित, पापी), तरंगापत्रस्तः (तरंगों से डरा हुआ)।

(ग) इन शब्दों का क्त प्रत्ययान्त के साथ समास होता है और पंचमी का अलुक् होता है—स्तोक (थोड़ा), अन्तिक (समीप), दूर (दूर), इन अर्थों वाले अन्य शब्द तथा कृच्छ्र (कठिनाई) शब्द।[4] जैसे—स्तोकाद् मुक्तः—स्तोकान्मुक्तः,

---

१. **चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः ( २-१-३६ )।**
२. **पञ्चमी भयेन ( २-१-३७ )। भयभीतभीतिभीभिरिति वाच्यम् (वार्तिक)।**
३. **अपेतापोढमुक्तपतितापत्रस्तैरल्पशः ( २-१-३८ )।**
४. **स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि क्तेन। ( २-१-३९ )।**

अल्पान्मुक्तः, अन्तिकादागतः, अभ्याशादागतः, दूरादागतः, विप्रकृष्टादागतः, कृच्छ्रादागतः ।

### षष्ठी तत्पुरुष

**२१०.** साधारणतया किसी भी षष्ठ्यन्त शब्द का दूसरे शब्द के साथ समास हो जाता है—राज्ञः पुरुषः—राजपुरुषः (राजा का पुरुष, राजकर्मचारी) ।

**२११.** (क) कर्ता अर्थ में तृ और अक कृत् प्रत्यय होंगे तो उन शब्दों के साथ षष्ठ्यन्त का समास नहीं होगा ।[1] जैसे—अपां स्रष्टा होगा, अप्स्रष्टा नहीं । घटस्य कर्ता, ओदनस्य पाचकः, इत्यादि । परन्तु इक्षूणां भक्षणम्—इक्षुभक्षिका में समास होगा, क्योंकि यहाँ पर अक कर्ता अर्थ में नहीं है ।

**अपवाद-नियम**—निम्नलिखित शब्दों के साथ षष्ठी-समास हो जाएगा :—याजक (यज्ञ कराने वाला), पूजक, परिचारक, परिवेषक (परोसने वाला), स्नापक (अपने स्वामी को स्नान करानेवाला या उसके स्नानार्थ जल लाने वाला), अध्यापक, उत्सादक (नष्ट करने वाला), होतृ, भर्तृ (जब इसका अर्थ धारण करनेवाला न हो), इत्यादि शब्द ।[2] ब्राह्मणयाजकः, देवपूजकः, राजपरिचारकः, इत्यादि । अग्निहोता, भूभर्ता आदि । किन्तु वज्रस्य भर्ता (वज्र का धारक) रूप होगा ।

(ख) निर्धारण अर्थात् बहुतों में से एक को छाँटने अर्थ में हुई षष्ठी का अन्यों के साथ समास नहीं होता ।[3] जैसे—नृणां द्विजः श्रेष्ठः ।

(ग) षष्ठ्यन्त का इनके साथ समास नहीं होता है[4]:—संख्येय शब्दों

---

१. **तृजकाभ्यां कर्तरि ( २-२-१५ ) ।**
२. **याजकादिभिश्च ( २-२-९ ) ।**
३. **न निर्धारणे ( २-२-१० ) ।**
४. **पूरणगुणसुहितार्थसदव्ययतव्यसमानाधिकरणेन ( २-२-११ ) । क्तेन च पूजायाम् ( २-२-१२ ) । अधिकरणवाचिना च ( २-२-१३ ) । इस सूत्र के द्वारा गुणवाचक शब्दों के साथ षष्ठी-समास का निषेध नित्य नहीं समझना चाहिए, क्योंकि स्वयं पाणिनि ने 'तदशिष्यं संज्ञाप्रमाणत्वात्' में संज्ञाप्रमाणत्व में समास किया है । अतः अर्थगौरवम्, बुद्धिमान्द्यम् आदि रूप बनते हैं । ( अनित्योऽयं गुणेन निषेधः । तदशिष्यं संज्ञाप्रमाणत्वात्, इत्यादिनिर्देशात् । तेनार्थगौरवं बुद्धिमान्द्यमित्यादि सिद्धम्, सि० कौ० ) ।**

के साथ, गुणवाचक शब्दों, तृप्ति अर्थ वाले शब्दों, शतृ और शानच् प्रत्ययान्त शब्दों, आदरार्थक क्त प्रत्ययान्त शब्द, अधिकरणवाचक क्त-प्रत्ययान्त शब्द, कृदन्त अव्यय शब्द और तव्य-प्रत्ययान्त शब्द । जैसे—सतां षष्ठः, ब्राह्मणस्य शुक्लाः (दन्ताः), काकस्य कार्ष्ण्यम्, फलानां सुहितः (फलों से तृप्त) (यहाँ पर तृतीया-तत्पुरुष हो सकता है), द्विजस्य कुर्वन् कुर्वाणो वा किंकरः, सतां मतः (सज्जनों के द्वारा सत्कृत), राज्ञां पूजितः, इदमेषाम् आसितं (आसन) गतं भुक्तं वा, ब्राह्मणस्य कृत्वा, नरस्य कर्तव्यम्, इत्यादि ।

**सूचना**—राजपूजितः, राजमतः, आदि समासों को तृतीया-तत्पुरुष समास समझना चाहिए ।

**अपवाद-नियम** (१) यदि किसी गुणवाचक शब्द के बाद तर प्रत्यय है तो उसके साथ षष्ठ्यन्त का समास हो जाएगा और तर का लोप हो जाएगा । सर्वेषां श्वेततरः—सर्वश्वेतः (सबसे अधिक सफेद) । इसी प्रकार सर्वेषां महत्तरः—सर्वमहान् आदि ।

(२) द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ और तुर्य शब्दों का एकदेशी (अर्थात् समूह, जिसके वे अंश हैं) के साथ समास होता है और इन शब्दों का विकल्प से पहले प्रयोग होता है[1] । द्वितीयं भिक्षायाः—द्वितीयभिक्षा, भिक्षाद्वितीयम् (भिक्षा का आधा भाग) । किन्तु द्वितीयं भिक्षायाः भिक्षुकस्य (भिक्षुक का दुबारा भीख माँगना) में समास नहीं होगा ।

**सूचना**—द्वितीयभिक्षा, पूर्वकायः आदि समासों को षष्ठी तत्पुरुष कहना ठीक नहीं है । द्वितीयभिक्षा में पहला शब्द अर्थ का निर्णय कराता है । अतः इसे केवल तत्पुरुष कहना चाहिए । कुछ इसको प्रथमा-तत्पुरुष भी कहते हैं ।

(क) जहाँ पर कृदन्त शब्द के साथ कर्ता और कर्म दोनों होते हैं और कर्म में ही षष्ठी होती है, उस षष्ठ्यन्त का समास नहीं होता है ।[2] जैसे—आश्चर्यो गवां दोहोऽगोपेन । जो ग्वाला नहीं है, उसके द्वारा गाय का दुहा जाना आश्चर्य की बात है ।

**२१२.** पूर्व, अपर, अधर, उत्तर और अर्ध (नपुं०) शब्दों का षष्ठ्यन्त

१. **द्वितीयतृतीयचतुर्थतुर्याण्यन्यतरस्याम्** ( २-२-३ ) ।
२. **कर्मणि च** ( २-२-१४ ) ।

अवयवी के साथ समास होता है और इन शब्दों का पूर्व प्रयोग होता है ।[1] जैसे—पूर्वं कायस्य—पूर्वकायः (शरीर का आगे का भाग), अपरकायः, अधरकायः आदि । अर्ध पिप्पल्याः—अर्धपिप्पली । किन्तु ग्रामस्य अर्धः—ग्रामार्धः होगा । यहाँ अर्ध पुं० है ।

**सूचना**—यह नियम अवयव-अवयवी संबन्ध वाले स्थानों पर ही लगता है, अतः वस्तु एक ही होनी चाहिए । जहाँ वस्तुएँ अनेक होंगी, वहाँ पर समास नहीं होगा । जैसे—पूर्वः छात्राणाम् (छात्रों में प्रथम), अर्धं पिप्पलीनाम् (पीपलों में से आधा) में समास नहीं होगा । अतः पूर्वछात्रः आदि रूप नहीं बनेंगे ।

**२१३.** अवयववाची शब्द का कालवाचक शब्द के साथ समास होता है और अवयववाचक शब्द का पहले प्रयोग होता है । जैसे—मध्यम् अह्नः—मध्याह्नः (दोपहर), सायाह्नः, मध्यरात्रः, आदि ।

**२१४.** कालवाचक शब्द का घटनासूचक शब्द के साथ समास होता है ।[2] जैसे—मासो जातस्य यस्य सः—मासजातः (जिसको पैदा हुए एक मास हो गया है) । इसी प्रकार द्व्यहजातः, संवत्सरमृतः, आदि ।

**२१५.** षष्ठी-समास में इन स्थानों पर अलुक् होता है । इन स्थानों पर षष्ठी विभक्ति बनी रहेगी ।

(क) निन्दा अर्थ में षष्ठी का अलुक् होगा ।[3] जैसे—चोरस्य कुलम् । किन्तु ब्राह्मणकुलम् में समास होगा । मूर्ख अर्थ में देवानां प्रियः में षष्ठी का अलुक् होगा । अन्यत्र देवप्रियः ।

(ख) वाच्, दिश् और पश्यत् के बाद क्रमशः युक्ति, दण्ड और हर शब्द होंगे तो षष्ठी का अलुक् होगा ।[4] वाचोयुक्तिः (चतुरतायुक्त वाणी), दिशोदण्डः (आकाश में तारों का डण्डे के तुल्य विशेष रूप से दीखना), पश्यतोहरः (सुनार या चोर, जो दूसरे के देखते हुए ही चोरी कर लेता है) ।

---

१. **पूर्वापराधरोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे** (२-२-१) । **अर्धं नपुंसकम्** (२-२-२) ।
२. **कालाः परिमाणिना** ( २-२-५ ) ।
३. **षष्ठ्या आक्रोशे** ( ६-३-२१ ) । **देवानां प्रिय इति च मूर्खे** ( वार्तिक ) ।
४. **वाग्दिक्पश्यद्भ्यो युक्तिदण्डहरेषु** ( वार्तिक ) ।

(ग) इन स्थानों पर षष्ठी का अलुक् होता है[1]—दिवोदासः (काशी के एक राजा का नाम), दिवस्पतिः (इन्द्र), वाचस्पतिः (बृहस्पति, वाणी का पति), शुनःशेपः, शुनःपुच्छः, शुनोलाङ्गूलः (अजीगर्त के पुत्रों के नाम)।

(घ) पुत्र बाद में हो तो विकल्प से अलुक्, यदि निन्दा अर्थ हो तो[2]। दास्याः पुत्रः, दासीपुत्रः (दासी से उत्पन्न पुत्र), अन्यत्र ब्राह्मणीपुत्रः।

(ङ) ऋकारान्त शब्द के बाद षष्ठी का अलुक् नित्य होता है, यदि विद्या-संबन्ध या योनि (रक्त) संबन्ध हो तो। यदि ऋकारान्त के बाद स्वसृ या पति शब्द होंगे तो षष्ठी का अलुक् विकल्प से होगा। अलुक् वाले स्थानों पर मातुः पितुः के बाद स्वसृ के स् को ष् विकल्प से होगा। जहाँ अलुक् नहीं है, वहाँ पर मातृ पितृ के बाद स्वसृ के स् को ष् अवश्य होगा।[3] जैसे—होतुः पुत्रः, होतुरन्तेवासी (होता का शिष्य)। मातुःस्वसा, मातुःष्वसा, मातृष्वसा। इसी प्रकार पितुःस्वसा आदि। (समास न होने पर मातुः स्वसा, पितुः स्वसा रूप होंगे।) स्वसृपतिः, स्वसुःपतिः। होतृधनम् में षष्ठी का लोप होगा।

### सप्तमी-समास

**२१६.** (क) सप्तम्यन्त का शौण्ड, धूर्त, कितव (तीनों का अर्थ है धूर्त), प्रवीण, संवीत (संयुक्त), अन्तर, अधि, पटु, पण्डित, कुशल, चपल, निपुण, सिद्ध, शुष्क, पक्व और वन्ध शब्दों के साथ समास होता है।[4] जैसे—अक्षेषु शौण्डः—अक्षशौण्डः (जूए में चतुर), ईश्वरे अधि—ईश्वराधीनः (ईश्वर पर निर्भर) (यहाँ पर अधि के साथ समास होने पर अन्त में ख प्रत्यय अर्थात् ईन अवश्य जुड़ जाएगा। इसलिए समस्त पद में अधीन रूप होगा)। आतपशुष्कः (धूप में सूखा हुआ), स्थालीपक्वः (पतीली में पकाया हुआ), चक्रबन्धः (एक विशेष प्रकार की पद्य-रचना), इत्यादि।

---

१. दिवश्च दासे (वा०), शेपपुच्छलाङ्गूलेषु शुनः (वा०)।
२. पुत्रेऽन्यतरस्याम् (६-३-२२)।
३. ऋतो विद्यायोनिसंबन्धेभ्यः (६-३-२३)। विभाषा स्वसृपत्योः (६-३-२४)। मातुः पितुर्भ्यामन्यतरस्याम् (८-३-८५)। मातृपितृभ्यां स्वसा (८-३-८४)।
४. सप्तमी शौण्डः (२-१-४०), सिद्धशुष्कपक्वबन्धैश्च (२-१-४१)।

(ख) काकवाची शब्दों के साथ निन्दा अर्थ में ।[1] तीर्थे ध्वाङ्क्ष इव—तीर्थध्वाङ्क्षः (कौवे के तुल्य अतिलोभी) । तीर्थकाकः । इसी प्रकार नगरकाकः, नगरवायसः आदि ।

पात्रेसमितादि गण में इसी प्रकार के भाव वाले वहुत से सप्तमी-समास-युक्त शब्द हैं । जैसे—कूपे मण्डूक इव—कूपमण्डूकः (कुएँ में रहने वाले मेढक के तुल्य संसार की वातों से सर्वथा अनभिज्ञ व्यक्ति) । इसी प्रकार कुम्भमण्डूकः, उदपानमण्डूकः, उदुम्वरकृमिः, उदुम्वरमशकः (गूलर में रहने वाला कीड़ा या मच्छर, अर्थात् संसार की बातों से अनभिज्ञ व्यक्ति), कूपकच्छपः इत्यादि । कुछ स्थानों पर सप्तमी का अलुक् भी होता है । जैसे—गेहेशूरः (घर में ही बहादुरी दिखाने वाला, कायर), गेहेव्याडः (घर में ही धूर्तता दिखाने वाला), गेहेनर्दी (घर में ही वहादुरी दिखाने वाला), पात्रेकुशलः (खाने में ही चतुर अर्थात् निकम्मा साथी), पात्रेसमिताः, गोष्ठेशूरः, गोष्ठेविजयी, गेहेधृष्टः, इत्यादि ।

**सूचना**—इस गण के शब्दों का अन्य शब्दों के साथ समास नहीं होता है ।

(ग) सप्तम्यन्त का सुबन्त के साथ समास होता है, यदि समस्त पद किसी की संज्ञा हो तो । हलन्त और अकारान्त शब्दों के वाद सप्तमी का अलुक् होता है, संज्ञावाचक हो तो ।[2] जैसे—अरण्येतिलकाः (जंगली सरसों तेल न देने वाली । अतः आशा के अनुरूप कार्य न करने वाला) । इसी प्रकार वनेकसेरुकाः, त्वचिसारः (बाँस) (त्वक्सारः भी रूप बनता है) । ये शब्द नित्य समास हैं, इनमें समास करना अनिवार्य है । (वाक्येन संज्ञानवगमान्नित्यसमासोऽयम्, सि० कौ०) ।

(घ) सप्तम्यन्त का कृत्य प्रत्ययान्त के साथ समास होता है, अवश्य कर्तव्य अर्थ हो तो ।[3] मासेदेयं ऋणम्, पूर्वाह्णे गेयं साम । यहाँ पर नियम २१७ (ख) से अलुक् ।

---

१. **ध्वाङ्क्षेण क्षेपे ( २-१-४२ ), पात्रेसमितादयश्च ( २-१-४८ ) । चकारोऽवधारणार्थः । तेनैषां समासान्तरे घटकतया प्रवेशो न । (सि० कौ० ) ।**
२. **संज्ञायाम् ( २-१-४४ ) । हलदन्तात् सप्तम्याः संज्ञायाम् ( ६-३-९ ) ।**
३. **कृत्यैर्ऋणे ( २-१-४३ ) ।**

(ङ) दिन या रात्रि के विभाग के सूचक सप्तम्यन्त शब्दों का क्त-प्रत्ययान्त के साथ समास होता है। सप्तमी के अर्थ में वर्तमान तत्र का भी क्तान्त के साथ समास होता है।[1] जैसे—पूर्वाह्णे कृतं—पूर्वाह्णकृतम्, अपर-रात्रकृतम्, तत्रभुक्तम्, आदि। दिन का अवयव न होने से अह्नि दृष्टम् में समास नहीं होगा। सप्तम्यन्त का क्तान्त के साथ समास होता है निन्दा अर्थ में। इसमें सप्तमी का अलुक् भी होगा। अवतप्तेनकुलस्थितं त एतत् (तेरा वह कार्य तपी हुई भूमि पर न्यौले के बैठने के तुल्य है)। अवतप्तेनकुलस्थितम् का अभिप्राय है कि यह असंगत कार्य है।

२१७. सप्तमी के अलुक् के अन्य उदाहरण :—

(क) इन स्थानों पर सप्तमी का अलुक् होता है—(१) गो या युध् शब्द के बाद स्थिर शब्द हो तो।[2] जैसे—गविष्ठिरः (आकाश में स्थिर), युधिष्ठिरः (युद्ध में स्थिर)। (२) हृद् और दिव् के बाद स्पृश् शब्द हो तो। हृदिस्पृक्, दिविस्पृक् (हृदयं दिवं च स्पृशतीति)। (३) मध्य और अन्त के बाद गुरु शब्द हो तो। मध्येगुरुः, अन्तेगुरुः। (४) मूर्धन् और मस्तक को छोड़ कर अन्य शरीर के अवयववाची शब्दों के बाद कोई शब्द हो तो। बाद में काम शब्द हो तो नहीं। कण्ठेकालः, उरसिलोमा (जिसकी छाती पर बाल हैं, बहुव्रीहि)। किन्तु मूर्धशिखः, मस्तकशिखः, मुखे कामोऽस्य मुखकामः ही रूप होंगे।

(ख) सप्तम्यन्त का कृदन्त के साथ समास होने पर प्रायः सप्तमी का अलुक् होता है, यदि वह शब्द किसी की संज्ञा हो तो।[3] जैसे—स्तम्बेरमः (हाथी) (स्तम्बे रमते असौ, हाथी बाँधने के खूँटे में रमनेवाला), कर्णेजपः (चुगलखोर, दूसरे के कान में कानाफूसी करने वाला), खेचरः (आकाश में भ्रमण करने वाला, दिव्य जीव), पंकेरुहम् (कमल), कुशेशयम्, जलेशयः (मछली)। किन्तु कुरुचरः ही रूप बनता है। सरसिजम् या सरोजम् आदि।

(ग) कालवाचक शब्दों के बाद सप्तमी का विकल्प से अलुक् होता है,

---

१. **क्तेनाहोरात्रावयवाः** ( २-१-४५ )। **तत्र** ( २-१-४६ )। **क्षेपे** ( २-१-४७ )।
२. **गवियुधिभ्यां स्थिरः** ( ८-३-९५ )।
३. **तत्पुरुषे कृति बहुलम्** ( ६-३-१४ )।

बाद में तर, तम, तन और काल शब्द हो तो ।[1] जैसे—पूर्वाह्णेकाले, पूर्वाह्णकाले, पूर्वाह्णेतरे, पूर्वाह्णतरे आदि । पूर्वाह्णेतने, पूर्वाह्णतने ।

(घ) प्रावृट्, शरद्, काल और दिव् के बाद ज हो तो सप्तमी का अलुक् अवश्य होगा, यदि संज्ञा न हो तो । वर्ष, क्षर, शर और वर शब्दों के बाद ज होगा तो सप्तमी का अलुक् विकल्प से होगा ।[2] जैसे—प्रावृषिजः, शरदिजः, कालेजः, दिविजः । वर्षेजः, वर्षजः (वर्षा में उत्पन्न होने वाला) इत्यादि ।

**अपवाद-नियम**—इन स्थानों पर सप्तमी का अलुक् नहीं होगा अर्थात् सप्तमी का लोप होगा । सप्तम्यन्त के बाद में इन् प्रत्ययान्त, सिद्ध, बन्ध और लौकिक स्थ शब्द हो तो ।[3] जैसे—स्थण्डिलशायी (संन्यासी), सांकाश्यसिद्धः, चक्र-बन्धः, समस्थः । किन्तु वेद में कृष्णोऽस्याखरेष्ठः रूप बनेगा ।

(ङ) हलन्त और अकारान्त शब्द के बाद सप्तमी का विकल्प से अलुक् होता है, बाद में शय, वास, वासिन् और बन्ध शब्द हो तो । ये शब्द काल-वाचक न हों ।[4] जैसे—खेशयः, खशयः, ग्रामेवासः—ग्रामवासः, ग्रामेवासी—ग्रामवासी, हस्तेबन्धः—हस्तबन्धः । किन्तु भूमिशयः, गुप्तिबन्धः ही रूप होंगे ।

## (२) नञ् तत्पुरुष समास (Negative Compounds)

**२१८.** निषेधार्थक नञ् शब्द का किसी भी शब्द के साथ समास होता है । बाद में व्यंजन होगा तो नञ् का अ शेष रहेगा और बाद में स्वर होगा तो अन् शेष रहेगा ।[5] जैसे—न ब्राह्मणः—अब्राह्मणः (ब्राह्मण से इतर), न अश्वः—अनश्वः, असत् (अविद्यमान या अनुचित) आदि ।

**२१९.** निम्नलिखित स्थानों पर न शेष रहता है, उसे अ या अन् नहीं होगा[6] :—नभ्राट् (बादल, न चमकने वाला), नपात् (न रक्षा करनेवाला,

---

१. **घकालतनेषु कालनाम्नः ( ६-३-१७ ) ।**
२. **प्रावृट्शरत्कालदिवां जे ( ६-३-१५ ) । विभाषा वर्षक्षरशरवरात् ( ६-३-१६ ) ।**
३. **नेन्सिद्धबध्नातिषु च ( ६-३-१९ ) । स्थे च भाषायाम् ( ६-३-२० ) ।**
४. **बन्धे च विभाषा ( ६-३-१३ ) । शयवासवासिष्वकालात् ( ६-३-१८ ) ।**
५. **नञ् ( २-२-६ ) । नलोपो नञः ( ६-३-७३ ) । तस्मान्नुडचि ( ६-३-७४ ) ।**
६. **नभ्राण्नपान्नवेदानासत्यानमुचिनकुलनखनपुंसकनक्षत्रनक्रनाकेषु प्रकृत्या ( ६-३-७५ ) ।**

पा + शतृ = पात्), नवेदाः (न जानने वाला), नासत्याः (न सत्याः असत्याः, न असत्याः नासत्याः)[१] (देवों के वैद्य, दोनों अश्विनीकुमार), नमुचिः (राक्षस का नाम, जिसका वध इन्द्र ने किया था। न मुञ्चतीति), नकुलः (न कुलमस्य, न्यौला। न्यौले को किसी पशु-वर्ग विशेष में नहीं गिना जाता है।) नखम् (न खमस्य, जिसमें कोई स्थान शेष नहीं है, या मृत शरीर के साथ जल जाने के कारण जो स्वर्ग को नहीं जाता है), नपुंसकम् (न स्त्रीपुमान्), नक्षत्रम् (न क्षरतीति, तारे, जो आकाश में अपने स्थान से नहीं हटते हैं), नक्रः (न क्रामतीति, मगर, जो जल से बहुत दूर नहीं जाता है), नाकः (न कम् अकम्, न अकम् अस्मिन्, स्वर्ग, जहाँ दुःख नहीं है)। प्राणी से भिन्न अर्थ में नगः—अगः (पर्वत, वृक्ष) दोनों रूप बनते हैं।[२] प्राणीवाचक में अगः वृषलः शीतेन (शूद्र जो ठंड के कारण हिल नहीं सकता है) ही रूप बनेगा।

**सूचना**—उपर्युक्त शब्दों में कुछ बहुव्रीहि समास वाले शब्द भी हैं।

## (३) कर्मधारय (Appositional Compounds)

**२२०.** पाणिनि ने कर्मधारय का लक्षण किया है—समानाधिकरण तत्पुरुष अर्थात् कर्मधारय में विग्रह वाक्य में दोनों पदों में एक ही विभक्ति होगी।[३]

**सूचना**—तत्पुरुष और कर्मधारय में यह अन्तर है :—तत्पुरुष में प्रथम पद में द्वितीया से लेकर सप्तमी तक कोई विभक्ति होती है, किन्तु कर्मधारय में दोनों पदों में एक ही विभक्ति होती है। कर्मधारय में साधारणतया प्रथम पद संज्ञाशब्द या विशेषण शब्द होता है और वह उत्तर पद की विशेषता बताता है।

**२२१.** (क) उपमान शब्दों का सामान्य गुणवाचक शब्दों के साथ कर्मधारय समास होता है।[४] जैसे—घन इव श्यामः—घनश्यामः (बादल के तुल्य साँवला)। इस प्रकार के समासों को उपमानपूर्वपदकर्मधारय समास कहते हैं।

---

१. इह बहुवचनमविवक्षितम्। तेन 'नासत्यावश्विनौ दस्रौ' इति सिद्धम्। (तत्त्वबोधिनी, सि० कौ०)।
२. नगोऽप्राणिष्वन्यतरस्याम् (६-३-७७)।
३. तत्पुरुषः समानाधिकरणः कर्मधारयः (१-२-४२)।
४. उपमानानि सामान्यवचनैः (२-१-५५)।

(ख) उपमेय का व्याघ्र, सिंह, चन्द्र, कमल आदि[1] शब्दों के साथ कर्म-धारय समास होता है । सामान्य गुण या धर्मबोधक शब्द का उल्लेख नहीं होना चाहिए।[2] जैसे—पुरुषो व्याघ्र इव—पुरुषव्याघ्रः (व्याघ्र के तुल्य वीर पुरुष), मुखं चन्द्र इव—मुखचन्द्रः (चन्द्रमा के तुल्य आह्लादक मुख), मुखं कमलम् इव—मुखकमलम्, इत्यादि । इनको उपमानोत्तरपदकर्मधारय कहते हैं ।

**टिप्पणी १**—इन दोनों समासों में अन्तर यह है—पहले में सामान्य गुण का स्पष्टतया उल्लेख है, परन्तु दूसरे में सामान्य गुण का उल्लेख नहीं होता है । यदि दूसरे में सामान्य गुण का उल्लेख होगा तो समास ही नहीं होगा । जैसे—पुरुषः व्याघ्र इव शूरः ।

**टिप्पणी २**—उपर्युक्त कर्मधारयों का यह भी विग्रह हो सकता है—मुखमेव चन्द्रः—मुखचन्द्रः, मुखमेव कमलम्—मुखकमलम् आदि । दोनों विग्रहों में कोई भी विग्रह करें, समस्त पद का रूप वही रहेगा, किन्तु इन दोनों प्रकारों में अर्थ और तुलना में अन्तर होगा । पहले विग्रह में चन्द्र मुख्य होगा और उपमा अलंकार होगा । दूसरे विग्रह में मुख मुख्य है और रूपक अलंकार होगा ।[3] पाद एव पद्मम्—पादपद्मम्, विद्या एव धनम्—विद्याधनम् आदि समस्त पदों को अवधारणापूर्वपदकर्मधारय कहते हैं ।

**२२२.** विशेषण शब्दों का विशेष्य के साथ प्रायः समास होता है ।[4] जैसे—नीलं च तद् उत्पलं च—नीलोत्पलम् (नीला कमल) आदि । कृष्णश्चासौ

---

१. ये सब शब्द व्याघ्रादि गण में हैं । व्याघ्रादिगण के कुछ मुख्य शब्द ये हैं—व्याघ्र, सिंह, ऋक्ष, ऋषभ, चन्दन, वृक, वृष, वराह, हस्तिन्, रुरु, पृषत्, पुण्डरीक आदि; चन्द्र, पद्म, कमल, किसलय आदि । देखो—स्युरुत्तरपदे व्याघ्रपुंगवर्षभकुंजराः। सिंहशार्दूलनागाद्याः पुंसि श्रेष्ठार्थगोचराः । अमरकोष ३-१-५९ ।
२. उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे ( २-१-२५ ) ।
३. जब सामान्य धर्म का उपमेय के साथ संबन्ध हो, जैसे—मुखपद्मं सहास्यम्, तो विग्रह होगा मुखं पद्ममिव । जब उपमान के साथ संबन्ध होगा, जैसे—मुखपद्मं विकसितम्, तो विग्रह होगा—मुखमेव पद्मम् ।
४. विशेषणं विशेष्येण बहुलम् ( २-१-५७ ) ।

सर्पश्च—कृष्णसर्पः । यहाँ नित्य समास होगा । कहीं नहीं होता है । जैसे—रामो जामदग्न्यः । इस प्रकार के समासों को विशेषणपूर्वपद कर्मधारय कहते हैं ।

ऐसे समासों में साधारणतया विशेषण शब्दों का पहले प्रयोग होता है, परन्तु कुछ स्थानों पर ऐसा नहीं होता है । उनका नीचे उल्लेख किया जाता है ।

(क) निम्नलिखित स्थानों पर जातिवाचक विशेष्य शब्द का पहले प्रयोग होता है और वह पुंलिंग ही रहता है । इन शब्दों का विशेषण शब्दों के साथ समास होता है ।[1] जैसे—इभयुवतिः (जवान हथिनी), अग्निस्तोकः (थोड़ी आग), उदश्वित्कतिपयम् (कुछ पानी मिला हुआ मट्ठा), गोगृष्टिः (एक बार ब्याई हुई गाय), गोधेनुः (दूध देने वाली गाय, धेनुर्नवप्रसूतिका), गोवशा (बाँझ गाय), गोवेहत् (गर्भघातिनी गौः), गोबष्कयणी (जवान बछड़े वाली गाय), कठश्रोत्रियः (यजुर्वेद की कठ शाखा पढ़ने वाला अग्निहोत्री ब्रह्मचारी), कठाध्यापकः (कठ शाखा का अध्यापक) । गोमतल्लिका, गोमचर्चिका, गोप्रकाण्डम् (कुछ के मतानुसार पुंलिंग भी), गवोद्धः, गोतल्लजः (श्रेष्ठ गाय) ।[2] मतल्लिका आदि पाँचों शब्द श्रेष्ठ अर्थ के बोधक हैं और ये सदा अपने ही लिंग में रहते हैं । जैसे—ब्राह्मणमतल्लिका (श्रेष्ठ ब्राह्मण) । जातिवाचक शब्द न होने के कारण कुमारीमतल्लिका रूप होगा ।

(ख) निम्नलिखित कडार आदि शब्दों का कर्मधारय में विकल्प से पूर्वप्रयोग होता है—कडार, खञ्ज, खोड (लंगड़ा), काण, कुण्ठ (खोटा, कुण्ठित), खलति (गंजा), गौर, वृद्ध, भिक्षुक, पिंग, पिंगल, तनु, जरठ (कड़ा), बधिर, कुब्ज और बर्बर ।[3] जैसे—जैमिनिकडारः, कडारजैमिनिः (जैमिनि मुनि, जो धूप में तपस्या के कारण पीले पड़ गए हैं), इत्यादि ।

---

१. पोटायुवतिस्तोककतिपयगृष्टिधेनुवशावेहद्बष्कयणीप्रवक्तृश्रोत्रियाध्यापकधूर्तैर्जातिः । ( २-१-६५ ) । पुंवत्कर्मधारयजातीयदेशेषु ( ६-३-४२ ) ।
२. प्रशंसावचनैश्च ( २-१-६६ ) । मतल्लिकादयो नियतलिङ्गा न तु विशेष्यनिघ्नाः । सि० कौ० । मतल्लिका मचर्चिका प्रकाण्डमुद्धतल्लजौ । प्रशस्तवाचकान्यमूनि, इत्यमरः ।
३. कडाराः कर्मधारये ( २-२-३८ ) ।

(ग) निन्दनीय वस्तुओं या व्यक्तियों का कर्मधारय में पूर्वप्रयोग होता है।[1] जैसे—वैयाकरणखसूचिः (मूर्ख वैयाकरण जो व्याकरण को भूल गया है और प्रश्न पूछे जाने पर आसमान की ओर देखता है। जो अपने व्याकरणज्ञान का उपयोग नहीं कर सकता है।) (यः पृष्टः सन् प्रश्नं विस्मारयितुं खं सूचयति अभ्यास-वैधुर्यात् स एवमुच्यते, तत्त्वबोधिनी)। इसी प्रकार मीमांसकदुर्दुरूढः (नास्तिक मीमांसक)। पाप, आणक और किम्, इनका पूर्वप्रयोग होगा। जैसे—पापनापितः (नीच नाई), आणककुलालः (मूर्ख कुम्हार), कुत्सितः राजा—किंराजा, कुत्सितः सखा किंसखा इत्यादि।

(घ) वृन्दारक, नाग और कुंजर शब्दों के साथ पूज्य वस्तु का पूर्वप्रयोग होता है।[2] जैसे—नृपवृन्दारकः (मुख्य राजा), तापसकुंजरः, पुरुषनागः इत्यादि।

(ङ) कतर और कतम शब्दों का जातिवाचक प्रश्न होने पर समास होता है और इनका पूर्वप्रयोग होता है।[3] कतरकठः, कतमकठः (कठशाखाध्यायी कौन से ब्राह्मण हो?), कतरकलापः, कतमकलापः (कलापशाखाध्यायी कौन से ब्राह्मण हो?)। किन्तु कतरः पुत्रः (कौन सा पुत्र?) ही रूप बनेगा।

(च) निम्नलिखित शब्दों के साथ समास होने पर कुमार (कुमारी को भी कुमार शब्द होने पर) शब्द का पूर्वप्रयोग होता है—श्रमणा, प्रव्रजिता, कुलटा, गर्भिणी, तापसी, दासी, अध्यापक, पण्डित, पटु, मृदु, कुशल, चपल और निपुण।[4] जैसे—कुमारश्रमणा (कुमारी भिक्षुक), कुमारप्रव्रजिता (कुमारी संन्यासिनी), कुमारमृदुः—कुमारमृद्वी (सुकुमार बालक या बालिका), कुमारगर्भिणी, कुमारा-ध्यापकः, आदि।

(छ) कर्मधारय समास में इन शब्दों का सदा पूर्वप्रयोग होता है—एक, सर्व, जरत्, पुराण, नव, केवल तथा पूर्व, अपर, प्रथम, चरम, जघन्य (अति-

---

१. कुत्सितानि कुत्सनैः (२-१-५३)। पापाणके कुत्सितैः (२-१-५४)। किं क्षेपे (२-१-६४)।
२. वृन्दारकनागकुञ्जरैः पूज्यमानम् (२-१-६२)।
३. कतरकतमौ जातिपरिप्रश्ने (२-१-६३)।
४. कुमारः श्रमणादिभिः (२-१-७०)।

नीच), समान, मध्य, मध्यम और वीर ।[1] अपर के बाद अर्ध शब्द होगा तो अपर को पश्च हो जाएगा । जैसे—एकनाथः (अकेला स्वामी), सर्वशैलाः, जरन्नैयायिकः (वृद्ध नैयायिक), पुराणमीमांसकाः (पुराने मीमांसक), नवपाठकाः, पूर्ववैयाकरणः (प्राचीन वैयाकरण), अपराध्यापकः, अपरश्चासौ अर्धश्च—पश्चार्धः (पीछे की ओर का आधा भाग), चरमराजः (अन्तिम राजा), समानाधिकरणम् (एक आधार पर रहने वाले), वीरैकः (अद्वितीय वीर) आदि । एकवीरः रूप भी बन सकता है ।[2]

(ज) सत्, महत्, परम, उत्तम और उत्कृष्ट शब्दों का पूज्य वस्तुओं या व्यक्तियों के साथ समास होता है और इनका पूर्व प्रयोग होता है ।[3] जैसे—सद्वैद्यः (श्रेष्ठ वैद्य), महावैयाकरणः, इत्यादि । उत्कृष्टो गौः में समास नहीं होगा, क्योंकि यहाँ पर उत्कृष्ट का अर्थ है उत्–कृष्ट—(कीचड़ से) बाहर निकाली गई ।

**२२३.** दिशावाची और संख्यावाची शब्दों का सुबन्त के साथ कर्मधारय समास होता है, यदि समस्त पद संज्ञावाचक हो तो ।[4] जैसे—सप्तर्षयः (सप्तर्षि नक्षत्र), पंचजनाः, [5] आदि । पूर्वेषुकामशमी (पूर्व में एक नगर का नाम) ।

---

**१. पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेन ( २-१-४९ ) । पूर्वापरप्रथमचरमजघन्यसमानमध्यमध्यमवीराश्च ( २-१-५८ ) । अपरस्यार्धे पश्चभावो वक्तव्यः ( वार्तिक ) ।**

**२. कथमेकवीर इति । पूर्वकालैक० इति बाधित्वा परत्वादनेन समासे वीरैक इति हि स्यात् । बहुलग्रहणाद् भविष्यति । एकवीरः रूप कैसे बनेगा ? क्योंकि पूर्वकालैक० सूत्र से पूर्वापर० सूत्र बाद में आया है, अतः पूर्वापर० सूत्र ही लगने से वीरैकः रूप बनेगा । इसका उत्तर है कि एकवीरः भी रूप बन सकता है । पूर्वापर० सूत्र में बहुलम् की अनुवृत्ति होने से कहीं पर यह सूत्र नहीं लगेगा और उस अवस्था में पूर्वकालैक० से एक शब्द का पहले प्रयोग होकर एकवीरः रूप बनेगा ।**

**३. सन्महत्परमोत्तमोत्कृष्टाः पूज्यमानैः ( २-१-६१ ) ।**

**४. दिक्संख्ये संज्ञायाम् ( २-१-५० ) ।**

**५. ये पंचजन हैं—देव, मनुष्य, गन्धर्व, नाग और पितर । दूसरों के मतानुसार पंचजन ये हैं—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद । ( देखो ब्रह्मसूत्र १-४-११ से १३ पर शंकराचार्य का भाष्य ) ।**

उन्नत वृक्षाः, पञ्च ब्राह्मणाः आदि में समास नहीं हुआ, क्योंकि ये संज्ञावाचक नहीं हैं।

(क) दिशा और संख्यावाची शब्दों का सुबन्त के साथ समास होता है, यदि समस्त पद से तद्धित प्रत्यय होने वाला हो (अथवा यह समस्त पद कर्मधारय समास का अर्थ बताने के अतिरिक्त तद्धित प्रत्यय का भी अर्थ बतावे), अथवा समस्त पद के बाद में कोई और सुबन्त पद हो जिससे इसका समास होता हो, अथवा समस्त पद संज्ञावाचक हो।[1] जैसे—पूर्वा शाला—पूर्वशाला, पूर्वस्यां शालायां भवः—पौर्वशालः (पूर्व के गृह में होने वाला)। यहाँ पर पूर्वशाला शब्द से 'दिक्पूर्वपदादसंज्ञायां ञः' (४–२–१०७) सूत्र से तद्धित प्रत्यय ञ (अ)। पूर्वशाला + अ—पौर्वशालः। इसी प्रकार षष् + मातृ—षण्मातृ (६ माताएँ)। षण्मातृ + अ (तद्धित प्रत्यय)–षाण्मातुरः (६ माताओं का पुत्र)। पूर्वा शाला प्रिया यस्य सः—पूर्वशालाप्रियः। यहाँ पर पूर्वशाला शब्द पूरे समास का पूर्वपद है और इसका स्वतन्त्र रूप से यहाँ प्रयोग नहीं है। उत्तरध्रुवः, दक्षिणध्रुवः, आदि नाम हैं, अतः समास हुआ है।

**२२४.** कु शब्द का किसी भी सुबन्त के साथ कर्मधारय समास होता है। जैसे—कुपुरुषः (कुत्सितः पुरुषः, नीच पुरुष), कुपुत्रः, इत्यादि।

(क) कु के स्थान पर निम्नलिखित आदेश होते हैं :—

(१) इन स्थानों पर कु के स्थान पर कत् आदेश होता है[2]—तत्पुरुष समास में अजादि शब्द बाद में होने पर, त्रि शब्द बाद में होने पर, रथ और वद शब्द बाद में होने पर, जातिवाचक तृण शब्द बाद में होने पर। कुत्सितो अश्वः—कदश्वः (रद्दी घोड़ा)। इसी प्रकार कदन्नम् (घटिया अन्न)। बहुव्रीहि समास होने से कूष्ट्रो राजा में कत् नहीं हुआ, (जिसके पास घटिया ऊँट हैं, ऐसा राजा)। कुत्सिताः त्रयः कत्त्रयः (तीन घटिया चीजें), कद्रथः (घटिया रथ), कद्वदः (बुरा बोलने वाला), कत्तृणम् (एक सुगन्धित घास का नाम)।

(२) इन स्थानों पर कु को का होता है[3]—पथिन् और अक्ष बाद में

---

१. **तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च ( २-१-५१ )।**
२. **को कत्तत्पुरुषेऽचि ( ६-३-१०१ )। त्रौ च ( वार्तिक )। रथवदयोश्च ( ६-३-१०२ )। तृणे च जातौ ( ६-३-१०३ )।**
३. **का पथ्यक्षयोः ( ६-३-१०४ )। ईषदर्थे ( ६-३-१०५ )। विभाषा पुरुषे ( ६-३-१०६ )।**

हों तो, ईषत् (थोड़ा) अर्थ में, पुरुष शब्द बाद में हो तो विकल्प से। कापथम्, काक्षः (कटाक्ष या क्रोधभरी दृष्टि) (देखो भट्टि० ५-५४)। (अक्षशब्देन तत्पुरुषः। अक्षिशब्देन बहुव्रीहिर्वा, सि० कौ०)। ईषज्जलं काजलम् (थोड़ा पानी); ईषत्पुरुषः कापुरुषः। किन्तु कुत्सितः पुरुषः—कुपुरुषः, कापुरुषः, दोनों रूप होंगे।

(३) उष्ण शब्द बाद में होगा तो कु को कव और का दोनों होंगे।[1] (१) के अनुसार कत् भी। कोष्णम्, कवोष्णम्, कदुष्णम् (थोड़ा गर्म)।

**२२५.** दो विशेषणों का भी समास हो जाता है। इसे विशेषणोभयपद-कर्मधारय कहते हैं। जैसे—शुक्लकृष्णः, कृष्णसारंगः।

(क) एक व्यक्ति के क्रमिक कार्यों से संबद्ध दो कृदन्त शब्दों का समास हो जाता है और जो कार्य पहले किया गया हो, उसका पूर्वप्रयोग होता है।[2] पूर्वं स्नातः पश्चादनुलिप्तः—स्नातानुलिप्तः (पहले स्नान किया, बाद में लेप किया)। इसी प्रकार पीतोद्गीर्णम् (पहले पिया और बाद में उगल दिया), पीतप्रतिबद्धः, गृहीतप्रतिमुक्तः ( रघु० २-१, ४-४३ ) इत्यादि।

(ख) नियम २२२ (छ) में दो शब्द-समूह दिए गए हैं। यदि इन दोनों शब्द-समूहों में से किन्हीं दो शब्दों का समास होगा तो पूर्व, अपर आदि शब्दों का पूर्वप्रयोग होगा। एक का वीर के साथ समास होने पर वीरैकः और एक-वीरः दोनों रूप बनेंगे। इनमें से वीरैकः अधिक उपयुक्त है। प्रथम शब्द-समूह में एक से लेकर केवल तक किन्हीं दो शब्दों का समास होगा तो सूची में बाद में दिए हुए शब्द का पूर्वप्रयोग होगा। जैसे—पुराणजरत्, केवलपुराणम्, आदि।

(ग) एक क्तप्रत्ययान्त का दूसरे नञ्-युक्त क्तप्रत्ययान्त के साथ समास हो जाता है।[3] जैसे—कृताकृतम् (कुछ किया, कुछ नहीं किया हुआ अर्थात् अधूरा किया हुआ )।

(घ) युवन् (पुं०, स्त्री०) शब्द का खलति, पलित, वलित (झुर्री से युक्त) और जरती शब्द के साथ कर्मधारय समास होता है और युवन् का पूर्वप्रयोग

---

१. **कवं चोष्णे ( ६-३-१०७ )।**

२. **देखो पूर्वकाल० ( २-१-४९ ) सूत्र पर तत्त्वबोधिनी टीका। ( पूर्वत्वस्य ससंबन्धिकत्वात् पूर्वकालोऽपरकालेन समस्यते )।**

३. **क्तेन नञ्विशिष्टेनानञ् ( २-१-६० )।**

होता है ।[1] जैसे—युवा खलतिः—युवखलतिः (गंजा युवक), युवतिः–खलतिः–युवखलतिः (गंजी स्त्री), युवजरती (युवती होते हुए भी देखने में वृद्धा सी), युवपलितः (युवक होते हुए भी सफेद वालों से युक्त) इत्यादि ।

**२२६.** ईषत् शब्द का कृदन्त को छोड़कर अन्य किसी भी शब्द के साथ समास हो सकता है । यदि गुणवाचक कृदन्त शब्द होगा तो उसके साथ भी समास हो जाएगा ।[2] ईषत्पिङ्गलः (कुछ पीला), ईषद्रक्तम् (कुछ लाल) इत्यादि ।

**२२७.** कृत्यप्रत्ययान्त शब्दों (तव्य, अनीय और य प्रत्ययान्त) और तुल्य अर्थ वाले शब्दों का जातिवाचक शब्दों को छोड़कर अन्य किसी भी सुबन्त के साथ समास होता है ।[3] जैसे—भोज्योष्णम् (कोई भी गर्म खाना), तुल्यश्वेतः (एक ही प्रकार के सफेद रंग का), सदृशश्वेतः आदि । किन्तु भोज्य ओदनः में समास नहीं होगा, क्योंकि ओदन जातिवाचक शब्द है ।

**२२८.** मयूरव्यंसक आदि समस्त पद निपातन (ऐसा अभीष्ट है) के द्वारा बनते हैं ।[4] इस गण के मुख्य उल्लेखनीय शब्द ये हैं—मयूरश्चासौ व्यंसको मयूरव्यंसकः (धूर्त मोर) । इसी प्रकार छात्रव्यंसकः, उदक् च अवाक् च—उच्चावचम् । इसी प्रकार उच्चनीचम् (ऊँचा-नीचा), निश्चितं च प्रचितं च—निश्चप्रचम्, नास्ति किंचन यस्य सः—अकिंचनः, नास्ति कुतो भयं यस्य सः—अकुतोभयः, अन्यो राजा—राजान्तरम्, अन्यो ग्रामः—ग्रामान्तरम्, चिदेव–चिन्मात्रम् (ये सब नित्य समास हैं) । अश्नीत पिबत इत्येवं सततं यत्राभिधीयते सा—अश्नीतपिबता (जहाँ पर बार-बार यही बात कही जाती हो कि—खाओ पीओ) । इसी प्रकार पचतभृज्जता, खादतमोदता । अहम् अहम् इति यस्यां क्रियायामभिधीयते सा—अहमहमिका (जिस क्रिया में बार-बार यही कहा जाता हो कि मैं ही, मैं ही, अतः कठिन प्रतियोगिता), अहं पूर्वम् अहं पूर्वमिति यस्यां क्रियायामभिधीयते सा—अहंपूर्विका, इसी प्रकार आहोपुरुषिका (अधिक दुरभिमान, भट्टि० ५-२७) । (अहंभाव या आत्मप्रशंसा, भामिनीविलास १-८४) । कान्दिशीकम् (भागनेवाला, भगोड़ा), यदृच्छा (स्वेच्छा) इत्यादि ।

---

१. **युवा खलतिपलितवलितजरतीभिः ( २-१-६७ ) ।**
२. **ईषदकृता ( २-२-७ ) । ईषद्गुणवचनेनेति वाच्यम् ( वार्तिक ) ।**
३. **कृत्यतुल्याख्या अजात्या ( २-१-६८ ) ।**
४. **मयूरव्यंसकादयश्च ( २-१-७२ ) ।**

**२२९.** शाकपार्थिव आदि कतिपय कर्मधारय समास वाले शब्दों में उत्तर-पद (अर्थात् प्रथम समस्त पद के दूसरे शब्द) का लोप हो जाता है।[1] जैसे—शाकप्रियः पार्थिवः—शाकपार्थिवः (साग अधिक पसन्द करने वाला राजा), देवपूजको ब्राह्मणः—देवब्राह्मणः आदि। इन समासों का ठीक नाम 'उत्तरपद-लोपी समास' है, परन्तु इनका प्रचलित नाम 'मध्यमपदलोपी समास' है। यह आकृतिगण है। जिन समस्त पदों में इस प्रकार की व्याख्या की आवश्यकता होती है, उन्हें शाकपार्थिवादि गण में रक्खा जाता है।

## द्विगुसमास (Numeral Appositional Compounds)

**२३०.** जिस कर्मधारय समास में पहला शब्द संख्यावाची होता है, उसे द्विगु कहते हैं।[2]

**२३१.** (क) नियम २२३ (क) में उल्लिखित स्थानों पर द्विगु समास हो सकता है। अर्थात्—

(१) यदि समस्त पद से कोई तद्धित प्रत्यय होने वाला हो तो। षण्णां मातृणाम् अपत्यं—षाण्मातुरः (६ माताओं का पुत्र, कार्त्तिकेय, देखो कुमार-संभव सर्ग ९)। पञ्चकपालः आदि। अथवा (२) जहाँ पर समस्त पद पुनः दूसरे समस्त पद का पूर्वपद हो जाता है। जैसे—पञ्च गावो धनं यस्य सः—पञ्चगवधनः, पञ्चगवप्रियः आदि।

(ख) समाहार (समूह) अर्थ में द्विगु समास होता है और वह एकवचन ही रहता है।[3] जैसे—त्रयाणां भुवनानां समाहारः—त्रिभुवनम् (तीनों लोकों का समूह), पञ्चपात्रम्, पञ्चगवम्, इत्यादि।

## ४. प्रादि-समास (Prepositional Compounds)

**२३२.** तत्पुरुष समास में जिन पदों के प्रारम्भ में उपसर्ग होते हैं, उन्हें वैयाकरणों ने प्रादि-समास कहा है।[4] इन प्र आदि उपसर्गों का प्रथमान्त,

---

१. **शाकपार्थिवादीनां सिद्धये उत्तरपदलोपस्योपसंख्यानम् ( सूत्र २-१-६० पर वार्तिक )।**

२. **संख्यापूर्वो द्विगुः (२-१-५२)** ३. **द्विगुरेकवचनम् ( २-४-१ )**

४. **कुगतिप्रादयः ( २-२-१८ )। प्रादयो गताद्यर्थे प्रथमया। अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया। अवादयः क्रुष्टाद्यर्थे तृतीयया। पर्यादयो ग्लानाद्यर्थे चतुर्थ्या। निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या। कर्मप्रवचनीयानां प्रतिषेधः। (वार्तिक )।**

द्वितीयान्त, तृतीयान्त आदि के साथ समास होता है। जैसे—प्रगतः आचार्यः—प्राचार्यः (मुख्य आचार्य), संगतः अध्वानम्—समध्वः (रास्ते का साथी) (देखो भट्टि ३–४५), प्रकृष्टो वातः—प्रवातः (तेज हवा) आदि। अतिक्रान्तो मालाम् अतिमालः (सुगन्ध आदि में माला से बढ़कर), अतिक्रान्तो रथं रथिनं वा—अतिरथः (अनुपम महारथी)। इसी प्रकार अतिमात्र (मात्रा से बढ़कर), अतिसर्वः आदि। अवक्रुष्टः कोकिलया—अवकोकिलः (कोयल से कोसा गया), परिग्लानः अध्ययनाय—पर्यध्ययनः (पढ़ाई से तंग आया हुआ), निष्क्रान्तः कौशाम्ब्याः—निष्कौशाम्बिः (कौशाम्बी से बाहर निकला हुआ)। इसी प्रकार निर्लङ्कः आदि। कर्मप्रवचनीय (कर्म कारक के कारण) उपसर्गों के साथ समास नहीं होता। वृक्षं प्रति।

## ५. गति-समास (Prepositional Compounds)

**२३३.** निम्नलिखित शब्दों का क्त्वा, ल्यप् प्रत्ययान्त (Verbal Indeclinables) आदि धातुरूपों के साथ जो समास होता है, उसे गति-समास कहते हैं।

(क) ऊरी, उररी, वौषट्, वषट्, स्वाहा, स्वधा, प्रादुः, आविस् और श्रत् निपात तथा कारिका (कार्य) शब्दों का क्त्वा प्रत्ययान्त के साथ समास होता है।[1] ऊरीकृत्य, उररीकृत्य (स्वीकार करके), वषट्कृत्य (वषट् शब्द कहकर), प्रादुर्भूय, कारिकाकृत्य (काम करके)।

(ख) अनुकरणात्मक शब्दों का, यदि बाद में इति शब्द न हो तो।[2] जैसे—खाट्कृत्य। किन्तु खाडिति कृत्वा निरष्ठीवत् में समास नहीं होगा।

(ग) आदरार्थक सत् और अनादरार्थक असत् शब्द, अलम् (अलंकार अर्थ में), पुरः, अदः, अन्तः, कणे, मनस्, अस्तम्, अच्छ और तिरः शब्दों का।[3] जैसे—अलंकृत्य (सजाकर), अन्यत्र अलंकृत्वा (पर्याप्त काम करके, पर्याप्तमित्यर्थः, सि० कौ०), पुरस्कृत्य (सामने रखकर), अदःकृत्य (अदः कृतम्), अन्तर्हत्य (मध्ये हत्वा, सि० कौ०), कणेहत्य जैसे कणेहत्य पयः पिबति (जी भरकर पानी

---

१. **ऊर्यादिच्विडाचश्च ( १-४-६१ )। कारिकाशब्दस्योपसंख्यानम् (वार्तिक)।**
२. **अनुकरणं चानितिपरम् ( १-४-६२ )।**
३. **सूत्र १-४-६३ से ७१।**

पीता है), अच्छोद्य (सामने जाकर और कहकर, अभिमुखं गत्वा उक्त्वा चेत्यर्थः, सि० कौ०), तिरोभूय, मनोहत्य (जी मारकर), अस्तंगत्य, अच्छगत्य (सामने जाकर)।

(घ) हस्ते, पाणौ, प्राध्वम् का।[1] जैसे—हस्तेकृत्य, पाणौकृत्य (विवाह करके), प्राध्वंकृत्य (बन्धन के द्वारा अनुकूल करके)।

(ङ) इन शब्दों का क्त्वा या ल्यप् प्रत्ययान्त धातुरूपों के साथ विकल्प से समास होता है—उपाजे, अन्वाजे, साक्षात्, मिथ्या, अमा, प्रादुः, आविः और नमस् अव्यय, उरसि और मनसि (अत्याधान अर्थात् अत्यन्त समीपता अर्थ को छोड़कर), मध्ये और पदे।[2] जैसे—उपाजेकृत्य—उपाजेकृत्वा, अन्वाजेकृत्य—अन्वाजेकृत्वा (निर्वल को बल देकर, दुर्वलस्य बलमाधाय इत्यर्थः, सि० कौ०), साक्षात्कृत्य-साक्षात्कृत्वा, लवणंकृत्य—लवणंकृत्वा, उरसिकृत्य—उरसिकृत्वा (स्वीकार करके), मनसिकृत्य—मनसिकृत्वा, (किन्तु उरसि कृत्वा पाणिं शेते, में समास नहीं होगा), मध्येकृत्य—मध्येकृत्वा, पदेकृत्य—पदेकृत्वा आदि।

(च) कृत्प्रत्ययान्त शब्द बाद में हो तो भी ये समास होते हैं। जैसे—अस्तमय (सूर्यास्त), पुरस्कारः (स्वागत, आदर-प्रदर्शन), तिरस्कारः, सत्कारः, अलंकृतिः आदि।

**२३४.** च्विप्रत्ययान्त शब्दों का भी कृदन्त धातुरूपों के साथ समास होता है और वह गति-समास कहा जाता है। जैसे—शुक्लीकृत्य (जो सफेद नहीं था, उसे सफेद बनाकर)। च्विप्रत्यय के लिए देखो अध्याय ११।

## ६. उपपद-समास

**२३५.** तत्पुरुष समास में जहाँ पर किसी पद के पहले रहने के कारण किसी धातु से कोई कृत् प्रत्यय होता है, वहाँ पर प्रथमपद को उपपद कहते हैं और दोनों पदों के समास को उपपद-समास कहते हैं। जैसे—कुम्भं करोतीति—कुम्भकारः (कुम्हार)। इसी प्रकार साम गायतीति—सामगः (सामवेद के मन्त्र का गान करने वाला), मांसं कामयतीति—मांसकामा (मांस की इच्छुक)। इसी प्रकार अश्वक्रीती (अश्वेन क्रीता, घोड़े से खरीदी गई वस्तु), कच्छपी (कछुआ

---

१. सूत्र १-४-७७, ७८।

२. सूत्र १-४-७३ से ७६। अनत्याधान उरसिमनसी (१-४-७५)।

की स्त्री) आदि। कुम्भकार आदि में कुम्भ आदि पूर्वपद को उपपद कहा जाता है।[1]

**सूचना**—उपपद समासों में यह ध्यान रखना चाहिए कि उत्तरपद (दूसरा पद) तिङन्त धातुरूप नहीं होना चाहिए और न ऐसा शब्द होना चाहिए जो पूर्वपद की अपेक्षा के बिना ही स्वतन्त्र रूप से बन सकता हो। जैसे—पयोधरः में उपपद समास नहीं है, क्योंकि इसमें उत्तरपद धरः स्वतन्त्र रूप से बन सकता है। अतः यहाँ पर षष्ठी तत्पुरुष समास है। धरतीति धरः, पयसां धरः पयोधरः (बादल या स्तन)।

**२३६**. कभी-कभी इस उपपद-समास का उत्तरपद णमुल् (अम्) प्रत्ययान्त होता है। जैसे—स्वादुंकारं भुङ्क्ते (भोजन को स्वादिष्ट बनाकर खाता है)। अग्रेभोजम् (पहले खाना खाकर)। कभी-कभी यह समास विकल्प से भी होता है। जैसे—मूलकोपदंशं या मूलकेन उपदंशं भुङ्क्ते (मूली से अचार को खाता है) इत्यादि।

**२३७**. उच्चैः, नीचैः, तिर्यक्, मुखतः आदि कुछ उपपद शब्दों का क्त्वा (अथवा ल्यप्)प्रत्ययान्त धातुरूपों के साथ विकल्प से समास होता है। जैसे—उच्चैःकृत्य—उच्चैःकृत्वा, तिर्यक्कृत्य, मुखतोभूय, नानाकृत्य, एकधाभूय आदि। विस्तृत विवरण के लिए देखो कृत्-प्रकरण।

## तत्पुरुष-समास-विषयक सामान्य-नियम

**२३८**. तत्पुरुष समास के अन्त में अंगुलि शब्द होगा तो उसके अन्तिम **इ** को अ हो जायगा, यदि उससे पहले कोई संख्यावाची शब्द या अव्यय होगा तो।[2] जैसे—द्वे अंगुली प्रमाणमस्य—द्व्यङ्गुलं दारु (दो अंगुल लम्बी लकड़ी), निर्गतमङ्गुलिभ्यो निरंगुलम् आदि।

**२३९**. निम्नलिखित स्थानों पर तत्पुरुष समास होने पर समासान्त अ प्रत्यय होता है और उससे पूर्ववर्ती टि (अन्तिम स्वर या अन्तिम स्वर के बाद कोई व्यंजन हो तो स्वर और व्यंजन दोनों) का लोप हो जाता है :—

१. तत्रोपपदं सप्तमीस्थम् ( ३-१-९२ )। सप्तम्यन्ते पदे कर्मणि० इत्यादौ वाच्यत्वेन स्थितं कुम्भादि तद्वाचकं पदमुपपदसंज्ञं स्यात् ( सि० कौ० )।
२. तत्पुरुषस्याङ्गुलेः संख्याव्ययादेः ( ५-४-८६ )।

(क) संख्यावाची, अव्यय, एकदेशवाची शब्द जैसे पूर्व अपर आदि, सर्व, संख्यात और पुण्य शब्द पहले हों तो रात्रि को रात्र हो जाता है ।[१] जैसे—द्वयोः रात्र्योः समाहारः—द्विरात्रम् (दो रात्रियों का समूह, द्विगु), अतिक्रान्तो रात्रिम् अतिरात्रः (जिसने रात्रि को पार कर लिया है), पूर्वं रात्रेः—पूर्वरात्रः (रात्रि का पूर्वभाग), सर्वा रात्रिः—सर्वरात्रः, संख्याता रात्रिः—संख्यातरात्रः, पुण्यरात्रः (पवित्र रात्रि) ।

इसी प्रकार द्वन्द्व समास में अहन् पहले होगा तो रात्रि को रात्र हो जाएगा । जैसे—अहश्च रात्रिश्च—अहोरात्रः ।

(ख) राजन् को राज, अहन् को अह और सखि को सख हो जाता है ।[२] जैसे—परमः राजा—परमराजः (श्रेष्ठ राजा), मद्राणां राजा—मद्रराजः, उत्तमम् अहः—उत्तमाहः (उत्तम दिन), एकं च तदहः—एकाहः, द्वयोरह्नोः समाहारः—द्व्यहः । इसी प्रकार त्र्यहः, सप्ताहः, आदि । पुण्यम् अहः—पुण्याहम् (पवित्र दिन), सुदिनाहम् (देखो नियम २४५ ख), कृष्णस्य सखा—कृष्णसखः आदि ।

**(ग) अपवाद-नियम**—संख्यावाचक, अव्यय, एकदेशवाची शब्द, सर्व, संख्यात और पुण्य शब्द पहले होंगे तो अहन् को अह्न हो जाएगा, समासान्त अ बाद में होने पर ।[३] जैसे—अतिक्रान्तम् अहः—अत्यह्नः (समय में दिन से भी बड़ा), पूर्वाह्णः (दोपहर से पहले का समय), सर्वाह्णः (सारा दिन), संख्याताह्नः, द्वयोरह्नोः भवः—द्व्यह्नः (स्त्रीलिंग द्व्यह्ना), द्व्यह्नप्रियः आदि । संख्यात के साथ दोनों रूप बनते हैं—संख्याताहः—संख्याताह्नः ।

**सूचना**—यदि पूर्वपद में र् से युक्त अकारान्त शब्द है तो अह्न के न को ण हो जाएगा ।[४] जैसे—सर्वाह्णः । किन्तु परागतम् अहः—पराह्नः ही होगा । यहाँ पर परा में अ नहीं, अपितु आ है ।

(घ) ग्राम और कौट शब्द पहले होंगे तो तक्षन् को तक्ष हो जाएगा ।[५] अति उपसर्ग या प्राणिभिन्न कोई उपमानवाची शब्द पहले होगा तो श्वन् को श्व हो

---

१. **अहःसर्वैकदेशसंख्यातपुण्याच्च रात्रेः** ( ५-४-८७ ) ।
२. **राजाहःसखिभ्यष्टच्** ( ५-४-९१ ) ।
३. **अह्नोऽह्न एतेभ्यः** ( ५-४-८८ ) ।
४. **अह्नोऽदन्तात्** ( ८-४-७ ) ।
५. **ग्रामकौटाभ्यां च तक्ष्णः** ( ५-४-९५ ) ।

जाएगा ।[१] जैसे—ग्रामस्य तक्षा—ग्रामतक्ष: (गाँव का बढ़ई अर्थात् साधारण बढ़ई), कुट्यां भवः—कौटः (स्वतन्त्रः) स चासौ तक्षा च—कौटतक्षः (एक स्वतन्त्र बढ़ई), अतिश्वो वराहः (कुत्ते से तेज दौड़ने वाला सूअर), अतिश्वी सेना (कुत्ते से भी नीच जीवन बिताने वाली सेना), आकर्षः श्वा इव—आकर्षश्वः (कुत्ते की तरह अशुभ ढंग से पासे का पड़ना) । किन्तु वानरश्वा (कुत्ते की तरह का बन्दर) में प्राणिवाचक उपमान होने से श्व नहीं हुआ ।

(ङ) उत्तर, मृग, पूर्व और प्राणिभिन्न उपमानवाची शब्द पहले होगा तो सक्थि को सक्थ हो जाएगा ।[२] उत्तरसक्थम् (जाँघ से ऊपर का भाग), मृग-सक्थम् (मृग की जाँघ), पूर्वसक्थम्, फलकमिव सक्थि फलकसक्थम् (पट्टे की तरह चौड़ी जाँघ) ।

(च) यदि संख्यावाची शब्द के साथ तत्पुरुष समास होता है तो समासान्त अ प्रत्यय और टि लोप । निर्गतानि त्रिंशतः निस्त्रिंशानि वर्षाणि चैत्रस्य (चैत्र ३० वर्ष से अधिक का है), निर्गतः त्रिंशतोऽङ्गुलिभ्यो निस्त्रिंशः खड्गः (तलवार जो लम्बाई में ३० अंगुल से बड़ी है) ।

**२४०.** निम्नलिखित शब्द तत्पुरुष समास के अन्त में होंगे तो इनसे समासान्त अ प्रत्यय होगा :—

(क) गो शब्द से अ प्रत्यय होगा । यदि तद्धितप्रत्यय होकर लोप हुआ होगा तो नहीं ।[३] जैसे—परमगवः (उत्तम बैल), पञ्चगवधनः (पंचगव में अ प्रत्यय, पाँच गौएँ जिसका धन हैं) । किन्तु द्विगुः (दो गायों से खरीदी गई वस्तु) ।

(ख) मुख्य अर्थ वाले उरस् शब्द से ।[४] अश्वानाम् उर इव अश्वोरसम् (घोड़ों में मुख्य अर्थात् प्रमुख घोड़ा) ।

(ग) जातिवाचक या संज्ञावाचक होंगे तो अनस्, अश्मन्, अयस् और सरस् शब्दों से अ प्रत्यय ।[५] उपानसम् (उपगतम् अनः, गाड़ी का बोझ), महानसः (रसोई), अमृताश्मः (चन्द्रकान्तमणि के तुल्य पत्थर) । यहाँ पर अन् का लोप

---

१. **अतेः शुनः ( ५-४-९६ ) । उपमानादप्राणिषु ( ५-४-९७ ) ।**
२. **उत्तरमृगपूर्वाच्च सक्थ्नः ( ५-४-९८ ) ।**
३. **गोरतद्धितलुकि ( ५-४-९२ ) ।**
४. **अग्राख्यायामुरसः ( ५-४-९३ ) ।**
५. **अनोऽश्मायःसरसां जातिसंज्ञयोः ( ५-४-९४ ) ।**

हुआ है। कालायसम् (काला पत्थर), मण्डूकसरसम् (तालाव, जिसमें मेंढक अधिक हैं), जलसरसम् (तालाव का नाम)।

(घ) द्विगु समास के अन्त में नौ शब्द होगा तो उससे टच् (अ) प्रत्यय होगा, यदि तद्धित प्रत्यय का लोप हुआ होगा तो नहीं।[1] जैसे—द्वाभ्यां नौभ्यामागतः—द्विनावरूप्यः (यहाँ तद्धित प्रत्यय का लोप नहीं हुआ है), द्विनावम् (दो नावों का समूह), त्रिनावम् आदि। किन्तु पञ्चभिः नौभिः क्रीतः—पञ्चनौः (यहाँ तद्धित प्रत्यय का लोप हुआ है)। अर्ध शब्द पहले होगा तो भी नौ से अ।[2] जैसे—नावः अर्धम्—अर्धनावम्। (यहाँ प्रचलन के आधार पर नपुं० है। क्लीवत्वं लोकात्, सि० कौ०)।

(ङ) द्विगु समास हो या अर्ध शब्द पहले हो तो खारी शब्द से विकल्प से अ प्रत्यय।[3] खारी के ई का लोप भी होगा। द्विखारम्, द्विखारि, अर्धखारम्, अर्धखारि।

(च) द्विगु समास में द्वि या त्रि पहले हो तो अञ्जलि शब्द से विकल्प से अ होगा और अन्तिम इ का लोप होगा। तद्धित प्रत्यय का लोप होगा तो नहीं।[4] द्व्यञ्जलम्—द्व्यञ्जलि (दो अंजलि भर)। किन्तु द्वाभ्याम् अञ्जलिभ्यां क्रीतः—द्व्यञ्जलिः ही होगा।

**२४१.** कु या महत् शब्द पहले होगा तो ब्रह्मन् से विकल्प से अ प्रत्यय और अन्तिम अन् का लोप।[5] कुब्रह्मा—कुब्रह्मः (कुत्सित ब्राह्मण), महाब्रह्मा—महाब्रह्मः। यदि किसी देशवासी का नाम होगा तो ब्रह्मन् से अ प्रत्यय नित्य होगा। सुराष्ट्र-ब्रह्मः (सुराष्ट्र में रहने वाला ब्राह्मण)।

**२४२.** महत् शब्द को महा हो जाता है, यदि वह कर्मधारय या बहुव्रीहि का प्रथम पद हो या जातीय प्रत्यय बाद में हो।[6] जैसे—महादेवः (महान् देवता,

---

१. नावो द्विगोः ( ५-४-९९ )।
२. अर्धाच्च ( ५-४-१०० )।
३. खार्याः प्राचाम् ( ५-४-१०१ )।
४. द्वित्रिभ्यामञ्जलेः ( ५-४-१०२ )।
५. ब्रह्मणो जानपदाख्यायाम् ( ५-४-१०४ )। कुमहद्भ्यामन्यतरस्याम् ( ५-४-१०५ )।
६. आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः ( ६-३-४६ ) तथा सूत्र पर वार्तिक।

शिव), महाबाहुः (बड़ी भुजा, तत्पुरुष; बड़ी भुजा वाला, बहुव्रीहि), महाजातीयः। किन्तु महतः सेवा—महत्सेवा (यहाँ षष्ठी तत्पुरुष समास है)।

**अपवाद-नियम**—घास, कर और विशिष्ट बाद में होंगे तो महा अवश्य होगा। महतो महत्या वा करः—महाकरः। इसी प्रकार महाघासः, महाविशिष्टः।

**२४३.** अष्टन् को अष्टा हो जाता है, बाद में कपाल शब्द हो और हवि अर्थ हो। इसी प्रकार गो शब्द बाद में होने पर और जुतना अर्थ होने पर अष्टन् को अष्टा।[1] अष्टाकपालः पुरोडाशः (आठ कपालों में पका हुआ पुरोडाश)। अष्टागवं शकटम् (आठ बैल जिसमें जुते हों, ऐसी गाड़ी)।

**२४४.** नञ् तत्पुरुष समास होने पर कोई समासान्त प्रत्यय नहीं होता है।[2] न राजा—अराजा (जो राजा नहीं है), न सखा—असखा इत्यादि।

(क) नञ् समास में बाद में पथिन् शब्द हो तो समासान्त अ प्रत्यय विकल्प से होगा और अन्तिम इन् का लोप होगा। तत्पुरुष समास में अपथ शब्द नपुं० होगा।[3] अपथम्—अपन्थाः (रास्ता न होना)। किन्तु अपथो देशः (यहाँ पर बहु० समास है)।

## तत्पुरुष समास में लिंग-विधान

**२४५.** सामान्यतया तत्पुरुष समास में अन्तिम शब्द के अनुसार लिंग होता है।[4]

**अपवाद-नियम** (क) प्राप्त और आपन्न शब्द पहले हों या गति-समास हो तो विशेष्य के अनुसार लिंग होता है।[5] प्राप्तजीविकः नरः, प्राप्तजीविका स्त्री, निष्कौशाम्बिः पुरुषः, आदि।

(ख) रात्र, अह्न और अह अन्त वाले तत्पुरुष पुंलिंग होते हैं। यदि कोई संख्या पहले होगी तो रात्र नपुंसक० होगा। पुण्य और सुदिन पहले होंगे तो अह

---

१. अष्टनः कपाले हविषि ( वा० ), गवि च युक्ते ( वार्तिक )।
२. नञस्तत्पुरुषात् (५-४-७१)।
३. पथो विभाषा (५-४-७२)। अपथं नपुंसकम् (२-४-३०)।
४. परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः (२-४-२६)।
५. द्विगुप्राप्तापन्नालंपूर्वगतिसमासेषु प्रतिषेधो वाच्यः ( वार्तिक )।

नपुंसक० होगा ।[1] जैसे—पूर्वरात्रः, मध्याह्नः, सप्ताहः, नवरात्रम्, गणरात्रम्, पुण्याहम्, सुदिनाहम् । कोई संख्या या अव्यय पहले हो तो पथ (पथिन् का समासान्त रूप, देखो नियम २८०) नपुंसक होता है । त्रयाणां पन्थाः त्रिपथम् । विरूपः पन्थाः विपथम् (बुरा रास्ता) । किन्तु सुपन्थाः, अतिपन्थाः रूप होंगे । यहाँ पर पथ नहीं, अपितु पन्थाः है (देखो नियम २८५) ।

(ग) समाहार अर्थ वाला द्विगु समास नपुंसक होता है । अकारान्त द्विगु समास स्त्रीलिंग होता है । आकारान्त द्विगु विकल्प से स्त्रीलिंग होता है । स्त्रीलिंग होने पर अन्त में ई लगेगा ।[2] पञ्चगवम् (पाँच गायों का समूह), त्रयाणां लोकानां समाहारः—त्रिलोकी । किन्तु पञ्चपात्रम्, त्रिभुवनम्, चतुर्युगम् आदि । पञ्चानां खट्वानां समाहारः—पञ्चखट्वी, पञ्चखट्वम् । अन् अन्त वाले द्विगु का न् हट जाता है और वह विकल्प से स्त्रीलिंग होता है । पञ्चतक्षम्, पञ्चतक्षी (पञ्च+तक्षन्, पांच बढ़इयों का समूह) ।

(घ) उपज्ञा या उपक्रम शब्द तत्पुरुष के अन्त में होंगे तो वे नपुंसक होंगे, यदि सर्वप्रथम का अर्थ अभिप्रेत होगा तो ।[3] पाणिनेरुपज्ञा—पाणिन्युपज्ञं ग्रन्थः (पाणिनि के द्वारा सर्वप्रथम रचित ग्रन्थ या व्याकरण), नन्दोपक्रमं द्रोणः (राजा नन्द ने सर्वप्रथम जिसका प्रयोग प्रारम्भ किया, ऐसा द्रोण नाम का एक बाट या तोलने का साधन) ।

(ङ) छाया अन्त वाले तत्पुरुष नपुंसक होते हैं, यदि छाया करने वाली वस्तुएँ अनेक हों तो ।[4] इक्षूणां छाया—इक्षुच्छायम् ।

(च) तत्पुरुष समास के अन्त में सभा शब्द नपुंसक हो जाता है, यदि उससे पूर्व राजा का पर्यायवाची कोई शब्द हो या रक्षस्, पिशाच आदि शब्द हों । राजन्

---

१. रात्राह्नाहाः पुंसि ( २-४-२९ ) । संख्यापूर्वं रात्रं क्लीबम् ( सि० कौ० )। पुण्यसुदिनाभ्यामह्नः क्लीबतेष्टा ( वा० ) । पथः संख्याव्ययादेः (वा०) ।
२. स नपुंसकम् ( २-४-१७ ) । अकारान्तोत्तरपदो द्विगुः स्त्रियामिष्टः (वा०) आबन्तो वा ( वा० ) । अनो नलोपश्च वा द्विगुः स्त्रियाम् ( वा० ) । पात्राद्यन्तस्य न ( पूर्वोक्त सूत्र पर वार्तिक ) ।
३. उपज्ञोपक्रमं तदाद्याचिख्यासायाम् ( २-४-२१ ) । उपज्ञा ज्ञानमाद्यं स्यात् ज्ञात्वारम्भ उपक्रमः ( अमर० ) ।
४. छाया बाहुल्ये ( २-४-२२ ) ।

शब्द या राजा का नाम पहले नहीं होना चाहिए।[1] जैसे—इनसभम्, ईश्वरसभम् (राजा की सभा)। किन्तु—राजसभा ही रूप होगा। रक्षःसभम्, पिशाचसभम्। समूह अर्थ में सभा शब्द अन्त में हो तो भी नपुंसक होगा। जैसे—स्त्रीसभम् (स्त्रियों का समूह)। किन्तु धर्मसभा ही रूप होगा, यह धर्मशाला के अर्थ में है।

(छ) तत्पुरुष के अन्त में ये शब्द होंगे तो विकल्प से नपुंसक° होगा—सेना, सुरा, छाया, शाला और निशा।[2] ब्राह्मणसेना—ब्राह्मणसेनम्, यवसुरा—यवसुरम् (जौ की बनी शराब), कुड्यच्छाया—कुड्यच्छायम् (दीवार की छाया), गोशाला—गोशालम्, श्वनिशा—श्वनिशम् (शाबर भाष्य में इसकी व्याख्या है कि श्वनिशा कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को कहते हैं, क्योंकि उस रात कुछ कुत्ते उपवास रखते हैं)।

**सूचना**—लिंग-विषयक उपर्युक्त ये नियम तत्पुरुष समास में ही लगते हैं, अन्यत्र नहीं। अतः दृढसेनो राजा (बहु०), असेना (नञ् समास), परमसेना (कर्मधारय)।

## (३) बहुव्रीहि समास (Attributive Compounds)

**२४६.** दो या अधिक प्रथमान्त शब्दों का बहुव्रीहि समास होता है, यदि उन शब्दों से अतिरिक्त कोई अन्य पदार्थ अभीष्ट हो तो। इसमें प्रथम पद साधारणतया विशेषण या गुणबोधक होता है और उत्तर पद विशेष्य या गुणी। दोनों पद मिलकर अपने से भिन्न पद का अर्थ बताते हैं। जैसे—महाबाहुः (जिसकी भुजाएँ बड़ी हैं), पीताम्बरः (जिसके वस्त्र पीले हैं)। इसका विग्रह करने पर द्वितीया से लेकर सप्तमी तक किसी भी विभक्ति का यत् शब्द का रूप अन्त में आता है। जैसे—महान् बाहुः यस्य स महाबाहुः (नलः), पीतम् अम्बरं यस्य स पीताम्बरः (हरिः)। बहुव्रीहि समास वाला पद विशेषण का कार्य करता है और विशेष्य के तुल्य उसके लिंग और वचन होते हैं।

**टिप्पणी**—इंग्लिश् में भी इस प्रकार के समस्त पद प्रायः मिलते हैं। जैसे—High-souled, Good-natured, Narrow-minded, आदि।

---

१. सभा राजाऽमनुष्यपूर्वा (२-४-२३)। पर्यायस्यैवेष्यते (वा०)। अशाला च (२-४-२४)। अमनुष्यशब्दो रूढ्या रक्षःपिशाचादीनाह (सि० कौ०)।

२. विभाषा सेनासुराच्छायाशालानिशानाम् (२-४-२५)।

३. अनेकमन्यपदार्थे (२-२-२४)। समस्यमानपदातिरिक्तस्य पदस्यार्थे इत्यर्थः (तत्त्वबोधिनी)।

**सूचना**—कर्मधारय और बहुव्रीहि समास में निम्नलिखित अन्तर है—कर्मधारय में दोनों पदों में से एक पद विशेषण होता है और दूसरा विशेष्य, बहुव्रीहि में पूरा समस्त पद ही विशेषण होता है। कर्मधारय में समस्त पद में ही अर्थ पूरा हो जाता है, परन्तु बहुव्रीहि में समस्त पदों में अर्थ पूरा नहीं होता है। जैसे—घनश्याम: नल: में समस्त पद के एक श्याम शब्द और नल दोनों में एक विभक्ति है, अत: यहाँ कर्मधारय है। गम्भीरनाद: में कर्मधारय मानने पर अर्थ होगा—गम्भीरश्चासौ नाद: (गम्भीर ध्वनि) और अर्थ पूर्ण हो जाता है। परन्तु गम्भीरनाद: को बहुव्रीहि मानने पर अर्थ होगा—गम्भीर: नाद: यस्य (गंभीर है ध्वनि जिसकी), यहाँ पर गंभीर ध्वनि से ही अर्थ पूरा नहीं होता, अपितु वह व्यक्ति अपेक्षित है, जिसकी ध्वनि गंभीर है।

**२४७**. बहुव्रीहि समास को दो भागों में विभक्त किया गया है—समानाधिकरण बहुव्रीहि और व्यधिकरण बहुव्रीहि।[1]

(क) समानाधिकरण बहुव्रीहि में बहुव्रीहि के दोनों पदों में विग्रह की अवस्था में एक ही विभक्ति होती है। यत् शब्द के द्वितीया से सप्तमी तक भेदों के आधार पर इसके ६ भेद होते हैं। जैसे—प्राप्तम् उदकं यं स:—प्राप्तोदको ग्राम:। ऊढ: रथ: येन स:—ऊढरथ: अनड्वान्। उपहृत: पशु: यस्मै स:—उपहृतपशु: रुद्र:। उद्धृत: ओदन: यस्या: सा—उद्धृतोदना स्थली। पीतम् अम्बरं यस्य स:—पीताम्बरो हरि:, वीरा: पुरुषा: यस्मिन् स:—वीरपुरुषो ग्राम:।

**२४८**. व्यधिकरण बहुव्रीहि उसे कहते हैं, जहाँ पर विग्रह करने पर दोनों पदों में एक विभक्ति न हो, अर्थात् दोनों पदों में अलग-अलग विभक्ति हों। साधारणतया व्यधिकरण-बहुव्रीहि समास नहीं होता है, परन्तु षष्ठी और सप्तमी-युक्त विभक्तियों का यह समास हो जाता है।[2] जैसे—चक्रं पाणौ यस्य स:—चक्रपाणि:

---

१. **वस्तुत: व्यधिकरण बहुव्रीहि बहुव्रीहि का एक भाग नहीं है, अपितु सामान्य नियम का अपवाद मात्र है। केवल भ्रम-निवारणार्थ इसको यहाँ पृथक् रूप से प्रस्तुत किया गया है।**

२. **सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ (२-२-३५)। बहुव्रीहि समास में सप्तम्यन्त पद और विशेषण शब्दों का पूर्वप्रयोग होता है। अत एव ज्ञापकाद् व्यधिकरणपदो बहुव्रीहि:। (सि० कौ०)।**

हरिः, चन्द्रस्य इव कान्तिर्यस्य सः—चन्द्रकान्तिः ।[1] इसी प्रकार पद्मगन्धिः, शस्त्रपाणिः आदि। शशी शेखरे यस्य सः—शशिशेखरः आदि। किन्तु पञ्चभिर्भुक्तमस्य में समास नहीं होगा और पञ्चभुक्तः रूप नहीं बनेगा।

**२४९. विशेष**—बहुव्रीहि समास के अन्य भी दो भेद हैं—तद्गुणसंविज्ञान-बहुव्रीहिः और अतद्गुणसंविज्ञान-बहुव्रीहिः। तद्गुणसंविज्ञान-बहुव्रीहि वह है, जहाँ पर विशेषण पद का अर्थ भी उपस्थित रहता है। जैसे—पीताम्बरं हरिम् आह्वय में विशेष्य हरि है, परन्तु उसके साथ ही पीत वस्त्र की उपस्थिति भी आवश्यक है। परन्तु अतद्गुणसंविज्ञान-बहुव्रीहि में विशेषण पद की उपस्थिति आवश्यक नहीं होती। जैसे—चित्रगुं गोपम् आनय में गोप विशेष्य की उपस्थिति आवश्यक है, चित्रवर्ण की गायों की नहीं।

**२५०.** प्र आदि उपसर्गों और निषेधार्थक अ या अन् अव्ययों का संज्ञा शब्दों के साथ बहुव्रीहि समास कहीं-कहीं पर होता है। अर्थ को प्रकट करने के लिए प्रयुक्त कृदन्त रूपों का विकल्प से लोप होता है।[2] अविद्यमानः पुत्रः यस्य सः—अपुत्रः, प्रपतितानि पर्णानि यस्य सः—प्रपर्णः (जिसके पत्ते गिर गए हैं, ऐसा वृक्ष), निर्गता घृणा यस्य सः—निर्घृणः (निर्दयी), उद्गता कन्धरा यस्य सः—उत्कन्धरः (ऊँची गर्दन वाला), विगतं जीवितं यस्य सः—विजीवितः (मृत) आदि। ये भी रूप बनेंगे—अविद्यमानपुत्रः, प्रपतितपर्णः, आदि। अस्ति क्षीरं यस्याः सा—अस्तिक्षीरा गौः (दूधवाली गाय)। यहाँ पर अस्ति अव्यय है और इसका अर्थ है 'विद्यमान'।

**२५१.** सह अव्यय का तृतीयान्त शब्द के साथ बहुव्रीहि समास हो जाता है,

---

१. इस प्रकार का समास इस वार्तिक के अनुसार किया जा सकता है—सप्तम्युपमानपूर्वपदस्योत्तरपदलोपश्च वक्तव्यः (वार्तिक)। सप्तम्यन्त शब्द और उपमानवाची शब्द पूर्वपद में हों तो उत्तरपद का लोप होता है। अतः इस समास का विग्रह इस प्रकार होगा—चन्द्रस्य कान्तिः—चन्द्रकान्तिः, चन्द्रकान्तिरिव कान्तिर्यस्य सः—चन्द्रकान्तिः। बाद के वैयाकरणों—वामन, भट्टोजि आदि—ने इस वार्तिक को अव्यावहारिक मानकर इसका सर्वथा खण्डन किया है।

२. प्रादिभ्यो धातुजस्य वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः (वा०)। नञोऽस्त्यर्थानां वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः (सूत्र २-२-२४ पर वार्तिक)।

यदि किसी एक कार्य में दोनों समान रूप से भाग ले रहे हों। इस समास में सह को स विकल्प से हो जाता है।[1] जैसे—पुत्रेण सह सहपुत्रः सपुत्रो वा आगतः।

(क) आशीर्वाद अर्थ में सह का स नहीं होता। यदि गो, वत्स और हल शब्द बाद में होंगे तो सह को स अवश्य होगा, आशीर्वाद अर्थ होने पर भी।[2] जैसे—स्वस्ति राज्ञे सहपुत्राय सहामात्याय, आदि। सगवे, सवत्साय, सहलाय।

**२५२.** संख्यावाचक शब्द के साथ अव्यय, संख्यावाचक शब्द, आसन्न, अदूर और अधिक शब्दों का बहुव्रीहि समास होता है।[3] ऐसे समस्त पदों में समासान्त अ प्रत्यय होता है और उससे पूर्ववर्ती टि (अन्तिम स्वर या अन्तिम स्वर सहित व्यंजन) का लोप हो जाता है। विंशति की ति का लोप होता है। यह नियम बहु और गण शब्दों में नहीं लगेगा।[4] दशानां समीपे ये सन्ति ते—उपदशाः (दस के लगभग अर्थात् ९ या ११), द्वौ वा त्रयो वा—द्वित्राः (दो-तीन), द्वे वा त्रीणि वा—द्वित्राणि, द्विः आवृत्ताः दश—द्विदशाः (दो बार दस अर्थात् २०)। इसी प्रकार त्रिदशाः, आदि। विंशतेः आसन्नाः आसन्नविंशाः (२० के लगभग), त्रिंशतः अदूराः—अदूरत्रिंशाः (३० से दूर नहीं), अधिकचत्वारिंशाः (४० से अधिक)। किन्तु उपबहवः, उपगणाः।[5] त्रि या उप शब्द पहले होगा तो चतुर् शब्द से अ होगा और टि का लोप नहीं होगा। त्रयो वा चत्वारो वा—त्रिचतुराः, चतुर्णां समीपे ये सन्ति ते—उपचतुराः।

---

१. तेन सहेति तुल्ययोगे (२-२-२८)। वोपसर्जनस्य (६-३-८२)। यहाँ पर तुल्ययोगे यह अनिवार्य नियम नहीं समझना चाहिए, क्योंकि ऐसे भी उदाहरण हैं जहाँ पर तुल्ययोग नहीं है और समास हुआ है। जैसे—सकर्मक, सलोमक, सपक्षक आदि। अतः वृत्तिकार का कथन है कि—प्रायिकं तुल्ययोगे इति विशेषणम्, अन्यत्रापि समासो दृश्यते। भट्टोजि दीक्षित का भी कथन है—तुल्ययोगवचनं प्रायिकम्।

२. प्रकृत्याशिषि (६-३-८३)। अगोवत्सहलेष्विति वाच्यम् (वार्तिक)।

३. संख्ययाऽव्ययासन्नादूराधिकसंख्याः संख्येये (२-२-२५)।

४. बहुव्रीहौ संख्येयेऽजबहुगणात् (५-४-७३)। ति विंशतेर्डिति (६-४-१४२)। त्र्युपाभ्यां चतुरोऽजिष्यते (५-४-७७ पर वार्तिक)।

५. अत्र स्वरे विशेषः (सि० कौ०)। दोनों प्रकार से उपगणाः ही रूप बनता है, परन्तु दोनों में स्वर में भेद है।

**२५३.** दिशावाची शब्दों का बहुव्रीहि समास होता है और वह समस्तपद दोनों के बीच की दिशा का बोध कराता है।[1] दक्षिणस्याः पूर्वस्याश्च दिशोऽन्तरालं दक्षिणपूर्वा। इसी प्रकार उत्तरपूर्वा आदि। यदि दिशाओं के यौगिक नाम होंगे तो उनका बहुव्रीहि समास नहीं होगा। जैसे—ऐन्द्र्याश्च कौबेर्याश्च अन्तरालं दिक् (पूर्व और उत्तर के बीच की दिशा)। यहाँ पर ऐन्द्रीकौबेरी रूप नहीं बनेगा, क्योंकि ये पूर्व और उत्तर के रूढ़ नाम नहीं हैं।

**२५४.** बहुव्रीहि समास में निम्नलिखित स्थानों पर समासान्त अ प्रत्यय लगता है तथा उस से पूर्व टि (अन्तिम स्वर या अन्तिम स्वर और उससे आगे का व्यंजन) का लोप होता है :—

(क) सक्थि और अक्षि शब्द, यदि शरीरावयववाची होंगे तो।[2] जैसे—जलजवत् अक्षिणी यस्य सः—जलजाक्षः (कमल के तुल्य नेत्रों वाला), दीर्घे सक्थिनी यस्य सः—दीर्घसक्थः (लम्बी जाँघों वाला), कमले इव अक्षिणी यस्याः सा—कमलाक्षी (स्त्री)। किन्तु दीर्घसक्थि शकटम् (लम्बी लकड़ी वाली गाड़ी), स्थूलाक्षा वेणुयष्टिः (बाँस की लाठी, जिसमें आँखों के तुल्य बड़े छेद हों)। यहाँ पर नियम २८२ (ब) से अ लगा है, अतः स्त्रीलिंग में आ लगा है। देखो नीचे सूचना। सक्थि शब्द के लिए नीचे (ङ) भी देखो।

**सूचना**—अक्ष शब्द जब प्राणिभिन्न का वाचक होगा तो उस बहुव्रीहि के स्त्रीलिंग में अन्त में आ लगेगा।

(ख) जब अंगुलि शब्दान्त बहुव्रीहि दारु का विशेषण होगा।[3] पञ्च अंगुलयो यस्य तत्—पञ्चाङ्गुलं दारु (अंगुलिसदृशावयवं धान्यादिविक्षेपणकाष्ठम्)। किन्तु पञ्चाङ्गुलिः हस्तः (५ अंगुलियों से युक्त हाथ)।

(ग) द्वि या त्रि शब्द पहले होगा तो मूर्धन् से, अन्तर् या बहिः शब्द पहले होगा तो लोमन् से, नक्षत्र अर्थ में नेतृ शब्द से, अ होगा।[4] द्वौ मूर्धानौ यस्य सः द्विमूर्धः (दो सिर वाला), त्रिमूर्धः। किन्तु दशमूर्धा ही रूप होगा। अन्तर्लोमः,

---

१. दिङ्नामान्यन्तराले (२-२-२६)।
२. बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच् (५-४-११३)।
३. अङ्गुलेर्दारुणि (५-४-११४)।
४. द्वित्रिभ्यां ष मूर्ध्नः (५-४-११५)। अन्तर्बहिर्भ्यां च लोम्नः (५-४-११७)। नेतुर्नक्षत्रे अब्वक्तव्यः (वार्तिक)।

बहिर्लोमः । मृगो नेता यासां रात्रीणां ताः मृगनेत्रा रात्रयः (मृग नक्षत्र जिन रात्रियों का नेता है) । इसी प्रकार पुष्यनेत्राः आदि ।

(घ) पूरणार्थक प्रत्ययान्त जो स्त्रीलिंग शब्द (पञ्चमी, षष्ठी आदि) और प्रमाणी अन्त वाले शब्दों से अ प्रत्यय होता है।[1] जैसे—कल्याणी पञ्चमी यासां रात्रीणां ताः कल्याणपञ्चमा रात्रयः (जिन रात्रियों में पञ्चमी कल्याणकारी है), स्त्री प्रमाणी यस्य सः—स्त्रीप्रमाणः (जो औरत को ही प्रमाण मानता है) ।

(ङ) नञ् (अ), दुः या सु पहले होंगे तो हलि को हल और सक्थि को सक्थ विकल्प से हो जाएगा।[2] अहलः—अहलिः (बिना हल का), अ-सक्थः—असक्थिः (बिना जाँघ का), दुःसक्थः—दुःसक्थिः (बुरी जाँघ वाला), सुसक्थः—सुसक्थिः आदि । सक्थि के स्थान पर शक्ति भी पाठभेद मिलता है। अतः अशक्तः—अशक्तिः, आदि ।

(च) नञ्, दुः और सु के बाद प्रजा को प्रजस् और मेधा को मेधस् हो जाता है।[3] अविद्यमाना प्रजा यस्य सः—अप्रजाः (सन्तानहीन), दुष्टा प्रजा यस्य सः—दुष्प्रजाः (दुष्ट सन्तान वाला), शोभना मेधा यस्य सः—सुमेधाः (अच्छी बुद्धि वाला) । इसी प्रकार दुर्मेधाः, अमेधाः ।

**२५५.** (क) यदि केवल एक शब्द पहले हो तो बहुव्रीहि में धर्म को धर्मन् हो जाता है।[4] कल्याणं धर्मः यस्य सः—कल्याणधर्मा । इसी प्रकार समान-धर्मा (देखो मालतीमाधव अंक १ प्रस्तावना) । किन्तु परमः स्वः धर्मः यस्य सः—परमस्वधर्मः रूप होगा । परमस्वधर्मा भी रूप बन सकता है, यदि परमस्व को कर्मधारय समास के द्वारा एक पद मान लिया जाए । सन्दिग्धसाध्यधर्मा, निवृत्ति-धर्मा, अनुच्छित्तिधर्मा आदि रूप इसी प्रकार बने हुए समझने चाहिएँ ।

(ख) बहुव्रीहि के अन्त में धनुष् धन्वन् हो जाता है।[5] जैसे—अधिज्यं धनुः यस्य सः—अधिज्यधन्वा (जिसके धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ी हुई है) । इसी

---

१. **अप्पूरणीप्रमाण्योः** ( ५-४-११६ ) ।
२. **नञ्दुःसुभ्यो हलिसक्थ्योरन्यतरस्याम्** ( ५-४-१२१ ) । **शक्त्योरिति पाठान्तरम्** ( सि० कौ० ) ।
३. **नित्यमसिच् प्रजामेधयोः** ( ५-४-१२२ ) ।
४. **धर्मादनिच् केवलात्** ( ५-४-१२४ ) ।
५. **धनुषश्च** ( ५-४-१३२ ) । **वा संज्ञायाम्** ( ५-४-१३३ ) ।

प्रकार शार्ङ्गधन्वा (शृङ्गस्य इदं शार्ङ्गम्, जिसका धनुष सींग का बना हुआ है अर्थात् विष्णु)। यदि किसी का नाम होगा तो धनुष को धन्वन् विकल्प से होगा। शतधन्वा—शतधनुः।

(ग) सु, हरित, तृण या सोम शब्द पहले हों तो जम्भ (दाँत या अन्न आदि) को जम्भन् हो जाता है।[1] शोभनः जम्भः अस्य—सुजम्भा (सुन्दर दाँतों वाला)। इसी प्रकार हरितजम्भा (पुं०)। तृणं भक्ष्यं यस्य, तृणमिव दन्ता यस्येति वा तृणजम्भा, सोमजम्भा (सोम जिसका भक्ष्य है)। किन्तु पतितजम्भः ही रूप होगा।

(घ) दक्षिण शब्द पहले हो तो ईर्म (नपुं०, चोट) को ईर्मन् हो जाता है, यदि यह चोट शिकारी के द्वारा मारी गई हो तो।[2] दक्षिणे ईर्म यस्य दक्षिणेर्मा मृगः (शिकारी ने जिस मृग के दाहिनी ओर चोट मारी है)। देखो भट्टि० ६-४४।

**२५६.** बहुव्रीहि समास के अन्त में इन स्थानों पर ये कार्य होते हैं :—

(क) प्र या सम् पहले होंगे तो जानु को ज्ञु नित्य होता है और ऊर्ध्व पहले हो तो विकल्प से।[3] प्रगते जानुनी यस्य सः—प्रज्ञुः (जिसके घुटने फैले हुए हैं), संज्ञुः (सुन्दर घुटनों वाला), ऊर्ध्वजानुः—ऊर्ध्वज्ञुः (ऊँचे घुटनों वाला)।

(ख) जाया को जानि हो जाता है।[4] युवती जाया यस्य सः—युवजानिः (जिसकी स्त्री युवती है), भूजानिः (पृथ्वी जिसकी स्त्री है, अर्थात् राजा), आदि।

(ग) उत्, पूति या सु पहले हो तो गन्ध को गन्धि हो जाता है।[5] उद्गतः

---

१. जम्भा सुहरिततृणसोमेभ्यः ( ५-४-१२५ )।
२. दक्षिणेर्मा लुब्धयोगे ( ५-४-१२६ )।
३. प्रसंभ्यां जानुनोर्ज्ञुः ( ५-४-१२९ )। ऊर्ध्वाद् विभाषा ( ५-४-१३० )।
४. जायाया निङ् (५-४-१३४)। लोपो व्योर्वलि ( ६-१-६६ )। बहुव्रीहि समास के अन्त में जाया के आ के स्थान पर नि हो जाता है। य् को छोड़कर कोई भी व्यंजन बाद में हो तो य् या व् का लोप हो जाता है।
५. गन्धस्येदुत्पूतिसुसुरभिभ्यः ( ५-४-१३५ )। गन्धस्येत्वे तदेकान्तग्रहणम् ( वार्तिक )। इस वार्तिक में गन्धस्य आदि के अर्थ पर विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। कुछ का मत है कि इ वहीं पर हो सकता है, जहाँ पर गन्ध वस्तु का स्वाभाविक धर्म हो। देखो भट्टिकाव्य पर जयमंगल टीका। आघ्रायिवान् गन्धवहः सुगन्धः० ( २-१० ), रघुवंश ( ४-४५) पर मल्लिनाथ की टीका। कैयट, नागेश, भट्टोजि आदि प्रमुख वैयाकरणों का मत ऊपर दिया गया है।

गन्धः यस्य सः–उद्गन्धिः (जिसकी गन्ध चारों ओर फैल रही है), पूतिगन्धिः (दुर्गन्ध वाली), सुगन्धिः । गन्ध को गन्धि तभी होगा, जब गन्ध निर्दिष्ट वस्तु के साथ अविभाज्य रूप से संबद्ध हो या दृष्टिगोचर हो । जैसे—सुगन्धि पुष्पं सलिलं च (सुगन्ध-युक्त फूल या जल), सुगन्धिर्वायुः । किन्तु शोभना गन्धा अस्य—सुगन्ध आपणिकः (सुगन्धित वस्तुओं को बेचने वाला व्यापारी) । यदि गन्ध शब्द अल्प (थोड़ा) अर्थ में हो या समस्तपद तुलना अर्थ में हो तो भी गन्ध को गन्धि होता है ।[1] जैसे—सूपस्य गन्धः यस्मिन् तत्—सूपगन्धि भोजनम् । इसी प्रकार घृतगन्धि (ऐसा भोजन जिसमें घी नाममात्र को पड़ा हो)। पद्मस्य इव गन्धः यस्य तत्–पद्मगन्धि (कमल के तुल्य गन्ध वाला) ।

(घ) नासिका को नस हो जाता है, यदि कोई उपसर्ग पहले हो, कोई संज्ञा हो या स्थूल शब्द को छोड़कर कोई शब्द पहले हो तो।[2] उन्नता नासिका यस्य सः—उन्नसः (जिसकी नाक ऊँची हो), प्रणसः (सुन्दर नाक वाला), द्रुरिव नासिका यस्य सः—द्रुणसः[3] (पेड़ के तुल्य अर्थात् बड़ी नाक वाला) । किन्तु स्थूलनासिकः ही रूप बनेगा । खुर या खर पहले होंगे तो नस को नस् विकल्प से हो जाएगा । जैसे—खुरणसः—खुरणाः (घोड़े के खुर के तुल्य अर्थात् चौड़ी नाक वाला), खरणसः—खरणाः (नुकीली नाक वाला) । वि पहले होगा तो नासिका को ग्र या ख्य हो जाता है । जैसे—विगता नासिका यस्य सः—विग्रः–विख्यः (कुरूप नाक वाला) ।

**२५७.** बहुव्रीहि समास के अन्त में निम्नलिखित शब्दों का अन्तिम स्वर हट जाता है :—

(क) पाद शब्द के अन्तिम अ का लोप हो जाता है, यदि कोई संख्या या सु पहले हो, या हस्ति आदि (हस्तिन्, अज, कुसूल, अश्व, कपोत, जाल, गण्ड, दासी, गणिका आदि) शब्दों को छोड़कर कोई अन्य उपमानवाचक शब्द पहले हो तो ।[4] द्वौ पादौ यस्य सः—द्विपात् (दो पैर वाला), सुपात् (सुन्दर पैर

---

१. **अल्पाख्यायाम् ( ५-४-१३६ ) । उपमानाच्च ( ५-४-१३७ ) ।**

२. **अञ् नासिकायाः संज्ञायां नसं चास्थूलात् ( ५-४-११८ ) । उपसर्गाच्च ( ५-४-११९ ) । वेर्ग्रो वक्तव्यः ( वा० ) । ख्यश्च ( वा० ) ।**

३. **पूर्वपदात् संज्ञायामगः ( ८-४-३ ) । उपसर्गाद् बहुलम् ( ८-४-२८ ) ।**

४. **पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः ( ५-४-१३८ ) । संख्यासुपूर्वस्य ( ५-४-१४० ) ।**

वाला), व्याघ्रस्य इव पादौ यस्य—व्याघ्रपात्, आदि। किन्तु हस्तिपादः, कुसूल-पादः आदि ही रूप बनेंगे।

(ख) कुम्भपदी आदि (कुम्भपदी, एकपदी, जालपदी, सूत्रपदी, शतपदी, विपदी, द्विपदी, त्रिपदी, दासीपदी, विष्णुपदी, सुपदी आदि) शब्दों में पाद को पद् हो जाता है और अन्त में स्त्री-प्रत्यय ई हो जाता है।[1] किन्तु पुंलिंग में कुम्भपादः होगा।

(ग) दन्त को दत् नित्य हो जाता है, यदि कोई संख्या या सु पहले हो और आयु अर्थ हो, या समस्त पद संज्ञावाची स्त्रीलिंग शब्द हो। इन स्थानों पर विकल्प से दन्त को दत् होता है—श्याव या अरोक शब्द पहले हो, अग्र अन्त वाला शब्द पहले हो या शुद्ध, शुभ्र, वृष या वराह शब्द पहले हो।[2] द्वौ दन्तौ यस्य सः—द्विदन् (बालक, जिसके अभी दो दाँत ही निकले हैं), षड् दन्ता अस्य—षोडन्, शोभना दन्ता अस्य—सुदन्, सुदती (सुन्दर दातों वाली)। किन्तु द्विदन्तः करी, सुदन्तः (सुन्दर दाँतों वाला) पुरुषः। अयोदती, फालदती (दोनों नाम हैं), आदि। किन्तु समदन्ती (समान संख्या वाले दाँतों की पंक्ति से युक्त) ही रूप होगा। श्यावा दन्ता यस्य सः—श्यावदन्—श्यावदन्तः (काले दाँतों से युक्त), अरोकदन्—अरोकदन्तः (बिना छिद्र वाले दाँतों से युक्त), कुड्मलाग्रदन्—कुड्मलाग्रदन्तः (कली के अग्रभाग के तुल्य दाँतों वाला), शुभ्रदन्—शुभ्रदन्तः।

(घ) ककुद को ककुत् हो जाता है, यदि समस्तपद अवस्था का बोधक हो।[3] अजातं ककुदं यस्य सः—अजातककुन् (बैल, जिसके गले पर अभी तक ठाँठ नहीं निकला है, अर्थात् कम आयु का बैल)। त्रि शब्द पहले होगा और पर्वत अर्थ होगा तो ककुद को ककुत्। जैसे—त्रिककुत् (तीन चोटियों वाला एक पर्वत)। किन्तु त्रिककुदः (तीन ककुद वाला)।

(ङ) उत् या वि पहले होंगे तो काकुद (काकुदं तालु, सि० कौ०) को

---

१. कुम्भपदीषु च (५-४-१३९)।
२. वयसि दन्तस्य दतृ (५-४-१४१)। स्त्रियां संज्ञायाम् (५-४-१४३)। विभाषा श्यावारोकाभ्याम् (५-४-१४४)। अग्रान्तशुद्धशुभ्रवृषवराहेभ्यश्च (५-४-१४५)।
३. ककुदस्यावस्थायां लोपः (५-४-१४६)। त्रिककुत्पर्वते (५-४-१४७)।

काकुत् नित्य होगा और पूर्ण पहले होगा तो विकल्प से।[1] जैसे—उत्काकुत्, विकाकुत्, पूर्णकाकुत्–पूर्णकाकुदः ।

**२५८.** सु और दुर् के बाद हृदय को हृत् हो जाता है, क्रमशः मित्र और शत्रु अर्थ में।[2] शोभनं हृदयं यस्य सः–सुहृत् (मित्र), दुर्हृत् (शत्रु) । अन्यत्र सुहृदयः (अच्छे हृदय वाला), दुर्हृदयः (नीच हृदय वाला) ।

**२५९.** सप्तम्यन्त एक प्रकार के रूप हों और पकड़ने की वस्तु अर्थ हो या तृतीयान्त एक प्रकार के रूप हों और प्रहार करने की वस्तु अर्थ हो तो बहुव्रीहि समास हो जाता है, जब वहाँ पर 'इस प्रकार युद्ध प्रारम्भ हुआ' अर्थ हो और कार्य का आदान-प्रदान हो।[3] ऐसे समस्त पदों में पूर्वपद के अन्तिम स्वर को दीर्घ हो जाता है और उत्तरपद के अन्तिम स्वर को इ हो जाता है। इस प्रकार के समस्त पद अव्ययीभाव और अव्यय होते हैं। उत्तरपद के उ को ओ हो जाता है, इ प्रत्यय बाद में होने पर।[4] जैसे—केशेषु केशेषु गृहीत्वेदं युद्धं प्रवृत्तं केशाकेशि (एक दूसरे के बाल पकड़कर झगड़ा प्रारम्भ हुआ), दण्डैश्च दण्डैश्च प्रहृत्येदं युद्धं प्रवृत्तं दण्डादण्डि। इसी प्रकार मुष्टीमुष्टि, हस्ताहस्ति, बाहूबाहवि, मुसलामुसलि, आदि। यदि दोनों ने अलग-अलग प्रहार के साधन अपनाए हैं तो समास नहीं होगा। जैसे—हलेन मुसलेन में समास नहीं होगा, हलामुसलि रूप नहीं बनेगा।

**विशेष**—(क) इन शब्दों के अन्तिम स्वर को इ हो जाता है। द्वौ दण्डौ यस्मिन् प्रहरणे तद् द्विदण्डि। इसी प्रकार द्विमुसलि, उभा-उभयाञ्जलि, उभाहस्ति, उभयहस्ति, उभा-उभया-पाणि,० बाहु, आदि।

**२६०.** निम्नलिखित बहुव्रीहि निपातन (ऐसा इष्ट है) से बनते

---

१. **उद्विभ्यां काकुदस्य ( ५-४-१४८ )। पूर्णाद् विभाषा ( ५-४-१४९ )।**
२. **सुहृद्दुर्हृदौ मित्रामित्रयोः ( ५-४-१५० )।**
३. **तत्र तेनेदमिति सरूपे ( २-२-२७ )। सप्तम्यन्ते ग्रहणविषये सरूपे पदे तृतीयान्ते च प्रहरणविषये इदं युद्धं प्रवृत्तमित्यर्थे समस्येते कर्मव्यतिहारे द्योत्ये स बहुव्रीहिः ( सि० कौ० )।**
४. **अन्येषामपि दृश्यते ( ६-३-१३७ ), इच् कर्मव्यतिहारे ( ५-४-१२७ )। तिष्ठद्गुप्रभृतिष्विच्प्रत्ययस्य पाठादव्ययीभावत्वमव्ययत्वं च ( सि० कौ० )। ओर्गुणः ( ६-४-१४६ )।**

हैं।[1] शोभनं प्रातरस्य सुप्रातः (पुं०, सुन्दर या शुभ प्रातःकाल वाला दिन, देखो भट्टि० २-४९)। शोभनं श्वः अस्य-सुश्वः (जिसका कल का दिन शुभ है), शोभनं दिवाऽस्य-सुदिवः (जिसके लिए दिन शुभ रहा है), शारेरिव कुक्षिरस्य—शारिकुक्षः (गोल पेट वाला), चतस्रोऽश्रयोऽस्य—चतुरश्रः (चतुष्कोण), एण्या इव पादौ अस्य—एणीपदः (मृगी के तुल्य पैर वाला), अजपदः, प्रोष्ठस्य इव पादौ अस्य—प्रोष्ठपदः (बैल के तुल्य पैर वाला)।

**२६१.** बहुव्रीहि समास के अन्त में एकवचनान्त ये शब्द होंगे तो इनसे समासान्त क प्रत्यय हो जाएगा—उरस्, सर्पिष्, उपानह्, दधि, मधु, शालि, शाली और पुंस्, अनडुह्, पयस्, नौ और लक्ष्मी।[2] व्यूढम् उरः यस्य—व्यूढोरस्कः (विशाल छाती वाला), प्रियसर्पिष्कः (घी जिसको प्रिय है) आदि। एकः पुमान् यस्य सः—एकपुंस्कः (जिसके पास एक आदमी है), आदि। पुंस् और उससे बाद के शब्द यदि द्विवचन या बहुवचन में होंगे तो क प्रत्यय विकल्प से लगेगा। द्विपुमान्—द्विपुंस्कः, आदि।

(क) अन् के बाद अर्थ शब्द से क प्रत्यय नित्य होगा, अन्यत्र विकल्प से। अनर्थकः (निरर्थक)। अन्यत्र अपार्थम्—अपार्थकम् (निरर्थकं) वचः।

**२६२.** इन् अन्त वाले बहुव्रीहि से क प्रत्यय नित्य होता है, स्त्रीलिंग में।[3] जैसे—बहुदण्डिका नगरी। जिस नगर में बहुत से दण्डी संन्यासी रहते हैं। बहुवाग्मिका सभा (जिस सभा में बहुत से योग्य वक्ता हैं)। अन्यत्र बहुदण्डी, बहुदण्डिकः। ग्रामः, यह पुंलिंग है। (देखो नियम २६३)

**२६३.** बहुव्रीहि समास में जहाँ समासान्त पद में कोई पूर्वोक्त कार्य (आगम या आदेश) नहीं होता है, वहाँ पर साधारणतया विकल्प से क प्रत्यय हो जाता है।[4] महायशस्कः—महायशाः (महायशस्वी)। अन्यत्र—उत्तरपूर्वा, व्याघ्रपात्, सुगन्धिः, आदि।

---

१. सुप्रातःसुश्वसुदिवशारिकुक्षचतुरश्रैणीपदाजपदप्रोष्ठपदाः (५-४-१२०)।
२. उरःप्रभृतिभ्यः कप् (५-४-१५१)। इह पुमान्, अनड्वान्, पयः, नौः, लक्ष्मीरिति एकवचनान्तानि पठ्यन्ते। द्विवचनबहुवचनान्तेभ्यस्तु 'शेषाद् विभाषा' इति विकल्पेन कप् (सि० कौ०)। अर्थान्नञः (वार्तिक)।
३. इनः स्त्रियाम् (५-४-१५२)।
४. शेषाद् विभाषा (५-४-१५४)।

**२६४.** यदि बहुव्रीहि का अन्तिम पद ईकारान्त और ऊकारान्त स्त्रीलिंग शब्द है, जिनमें अजादि विभक्ति से पूर्व इय् या उव् नहीं होता है और ऋकारान्त शब्द से क प्रत्यय अवश्य होता है।[1] ईश्वरः कर्ता यस्य तद्—ईश्वरकर्तृकं जगत्, बहुनदीको देशः, रूपवती वधूः यस्य सः—रूपवद्वधूकः, आदि। किन्तु सुधीः स्त्री ही रूप बनता है। बहुस्त्रीकः, सस्त्रीकः, आदि।

**२६५.** क से पहले अन्तिम आ को विकल्प से ह्रस्व हो जाता है।[2] जैसे—बहुमालः, बाहुमालाकः, बहुमालकः, आदि।

**२६६.** निम्नलिखित स्थानों पर क नहीं होता[3]—

(क) यदि समस्त पद संज्ञावाचक हो या अन्त में ईयस् प्रत्यय हो। जैसे—विश्वे देवा अस्य—विश्वेदेवः (विश्वेदेव जिसके देवता हैं)। बहवः श्रेयांसः अस्य—बहुश्रेयान्। ईयस् शब्द का स्त्रीलिंग ईयसी बहुव्रीहि के अन्त में होगा तो उसके अन्तिम ई को ह्रस्व नहीं होगा।[4] जैसे—बह्व्यः श्रेयस्यो यस्य—बहुश्रेयसी (जिसकी बहुत सी सुन्दर स्त्रियाँ हैं)। किन्तु अतिश्रेयसिः तत्पुरुष में ह्रस्व हो जाएगा।

(ख) पूज्यवाचक शब्द पहले हो तो भ्रातृ शब्द से। प्रशस्तो भ्राता यस्य सः—प्रशस्तभ्राता। अन्यत्र—मूर्खभ्रातृकः (जिसका भाई मूर्ख है)।

(ग) शरीर के अंगवाची नाडी और तन्त्री शब्द से। बहुनाडिः कायः (बहुत नाड़ियों वाला शरीर), बहुतन्त्रीर्ग्रीवा (बहुत नसों वाली गर्दन)। किन्तु बहुनाडीकः स्तम्भः (जिस खम्भे पर नसों के तुल्य बहुत सी सुन्दर रेखाएँ हैं), बहुतन्त्रीका वीणा (बहुत से तारों वाली वीणा) ही रूप होंगे।

(घ) निष्प्रवाणिः में क नहीं होता। निष्प्रवाणिः पटः (निर्गता प्रवाणी यस्य, नया वस्त्र, जो अभी करघे से उतरा है)।

(ङ) नियम २५१, २५२ और २५३ वाले समासों में क नहीं होता। जैसे—सपुत्रः, उपबहवः, दक्षिणपूर्वा, आदि।

---

१. नद्यृतश्च ( ५-४-१५३ )।
२. आपोऽन्यतरस्याम् ( ७-४-१५ )।
३. न संज्ञायाम्। ईयसश्च। वन्दिते भ्रातुः। नाडीतन्त्र्योः स्वांगे। निष्प्रवाणिश्च ( ५-४-१५३, १५६, १५७, १५९, १६० )।
४. ईयसो बहुव्रीहेर्नेति वाच्यम् ( वा० )।

**२६७.** समानाधिकरण बहुव्रीहि समास में पूर्वपद यदि आकारान्त या ईकारान्त स्त्रीलिंग शब्द हो और पुंलिंग शब्द से आ या ई प्रत्यय करके बना हो और बाद में कोई स्त्रीलिंग शब्द हो तो वह पुंलिंग हो जाता है ।[1] जैसे—चित्रा गावः यस्य सः—चित्रगुः, जरती गौः यस्य सः—जरद्गुः, रूपवती भार्या यस्य सः—रूपवद्भार्यः । किन्तु—गंगा भार्या यस्य सः—गंगाभार्यः । वामोरूभार्यः । कल्याणी प्रधानं यस्य सः—कल्याणीप्रधानः, ही रूप होंगे ।

**अपवाद-नियम**—(क) यह नियम इन स्थानों पर नहीं लगता है—यदि बाद में कोई स्त्रीलिंग संख्येय शब्द हो या प्रिया आदि शब्दों में से कोई शब्द हो । प्रिया आदि शब्द ये हैं—प्रिया, मनोज्ञा, कल्याणी, सुभगा, भक्ति, सचिवा, स्वसा, कान्ता, क्षान्ता, समा, चपला, दुहिता, वामा, अबला और तनया । जैसे—कल्याणी प्रिया यस्य सः—कल्याणीप्रियः (जिसको गुणवती स्त्री प्रिय है), दृढा भक्तिर्यस्य सः—दृढाभक्तिः, किन्तु दृढं भक्तिर्यस्य—दृढभक्तिः ।[2]

(ख) यदि पूर्वपद संज्ञावाचक हो, संख्येय शब्द (Ordinal Number) हो, ईकारान्त शरीर का अवयववाची शब्द हो, जातिवाचक शब्द हो, उपधा में अक का क हो तो पुंलिंग नहीं होगा ।[3] दत्ता (स्त्री का नाम है) भार्या यस्य सः—दत्ताभार्यः, पञ्चमीभार्यः, सुकेशीभार्यः, शूद्राभार्यः, रसिकाभार्यः, पाचिकाभार्यः, आदि । अन्यत्र अकेशा भार्या यस्य सः—अकेशभार्यः, अकेश ईकारान्त नहीं है, पाका भार्या यस्य सः—पाकभार्यः, आदि ।

## (४) अव्ययीभाव समास (Adverbial Compounds)

**२६८.** अव्ययीभाव समास में दो पद होते हैं । प्रथम पद प्रायः अव्यय (उपसर्ग या निपात) होता है और द्वितीय पद संज्ञाशब्द । समस्त पद नपुंसकलिंग

---

१. स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु ( ६-३-३४ ) ।

२. स्त्रीत्वविवक्षायां तु दृढाभक्तिः ( सि० कौ० ) । लिंगविशेषविवक्षायां तु दृढभक्तिरित्यादिसिद्धये प्रियादिषु भक्तिशब्दपाठः ( तत्त्वबोधिनी ) ।

३. संज्ञापूरण्योश्च । स्वाङ्गाच्चेतः । जातेश्च । न कोपधायाः ( ६-३-३७, ३८, ४०, ४१ ) ।

एकवचन के तुल्य प्रयुक्त होता है। अव्ययीभाव समासवाला पद अव्यय होता है। जैसे—अधिहरि (हरि में), अन्तर्गिरि ( पहाड़ में ), आदि ।

२६९. अव्ययीभाव समास करने में इन नियमों का पालन करना चाहिए :—

(क) अन्तिम दीर्घ स्वर को ह्रस्व हो जाता है, ए ऐ को इ हो जाता है और ओ को उ हो जाता है। गोपायति गाः पातीति वा गोपाः। तस्मिन्निति–अधिगोपम्, अनुविष्णु (विष्णु के पीछे), उपगु (गाय के पास), आदि ।

(ख) अन् अन्त वाले पु० और स्त्री० शब्दों के अन्तिम न् का लोप नित्य हो जाता है और नपुं० के न् का लोप विकल्प से।[1] उपराजम्, अध्यात्मम्, उपचर्मम्—चर्म ।

(ग) नदी, पौर्णमासी, आग्रहायणी और गिरि के अन्तिम अक्षर के स्थान पर विकल्प से अ हो जाता है।[2] उपनदम्–उपनदि, उपपौर्णमासम्—०मासि, उपाग्रहायणम्–०यणि (अगहन की पूर्णिमा के समीप), उपगिरम्—०गिरि।

(घ) झय् (वर्ग के १, २, ३, ४) अन्त वाले अव्ययीभाव शब्दों से समासान्त अ विकल्प से होता है। उपसमिधम्—०समित् ।[3]

(ङ) शरत् आदि शब्दों के साथ अव्ययीभाव समास होने पर समासान्त अ प्रत्यय होता है।[4] शरत् आदि शब्द ये हैं—शरत्, विपाश्, अनस्, मनस्, उपानह्, दिव्, हिमवत्, अनडुह्, दिश्, दृश्, विश्, चेतस्, चतुर्, त्यद्, तद्, यद्, कियत्, जरस् (जरा के स्थान पर), आदि। शरदः समीपम्–उपशरदम्, प्रतिविपाशम् (विपाश की ओर), दिशोर्मध्ये—उपदिशम् (दो दिशाओं के बीच में), उपजरसम् (बुढ़ापे की ओर), आदि। प्रति, पर, सम् और अनु के बाद अक्षि से समासान्त अ होता है और अक्षि की इ का लोप होता है। पर को परो हो जाता है। अक्ष्णः प्रति—प्रत्यक्षम् (आँख के सामने), अक्ष्णः परम्–परोक्षम् (आँख से परे), समक्षम् (सामने), अन्वक्षम् (बाद में)।

२७०. अव्ययीभाव समास में इन विभिन्न अर्थों में अव्ययों का प्रयोग

१. **अनश्च । नपुंसकादन्यतरस्याम्** ( ५-४-१०८, १०९ )।
२. **नदीपौर्णमास्याग्रहायणीभ्यः** ( ५-४-११० )। **गिरेश्च सेनकस्य** ( ५-४-११२ )।
३. **झयः** ( ५-४-१११ )।
४. **अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः** ( ५-४-१०७ )।

होता है[1]—जैसे—(१) विभक्ति के अर्थ में, सप्तमी के अर्थ में अधि। जैसे—गोपि इति—अधिगोपम् (ग्वाले में), हरौ इति—अधिहरि, अध्यात्मम्, आदि। (२) सामीप्य अर्थ में। जैसे—कृष्णस्य समीपम्—उपकृष्णम् (कृष्ण के पास)। इसी प्रकार उपगवम् आदि। (३) समृद्धि। जैसे—मद्राणां समृद्धिः—सुमद्रम् (जिस देश में मद्र लोग समृद्ध हैं)। (४) व्यृद्धि (वि + ऋद्धि, दुर्गति)। यवनानां व्यृद्धिः—दुर्यवनम् (यवनों की दुर्गति की अवस्था)। (५) अभाव। मक्षिकाणाम् अभावः—निर्मक्षिकम् (मक्खियों का अभाव अर्थात् पूर्णतया एकान्त)। इसी प्रकार निर्जनम् आदि। (६) अत्यय (ध्वंस, नाश, समाप्ति)। हिमस्य अत्ययः—अतिहिमम् (हिम ऋतु के बाद)। इसी प्रकार अतिवसन्तम्, अतियौवनम्, अतिमात्रम् (मात्रा से अधिक), आदि। (७) असम्प्रति (अनुचित)। निद्रा संप्रति न युज्यते इति—अतिनिद्रम् (नींद का समय बीत गया)। जैसे—अतिनिद्रम् उत्तिष्ठति पुरुषः।(८) प्रादुर्भाव (प्रकट होना, प्रकाशन)। हरिशब्दस्य प्रकाशः—इतिहरि (जिसमें हरि शब्द का उच्चारण जोर से होता है)। (९) पश्चात् (बाद में)। विष्णोः पश्चात् अनुविष्णु। (१०) योग्यता (योग्य होना)।[2] रूपस्य योग्यम्—अनुरूपम् (अनुकूल ढंग से)। इसी प्रकार अनुगुणम् (अनुकूल ढंग से), आदि। (११) वीप्सा (द्विरुक्ति, दो बार कहना)। अर्थम् अर्थं प्रति—प्रत्यर्थम् (प्रत्येक वस्तु की ओर)। अहन्यहनीति—प्रत्यहम्—०ह (प्रतिदिन)। इसी प्रकार प्रतिपर्वतम्, आदि। (१२) अनतिवृत्ति (उल्लंघन न करना)। शक्तिम् अनतिक्रम्य—यथाशक्ति (शक्ति के अनुकूल, शक्ति भर)। इसी प्रकार यथाविधि, आदि।[3] (१३) सादृश्य (समानता)—हरेः सादृश्यं—सहरि (हरि के समान)। (१४) आनुपूर्व्य (ज्येष्ठ के क्रम से, क्रम से)—ज्येष्ठस्य आनुपूर्व्येण—अनुज्येष्ठम् (बड़े के क्रम से)। इसी प्रकार अनुक्रमम् (क्रम से), आदि। (१५) यौगपद्य (एक साथ)—चक्रेण युगपत्—सचक्रम्

---

१. अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धिव्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रतिशब्दप्रादुर्भावपश्चाद्यथानुपूर्व्ययौगपद्यसादृश्यसंपत्तिसाकल्यान्तवचनेषु (२-१-६)।

२. १० से १३ तक यथा के अर्थ हैं। योग्यतावीप्सापदार्थानतिवृत्तिसादृश्यानि यथार्थाः (सि० कौ०)।

३. यथाऽसादृश्ये (२-१-७)। सादृश्य अर्थ में यथा का समास नहीं होता है। यथा हरिस्तथा हरः, आदि।

(चक्र के साथ ही) । (१६) सम्पत्ति (शक्ति या प्रभाव) । क्षत्राणां संपत्तिः—सक्षत्रम् (क्षत्रियों की शक्ति या उनका प्रभाव) । (१७) साकल्य (पूर्णता)—तृणमपि अपरित्यज्य—सतृणम् अत्ति (तिनके तक को नहीं छोड़ता हुआ खाता है) । (१८) अन्त (समाप्ति)—अग्निग्रन्थपर्यन्तम् अधीते—साग्नि ( अग्नि ग्रन्थ पर्यन्त पढ़ता है ) । इसी प्रकार सभाष्यम्, आदि ।

**२७१**. यावत् का निश्चित परिमाण अर्थ में किसी भी सुबन्त के साथ समास होता है ।[1] जैसे—यावन्तः श्लोकाः तावन्तः अच्युतप्रणामाः—यावच्छ्लोकम् (जितने श्लोक हैं, उतनी बार अच्युत या विष्णु को प्रणाम किया गया है) । इसी प्रकार यावान् अवकाशः तावान् अभ्यासः—यावदवकाशम् अभ्यासः, आदि ।

**२७२**. मात्रा (थोड़ी मात्रा, वहुत कम) अर्थ में प्रति का सुबन्त के साथ समास होता है और यह अन्त में रक्खा जाता है ।[2] शाकस्य लेशः—शाकप्रति (नाममात्र को साग) । अन्यत्र—वृक्षं वृक्षं प्रति विद्योतते विद्युत्, यहाँ पर प्रति ओर अर्थ में है ।

**२७३**. अक्ष, शलाका और संख्यावाचक शब्द का परि के साथ समास होता है और इन शब्दों का परि से पहले प्रयोग होता है । जूए में पराजय अर्थ में यह समास होता है ।[3] अक्षेण विपरीतं वृत्तम्—अक्षपरि (पासे के ठीक न पड़ने से हार हुई), शलाकापरि—(शलाका अर्थात् सींकों से खेले जाने वाले खेल में सींक ठीक न पड़ने से हार होना), एकपरि (एक पासे का ठीक न पड़ना), आदि ।

**२७४**. (क) अप, परि, बहिः और अञ्च् धातु से बने हुए शब्दों (प्राच्, प्रत्यच्, उदच्, अवाच्, तिर्यच्, आदि) का पंचम्यन्त शब्दों के साथ विकल्प से समास होता है ।[4] अपविष्णु—अप विष्णोः (विष्णु से अलग), परिविष्णु—परि विष्णोः, बहिर्वनम्—बहिर्वनात्, प्राग्वनम्—प्राग्वनात् (वन से पूर्व की ओर), आदि ।

---

१. **यावदवधारणे ( २-१-८ )।**
२. **सुप्प्रतिना मात्रार्थे ( २-१-९ )।**
३. **अक्षशलाकासंख्याः परिणा ( २-१-१० ) । द्यूतव्यवहारे पराजये एवायं समासः ( सि० कौ० ) ।**
४. **विभाषा ( २-१-११ ) । अपपरिबहिरञ्चवः पञ्चम्या ( २-१-१२ ) ।**

(ख) मर्यादा (पहले तक) और अभिविधि (वस्तु के सहित तक) सीमा अर्थ में आ का पञ्चम्यन्त के साथ विकल्प से समास होता है। ओर अर्थ में अभि और प्रति का द्वितीयान्त के साथ विकल्प से समास होता है।[1] आमुक्ति—आ मुक्तेः संसारः (संसार मुक्ति से पहले तक है), आबालम्—आ बालेभ्यः हरि-भक्तिः (छोटे बच्चों तक हरिभक्ति है)। अभ्यग्नि—अग्निमभि (अग्नि की ओर) शलभाः पतन्ति, प्रत्यग्नि—अग्निं प्रति।

(ग) अनु का ओर अर्थ में तथा वस्तु की लम्बाई बताने के अर्थ में समास होता है।[2] अनुवनम् अशनिर्गतः (वन की ओर बिजली गई)। गङ्गाया अनु—अनुगङ्गं वाराणसी (गंगा के किनारे किनारे वाराणसी है) (गंगादैर्घ्यसदृशदैर्घ्योप-लक्षिता इत्यर्थः, सि० कौ०)।

**२७५.** पार और मध्य शब्दों का षष्ठ्यन्त के साथ विकल्प से अव्ययीभाव समास होता है।[3] पार और मध्य का पूर्व प्रयोग होता है और ये एकारान्त हो जाते हैं। जैसे—पारेगङ्गात्, मध्येगङ्गात् (गंगा के पार या बीच से)। पक्ष में षष्ठीतत्पुरुष भी हो जाएगा। गङ्गापारात्, गङ्गामध्यात्। यहाँ पर पंचमी का प्रयोग अपवाद रूप से है। यदि सप्तमी का अर्थ होगा तो अन्तिम स्वर को अम् हो जाएगा। जैसे—पारेगङ्गम्, मध्येगङ्गम्, देखो भट्टि० ५-४ में पारेसमुद्रम् प्रयोग।

**२७६.** (क) संख्यावाची शब्द का किसी सुबन्त के साथ विकल्प से अव्ययीभाव समास हो जाता है, यदि विद्या या जन्म से कोई संबन्ध सूचित होता हो तो।[4] द्वौ मुनी वंश्यौ—द्विमुनि, व्याकरणस्य त्रिमुनि। त्रिमुनि व्याकर-णम् (संस्कृत व्याकरण के तीन क्रमशः प्रामाणिक मुनि या आचार्य हैं—पाणिनि, कात्यायन और पतञ्जलि)।

(ख) संख्यावाचक शब्दों का नदीवाचक शब्दों के साथ समाहार (समूह) अर्थ में अव्ययीभाव समास होता है।[5] सप्तगङ्गम्, द्वियमुनम्।

---

१. **आङ्मर्यादाभिविध्योः। लक्षणेनाभिप्रती आभिमुख्ये। ( २-१-१३, १४ )।**
२. **अनुर्यत्समया। यस्य चायामः ( २-१-१५, १६ )।**
३. **पारे मध्ये षष्ठ्या वा ( २-१-१८ )।**
४. **संख्या वंश्येन ( २-१-१९ )। वंशो द्विधा विद्यया जन्मना च ( सि० कौ० )।**
५. **नदीभिश्च ( २-१-२० )। समाहारे चायमिष्यते ( वार्तिक )।**

**२७७**. नदीवाचक शब्दों के साथ किसी भी शब्द का अव्ययीभाव समास हो जाता है, यदि समस्तपद संज्ञावाचक हो तो ।[1] उन्मत्तगंगम् (एक देश का नाम, जहाँ पर गंगा अधिक तेजी से बहती है) । इसी प्रकार लोहितगंगम्, आदि ।

**२७८**. निम्नलिखित अव्ययों का किसी संज्ञा शब्द के साथ समास नहीं होता है—समया, निकषा, आरात्, अभितः, परितः, पश्चात् । समया ग्रामम्, निकषा लङ्काम्, आदि ।

**२७९**. निम्नलिखित अव्ययीभाव समास के रूप निपातन (ऐसा अभीष्ट है) से बनते हैं[2]:—

तिष्ठन्ति गावः यस्मिन् काले सः—तिष्ठद्गु दोहनकालः (जिस समय गाएँ दुही जाने के लिए खड़ी होती हैं)। (देखो भट्टि० ४—१४ ।) इसी प्रकार वहद्गु (जिस समय गाएँ गर्भिणी होती हैं या जिस समय बैल हल चलाते हैं), आयत्यः गावः यस्मिन् काले—आयतीगवम् (जिस समय गाएँ घर लौटकर आती हैं अर्थात् सायंकाल का समय) । खलेयवम् (जिस समय जौ खलिहान में आता है) । इसी प्रकार खलेबुसम् । लूनयवम् (जिस समय जौ कट जाता है), लूयमानयवम्, संहृतयवम्, आदि । समभूमि (जिस समय भूमि सम की जाती है), समपदाति (जब पैदल-सेना के व्यक्ति सीधी पंक्ति में खड़े होते हैं) । सुषमम्, विषमम्, अपसमम् (साल के अन्त में), आयतीसमम्, पापसमम् (अशुभ साल में), पुण्यसमम्, प्राह्णम्, प्ररथम् (जब रथ प्रस्थान करते हैं), प्रमृगम् (जब मृग आते हैं), विमृगम्, प्रदक्षिणम्, सम्प्रति और असम्प्रति ।

**सूचना**—पाणिनि के अनुयायी सभी वैयाकरणों ने इन समस्तपदों का अन्य पदों के साथ समास का निषेध किया है । परकालीन कवियों ने इस नियम का पालन नहीं किया है । उन्होंने इन पदों का समस्तपदों के प्रारम्भ में प्रयोग किया है, अन्त में नहीं । जैसे—प्रदक्षिणक्रियार्हायाम् (रघु० १—७६ । देखो ४—२५, ७—२४), आदि ।

## सर्व-समास-विषयक सामान्य नियम

**२८०**. इन शब्दों से समासान्त अ प्रत्यय होता है—ऋच्, पुर्, अप्, धुर्

१. अन्यपदार्थे च संज्ञायाम् ( २-१-२१ )।

२. तिष्ठद्गुप्रभृतीनि च ( २-१-१७ )।

(गाड़ी की धुरा अर्थ को छोड़कर) और पथिन् (पथिन् का पथ् शेष रहेगा)।[1] अर्धर्चः—अर्धर्चम् (आधी ऋचा), विष्णुपुरम्[2] (विष्णु की नगरी), विमलापं सरः (स्वच्छ जल वाला तालाव), राज्यधुरा (राज्य-शासन की धुरा अर्थात् बाग-डोर), रम्यपथो देशः (सुन्दर मार्गों वाला देश), आदि।

(क) अन् और बहु पहले होंगे तो ऋच् शब्द से अ प्रत्यय ऋग्वेद के अध्येता (पढ़ने वाला) अर्थ में ही होगा।[3] अनृचः (ऋग्वेद न पढ़नेवाला), बह्वृचः (जिसने ऋग्वेद पढ़ा है)। अन्यत्र अनृक् साम (ऋचा-रहित सामवेद का अंश), बह्वृक् सूक्तम् (बहुत ऋचाओं वाला सूक्त)।

(ख) धुर् शब्द से अक्ष (गाड़ी) अर्थ में अ नहीं होगा। अक्षधूः (गाड़ी की धुरा), दृढधूः अक्षः।

**२८१**. द्वि, अन्तर् या कोई उपसर्ग पहले होगा तो अप् शब्द के अ को ई हो जायगा।[4] अनु के बाद अप् के अ को ऊ होगा, देश अर्थ में। जैसे—द्विर्गता आपो यस्मिन् इति—द्वीपम् (द्वीप)। अन्तर्गता आपो अत्रेति—अन्तरीपम् (खाड़ी), प्रतीपम् (जल के प्रवाह को रोकने वाला), समीपम्। अनूपः[5] (अनुगताः आपोऽत्र) (एक देश या स्थान का नाम)। अकारान्त उपसर्ग के बाद अप् के अ को ई विकल्प से होता है।[6] प्रकृष्टा आपः यस्मिन्—प्रेपम्-प्रापम् (एक तालाब), परेपम्—परापम् (जल के लिए मार्ग)।

**२८२**. निम्नलिखित शब्दों से समासान्त अ प्रत्यय होता है और उससे पूर्व टि (अन्तिम स्वर और उसके बाद का व्यंजन यदि कोई हो तो) का लोप हो जाता है।[7]

---

१. ऋक्पूरब्धूः पथामानक्षे (५-४-७४)। २. क्लीबत्वं लोकात् (सि० कौ०)।
३. अनृचबह्वृचावध्येतर्येव (सि० कौ०)
४. द्व्यन्तरुपसर्गेभ्योऽप ईत्। ऊदनोर्देशे (६-३-९७, ९८)।
५. नानाद्रुमलतावीरुन्निर्झरप्रान्तशीतलैः।
वनैर्व्याप्तमनूपं तत् सस्यैर्व्रीहियवादिभिः॥
६. अवर्णान्ताद् वा (वार्तिक)।
७. अच् प्रत्यन्ववपूर्वात् सामलोम्नः (५-४-७५)। कृष्णोदक्पाण्डुसंख्यापूर्वाया भूमेरजिष्यते (वा०)। संख्याया नदीगोदावरीभ्यां च (वा०)। अक्ष्णोऽदर्शनात् (५-४-७६)। उपसर्गादध्वनः (५-४-८५)।

(क) प्रति, अनु या अव पहले हो तो सामन् और लोमन् शब्द से अ। प्रतिसामम्, साम अनुगतः अनुसामः (मित्रभाव-युक्त), अवरं साम अवसामम् (एक तुच्छ सामवेद का सूक्त), प्रतिलोमम् (प्रतिकूल), अनुलोमम् (अनुकूल ढंग वला, क्रमिक ढंग से, प्रत्यक्षतया)।

(ख) कृष्ण, उदच्, पाण्डु या कोई संख्या शब्द पहले होगा तो भूमि शब्द से अ। कृष्णा भूमिः यस्य स कृष्णभूमः। इसी प्रकार उदीची भूमिः यस्य स उदग्भूमः, पाण्डुः भूमिः यस्य स पाण्डुभूमः, द्वे भूमी यस्य स द्विभूमः प्रासादः (दो-मंजिला मकान)।

(ग) संख्यावाचक शब्द पहले होने पर नदी और गोदावरी शब्द से अ। पञ्चनदम्, सप्तगोदावरम्।

(घ) जब अक्षि शब्द का आँख अर्थ न हो और कोई लाक्षणिक अर्थ हो तो अक्षि से अ। जैसे—गवाम् अक्षीव गवाक्षः (बैल की आँखों के तुल्य, अतः गोल खिड़की अर्थ है)।

(ङ) उपसर्ग पहले हो तो अध्वन् शब्द से अ। प्रगतोऽध्वानं प्राध्वो रथः (रथ जो कि मार्ग पर आ गया है)। अथवा प्रकृष्टः अध्वा प्राध्वः (दूरी का रास्ता)।

(च) नाभि शब्द से समास वाले स्थलों पर अ होता है। जैसे पद्मनाभः।[1]

**२८३**. निम्नलिखित शब्दों के अन्त में अ लगता है[2]:—

(क) ब्रह्मन् या हस्तिन् शब्द पहले होगा तो वर्चस् शब्द से। ब्रह्मवर्चसम् (ब्रह्म का दिव्य तेज या ब्राह्मण का तेज, ब्रह्मज्ञान से उत्पन्न होने वाला तेज), हस्तिवर्चसम् (हाथी का ओज या तेज)।

---

१. अजिति योगविभागादन्यत्रापि (सि० कौ०)। अच् प्रत्यन्वव०' सूत्र में से अच् को पृथक् करने पर यह नियम बनता है। यह योगविभाग (सूत्र के अंशों को पृथक् करना) प्रचलित पद्मनाभ, नलिननाभ आदि रूपों को बनाने के लिए है। इस नियम के आधार पर अन्य नाभ अन्त वाले रूप नहीं बनाए जा सकते हैं।

२. ब्रह्महस्तिभ्यां वर्चसः (५-४-७८)। अवसमन्धेभ्यस्तमसः (५-४-७९), अन्ववतप्ताद् रहसः (५-४-८१), प्रतेरुरसः सप्तमीस्थात् (५-४-८२), अनुगवमायामे (५-४-८३)।

(ख) अव, सम् और अन्ध के बाद तमस् शब्द से। जैसे—अवततं तमः अवतमसम् (थोड़ा अँधेरा), सन्ततं तमः संतमसम् (चारों ओर अँधेरा), अन्धं तमः अन्धतमसम् (घोर अँधेरा)।

(ग) अनु, अव या तप्त पहले होगा तो रहस् शब्द से। अनुगतं रहः अनुरहसम् (गुप्त, एकान्त), अवततं रहः अवरहसम् (थोड़ा गुप्त), तप्तं रहः तप्तरहसम् (गर्म एकान्त स्थान)।

(घ) सप्तमी के अर्थ में प्रति पहले हो तो उरस् से। उरसि इति प्रत्युरसम् (छाती में)।

(ङ) अनु पहले हो तो गो शब्द से लम्बाई अर्थ में। अनुगवं यानम् (बैल की लम्बाई के बराबर लम्बाई वाली गाड़ी)।

**२८४.** निम्नलिखित २५ समस्त शब्दों में अन्त में अ अवश्य लगता है[1]:— अविद्यमानानि चत्वारि अस्य अचतुरः (जिसके पास चार चीजें नहीं हैं)। इसी प्रकार विचतुरः और सुचतुरः। ये तीनों बहुव्रीहि हैं। आगे ११ शब्द द्वन्द्व समास वाले हैं। (इनके लिए देखो नियम १९२ ख के अन्तिम दो शब्द और नियम १९६ ग)। रजोऽपि अपरित्यज्य सरजसम् (अव्ययीभाव)। बहुव्रीहि में सरजः ही रूप बनेगा। निश्चितं श्रेयो निःश्रेयसम् (निश्चित कल्याण), पुरुषस्य आयुः पुरुषायुषम् (मनुष्य की आयु)। ये दोनों तत्पुरुष हैं। द्वयोः आयुषोः समाहारः द्व्यायुषम् (दो आयुओं का समय)। इसी प्रकार त्र्यायुषम्। ये दोनों द्विगु हैं। ऋग्यजुषम् (द्वन्द्व है)। जातश्चासौ उक्षा च जातोक्षः (नवजात बैल), महोक्षः (बड़ा बैल), वृद्धोक्षः (बुड्ढा बैल)। ये सब कर्मधारय हैं। शुनः समीपम् उपशुनम् (कुत्ते के पास, अव्ययीभाव)। गोष्ठे श्वा गोष्ठश्वः (गोशाला में रहने वाला कुत्ता जो दूसरों पर भौंकता है, इसका लाक्षणिक अर्थ है—वह व्यक्ति जो स्वयं कुछ काम नहीं करता है और दूसरों की निन्दा करता है।) (तत्पुरुष)

**२८५.** जिन समस्त पदों के प्रारम्भ में प्रशंसार्थक सु या अति शब्द होता है और निन्दार्थक किम् शब्द होता है, उनमें किसी प्रकार का कोई परिवर्तन नहीं

---

१. अचतुरविचतुरसुचतुरस्त्रीपुंसधेन्वनडुहर्क्सामवाङ्मनसाक्षिभ्रुवदारगवोर्वष्ठीवपदष्ठीवनक्तन्दिवरात्रिन्दिवाहर्दिव-सरजसनिःश्रेयसपुरुषायुषद्व्यायुषत्र्यायुषर्ग्यजुषजातोक्षमहोक्षवृद्धोक्षोपशुनगोष्ठश्वाः (५-४-७७)।

होता है ।[1] सुराजा (अच्छा राजा), अतिराजा (प्रमुख राजा), अतिगौः (श्रेष्ठ बैल), अतिश्वा आदि । किन्तु परमराजः, गाम् अतिक्रान्तः अतिगवः ही रूप होंगे और समासान्त प्रत्यय होंगे । कुत्सितो राजा किंराजा (कुत्सित राजा), किंसखा (कुत्सित मित्र) । अन्य अर्थों में किंराजः, किंसखः रूप बनेंगे । समासान्त प्रत्ययों का यह निषेध बहुव्रीहि समास में नहीं लगेगा । जैसे—सुसक्थः, स्वक्षः ।

## समास-विषयक अन्य परिवर्तन

**२८६**. पाद शब्द के स्थान पर ये परिवर्तन होते हैं :—पाद को पद आदेश होता है बाद में आजि, आति, ग और उपहत शब्द हों तो । हिम, काषिन् और हति शब्द बाद में हों तो पाद को पत् नित्य होता है । घोष, मिश्र, शब्द और निष्क बाद में हों तो पाद को पत् विकल्प से होता है ।[2] जैसे—पादाभ्यामजतीति पदाजिः, पद्भ्यामततीति पदातिः, पद्भ्यां गच्छतीति पदगः (इन तीनों का अर्थ है पैदल चलने वाला, पदाति, पैदल चलने वाला सैनिक या पैदल सेना), आदि । पदोपहतः (पैर से दबा या कुचला हुआ), पद्धिमम् (पैरों का ठंडा हो जाना), पादौ कषितुं शीलमस्य पत्काषी (पैरों को अधिक कष्ट देने वाला, पैदल चलने वाला), पदा हतिः पद्धतिः (चला हुआ रास्ता, मार्ग, सड़क), पद्घोषः या पादघोषः, पन्मिश्रः या पादमिश्रः, पच्छब्दः या पादशब्दः, पन्निष्कः या पादनिष्कः (निष्क नामक एक सुवर्ण-मुद्रा का चतुर्थ भाग) ।

**२८७**. हृदय शब्द को हृद् नित्य हो जाता है, बाद में लेख (अण् प्रत्यय से बना हुआ रूप), लास, तद्धित प्रत्यय य (यत्) और अ (अण्) हों तो । यदि बाद में शोक, रोग और तद्धित प्रत्यय य (ष्यञ्) होंगे तो हृदय को हृद् विकल्प से होगा ।[3] हृदयं लिखतीति हृल्लेखः (हृदय की पीड़ा), घञ् प्रत्यय करने

---

१. **न पूजनात् ( ५-४-६९ ) । स्वतिभ्यामेव ( वार्तिक ) । किमः क्षेपे ( ५-४-७० )।**

२. **पादस्य पदाज्यातिगोपहतेषु ( ६-३-५२ ) । हिमकाषिहतिषु च ( ६-३-५४ ) । वा घोषमिश्रशब्देषु ( ६-३-५६ )।**

३. **हृदयस्य हृल्लेखयदण्लासेषु ( ६-३-५० ) । वा शोकष्यञ्रोगेषु ( ६-३-५१ )।**

पर हृदयलेखः रूप बनेगा (घञि तु हृदयलेखः, सि० कौ०), हृल्लासः (हिचकी, शोक, दुःख), हृदयस्य प्रियं हृद्यम् (हृदय को प्रिय लगने वाली वस्तु), हृदयस्येदं हार्दम्, हृच्छोकः या हृदयशोकः (हृदय की जलन), हृद्रोगः या हृदयरोगः ।

२८८. (क) [1] उदक शब्द को निम्नलिखित स्थानों पर उद नित्य होता है :—(१) संज्ञावाचक शब्द होने पर और पद का अन्तिम शब्द होने पर। (२) ये शब्द बाद में होंगे तो—पेषम्, वास, वाहन और धि । उदमेघः (जल से पूर्ण एक विशेष प्रकार के बादल का नाम), उदधिः, क्षीरोदः (क्षीरसागर), लवणोदः आदि । उदपेषं पिनष्टि, उदवासः (जल में खड़ा रहना), उदवाहनः, उदधिः (बाल्टी या घड़ा, जिसमें पानी रक्खा जाता है), समुद्र अर्थ में पूर्व सूत्र से ही सिद्ध है । (समुद्रे तु पूर्वेण सिद्धम्, सि०-कौ०) ।

(ख) इन स्थानों पर उदक को उद विकल्प से होगा—(१) बाद में असंयुक्त व्यंजन वाला शब्द होने पर और जल से पूरा करने योग्य बर्तन अर्थ हो तो, (२) ये शब्द बाद में होंगे तो—मन्थ, ओदन, सक्तु, बिन्दु, वज्र, भार, हार, वीवध (बँहगी) और गाह । उदकुम्भः या उदककुम्भः, किन्तु संयुक्त व्यंजन से प्रारम्भ होने के कारण उदकस्थाली ही रूप बनेगा । इसी प्रकार पूरा करने योग्य बर्तन न होने के कारण उदकपर्वतः रूप होगा । उदमन्थः या उदकमन्थः (जौ का जल), उदौदनः या उदकौदनः (जल में पकाया हुआ चावल), उदवीवधः या उदकवीवधः (जल लाने की बँहगी), उदगाहः या उदकगाहः (जल में स्नान करना), आदि ।

२८९. (क) यदि समास का प्रथम पद ईकारान्त या ऊकारान्त है तो ई और ऊ को विकल्प से ह्रस्व हो जाएगा । जिन शब्दों में इय् या उव् होता है, उनमें यह नियम नहीं लगेगा । अव्यय में और स्त्रीप्रत्यय ई अन्त वाले शब्दों में भी यह नियम नहीं लगेगा ।[2] ग्रामणीपुत्रः या ग्रामणिपुत्रः (गाँव के प्रधान का

---

१. **उदकस्योदः संज्ञायाम् ( ६-३-५७ ) । उत्तरपदस्य चेति वक्तव्यम् (वार्तिक)। पेषंवासवाहनधिषु च ( ६-३-५८ ), एकहलादौ पूरयितव्येऽन्यतरस्याम् ( ६-३-५९ ), मन्थौदनसक्तुबिन्दुवज्रभारहारवीवधगाहेषु च ( ६-३-६० )**

२. **इको ह्रस्वोऽङ्यो गालवस्य ( ६-३-६१ ) । इयङुवङ्भाविनामव्ययानां च नेति वाच्यम् ( वार्तिक ) ।**

पुत्र), आदि। अपवाद वाले स्थलों पर ह्रस्व नहीं होगा। जैसे—गौरीपतिः, श्रीमदः, भ्रूभंगः, शुक्लीभावः आदि।

(ख) भ्रू शब्द के बाद कुंस और कुटि शब्द होंगे तो विकल्प से ह्रस्व होगा।[1] भ्रू + कुंसः = भ्रूकुंसः, भ्रुकुंसः (भ्रुवा कुंसो भाषणं शोभा वा यस्य सः स्त्रीवेषधारी नर्तकः, सि० कौ०) (एक नर्तक), भ्रूकुटिः—भ्रुकुटिः (भौं)। कुछ वैयाकरणों के अनुसार कुंस और कुटि बाद में होंगे तो भ्रू को विकल्प से भ्र होता है। जैसे—भ्रकुंसः और भ्रकुटि : (देखो पाद-टिप्पणी)।

**२९०. विशेष**—समस्त शब्द के पूर्वपद में स्त्रीप्रत्यय आ और ई अन्त वाले शब्दों को प्रायः ह्रस्व हो जाता है, यदि वह शब्द संज्ञावाचक हो या वैदिक प्रयोग हो।[2] जैसे—रेवतिपुत्रः, भरणिपुत्रः, कुमारिदारा, प्रदविदा, अजक्षीरम् (जैसे—अजक्षीरेण जुहोति), शिलप्रस्थम् आदि। इन स्थानों पर ह्रस्व नहीं होता—नान्दीकरः, नान्दीघोषः, फाल्गुनी पौर्णमासी, जगतीछन्दः, लोमकागृहम् इत्यादि। त्व प्रत्यय बाद में हो तो आ और ई को विकल्प से ह्रस्व होता है। अजत्वम्—अजात्वम्, रोहिणित्वम्—रोहिणीत्वम्।

**२९१. विशेष**—इष्टका, इषीका और माला शब्दों के अन्तिम आ को ह्रस्व हो जाता है, यदि बाद में क्रमशः चित, तूल और भारिन् शब्द होंगे तो।[3] इष्टक-चितम् (ईंटों का बना हुआ), पक्वेष्टकचितम्, इषीकतूलम् (सरकंडे की नोक), मुञ्जेषीकतूलम्, मालभारि (मालाधारी), उत्पलमालभारि (तुलना करो मालती-माधव ९–२ से) इत्यादि।

**२९२. विशेष**—निम्नलिखित स्थानों पर बीच में म् का आगम होता है—(क) कार शब्द बाद में होने पर सत्य, अगद और अस्तु को, (ख) भव्या बाद में होने पर धेनु शब्द को, (ग) पृण बाद में होने पर लोक शब्द को, (घ) इत्य बाद में होने पर अनभ्याश शब्द को, (ङ) इन्ध बाद में होने पर भ्राष्ट्र और

---

१. अभ्रुकुंसादीनामिति वक्तव्यम् (वार्तिक)। अकारोऽनेन विधीयते इति व्याख्यान्तरम् (सि० कौ०)।
२. ङ्यापोः संज्ञाछन्दसोर्बहुलम् (६-३-६३)। त्वे च (६-३-६४)
३. इष्टकेषीकामालानां चिततूलभारिषु (६-३-६५)।

अग्नि शब्द को, (च) गिल या गिलगिल बाद में होने पर तिमि शब्द को, (छ) करण बाद में होने पर उष्ण और भद्र शब्दों को।[1] जैसे—सत्यङ्कारः (किसी सौदे या ठेके को स्वीकार करना, पेशगी देना आदि), (तुलना करो किराता० ११–५० से)। अगदङ्कारः (वैद्य), अस्तुङ्कारः (लाभकारी, स्वीकार करना), (अभ्युपगमः, तत्त्वबोधिनी), धेनुम्भव्या (भविष्यन्ती धेनुः, तत्त्वबोधिनी), लोकम्पृणः (संसार में व्याप्त या संसार को पूरा करने वाला), अनभ्याशमित्यः (जिसके पास नहीं जाना चाहिए, दूर से ही त्याज्य) (दूरतः परिहर्तव्य इत्यर्थः, सि० कौ०), भ्राष्ट्रमिन्धः (भाड़ में भूनने वाला, भड़भूजा), अग्निमिन्धः (आग जलाने वाला), तिमिङ्गिलः (एक विशाल मछली जो तिमि नामक मछली को निगल जाती है। तिमि मछली १०० योजन लम्बी मानी जाती है।), तिमिङ्गिलगिलः (एक बहुत बड़ी मछली जो तिमिङ्गिल मछली को भी निगल जाती है)[2], उष्णङ्करणम् ( गर्म करना ), भद्रङ्करणम् ( कुशलता प्रदान करना ) ।

**२९३**. कृत्-प्रत्ययान्त शब्द बाद में होने पर रात्रि शब्द को विकल्प से म् का आगम होता है। रात्रिंचरः—रात्रिचरः (रात्रि में घूमने वाला, निशाचर, राक्षस), रात्रिमटः—रात्र्यटः इत्यादि ।

**२९४**. सह यदि समस्त पद का प्रथम पद है तो उसको स हो जाता है[3]:—

(क) यदि समस्तपद संज्ञावाचक हो तो। जैसे—सपलाशम्। अन्यत्र सहयुध्वा (युद्ध का साथी, उपपद समास) ।

(ख) ग्रन्थान्त ( अर्थात् अमुक ग्रन्थ तक ) और अधिक अर्थ हो तो।

---

१. कारे सत्यागदस्य ( ६-३-७० )। इसी सूत्र पर ये वार्तिक हैं :— अस्तोश्चेति वक्तव्यम्। धेनोर्भव्यायाम्। लोकस्य पृणे। इत्येऽनभ्याशस्य। भ्राष्ट्राग्न्योरिन्धे। गिलेऽगिलस्य। गिलगिले च। उष्णभद्रयोः करणे।

२. देखो रघुवंश ( १३-१० ) और इस पर मल्लिनाथ की टीका। अस्ति मत्स्यस्तिमिर्नाम शतयोजनमायतः। तिमिङ्गिलगिलोऽप्यस्ति तद्गिलोऽप्यस्ति राघव ॥

३. सहस्य सः संज्ञायाम् ( ६-३-७८ ), ग्रन्थान्ताधिके च ( ६-३-७९ ), द्वितीये चानुपाख्ये ( ६-३-८० )।

जैसे—समुहूर्तं ज्योतिषमधीते (मुहूर्त निकालने की विद्या तक ज्योतिष शास्त्र पढ़ता है), सद्रोणा खारी (द्रोण परिमाण भर अधिक खारी नामक तोल)।

(ग) जब उत्तरपद के द्वारा वर्णित वस्तु दृश्य न हो, अपितु अनुमेय हो। जैसे—सराक्षसीका निशा (बहुव्रीहि) (रात्रि, जिसमें राक्षसी की सत्ता अनुमान से ज्ञात होती है)।

२६५. इन स्थानों पर समान शब्द को स हो जाता है[1]:—

(क) जब ये शब्द बाद में हों—ज्योतिस्, जनपद, रात्रि, नाभि, नामन्, गोत्र, रूप, स्थान, वर्ण, वयस्, वचन और बन्धु। समानं ज्योतिः अस्य सज्योतिः (एक प्रकार का शोक, जो सूर्योदय से सूर्यास्त तक मनाया जाता है। अथवा नक्षत्रों का एक विशेष समूह जब तक अस्त होता है।) (समानं ज्योतिरस्येति बहुव्रीहिः। यस्मिन् ज्योतिषि आदित्ये नक्षत्रे वा संजातं तदस्तमयपर्यन्तमनुवर्तमानमाशौचं सज्योतिरित्युच्यते, तत्त्वबोधिनी)। सजनपदः (उसी प्रदेश का निवासी), सरात्रिः, सनाभिः (एक ही नाभि से उत्पन्न अर्थात् एक ही पूर्वज से उत्पन्न), इत्यादि।

(ख) ब्रह्मचारिन् शब्द बाद में हो तो समान को स।[2] समानः ब्रह्मचारी सब्रह्मचारी (वेद की उसी शाखा का अध्ययन करने वाला विद्यार्थी, जिसका अध्ययन दूसरा विद्यार्थी कर रहा है)।

(ग) बाद में तद्धित य प्रत्ययान्त तीर्थ शब्द हो तो। जैसे—समानतीर्थे वासी सतीर्थ्यः (एक ही गुरु के शिष्य)। य प्रत्ययान्त उदर शब्द बाद में हो तो समान को स विकल्प से होगा। समाने उदरे शयितः सोदर्यः, समानोदर्यः (एक ही पेट से उत्पन्न अर्थात् सगा भाई)।

(घ) दृग्, दृश और दृक्ष बाद में हों तो। सदृक्, सदृशः, सदृक्षः।

---

१. ज्योतिर्जनपदरात्रिनाभिनामगोत्ररूपस्थानवर्णवयोवचनबन्धुषु (६-३-८५)। चरणे ब्रह्मचारिणि (६-३-८६)। तीर्थे ये (६-३-८७)। विभाषोदरे (६-३-८८)। दृग्दृशवतुषु (६-३-८९)। दृक्षे चेति वक्तव्यम् (वार्तिक)

२. चरणः शाखा। ब्रह्म वेदः, तदध्ययनार्थं व्रतमपि ब्रह्म, तच्चरतीति ब्रह्मचारी। (सि० कौ०)।

(ङ) सपक्ष, साधर्म्य, सजातीय आदि समस्त पदों में समान को स होता है ।[1]

**२६६.** निम्नलिखित स्थानों पर समास होने पर स् को ष् हो जाता है[2]:—

(क) अंगुलि और संग का समास होने पर । अंगुलिषङ्गः ।

(ख) भीरु और स्थान (नपुं०) का समास होने पर । भीरुष्ठानम् ।

(ग) ज्योतिस् और आयुष् के साथ स्तोम शब्द का समास होने पर । ज्योतिष्टोमः, आयुष्टोमः (दीर्घायु-प्राप्ति के लिए एक यज्ञ) ।

(घ) सुषामा आदि शब्दों में। शोभनं साम यस्य सुषामा। इसी प्रकार निःषामा, सुषेधः, सुषन्धिः, सुष्ठु, दुष्ठु, इत्यादि ।

**२६७.** तृतीया और षष्ठी को छोड़कर अन्यत्र अन्य शब्द को अन्यत् हो जाता है, बाद में आशिस्, आशा, आस्था, आस्थित, उत्सुक, ऊति और राग शब्द हों तो ।[3]

---

१. समानस्य छन्दस्यमूर्धप्रभृत्युदर्केषु ( ६-३-८४ )। इस सूत्र का अर्थ है कि समान को स हो जाता है वेद में, यदि मूर्धन्, प्रभृति और उदर्क शब्द को छोड़कर बाद में कोई भी शब्द हो तो । अनु भ्राता सगर्भ्यः ( समानो गर्भः सगर्भः, तत्र भवः ) । अनु सखा सयूथ्यः । यो नः सनुत्यः, इत्यादि । अन्यत्र समानमूर्धा, समानप्रभृतयः, समानोदर्काः । उपर्युक्त नियमों के अनुसार सपक्ष आदि समस्त शब्दों का स्पष्टीकरण नहीं हो सकता है, अतः काशिकाकार वामन आदि वैयाकरणों ने सुझाव दिया है कि इस सूत्र के 'समानस्य' पद को पृथक् करके एक स्वतन्त्र सूत्र बनाना चाहिए । भट्टोजि दीक्षित ने वामन के इस सुझाव का समर्थन किया है । परन्तु उसने बाद में हरदत्त के सुझाव को अपनाते हुए कहा है कि सदृश अर्थ का वाचक सह शब्द भी है । सपक्ष आदि में सह शब्द का स है और यहाँ पर बहुव्रीहि समास है । समानस्येति योगो विभज्यते । तेन सपक्षः साधर्म्यं सजातीयमित्यादि सिद्धमिति काशिका । अथवा सहशब्दः सदृशवचनोऽप्यस्ति । सदृशः सख्या ससखीति यथा । तेनायमस्वपदविग्रहो बहुव्रीहिः । समानः पक्षोऽस्येत्यादि । ( सि० कौ० )

२. समासेऽङ्गुलेः सङ्गः ( ८-३-८० ) । भीरोः स्थानम् ( ८-३-८१ ) । ज्योतिरायुषः स्तोमः ( ८-३-८३ ) । सुषामादिषु च ( ८-३-९८ ) ।

३. अषष्ठ्यतृतीयास्थस्यान्यस्य दुगाशीराशास्थास्थितोत्सुकोतिकारकरागच्छेषु । ( ६-३-९९ ) । अर्थे विभाषा ( ६-३-१०० ) ।

अन्या आशी: अन्यदाशी: (अन्य आशीर्वाद), अन्या आशा अन्यदाशा (अन्य आशा), अन्यदास्था (अन्य के प्रति निष्ठा), अन्यदास्थित: (दूसरे पर निर्भर), अन्यदुत्सुक: (अन्य के लिए उत्सुक), अन्या ऊति: अन्यदूति:, अन्य: राग: अन्यद्राग:। अन्यत्र अन्यस्य अन्येन वा आशी: अन्याशी:। कारक शब्द और छ (ईय) प्रत्यय बाद में होने पर भी अन्य को अन्यत् होता है। इन स्थानों पर तृतीया और षष्ठी में भी अन्यत् होता है। अन्यस्य कारक: अन्यत्कारक:। अन्यस्यायम् अन्यदीय:। अर्थ बाद में हो तो विकल्प से अन्य को अन्यत्। अन्यदर्थ:, अन्यार्थ: (दूसरा अर्थ)।

२९८. कुछ समस्त पदों और अनियमित रूप से बनने वाले शब्दों को पृषोदरादि गण में रक्खा गया है।[1] जिन शब्दों की सुसंगत व्याख्या नहीं की जा सकती है, उन्हें इस गण में रक्खा गया है। इनका जिस प्रकार भाषा में प्रयोग होता है, वैसे ही इन्हें शुद्ध समझना चाहिए। इनमें मुख्य शब्द ये हैं :—पृषत: उदरं पृषोदरम् (वायु), हन्ति गच्छतीति हसतीति वा हंस: (हन् या हस् धातु से), हिनस्तीति सिंह: (हिंसार्थक हिंस् धातु से), गूढश्चासौ आत्मा गूढोत्मा (आत्मा, जो कि वाह्य इन्द्रियों से अदृश्य है)।[2] वारीणां वाहका: बलाहका: (बादल), जीवनस्य मूत: (थैला) जीमूत: (बादल), श्मान: (मृत शरीर) शेरते अत्र, अथवा शवानां शयनं श्मशानम्। ऊर्ध्वं च तत् खं च ऊर्ध्वखं तत् लातीति उलूखलम् (ओखली)। पिशितम् आचामतीति पिशाच:, ब्रुवन्तोऽस्यां सीदन्तीति बृसी (ऋषियों का आसन या महर्षि जहाँ पर बैठकर दार्शनिक विषयों पर विचार करते हैं)। मयते असौ, मह्यां रौतीति वा मयूर: (मोर)।

(क) दिशावाची शब्दों के साथ समास होने पर तीर शब्द को विकल्प से तार हो जाता है।[3] जैसे—दक्षिणतीरम्—दक्षिणतारम्, उत्तरतीरम्—उत्तरतारम्, आदि।

(ख) **विशेष**—निम्नलिखित स्थानों पर दुर् को दू हो जाता है[4]:—दु:खेन दाश्यते दूडाश: (जिसको कठिनाई से दे सकें या हानि पहुँचा सकें)।

---

१. पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम् (६-३-१०९)।
२. भवेद्वर्णागमाद्धंस: सिंहो वर्णविपर्ययात्।
गूढोत्मा वर्णविकृतेर्वर्णनाशात् पृषोदरम्॥ (सि० कौ०)।
३. दिक्शब्देभ्यस्तीरस्य तारभावो वा। (वार्तिक)।
४. दुरो दाशनाशदभध्येषूत्वमुत्तरपदादे: ष्टुत्वं च। (वार्तिक)।

दुःखेन नाश्यते दूणाशः (जिसको नष्ट करना कठिन है), दुःखेन दभ्यते दूडभः (जिसको हानि पहुँचाना कठिन है), दुःखेन ध्यायतीति दूढ्यः, इत्यादि ।

२६६. निम्नलिखित स्थानों पर पूर्वपद के अन्तिम स्वर को दीर्घ हो जाता है[1]:—

(क) क्विप् (०) प्रत्ययान्त ये धातुएँ बाद में हों तो पूर्वपद के गतिसंज्ञक उपसर्गों और कारकों को दीर्घ हो जाता है—नह्, वृत्, वृष्, व्यध्, रुच्, सह् और तन्। उपानत्, नीवृत् (बसा हुआ प्रदेश, राज्य), प्रावृट् (वर्षा ऋतु), मर्मावित् (मर्मवेधी)। इसी प्रकार मृगावित् (शिकारी) (देखो भट्टि० २–७), नीरुक्, अभीरुक्, ऋतीषट् (शत्रु को तिरस्कृत करने वाला), परीतत्। अन्यत्र परिणहनम्, यहाँ पर नह् धातु के बाद क्विप् प्रत्यय नहीं है ।

(ख) वल प्रत्यय बाद में हो और पूरा शब्द संज्ञावाचक हो तो। कृषीवलः (किसान) ।

(ग) मत् (वत्) प्रत्यय बाद में हो तो अनेक अच् (एक से अधिक स्वर) वाले शब्दों के अन्तिम स्वर को दीर्घ होता है, यदि पूरा शब्द संज्ञावाचक हो तो, इन शब्दों को छोड़कर—अजिर, खदिर, पुलिन, हंस, कारण्डव और चक्रवाक । अमरावती, इरावती (ये दोनों नाम हैं)। अन्यत्र अजिरवती, व्रीहिमती। वलयवती, यह नाम नहीं है। इन शब्दों के बाद मत् (वत्) प्रत्यय होगा तो भी दीर्घ होगा—शर, वंश, धूम, अहि, कपि, मुनि, शुचि और हनु । शरावती आदि ।

(घ) घञ् (अ) प्रत्ययान्त कोई धातु-रूप बाद में हो तो अधिकांश स्थानों पर उपसर्ग के अन्तिम स्वर को दीर्घ हो जाता है, समस्त पद मनुष्यवाचक न हो तो। परिपाकः—परीपाकः। अन्यत्र निषादः (पहाड़ में रहने वाली एक जाति का व्यक्ति)। इसी प्रकार प्रतिकारः—प्रतीकारः, प्रतिवंशः—प्रतीवंशः, इत्यादि ।

(ङ) इकारान्त उपसर्ग के बाद काश शब्द हो तो। वीकाशः, नीकाशः । अन्यत्र प्रकाशः ।

---

१. नहिवृतिवृषिव्यधिरुचिसहितनिषु क्वौ ( ६-३-११६ )। वले ( ६-३-११८ )। मतौ बह्वचोऽनजिरादीनाम् ( ६-३-११९ )। शरादीनां च ( ६-३-१२० )। उपसर्गस्य घञ्यमनुष्ये बहुलम् ( ६-३-१२२ )। इकः काशे ( ६-३-१२३ )। अष्टनः संज्ञायाम् ( ६-३-१२५ )। नरे संज्ञायाम् ( ६-३-१२९ )। मित्रे चर्षौ ( ६-३-१३० )।

(च) अष्टन् शब्द पूर्वपद हो तो उसे दीर्घ होता है, संज्ञावाचक हो तो। नर शब्द बाद में हो और पूरा शब्द संज्ञावाचक हो तो पूर्वपद के अन्तिम स्वर को दीर्घ होता है। अष्टापदम् (सुवर्ण), अष्टापदः (मकड़ी)। अन्यत्र अष्टपुत्रः। विश्वानरः (सविता का एक विशेषण)।

(छ) मित्र शब्द बाद में हो और ऋषि का नाम हो तो पूर्वपद को दीर्घ होगा। विश्वामित्रः (ऋषि का नाम)। अन्यत्र विश्वमित्रो माणवकः।

**३००.** निम्नलिखित समस्त पदों में बीच में स् लगता है[1]:—

(क) अपर के बाद पर शब्द हो और क्रिया की निरन्तरता अर्थ हो तो। अपरस्पराः सार्था गच्छन्ति। सततमविच्छेदेन गच्छन्तीत्यर्थः। अन्यत्र अपरपरा गच्छन्ति। अपरे च परे च सकृदेव गच्छन्तीत्यर्थः। आ + चर्य में आश्चर्य अर्थ में बीच में स्। आश्चर्यं यदि स भुञ्जीत। अन्यत्र आचर्यं कर्म शोभनम्।

(ख) अवकीर्यते इति अवस्करः, जब इसका अर्थ वर्चस्क अर्थात् कूड़ा या मैल होता है। (कुत्सितं वर्चः वर्चस्कम्, अन्नमलम्। सि० कौ०)। अन्यत्र अवकरः। रथांग अर्थात् रथ के अवयव अर्थ में अपस्करः। विष्किरः और विकिरः रूप पक्षी के अर्थ में होते हैं। प्रतिष्कशः (सहायः पुरोयायी वा, सि० कौ०)। अन्यत्र प्रतिगतः कशां प्रतिकशः (कोड़े की मार को सहन करने वाला, आज्ञा को न पालन करने वाला सेवक), इत्यादि। मस्करः (बाँस), अन्यत्र मकरः (नाका)। मस्करिन् (संन्यासी), अन्यत्र मकरिन् (समुद्र)। कारस्करः (एक वृक्ष का नाम), अन्यत्र कारकरः।

(ग) पारस्कर आदि शब्द जब संज्ञावाचक हों तो स् होता है। जैसे—पारस्करः, किष्कुः, किष्किन्धा।

(घ) तत् + कर का चोर अर्थ हो और बृहत् + पति का एक देवता अर्थ हो तो

---

१. अपरस्पराः क्रियासातत्ये (६-१-१४४)। आश्चर्यमनित्ये (६-१-१४७)। वर्चस्केऽवस्करः (६-१-१४८)। अपस्करो रथाङ्गम् (६-१-१४९)। विष्किरः शकुनिर्विकिरो वा (६-१-१५०)। प्रतिष्कशश्च कशेः (६-१-१५२)। मस्करमस्करिणौ वेणुपरिव्राजकयोः (६-१-१५४)। कारस्करो वृक्षः (६-१-१५६)। पारस्करप्रभृतीनि च संज्ञायाम् (६-१-१५७)। तद्बृहतोः करपत्योश्चोरदेवतयोः सुट् तलोपश्च (वार्तिक)। प्रायस्य चित्तिचित्तयोः (वार्तिक)।

वीच में स् होता है और स् से पूर्ववर्ती त् का लोप होता है। तस्करः (चोर), बृहस्पतिः (बृहस्पति)। प्रायश्चित्तम्, प्रायश्चित्तिः, वनस्पतिः आदि में भी स् होता है।

**३०१**. पुरग, मिश्रक, सिध्रक, सारिक और कोटर शब्द के बाद ही समस्त पदों में वन के न को ण होता है और वन से पूर्ववर्ती अ को दीर्घ होता है।[1] अग्र के वाद भी वन को वण होता है। पुरगावणम्, मिश्रकावणम्, सिध्रकावणम्, सारिकावणम्, कोटरावणम्। अन्यत्र असिपत्रवनम्, वनस्याग्रे अग्रेवणम्।

**३०२. विशेष**—प्र, निर्, अन्तः, आम्र, कार्ष्य आदि शब्दों के वाद वन के न को ण नित्य होता है। दो या तीन स्वर वाले ओषधि और वनस्पति-वाची शब्दों के बाद वन के न को ण विकल्प से होता है।[2] प्रवणम्, कार्ष्यवणम्, इत्यादि। दूर्वावणम्—दूर्वावनम्, शिरीषवणम्—शिरीषवनम्। अन्यत्र देवदारुवनम् (इसमें तीन से अधिक स्वर हैं)। इन शब्दों में वन के न को ण नहीं होगा—इरिकावनम्, मिरिकावनम्, तिमिरावनम्।

**३०३**. बोझ के रूप में ढोई जाने वाली वस्तु के बाद वाहन शब्द के न को ण हो जाता है।[3] इक्षुवाहणम्। अन्यत्र इन्द्रवाहनम् (इन्द्रस्वामिकं वाहनमित्यर्थः, सि० कौ०)।

**३०४**. देश अर्थ होने पर समस्त पद में पान के न को ण नित्य होता है और केवल पान (पीना) अर्थ होने पर विकल्प से ण होगा।[4] जैसे—क्षीरपाणा उशीनराः, सुरापाणाः प्राच्याः। अन्यत्र क्षीरपाणम्—क्षीरपानम्।

(क) निम्नलिखित समस्त पदों में न को ण विकल्प से होता है—गिरिणदी-गिरिनदी, गिरिणखः—गिरिनखः, गिरिणड्यः—गिरिनड्यः, गिरिणितम्बः—गिरिनितम्बः, चक्रणदी—चक्रनदी, चक्रणितम्बः—चक्रनितम्बः, इत्यादि।

---

१. **वनं पुरगामिश्रकासिध्रकासारिकाकोटराग्रेभ्यः ( ८-४-४ )।**
२. **प्रनिरन्तःशरेक्षुप्लक्षाम्रकार्ष्यखदिरपीयूक्षाभ्योऽसंज्ञायामपि ( ८-४-५ )। विभाषौषधिवनस्पतिभ्यः ( ८-४-६ )।**
३. **वाहनमाहितात् ( ८-४-८ )**
४. **पानं देशे ( ८-४-९ )। वा भावकरणयोः ( ८-४-१० ) गिरिनद्यादीनां वा ( वार्तिक )।**

# अध्याय ८

## स्त्री-प्रत्यय

**३०५**. पुंलिंग शब्दों से इन प्रत्ययों को लगाकर स्त्रीलिंग शब्द बनाए जाते हैं—आ (टाप्, डाप्, चाप्), ई (ङीप्, ङीष्, ङीन्), ऊ (ऊङ्) और ति।

**३०६**. ई प्रत्यय करने पर ये परिवर्तन होते हैं :—

(क) हलन्त शब्दों का तृतीया एक० में जो रूप रहता है, वही ई प्रत्यय करने पर भी होता है। प्रत्यञ्च्—प्रतीची, राजन्—राज्ञी, मघवन्—मघोनी, श्वन्—शुनी, अर्यमन्—अर्यम्णी, विद्वस्—विदुषी, आदि। इसके कुछ अपवाद भी हैं—अर्वन्—अर्वणी, आदि।

(ख) शब्द के अन्तिम अ और ई का लोप हो जाता है। जैसे—गौर—गौरी, औत्स—औत्सी, पार्वती, आदि।

(ग) यदि तद्धित प्रत्यय य से बना हुआ कोई प्रातिपदिक है तो उस य का लोप हो जाएगा।[1] गार्ग्य+ई=गार्गी (गर्ग की पुत्री), इत्यादि।

(घ) इन शब्दों के अन्तिम य का लोप हो जाता है—सूर्य, तिष्य, पुष्य (नक्षत्रों का एक समूह), अगस्त्य और मत्स्य।[2] जैसे—सौरी, मत्सी आदि।

(ङ) लट् और लृट् के स्थान पर होने वाले शतृ प्रत्ययान्त शब्दों के बीच में न् और जुड़ जाता है, जैसा कि नपुं० प्रथमा द्विवचन में होता है। (देखो नियम ११६ क और ख)। उदाहरणों के लिए देखो नियम ३३६।

**३०७**. अकारान्त प्रातिपदिकों से और अजादिगण[3] में आए शब्दों से स्त्री-

---

१. हलस्तद्धितस्य ( ६-४-१५० )। प्रातिपदिक शब्द के अर्थ के लिए देखो नियम ५२।

२. सूर्यतिष्यागस्त्यमत्स्यानां य उपधायाः ( ६-४-१४९ )।

३. अजादिगण में ये शब्द हैं—अज, एडक ( भेड़ ), अश्व, चटक ( चिड़िया ), मूषक, बाल, वत्स, होड, पाक ( छोटा बच्चा ), मन्द, विलात, क्रुञ्च (बगुला, क्रौंच पक्षी), उष्णिह्, देवविश् (देवता), ज्येष्ठ, मध्यम, कनिष्ठ और कोकिल

प्रत्यय आ होता है।[1] जैसे—भुञ्जान—भुञ्जाना, अज—अजा, एडका, अश्वा, चटका, मूषिका, बाला, वत्सा, होडा, मन्दा, विलाता (बाला आदि पाँच शब्दों का अर्थ है बालिका) (इनमें से प्रथम पाँच शब्द नियम ३१३ के अपवाद हैं और शेष नियम ३०८ ग के अपवाद हैं)। इन शब्दों से भी आ लगता है—सम्, भस्त्रा, अजिन, शण और पिण्ड शब्द के बाद फल शब्द हो तो। सत्, अजन्त शब्द, काण्ड, प्रान्त, शत और एक शब्द के बाद पुष्प शब्द हो तो। महत् शब्द पहले न हो और जाति अर्थ हो तो शूद्र शब्द से। नञ् का अ पहले हो तो मूल शब्द से। संफला, भस्त्रफला, शणफला आदि (ये लताविशेषों के नाम हैं)। सत्पुष्पा, प्राक्-पुष्पा, काण्डपुष्पा, प्रान्तपुष्पा, शतपुष्पा, एकपुष्पा (ये लताविशेषों के नाम हैं)। शूद्रा (शूद्र स्त्री), अमूला।

(क) यदि प्रत्यय के क से युक्त प्रातिपदिक है तो आ प्रत्यय होने पर क से पूर्ववर्ती अ को इ हो जाएगा।[2] सर्विका, कारिका आदि। इसी प्रकार इन शब्दों में भी अ को इ होता है—मामक, नरक तथा तद्धित प्रत्यय त्य + क से युक्त शब्द। मामिका, नरान् कायति इति नरिका (जो मनुष्यों को अपने पास बुलाती है), दाक्षिणात्यिका, इहत्यिका (यहाँ रहने वाली स्त्री)।

**अपवाद-नियम**—निम्नलिखित स्थानों पर अ को इ नहीं होता है[3]—

(क) यद् और तद् सर्वनामों से अक प्रत्यय होकर बने हुए रूपों में, (ख) तद्धित प्रत्यय त्यकन् (त्यक) लगाकर बने हुए रूपों में, (ग) समस्त पदों में, (घ) क्षिपकादिगण में आए हुए शब्दों में।[4] जैसे—यका, सका, अधित्यका

---

१. अजाद्यतष्टाप् ( ४-१-४ )। संभस्त्राजिनशणपिण्डेभ्यः फलात् ( वा० )। सदच्काण्डप्रान्तशतैकेभ्यः पुष्पात् ( वा० )। शूद्रा चामहत्पूर्वा जातिः (वा०)। मूलान्नञः ( वा० )।

२. प्रत्ययस्थात् कात् पूर्वस्यात इदाप्यसुपः ( ७-३-४४ )। मामकनरकयोरुप-संख्यानम् ( वा० )। त्यक्तयोश्च ( वा० )।

३. न यासयोः ( ७-३-४५ )। त्यकनश्च निषेधः ( वा० )। क्षिपकादीनां च ( वा० )।

४. क्षिपकादिगण में निम्नलिखित शब्द हैं—क्षिपक ( धनुर्धर ), ध्रुवक, चरक ( दूत ), सेवक, करक ( एक पक्षी ), चटक, अवक ( एक वृक्ष ), हलक, अलका, कन्यका, एडक।

(पठार), उपत्यका (तराई), वहुपरिव्राजका नगरी, क्षिपका, ध्रुवका, कन्यका इत्यादि ।

(ख) निम्नलिखित स्थानों पर अ को विकल्प से इ होता है[1]:—

(१) तारका (तारा), तारिका (रक्षा में समर्थ स्त्री), वर्णका (चोगा, वस्त्र), वर्णिका (अन्य अर्थों में), वर्तका (पक्षी, पूर्वी लोगों के अनुसार), वर्तिका (पक्षी, उत्तरीय लोगों के अनुसार) (वर्तका शकुनौ प्राचाम्, उदीचां तु वर्तिका), अष्टका (श्राद्धपक्ष की अष्टमी), अष्टिका (अन्य अर्थों में) ।

(२) सूतका-सूतिका (नवप्रसूता स्त्री), पुत्रका-पुत्रिका, वृन्दारका-वृन्दारिका (एक देवी) ।

(३) क-प्रत्ययान्त शब्दों में अ को इ विकल्प से होता है, जहाँ पर क से पूर्ववर्ती आ को अ हुआ हो और उस अ से पहले य या क हो।[2] जैसे—आर्या + क = आर्यिक + आ = आर्यका—आर्यिका, चटका + क = चटकक + आ = चटकिका—चटकका, इत्यादि। अन्यत्र सांकाश्ये भवा सांकाश्यिका, अश्विका, शुभं यातीति शुभंयाः, अज्ञाता शुभंयाः शुभंयिका ।

(ग) धातु के य और क के बाद क प्रत्यय होगा तो अ को इ नित्य होता है ।[3] सुनयिका, सुपाकिका, इत्यादि ।

**३०८.** (क) निम्नलिखित स्थानों पर स्त्री-प्रत्यय ई लगता है ।[4] ये शब्द विशेषण के तुल्य प्रयुक्त नहीं होने चाहिएँ । (१) कर अन्त वाले प्रातिपदिक (यत्कर, तत्कर, किंकर[5] और बहुकर को छोड़कर), (२) घ्न अन्त वाले प्रातिपदिक, (३) पुरः अग्रतः अग्रे और पूर्व के बाद सर शब्द होने पर, (४) सेना, दाय और स्थानवाचक शब्दों के बाद चर शब्द होने पर, (५) नद, चोर, देव, ग्राह, गर, प्लव और सूद शब्दों से, (६) तद्धित एय प्रत्ययान्त शब्दों से, (७) तद्धित और कृत् अण् (अ) प्रत्यय से बने हुए शब्दों से, जहाँ पर अ के कारण

---

१. तारका ज्योतिषि ( वा० ) । वर्णका तान्तवे ( वा० ) । वर्तका शकुनौ प्राचाम् ( वा० ) । सूतकापुत्रिकावृन्दारकाणां वेति वक्तव्यम् ( वा )० ।
२. उदीचामातः स्थाने यकपूर्वायाः ( ७-३-४६ )
३. धात्वन्तयकोस्तु नित्यम् ( वा० ) ।
४. टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः ( ४-१-१५)
५. देखो सूत्र ३-२-२१ पर काशिका की व्याख्या ।

गुण या वृद्धि होती है। जैसे—औपगः, औत्सः, कुम्भकारः, भारहारः तथा अ प्रत्यय लगाकर बने हुए यादृशः, तादृशः आदि, (८) तद्धित प्रत्यय द्वयस, दघ्न, मात्र और इक (इसके कुछ अपवाद भी हैं) से बने हुए शब्दों से तथा कृत् प्रत्यय त्वर से बने हुए शब्दों से। जैसे—भोगकरी (भोगों को देने वाली), एककरी आदि। पतिघ्नी, पित्तघ्नी आदि। अग्रेसरी आदि। सेनाचरी, कुरुचरी (कुरु देश की स्त्री), मत्स्यचरी आदि। नदी, देवी, सूदी आदि। सौपर्णेयी, वैनतेयी आदि। ऐन्द्री, औत्सी आदि। कुम्भकारी, अयस्कारी आदि। ऊरुद्वयसी, ऊरुदघ्नी, ऊरुमात्री (जाँघ तक पहुँचने वाली) आदि। आक्षिकी, लावणिकी आदि। यादृशी, तादृशी, इत्वरी (कुलटा स्त्री) आदि। गत्वरी आदि। अन्यत्र किंकरा, बहुकुरुचरा नगरी।

(ख) तद्धित प्रत्यय न, स्न, ईक और य (जिनके कारण वृद्धि होती है) प्रत्ययान्त शब्दों तथा तरुण, तलुन शब्दों से भी स्त्रीप्रत्यय ई होता है।[1] स्त्रैणी, पौंस्नी (पुरुष के योग्य), शाक्तीकी, तरुणी, तलुनी आदि। तद्धित प्रत्यय अन अन्त वाले शब्दों से भी ई प्रत्यय होता है, जहाँ पर बीच में न् जुड़ता है। आढ्यंकरणी।

(ग) आयुवाचक अकारान्त शब्दों से स्त्री-प्रत्यय ई होता है, वृद्धावस्था के वाचक शब्दों से नहीं।[2] कुमारी, किशोरी। वधूटी, चिरण्टी (दोनों का अर्थ है युवती स्त्री)। अन्यत्र वृद्धा, स्थविरा आदि। ये दोनों वृद्धावस्था के वाचक हैं। कन्या शब्द अपवाद है, इसमें ई नहीं लगता है।

(घ) **विशेष**—निम्नलिखित ९ शब्दों से ई नित्य होता है, संज्ञावाचक होने पर और वेद में[3]:—केवल, मामक, भागधेय, पाप, अपर, समान, आर्यकृत, सुमंगल और भेषज। केवली, मामकी, समानी, आर्यकृती आदि। अन्यत्र केवला, समाना आदि, जब ये किसी के नाम नहीं हैं।

(ङ) निम्नलिखित स्थानों पर स्त्रीप्रत्यय ई होता है—(क) नर्तक, खनक, रञ्जक और रजक शब्दों से, (ख) कृत् प्रत्यय आक और त्र (यह कुछ धातुओं

---

१. **नञ्स्नञीकक्ख्युंस्तरुणतलुनानामुपसंख्यानम् ( वा० )। यञश्च ( ४-१-१६ )।**
२. **वयसि प्रथमे ( ४-१-२० )। वयस्यचरम इति वाच्यम् ( वा० )।**
३. **केवलमामकभागधेय० (४-१-३०)**

से ही लगता है) से बने हुए शब्दों से, (ग) गौरादिगण में पठित शब्दों से ।[१] नर्तकी, रजकी आदि । कुट्टाकी (काटने वाली), लुण्टाकी (लूटने वाली), दात्री आदि । गौरी, मनुषी, शृंगी, हरिणी, मातामही, पितामही आदि । सुन्दर के दो रूप होते हैं—सुन्दरा, सुन्दरी ।

**३०९.** कुछ प्रातिपदिकों में तद्धित प्रत्यय य और ई के बीच में आयन् भी लग जाता है ।[२] गार्ग्यायिणी (गर्ग की पौत्री), लौहित्यायनी, कात्यायनी आदि ।

**३१०.** निम्नलिखित ११ प्रातिपदिकों से आगे वर्णित विशेष अर्थों में स्त्रीप्रत्यय ई होता है[3] जानपद शब्द से वृत्ति (आजीविका) अर्थ में, कुण्ड शब्द से पात्र अर्थ में और वर्णसंकर से उत्पन्न व्यक्ति अर्थ में, गोण से भरने का थैला या बोरा अर्थ में, स्थल से अकृत्रिम भूमि अर्थ में, भाज से पकाई हुई अर्थ में, नाग से विशालकाय हाथी के अर्थ में, काल से काला रंग अर्थ में, नील से नीले रंग में रँगे हुए वस्त्र अर्थ में या नील के अर्थ में या नीले प्राणी के अर्थ में, कुश से लोहे की बनी हुई वस्तु अर्थ में, कामुक से विषय-भोग की इच्छा अर्थ में, कबर से बाल बाँधने के अर्थ में । जैसे जानपदी वृत्तिः, जानपदा नगरी । कुण्डी अमत्रम् (एक पात्र-विशेष), कुण्डा अन्या (जलने वाली वस्तु) । गोणी आवपनं चेत्, गोणा अन्या (खाली थैला या बोरा) । स्थली अकृत्रिमा चेत्, स्थला अन्या (कृत्रिम भूमि) । भाजी श्राणा चेत् (भात का मांड), भाजा अन्या । नागी स्थूला चेत्, नागा अन्या । काली वर्णश्चेत्, काला अन्या (किसी व्यक्ति का नाम) । नीली अनाच्छादनं

---

१. षिद्गौरादिभ्यश्च ( ४-१-४१ ) । गौरादिगण में परिगणित शब्दों में से कुछ मुख्य शब्द ये हैं—गौर, मनुष्य, ऋष्य, पुट, द्रोण, हरिण, कण, आमलक, बदर, बिम्ब, पुष्कर, शिखण्ड, सुषम, अलिन्द, आढक, आश्वत्थ, उभय, भृङ्ग, मह, मठ, श्वन्, तक्षन्, अनडुह्, अनड्वाह्, देह, देहल, रजन, आरट, नट, आस्तरण, आग्रहायण, मङ्गल, मन्थर, मण्डल, पिण्ड, हृद्, बृहत्, महत्, सोम, सौधर्म आदि ।

२. सर्वत्र लोहितादिकतन्तेभ्यः ( ४-१-१८ ) ।

३. जानपदकुण्डगोणस्थलभाजनागकालनीलकुशकामुककबराद् वृत्त्यमत्रावपनाकृत्रिमाश्राणास्थौल्यवर्णानाच्छादनायोविकारमैथुनेच्छाकेशवेशेषु (४-१-४२)। अनाच्छादनेऽपि न सर्वत्र । किन्तु नीलादोषधौ (वा०)। प्राणिनि च (वा०)। संज्ञायां वा ( वा० ) । शोणात् प्राचाम् ( ४-१-४३) ।

(ओषधिविशेषो गौर्वा) चेत्, नीला अन्या, नील्या रक्ता शाटी इत्यर्थः। नाम-वाचक होने पर नीली और नीला दोनों रूप होते हैं। कुशी अयोविकारश्चेत्, कुशा अन्या (लकड़ी की खूँटी)। कामुकी (विषय भोगों की इच्छा वाली स्त्री), कामुका अन्या (प्रेमी से मिलने की इच्छुक स्त्री)। कवरी केशानां संनिवेशश्चेत् (बालों का जूड़ा), कवरा अन्या (चितकबरा)। शोण के दो रूप होते हैं—शोणी–शोणा।

**३११.** पुंलिंग शब्दों से स्त्रीलिंग में ई प्रत्यय लगता है, यदि उस पुरुष की स्त्री अर्थ हो तो।[1] गोपस्य स्त्री गोपी। शूद्री (शूद्र की स्त्री), (इसका शूद्राणी रूप भी कहीं कहीं होता है)।

(क) पालक शब्द अन्त में होगा तो ई नहीं लगेगा।[2] जैसे—गोपालिका (ग्वाले की स्त्री)। किन्तु गोपाल का गोपाली रूप बनता है। अश्वपालिका (अश्वपाल या सईस की स्त्री)।

(ख) सूर्य शब्द से देवता अर्थ में आ होता है, अन्यत्र ई।[3] सूर्या (सूर्य की स्त्री)। अन्यत्र सूरी कुन्ती (सूर्य की मनुष्य स्त्री, कुन्ती)।

**३१२.** निम्नलिखित शब्दों से स्त्रीलिंग में ई लगता है और उस ई से पहले आन् लग जाता है, अतः आनी जुड़ता है[4]—इन्द्र, वरुण, भव, शर्व, रुद्र, मृड, हिम और अरण्य शब्दों से महत्त्व (विशाल) अर्थ में, यव शब्द से रद्दी जौ अर्थ में, यवन शब्द से यवनों की लिपि अर्थ में, मातुल और आचार्य शब्दों से। जैसे—इन्द्राणी (इन्द्र की स्त्री), वरुणानी (वरुण की स्त्री), आदि। हिमानी (सुदूर विस्तृत हिम), अरण्यानी (विशाल जंगल)। दुष्टो यवो यवानी (रद्दी जौ)। यवनानां लिपिर्यवनानी। अन्यत्र यवनी (यवन की स्त्री या यवन स्त्री)। आचार्यानी[5] (आचार्य की स्त्री)। इसका आचार्याणी रूप नहीं बनता है। जो स्वयं शिक्षक है, उसके लिए आचार्या शब्द है।[6]

---

१. पुंयोगादाख्यायाम् ( ४-१-४८ )।
२. पालकान्तान्न ( वा० )।
३. सूर्याद् देवतायां चाप् वाच्यः ( वा० )।
४. इन्द्रवरुणभवशर्वरुद्रमृडहिमारण्ययवयवनमातुलाचार्याणामानुक् ( ४-१-४९ )। हिमारण्ययोर्महत्त्वे ( वा० )। यवाद् दोषे ( वा० )। यवनाल्लिप्याम् ( वा० )।
५. आचार्यादणत्वं च (वा०)।
६. आचार्या स्वयं व्याख्यात्री (सि० कौ०)।

(क) मातुल और उपाध्याय शब्दों में ई से पहले आन् विकल्प से लगता है[1]। मातुलानी-मातुली, उपाध्यायानी-उपाध्यायी (उपाध्याय या गुरु की स्त्री)। किन्तु जो स्वयं शिक्षक है, वहाँ उपाध्यायी-उपाध्याया रूप होंगे। अर्य और क्षत्रिय शब्दों में ई से पहले आन् विकल्प से लगता है, केवल स्त्रीलिंग अर्थ में। अर्याणी-अर्या (वैश्य वर्ण की स्त्री), क्षत्रियाणी-क्षत्रिया (क्षत्रिय वर्ण की स्त्री)। अर्यी (वैश्य की स्त्री), क्षत्रियी (क्षत्रिय की स्त्री)।

**३१३.** अकारान्त शब्दों से जाति अर्थ में ई प्रत्यय होता है। इनकी उपधा में य् नहीं होना चाहिए। य् उपधा वाले इन शब्दों से ई हो जाएगा—हय, गवय (नील गाय), मुकय, मनुष्य और मत्स्य।[2] जैसे—वृषली (शूद्र स्त्री)। वृषल की स्त्री भी वृषली ही होगी (देखो नियम ३११)। इसी प्रकार ब्राह्मणी, महाशूद्री आदि। हरिणी, मृगी, औपगवी (औपगव नामक ब्राह्मणवर्ग की स्त्री), कठी (कठ नामक ब्राह्मणवर्ग की स्त्री), इत्यादि। हयी, गवयी, मुकयी, मनुषी और मत्सी (देखो नियम ३०६ घ)। अन्यत्र देवदत्ता (एक स्त्री का नाम), अश्वा (यह अजादिगण में है, अतः आ। देखो नियम ३०७ और पाद-टिप्पणी), शूद्रा (शूद्र वर्ण की स्त्री। देखो नियम ३०७।)

(क) निम्नलिखित शब्द अन्त में होंगे और जातिवाचक होंगे तो स्त्रीलिंग में अन्त में ई लगेगा—पाक, कर्ण, पर्ण, पुष्प, फल, मूल और वाल।[3] ओदनपाकी, शङ्कुकर्णी, शालपर्णी, शङ्खपुष्पी, दासीफली, दर्भमूली और गोवाली (ये ओषधियों के नाम हैं)।

(ख) इ-अन्तवाले शब्दों से ई होता है, यदि वे मनुष्यवाचक हों तो।[4] दाक्षी (दाक्षि-परिवार की स्त्री), औदमेयी (उदमेयस्यापत्यम्)। अन्यत्र तित्तिरिः।

**३१४.** वर्ण (रंग)-वाचक प्रातिपदिकों से स्त्रीलिंग में ई और आ दोनों

---

**१. मातुलोपाध्याययोरानुग् वा ( वा० )। या तु स्वयमेवाध्यापिका तत्र वा ङीष् वाच्यः ( वा० )। अर्यक्षत्रियाभ्यां वा स्वार्थे ( वा० )।**

**२. जातेरस्त्रीविषयादयोपधात् ( ४-१-६३ )। योपधप्रतिषेधे हयगवयमुकयमनुष्यमत्स्यानामप्रतिषेधः ( वा० )।**

**३. पाककर्णपर्णपुष्पफलमूलवालोत्तरपदाच्च ( ४-१-६४ )।**

**४. इतो मनुष्यजातेः ( ४-१-६५ )।**

होते हैं, यदि उनकी उपधा में त् हो तो और शब्द का अन्तिम स्वर अनुदात्त हो तो।[1] पिशङ्ग शब्द में भी यह नियम लगता है। असित (काला) और पलित (भूरा) शब्दों में ई नहीं होगा। जहाँ पर ई होता है, वहाँ पर त को न भी होगा। एनी—एता (एत शब्द से, चितकबरी), रोहिणी-रोहिता। पिशङ्गी-पिशङ्गा। अन्यत्र असिता, पलिता, श्वेता (श्वेत में त उदात्त है)।

(क) जिन वर्णवाचक शब्दों की उपधा में त नहीं है, उनमें ई ही होता है।[2] कल्माषी (चितकबरी), सारङ्गी। अन्यत्र कृष्णा, कपिला (इन दोनों के अन्तिम स्वर अनुदात्त नहीं हैं)।

**३१५.** नृ और नर शब्द का स्त्रीलिंग में नारी बनता है। शाङ्गरवादिगण में आए हुए शब्दों से स्त्रीलिंग में ई लगता है।[3] जैसे—शाङ्गरवी, गौतमी, आतिथेयी, आशोकेयी, वैदी, पुत्री आदि।

**३१६.** संबन्धवाचक शब्दों के स्त्रीलिंग शब्द अनियमित रूप से बनते हैं। श्वशुर—श्वश्रू, पितृ—मातृ, इत्यादि।

**३१७.** पति का स्त्रीलिंग शब्द पत्नी है।[4] इसका अर्थ है पति के द्वारा किए गए यज्ञों के फल में समानरूप से भाग लेने वाली। यदि पति शब्द समस्त पद का अन्तिम शब्द है तो पति का पत्नी रूप विकल्प से होगा।[5] समस्त पदों में इन स्थानों पर पति को पत्नी अवश्य होता है—यदि पति से पहले समान, एक, वीर, पिण्ड, श्व, भ्रातृ, भद्र और पुत्र आदि शब्द होंगे। गृहपतिः—गृहपत्नी (घर की स्वामिनी), दृढपतिः—दृढपत्नी, वृषलपतिः—वृषलपत्नी, आदि। किन्तु समानः पतिर्यस्याः सा सपत्नी (सौत), एकपत्नी, वीरपत्नी।

**सूचना**—यदि समास नहीं हुआ है तो पति को पत्नी नहीं होगा। जैसे—

---

१. **वर्णादनुदात्तात्तोपधात्तो नः ( ४-१-३९ )। पिशङ्गादुपसंख्यानम् ( वा० )। असितपलितयोर्न ( वा० )।** २. **अन्यतो ङीष् ( ४-१-४० )।**

३. **शाङ्गरवाद्यञो ङीन ( ४-१-७३ )। शाङ्गरवादिगण के मुख्य शब्द ये हैं—शाङ्गरव, कापटव, ब्राह्मण, गौतम, आतिथेय, आशोकेय, वात्स्यायन, मौञ्जायन, शैब्य, आश्मरथ्य, चण्डाल, पुत्र।**

४. **पत्युर्नो यज्ञसंयोगे ( ४-१-३३ )। पतिशब्दस्य नकारादेशः स्याद् यज्ञेन संबन्धे। वसिष्ठस्य पत्नी। तत्कर्तृकयज्ञस्य फलभोक्त्रीत्यर्थः। (सि० कौ०)।**

५. **विभाषा सपूर्वस्य ( ४-१-३४ )। नित्यं सपत्न्यादिषु ( ४-१-३५ )।**

ग्रामस्य पतिः (गाँव की स्वामिनी)। यहाँ पत्नी रूप नहीं होगा। इसी प्रकार गवां पतिः, इत्यादि।

**३१८.** अन्तर्वत् और पतिवत् शब्दों से स्त्रीलिंग में ई प्रत्यय होता है और ई से पहले न् लग जाता है।[1] अन्तर्वत्नी (गर्भिणी स्त्री), पतिवत्नी (सधवा स्त्री)। यदि पति शब्द का अर्थ स्वामी होगा तो केवल ई ही लगेगा। जैसे—पतिमती पृथ्वी (राजा से युक्त पृथ्वी)।

**३१९.** इकारान्त (इ या ई अन्त वाले) विशेषण शब्दों का स्त्रीलिंग में वही रूप रहता है। जैसे—शुचिः, सुधीः इत्यादि।

**३२०.** उकारान्त विशेषण शब्दों से विकल्प से ई होता है, यदि उनसे पहले संयुक्त अक्षर न हो तो। खरु शब्द से ई नहीं होता है।[2] जैसे—मृदुः-मृद्वी, पटुः-पट्वी, बहुः-बह्वी। किन्तु खरुः ही रूप बनेगा। (पति को वरण करने वाली कन्या। खरुः पतिवरा कन्या, सि० कौ०)। अन्यत्र पाण्डुः, इसमें उ से पहले संयुक्त वर्ण हैं। आखुः, यह विशेषण शब्द नही है, अपितु संज्ञावाचक है।

**३२१.** उकारान्त प्रातिपादिक को स्त्रीलिंग में ऊ हो जाता है, यदि उ से पहले य् न हो और शब्द मनुष्यजातिवाचक हो तो।[3] जैसे—कुरूः (कुरुदेश की स्त्री)। अन्यत्र अध्वर्युः (अध्वर्यु की स्त्री)। अप्राणिवाचक उकारान्त शब्दों को भी स्त्रीलिंग में ऊ हो जाता है, रज्जु और हनु को नहीं।[4] जैसे—अलाबूः, कर्कन्धूः। अन्यत्र रज्जुः, हनुः ही रूप होंगे।

(क) **विशेष**—बाहु अन्त वाले शब्दों को स्त्रीलिंग में ऊ हो जाता है, यदि वे संज्ञावाचक हों तो। पङ्गु शब्द को भी स्त्रीलिंग में ऊ हो जाता है।[5] जैसे—भद्रबाहूः (एक स्त्री का नाम)। अन्यत्र वृत्तबाहुः (गोल भुजाओं वाली स्त्री)। पङ्गूः।

---

१. अन्तर्वत्पतिवतोर्नुक् (४-१-३२)।
२. वोतो गुणवचनात् (४-१-४४)। खरुसंयोगोपधान्न (वा०)।
३. ऊङुतः (४-१-६६)। उकारान्तादयोपधान्मनुष्यजातिवाचिनः स्त्रियामूङ स्यात् (सि० कौ०)।
४. अप्राणिजातेश्चारज्वादीनामुपसंख्यानम् (वा०)।
५. बाह्वन्तात्संज्ञायाम् (४-१-६७)। पङ्गोश्च (४-१-६८)। संज्ञायाम् (४-१-७२)।

(ख) कद्रु और कमण्डलु शब्दों से स्त्रीलिंग में ऊ हो जाता है, संज्ञावाचक हों तो। कद्रूः (एक स्त्री का नाम), कमण्डलूः। अन्यत्र कद्रुः, कमण्डलुः।

**३२२.** यदि समस्त पद में अन्त में ऊरु शब्द हो और प्रथम पद उपमान-वाचक हो तो स्त्रीलिंग में ऊ हो जाता है। यदि पूर्वपद में ये शब्द हों और बाद में ऊरु हो तो भी ऊ होगा—संहित, शफ, लक्षण, वाम, सहित और सह।[1] रम्भोरूः (रम्भे इव ऊरू यस्याः सा, केले के तुल्य जाँघोंवाली)। करभोरूः (हाथ के अग्रभाग के तुल्य सुन्दर जाँघों वाली, या हाथी के बच्चे की सूँड के तुल्य जाँघों वाली)। संहितोरूः (सुन्दर आकृति वाली जाँघों से युक्त स्त्री)। शफौ खुरौ ताविव संश्लिष्टत्वाद् ऊरू यस्याः सा शफोरूः। हितेन सह सहितौ ऊरू यस्याः सा, सहितोरूः। सहेते इति सहौ ऊरू यस्याः सा, सहोरूः (स्त्री जिसकी जंघाएँ अधिक थकान या कष्ट को सहन कर सकती हैं, अथवा सुन्दर जाँघों वाली)।

**३२३.** निम्नलिखित शब्दों से स्त्रीलिंग में ई होता है और इन शब्दों के अन्तिम स्वर को ऐ हो जाता है—वृषाकपि (विष्णु या शिव), अग्नि, कुसित और कुसिद (व्याज या सूद पर निर्वाह करने वाला)।[2] वृषाकपायी, अग्नायी, कुसितायी, कुसिदायी।

**३२४.** मनु शब्द से स्त्रीलिंग में विकल्प से ई होता है और उस ई से पहले उ को औ या ऐ हो जाता है।[3] मनावी, मनायी, मनुः।

**३२५.** ह्रस्व ऋ अन्त वाले और न् अन्त वाले प्रातिपदिकों से स्त्रीलिंग में अन्त में ई जुड़ता है।[4] जैसे—कर्तृ—कर्त्री, दण्डिन्—दण्डिनी, शुनी, राज्ञी, परिदिवन्—परिदिव्नी, इत्यादि।

**सूचना**—निम्नलिखित सात शब्द स्वयं स्त्रीलिंग हैं, अतः इनसे अन्त में ई नहीं होता है—स्वसृ, ननान्दृ, दुहितृ, तिसृ, चतसृ, यातृ और मातृ।[5]

---

१. **ऊरूत्तरपदादौपम्ये** (४-१-६९)। **संहितशफलक्षणवामादेश्च** (४-१-७०)। **सहितसहाभ्यां चेति वक्तव्यम्** (वार्तिक)।
२. **वृषाकप्यग्निकुसितकुसिदानामुदात्तः** (४-१-३७)।
३. **मनोरौ वा** (४-१-३८)। **मनुशब्दस्यौकारादेशः स्यादुदात्त ऐकारश्च०** (सि० कौ०)।
४. **ऋन्नेभ्यो ङीप्** (४-१-५)।
५. **न षट्स्वस्रादिभ्यः** (४-१-१०)।

(क) युवन् शब्द से स्त्रीलिंग में ति प्रत्यय होता है और उससे पहले युवन् के न् का लोप हो जाता है।[1] युवतिः।

**३२६.** वन् अन्त वाले प्रातिपादिकों से स्त्रीलिंग में ई होता है और वन् के न् को र् हो जाता है।[2] शक्वन्—शक्वरी (बलवान्), पीवन्—पीवरी, शर्वन्—शर्वरी (रात्रि), मुत्वानम् अतिक्रान्ता अतिमुत्वरी, अतिधीवरी, इत्यादि।

**अपवाद-नियम**—इन स्थानों पर वन् प्रत्ययान्त से ई नहीं होगा—(१) यदि वन् प्रत्यय हश् (कोमल व्यंजन, वर्ग के ३,४,५ वर्ण, ह और अन्तःस्थ) अन्तवाली धातु से हुआ हो, (२) या ऐसा शब्द किसी समस्त पद के अन्त में हो।[3] ऐसे स्थानों पर स्त्रीप्रत्यय आ होता है और उससे पहले अन् का लोप हो जाता है। जैसे—अवावन् + आ = अवावा ब्राह्मणी (एक ब्राह्मण स्त्री या चोर स्त्री)। राजयुध्वा।

**३२७.** अन् अन्त वाले बहुव्रीहि से स्त्रीलिंग में आ विकल्प से होता है। आ होने पर अन् का लोप होता है।[4] जैसे—सुपर्वन्—सुपर्वन्–सुपर्वा, बहुयज्वन्—बहुयज्वा, इत्यादि। यदि अन् प्रत्ययान्त शब्द ऐसा है, जिसके अ का लोप तृतीया एकवचन आदि में होता है तो उससे विकल्प से ई होगा। जैसे—बहुराजन्—बहुराजा—बहुराज्ञी, इत्यादि।

(क) बहुव्रीहि समास में वन् प्रत्ययान्त के न् को र् विकल्प से होता है।[5] जैसे—बहुधीवन्—बहुधीवा—बहुधीवरी (ऐसा नगर जिसमें धीवरों की संख्या बहुत अधिक हो)।

**३२८.** ऊधस् अन्त वाले बहुव्रीहि से स्त्रीलिंग में ई होता है और अन्तिम अस् को न् हो जाता है।[6] पीनम् ऊधः यस्याः सा पीनोध्नी (बड़े थनोंवाली गाय), कुण्डोध्नी (देखो रघुवंश १–८४)। यदि कोई संख्या या कोई अव्यय पहले

---

**१. यूनस्तिः ( ४-१-७७ )।**
**२. वनो र च ( ४-१-७ )।**
**३. वनो न हश इति वक्तव्यम् ( वा० )।**
**४. अनो बहुव्रीहेः ( ४-१-१२ )। अन उपधालोपिनोऽन्यतरस्याम् (४-१-२८)।**
**५. बहुव्रीहौ वा ( ४-१-७ सूत्र पर वार्तिक )।**
**६. ऊधसोऽनङ् ( ५-४-१३१ )। बहुव्रीहेरूधसो ङीष् ( ४-१-२५ )।**

होगा तो भी ऊधस् से ई और अस् को न् होगा ।[1] जैसे—द्व्यूध्नी, अत्यूध्नी (बड़े थनों वाली) । अन्यत्र ऊधः अतिक्रान्ता अत्यूधाः ।

(क) संख्यावाचक शब्द पहले होने पर दामन् और हायन (आयुवाचक शब्द) अन्त वाले बहुव्रीहि से स्त्रीप्रत्यय ई होता है ।[2] द्विदाम्नी, द्विहायनी बाला (दो वर्ष की लड़की), त्रिहायणी, इत्यादि । अन्यत्र द्विहायना शाला (दो साल पुराना मकान) ।

**सूचना**—त्रि और चतुर् के बाद हायन के न को ण हो जाता है, ई प्रत्यय होने पर । चतुर्हायणी बाला । अन्यत्र त्रिहायना, चतुर्हायना शाला ।

**३२९.** समस्त पद में उत्तरपद प्राणी का अवयववाची अकारान्त शब्द हो और अन्तिम स्वर से पहले कोई संयुक्त व्यंजन न हो तो उससे स्त्रीप्रत्यय आ और ई होते हैं।[3] जैसे—अतिकेशा–अतिकेशी (बहुत बालों वाली स्त्री), सुकेशा—सुकेशी, चन्द्रमुखा—चन्द्रमुखी । अन्यत्र सुगुल्फा (सुन्दर टखने वाली स्त्री) । सुस्तनी—सुस्तना (स्त्री प्रतिमा वा) । सुमुखा शाला (सुन्दर द्वार वाला घर) ।

(क) इन अवस्थाओं में शरीर के अवयववाची शब्दों से भी स्त्रीप्रत्यय आ ही होता है—(१) क्रोड आदि शब्दों से । ये हैं—क्रोड, नख, खुर, उखा, शिखा, बाल, शफ, शुक, भुज, कर इत्यादि । (२) दो से अधिक स्वर वाले शब्द ।[4] कल्याणक्रोडा (अश्वानामुरः क्रोडा, सि० कौ०), पृथुजघना (विशाल कटि वाली), चटुलनयना, इत्यादि ।

(ख) स, सह, नञ् (अ) और विद्यमान शब्द पहले हों तो भी स्वाङ्ग-वाचक शब्दों से स्त्रीप्रत्यय आ ही होगा ।[5] सकेशा, अकेशा, विद्यमाननासिका, सहनासिका, इत्यादि ।

**३३०.** बहुव्रीहि समास में निम्नलिखित शब्दों में से कोई शब्द अन्त में होगा तो स्त्रीप्रत्यय आ और ई दोनों होंगे—नासिका, उदर, ओष्ठ, जङ्घा,

---

१. **संख्याऽव्ययादेर्ङीप्** ( ४-१-२६ ) ।
२. **दामहायनान्ताच्च** ( ४-१-२७ ) । **वयोवाचकस्यैव हायनस्य ङीप् णत्वं चेष्यते** ( वा० ) ।
३. **स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्** ( ४-१-५४ ) ।
४. **न क्रोडादिबह्वचः** ( ४-१-५६ ) ।
५. **सहनञ्विद्यमानपूर्वाच्च** ( ४-१-५७ ) ।

दन्त, कर्ण, शृङ्ग, अंग, गात्र, कण्ठ और पुच्छ ।[1] तुङ्गनासिका—तुङ्गनासिकी, कृशोदरा—कृशोदरी (पतली कटि वाली स्त्री), बिम्बोष्ठी—बिम्बोष्ठा (बिम्ब-फल के तुल्य लाल ओष्ठ वाली), दीर्घे जंघे यस्याः सा दीर्घजङ्घा—दीर्घजङ्घी (लम्बी टाँगों वाली, अतएव ऊँटनी), स्वंगा—स्वंगी (शोभनम् अंगं यस्याः सा, सुन्दर शरीर वाली), सुपुच्छा—सुपुच्छी, इत्यादि ।

(क) निम्नलिखित अवस्थाओं में स्त्रीप्रत्यय ई ही लगेगा :—(१) कवर, मणि या विष शब्द के बाद पुच्छ शब्द होगा तो, (२) बहुव्रीहि समास में अन्त में पक्ष या पुच्छ शब्द हों और उपमा का अर्थ अभिप्रेत हो । कवरपुच्छी (चित-कबरी पूँछ वाली, अर्थात् मोरनी), उलूकपक्षी शाला (उल्लू के पंख की तरह बना हुआ मकान या हॉल), उलूकपुच्छी सेना (सेना, जिसका अन्तिम भाग उल्लू की पूँछ की तरह खड़ा किया गया है ) ।

**३३१.** बहुव्रीहि समास के अन्त में नख और मुख शब्द हों और यदि वे शब्द संज्ञावाचक हों तो स्त्रीप्रत्यय आ ही होता है ।[2] शूर्पणखा, गौरमुखा । अन्यत्र ताम्रमुखी कन्या (लाल मुँह वाली कन्या) ।

**३३२.** शरीर के अंगवाची शब्द से पहले दिशावाची शब्द हो तो समस्त पद से स्त्रीप्रत्यय ई लगता है ।[3] उदङ्मुखी, इत्यादि ।

**३३३.** बहुव्रीहि समास के अन्त में पाद शब्द का पाद् होगा तो स्त्रीप्रत्यय ई विकल्प से होता है और पाद् को पद् हो जाता है ।[4] व्याघ्रस्य इव पादौ यस्याः सा व्याघ्रपात्—व्याघ्रपदी, द्विपात्—द्विपदी । यदि पाद का अर्थ ऋचा का एक चरण होगा तो स्त्रीप्रत्यय आ होगा ।[5] द्विपदा ऋक्, एकपदा, आदि ।

(क) यदि पाद् शब्द से पहले इन शब्दों में से कोई भी शब्द होगा तो ई प्रत्यय ही होगा और पाद् का पद् हो जाएगा—कुम्भ, शूल, तृण, हंस, काक, कृष्ण, सूकर आदि ।[6] कुम्भपदी (घड़े के तुल्य भारी पैर वाली स्त्री) ।

---

१. **नासिकोदरौष्ठजङ्घादन्तकर्णशृङ्गाच्च ( ४-१-५५ ) । अङ्गगात्रकण्ठेभ्यो वक्तव्यम् ( वा० ) । पुच्छाच्च ( वा० ) । कवरमणिविषशरेभ्यो नित्यम् ( वा० ) । उपमानात् पक्षाच्च पुच्छाच्च ( वा० ) ।**
२. **नखमुखात् संज्ञायाम् ( ४-१-५८ ) ।**
३. **दिक्पूर्वपदान्ङीप् ( ४-१-६० ) ।** ४. **पादोऽन्यतरस्याम् (४-१-८) ।**
५. **टाबृचि ( ४-१-९ ) ।** ६. **कुम्भपदीषु च (५-४-१३९)।**

(ख) अन्य स्थानों पर पाद अन्त वाले प्रातिपदिकों से स्त्रीप्रत्यय आ होता है। हस्तिपादा, अजपादा, इत्यादि।

**३३४.** अकारान्त द्विगु से स्त्रीप्रत्यय ई होता है।[1] त्रिलोकी। यदि अन्त वाला शब्द अजादि-गण में होगा (देखो नियम ३०७ पर पाद-टिप्पणी) तो आ प्रत्यय ही होगा। त्रिफला, त्र्यनीका सेना (जिसमें सेना के तीन छोटे टुकड़े हैं, ऐसी सेना), इत्यादि।

**३३५.** (क) द्विगु समास के अन्त में काण्ड (एक विशेष परिमाण) शब्द हो और वह क्षेत्र (खेत) का विशेषण हो तो उससे स्त्रीप्रत्यय आ लगता है, यदि वहाँ पर तद्धित प्रत्यय हुआ हो और उसका लोप हो गया हो।[2] जैसे—द्वे काण्डे प्रमाणम् अस्याः सा द्विकाण्ड + मात्रा = द्विकाण्डा क्षेत्रभक्तिः (३० हाथ लम्बा खेत का टुकड़ा)। अन्यत्र द्विकाण्डी रज्जुः (३० हाथ लम्बी रस्सी)। द्विगु समास के अन्त में कोई परिमाण-भिन्न-वाचक शब्द हो या बिस्त (एक तोला), आचित (एक गाड़ी का बोझ) और कम्बल्य (३$\frac{1}{3}$ तोले के बराबर का एक बाट) शब्द हों तो आ प्रत्यय ही होता है, तद्धित प्रत्यय का लोप होने पर।[3] पञ्चभिः अश्वैः क्रीता पञ्चाश्वा, द्वौ बिस्तौ पचतीति द्विबिस्ता स्थाली। इसी प्रकार द्व्याचिता, द्विकम्बल्या।

(ख) यदि द्विगु समास के अन्त में परिमाणवाचक पुरुष शब्द हो तो उससे स्त्रीप्रत्यय ई और आ दोनों होते हैं, तद्धित प्रत्यय का लोप होने पर।[4] द्वौ पुरुषौ प्रमाणम् अस्याः सा द्विपुरुषी द्विपुरुषा वा परिखा (दो पुरुष के बराबर अर्थात् १३ फीट गहरी खाई)।

**३३६.** लट् और लृट् के स्थान पर परस्मैपद में होने वाले शतृ (अत्) प्रत्ययान्त शब्दों से स्त्रीप्रत्यय ई होता है और त् से पहले न् लग जाता है। जैसा कि नपुंसकलिंग शब्दों के प्रथमा और द्वितीया के द्विवचन में होता है (देखो नियम ११६)। इसी प्रकार हलन्त विशेषण शब्दों से भी ई लगता है। पचन्ती, याती-यान्ती, शासती, ददती, दीव्यन्ती, महती, इत्यादि।

---

१. **द्विगोः** ( ४-१-२१ )।
२. **काण्डान्तात् क्षेत्रे** ( ४-१-२३ )।
३. **अपरिमाणबिस्ताचितकम्बल्येभ्यो न तद्धितलुकि** ( ४-१-२२ )।
४. **पुरुषात् प्रमाणेऽन्यतरस्याम्** ( ४-१-२४ )।

## अध्याय ९

# तद्धित प्रत्यय (Secondary affixes)

**३३७.** शब्दरूप बनाने के लिए संस्कृत में दो प्रकार के प्रत्यय होते हैं—(१) कृत् (Primary affixes), (२) तद्धित (Secondary affixes)। कृत् प्रत्यय वे है, जो धातुओं से होते है और इनसे बने हुए शब्दों को कृदन्त शब्द ( Primary Nominal ) कहते हैं। इसी प्रकार तद्धित प्रत्यय वे हैं जो प्रातिपदिकों (शुद्ध या कृदन्त) से होते हैं और इनसे बने हुए शब्दों को तद्धित-प्रत्ययान्त शब्द (Secondary Nominal Bases) कहते हैं। (देखो नियम १७९)।

**३३८.** इस अध्याय में मुख्यतया तद्धित प्रत्ययों के योग से बने हुए तद्धित प्रत्ययान्त शब्दों का विवरण दिया जाएगा। कृत् प्रत्ययों के योग से बने हुए कृदन्त शब्दों का विवरण आगे दूसरे अध्याय में दिया जाएगा।

**३३९.** तद्धित प्रत्यय विभिन्न अर्थों में होते हैं। इन प्रत्ययों के होने पर शब्दों में कुछ परिवर्तन भी होते हैं। इस विषय में निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए :—

(क) साधारणतया अ, य, इक, ईन, एय, त्य आदि प्रत्ययों के होने पर शब्द के प्रथम स्वर को वृद्धि हो जाती है। जैसे—अश्वपति + अ = आश्वपति + अ।

(ख) अजादि या य प्रत्यय बाद में होने पर ये कार्य होते हैं—(१) शब्द के अन्तिम अ, आ, इ और ई का लोप हो जाता है। (२) उ और ऊ के स्थान पर ओ गुण हो जाता है। (३) ओ और औ में सामान्य सन्धि-नियम लगते हैं। आश्वपति + अ = आश्वपत (अश्वपति की वस्तु, पुं०, नपुं०), इत्यादि। मनु + अ = मानवः (मनु का वंशज)। गो + यम् = गव्यम् (गाय से प्राप्त होने वाली वस्तु)। इसी प्रकार नाव्यम्, (नौ शब्द से), इत्यादि।

(ग) समस्त शब्दों से तद्धित प्रत्यय करने पर कभी उत्तरपद के प्रथम स्वर को वृद्धि होती है और कभी दोनों पदों के प्रथम स्वर को वृद्धि होती है। पूर्व-वार्षिक (पिछले वर्ष का)। इसी प्रकार सुपांचालकः, इत्यादि। सुहृद् का सौहार्द, सुभग का सौभाग्य, इत्यादि। देवतावाचक शब्दों का द्वन्द्व समास होने पर यदि उससे कोई तद्धित प्रत्यय होता है तो दोनों पदों के प्रथम स्वर को वृद्धि होती है। आग्निमारुतं कर्म (अग्नि और मरुत् देवताओं के निमित्त किया गया यज्ञ)।

(घ) यदि किसी शब्द के प्रथम स्वर से पहले उपसर्ग का य् या व् होगा तो उसे क्रमशः इय् या उव् हो जाएगा और तत्पश्चात् प्रथम स्वर को वृद्धि होगी। जैसे—व्याकरण + अ = वियाकरण + अ = वैयाकरणः, स्वश्व + अ = सुवश्व + अ = सौवश्वः। इसी प्रकार स्वस्ति से सौवस्तिक, स्वर से सौवर, इत्यादि।

(ङ) हलादि तद्धित प्रत्यय बाद में होने पर अन्तिम न् का साधारणतया लोप हो जाता है। अजादि तद्धित प्रत्यय और य प्रत्यय बाद में होने पर अन्तिम न् और उससे पूर्ववर्ती स्वर का भी लोप हो जाता है। युवन्—युवत्वम्, राजन्—राजकम्, इत्यादि। आत्मन्—आत्म्य—आत्मीय। इस नियम के उत्तरार्ध के कई अपवाद भी हैं। जैसे—राजन् से राजन्य, इत्यादि।

**सूचना**—अन्य परिवर्तनों को छात्र उदाहरणों से स्वयं जान सकते हैं।

**३४०**. अधिक प्रचलित तद्धितप्रत्ययों का विवरण नीचे दिया जा रहा है।

भाग १

## विभिन्न तद्धित प्रत्यय

**अ**—इन अर्थों में होता है—(१) अपत्य या सन्तान अर्थ में जैसे—उपगोः अपत्यं पुमान् औपगवः (उपगु का पुत्र)। इसी प्रकार वसुदेव से वासुदेव। पर्वतस्य अपत्यं स्त्री पार्वती (पर्वत की पुत्री), इत्यादि। (२) वंशज अर्थ में। जैसे—उत्सस्य गोत्रापत्यं पुमान् औत्सः (उत्स का वंशज), उत्सस्य गोत्रापत्यं स्त्री औत्सी (उत्स की वंशज स्त्री) (देखो नियम ३११, ३१२)। (३) रंग से रँगने अर्थ में। हरिद्रया रक्तं हारिद्रं वसनम् (हल्दी से रंगा हुआ वस्त्र)। (४) उससे बना है, इस अर्थ में। देवदारोर्विकारः दैवदारवः (देवदार

वृक्ष से बना हुआ) । (५) उसका यह है, इत्यादि अर्थों में । देवस्य अयं दैवः (देवसंबन्धी), शर्कराया इदं शार्करम् (रेत का), ऊर्णाया इदम् और्ण वस्त्रम् (ऊनी वस्त्र), ग्रैष्मः (ग्रीष्म ऋतु-संबन्धी), नैशः (रात्रि-संबन्धी), सांवत्सरः (वार्षिक), इत्यादि । हेमन्त से अ प्रत्यय होने पर अन्तिम त का लोप हो जाता है । हैमनः (हेमन्त-संबंधी) (देखो शिशुपाल० ६-६५, किराता० १७-१२), हैमन्तः का अर्थ है हेमन्त ऋतु के उपयुक्त। (६) स्वामी या ईश्वर के अर्थ में । पृथिव्या ईश्वरः पार्थिवः (पृथिवी का स्वामी), पञ्चालानां स्वामी पाञ्चालः (पञ्चालों का राजा), ऐक्ष्वाकः[1] (इक्ष्वाकु वंश का राजा) । (७) समूह अर्थ में । काकानां समूहः काकम्, बकानां समूहः बाकम् (बगुलों का समूह) । इसी प्रकार मयूर से मायूरम् (मोरों का झुण्ड), कपोत से कापोतम् (कबूतरों का झुण्ड) । भिक्षाणां समूहो भैक्षम्, गर्भिणीनां समूहो गार्भिणम्, इत्यादि । (८) जानने वाला या पढ़ने वाला अर्थ में । व्याकरणम् अधीते वेद वा वैयाकरणः (व्याकरण पढ़ने वाला या व्याकरण का विद्वान्), इत्यादि । (९) भाव अर्थ में । मुनेः भावः मौनम् (चुप रहना), युवन्—यौवनम् (जवानी), सुहृद्—सौहार्दम् ( मित्रता ), पृथोर्भावः पार्थवम् ( विशालता, चौड़ाई ) इत्यादि ।

**अक**—यह प्रत्यय विभिन्न अर्थों में होता है—(१) उष्ट्रे भवः औष्ट्रकः (ऊँट से होने वाला या ऊँट से संबद्ध), ग्रीष्मे भवः ग्रैष्मकः (ग्रीष्म ऋतु में उत्पन्न होने वाला) । (२) कुलालेन कृतं कौलालकम् (कुम्हार के द्वारा बनाया हुआ), ब्रह्मणा कृतं ब्राह्मकम् (ब्रह्मा के द्वारा बनाया हुआ) । (३) आरण्यकः (वनवासी, जंगली) । (४) राज्ञां योग्यं राजन्यकम् (राजाओं के निवास के योग्य), मानुष्यकम् (मनुष्यों के निवास के योग्य देश), (५) कुरुषु जातः कौरवकः (कौरवः भी रूप बनता है)[2] (कुरु देश में उत्पन्न हुआ व्यक्ति), युगन्धरेषु जातः यौगन्धरकः (यौगन्धरः भी रूप बनता है) (युगन्धर देश में उत्पन्न हुआ व्यक्ति) । (६) पथि जातं पन्थकम् (रास्ते में उत्पन्न हुई वस्तु) । (७) पन्थानं गच्छतीति पथिकः (यात्री) । (८) पूर्वाह्णे भवः पूर्वाह्णिकः (दोपहर से पहले होने वाला) । इसी प्रकार अपराह्णिकः (दोपहर के बाद होने

---

१. इस प्रकार के शब्दों के रूप के लिए देखो ७४ क, ख ।

२. विभाषा कुरुयुगन्धराभ्याम् ( ४-२-१३० ) ।

वाला) । (९) शत्रुता अर्थ में—काकोलूकयोः वैरं काकोलूकिका[1] (कौवे और उल्लुओं की शत्रुता) । इसी प्रकार कुत्सकुशिकिका, इत्यादि । (१०) समूह अर्थ में गोत्रप्रत्ययान्त शब्दों से, उक्षन्, उष्ट्र, उरभ्र (भेड़), राजन्, राजन्य, राजपुत्र, वत्स, मनुष्य और अज शब्द से । उपगूनां समूहः औपगवकम् (उपगु के वंशजों का समूह), औक्षकम् (बैलों का समूह), राजकम् (राजाओं का समूह), राजन्यकम् (क्षत्रियों का समूह), वात्सकम् (बछड़ों का समूह), मानुष्यकम्, अजकम्, इत्यादि । (११) इन शब्दों से जाननेवाला अर्थ में अक प्रत्यय होता है—पद, क्रम, शिक्षा, मीमांसा । क्रमकः (जिसने क्रम से विद्या पढ़ी है, या जिसने वेदों के क्रमपाठ को पढ़ लिया है), मीमांसक (मीमांसादर्शन का छात्र), इत्यादि ।

**आमह**—पितृ और मातृ शब्द से पिता अर्थ में होता है । पितुः पिता पितामहः (बाबा), मातामहः (नाना) । (१) मातृ शब्द से भाई अर्थ में उल प्रत्यय होता है । मातुर्भ्राता मातुलः (मामा) । (२) पितृ शब्द से भाई अर्थ में व्य प्रत्यय होता है और भ्रातृ शब्द से पुत्र अर्थ में । पितुः भ्राता पितृव्यः (चाचा या ताऊ), भ्रातुः पुत्रः भ्रातृव्यः (भतीजा) ।

**आयन और आयनि**—गोत्रापत्य प्रत्ययान्त शब्दों से अपत्य (सन्तान) अर्थ में होते हैं । दाक्षायणः—दाक्षायणिः (दाक्षि का पुत्र), गार्ग्यायणः—गार्ग्यायणिः (गार्ग्य का पुत्र, गर्ग का पुत्र गार्ग्य होता है) । कापिशी (एक नगर का नाम) शब्द से उत्पन्न होना अर्थ में आयन प्रत्यय नित्य होता है और द्रोण शब्द से विकल्प से । कापिशायनः । द्रौणायनः—द्रौणिः (द्रोण का पुत्र) ।

**इ**—पुत्र अर्थ में होता है । दाक्षिः (दक्ष का पुत्र), वैयासकिः (व्यास का पुत्र), इत्यादि । व्यास, वरुड (एक नीच जाति का नाम), निषाद, चण्डाल और बिम्ब शब्दों के अन्तिम अ के स्थान पर अक् हो जाता है, बाद में इ प्रत्यय होने पर ।

**इक** ( ठक्, ठञ्, ठन् )—विभिन्न अर्थों में होते हैं—(१) रेवत्याः अपत्यं पुमान् रैवतिकः[2] ( रेवती का पुत्र ) । (२) एक मास में दिया जाने

---

**१. देखो नियम ३०७ क । ये शब्द साधारणतया स्त्रीलिंग होते हैं । इसके कुछ अपवाद भी हैं । जैसे—दैवासुरम् (देवों और असुरों की शत्रुता), इत्यादि ।**

**२. इस अर्थ में यह प्रत्यय बहुत थोड़े से शब्दों से होता है ।**

वाला, मासिक या मास भर रहने वाला आदि अर्थों में । मासेन दीयते इति मासिकं वेतनं पुस्तकं वा । इसी प्रकार वार्षिकम् आयुः, इत्यादि । (३) एकत्र होना अर्थ में । सैनिकाः । (४) पूछना अर्थ में । सुस्नातं पृच्छतीति सौस्नातिकः ( एक व्यक्ति दूसरे से पूछता है कि अच्छे प्रकार से स्नान कर लिया या नहीं ) । इसी प्रकार सुखशयनं पृच्छतीति सौखशयनिकः ( एक व्यक्ति दूसरे से पूछता है कि वह सुख से सोया या नहीं ) ( देखो रघुवंश ६-६१, १०-१४ ) । सौखसुप्तिकः, इत्यादि । (५) किसी हथियार का उपयोग करना अर्थ में । असिः प्रहरणम् अस्य आसिकः ( जो तलवार से प्रहार करता है, तलवार चलाने वाला ), धानुष्कः ( धनुर्धारी ) । (६) किसी वस्तु से मिश्रित आदि अर्थ में । दध्ना संस्कृतं दाधिकम् ( दही मिला हुआ ) । मरीचि ( काली मिर्च ) से मारीचिकम् । (७) धर्मं चरतीति धार्मिकः ( पवित्रात्मा, धार्मिक ) । इसी प्रकार अधार्मिकः । (८) उडुपेन तरतीति औडुपिकः ( नाविक, मल्लाह ), नाविकः, इत्यादि । (९) हस्तिना चरतीति हास्तिकः ( हाथी की सवारी करने वाला ) । शकटेन चरतीति शाकटिकः ( बैलगाड़ी में सवारी करने वाला ) । (१०) दध्ना भक्षयतीति दाधिकः ( दही से खाने वाला ) । (११) जीविका के साधन अर्थ में । वेतनेन जीवतीति वैतनिकः ( वेतन से जीविका चलाने वाला ) । इसी प्रकार वाहनिकः, औपदेशिकः, इत्यादि । (१२) ढोने अर्थ में । उत्संगेन हरतीति औत्संगिकः । (१३) अस्तीति बुद्धिः अस्य आस्तिकः ( ईश्वर में विश्वास रखने वाला और धर्मग्रन्थों पर आस्था वाला ), नास्तिकः, इत्यादि । (१४) लाक्षा, रोचना, शकल और कर्दम शब्दों से रँगना अर्थ में । लाक्षया रक्तं लाक्षिकम् ( लाख से रँगा हुआ ), रौचनिकः, शाकलिकः ( चितकबरा या धब्बे वाला ), कार्दमिकः । (१५) पढ़ना अर्थ में वेद, न्याय, वृत्ति, लोकायत और सूत्र अन्त वाले शब्दों से ( कल्पसूत्र आदि को छोड़ कर ) । वेदम् अधीते वैदिकः (वेद का विद्यार्थी), नैयायिकः ( न्यायशास्त्र का विद्यार्थी ), वृत्तिम् अधीते वार्तिकः ( टीका को पढ़ने वाला ), इत्यादि । लौकायतिकः ( नास्तिक, चार्वाक-दर्शन का विद्यार्थी ), सांग्रहसूत्रिकः । अन्यत्र काल्पसूत्रः । (१६) हस्तिन्, धेनु, केदार और कवच शब्दों से सह अमूर्थ में । हास्तिकम् ( हाथियों का समूह ), धैनुकम् ( गायों का समूह ), कैदारिकम् ( खेतों या क्यारियों का समूह ), कावचिकम् ( कवचों का समूह ) । (१७) अध्यात्मन्, अधिदेव, अधिभूत, इहलोक, परलोक आदि

शब्दों से संबद्ध आदि अर्थ में। आत्मानम् अधिकृत्य भवः आध्यात्मिकः ( परमात्मा-संबन्धी, आत्मिक ), आधिदैविकः ( देवों से संबद्ध ), आधिभौतिकः (पंचभूतों से संबद्ध ), ऐहलौकिकः ( इस लोक-संबन्धी ), पारलौकिकः ( परलोक-संबन्धी), इत्यादि। (१८) क्रय, विक्रय, क्रयविक्रय और वस्न शब्दों से जीविका-निर्वाह अर्थ में। ( इस अर्थ में शब्दों को वृद्धि नहीं होती है। ) क्रयेण जीवतीति क्रयिकः ( वस्तुओं की बिक्री से जीविका चलाने वाला, व्यापारी ), विक्रयिकः, वस्निकः ( वेतन या मूल्य से जीविका चलाने वाला )। (१९) वाद्यों के वाचक शब्दों से बजाना आदि अर्थों में। मृदंगवादनं शिल्पम् अस्य मार्दंगिकः ( तबला बजाने वाला )। वीणा से वैणिकः। इसी प्रकार वैणविकः, माड्डुकः या माड्डुकिकः, झार्झरिकः, इत्यादि। (२०) पर्प आदि[1] शब्दों से 'सहायता से चलना' अर्थ में। पर्पिकः ( पर्पेण चरति इति, येन पीठेन पंगवश्चरन्ति स पर्पः, सि० कौ० )। अश्वेन चरति आश्विकः, रथिकः, इत्यादि। पथा चरति पथिकः ( यात्री )। अप्राणिवाचक शब्दों से भी यह प्रत्यय हो जाता है। वारिपथिकं दारु ( जल के वेग से बहाई गई लकड़ी )। (२१) भस्त्रा आदि[2] शब्दों से ले जाना और ढोना अर्थ में। भस्त्रया हरतीति भस्त्रिकः। विवध और वीवध शब्द से—विवधेन वीवधेन वा हरति—विवधिकः, वीवधिकः। वैवधिकः भी रूप बनता है। (२२) कुसीद और दशैकादशन् शब्दों से सूद पर उधार देना अर्थ में। कुसीदिकः ( सूद-खोर ), दशैकादशिकः ( दस रुपए इसलिए उधार देना कि ११ रुपए मिलेंगे। सूद पर रुपया उधार देने वाला )। (२३) आकर्ष शब्द से। आकर्षेण चरति आकर्षिकः ( आकर्षक )।

**इन्**—(१) यह पूर्व शब्द से या पूर्व शब्द अन्त वाले शब्दों से तथा श्राद्ध शब्द से 'किया और खाया' अर्थ में क्रमशः होता है। कृतपूर्वी कटम्, श्राद्धमनेन भुक्तं श्राद्धी ( जिसने श्राद्ध खाया है )। (२) यह खल, कुटुम्ब आदि कुछ शब्दों से समूह अर्थ में होता है और इससे स्त्रीप्रत्यय ई लग जाता है। खलानां समूहः खलिनी ( खलिहानों का या दुर्जनों का समूह ), कुटुम्बिनी ( कुटुम्बों का समूह ), डाकिनी ( भूतिनियों का समूह ), शाकिनी, आदि।

**इमन्** (इमनिच्)—यह निम्नलिखित शब्दों से होता है। इसके लगने से

---

१. ये हैं—अश्व, अश्वत्थ, रथ, जाल, व्यास और पाद।

२. भस्त्रा, भट, भरण, शीर्षभार, शीर्षेभार, अंसभार, अंसेभार आदि।

भाववाचक शब्द बनते हैं। पृथु, मृदु, महत्, तनु, पटु, लघु, बहु, साधु, आशु, उरु, गुरु, बहुल, खण्ड, दण्ड, अकिंचन, चण्ड, बाल, वत्स, होड, पाक, मन्द, स्वादु, ह्रस्व, दीर्घ, प्रिय, वृष, ऋजु, क्षिप्र, क्षुद्र , अणु, दृढ, वृढ, परिवृढ, कृश, भृश, वक्र, शुक्र, शीत, उष्ण, जड, वधिर, मधुर, पण्डित, मूर्ख, मूक, स्थिर और वर्ण ( रंग ) —वाचक शब्द। इस प्रत्यय से पहले वे सभी परिवर्तन होते हैं, जो तुलनार्थक ईयस् प्रत्यय से पहले होते हैं। इससे बने शब्द सदा पुंलिंग होते हैं। जैसे—प्रथिमा ( विशालता ), म्रदिमा, ( मृदुता ), तनिमा ( पतलापन ), पटिमा (चतुरता), आदि। बालिमा, वत्सिमा, होडिमा, पाकिमा (बचपन), ह्रासिमा, क्षोदिमा, द्रढिमा, उष्णिमा, क्रशिमा, जडिमा, शुक्लिमा, इत्यादि।

**इय** ( घ )—यह इन स्थानों पर होता है—(१) क्षत्र शब्द से उस जाति में उत्पन्न होने वाला अर्थ में। क्षत्रिय। (२) राष्ट्र शब्द से संबद्ध अर्थ में। राष्ट्रियः। (३) महेन्द्र शब्द से तदर्थ हवि अर्थ में। महेन्द्रियं हविः। (४) अग्र शब्द से। अग्र; अग्रियः ( अगुआ )।

**ईक** ( ईकक् )—यह शक्ति और यष्टि शब्द से प्रहार करना अर्थ में होता है। शक्त्या प्रहरतीति शाक्तीकः ( भाला चलाने वाला )। ( इसका शाक्तिकः रूप भी बनता है )। याष्टीकः ( लाठी चलाने वाला )।

**ईन** ( ख, खञ् )—(१) कुल और कुल अन्त वाले शब्दों से उत्पन्न होना अर्थ में। कुले जातः कुलीनः—कौलीनः (अच्छे कुल में उत्पन्न। आढचकुलीनः—आढचकौलीनः ( समृद्ध परिवार में उत्पन्न हुआ व्यक्ति )। (२) पार और अवार शब्दों से पृथक् पृथक्, पारावार और अवार पार शब्दों से जाना अर्थ में। जैसे—पारं गामीति पारीणः ( दूसरे किनारे पर जाना )। ( समस्त पद के अन्त में यदि यह होगा तो इसका अर्थ होगा—ज्ञाता या विद्वान् ( देखो भट्टि० २-४६ ), अवारीणः ( नदी आदि के इस पार आना ), पारावारीणः ( जो इस पार और उस पार जाता है, या जो समुद्र के पार जाता है ), अवारपारीणः ( नदी आदि को पार करना )। (३) ग्राम शब्द से ग्रामवासी अर्थ में। जैसे—ग्रामीणः। (४) आत्मन्, विश्वजन और भोग अन्त वाले शब्दों से हितकारी अर्थ में। आत्मने हितः आत्मनीनः विश्वजनीनः, मातृभोगीणः ( माता के सुख के लिए हितकर ), पितृभोगीणः, इत्यादि। (५) नव को नू हो जाता है। जैसे—नवीनः। (६) अध्वन् शब्द से यात्रा करना अर्थ में। अध्वानं गच्छतीति अध्वनीनः ( यात्री ) । (७)

सर्वान्न शब्द से खाने अर्थ में और अनुपद शब्द से बँधे हुए अर्थ में। सर्वान्नीनः (सभी प्रकार का अन्न खाने वाला)। अनुपदं बद्धा अनुपदीना (उपानत्) (पूरे पैर के नाप का जूता)[1]। (८) तिल और माष शब्द से 'उसका खेत है' इस अर्थ में। जैसे—तैलीनम् (तिलों का खेत), माषीणम्, इत्यादि। सप्तपद शब्द से। सप्तभिः पदैः अवाप्यते साप्तपदीनम् (सात पैर चलने से या सात शब्द बोलने से उत्पन्न हुई मित्रता)। ह्यियंगु शब्द से। ह्यः + गोदोह को ह्यियंगु हो जाता है। ह्योगोदोहस्य विकारो हैयंगवीनम् (मक्खन)[2]। (देखो रघु० १-४५, भट्टि० ५-१२)।

ईय (छ, छण्)—यह इन स्थानों पर होता है:—(१) इसका यह, इस अर्थ में। शाला शब्द से शालायाः अयं शालीयः, माला से मालीयः, पाणिनीयः (पाणिनि से संबद्ध)। (२) स्वसृ और पितृस्वसृ शब्द से 'उसका पुत्र' अर्थ में और भ्रातृ शब्द से संबद्ध अर्थ में। स्वस्रीयः (भानजा, बहिन का पुत्र), पैतृस्वस्रीयः, भ्रात्रीयः (भाई से संबद्ध)। (३) अश्व शब्द से संबद्ध और समूह अर्थ में। आश्वीयम् (आश्वम् भी होता है) (घोड़े से संबद्ध या घोड़ों का समूह)। (४) स्व, जन, पर, देव, राजन्, वेणु और वेत्र शब्द से ईय होने पर बीच में क् और जुड़ जाता है। स्वकीय (अपना), जनकीय (लोगों का), परकीय, राजकीय, वेणुकीय (बाँस का), वेत्रकीय।

एण्य—प्रावृष् से प्रावृषेण्य (वर्षा में उत्पन्न या वर्षा से संबद्ध)।

एय (ढक्, ढकञ्, ढञ्)—यह इन स्थानों पर होता है—(१) स्त्री-प्रत्ययान्त शब्दों से अपत्य (सन्तान, पुत्र या पुत्री) अर्थ में। वैनतेयः (विनता का पुत्र, गरुड), भागिनेयः (बहिन का पुत्र, भानजा)। कुलटा शब्द से सती भिक्षुक स्त्री अर्थ में एय से पहले विकल्प से इन लग जाता है। कौलटेयः, कौलटिनेयः। कुलटा का अर्थ वेश्या या दुश्चरित्र होगा तो एय के स्थान पर एर विकल्प से लगता है। कौलटेयः, कौलटेरः (कुलटा स्त्री का पुत्र)। किसी प्रकार के विकार से युक्त स्त्री होगी तो उसके बाद एय को विकल्प से एर हो जायेगा। काणेयः, काणेरः (कानी स्त्री का पुत्र)। दासेयः, दासेरः (दासी का पुत्र)। (२) दो अच् वाले इकारान्त शब्दों से, ये शब्द इञ् (इ) प्रत्यय से बने हुए नहीं होने

१. अनुपदसर्वान्ना० (५-२-९)।
२. हैयङ्गवीनं संज्ञायाम् (५-२-२३) तथा सि० कौ०। तत्तु हैयङ्गवीनं यद् ह्योगोदोहोद्भवं घृतम् (अमर०)।

चाहिए। मण्डूक शब्द से और शुभ्रादि गण[1] में आये हुए शब्दों से। आत्रेयः (अत्रि का पुत्र ), माण्डूकेयः ( मण्डूक का पुत्र ), शौभ्रेयः ( शुभ्र ऋषि का पुत्र ), मैत्रेयः, इत्यादि । (३) मातृष्वसृ और पितृष्वसृ शब्दों से। इन दोनों शब्दों के अन्तिम ऋ का लोप हो जायेगा। मातृष्वसेयः, पितृष्वसेयः । (४) अग्नि और कलि शब्दों से विविध अर्थों में एय प्रत्यय होता है। आग्नेयः (१. अग्नि का पुत्र, २. अग्नि से संबद्ध, ३. अग्नि देवता वाला मन्त्र आदि ) । काल्येयं साम ( कलि के द्वारा दृष्ट साम ) । (५) नदी आदि शब्दों से उत्पन्न होना आदि अर्थों में। नद्याः इदं, नद्यां भवं वा नादेयम् ( १. नदी में उत्पन्न होने वाला, २. सेंधा नमक ), मही से माहेयम् ( पृथ्वी में उत्पन्न होने वाला ), वाराणसी से वाराणसेयः, आदि । (६) व्रीहि और शालि शब्दों से 'उसका खेत है' अर्थ में । व्रैहेयम्, शालेयम् । (७) कुल, कुक्षि, ग्रीवा और कत्त्रि आदि गण[2] में आये हुए शब्दों से विशेष अर्थों में एय प्रत्यय होता है और उसके बाद में क और जुड़ जाता है। कौलेयकः ( कुत्ता, अच्छी नस्ल का ), कौक्षेयकः ( कटारी, तलवार ), ग्रैवेयकः ( गर्दन का आभूषण ), कुत्सिताः त्रयः कत्त्रयः, तत्र जातः कात्त्रेयकः, ग्रामेयकः ( गाँव में उत्पन्न, गँवार ), नागरेयकः ( नागरिक ), इत्यादि । (८) कोश शब्द से उत्पन्न होना अर्थ में । कौशेयम् ( रेशमी वस्त्र ) । (९) पुरुष शब्द से विभिन्न अर्थों में । पौरुषेयः ( १. पुरुष-वध, २. मानवीय कर्म, ३. पुरुष-संबन्धी, ४. मनुष्य-समूह ) । (१०) पथिन्, अतिथि, वसति और स्वपति शब्दों से साधु ( लाभप्रद, उपयोगी ) अर्थ में । पथि साधु पाथेयम् ( मार्ग के लिए हितकर, अर्थात् मार्ग के लिए भोजन आदि ), अतिथिषु साधुः आतिथेयः ( अतिथि का स्वागतकर्ता ), वसतौ साधुः वासतेयः ( स्वागतकर्ता ), वासतेयी रात्रिः, स्वपतेः आगतं स्वापतेयं धनम् ( धन ) ( देखो किराता० १४-८ ) ।

**क ( कन् )**—इन स्थानों पर होता है—(१) देशवाची शब्दों से उत्पन्न या उत्पन्न होने वाली वस्तु अर्थ में । मद्रकः ( मद्र देश में उत्पन्न ) । (२) पीत शब्द से रँगा हुआ अर्थ में । पीतकः ( पीले रँग में रँगा हुआ ) । (३) संबद्ध अर्थ में । मत्कः ( मुझसे संबद्ध, मेरा ), त्वत्कः, इत्यादि । (४) इस मूल्य में खरीदा

---

१. शुभ्र, पुर, ब्रह्मकृत, रोहिणी, रुक्मिणी, धर्मिणी, विमातृ, विधवा, शुक, विश्, शकुनि, शुक्र, बन्धकी, इत्यादि ।

२. कत्त्रि, पुष्कर, पुष्कल, कुम्भी, कुण्डिन, ग्राम, नगरी आदि ।

अर्थ में। पञ्चकः ( पाँच रुपए में खरीदा हुआ )। (५) कार्य करने अर्थ में। शीतकः ( ढीला व्यक्ति, एक सुस्त आदमी ), उष्णकः ( चुस्ती से काम करने वाला )। (६, ७, ८) अज्ञात, अनुकम्पा ( दया ), छोटा और कुत्सित (घृणित, हीन ) अर्थ में। पुत्रकः ( बेचारा पुत्र ), देवदत्तकः ( दुःखित देवदत्त ), ह्रस्वो वृक्षो वृक्षकः ( छोटा पौधा ), अश्वकः ( रद्दी घोड़ा ), शूद्रकः (दुष्ट शूद्र )। (९) कभी कभी स्वार्थ में। अविकः और अविः ( भेड़ ) दोनों एकार्थक हैं। मणिकः ( मणि ), बालकः ( छोटा बच्चा ), इत्यादि।

**कट ( कटच् )**—यह इन स्थानों पर होता है—(१) पशुवाचक शब्दों से समूह अर्थ में। अविकटम् ( भेड़ों का झुण्ड ), इत्यादि। (२) सम्, प्र, वि, नि और उत् उपसर्गों से विभिन्न अर्थों में। संकट ( सँकरा, भीड़युक्त, विपत्ति आदि ), प्रकट ( व्यक्त ), विकट ( विशाल, भयंकर आदि ), निकट (समीप, पास आदि ), उत्कट ( बड़ा, विशाल, शक्तिशाली ), आदि।

**कटचा**—रथकटचा ( रथों का समूह )।

**कल्प, देश्य और देशीय ( कल्पप्, देश्य, देशीयर् )**—ये प्रत्यय कुछ कम, लगभग या तत्सदृश अर्थ में होते हैं। विदुषः ईषद् न्यूनः—विद्वत्कल्पः, विद्वद्देश्यः, विद्वद्देशीयः ( लगभग विद्वान् ), कुमारकल्पः ( पराक्रम में लगभग कुमार के बराबर ), कविकल्पः, मृतकल्पः ( मृतप्राय ), इत्यादि। ये तिङन्त रूपों से भी लगते हैं। पचतिकल्पम् ( कामचलाऊ ठीक पका लेता है )।

**चण ( चणप् ) और चुञ्चु ( चुञ्चुप् )**—ये प्रसिद्ध या विदित अर्थ में होते हैं। जैसे—विद्यया वित्तः—विद्याचणः ( विद्या के लिए प्रसिद्ध ), अस्त्र-चुञ्चुः ( अस्त्रविद्या में निपुणता के लिए प्रसिद्ध ) ( देखो भट्टि० २-३२ )।

**तन (टयु, टयुल्)**—यह समयवाचक क्रियाविशेषण शब्दों से होना अर्थ में होता है। सायं भवः सायन्तनः, अद्यतनः, ह्यस्तनः, प्राह्णेतनः, दिवातनः, दोषातनः, चिरंतनः, सनातनः। प्र से भी होता है—प्रतनः (पुराना)। नव को नू हो जाता है। नूतनः।

**तर ( तरप् )**—छोटा अर्थ में। गोणीतरा ( छोटी थैली या बोरी ), वत्स-तरः ( छोटा बछड़ा ), इत्यादि।

**त्न**—चिर, परुत् ( पिछला साल ), परारि ( परला साल, पिछले से पिछला साल ), प्र और नव शब्दों से होता है। चिरत्नम्, परुत्नम्, परारित्नम्, प्रत्नम् और नूत्नम्।

**ता ( तल् )**—(१) भाववाचक शब्द बनाने के लिए। स्त्रीता, पुंस्ता, समता, इत्यादि। (२) ग्राम, जन, बन्धु, सहाय और गज शब्दों से समूह अर्थ में। ग्रामता, जनता, बन्धुता, इत्यादि।

**तिथ**—बहुतिथ ( कई गुना, बहुतेरा )।

**त्य ( त्यक् )**—यह दक्षिणा, पश्चात्, पुरस्, अमा, इह, क्व, ह्यस्, श्वस् और तः प्रत्ययान्त अव्यय-रूपों से निवास और संबद्ध अर्थ में होता है। दाक्षिणात्यः ( दक्षिणी ), पाश्चात्यः, पौरस्त्यः ( पूर्वदिशा का निवासी, पुरविया), अमात्यः (राजा के साथ रहने वाला, मन्त्री), इहत्यः, क्वत्यः, ह्यस्त्यः, ततस्त्यः, इत्यादि। नि उपसर्ग से भी होता है—नित्यः ( सदा रहने वाला )।

**त्यक ( त्यकन् )**—उप और अधि से होता है। उपत्यका ( पहाड़ की तराई की भूमि ), अधित्यका ( पठार )।

**त्र**—यह केवल गो शब्द से होता है। गवां समूहो गोत्रा (स्त्री०, गायों का समूह)।

**त्व**—भाववाचक शब्द बनाने के लिए। गोत्वम्।

**दघ्न, द्वयस और मात्र**[1] **( दघ्नच्, द्वयसच्, मात्रच् )**—ये प्रमाण या नाप अर्थ में होते हैं। जानु प्रमाणम् अस्य—जानुदघ्नम्, जानुद्वयसम्, जानुमात्रम्, उदकम् ( घुटने तक पानी ), इत्यादि।

**न और स्न**[2] **( नञ्, स्नञ् )**—ये स्त्री और पुंस् शब्दों से विभिन्न अर्थों में होते हैं। स्त्रैण ( स्त्रीत्व, स्त्री-संबन्धी, स्त्री के अनुकूल, स्त्री-समूह आदि ) पौंस्न ( पुंस्त्व, पुरुष-संबन्धी, पुरुषोचित, पराक्रम, वीरता आदि )।

**पाश**—निन्दित या घृणित अर्थ में होता है। भिषक्पाशः ( नीच वैद्य ); वैयाकरणपाशः, इत्यादि। केश शब्द से समूह अर्थ में होता है। केशपाशः। ( समूह अर्थ में ही केश शब्द से दक्ष और हस्त अन्त में लगते हैं )।

**मय ( मयट् )**[3]—इन अर्थों में होता है—(१) विकार या बना हुआ अर्थ में। मृदः विकारः मृन्मयम् ( मिट्टी का बना हुआ ), काष्ठमयम् ( काठ का बना हुआ ), इत्यादि। (२) आधिक्य या बाहुल्य अर्थ में। घृतं प्रचुरं यस्मिन् घृतमयो यज्ञः ( जिस में घी का अधिकता के साथ उपयोग हुआ है, ऐसा यज्ञ ), अन्न-

---

१. **प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः** ( ५-२-३७ )।

२. **स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात्** ( ४-१-८७ )।

३. **मयड् वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः** ( ४-३-१४३ )।

नचः, इत्यादि। यह भक्ष्य वस्तुओं और आच्छादन की वस्तुओं से नहीं होता है। जैसे––मौद्गः सूपः।

य ( **यक्, यत्, यञ्, ष्य** )––यह विभिन्न अर्थों में होता है–– (१) गवां समूहो गव्या ( स्त्री०, गायों का समूह ), वातानां समूहो वात्या। इसी प्रकार खल्या, रथ्या ( रथानां समूहः ), पाश्या, धून्या ( धूएँ का समूह ), तृण्या, नड्या, इत्यादि। (२) सभायां साधुः सभ्यः ( सभ्य या सभासद् )। (३) सतीर्थ्याः ( एक गुरु के शिष्य ), सोदर्यः, समानोदर्यः ( सगा भाई )। (४) भाववाचक शब्द बनाने के लिए। राजन् से राज्यम्, सैनापत्यम्, पौरोहित्यम्, सारथ्यम्, आस्तिक्यम्, इत्यादि। (५) राजन् और मनु शब्दों से वंशज अर्थ में। राजन्यः ( क्षत्रिय वंश में उत्पन्न ), मनोर्जातः मनुष्यः ( यहाँ पर इस अर्थ में बीच में ष् जुड़ जाता है )। (६) श्वशुर शब्द से पुत्र अर्थ में श्वशुर्यः। (७) कुल शब्द से। कुल्यः ( कुलीन )। (८) वायु, ऋतु, पितृ और उषस् शब्दों से अधिष्ठातृ-देवता आदि अर्थ में। वायुः देवता अस्य वायव्यम् अस्त्रम् ( अस्त्र, जिसका अधिष्ठातृ-देवता वायु है ), ऋतव्यः ( ऋतुओं की देवों के तुल्य पूजा करने वाला ), पित्र्यः ( पितरों को दी जाने वाली वस्तु ), उषस्यः ( उषा के लिए उपयुक्त )। (९) दण्ड शब्द और दण्डादि गण में पठित अन्य शब्दों से योग्य होना अर्थ में। दण्ड्यः ( दण्ड के योग्य ), वध्यम् ( वध के योग्य ), अर्घ्यः ( पूजा के योग्य ), इत्यादि। (१०) आगे जो उदाहरण दिये गये हैं, उनमें य का वही अर्थ समझना चाहिए जो अर्थ आगे दिया गया है। स्तेन से स्तेय ( चोरी ), उरस्यः ( छाती से उत्पन्न ) (औरसः भी रूप बनता है। उरस् + अ)। दन्त्यम् ( दाँतों के लिए हितकर )। इस अर्थ में शरीरांगवाची अन्य शब्दों से भी य होता है। जैसे––कण्ठ्यम् ( गले के लिए हितकर ), इत्यादि। श्वन् शब्द से शुन्यम् ( कुत्ते के लिए हितकर ), नाभि ( रथ की नाभि ) से नभ्यम् ( रथ की नाभि के योग्य ), नासिका से नस्यम् (नाक के लिए लाभप्रद ), रथ्य ( रथ ढोने वाला, घोड़ा ), युग्य ( जूए में जुड़ा हुआ, बैल ), वयस्य ( समान आयु का मित्र ), तुला से तुल्य ( तराजू में तोल कर जो बराबर पाया गया हो, अतएव बराबर या सदृश ), न्याय्य ( न्यायादनपेतम्, न्यायोचित ), पथ्यम् ( पथि साधु, लाभकारी ), हृद्यम् ( हृदि स्पृश्यते मनोज्ञत्वात्, मनोहर ), धन्यः ( धनं लब्धा, धन को प्राप्त करने वाला ), धर्म्य ( धर्मादनपेतं, लब्धा वा, धर्मयुक्त या धर्म से प्राप्त ), जन्यम् (लोगों का कथन),

वश्य ( जो वश में किया जा सके, आज्ञाकारी ), इत्यादि । द्रव्य ( द्रोर्विकारः, लकड़ी का बना हुआ ), मूल्यम् ( मूलेनानाम्यम्, ४-४-४९, मूल्य ), इत्यादि । यशस्यः ( यशसा युतः, यशस्वी, यश का साधन ), नाव्यम् ( नावा तार्यम्, जिसको नौका के द्वारा पार किया जा सकता है ), धुर्यः ( धुरं वहतीति, घोड़ा या बैल जो धुरा में जोता गया है ), गव्यम् ( गवे हितम्, गाय के लिए हितकर, गाय से प्राप्त ), इत्यादि ।

र—यह कुटी, शमी और शुण्डा शब्दों से ह्रस्व ( छोटा ) अर्थ में होता है । ह्रस्वा कुटी—कुटीरः ( पु०, नपुं०, छोटी कुटिया ), शमीरः ( शमी का छोटा वृक्ष ), शुण्डारः ( छोटे हाथी की सूँड ) ।

**शंकट और शाल**—दीर्घ या बृहत् अर्थ में वि से ये प्रत्यय होते हैं । विशंकटम् ( बड़ा, विशाल ), विशाल ( बड़ा, बृहत् ), इत्यादि ।

**३४१.** मतुप् के अर्थ में होने वाले प्रत्ययों के युक्त या 'वाला' अर्थ के अतिरिक्त निम्नलिखित अर्थ भी होते हैं[1]—भूमन् ( महत्त्व, बहुत्व, अतिशय), निन्दा ( निन्दा ), प्रशंसा ( प्रशंसा ), नित्ययोग ( स्थायी संबन्ध ), अतिशायन ( बढ़कर होना ), संबन्ध ( संबद्ध होना ) और अस्तिविवक्षा ( है या युक्त अर्थ का होना ) । इनके क्रमशः उदाहरण ये हैं—यवमान्, ककुदावर्तिनी कन्या, रूपवान्, क्षीरिणो वृक्षाः, उदरिणी कन्या, दण्डी ।

भाग २

## मत्वर्थीय (मत्वर्थक) प्रत्यय

अ **(अच्)**—अर्श आदि गण में आये हुए शब्दों से यह प्रत्यय होता है ।[2] अर्शसः (अर्शांसि अस्य विद्यन्ते, जिसे बवासीर है), जटा अस्यास्तीति जटः (जटाधारी), उरसः (बड़ी छाती वाला) ।

**आट और आल**—ये वाच् शब्द से 'बहुत बोलने वाला' अर्थ में होते हैं । वाचाटः, वाचालः (बहुत बकवादी आदमी) ।

---

१. **भूमनिन्दाप्रशंसासु नित्ययोगेऽतिशायने ।**
**संबन्धेऽस्तिविवक्षायां भवन्ति मतुबादयः ॥ ( सि० कौ० )**

२. **अर्शस्, उरस्, तुन्द, चतुर, पलित, जटा, घटा, अघ, कर्दम, अम्ल, लवण तथा विकृत शरीरांगवाची शब्द और वर्णवाची शब्द । अर्श आदिभ्योऽच् ( ५-२-१२७ ) ।**

**आलु**—हृदयालुः ( हृदय वाला अर्थात् कोमल हृदय वाला )। शीत, उष्ण और तृप्त शब्दों से 'न सह सकने वाला' अर्थ में आलु प्रत्यय होता है। शीतं न सहते शीतालुः (जो ठंड सहन नहीं कर सकता है) । इसी प्रकार उष्णालुः, तृप्रालुः (तृप्रः पुरोडाशः तं न सहते । तृप्रं दुःखम् इति माधवः, सि० कौ०) ।

**इत**—तारका आदि शब्दों से 'युक्त' अर्थ में इत प्रत्यय होता है।[1] तारका अस्य संजाताः तारकितं नभः (तारों से युक्त आकाश) । फलानि अस्य संजातानि असौ फलितः वृक्षः । इसी प्रकार पुष्पित, सुखित, दुःखित इत्यादि ।

**इन् और इक (इनि, ठन्)**—ये प्रत्यय अ अन्त वाले शब्दों से तथा व्रीहि-आदि गण में पठित शब्दों से होते हैं।[2] दण्डः अस्यास्तीति दण्डिन्, दण्डिकः (दण्डधारी) । धनिन्, सुखिन्, दुःखिन्, इत्यादि । व्रीहिन्—व्रीहिक, मायिन्-मायिक, शालिन्, मालिन्, इत्यादि । वात और अतिसार शब्द से इन् प्रत्यय होने पर बीच में क् और जुड़ जाता है। वातकिन् (वातरोग या गँठिया से पीड़ित), अतिसारकिन् (अतिसार या दस्त से पीड़ित) । पुष्कर आदि शब्दों से स्थान अर्थ में इन् प्रत्यय होता है।[3] पुष्करिणी (जहाँ पर पुष्कर अर्थात्

---

१. तदस्य संजातं तारकादिभ्य इतच् ( ५-२-३६ ) । तारकादि गण म पठित मुख्य शब्द ये हैं—पुष्प, मञ्जरी, ऋजीष, क्षण, सूत्र, मूत्र, प्रचार, विचार, कुड्मल, कण्टक, मुसल, मुकुल, कुसुम, कुतूहल, स्तबक, किसलय, पल्लव, खण्ड, वेग, निद्रा, मुद्रा, बुभुक्षा, धनुष्या, पिपासा, श्रद्धा, अभ्र, पुलक, अंगारक, द्रोह, दोह, सुख, दुःख, उत्कण्ठा, भर, व्याधि, वर्मन्, व्रण, गौरव, शास्त्र, तरंग, तिलक, चन्द्रक, अन्धकार, गर्व, मुकुर, उत्कर्ष, हर्ष, रण, कुवलय, सीमन्त, गर, ज्वर, रोमाञ्च, पण्डा, कज्जल, कोरक, स्थपुट, फल, शृंगार, अंकुर, शैवल, बकुल, श्वभ्र, कलंक, कर्दम, कन्दल, मूर्च्छा, हस्तक, प्रतिबिम्ब, प्रत्यय, दीक्षा ।

२. अत इनिठनौ ( ५-२-११५ ) । व्रीह्यादिभ्यश्च ( ५-२-११६ ) । व्रीहि आदि शब्द ये हैं—व्रीहि, माया, शाला, शिखा, माला, मेखला, केका, अष्टका, पताका, चर्मन्, कर्मन्, वर्मन्, दंष्ट्रा, संज्ञा, वडवा, कुमारी, नौ, वीणा, बलाका तथा शीर्ष अन्त वाले शब्द ।

३. पुष्करादिभ्यो देशे ( ५-२-१३५ ) । पुष्कर, पद्म, उत्पल, तमाल, कुमुद, नड, कपित्थ, बिस, मृणाल, कर्दम, शालूक, विगर्ह, करीष, शिरीष, यवास, प्रवाह, हिरण्य, कैरव, कल्लोल, तट, तरंग, पंकज, सरोज, राजीव, नालीक, सरोरुह, पुटक, अरविन्द, अम्भोज, अब्ज, कमल, कल्लोल, पयस् ।

कमल उगते हैं, अतः तालाब या सरोवर) । इसी प्रकार कुमुदिनी, पद्मिनी, इत्यादि । अर्थ शब्द से तथा अर्थ-अन्त वाले शब्दों से भी इन् प्रत्यय होता है। अर्थिन् (इच्छुक या धन का इच्छुक), धान्यार्थिन्, इत्यादि । वर्ण शब्द से भी इन् प्रत्यय होता है । वर्णिन् (ब्रह्मचारी या वानप्रस्थ) ।

**इन**--फल, बर्ह और मल शब्दों से इन प्रत्यय होता है । फलिनः (फल-युक्त या फल देने वाला), बर्हिणः (मोर), मलिनः (मैला) ।

**इल**--तुन्द, उदर, पिचण्ड, यव, व्रीहि और प्रज्ञा शब्दों से विकल्प से इल प्रत्यय होता है । पिच्छ, उरस्, ध्रुवक, वर्ण, उदक और पंक शब्दों से इल नित्य होता है तथा सिकता, शर्करा और फेन शब्दों से विकल्प से । तुन्दिल (तोंद वाला), उदरिल, पिचण्डिल (इनका भी बड़े पेट वाला अर्थ है) । प्रज्ञिल (बुद्धिमान्), पिच्छिल (रपटन वाला मार्ग आदि), उरसिल (बड़ी छाती वाला), पंकिल (कीचड़ वाला), सिकतिल (रेतीला), शर्करिल, फेनिल, इत्यादि ।

**उर**--दन्तुर (बड़े बड़े या आगे निकले हुए दाँतों वाला), इत्यादि ।

**ऊल**--बल और वात शब्दों से 'न सह सकने वाला' अर्थ में ऊल प्रत्यय होता है । बलूलः (शत्रु-सेना को न सह सकने वाला, दूसरे की शक्ति का सामना न कर सकने वाला), वातूलः (हवा को सहन न कर सकने वाला) । वात शब्द से समूह अर्थ में भी ऊल होता है । वातूलः (वायु का समूह, बबूला) ।

**ग्मिन्**--वाच् शब्द से योग्य वक्ता अर्थ में ग्मिन् प्रत्यय होता है। वाच् शब्द में आट और आल बहुत बोलने वाला अर्थ में होते हैं । वाग्मिन् (सुन्दर वक्ता)।

**मत् (ड्मतुप्)**--कुमुद, नड और वेतस् शब्दों से मत् प्रत्यय होता है । इनका अन्तिम अ हट जाता है । कुमुद्वत् (जहाँ कुमुद अधिक होते हैं), नड्वत् (जहाँ नड या सरकंडा बहुत होता है), वेतस्वत् (जहाँ पर बेंत अधिकता से होते हैं) ।

**मत् (मतुप्)**--युक्त अर्थ में यह प्रत्यय सामान्यतया होता है ।[1] जैसे--गावः अस्य अस्मिन् वा सन्तीति गोमान् (गायों वाला या गायों से युक्त), इत्यादि । यह प्रत्यय रस, रूप, वर्ण, गन्ध, स्पर्श, स्नेह, शब्द और स्व शब्दों से विशेष रूप से होता है । रसवान्, रूपवान्, इत्यादि । स्ववान् ।

**३४२.** (क) इन स्थानों पर मत् के म को व हो जाता है--म् अन्त वाले

१. तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप् ( ५-२-९४ ) । रसादिभ्यश्च (५-२-९५) ।

शब्दों के बाद, शब्द के अन्त में अ या आ हो तो, उपधा में म्, अ या आ हो तो।[1] किम् से किंवत्, विद्यावत्, लक्ष्मीवत्, यशस्वत्, भास्वत्, इत्यादि। राजन् + वत् = राजन्वत्, जैसे—राजन्वान् देश: (सुयोग्य राजा वाला देश, देखो रघुवंश ६-२२), राजवान् देश: (राजा से युक्त देश)।[2] उदक + वत्—उदन्वत् (पुं० समुद्र), उदकवत् या उदकवान् घट: (जल से युक्त घड़ा)।

**अपवाद नियम**—निम्नलिखित शब्दों के बाद मत् के म को व नहीं होता है—यव, दल्मि, ऊर्मि, भूमि, कृमि, क्रुञ्चा, वशा, द्राक्षा, ध्रजि, ध्रजि, ध्वजि, निजि, हरित्, ककुद्, मरुत्, गरुत्, इक्षु, द्रु और मधु। जैसे—यवमान्, ऊर्मिमान्, इत्यादि।

(ख) झय् (वर्गों के १ से ४ वर्ण) अन्त वाले शब्दों के बाद मत् के म को व हो जाता है।[3] विद्युत्वान्, तडित्वान् (पुं०, बिजली से युक्त अर्थात् बादल), इत्यादि। पद का अन्तिम अक्षर न होने से विद्युत् आदि के त् को द् नहीं हुआ है।

(ग) यदि मत् प्रत्ययान्त शब्द संज्ञावाचक होगा तो म को व हो जाएगा।[4] अहीवती, मुनीवती, इत्यादि।

**३४३.** गुणवाचक शब्दों के बाद मत् का लोप हो जायेगा।[5] जैसे—शुक्लो गुणोऽस्यास्तीति शुक्ल: पट: (श्वेत वस्त्र, शुक्ल गुण से युक्त वस्त्र)। इसी प्रकार कृष्ण:, इत्यादि।

**य (यप्)**—रूप शब्द से 'सुन्दर या मुद्रित धातु' अर्थ में य होता है। रूप्य। हिम्य (हिमयुक्त, शीतल), गुण्य (गुणयुक्त)।

**युस्**—ऊर्णा, शुभम्, अहम् और शम् शब्दों से यु: होता है। ऊर्णायु: (ऊनी), शुभंयु: (भाग्यवान्), अहंयु: (अभिमानी), शंयु: (सुखी)।

**र**—इन शब्दों से र प्रत्यय होता है—पाण्डु, मधु, सुषि, ऊष, नग, मुष्क, पांसु, ख, मुख और कुञ्ज (कुञ्जो हस्तिहनु:)। पाण्डुर: (पीला, पीलेपन से युक्त), मधुर (मीठा), इत्यादि।

**ल (लच्)**—अंसल: (उत्तम कन्धे से युक्त, अर्थात् पुष्ट व्यक्ति), वत्सल

---

१. **मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्य:** ( ८-२-९ )।
२. **राजन्वान् सौराज्ये** ( ८-२-१४ )। राजवान् अन्यत्र ( सि० कौ० )।
३. **झय:** ( ८-२-१० )। ४. **संज्ञायाम्** ( ८-२-११ )।
५. **गुणवचनेभ्यो मतुपो लुगिष्ट:** ( वार्तिक )।

(कृपालु), फेनल (फेनयुक्त)। प्राणी के अंगवाची आकारान्त शब्दों से भी ल होता है। चूडालः (चोटी वाला)।

**व**—केशवः (सुन्दर बालों वाला)। इस अर्थ में इसके केशिन्, केशिक और केशवत् भी रूप होते हैं। मणिवः (एक मणिधारी साँप), हिरण्यवः (कुबेर के ९ कोषों में से एक)। अर्णम् + वः = अर्णवः (समुद्र)।

**वल (वलच्)**—दन्तावलः (हाथी), शिखावलः (मोर), रजस्वला, कृषीवलः (किसान), आसुतीवलः (एक यज्ञिय पुरोहित या शराब निकालने वाला), परिषद्वलः (राजा), ऊर्जस्वलः (बलवान्)।

**विन्**—अस् अन्त वाले शब्दों तथा माया, मेधा और स्रज् शब्दों से विन् प्रत्यय होता है।[1] मायाविन् (मायावी, जादूगर), इत्यादि। मेधाविन् (बुद्धिमान्), स्रग्विन् (मालाधारी), तेजस्विन् (तेजस्वी), इत्यादि। आमय शब्द से भी विन् होता है और आमय के अन्तिम अ को दीर्घ हो जाता है।[2] आमयाविन् (रोगी)।

**श**—लोमशः (बालों वाला, बन्दर)। रोमशः, कपिशः (भूरे रंग वाला)।

**सूचना**—कर्मधारय समास वाले शब्दों के बाद मत्वर्थक प्रत्यय नहीं होते हैं।[3]

## भाग ३

## क्रिया-विशेषण बनाने वाले प्रत्यय

**अक (अकच्)**—अव्ययों के अन्तिम स्वर से पूर्व अक प्रत्यय लगता है। इससे अर्थ में कोई अन्तर नहीं होता है। उच्चैः—उच्चकैः, नीचैः—नीचकैः।

**एन**—दिशावाची शब्दों से अदूर (समीप) अर्थ में एन प्रत्यय होता है। पूर्वेण ग्रामम् (गाँव के पास ही पूर्व की ओर), अपरेण ग्रामम्, इत्यादि।

**तस् (तसि)**—यह पंचमी विभक्ति के अर्थ में होता है। आदितः (प्रारम्भ से), मध्यतः, स्वरतः, वर्णतः, इत्यादि। कभी कभी यह षष्ठी के अर्थ में भी होता है। जैसे—देवा अर्जुनतोऽभवन् (देवता अर्जुन के पक्ष में हुए)। तसिल् प्रत्यय—परितः (चारों ओर), अभितः (दोनों ओर)।

---

१. **अस्मायामेधास्रजो विनिः (५-२-१२१)।**

२. **आमयस्योपसंख्यानं दीर्घश्च (वार्तिक)।** ३. **न कर्मधारयान्मत्वर्थीयः।**

**ना**—विना (विना), नाना (अनेक प्रकार से), इत्यादि ।

**वत्**[1]—क्रिया-संबन्धी समानता या सदृशता अर्थ में वत् प्रत्यय होता है। ब्राह्मणेन तुल्यं ब्राह्मणवत् अधीते। अन्यत्र पुत्रेण तुल्यः स्थूलः ही होगा, पुत्रवत् स्थूलः नहीं। इसी प्रकार क्षत्रियवत्। षष्ठी और सप्तमी के तुल्य अर्थ में भी वत् होता है। मथुरायामिव मथुरावत् स्रुघ्ने प्राकाराः, चैत्रस्य इव चैत्रवत् मैत्रस्य गावः। योग्य अर्थ में भी वत् होता है। विधिमर्हति विधिवत् पूज्यते।

**शस्**—अल्पशः (थोड़ा थोड़ा करके), बहुशः, इत्यादि ।

**च्वि**—संज्ञा और अव्यय शब्दों से अभूततद्भाव (जो पहले वैसा नहीं था और बाद में वैसा हो जाता है) अर्थ में च्वि प्रत्यय होता है।[2]

च्वि प्रत्यय करने पर शब्दों में ये परिवर्तन हो जाते हैं[3]—शब्दों के अन्तिम अ या आ को ई हो जाता है, अव्ययों में यह नियम नहीं लगेगा। इ और उ को दीर्घ हो जाता है। ऋ को री हो जाता है। शब्दों के अन्तिम न् का लोप हो जाता है। अरुस्, मनस्, चक्षुस्, चेतस्, रहस् और रजस् के अन्तिम वर्ण का लोप हो जाता है। अन्तिम वर्ण का लोप होने पर पूर्वोक्त ई आदि होने के नियम लगेंगे। इसके बाद पूरे च्वि प्रत्यय का लोप हो जाता है और च्वि-प्रत्ययान्त के बाद कृ, भू या अस् धातु के तिङन्त या कृदन्त रूप जुड़ जाते हैं। जैसे—अकृष्णः कृष्णः सम्पद्यते तं करोति (कृष्ण + च्वि = कृष्णी + च्वि = कृष्णी + करोति) कृष्णीकरोति। न ब्रह्मा अब्रह्मा, अब्रह्मा ब्रह्मा संपद्यते—ब्रह्मीभवति। इसी प्रकार गङ्गीस्यात्। दोषाभूतमहः (दिन रात्रि के समान हो गया है)। शुचीभवति, पटूस्यात्, मात्रीभवति, मात्रीकरोति, इत्यादि। अरूकरोति, उन्मनीस्यात्, उच्चक्षूकरोति, विचेतीकरोति, विरहीकरोति, विरजीकरोति, इत्यादि।

**आ**—च्वि के तुल्य ही इन शब्दों के अन्त में आ लगता है—(१) दुःख

---

१. तेन तुल्यं क्रिया चेद् वतिः (५-१-११५)। तत्र तस्येव (५-१-११६)। तदर्हम् (५-१-११७)।

२. कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः (५-४-५०)। अभूततद्भाव इति वक्तव्यम् (वार्तिक)।

३. अस्य च्वौ (७-४-३२)। अवर्णस्य ईत् स्यात् च्वौ (सि० कौ०)। अव्ययस्य च्वावीत्वं नेति वाच्यम् (वार्तिक)। च्वौ च (७-४-२६)। अरुर्मनश्चक्षुश्चेतोरहोरजसां लोपश्च (५-४-५१)।

शब्द से, जब इसका अर्थ होगा कि जिसको दुःख नहीं देना चाहिए उसे दुःख देना है। दुःखाकरोति स्वामिनम्। (२) सुख और प्रिय शब्द से, प्रसन्न करने योग्य व्यक्ति को प्रसन्न करने अर्थ में। सुखाकरोति, प्रियाकरोति गुरुम् (अनुकूलाचरणेन आनन्दयतीत्यर्थः, सि० कौ०)। (३) शूल शब्द से पकाने अर्थ में। शूलाकरोति मांसम् (मांस को कील में लगाकर भूनता है)। (४) सत्य शब्द से। सत्याकरोति भाण्डं वणिक् (बनिया वर्तन का मूल्य तय करता है)। (५) अनेक अच् वाले तथा द्विरुक्त अनुकरणात्मक शब्दों से, यदि बाद में इति शब्द न हो तो। पटत्—पटपटाकरोति (पट-पट करता है या पटत् पटत् शब्द कहता है)।

**सात्**—यह शब्द से च्वि के तुल्य विकल्प से लगता है, यदि वस्तु में पूर्णतया परिवर्तन हो जाता है तो।[1] कृत्स्नं शस्त्रम् अग्निः संपद्यते—अग्निसाद्भवति (सभी शस्त्र सर्वथा अग्निरूप हो गए हैं)। इसका अग्नीभवति भी रूप बनता है। भस्मसात् करोति (सर्वथा भस्मरूप करता है)। इस प्रत्यय के साथ सम्+पद् धातु का भी प्रयोग होता है। अग्निसात् संपद्यते अग्निसाद्भवति शस्त्रम्, जलसात् संपद्यते जलीभवति लवणम्। किसी के अधीन कुछ वस्तु करने अर्थ में भी सात् प्रत्यय होता है। राजसात् करोति, राजसात् संपद्यते। किसी को कुछ देना या उसके अधीन करने अर्थ में भी सात् और त्रा प्रत्यय होते हैं। विप्रत्राकरोति, विप्रत्रा संपद्यते, विप्रसात्करोति, इत्यादि।

**सूचना**—सात् प्रत्ययान्त रूप उपसर्ग या गतिसंज्ञक नहीं होते हैं, अतः इनके बाद क्त्वा को ल्यप् नहीं होता है। जैसे—अग्निसात् करोति का अग्निसात् कृत्वा रूप होगा, अग्निसात् कृत्य नहीं।

**अनियमित रूप से बने हुए समयवाचक क्रिया-विशेषण**

समाने अहनि-सद्यः (उसी दिन, तुरन्त), पूर्वस्मिन् वत्सरे—परुत् (गत वर्ष), पूर्वतरे वत्सरे—परारि (गत वर्ष से भी एक वर्ष पूर्व, परार के साल), अस्मिन् संवत्सरे—ऐषमः (इस वर्ष), परस्मिन् अहनि—परेद्यवि (पिछले दिन), अस्मिन् अहनि—अद्य (आज), पूर्वस्मिन् अहनि—पूर्वेद्युः (कल), अन्यस्मिन् अहनि—अन्येद्युः (दूसरे दिन या अगले दिन), उभयोः अह्नोः—उभयद्युः, उभयेद्युः (दोनों दिन)।

———

१. विभाषा साति कार्त्स्न्ये (५-४-५२)।

अध्याय १०

# लिंग-विचार

**३४४.** संस्कृत में शब्दों के लिंग-निर्णय के लिए कोई निश्चित नियम निर्धारित नहीं किए जा सकते हैं। लिंग-निर्णय के लिए कोष-ग्रन्थों या प्रयोगों का आश्रय लेना चाहिए। तथापि निम्नलिखित कतिपय नियम छात्रों के लिए लिंग-निर्णय में विशेष उपयोगी सिद्ध होंगे।

**( क ) पुंलिंग शब्द**

**३४५.** ये शब्द पुंलिंग होते हैं—अ और न प्रत्यय से बने हुए कृदन्त शब्द तथा दा और धा धातु से कृत् प्रत्यय इ करके बने हुए शब्द। जैसे—पाकः, त्यागः, करः, गरः ( पेय वस्तु, विष ), गोचरः ( ग्रहण का विषय ), यज्ञः, विघ्नः, आधिः ( मानसिक दुःख या पीड़ा ), निधिः ( खजाना ), इत्यादि।

**अपवाद शब्द**—याञ्चा ( स्त्री० ), भय, लिंग और भग ( तीनों नपुं० )।

**३४६.** उकारान्त शब्द तथा क्, ट्, ण्, थ्, न्, प्, म्, य्, र् और स् उपधा वाले शब्द। जैसे—प्रभुः, भानुः, इक्षुः, स्तबकः ( गुच्छा ), इत्यादि। घटः, पाषाणः, शोथः ( सूजन ), फेनः, दीपः, स्तम्भः, सोमः, समयः, क्षुरः ( उस्तरा ), अंकुरः, वृषः, वायसः, इत्यादि।

**अपवाद शब्द**—(क) उकारान्त शब्द—धेनु, रज्जु (यह समासान्त शब्द होने पर पुं० और स्त्री० दोनों होता है), कुहु-कुहू ( अमावास्या ), सरयु (सरयू नदी), तनु, करेणु, प्रियंगु ( एक लता का नाम ), ये सभी शब्द स्त्री० हैं। श्मश्रु, जानु, वसु ( धन ), अश्रु, जतु ( लाख ), त्रपु ( राँगा ), तालु, दारु, मधु (शहद), स्वादु (स्वादिष्ट), वस्तु, मस्तु (खट्टी दही), ये सभी शब्द नपुं० हैं।

(ख) क अन्त वाले शब्द—चिबुक ( ठोडी ), शालूक, प्रातिपदिक, अंशुक ( वस्त्र ), उल्मुक ( मशाल ) ये सब नपुं० हैं।

(ग) ट और ण अन्त वाले शब्द—किरीट, मुकुट, ललाट, शृंगाट ( चौराहा ), ऋण, लवण, पर्ण, उष्ण। ये सब नपुं० हैं।

(घ) थ और न अन्त वाले शब्द—काष्ठ, पृष्ठ, रिक्थ ( धन ), उक्थ

( सामवेद का सूक्त, एक यज्ञ ), जघन, अजिन ( मृगचर्म ), तुहिन ( बर्फ ), कानन, विपिन, वन, वृजिन ( पाप ), वेतन, शासन, सोपान (सीढ़ी), मिथुन, श्मशान, रत्न, चिह्न । ये सब नपुं० हैं ।

(ङ) प, भ और म अन्त वाले शब्द—पाप, रूप, शिल्प, पुष्प, शष्प ( कोमल घास ), अन्तरीप ( द्वीप ), कुङ्कुम, रुक्म ( सुवर्ण, लोहा ), सिध्म ( कुष्ठ का चिह्न ), युध्म ( युद्ध ), इध्म, गुल्म ( प्रायः पु० है ), अध्यात्म ( आध्यात्मिक ज्ञान ) । ये सब नपुं० हैं ।

(च) य और र अन्त वाले शब्द—हृदय, इन्द्रिय, उत्तरीय ( चादर, ओढ़नी) द्वार, अग्र, तक्र, वक्त्र, वप्र ( जस्त ), छिद्र, नीर, कृच्छ्र, रन्ध्र, श्वभ्र, अस्त्र, तिमिर, विचित्र, केयूर, उदर, शरीर, कन्दर ( सोंठ ), पंजर ( पिंजड़ा ), जठर, अजिर ( आँगन ), वैर, चत्वर, पुष्कर, गह्वर, कुहर ( गुफा ), कुटीर ( कुटिया, पुं० भी है ), कुलीर ( केकड़ा ), काश्मीर ( काश्मीर ), अम्बर, शिशिर, तन्त्र ( करघा, तन्त्र आदि ), यन्त्र, क्षत्र, क्षेत्र, मित्र, कलत्र, चित्र, सूत्र, नेत्र, गोत्र ( परिवार ), अंगुलित्र ( दस्ताना ), शस्त्र, शास्त्र, वस्त्र, पत्र, पात्र, शुक्र । ये सब नपुं० हैं ।

(छ) ष और स अन्त वाले शब्द—ऋजीष ( तवा ), अम्बरीष (भाड़), पीयूष, पुरीष, किल्विष ( पाप ), कल्मष ( पाप, धब्बा, यह पु० भी है ), बिस, बुस ( भुस ), साहस । ये सभी नपुं० हैं ।

**३४७.** ये शब्द पुंलिंग हैं—देव, दैत्य, मनुष्य, पर्वत, समुद्र, स्वर्ग, मेघ, किरण, दिवस, असि, शर, यज्ञ, आत्मा, नख ( नपुं० भी है ), केश, दन्त, कण्ठ, गल, स्तन, भुज, गुल्फ तथा इन शब्दों के पर्यायवाची शब्द और तोलवाची शब्द जैसे कुडव आदि ।

**अपवाद शब्द**—द्यो ( स्त्री० ), दिव् ( स्त्री० ), खारी ( स्त्री० ), मानिका ( स्त्री०, एक तोल ), त्रिविष्टप ( नपुं० ), दिन ( नपुं० ), अहन् ( नपुं० ) और अभ्र ( नपुं० ) ।

**३४८.** ये शब्द पुंलिंग बहुबचन में ही प्रयुक्त होते हैं—दाराः ( स्त्री०, पत्नी ), अक्षताः ( अक्षत चावल ), लाजाः ( खील ), असवः ( प्राण ) और गृहाः ( घर ) ।

**३४९.** ये शब्द पुंलिंग हैं— नाडीव्रण ( नसों का घाव, नासूर ), अपांग

( नेत्रों के छोर ), जनपद, मरुत्, गरुत् ( पंख ), ऋत्विज्, ऋषि, राशि, ग्रन्थि, क्रमि, ध्वान, वलि, मौलि, रवि, कपि, मुनि, ध्वज, गज, मुञ्ज ( मूँज, इसकी ही ब्राह्मण की मेखला बनती थी ), पुञ्ज, हस्त, कुन्त ( भाला ), अन्त, व्रात ( समूह ), वात, दूत, धूर्त, सूत, चूत ( आम का वृक्ष ), मुहूर्त, षण्ड ( साँड ), करण्ड, मुण्ड ( राक्षस का नाम ), पाखण्ड ( पाखण्डी ), शिखण्ड ( बच्चों के बाल, मोर की पूँछ ), वंश, अंश, पुरोडाश ( यज्ञ के लिए उपयुक्त एक प्रकार का हव्य ), ह्रद, कन्द, कुन्द ( विष्णु का नाम, एक फूल, यह फूल अर्थ में नपुं० भी है ), विशेष, बुद्बुद, शब्द, अर्घ, पथिन्, मथिन् ( मथनी ), ऋभुक्षिन् ( इन्द्र का नाम ), स्तम्ब, नितम्ब, पूग (समूह, सुपारी का वृक्ष), पल्लव, कफ, रेफ, कटाह (कड़ाह आदि), मठ, मणि, तरङ्ग, तुरङ्ग, गन्ध, स्कन्ध, मृदङ्ग, सङ्ग, पुंख ( बाण का डंडा, जिसमें पंख लगाये जाते हैं ), अतिथि, कुक्षि और अंजलि।

### ( ख ) स्त्रीलिंग शब्द

**३५०.** निम्नलिखित प्रत्ययों से बने हुए कृदन्त शब्द—अनि, मि, नि, ति, ई और ऊ। जैसे—अवनिः, भूमिः, ग्लानिः, गतिः, लक्ष्मीः, चमूः, इत्यादि।

**अपवाद शब्द**—वह्नि, अग्नि और वृणि, ये पुंलिंग हैं।

**३५१.** (क) २० से लेकर ९९ तक संख्यावाचक शब्द, ई अन्त वाले एकाक्षर शब्द और ता-प्रत्ययान्त शब्द। विंशतिः, श्रीः, तनुता, इत्यादि।

(ख) भूमि, सरित्, लता और वनिता शब्द तथा इनके पर्यायवाची शब्द।

**अपवाद शब्द**—नदीवाचक स्रोतस् और यादस् दोनों नपुं० हैं।

**३५२.** निम्नलिखित शब्द स्त्रीलिंग हैं—भास्, स्रुज् ( स्रुवा ), स्रज्, दिक्, उष्णिष् ( एक वैदिक छन्द ), उपानह, प्रावृष्, विप्रुष् ( बूँद ), रुष्, विष्, त्विष्, तृष्, नाडि, रुचि, वीचि, नालि, किकि ( एक पक्षी ), केलि, छवि, रात्रि, शष्कुलि (पूड़ी, कान का छेद ), राजि, कुटि ( कुटिया ), वर्ति, भ्रुकुटि, त्रुटि ( क्षण ), वलि, पंक्ति, दर्वि-दर्वी, वेदि-वेदी, खनि-खनी (रत्नों आदि की खान), शानि—शानी, अश्रि—अश्री (तलवार की धार), कृषि—कृषी, ओषधि—धी, कटि—टी, अंगुलि—ली, प्रतिपत्, आपद्, विपद्, सम्पद्, शरद्, संसद्, परिषद्, उषस्, संविद् ( ज्ञान, चेतना ), क्षुध्, समिध्, आशिष्, धुर्, पुर्, गिर्, द्वार्, त्वच्, यवागू ( जौ की लपसी ), नौ, स्फिच् ( नितम्ब ), चुल्लि, खारी, तार, धारा, ज्योत्स्ना, शलाका और काष्ठा ( सीमा, दिशा )।

**३५३.** अप्, सुमनस् ( फूल अर्थ में ), समा ( वर्ष ), सिकता, वर्षा और अप्सरस्, ये स्त्रीलिंग बहुवचन में ही प्रयुक्त होते हैं ।[1]

### ( ग ) नपुंसकलिंग शब्द

**३५४.** निम्नलिखित शब्द नपुंसकलिंग होते हैं—अन और त अन्त वाले कृत्प्रत्ययान्त शब्द तथा त्व, य, एय, अक और ईय अन्त वाले तद्धित-प्रत्ययान्त शब्द । गमनम्, हसनम्, गीतम्, शुक्लत्वम्, धावल्यम्, स्तेयम् ( स्तेनस्य भावः ), सख्यम्, कापेयम् ( कपेर्भावः, बन्दरपना ), आधिपत्यम्, औष्ट्रम् ( उष्ट्रस्य भावः ), द्वैहायनम् ( दो वर्ष का समय ), पैतापुत्रकम्, इत्यादि ।

**३५५.** ये नपुं० होते हैं—इस् और उस् अन्त वाले शब्द, दो स्वरों वाले मन् और अस् अन्त वाले शब्द, त्र अन्त वाले और ल् उपधा वाले शब्द । सर्पिस् ( घी ), ज्योतिष्, धनुष्, चर्मन्, वर्मन् ( कवच ), यशस्, मनस्, पत्र, छत्र, इत्यादि । कुल, कूल, स्थल इत्यादि ।

**अपवाद शब्द**—(क) छदिस् ( स्त्री०, रथ या मकान की छत ) और सीमन् ( स्त्री०, सीमा ) ।

(ख) भृत्र, अमित्र ( न मित्रम् ), छात्र ( विद्यार्थी ), पुत्र, मन्त्र, वृत्र ( एक राक्षस का नाम ), मेढ्र और उष्ट्र, ये सभी पुंलिंग हैं । यात्रा, मात्रा, भस्त्रा ( धोंकनी ), दंष्ट्रा, वरत्रा ( चमड़े का फीता, चाबुक ), ये सभी स्त्रीलिंग हैं ।

(ग) तूल, उपल, ताल, कुसूल (कूंडा या अनाज का गोदाम), तरल ( हार के मध्य की मणि), कम्बल, देवल (पुजारी ब्राह्मण) और वृषल, ये सभी पुंलिंग हैं ।

**३५६.** फलवाचक शब्द तथा शत से आगे के सभी संख्यावाचक शब्द नपुं० हैं, इन शब्दों को छोड़कर—शंकु (पुं०), लक्ष ( यह स्त्रीलिंग भी है ) और कोटि ( स्त्री० ), आम्रम्, आमलकम्, इत्यादि । शतम्, सहस्रम्, इत्यादि ।

**३५७.** ये शब्द नपुं० हैं—मुख, नयन, लोह, वन, मांस, रुधिर, कार्मुक ( धनुष ), विवर, जल, हल, धन, अन्न, बल, कुसुम, शुल्ब ( तांबा ), पत्तन, रण और इनके पर्यायवाची शब्द ।

**अपवाद शब्द**—सीर (हल), अर्थ (धन), ओदन (भात), आहव (युद्ध), संग्राम

---

1. अप्सुमनस्समासिकतावर्षाणां बहुत्वं च । इस पर सि० कौ० का वक्तव्य है—बहुत्वं प्रायिकम् । एका च सिकता तैलदाने असमर्थेति अर्थवत्सूत्रे भाष्य-प्रयोगात् । समां समां विजायते इत्यत्र समायां समायामिति भाष्याच्च ।

(युद्ध), ये सभी पुंलिंग हैं। आजि (युद्ध) और अटवी (जंगल), ये दोनों स्त्रीलिंग हैं।

**३५८.** ये शब्द नपुं० हैं—वियत्, जगत्, पृषत् ( जल की बूँद, यह साधारणतया बहुवचन में ही आता है ), शकृत्, यकृत् ( जिगर ), उदश्वित् ( छाछ या मट्ठा ), नवनीत, अनृत, अमृत, निमित्त, वित्त, चित्त, पित्त, व्रत, रजत (चाँदी), वृत्त, पलित (वृद्धावस्था के कारण बालों की सफेदी), श्राद्ध, पीठ, कुण्ड, अंक, अंग, दधि, सक्थि (जाँघ), अक्षि, आस्य, आस्पद, कण्व (पाप), बीज, धान्य, आज्य, सस्य, रूप्य (चाँदी, चाँदी का सिक्का), कुप्य (घटिया धातु, उपधातु), पण्य, धिष्ण्य (स्थान), हव्य (देवों को दी जाने वाली आहुति), कव्य (पितरों को दिया जाने वाला अन्न), काव्य, सत्य, अपत्य, मूल्य, शिल्प, शिक्य (सींका, सिकहर, बहँगी), कुड्य (दीवार), मद्य, हर्म्य, तूर्य, सैन्य, द्वन्द्व, दुःख, बडिश (बंशी, मछली फँसाने का तार), पिच्छ, कुटुम्ब, वर, शर (जल), अक्ष (इन्द्रिय)।

## ( घ ) पुंलिंग और स्त्रीलिंग शब्द

**३५९.** ये शब्द पुं० और स्त्री० दोनों हैं—गो, मणि, यष्टि, मुष्टि, पाटलि (तुरही बजाने वाला), वस्ति (मूत्राशय), शाल्मलि, त्रुटि, मसि (स्याही), मरीचि, मृत्यु, सीधु, कर्कन्धु, किष्कु (एक हाथ की लम्बाई वाली नाप), कण्डु, रेणु, रज्जु (समास का अन्तिम पद हो तो), दुन्दुभि, नाभि, इषुधि, इषु, बाहु, अशनि, अरणि, भरणि, दृति (चमड़ा, चमड़े की रस्सी), श्रोणि, योनि और ऊर्मि।

## ( ङ ) पुंलिंग और नपुंसकलिंग शब्द

**३६०.** ये शब्द पुंलिंग और नपुं० दोनों हैं—घृत, भूत, मुस्त (मोथा, इसका मुस्ता भी रूप होता है), क्ष्वेलित (खेल, हँसी), ऐरावत, पुस्त (लकड़ी या मिट्टी का खिलौना), बुस्त (भुना हुआ मांस), लोहित (खून), शृंग, अर्घ, निदाघ, उद्यम, शल्य, दृढ, व्रज (गोकुल का नाम, बाड़ा), कुञ्ज, कुथ, कूर्च (दाढ़ी, मोर का पंख), कवच, दर्प, अर्भ (आँख की एक बीमारी), अर्ध, दर्भ, पुच्छ, कबन्ध, औषध, आयुध, अन्त, दण्ड, मण्ड (मांड), खण्ड, शव, सैन्धव, पार्श्व, आकाश, कुश, काश, अंकुश, कुलिश, गृह, मेह, बर्ह (मोर का पंख), देह, पट्ट, पटह, अष्टापद (सुवर्ण), अम्बुद, दैव, ककुद, मद्गु (एक जल-पक्षी), मधु, सीधु, शीधु, सानु, कमण्डलु, सक्तु (सत्तू, इसका बहु० में ही प्रयोग होता है), शालूक (पद्मकन्द, भसीड़ा), कण्टक, अनीक, सरक, मोदक (शराब, शराब पीना, देखो शिशुपाल० १५-८०), मोदक, चषक (प्याला), मस्तक, पुस्तक, तटाक, निष्क, शुष्क, वर्चस्क

(तेज), पिनाक (धनुष, शिव का धनुष), भाण्डक, पिण्डक, (गोला, गूगल आदि), पुलाक (पुलाव, भात का ढेर), वट, लोष्ठ, कुट, कूट, कपाट, कर्पट, कपट (कपड़ा), नट (एक वृक्ष), कीट, कट, रण, तोरण, कार्षापिण (एक सिक्का), स्वर्ण, सुवर्ण, व्रण, चरण, वृषण, विषाण, चूर्ण, तृण, तीर्थ (नपुं० में अर्थ है—तीर्थस्थान, घाट आदि, पुं० में अर्थ है—पूज्य व्यक्ति, यह सामान्यतया शब्द के अन्त में लगता है, जैसे—भारतीतीर्थ आदि), प्रोथ (घोड़े की नाक या नाक के छेद), यूथ, गाथ, मान, यान, अभिधान, नलिन, पुलिन, उद्यान, शयन, आसन, स्थान, चन्दन, आलान (हाथी बाँधने का खम्भा या हाथी बाँधने की लोहे की जंजीर), समान (पुं० मित्र, नपुं० एक स्थान से उच्चरित होने वाला वर्ण), भवन, वसन, संभावन, विभावन, वितान (चँदोवा, शामियाना), विमान, शूर्प (सूप), कुतप (दिन का आठवाँ मुहूर्त। यह साधारणतया पुं० होता है। एक बाजा), कुणप (शव), द्वीप, विटप, उडुप (छोटी नौका या चन्द्रमा), तल्प (शय्या), जृम्भ (जँभाई), बिम्ब, संग्राम, दाडिम (पुं० अनार का पेड़, नपुं० अनार फल), कुसुम, आश्रम, क्षेम, क्षौम, होम, उद्दाम (पुं० वरुण), गोमय, कषाय (कसैला), मलय, अन्वय, अव्यय, किसलय, चक्र, वज्र, वप्र, सार, वार (नपुं० सुरा-पात्र, जल-समूह), पार, क्षीर, तोमर (भाला, बर्छी), भृंगार (सुराही), मन्दार, उशीर (खसखस), तिमिर (अन्धकार), शिशिर, कन्दर, यूष, करीष (गोबर के उपले), मिष, विष, वर्ष, चमस (यज्ञिय सोमपान के उपयुक्त एक पात्र), अंस, रस, निर्यास (पेड़ से निकलने वाला रस या गोंद), उपवास, कार्पास (सूती वस्त्रादि), वास, मास, कास, कंस (गिलास), मांस, द्रोण (नपुं० एक लकड़ी का पात्र या प्याला), आढक, बाण, काण्ड, वक्त्र, अरण्य, गाण्डीव (अर्जुन का धनुष), शील (पुं० एक बड़ा साँप), मूल, मंगल, साल, कमल (पुं० सारस पक्षी, ब्रह्मा का नाम), तल, मुसल, कुण्डल, पलल (पुं० एक राक्षस, नपुं० मांस), मृणाल, बाल, निगाल (घोड़े की गर्दन), पलाल (पुराल, भूसी), बिडाल (बिलाव), खिल (बिना जुती या ऊसर भूमि), शूल, पद्म, उत्पल (पुं० एक वृक्ष), शत, अयुत, प्रयुत, पत्र (तलवार की धार, चाकू), पात्र, पवित्र, सूत्र और छत्र (पुं० कुकुरमुत्ता, नपुं० छाता)।

### ( च ) स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग शब्द

**३६१.** स्थूण—स्थूणा (मकान का खंभा), अर्चिस् (प्रकाश) और लक्षम्—लक्षा (लाख) (कुछ के मतानुसार पुं० भी है)।

## अध्याय ११

# अव्यय (Indeclinables)

**३६२.** अव्यय वे हैं, जो सदा एकरूप रहते हैं। इनमें किसी भी लिंग, वचन और विभक्ति में कोई परिवर्तन नहीं होता है।[1] अव्ययों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—साधारण और समस्त पद। समस्त पदों वाले अव्ययों का वर्णन समास वाले अध्याय में अव्ययीभाव समास में तथा कुछ का बहुव्रीहि और तत्पुरुष समास में किया गया है।

**३६३.** अव्ययों में इनका समावेश है—(१) उपसर्ग (Prepositions), (२) क्रियाविशेषण (Adverbs), (३) निपात (Particles), (४) संयोजक (Conjunctions), और (५) विस्मयसूचक (Interjections)।

**३६४.** इनके अतिरिक्त संस्कृत में कुछ ऐसे संज्ञा-शब्द हैं, जिनका केवल एक रूप ही बनता है और उन्हें निपात (अव्यय) माना जाता है। जैसे—अन्यत् (अन्य कारण), अस्तम् (अस्त होना), अस्ति (विद्यमान होना), ओम् (ईश्वरवाचक ओम् शब्द), चनस् (तृप्ति, अन्न), चाटु (खुशामद), नमस् (नमस्कार), नास्ति (विद्यमान न होना), भूर् (पृथिवी), भुवर् (आकाश), बदि (कृष्णपक्ष), शम् (कुशल), शुदि या सुदि (शुक्लपक्ष), संवत् (वर्ष), स्वाहा (देवों के लिए आहुति), स्वधा (पितरों के लिए अन्न), स्वर् (स्वर्ग), स्वस्ति (कल्याण), इत्यादि।

### १. उपसर्ग (Prepositions)

**३६५.** संस्कृत में उपसर्ग या गति अव्यय शब्द होते हैं। इनके स्वतन्त्र अर्थ होते हैं। ये धातुओं और धातुज शब्दों से पूर्व लगते हैं। इन उपसर्गों के तीन कार्य हैं—धातु के अर्थ में थोड़ा परिवर्तन करना, धातु के अर्थ को ही और पुष्ट

---

१. सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु।
वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम्॥
स्वरादिनिपातमव्ययम् (१-१-३७)।

करना और कभी-कभी धातु के अर्थ को सर्वथा बदल देना।[1] जैसे—प्र+हृ (प्रहार करना), आ+हृ (खाना, यज्ञ करना), सं+हृ (संहार करना, लौटाना), वि+हृ (विहार करना), परि+हृ (परिहार करना), इत्यादि। कभी-कभी इनके लगने पर भी अर्थ में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

**३६६.** धातुओं से पूर्व लगने वाले अधिक प्रचलित उपसर्ग ये हैं—

अति—अधिक, बढ़कर, अतिक्रमण करना। अतिक्रमः (लाँघना, बढ़कर होना), अतिसर्जन (देना, उपहार), आदि।

अधि—ऊपर, अधिक। अधिगमः (ऊपर जाना, प्राप्त करना), अधिकार (शक्ति, उच्चपद), अधिक्षेप (निन्दा), इत्यादि।

अनु—बाद में, पीछे, साथ इत्यादि। अनुक्रमणम् (पीछे चलना), अनुकृतिः (अनुकरण), अनुग्रहः (कृपा), इत्यादि।

अप—पृथक्, अलग होना। अपनयनम् (हटाना), अप+हृ (लेना, अपहरण करना, पकड़ लेना) आदि। अपकारः (अपकार करना, हानि पहुँचाना) आदि।

अपि—(इसका पि भी कभी शेष रहता है)—समीप, ऊपर, लेना आदि। अपि+गम् (परिणत होना, रूपान्तरित होना)[2], अपिधानम् या पिधानम् (ढक्कन), अप्ययः (नाश), इत्यादि।

यह उपसर्ग श्रेण्य संस्कृत में एक स्वतन्त्र क्रिया-विशेषण के रूप में अधिक प्रयुक्त होता है और इसका 'भी' अर्थ होता है।

---

१. धात्वर्थं बाधते कश्चित् कश्चित् तमनुवर्तते।
तमेव विशिनष्टयन्य उपसर्गगतिस्त्रिधा॥

(देखो सि० कौ० भी)

उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते।
प्रहाराहारसंहारविहारपरिहारवत्॥

कुछ विद्वानों का विचार है कि उपसर्गों का स्वयं कोई अर्थ नहीं होता है। वे धातुओं से पूर्व लगने पर अपने गुप्त अर्थों को प्रकट करते हैं। (देखो शिशुपाल० १०-१५)

२. देखो—कारणेन अपिगच्छत् कारणम्०, शारीर भाष्य। आचार्य भागुरि के मतानुसार अपि और अव के अ का विकल्प से लोप हो जाता है। वष्टि भागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोः (सि० कौ०)।

अभि—ओर, समीप, आदि। अभि+गम् (समीप जाना), अभिजनः (कुलीन), अभिमानः (गर्व), अभि+भू (हराना), इत्यादि।

अव—(इसका व भी कभी शेष रहता है, देखो पाद-टिप्पणी)—दूर, नीचे, इत्यादि। अव+गाह् या व+गाह् (स्नान करना), अवतारः (सीढ़ी, उतरना), अवगीतः (निन्दित), अव+मन् (अपमान करना), इत्यादि।

आ—तक, ओर, चारों ओर, थोड़ा, इत्यादि। आ+च्छाद् (चारों ओर से ढकना), आकारः (आकृति, रूप), आकाशः (आकाश, जो चारों ओर प्रकाशित हो रहा है), आकम्प् (थोड़ा हिलना), इत्यादि।

उद्-उत्—ऊपर, इत्यादि। उद्+गम् (ऊपर आना, निकलना), उद्यमः (पुरुषार्थ), उत्सर्गः (डालना, अतएव उपहार, सामान्य नियम), आदि।

उप—समीप, ओर, पास में, आदि। उपया (समीप जाना), उपकृतिः (स्त्री०, उपकार करना), उपरति (स्त्री०, मृत्यु), उपस्थानम् (स्तुति, उपासना), उपमिति (स्त्री०, तुलना), इत्यादि।

दुस्-दुर्—बुरा, दुष्कर कर्म, इत्यादि। दुराचारः (बुरे आचरण वाला), दुष्कर (जिसको कठिनाई से किया जा सके), दुःसह (जिसको कठिनाई से सहन किया जा सके), इत्यादि।

नि—अन्दर, निश्चय से, बड़ा, विपरीत, इत्यादि। नि+कृ (अपमान करना), निकेत (मकान), निचय (ढेर, समूह), निपीत (पी लिया), निदेश (आज्ञा), इत्यादि।

निस्-निर्—निकलना, दूर हटना, बिना, इत्यादि। निःसृ (निकलना, बाहर जाना), निर्गमः (निकास, बाहर जाने का मार्ग), निर्दोषः (दोषों से रहित), निःशंकः (निडर, सन्देह-रहित), इत्यादि।

परा—पृथक्, पीछे, विपरीत, इत्यादि। पराकृ (छोड़ना, घृणा करना), पराक्रम (बहादुरी), परागत (दूर गया), पराञ्च् (मुड़ना, पीठ फेरना), पराजय (जय के विपरीत अर्थात् हार), इत्यादि।

परि—चारों ओर, समीप। परिधा (चारों ओर डालना, पहनना), परिधिः (चारदीवारी, दीवार, जो चारों ओर से घेरती है), परिणामः (परिणाम, प्रौढ़ता), परिगणना (चारों ओर से गिनना, अर्थात् पूरी गणना), इत्यादि।

प्रति—ओर, पीछे, बदले में, विपरीत, इत्यादि। प्रतिगम् (उस ओर जाना),

प्रतिभाषण (प्रत्युत्तर, प्रतिवचन), प्रतिकारः—प्रतीकारः (विपरीत कार्य, चिकित्सा, बदला), इत्यादि ।

वि—विपरीत, पृथक्, विरुद्ध, विषम, विशेष आदि । विचल् (विचलित होना, डिगना), वियुज् (पृथक् होना), विक्री (क्री का विपरीत अर्थ, बेचना), आदि । कभी-कभी यह विशिष्ट अर्थ को बताता है ।

सम्—अच्छा, पूरा, साथ आदि । संगम् (संयुक्त होना), संस्कारः (संशुद्धि, पूर्णता), संस्कृति (परिष्कार, शुद्धि), संहारः (नाश, समेटना), इत्यादि ।

सु—अच्छा, पूर्णतया आदि । यह दुस् के विपरीत अर्थ में आता है । सुकृतम् (अच्छे प्रकार से किया, पुण्य), सुशासित (पूर्णतया शिक्षित, अच्छे शासन से युक्त), इत्यादि । यह बहुत अधिक अर्थ में भी आता है। सुमहत् (बहुत बड़ा) ।

**३६७.** दो या अधिक उपसर्ग भी धातु से पहले इकट्ठे लग सकते हैं । जैसे—अभिनिविश् (निश्चयपूर्वक कार्य में लगना), समुपागम् (अधिक समीप आना), आदि ।

**३६८.** समास में इन उपसर्गों के बाद की क्रिया का लोप हो जाता है—अति, अधि, अनु, अप, अव, अभि, उप, निर्, पर्, प्र और प्रति । अतिक्रान्तो मालाम् अतिमालः, इत्यादि । देखो नियम २३२ ।

**३६९.** इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे शब्द हैं, जो उपसर्गों के तुल्य धातु से पूर्व प्रयुक्त होते हैं । संस्कृत के वैयाकरणों ने इनको गति नाम दिया है । ये विशेष धातुओं से पूर्व ही प्रयुक्त होते हैं । इनमें से कतिपय मुख्यों का ही उल्लेख नीचे किया जाता है ।

(क) अच्छ (ओर, सामने) का गत्यर्थक (जाना अर्थवाली धातुओं) और वद् धातु से पूर्व प्रयोग होता है ।[1] अच्छगस्य—अच्छगत्य (समीप जाकर), अच्छ-पतत् (सामने उड़ता हुआ), अच्छोद्य (सामने जाकर कहकर) ।

(ख) (१) कृ धातु से पहले ये गति-शब्द प्रयुक्त होते हैं—अन्वाजे (निर्बल को बल प्रदान करना), अलम् (अलंकृत करना अर्थ में), ऊरी, उररी, ऊररी (तीनों हाँ, स्वीकृति या प्रतिज्ञा अर्थ में), खाट् तथा अन्य ऐसे अनुकरणवाचक शब्द, सत् (आदरार्थक) और असत् (अनादर अर्थ में), प्राध्वम् (बाँध कर अनु-

१. **अच्छ गत्यर्थवदेषु** ( १-४-६९ )

कूल बनाना), इत्यादि। अन्वाजेकरणम्, ऊरीकरणम्, सत्कृत्य, असत्कृत्य, खाट्-कृत्य, प्राध्वंकरणम् आदि।

(२) कृ धातु से पहले ये गतिशब्द विकल्प से लगते हैं। एक स्थान पर समस्त पद के तुल्य लगेंगे और दूसरे स्थान पर पृथक् रहेंगे। ये हैं—नमः, प्रादुः, मिथ्या, वशे, साक्षात् तथा अन्य कुछ शब्द। नमस्कारः, वशेकृ या वशे कृ (वश में करना), साक्षात्कृ या साक्षात् कृ (साक्षात्कार करना, देखना), इत्यादि।

(ग) अन्तर् इन धातुओं से पहले प्रयुक्त होता है—जाना अर्थ की धातुएँ, धा, भू और अन्य इस प्रकार की धातुएँ। अन्तरित्य (अन्तर्धान होकर), अन्तर्धानम् (छिपना), अन्तर्भूत आदि।

(घ) अस्तम् गत्यर्थक धातुओं से पहले लगता है। अस्तमयः (छिपना), अस्तंगतः (छिप गया), अस्तं + नी (छिपाना, नष्ट करना), आदि।

(ङ) आविः और प्रादुः कृ, अस् और भू धातु से पहले लगते हैं। तिरः भू, धा और अन्य इस प्रकार की धातुओं से पहले लगता है तथा कृ धातु से पहले विकल्प से लगता है। आविष्करणम्, आविर्भवनम् (प्रकट होना), प्रादुर्भूत, आवि-र्भूत (प्रकट हुआ), आदि। तिरोभूय (आँखों से ओझल होकर), तिरोधानम् (आँखों से ओझल होना), आदि।

(च) पुरः कृ, भू, गम् आदि से पहले लगता है। पुरस्कृत (आगे रक्खा गया, अगुआ बनाया गया), पुरोगत (आगे चला), आदि।

**३७०.** कतिपय प्रातिपदिक और विशेषण संज्ञा-शब्द कृ, भू और अस् धातुओं से पहले आते हैं और च्वि-प्रत्ययान्त रूप बनाते हैं। (च्वि प्रत्यय के लिए देखो अध्याय ९, भाग ३)। कृष्ण + करणम् = कृष्णीकरणम्, घन + भूतः = घनीभूतः। ऐसे संज्ञाशब्दों को भी गति कहते हैं।

**३७१.** तद्धित सात् प्रत्ययान्त शब्द भी उपसर्गों के तुल्य धातु से पूर्व प्रयुक्त होते हैं। अग्निसात् + कृ (अग्नि को समर्पण करना), भस्मसात्कृतः (राख बना दिया), राजसाद्भूता (राजा के अधीन हुई), आदि। (देखो अध्याय ९ भाग ३ में सात् प्रत्यय)।

## २. क्रिया-विशेषण (Adverbs)

**३७२.** क्रिया-विशेषण शब्द मूलरूप में होते हैं या संज्ञाशब्दों, सर्वनामों और

संख्या-शब्दों से बने हुए होते हैं। क्रिया-विशेषण कभी-कभी संज्ञा-शब्दों और विशेषणों के नपुं० द्वितीया एक० के रूप होते हैं और कभी अन्य कारकों के एक० के रूप। सत्यम् (वस्तुतः), मृदु (कोमलता से), सुखम् (सुखपूर्वक), लघु (शीघ्रता से), निर्भरम्, अवश्यम्, अत्यन्तम्, बलवत् (बलपूर्वक), भूयः (फिर) आदि। दुःखेन (कष्ट से), सुखेन, धर्मेण (न्यायपूर्वक, धर्म से), दक्षिणेन, उत्तरेण, अशेषेण, चिरेण (देर से), क्षणेन आदि। चिराय, चिररात्राय (बहुत समय से), अर्थाय (लिए), बलात् (बलपूर्वक), हर्षात्, शोकात्, दूरात्, तस्मात्, कस्मात् आदि। चिरात् (चिरकाल से), दूरात्, उत्तरात् आदि। स्थाने (उचित है), दूरे, प्रभाते, प्राह्णे, अग्रे, एकपदे (तुरन्त), सपदि, ऋते, समीपे, अभ्याशे (समीप), आदि।

**सूचना**—विशेषण-शब्दों और संख्या-शब्दों से बने हुए क्रिया-विशेषण यथास्थान दिए गए हैं। संज्ञा-शब्दों से बने क्रिया-विशेषण अध्याय ९ में दिए गए हैं।

**३७३.** संस्कृत में क्रिया-विशेषण के रूप में प्रयुक्त प्रायः सभी शब्द नीचे अकारादि-क्रम से दिए गए हैं:—

अकस्मात्—अचानक, तुरन्त।
अग्रतः—सामने, आगे।
अग्रे—आगे, सामने, पहले।
अचिरम्, अचिरात्, अचिरेण, अचिराय } थोड़े समय पूर्व, शीघ्र ही, जल्दी, अभी।
अजस्रम्—सदा, निरन्तर।
अज्ञानतः—अज्ञान से।
अञ्जसा—ठीक ढंग से, उचित रूप से।
अन्तर् (अन्तः)—अन्दर।
अतः—इसलिए, इससे।
अतीव { अत्यधिक। बढ़कर होना, इस अर्थ में द्वितीया के साथ। अतीवान्यान् भविष्यावः (महाभारत)।
अत्र—यहाँ।
अथ—तब, तदनन्तर।
अथ किम्—हाँ।
अद्धा—वस्तुतः, अवश्य, निश्चय से।
अद्य—आज।
अद्यत्वे—आजकल, अब।
अध, अधः, अधस्तात् } नीचे, नीचे की ओर।
अपरम्—फिर, और भी।
अपरेद्युः—आगामी दिन।
अधुना—अब, इस समय।

अनिशम्—सदा, निरन्तर ।
अन्तः, अन्तरा, अन्तरेण, अन्तरे — बिना, अतिरिक्त, अन्दर, बीच में, मध्य में ।
अन्यच्च, अन्यत् — और भी, फिर, इसके अतिरिक्त ।
अन्यत्र—और जगह, अन्य स्थान पर ।
अन्यथा—नहीं तो, अन्य प्रकार से ।
अभितः—दोनों ओर, समीप में ।
अभीक्ष्णम्—निरन्तर, बार बार ।
अम्—शीघ्रता से, थोड़ा ।
अमा—साथ, साथ में ।
अमुत्र—वहाँ, परलोक में, ऊपर ।
अरम्—शीघ्र ।
अर्वाक्—सामने ।
अलम् — बस, मत, पर्याप्त । इसका पूर्व प्रयोग भी होता है ।
अवः—बिना, बाहर की ओर ।
असकृत्—बार बार ।
असंप्रति, असांप्रतम् — अनुचित, अनुचित ढंग से ।
अह्नाय, आनुषक्, आनुषज् — शीघ्र, तुरन्त । निरन्तर, क्रमशः ।
आरात्—समीप, दूर ।
आर्यहलम् — बलात् । (अष्टा० १-१-४७)
आविः—प्रकट, आँखों के सामने ।

इतः—इधर, अतएव ।
इतस्ततः—इधर, उधर, जहाँ तहाँ ।
इतरम्—फिर ।
इतरेद्युः—दूसरे दिन, गत दिन ।
इति—इस प्रकार, ऐसा ।
इतिह — ऐसा, अवश्य, इस प्रकार, परम्परा के अनुकूल ।
इत्थम्—ऐसे, इस प्रकार ।
इदानीम्—अब, इस समय, अभी ।
इद्धा—वस्तुतः ।
इह—यहाँ ।
ईषत्—थोड़ा, कुछ कम ।
उच्चैः—ऊँचा, जोर से ।
उत्तरम्—तब ।
उत्तरेद्युः—आगामी दिन ।
उपांशु—चुपके, मन ही मन ।
उभयतः—दोनों ओर ।
उभयद्युः, उभयेद्युः — दोनों दिन ।
उषा—प्रातःकाल, उषाकाल में ।
ऋतम्, ऋधक् — वस्तुतः, यथार्थ रूप में ।
ऋते—बिना, अतिरिक्त ।
एकत्र—एक स्थान पर, इकट्ठे ।
एकदा — एक बार, एक समय की बात है ।
एकधा — एक प्रकार से, अकेले, उसी समय ।
एकपदे—सहसा, एकदम ।

एर्तर्हि—अब, इस समय ।
एव—ही ।
एवम्—ऐसा, इस प्रकार ।
ओम्—हाँ, तथास्तु ।
कच्चित्, कच्चन—क्या, मैं समझता हूँ, मैं आशा करता हूँ ।
कथम्—क्यों, कैसे, किस प्रकार ।
कथंचन, कथंचित्—किसी प्रकार से, बड़ी कठिनाई से ।
कथंनाम—कैसे, किस तरह से ।
कदा—कब, किस समय ।
कदाचित्—कभी, किसी समय ।
न कदाचित्—कभी नहीं ।
कम्—पादपूर्त्यर्थक अव्यय ।
कर्हि—कब, किस समय ।
कर्हिचित्—कभी ।
किंकिल—दयनीय, खेद है कि ।
किंच—और भी, फिर आगे ।
किंचन, किंचित्—कुछ थोड़ा, कुछ हद तक ।
किन्तु—परन्तु, फिर भी, तथापि ।
किन्नु—क्या, वस्तुतः क्या ।
किम्—कौन, क्या ।
किमुत—और क्या, अधिक क्या ।
किमुह—क्या, कैसे ।
किंवा—अथवा ।
किंस्वित्—क्या, क्यों, कैसे ।
किल—अवश्य, वस्तुतः ।
किमु—क्या, तब क्या, अधिक क्या ।
कुतः—कहाँ से, कैसे ।
कुत्र—कहाँ, किस स्थान पर ।
कुत्रचित्—कहीं, कहीं पर ।
कुवित्—अधिक, बहुत ।
कुपत्—अच्छे प्रकार से ।
कूषत्—अच्छे ढंग से ।
कृतम्—बस, मत ।
केवलम्—केवल, सिर्फ ।
क्व—कहाँ ।
क्वचित्—कहीं ।
न क्वचित्—कहीं नहीं ।
खलु—अवश्य, निश्चय से ।
चिरम्—देर । इसके चिरेण, चिराय आदि एकवचनान्त रूप क्रिया-विशेषण के तुल्य 'देर' अर्थ में प्रयुक्त होते हैं ।
चिररात्राय—देर, बहुत रात्रियों तक ।
जातु—कभी, संभवतः ।
जोषम्—चुप, शान्त, मौन ।
ज्योक्—शीघ्र ।
झटिति, झगिति—शीघ्र, तुरन्त ।
तत्—तो, अतएव ।
ततः—तब, इसलिए, तत्पश्चात् ।
तत्र—वहाँ, उस विषय में ।
तदा—तब, उस समय, उस विषय में ।
तदानीम्—तब, उस समय ।
तथा—वैसे, उस प्रकार से ।
तथाहि—क्योंकि, जैसे ।

तस्मात्––अतएव, उससे ।
तर्हि––तो, तब, उस समय ।
तावत्––तो ।
तिरस्, तिर्यक्––टेढ़ा, तिरछा, अप्रत्यक्ष रूप से, बुरे ढंग से ।
तूष्णीम्, तूष्णीकम्––चुप, चुपके से, विना हल्ले के या विना बोले ।
तेन––उसने, अतएव ।
दिवा––दिन में ।
दिष्ट्या––भाग्य से, सौभाग्य से ।
दुष्ठु, दुस्समम्––बुरा, दुष्टता से ।
दूरम्––दूर, गहराई से, बहुत ।
दोषा––रात्रि में ।
द्राक्, द्राङ्––शीघ्र, तुरन्त ।
ध्रुवम्––अवश्य ।
नकिम्, नकिः––नहीं, वैसा नहीं ।
नक्तम्––रात्रि में ।
न––नहीं ।
नवरम्––किन्तु ।
नह, नहि––वैसा नहीं, सर्वथा नहीं ।
नाना––अनेक प्रकार से, पृथक् ढंग से, स्पष्टतया ।
नाम––नाम से, वस्तुतः, अवश्य, संभवतः ।
निकषा––समीप ।
निकामम्––बहुत अधिक, अधिक, इच्छानुकूल ।
नूनम्––अवश्य, निश्चय से ।
नो––नहीं ।
परम्––तब, ऊपर, बाहर ।
परश्वः––आने वाला परसों ।
परितः––चारों ओर, सब ओर ।
परेद्यवि, परेद्युः––दूसरे दिन, आगामी कल ।
पर्याप्तम्––पर्याप्त, इच्छानुकूल ।
पशु––अच्छा, देखो ।
पश्चात्––पीछे, बाद में, अन्त में ।
पुनः––फिर ।
पुनःपुनः––वारवार ।
पुरः, पुरतः, पुरस्तात्––सामने ।
पुरा––पहले, प्राचीन समय में ।
पूर्वतः––पूर्व की ओर, पहले, सामने ।
पूर्वेद्युः––पहले दिन, विगत कल ।
पृथक्––अलग, अलग अलग ।
प्रकामम्, प्रकामतः––अत्यधिक, इच्छानुसार, आनन्द से ।
प्रगे––प्रातःकाल के समय ।
प्रतान्––विस्तार से ।
प्रताम्, प्रशाम्––थका हुआ ।
प्रतिदिनम्––प्रतिदिन, रोज ।
प्रत्युत––अपितु, इसके विपरीत ।

प्रवाह्निका } उसी समय ।
प्रवाह्नुकम् }

प्रसह्य—बलात्, अत्यधिक, बहुत ।

प्राक्—पहले, पूर्व की ओर ।

प्रातः—सवेरे ।

प्राध्वम्—कुटिलता से, अनुकूलता में ।

प्रायः—प्रायः, अकसर ।

प्राह्णे—दोपहर में ।

प्रेत्य—मरकर ।

बलवत् } बलात्, बहुत अधिक ।
बलात् }

बहिः—बाहर, सिवाय ।

भाजक्—शीघ्रता से, तुरन्त ।

भूयः—फिर, बारबार, अत्यधिक ।

भृशम्—बहुत अधिक, बार बार ।

मंक्षु—शीघ्र, तुरन्त ।

मनाक्—थोड़ा, कम, धीरे धीरे ।

माकिम् } सिवाय ।
माकिः }

माचिरम्—शीघ्र, अविलम्ब ।

मिथः } परस्पर, गुप्त रूप से ।
मिथो }

मिथ्या—झूठ, व्यर्थ, निरर्थक ।

मुधा—व्यर्थ, निरर्थक, निष्फल ।

मुहुः—बार बार, प्रायः ।

मृषा—झूठ, व्यर्थ ।

यत्—कि ।

यतः—क्योंकि, इसलिए कि, जहाँ से ।

यत्र—जहाँ, जिस स्थान पर ।

यथा—जैसे ।

यथाकथा—किसी प्रकार से ।

यथाक्रमम्—क्रम के अनुसार ।

यथातथा { निर्धारित रूप से, नियमित ढंग से ।

यदा—जब ।

यावत्[1]—जितना, जब तक ।

युक्—बुरे ढंग से ।

युगपत्—तुरन्त, उसी क्षण ।

युत्—बुरे ढंग से ।

वत्—तुल्य ।

वाव—केवल ।

विना—बिना, अतिरिक्त ।

विपु—अत्यधिक ।

विहायसा { ऊपर, आकाश में, आकाश-मार्ग से ।

वै—अवश्य, निश्चय से ।

शनैः—धीरे से ।

शश्वत्—सदा ।

शुकम्—शीघ्रता से ।

सकृत्—एक बार ।

संक्षु—शीघ्रता से, तुरन्त ।

सजुष्—साथ में ।

सत्—अच्छा ।

सततम्—सदा ।

---

१. लट् लकार के साथ पुरा और यावत् का पहले प्रयोग होता है तो इनका भविष्य अर्थ होता है ।

सदा—सदा, सर्वदा ।
सद्यः—तुरन्त ।
सनत्, सना, सनात्—सदा, निरन्तर ।
सनुतः—चोरी से, चुपके से, छिपा कर ।
सपदि—तुरन्त, उसी क्षण ।
समन्ततः—चारों ओर ।
समम्—समान रूप से ।
समया—समीप ।
समीपम्, समीपे—समीप, पास में ।
समीचीनम्—ठीक, उचित रूप से ।
समुपजोषम्—आनन्द से, हर्ष से ।
सम्प्रति—अब ।
सम्मुखम्—सामने, आमने सामने ।
सम्यक्—ठीक, ठीक ढंग से ।
सर्वतः—सब ओर से, पूर्णतया ।
सर्वत्र—सभी जगह ।
सर्वदा—सदा ।
सह—साथ ।

सहसा—सहसा, एकदम, अचानक ।
सहितम्—सहित, साथ ।
साकम्—साथ ।
साक्षात्—सामने, प्रत्यक्ष, व्यक्तिगत रूप में ।
साचि—टेढ़ेपन से, तिरछेपन से ।
सार्धम्—साथ ।
सामि—आधा ।
साम्प्रतम्—अब, इस समय, उचित ढंग से ।
सायम्—सायंकाल के समय ।
सुकम्—बहुत अधिक ।
सुधा—व्यर्थ, निरर्थक ।
सुष्ठु—ठीक, अच्छे ढंग से ।
स्वयम्—अपने आप, स्वयम् ।
हि—क्योंकि, वस्तुतः, अवश्य ।
हिरुक्—विना, अलावा ।
हेतोः, हेतौ—क्योंकि ।
ह्यः—बीता हुआ कल ।

## ३. निपात (Particles)

**३७४.** निपात पाद-पूर्त्यर्थक होते हैं या अर्थ के बल को बढ़ाने वाले होते हैं । इनमें से कुछ ये हैं—किल, खलु, च, तु, नु, वै, हि आदि ।

**३७५.** निम्नलिखित निपात कुछ विशिष्ट शब्दों के साथ प्रयुक्त होते हैं :—

अद्-अद्भुतम् (आश्चर्य) ।

का—कापुरुषः (कायर), कोष्णम् (गुनगुना, कम गर्म), काजलम् (थोड़ा जल) ।

कु—कुकृत्यम् (कुकर्म) ।

चन, चित्—किंचित्, किंचन, कश्चित्, कश्चन आदि ।

न—न को प्रायः अ या अन् हो जाता है। हलादि शब्द से पूर्व न को अ होता है और अजादि शब्द से पूर्व अन्। नञ् (न) के ६ अर्थ हैं[१]—(१) सादृश्य (समानता या तुल्यता)। जैसे—अब्राह्मणः (ब्राह्मण नहीं, परन्तु ब्राह्मण के सदृश यज्ञोपवीत आदि धारण करने वाला। अतः क्षत्रिय या वैश्य)। (२) अभाव (न होना, वस्तु की सत्ता का अभाव)। अज्ञानम् (ज्ञान का अभाव)। (३) अन्यत्व (दूसरी वस्तु होना)। जैसे—अयम् अपटः (यह पट अर्थात् वस्त्र से भिन्न वस्तु है, अर्थात् घट आदि है)। (४) अल्पता (कम होना, न्यून होना)। जैसे—अनुदरा कन्या (पतली कमर वाली लड़की)। (५) अप्राशस्त्य (अनुचित, बुरा आदि)। अकार्य (अनुचित कार्य), अकालः (बुरा समय, प्रतिकूल समय)। (६) विरोध (विरुद्ध अर्थ)। अनीतिः (अनैतिकता), असुरः (देवों का विरोधी, अर्थात् राक्षस)।

स्म—यह साधारणतया पाद-पूरक के ढंग से प्रयुक्त होता है। लट् लकार वाले रूप के साथ प्रयुक्त होने पर यह भूतकाल का अर्थ देता है। जैसे—भवति स्म = अभवत् (होता था)। मा निपात के साथ प्रयुक्त होने पर यह अर्थोपकारक का कार्य करता है। जैसे—मा स्म शोके मनः कृथाः, इत्यादि।

स्वित्—यह किम् तथा अन्य अव्ययों के बाद लगता है और प्रश्नबोधक या सन्देहसूचक अर्थ बताता है। किंस्वित्, आहोस्वित् आदि।

स्वी—यह कृ धातु और कृ धातु से बने रूपों के साथ स्वीकृतिसूचक अर्थ में उपसर्ग के तुल्य पहले प्रयुक्त होता है। स्वीकारः, स्वीकृतम् इत्यादि।

### ८. संयोजक अव्यय (Conjunctions)

**३७६.** संस्कृत में मुख्य संयोजक अव्यय ये हैं :—

(क) संयोजक (Copulative)—अथ, अथो, उत, च, किंच, इत्यादि।

(ख) वियोजक (Disjunctive)—वा, वा...वा, इत्यादि।

(ग) विकल्प-सूचक (Adversative)—अथवा, तु, किन्तु, किंवा, इत्यादि।

(घ) हेत्वर्थक (Conditional)—चेत्, यदि, यद्यपि, नेत्, नो चेत्, वेट् (यह यज्ञिय क्रियाओं में प्रयुक्त होता है), इत्यादि।

---

**१. नञ् के ६ अर्थ इस श्लोक में दिए गये हैं :—**
**तत्सादृश्यमभावश्च तदन्यत्वं तदल्पता।**
**अप्राशस्त्यं विरोधश्च नञर्थाः षट् प्रकीर्तिताः॥**

(ङ) कारणबोधक (Causal)—हि, तत्, तेन, इत्यादि ।

(च) प्रश्नबोधक (Interrogative)—आहो, आहोस्वित्, उत्, उताहो, किम्, किंनु, किमुत, किंस्वित्, ननु, नवा, नु, इत्यादि ।

(छ) स्वीकृतिसूचक और निषेधार्थक (Affirmatives and Negatives)—अंग, अथ किम्, आम्, अद्धा, इत्यादि ।

(ज) समय-बोधक (Conjunctions of time)—यावत्-तावत्, यदा, तदा, आदि ।

(झ) अथ प्रारम्भ-सूचक अव्यय है और इति समाप्ति-सूचक ।

## ५. विस्मय-सूचक अव्यय (Interjections)

**३७७.** प्रो० बेन (Bain) का कथन है कि—विस्मय-सूचक अव्यय वस्तुतः भाषणावयवों में नहीं हैं, क्योंकि ये वाक्य-रचना में अन्तर्गत नहीं होते हैं, ये आकस्मिक भावोद्रेक के कारण सहसा उच्चरित विस्मय-सूचक शब्द हैं । हृदय के भावोद्रेक की विभिन्न अवस्थाओं के सूचक विभिन्न शब्द हैं ।

(क) ये हैं—आ, इ, उ, ए, ऐ, ओ, अह, अहह, अहो, वत, ह, हा, हाहा, आदि । ये आश्चर्य, खेद या दुःख आदि के बोधक हैं ।

(ख) किम्, धिक् आदि । ये घृणा-सूचक हैं ।

(ग) हा, वत आदि । ये शोक, दुःखादि के सूचक हैं ।

(घ) हा, हाहा, हन्त । ये दुःख-बोधक हैं ।

(ङ) आ, हम्, हुम् आदि । ये क्रोध और घृणा आदि के सूचक हैं ।

(च) हन्त आदि । ये हर्ष-सूचक हैं ।

(छ) कुछ विस्मय-सूचक अव्यय संबोधन या पुकारने के अर्थ में आते हैं । इनमें से कुछ ये हैं :—

(१) इनमें से कुछ आदर का भाव प्रकट करते हैं। जैसे—अंग, अये, अहो, वत, उ, ए, ओ, प्याट्, भोः, हंहो, हे, है, हो, आदि ।

(२) कुछ घृणा या अनादर का भाव प्रकट करते हैं । जैसे—अंग, अरे, अवे, रे, रेरे, अरेरे, आदि ।

(३) श्रौषट्, वौषट् और वषट्, ये देवों और पितरों को आहुति आदि देने में प्रयुक्त होते हैं ।

(४) स्वाहा देवों के लिए और स्वधा पितरों को आहुति देने में प्रयुक्त होता है।

## अध्याय १२

# तिङन्त-प्रकरण (Conjugation of Verbs)

३७८. (क) संस्कृत में दो प्रकार की क्रियाएँ होती हैं--मूल धातु वाली और प्रत्ययान्त धातु वाली ।

(ख) संस्कृत में ६ काल (Tenses) और ४ अर्थ (Moods) होते हैं। वे ये हैं :--

| काल (Tense)-- | पारिभाषिक नाम[1] |
|---|---|
| वर्तमान (Present)-- | लट् |
| भूत (Aorist)-- | लुङ् |
| अनद्यतन भूत (Imperfect)-- | लङ् |
| परोक्षभूत (Perfect)-- | लिट् |
| अनद्यतन भविष्यत् (I Future)-- | लुट् |
| भविष्यत् (II Future)-- | लृट् |
| **अर्थ (Moods)--** | **पारिभाषिक नाम** |
| आज्ञा (mplerative)-- | लोट् |
| विधि (Potential)-- | विधिलिङ् |
| आशीः (Benedictive)-- | आशीर्लिङ् |
| संकेत या हेतुहेतुमद् (ConditionaI)-- | लृङ् |

---

१. ये पारिभाषिक नाम निम्नलिखित कारिका में दिए गए हैं :--

लट् वर्तमाने लेट् वेदे भूते लुङ्लङ्लिटस्तथा ।
विध्याशिषोस्तु लिङ्लोटौ लुट् लृट् लृङ् च भविष्यति ॥

पाणिनि ने जो ये पारिभाषिक नाम दिए हैं, ये कृत्रिम हैं। अन्य वैयाकरणों ने अन्य नाम दिए हैं। १० लकारों को औरों ने ये नाम दिए हैं-- भवति ( वृत्तिः ), अद्यतनी, ह्यस्तनी, परोक्षा, श्वस्तनी, भविष्यन्ती, पञ्चमी, सप्तमी, क्रियातिपत्ति और आशीः । (Apte's Guide) ।

लेट् (Subjunctive) का प्रयोग वेद में ही मिलता है, अतः इसको वैदिक लेट् (Vedic Subjunctive) कहा गया है।

**सूचना**—संस्कृत वैयाकरणों ने इन १० कालों और अर्थों को पारिभाषिक नाम १० लकार दिया है।

(ग) तीन प्रकार के प्रयोग (Voices) होते हैं—(१) कर्तरि प्रयोग या कर्तृवाच्य (Active Voice), जैसे—रामः सत्यं भाषते, (२) कर्मणि प्रयोग या कर्मवाच्य (Passive Voice), जैसे—हरिणा फलं भक्ष्यते, (३) भावे प्रयोग या भाववाच्य (Impersonal Construction), जैसे—रामेण गम्यते।

(घ) दो प्रकार के तिङ् प्रत्यय हैं—(१) परस्मैपद, (२) आत्मनेपद। कुछ धातुओं में केवल परस्मैपदी तिङ् प्रत्यय लगते हैं और कुछ में केवल आत्मनेपदी तिङ् प्रत्यय। कुछ धातुएँ ऐसी भी हैं, जिनमें दोनों प्रकार के तिङ् प्रत्यय लगते हैं। कुछ धातुएँ मूल रूप में परस्मैपदी हैं, परन्तु बाद में आत्मनेपदी हो जाती हैं, इसी प्रकार आत्मनेपदी धातुएँ भी परस्मैपदी हो जाती हैं। यदि उनसे पूर्व कुछ विशेष उपसर्ग लग जाते हैं या कोई विशेष अर्थ कहा जाता है। इनका आगे अलग अध्याय में विवेचन किया जायगा।

**३७९.** मूल धातुएँ वे हैं जो मूलरूप में धातुपाठ में या भाषा में विद्यमान हैं। प्रत्ययान्त धातुएँ वे हैं, जो मूल धातु से या किसी संज्ञा शब्द से कुछ प्रत्यय करके बनाई जाती हैं।

**३८०.** संस्कृत में प्रत्येक धातु के, चाहे वह मूल रूप में हो या प्रत्ययान्त धातु हो, दसों लकारों में रूप चलते हैं।

(क) सकर्मक धातुओं के कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य में रूप चलते हैं तथा अकर्मक धातुओं के कर्तृवाच्य और भाववाच्य में।

**३८१.** प्रत्येक लकार में तीन वचन होते हैं—एकवचन, द्विवचन और बहुवचन तथा तीन पुरुष होते हैं—प्रथम पुरुष या अन्य पुरुष (III Person), मध्यम पुरुष (II Person) और उत्तम पुरुष (I Person)।

**३८२.** निम्नलिखित ४ लकारों में धातुओं में कुछ परिवर्तन होते हैं और उनमें कुछ विकरण लगते हैं—लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ्। अतएव इन

चार लकारों को सार्वधातुक[1] (Conjugational) कहा जाता है और शेष को आर्धधातुक (Non–Conjugational)। सार्वधातुक में धातु के विशेष ढंग से बने हुए रूप के साथ प्रायः विकरण और तिङ प्रत्यय लगते हैं तथा आर्धधातुक लकारों में मूल धातु से ही तिङ आदि होते हैं।

(क) धातु के जिस स्वरूप से तिङ प्रत्यय होते हैं, उस धातु-स्वरूप को अंग (Base) कहते है।

**३८३**. जो धातुएँ उभयपदी हैं अर्थात् जिनसे परस्मैपद और आत्मनेपद दोनों होत हैं, उनके दोनों पदों में निम्नलिखित अन्तर होता है। परस्मैपद का अर्थ है कि कार्य दूसरे के लिए किया गया है (परस्मै = दूसरे के लिए)। जहाँ पर फल का भोक्ता दूसरा है, वहाँ पर परस्मैपद होगा। जहाँ पर फल का भोक्ता वह व्यक्ति स्वयं है, वहाँ पर आत्मनेपद होगा। आत्मनेपद का अर्थ है कि कार्य अपने लिए किया गया है (आत्मने = अपने लिए)। अतः देवदत्तः यजति का अर्थ होगा—देवदत्त दूसरे (अर्थात् यजमान) के लिए यज्ञ करता है और देवदत्तः यजते का अर्थ होगा—देवदत्त अपने लिए यज्ञ करता है।

**सूचना**—इस नियम का साधारणतया संस्कृत-साहित्य में पालन नहीं किया गया है।

---

१. पाणिनि ने वस्तुतः सार्वधातुक नाम सभी तिङ प्रत्ययों को दिया है, जो धातु के बाद लगते हैं, लिट् और आशीर्लिङ के तिङ प्रत्ययों को छोड़कर। इसी प्रकार सभी शित् (जिनमें से श् हटा है) विकरणों और प्रत्ययों को भी सार्वधातुक कहते हैं। साधारणतया सार्वधातुक प्रत्यय ये हैं—लिट् और आशीर्लिङ को छोड़कर सभी लकारों के तिङ प्रत्यय, सभी शित् (जिनमें से श् हटा है) विकरण, तनादिगण और चुरादिगण को छोड़कर सभी गणों के विकरण, शतृ (अत्) और शानच् (आन) प्रत्यय। आर्धधातुक प्रत्यय ये हैं—तनादि और चुरादिगण के विकरण, प्रेरणार्थक प्रत्यय, कुछ नामधातु प्रत्यय, लुट् और लृट् में जुड़ने वाले स्य और ता, लुङ और सन्नन्त में जुड़ने वाले प्रत्यय स् और स, कर्मवाच्य और यङन्त में जुड़ने वाले य प्रत्यय, भूत अर्थ वाले क्त, क्तवतु प्रत्यय, तुमुन्, क्त्वा, ल्यप् तथा अन्य कुछ प्रत्यय।

### भाग १

# कर्तृवाच्य ( Active Voice )

## १. सार्वधातुक लकार ( लट्, लोट्, लङ, विधिलिङ )

**३८४.** विविध विकरणों के आधार पर संस्कृत वैयाकरणों ने धातुओं को १० गणों में बाँटा है। प्रत्येक गण का नाम उस गण में आने वाली प्रथमधातु के नाम पर रक्खा गया है। गणों की संख्याएँ और नाम ये हैं––(१) भ्वादि, (२) अदादि, (३) जुहोत्यादि, (४) दिवादि, (५) स्वादि, (६) तुदादि, (७) रुधादि, (८) तनादि, (९) क्र्यादि और (१०) चुरादि ।

**३८५.** प्रथम ९ गणों की तथा दशमगण की कुछ धातुएँ मूल धातुएँ (Primitive Roots) हैं। दशमगण की प्रायः सभी धातुएँ, णिजन्त धातुएँ (Causals), सन्नन्त धातुएँ (Desideratives), यङन्त धातुएँ (Frequentatives), नामधातुएँ (Denominatives) और गुप्, धूप्, विच्छ्, पण्, पन्, ऋत् और कम् धातुएँ, ये प्रत्ययान्त धातुएँ (Derivative Roots) मानी गई हैं।

**३८६.** उपर्युक्त दस गणों को सुविधा के लिए पुनः दो भागों में विभक्त किया जा सकता है––(१) गण १, ४, ६ और १०, (२) शेष सभी गण। भाग १ में अंग (Base) अकारान्त होता है और उसमें पुनः कोई परिवर्तन नहीं होता है। भाग २ में अंग अकारान्त नहीं होता है और उसमें परिवर्तन होता रहता है।

### (१) वर्ग १

**अपरिवर्तनशील अंग (Base) वाली धातुएँ ।**

**( गण १, ४, ६ और १० की धातुएँ )**

**३८७.** तिङ प्रत्यय––

लट् (Present)

| | परस्मैपद | | | आत्मनेपद | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | एक० | द्वि० | वहु० | एक० | द्वि० | वहु० |
| प्र०पु० | ति | तस् | अन्ति | ते | इते | अन्ते |

| | एक० | द्वि० | बहु० | एक० | द्वि० | बहु० |
|---|---|---|---|---|---|---|
| म०पु० | सि | थस् | थ | से | इथे | ध्वे |
| उ०पु० | नि | वस् | मस् | इ | वहे | महे |

लङ् (Imperfect)

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | त् | ताम् | अन् | त | इताम् | अन्त |
| म० | स् | तम् | त | थास् | इथास् | ध्वम् |
| उ० | अम् | व | म | इ | वहि | महि |

लोट् (Imperative)

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | तु[1] | ताम् | अन्तु | ताम् | इताम् | अन्ताम् |
| म० | –[1] | तम् | त | स्व | इथाम् | ध्वम् |
| उ० | आनि | आव | आम | ऐ | आवहै | आमहै |

विधिलिङ् (Potential)

| | परस्मै० | | | | आत्मने० | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | ईत् | ईताम् | ईयु: | ईत | ईयाताम् | ईरन् |
| म० | ई: | ईतम् | ईत | ईथा: | ईयाथाम् | ईध्वम् |
| उ० | ईयम् | ईव | ईम | ईय | ईवहि | ईमहि |

**सूचना**—जिन प्रत्ययों के प्रारम्भ में स्वर हैं, उन्हें अजादि प्रत्यय कह सकते हैं और जिनके प्रारम्भ में व्यंजन हैं, उन्हें हलादि प्रत्यय कह सकते हैं ।

भ्वादिगण की धातुओं के अंग (Base) इस प्रकार बनते हैं :—

**३८८.** भ्वादिगण या प्रथमगण की धातुओं से तिङ प्रत्ययों से पूर्व शप् (अ) विकरण लगता है ।[2] इस अ से पहले धातु के अन्तिम स्वरों को और उपधा के ह्रस्व स्वरों को गुण हो जाता है । जैसे—

बुध् + ति = बुध् + अ + ति = बोध् + अ + ति = बोधति ।

---

१. आशीर्वाद अर्थ होने पर लोट् प्र० पु० और म० पु० एक० में तात् प्रत्यय भी लगता है ।

२. कर्तरि शप् ( ३-१-६८ ), दिवादिभ्यः श्यन् ( ३-१-६९ ), तुदादिभ्यः शः ( ३-१-७७ ) । संस्कृत में लगभग २२०० धातुएँ हैं और उनमें से लगभग आधी ( १०७६ ) धातुएँ भ्वादिगण में हैं ।

जि+अ+ति=जे+अ+ति[1]=जयति, इत्यादि ।

**३८९.** दिवादिगण या चतुर्थगण की धातुओं से तिङ् प्रत्ययों से पूर्व श्यन् (य) विकरण लगता है । धातु के स्वरों में कोई परिवर्तन नहीं होता है। जैसे—कुप्+ति=कुप्+य+ति=कुप्यति ।

**३९०.** तुदादिगण या षष्ठ गण की धातुओं से तिङ् प्रत्ययों से पूर्व श (अ) विकरण लगता है । इससे पूर्व उपधा के स्वरों में कोई परिवर्तन नहीं होता है । धातु के अन्तिम इ ई को इय्, उ ऊ को उव्, ऋ को रिय् और ॠ को इर् हो जाते हैं । जैसे—क्षिप्+ति=क्षिप्+अ+ति=क्षिपति । धु+ति=धुव्+अ+ति=धुवति। रि+अ+ति=रियति। मृ+अ+ते=म्रियते। गॄ+अ+ति=गिर्+अ+ति=गिरति, इत्यादि ।

**३९१.** चुरादिगण या दशमगण की धातुओं से तिङ् प्रत्यय से पूर्व अय विकरण लगता है ।[2] इस अय से पहले उपधा के ह्रस्व स्वरों (अ को छोड़कर) को गुण हो जाता है तथा अन्तिम स्वरों को और उपधा के अ को वृद्धि हो जाती है। यदि उपधा के अ के बाद संयुक्त वर्ण होगा तो उसे वृद्धि नहीं होगी । जैसे—चुर्+ति=चुर्+अय+ति=चोर्+अय+ति=चोरयति । भू+अय + ति=भव्+अय + ति= भाव् +अय + ति = भावयति । तड्+अय+ति=ताड्+अय+ति=ताडयति । किन्तु दण्ड्+अय+ति=दण्डयति ही होगा ।

**३९२.** (क) सार्वधातुक लकारों में पूर्ववर्ती अ को आ हो जाएगा यदि बाद में यञ् (अन्तःस्थ, वर्ग के पंचमवर्ण, झ या भ) आदि वाले तिङ् प्रत्यय होंगे तो ।[3] जैसे—नयामि आदि ।

(ख) अ आदि वाला प्रत्यय बाद में होगा तो अन्तिम अ का लोप हो जाएगा । नय+अन्ति=नयन्ति, इत्यादि ।

---

१. देखो नियम २४ ।

२. इस गण में कुछ मूल धातुएँ भी हैं। इस गण की प्रायः सभी धातुएँ प्रत्ययान्त धातुएँ हैं। इनके अतिरिक्त सभी णिजन्त धातुएँ और कुछ नामधातुएँ भी इस गण की श्रेणी में आती हैं ।

३. अतो दीर्घो यञि ( ७-३-१०१ ) ।

भ्वादिगण

**नी—उभयपदी ( ले जाना )**

लट्

| | परस्मै० | | | आत्मने० | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | नयति | नयतः | नयन्ति | नयते | नयेते | नयन्ते |
| म० | नयसि | नयथः | नयथ | नयसे | नयेथे | नयध्वे |
| उ० | नयामि | नयावः | नयामः | नये | नयावहे | नयामहे |

लङ्

**३९३.** लङ् लकार में धातु से पूर्व अ लग जाता है। यदि धातु अजादि है तो धातु से पूर्व आ लगेगा।[1] इस आ को अगले स्वर के साथ मिलकर वृद्धि अक्षर हो जाता है। जैसे—आ + इख् + त् = आ + इख् + अ + त् = ऐखत्। इसी प्रकार ईक्ष्–ऐक्षत, उक्ष्–औक्षत्, ऊह्–औहत्, ऋच्छ्–आर्च्छत् इत्यादि।

(क) यदि धातु से पहले कोई उपसर्ग है तो अ या आ धातु से ही पहले लगेगा, उपसर्ग से पहले नहीं। जैसे—प्र + हृ—प्राहरत्।

| | बुध् (जानना) पर० | | | ईक्ष् (देखना) आत्मने० | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | अबोधत् | अबोधताम् | अबोधन् | ऐक्षत | ऐक्षेताम् | ऐक्षन्त |
| म० | अबोधः | अबोधतम् | अबोधत | ऐक्षथाः | ऐक्षेथाम् | ऐक्षध्वम् |
| उ० | अबोधम् | अबोधाव | अबोधाम | ऐक्षे | ऐक्षावहि | ऐक्षामहि |

नी

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | अनयत् | अनयताम् | अनयन् | अनयत | अनयेताम् | अनयन्त |
| म० | अनयः | अनयतम् | अनयत | अनयथाः | अनयेथाम् | अनयध्वम् |
| उ० | अनयम् | अनयाव | अनयाम | अनये | अनयावहि | अनयामहि |

लोट्

| | भू (होना) पर० | | | लभ् (पाना) आत्मने० | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | भवतु / भवतात् | भवताम् | भवन्तु | लभताम् | लभेताम् | लभन्ताम् |
| म० | भव / भवतात् | भवतम् | भवत | लभस्व | लभेथाम् | लभध्वम् |

१. आडजादीनाम् ( ६-४-७२ )।

| उ० | भवानि | भवाव | भवाम | लभै | लभावहै | लभामहै |
|---|---|---|---|---|---|---|

**विधिलिङ्**

| स्मृ (स्मरण करना) पर० | | | | मुद् (प्रसन्न होना) आत्मने० | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | स्मरेत् | स्मरेताम् | स्मरेयुः | मोदेत | मोदेयाताम् | मोदेरन् |
| म० | स्मरेः | स्मरेतम् | स्मरेत | मोदेथाः | मोदेयाथाम् | मोदेध्वम् |
| उ० | स्मरेयम् | स्मरेव | स्मरेम | मोदेय | मोदेवहि | मोदेमहि |

## दिवादिगण (चतुर्थ गण)

तुष् (संतुष्ट होना) पर०      युध् (लड़ना) आत्मने०

**लट्**

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | तुष्यति | तुष्यतः | तुष्यन्ति | युध्यते | युध्येते | युध्यन्ते |
| म० | तुष्यसि | तुष्यथः | तुष्यथ | युध्यसे | युध्येथे | युध्यध्वे |
| उ० | तुष्यामि | तुष्यावः | तुष्यामः | युध्ये | युध्यावहे | युध्यामहे |

**लङ्**

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | अतुष्यत् | अतुष्यताम् | अतुष्यन् | अयुध्यत | अयुध्येताम् | अयुध्यन्त |
| म० | अतुष्यः | अतुष्यतम् | अतुष्यत | अयुध्यथाः | अयुध्येथाम् | अयुध्यध्वम् |
| उ० | अतुष्यम् | अतुष्याव | अतुष्याम | अयुध्ये | अयुध्यावहि | अयुध्यामहि |

**लोट्**

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | तुष्यतु[1] | तुष्यन्ताम् | तुष्यन्तु | युध्यताम् | युध्येताम् | युध्यन्ताम् |
| म० | तुष्य[1] | तुष्यतम् | तुष्यत | युध्यस्व | युध्येथाम् | युध्यध्वम् |
| उ० | तुष्याणि | तुष्याव | तुष्याम | युध्यै | युध्यावहै | युध्यामहै |

**विधिलिङ्**

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | तुष्येत् | तुष्येताम् | तुष्येयुः | युध्येत | युध्येयाताम् | युध्येरन् |
| म० | तुष्येः | तुष्येतम् | तुष्येत | युध्येथाः | युध्येयाथाम् | युध्येध्वम् |
| उ० | तुष्येयम् | तुष्येव | तुष्येम | युध्येय | युध्येवहि | युध्येमहि |

## तुदादिगण ( षष्ठ गण )

**क्षिप् (फेंकना) उभयपदी**

| पर० | | | लट् | आ० | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | क्षिपति | क्षिपतः | क्षिपन्ति | क्षिपते | क्षिपेते | क्षिपन्ते |

१. यहाँ से आगे तात् वाला वैकल्पिक रूप नहीं दिया जाएगा। आशीर्वाद अर्थ होने पर अंग से तात् प्रत्यय लगाकर रूप सरलता से बनाया जा सकता है।

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| म० | क्षिपसि | क्षिपथः | क्षिपथ | क्षिपसे | क्षिपेथे | क्षिपध्वे |
| उ० | क्षिपामि | क्षिपावः | क्षिपामः | क्षिपे | क्षिपावहे | क्षिपामहे |

लङ्

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | अक्षिपत् | अक्षिपताम् | अक्षिपन् | अक्षिपत | अक्षिपेताम् | अक्षिपन्त |
| म० | अक्षिपः | अक्षिपतम् | अक्षिपत | अक्षिपथाः | अक्षिपेथाम् | अक्षिपध्वम् |
| उ० | अक्षिपम् | अक्षिपाव | अक्षिपाम | अक्षिपे | अक्षिपावहि | अक्षिपामहि |

लोट्

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | क्षिपतु | क्षिपताम् | क्षिपन्तु | क्षिपताम् | क्षिपेताम् | क्षिपन्ताम् |
| म० | क्षिप | क्षिपतम् | क्षिपत | क्षिपस्व | क्षिपेथाम् | क्षिपध्वम् |
| उ० | क्षिपाणि[1] | क्षिपाव | क्षिपाम | क्षिपै | क्षिपावहै | क्षिपामहै |

विधिलिङ्

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | क्षिपेत् | क्षिपेताम् | क्षिपेयुः | क्षिपेत | क्षिपेयाताम् | क्षिपेरन् |
| म० | क्षिपेः | क्षिपेतम् | क्षिपेत | क्षिपेथाः | क्षिपेयाथाम् | क्षिपेध्वम् |
| उ० | क्षिपेयम् | क्षिपेव | क्षिपेम | क्षिपेय | क्षिपेवहि | क्षिपेमहि |

## चुरादिगण ( दशम गण )

### चुर् (चुराना) उभयपदी

| | पर० | | लट् | | आ० | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | चोरयति | चोरयतः | चोरयन्ति | चोरयते | चोरयेते | चोरयन्ते |
| म० | चोरयसि | चोरयथः | चोरयथ | चोरयसे | चोरयेथे | चोरयध्वे |
| उ० | चोरयामि | चोरयावः | चोरयामः | चोरये | चोरयावहे | चोरयामहे |

लङ्—पर०

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | अचोरयत् | अचोरयताम् | अचोरयन् |
| म० | अचोरयः | अचोरयतम् | अचोरयत |
| उ० | अचोरयम् | अचोरयाव | अचोरयाम |

लङ्—आ०

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | अचोरयत | अचोरयेताम् | अचोरयन्त |
| म० | अचोरयथाः | अचोरयेथाम् | अचोरयध्वम् |

१. न् के स्थान पर ण् के लिए देखो नियम ४१ ।

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| उ० | अचोरये | | | अचोरयावहि | | अचोरयामहि |
| | पर० | | लोट् | | | आ० |
| प्र० | चोरयतु | चोरयताम् | चोरयन्तु | चोरयताम् | चोरयेताम् | चोरयन्ताम् |
| म० | चोरय | चोरयतम् | चोरयत | चोरयस्व | चोरयेथाम् | चोरयध्वम् |
| उ० | चोरयाणि | चोरयाव | चोरयाम | चोरयै | चोरयावहै | चोरयामहै |
| | पर० | | विधिलिङ् | | | आ० |
| प्र० | चोरयेत् | चोरयेताम् | चोरयेयुः | चोरयेत | चोरयेयाताम् | चोरयेरन् |
| म० | चोरयेः | चोरयेतम् | चोरयेत | चोरयेथाः | चोरयेयाथाम् | चोरयेध्वम् |
| उ० | चोरयेयम् | चोरयेव | चोरयेम | चोरयेय | चोरयेवहि | चोरयेमहि |

**सूचना**—अन्य धातुओं के रूप इसी प्रकार बनाने चाहिएँ।

**३६४**. धातु के उपधा या अन्त में दीर्घ ॠ होगा और उसे गुण या वृद्धि यदि नहीं होता है तो उस ॠ के स्थान पर इर् हो जाता है।[1] यदि ॠ से पहले पवर्ग या व् होता है तो उसे उर् हो जाएगा। इस इर् और उर् के इ और उ को दीर्घ हो जाएगा यदि बाद में कोई व्यंजन होगा तो। जैसे—जॄ (४ पर०, वृद्ध होना)—जीर्यति, अजीर्यत्, इत्यादि। कॄ (६ पर०)—किरति, अकिरत्, इत्यादि। किर् के बाद स्वर अ है, अतः इ को दीर्घ नहीं हुआ। कॄत् (१० उ०)—कीर्तयति-ते, अकीर्तयत्-त, इत्यादि।

**३६५**. र् या व् अन्त वाली धातु की उपधा के इ, उ, ऋ या लृ को दीर्घ हो जाता है, यदि उसके बाद कोई व्यंजन हो तो।[2] जैसे—उर्द् (१ आ०, मापना, खेलना)—ऊर्दते। इसी प्रकार कुर्द्, खुर्द्, गुर्द् (सभी आ० हैं और खेलना अर्थ है), हुर्छ् (दुष्टता या दुर्जनता करना), मुर्छ् (मूर्छित होना), स्फुर्छ् (फैलाना, भूलना), स्फुर्ज् (गरजना, चमकना), उर्व्, तुर्व्, थुर्व्, दुर्व्, धुर्व् (सभी हिंसार्थक हैं), गुर्व् (यत्न करना), मुर्व् आदि (ये सभी पर० हैं)। ये सभी भ्वादिगणी धातुएँ हैं। इनकी उपधा के स्वर को दीर्घ हो जाता है। दिव् (४ पर०)—दीव्यति। इसी प्रकार सिव्-सीव्यति, ष्ठिव्-ष्ठीव्यति, आदि।

---

१. ॠत इद्धातोः (७-१-१००)। उरण् रपरः (१-१-५१)। हलि च (८-२-७७)।

२. हलि च। रेफवान्तस्य धातोरुपधाया इको दीर्घः स्याद् हलि। (सि० कौ०)।

## भ्वादिगणी, दिवादिगणी, तुदादिगणी और चुरादिगणी धातुएँ, जिनके रूप विशेष प्रकार से बनते हैं ।

### भ्वादिगण

गुप् (रक्षा करना)—गोपायति ।[1]

धूप् (गर्म करना)—धूपायति ।

विच्छ् (जाना)—विच्छायति ।

पण् (प्रशंसा करना)—पणायति । यदि इसका अर्थ व्यापार करना और शर्त लगाना होगा तो इसका रूप पणते बनेगा ।

गुह्[2] (उ०, छिपाना, गुप्त रखना)—गूहति-ते ।

कम् (आ०, चाहना)—कामयते ।

ष्ठिव्[3] (पर०, थूकना)—ष्ठीवति ।

आ + चम् (पीना, आचमन करना)—आचामति ।

भ्राश् और भ्लाश्[4] (आ०, चमकना)—भ्राशते, भ्राश्यते, भ्लाशते, भ्लाश्यते ।

भ्रम् (पर०, घूमना) भ्रमति, भ्रम्यति, भ्राम्यति ।

क्रम् (पर०, घूमना) क्रामति, क्राम्यति ।

लष् (उ०, चाहना) लषति-ते, लष्यति-ते ।

धिन्व्[5] (पर०, प्रसन्न करना) धिनोति ।

कृण्व् (पर०, मारना, दुःख देना) कृणोति ।

---

१. गुपूधूपविच्छिपणिपनिभ्य आयः ( ३-१-२८ ) । इन धातुओं में विकरण अ से पहले आय् लगता है । इस आय् से पहले गुप् के उ को गुण होता है ।

२. ऊदुपधाया गोहः ( ६-४-८९ ) । गुह् धातु की उपधा के उ को दीर्घ हो जाता है, जहाँ पर गुण होता है ऐसे अजादि प्रत्यय बाद में होने पर । अतः सार्वधातुक लकारों में दीर्घ होता है ।

३. ष्ठिवुक्लमुचमां शिति ( ७-३-७५ ) । आङि चम इति वक्तव्यम् (वार्तिक) । सार्वधातुक लकारों में इन धातुओं की उपधा को दीर्घ हो जाता है ।

४. वा भ्राशभ्लाशभ्रमुक्रमुक्लमुत्रसित्रुटिलषः ( ३-१-७० ) । इन धातुओं से सार्वधातुक लकारों में श्यन् (य) वाला भी रूप बनता है ।

५. धिन्विकृण्व्योर च ( ३-१-८० ) । अतो लोपः ( ६-४-४८ ) । धिन्व् और कृण्व् धातु के व् के स्थान पर अ होता है और इनसे अ के स्थान पर उ विकरण होता है । उ होने पर पूर्ववर्ती अ का लोप हो जाता है । इनके रूप स्वादिगणी धातुओं के तुल्य चलते हैं ।

अक्ष्[1] (प०, व्याप्त होना)—अक्षति, अक्ष्णोति ।
तक्ष् (प०, छीलना)—तक्षति, तक्ष्णोति ।
ऋत् (निन्दा करना)—ऋतीयते ।
गम्[2] (पर०, जाना)—गच्छति ।
यम् (पर०, रोकना)—यच्छति ।
पा[3] (पर०, पीना)—पिबति ।
घ्रा (प०, सूँघना)—जिघ्रति ।
ध्मा (प०, फूँकना)—धमति ।
स्था (प०, रुकना)—तिष्ठति ।
म्ना (प०, सोचना)—मनति ।
दा (प०, देना)—यच्छति ।
दृश् (प०, देखना)—पश्यति ।
ऋ (प०, जाना)—ऋच्छति ।
सृ (प०, दौड़ना)—धावति ।
शद्[4] (उभ० नष्ट होना)—शीयते ।
सद् (प०, बैठना, नष्ट होना)—सीदति ।
दंश्[5] (प०, काटना, डँसना)—दशति ।
सञ्ज् (प०, लगना)—सजति ।
स्वञ्ज् (आ०, मिलना)—स्वजते ।
रञ्ज् (उ०, रँगना) रजति, रजते ।
मृज् (प०, स्वच्छ करना)—मार्जति ।
जभ् (आ०, जंभाई लेना)—जम्भते ।
क्लृप् (आ०, योग्य होना)—कल्पते ।
लस्ज् (आ०, लज्जित होना)—लज्जते ।
सस्ज् (प०, तैयार होना)—सज्जति ।

**३९६.** निम्नलिखित धातुओं से विशेष अर्थों में सन् प्रत्यय होता है और इनके रूप सन्नन्त धातुओं के तुल्य चलते हैं। ये हैं—कित् (चिकित्सा करना)—चिकित्सति—ते, गुप् (निन्दा करना)—जुगुप्सते, तिज् (क्षमा करना, सहन करना)—तितिक्षते, बध् (घृणा करना)—बीभत्सते, दान् (सरल बनाना)—दीदांसति-ते, मान् (जिज्ञासा करना, सोचना)—मीमांसते, शान् (तीक्ष्ण करना)—शीशांसति-ते। अन्य अर्थों में इनके ये रूप बनते हैं—कित् (चाहना)—केतति, (रहना)—केतयति। दान् (काटना)—दानयति-ते, इत्यादि।

**३९७.** कुछ धातुएँ ऐसी हैं, जिनमें सार्वधातुक लकारों में उपधा में न् नित्य

---

१. अक्ष् और तक्ष् धातुओं का जब पतला करना अर्थ होता है, तब ये विकल्प से स्वादिगणी हो जाती हैं।
२. इषुगमियमां छः (७-३-७७)। छे च (देखो नियम ४४)।
३. पाघ्राध्मास्थाम्नादाण्दृश्यर्तिसर्तिशदसदां पिबजिघ्रधमतिष्ठमनयच्छ-पश्यर्च्छधौशीयसीदाः (७-३-७८)।
४. शदेः शितः (१-३-६०)। शद् धातु सार्वधातुक लकारों में आत्मनेपदी है।
५. दंशसञ्जस्वञ्जां शपि (६-४-२५)। रञ्जेश्च (६-४-२६)। सार्वधातुक लकारों में इन धातुओं के न् (ञ्) का लोप हो जाता है।

लगता है। जैसे—भिद् (काटना)—भिन्दति, अह् (जाना)—अंहते, पिड् (पिंड बनाना)—पिण्डते, शुठ् (शुद्ध करना, जाना)—शुण्ठति, इत्यादि। कुछ धातुओं में विकल्प से न् लगता है। जैसे—दृह् (दृढ़ होना)—दर्हति-दृंहति, म्रुच् या म्लुच् (जाना)—म्रोचयति—म्रुंचति, म्लोचयति—म्लुंचति, लुच् (तोड़ना, चुनना)—लोचति—लुंचति। ये सभी परस्मैपदी हैं। गुज् (आ०, गुंजन करना) गोजते-गुंजते, गृज् (प०, गरजना)—गर्जति-गृंजति। इनके अतिरिक्त कुछ कम प्रचलित धातुएँ हैं।

**दिवादिगण ( चतुर्थ गण )**

क्रम् (प०, जाना)—क्राम्यति।
जन् (आ०, उत्पन्न होना)—जायते।
शम्[1] (प०, शान्त होना)—शाम्यति।
तम् (प०, चाहना)—ताम्यति।
दम् (प०, शान्त करना)—दाम्यति।
श्रम् (प०, थकना)—श्राम्यति।
क्षम् (प०, सहन करना)—क्षाम्यति।
क्लम् (प०, थकना)—क्लाम्यति, क्लामति।
मद् (प०, उन्मत्त होना)—माद्यति।
यम् (प०, यत्न करना)—यस्यति, यसति। यदि सम् के अतिरिक्त और कोई उपसर्ग इससे पूर्व होगा तो यह केवल दिवादि० में ही प्रयुक्त होगी। संयस्यति-संयसति। परन्तु प्रयस्यति एक ही रूप होगा।
शो[2] (प०, छीलना)—श्यति।
छो (प०, काटना)—छ्यति।
सो (प०, नष्ट होना)—स्यति।
दो (प०, काटना)—द्यति।
भ्रंश्-भ्रंस् (प०, गिरना)—भ्रंश्यति, भ्रंस्यति।
रंज् (उ०, रंगना)—रज्यति-ते।
मिद् (प०, चिकना होना)—मेद्यति।
व्यध् (प०, बींधना)—विध्यति।

**३६८.** निम्नलिखित धातुएँ भ्वादि० और दिवादि० दोनों गणों में हैं—भ्राश्, भ्रास्, भ्लाश्, काश् (सबका चमकना अर्थ है), डी (उड़ना)। सभी आत्मनेपदी हैं। भ्रम्, क्रम्, त्रस् (डरना), लप्, क्षीव् (थूकना), हृष् (प्रसन्न होना), श्लिष् (चिपकना, आलिंगन करना), रुष् (क्रुद्ध होना), सिध् (भ्वादि० शुभगमन, दिवादि० सिद्ध होना)। सभी परस्मै० हैं। सह् (१ आ०, ४ प०, सहन

---

१. शमामष्टानां दीर्घः श्यनि ( ७-३-७४ )। इनमें से भ्रम् भ्वादिगण में है।
२. ओतः श्यनि ( ७-३-७१ )। य बाद में होने पर इन चार धातुओं के अन्तिम ओ का लोप हो जाता है।

करना), भ्रश्, भ्रस्, भ्रंश्, भ्रंस् (गिरना), रञ्ज् (रँगना), शप् (शाप देना), बुध् (१ प०, ४ आ०, जानना), शुच् (१ प०, शोक करना, ४ उ०, दुःखित होना), क्रम्, क्षम् (१ आ०, ४ प०) और स्विद् (४ प०, पसीने से युक्त होना, १ आ०, लिप्त होना)।

### तुदादिगण ( षष्ठ गण )

इष् (प०, चाहना)–इच्छति।
कृत् (प०, काटना)–कृन्तति।
उप + कृ, प्रति + कृ–उपस्किरति, प्रतिस्किरति।
खिद् (प०, खिन्न होना)–खिन्दति।
गॄ (प०, निगलना)–गिरति, गिलति।
त्रुट् (प०, तोड़ना)–त्रुटयति, त्रुटति।
प्रच्छ् (प०, पूछना)–पृच्छति।
भ्रस्ज् (उ०, भूनना)–भ्रज्जति-ते।
मस्ज् (प०, नहाना)–मज्जति।
व्रश्च् (प०, काटना)–वृश्चति।
व्यच् (प०, धोखा देना)–विचति।
विच्छ् (प०, जाना)–विच्छायति।
सस्ज् (प०, जाना)–सज्जति।
मुच् (उ०, छोड़ना)–मुञ्चति-ते।
लिप् (उ०, लीपना)–लिम्पति-ते।
लुप् (उ०, तोड़ना, काटना) लुम्पति-ते।
विद्[1] (उ०, पाना)–विन्दति-ते।
सिच् (उ०, सींचना)–सिञ्चति-ते।
पिश् (प०, बनाना)–पिंशति।

**३९९.** (क) निम्नलिखित धातुएँ भ्वादि० और तुदादि० दोनों में हैं—कृष् (१ प०, ६ उ०, जोतना, खींचना), घुट् (१ आ०, लौटना, ६ प०, चोट मारना), घुण् (१ आ०, ६ प०, चक्कर खाना, १ आ० लेना, प्राप्त करना), घूर्ण् (१ आ०, ६ प०, चक्कर खाना, इधर-उधर घूमना), छुर् (१ प०, काटना, ६ प०, घेरना, लपेटना), त्रुप्, त्रुम्प् (प०, मारना), सद् (प०, बैठना), मिष् (१ प०, सींचना, ६ प०, आँख खोलना), लट् (१ प०, हिलाना, मथना, ६ प०, ढकना, लगना), मुच् (१ आ०, धोखा देना, ६ उ०, छोड़ना, मुक्त करना), आदि।

(ख) निम्नलिखित धातुएँ दिवादि० और तुदादि० दोनों में हैं—क्षिप् (४ प०, ६ उ०, फेंकना), लुप् (४ प०, घबड़ा देना, ६ उ०, ले जाना, नष्ट

---

१. यह धातु चार विभिन्न अर्थों में ४ गणों में है—अदादि०, दिवादि०, तुदादि० और रुधादि०। निम्नलिखित कारिका में ये अर्थ आदि दिए गए हैं।
सत्तायां विद्यते ज्ञाने वेत्ति विन्ते विचारणे।
विन्दते विन्दति प्राप्तौ श्यन्लुक्श्नम्शेष्विदं क्रमात्॥

करना), लुभ् (४ प०, लोभ करना, घबड़ाना, ६ आ०, घबड़ा देना), सृज् (४ आ०, छोड़ना, भेजना, ४, ६ प०, उत्पन्न करना, बनाना)।

**चुरादिगण ( दशम गण )**

धू[1] (प०, हिलाना)—धूनयति । प्री (प्र०, प्रसन्न करना)—प्रीणयति ।
अर्थ्—अर्थयति, अर्थापयति ।[2] गण्—गणयति, गणापयति ।[2]
लज्ज्—लज्जयति, लज्जापयति ।[2] वण्ट्—वण्टयति, वण्टापयति ।[2]

**४००.** चुरादिगण की निम्नलिखित धातुओं में स्वरों में कोई परिवर्तन नहीं होता है—अघ् (पाप करना), कथ् (कहना), क्षप् (भेजना, विताना), गण् (गिनना), गल् (उ०, टपकाना, चुआना, आ० फेंकना), वर् (चुनना, पाना), ध्वन् (शब्द करना), मह् (आदर करना), रच् (बनाना), रस् (स्वाद लेना), रह् (छोड़ना, त्याग देना), शठ् (बुराई करना, धोखा देना), रट् (चिल्लाना, चीखना), पट् (बुनना) (फाड़ना अर्थ होगा तो पाटयति रूप बनेगा), स्तन् (गरजना), गद् (शब्द करना), पत् (जाना), कल् (गिनना), स्वर् (शब्द करना), पद् (आ०, जाना), अंस् (बाँटना, विभक्त करना), वट् (बाँटना), लज् (चमकना), कर्ण् (छेद करना), छद् (छिपाना), चप् (पीसना), वस् (रहना), श्रथ् या श्लथ् (निर्बल होना), व्यय् (खर्च करना, देना), स्पृह् (चाहना), मृग् (ढूँढ़ना), मृष् (सहन करना), कृप् (कृपा करना, निर्बल होना), कुण्, गुण् (गुणा करना, सम्मति देना), ग्रह् (आ० लेना) (इसका प्रेरणार्थक में ग्राहयति रूप भी बनता है), कुह् (आ०, आश्चर्ययुक्त करना, धोखा देना), पुट् (बाँधना, जोड़ना), स्फुट् (प्रकट होना), सुख् (सुखी करना) तथा अन्य कुछ कम प्रचलित धातुएँ ।

**४०१.** चुरादिगण की कुछ धातुओं में सदा अत्मनेपद ही होता है, भले ही

---

१. कविरहस्य का निम्नलिखित श्लोक विभिन्न गणों में इस धातु के रूपों का उल्लेख करता है ।

धूनोति चम्पकवनानि धुनोत्यशोकं,
चूतं धुनाति धुवति स्फुटितातिमुक्तम् ।
वायुर्विधूनयति चम्पकपुष्परेणून्
यत्कानने धवति चन्दनमञ्जरीश्च ॥

२. ये वैकल्पिक रूप शाकटायन आदि के मतानुसार हैं ।

क्रिया का फल कर्ता को न मिले। ये हैं—अर्थ् (प्रार्थना करना, चाहना), कुह् (आश्चर्य में डालना, धोखा देना), चित् (सचेत होना, सोचना), दंश् (काटना, डँसना), दंस् (देखना, डँसना) (कुछ के मतानुसार यह दस् धातु है), डप् या डिप् (एकत्र करना), तन्त्र् (परिवार का पालन करना), मन्त्र् (गुप्त परामर्श करना), मृग् (ढूँढ़ना, शिकार खेलना), स्पृश् (लेना, इकट्ठा करके बाँधना), तर्ज् और भर्त्स् (डाँटना), वस्त् और गन्ध् (चोट मारना, हानि पहुँचाना), विष्क् (मारना) (कुछ के मतानुसार हिष्क् धातु है), निष्क् (तोलना), लल् (चाहना), कण् (आँख मीचना), तुण् (भरना), भ्रूण् (डरना), शल् (प्रशंसा करना), यक्ष् (पूजा करना), स्यम् (अनुमान करना), गुर् (चोट मारना), स्यम् (देखना, निरीक्षण करना), कुत्स् (निन्दा करना), त्रुट् (काटना) (कुछ के मतानुसार कुट् धातु है), गल् (पिघला कर चुआना), भल् (देखना, फैलाना), कूट् (न देना, गड़बड़ करना), कुट् (काटना), वञ्च् (धोखा देना), वृष् (उत्पन्न करना, प्रमुख होना), मुद् (प्रसन्न करना), दिव् (रोना), गृ (जानना), विद् (जानना), मत् (रुकना), यु (निन्दा करना) और कुस्म् (अनुचित ढंग से मुस्कराना)।

४०२. निम्नलिखित धातुएँ भ्वादि० और चुरादि० दोनों गणों में हैं—

युज् (मिलाना), पृच् (किसी काम से रुकना), अर्घ् (पूजा करना), ईर् (फेंकना), ली (पिघलाना), वृज् (छोड़ना, किसी काम से बचना), वृ (ढँकना), जृ, ज्रि (वृद्ध होना), रिच् (पृथक् करना, मिलाना), शिष् (कुछ शेष रहने देना), तप् (जलाना), तृप् (तृप्त होना), छृद् (जलाना), चृप्, छृप्, दृप् (जलाना), दृम्भ् (डरना), श्रथ् (मुक्त करना, मारना), मी (जाना), ग्रन्थ् (इकठ्ठा करके बाँधना), शीक्, चीक् (सहन करना), अर्द् (मारना), हिंस् (हिंसा करना), अर्ह् (पूजा करना), आ+सद् (जाना, आक्रमण करना), शुन्ध् (पवित्र करना, शुद्ध करना), छद् (ढँकना), जुष् (सन्तुष्ट करना, अनुमान करना, मारना), प्री (प्रसन्न करना), श्रन्थ्, ग्रन्थ् (रचना करना, ठीक ढंग से रखना), आप् (पाना), तन् (फैलाना), चन् (विश्वास करना, चोट पहुँचाना), वद् (बताना), वच् (कहना), मान् (आदर करना, पूजा करना), भू (आ०, पाना) (कुछ के मतानुसार भवति भी बनता है), गर्ह् (निन्दा करना), मार्ग् (ढूँढ़ना), कण्ठ् (खेदपूर्वक स्मरण करना), मृज् (स्वच्छ करना), मृष् (सहन करना), धृष् (साहस

करना, जीतना), जस् (चोट पहुँचाना, हानि पहुँचाना), दिव् (१ प०, १० आ०, माँगना, पीड़ा देना), घुप् (घोषणा करना) तथा अन्य कुछ धातुएँ ।

## (२) भाग २

### परिवर्तनशील अंग ( Base ) वाली धातुएँ

### ( गण २, ३, ५, ८ और ९ )

**४०३.** तिङ प्रत्यय (Terminations) :—

**परस्मैपद**

लट्, लङ और लोट् में वही तिङ प्रत्यय लगेंगे जो भाग १ की धातुओं के साथ लगते हैं । लोट् मध्यम पुरुष एक० में हि लगेगा । विधिलिङ ये तिङ प्रत्यय लगते हैं :—

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | यात् | याताम् | युस् |
| म० | याम् | यातम् | यात |
| उ० | याम् | याव | याम |

**आत्मनेपद**

| | लट् | | | लङ | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | ते | आते | अते | त | आताम् | अत |
| म० | से | आथे | ध्वे | थास् | आथाम् | ध्वम् |
| उ० | ए | वहे | महे | इ | वहि | महि |
| | लोट् | | | विधिलिङ | | |
| प्र० | ताम् | आताम् | अताम् | ईत | ईयाताम् | ईरन् |
| म० | स्व | आथाम् | ध्वम् | ईथा: | ईयाथाम् | ईध्वम् |
| उ० | ऐ | आवहै | आमहै | ईय | ईवहि | ईमहि |

**४०४.** द्वितीय भाग की धातुओं में सार्वधातुक लकारों में कई परिवर्तन होते हैं । अतएव इस विभाग में तिङ प्रत्ययों को दो भागों में बाँटा गया है । एक भाग को पित् या सबल (Strong) कहा जाता है और दूसरे भाग को ङित् या निर्बल (Weak) कहा जाता है । पित् प्रत्ययों वाले अंग को पित् या सबल अंग (The Strong base) कहा जा सकता है और ङित् प्रत्ययों वाले अंग को ङित् या निर्बल अंग (The Weak base) ।

(क) पित् या सबल तिङ (The Strong Terminations) ये हैं :—

लट् और लङ के सभी पुरुषों के एकवचन, लोट् लकार के परस्मैपद में प्रथम-पुरुष का एकवचन और उत्तमपुरुष के तीनों वचन तथा लोट् लकार के आत्मनेपद में उत्तमपुरुष के तीनों वचन।

(ख) शेष सभी तिङ ङित् या निर्बल हैं।

**४०५.** सबल तिङों से पूर्व धातु के अन्तिम स्वरों को और उनके उपधा के ह्रस्व स्वरों को गुण हो जाता है।

**स्वादि, तनादि और क्र्यादिगण ( गण ५, ८ और ९ )**

**४०६.** स्वादिगण की धातुओं से नु विकरण लगता है और तनादिगण की धातुओं से उ विकरण।[1]

**४०७.** यदि कोई संयुक्त वर्ण पहले नहीं होगा तो अंग (Base) के अन्तिम उ का विकल्प से लोप हो जाएगा, बाद में व् या म् होगा तो। अजादि निर्बल या ङित् तिङ बाद में होंगे तो उ को उव् हो जाएगा, यदि उ से पहले संयुक्त वर्ण होंगे तो। अन्य स्थानों पर उ को व् होगा। लोट् म० पु० एक० में यदि संयुक्त वर्ण पहले नहीं होगा तो उ के बाद हि का लोप हो जाएगा।

**४०८.** क्र्यादिगण में धातु और तिङ के बीच में ना विकरण लगता है।[2] ना के बाद यदि अजादि ङित् तिङ होंगे तो ना को न् हो जाता है और यदि हलादि ङित् तिङ होंगे तो ना को नी हो जाता है।

**४०९.** (क) ना आदि बाद में होंगे तो धातु की उपधा के न् का लोप हो जाएगा। जैसे—ग्रन्थ् (एकत्र करके बाँधना) धातु के ग्रथ्नामि, ग्रथ्नीवः, ग्रथ्नीमः आदि रूप होते हैं।

(ख) हलन्त धातुओं के बाद लोट् म० पु० एक० में हि के स्थान पर आन लगेगा। जैसे—मुष् (चुराना) का मुषाण रूप बनेगा।

### उदाहरण

### स्वादिगण ( गण ५ )

सु (रस निकालना), उभयपदी

| | पर० | | लट् | | आ० | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | सुनोति | सुनुतः | सुन्वन्ति | सुनुते | सुन्वाते | सुन्वते |

१. स्वादिभ्यः श्नुः ( ३-१-७३ )। तनादिकृञ्भ्य उः ( ३-१-७९ )।
२. क्र्यादिभ्यः श्ना ( ३-१-८१ )।

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| म० | सुनोषि | सुनुथः | सुनुथ | सुनुषे | सुन्वाथे | सुनुध्वे |
| उ० | सुनोमि | सुनुवः / सुन्वः | सुनुमः / सुन्मः | सुन्वे | सुनुवहे / सुन्वहे | सुनुमहे / सुन्महे |

पर० लङ् आ०

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | असुनोत् | असुनुताम् | असुन्वन् | असुनुत | असुन्वाताम् | असुन्वत |
| म० | असुनोः | असुनुतम् | असुनुत | असुनुथाः | असुन्वाथाम् | असुनुध्वम् |
| उ० | असुनवम् | असुनुव / असुन्व | असुनुम / असुन्म | असुन्वि | असुनुवहि / असुन्वहि | असुनुमहि / असुन्महि |

लोट्

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | सुनोतु | सुनुताम् | सुन्वन्तु | सुनुताम् | सुन्वाताम् | सुन्वताम् |
| म० | सुनु | सुनुतम् | सुनुत | सुनुष्व | सुन्वाथाम् | सुनुध्वम् |
| उ० | सुनवानि | सुनवाव | सुनवाम | सुनवै | सुनवावहै | सुनवामहै |

विधिलिङ्

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | सुनुयात् | सुनुयाताम् | सुनुयुः | सुन्वीत | सुन्वीयाताम् | सुन्वीरन् |
| म० | सुनुयाः | सुनुयातम् | सुनुयात | सुन्वीथाः | सुन्वीयाथाम् | सुन्वीध्वम् |
| उ० | सुनुयाम् | सुनुयाव | सुनुयाम | सुन्वीय | सुन्वीवहि | सुन्वीमहि |

साध् ( पूरा करना ) पर० अश् ( व्याप्त होना ) आ०

लट्

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | साध्नोति | साध्नुतः | साध्नुवन्ति | अश्नुते | अश्नुवाते | अश्नुवते |
| म० | साध्नोषि | साध्नुथः | साध्नुथ | अश्नुषे | अश्नुवाथे | अश्नुध्वे |
| उ० | साध्नोमि | साध्नुवः | साध्नुमः | अश्नुवे | अश्नुवहे | अश्नुमहे |

लङ्

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | असाध्नोत् | असाध्नुताम् | असाध्नुवन् | आश्नुत | आश्नुवाताम् | आश्नुवत |
| म० | असाध्नोः | असाध्नुतम् | असाध्नुत | आश्नुथाः | आश्नुवाथाम् | आश्नुध्वम् |
| उ० | असाध्नवम् | असाध्नुव | असाध्नुम | आश्नुवि | आश्नुवहि | आश्नुमहि |

लोट्

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | साध्नोतु | साध्नुताम् | साध्नुवन्तु | अश्नुताम् | अश्नुवाताम् | अश्नुवताम् |
| म० | साध्नुहि | साध्नुतम् | साध्नुत | अश्नुष्व | अश्नुवाथाम् | अश्नुध्वम् |
| उ० | साध्नवानि | साध्नवाव | साध्नवाम | अश्नवै | अश्नवावहै | अश्नवामहै |

### विधिलिङ

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | साध्नुयात् | साध्नुयाताम् | साध्नुयुः | अश्नुवीत | अश्नुवीयाताम् | अश्नुवीरन् |
| म० | साध्नुयाः | साध्नुयातम् | साध्नुयात | अश्नुवीथाः | अश्नुवीयाथाम् | अश्नुवीध्वम् |
| उ० | साध्नुयाम् | साध्नुयाव | साध्नुयाम | अश्नुवीय | अश्नुवीवहि | अश्नुवीमहि |

## तनादिगण ( गण ८ )

### तन् ( फैलाना ), उभयपदी

| | पर० | | लट् | आ० | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | तनोति | तनुतः | तन्वन्ति | तनुते | तन्वाते | तन्वते |
| म० | तनोषि | तनुथः | तनुथ | तनुषे | तन्वाथे | तनुध्वे |
| उ० | तनोमि | तनुवः, तन्वः | तनुमः, तन्मः | तन्वे | तनुवहे, तन्वहे | तनुमहे, तन्महे |

### लङ

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | अतनोत् | अतनुताम् | अतन्वन् | अतनुत | अतन्वाताम् | अतन्वत |
| म० | अतनोः | अतनुतम् | अतनुत | अतनुथाः | अतन्वाथाम् | अतनुध्वम् |
| उ० | अतनवम् | अतनुव, अतन्व | अतनुम, अतन्म | अतन्वि | अतनुवहि, अतन्वहि | अतनुमहि, अतन्महि |

### लोट्

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | तनोतु | तनुताम् | तन्वन्तु | तनुताम् | तन्वाताम् | तन्वताम् |
| म० | तनु | तनुतम् | तनुत | तनुष्व | तन्वाथाम् | तनुध्वम् |
| उ० | तनवानि | तनवाव | तनवाम | तनवै | तनवावहै | तनवामहै |

### विधिलिङ

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | तनुयात् | तनुयाताम् | तनुयुः | तन्वीत | तन्वीयाताम् | तन्वीरन् |
| म० | तनुयाः | तनुयातम् | तनुयात | तन्वीथाः | तन्वीयाथाम् | तन्वीध्वम् |
| उ० | तनुयाम् | तनुयाव | तनुयाम | तन्वीय | तन्वीवहि | तन्वीमहि |

**४१०. अनियमित चलने वाली धातुएँ:**—कृ ( करना ) उभयपदी। सबल तिङों से पूर्व कृ को कर् हो जाता है और निर्बल तिङों मे पूर्व कृ को कुर्। व और म बाद में होंगे तो अंग के उ का लोप हो जाता है।

### कृ (करना)

| | पर० | | लट् | आ० | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | करोति | कुरुतः | कुर्वन्ति | कुरुते | कुर्वाते | कुर्वते |

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| म० | करोषि | कुरुथः | कुरुथ | कुरुषे | कुर्वाथे | कुरुध्वे |
| उ० | करोमि | कुर्वः | कुर्मः | कुर्वे | कुर्वहे | कुर्महे |

लङ्

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | अकरोत् | अकुरुताम् | अकुर्वन् | अकुरुत | अकुर्वाताम् | अकुर्वत |
| म० | अकरोः | अकुरुतम् | अकुरुत | अकुरुथाः | अकुर्वाथाम् | अकुरुध्वम् |
| उ० | अकरवम् | अकुर्व | अकुर्म | अकुर्वि | अकुर्वहि | अकुर्महि |

लोट्

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | करोतु | कुरुताम् | कुर्वन्तु | कुरुताम् | कुर्वाताम् | कुर्वताम् |
| म० | कुरु | कुरुतम् | कुरुत | कुरुष्व | कुर्वाथाम् | कुरुध्वम् |
| उ० | करवाणि | करवाव | करवाम | करवै | करवावहै | करवामहै |

विधिलिङ्

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | कुर्यात् | कुर्याताम् | कुर्युः | कुर्वीत | कुर्वीयाताम् | कुर्वीरन् |
| म० | कुर्याः | कुर्यातम् | कुर्यात | कुर्वीथाः | कुर्वीयाथाम् | कुर्वीध्वम् |
| उ० | कुर्याम् | कुर्याव | कुर्याम | कुर्वीय | कुर्वीवहि | कुर्वीमहि |

## क्र्यादिगण ( गण ९ )

### क्री ( खरीदना ), उभयपदी

परः　　　लट्　　　आ०

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | क्रीणाति | क्रीणीतः | क्रीणन्ति | क्रीणीते | क्रीणाते | क्रीणते |
| म० | क्रीणासि | क्रीणीथः | क्रीणीथ | क्रीणीषे | क्रीणाथे | क्रीणीध्वे |
| उ० | क्रीणामि | क्रीणीवः | क्रीणीमः | क्रीणे | क्रीणीवहे | क्रीणीमहे |

लङ्

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | अक्रीणात् | अक्रीणीताम् | अक्रीणन् | अक्रीणीत | अक्रीणाताम् | अक्रीणत |
| म० | अक्रीणाः | अक्रीणीतम् | अक्रीणीत | अक्रीणीथाः | अक्रीणाथाम् | अक्रीणीध्वम् |
| उ० | अक्रीणाम् | अक्रीणीव | अक्रीणीम | अक्रीणि | अक्रीणीवहि | अक्रीणीमहि |

लोट्

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | क्रीणातु | क्रीणीताम् | क्रीणन्तु | क्रीणीताम् | क्रीणाताम् | क्रीणताम् |
| म० | क्रीणीहि | क्रीणीतम् | क्रीणीत | क्रीणीष्व | क्रीणाथाम् | क्रीणीध्वम् |
| उ० | क्रीणानि | क्रीणाव | क्रीणाम | क्रीणै | क्रीणावहै | क्रीणामहै |

**विधिलिङ**

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | क्रीणीयात् | क्रीणीयाताम् | क्रीणीयुः | क्रीणीत | क्रीणीयाताम् | क्रीणीरन् |
| म० | क्रीणीयाः | क्रीणीयातम् | क्रीणीयात | क्रीणीथाः | क्रीणीयाथाम् | क्रीणीध्वम् |
| उ० | क्रीणीयाम् | क्रीणीयाव | क्रीणीयाम | क्रीणीय | क्रीणीवहि | क्रीणीमहि |

**स्तम्भ्** ( रोकना, विघ्न डालना ) परस्मैपदी

| | **लट्** | | | **लङ** | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | स्तभ्नाति | स्तभ्नीतः | स्तभ्नन्ति | अस्तभ्नात् | अस्तभ्नीताम् | अस्तभ्नन् |
| म० | स्तभ्नासि | स्तभ्नीथः | स्तभ्नीथ | अस्तभ्नाः | अस्तभ्नीतम् | अस्तभ्नीत |
| उ० | स्तभ्नामि | स्तभ्नीवः | स्तभ्नीमः | अस्तभ्नाम् | अस्तभ्नीव | अस्तभ्नीम |

| | **लोट्** | | | **विधिलिङ** | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | स्तभ्नातु | स्तभ्नीताम् | स्तभ्नन्तु | स्तभ्नीयात् | स्तभ्नीयाताम् | स्तभ्नीयुः |
| म० | स्तभान | स्तभ्नीतम् | स्तभ्नीत | स्तभ्नीयाः | स्तभ्नीयातम् | स्तभ्नीयात |
| उ० | स्तभ्नानि | स्तभ्नाव | स्तभ्नाम | स्तभ्नीयाम् | स्तभ्नीयाव | स्तभ्नीयाम |

**क्र्यादिगण की अनियमित धातुएँ**

**४११.** क्षुभ् धातु के बाद ना के न् को ण् नहीं होता है।
जैसे—क्षुभ्नाति, क्षुभ्नीतः, क्षुभ्नन्ति, आदि।

**४१२.** ज्ञा ( जानना ) को जा हो जाता है और ज्या ( वृद्ध होना ) को जि। जैसे—जानाति—जानीते, जिनाति, आदि।

**४१३.** सार्वधातुक लकारों में ग्रह् के र् को ऋ हो जाता है। जैसे—गृह्णाति। लङ में—अगृह्णात्, अगृह्णीताम्, अगृह्णन्, आदि।

**४१४.** सार्वधातुक लकारों में निम्नलिखित धातुओं के अन्तिम स्वर को अवश्य ह्रस्व हो जाता है—री, ली, व्ली, प्ली, धू, पू, लू, ॠ, कॄ, गॄ, जॄ, नॄ, पॄ, भॄ, मॄ, वॄ, शॄ और स्तॄ, क्षी, भ्री और व्री को विकल्प से ह्रस्व होता है। जैसे—धुनाति, धुनीते, स्तृणाति-स्तृणीते, वृणाति-वृणीते, आदि। क्षीणाति-क्षिणाति, आदि।

**४१५.** निम्नलिखित धातुएँ स्वादि० और क्र्यादि० दोनों गणों में हैं—स्कु ( उछलते हुए जाना, उठाना ), स्तम्भ् ( विघ्न डालना ), स्तुम्भ् ( रोकना ), स्कम्भ् और स्कुम्भ् ( विघ्न डालना )। जैसे—स्कुनाति-स्कुनीते, स्कुनोति- स्कुनुते, आदि।

## अदादि, जुहोत्यादि और रुधादि गण ( गण २, ३, ७ )

**४१६.** धातुओं के अन्तिम वर्ण और तिङों के प्रारम्भिक वर्णों के साथ होने वाली सन्धियों के लिए विशेष नियम :—

(१) पित् ( सबल ) हलादि तिङ बाद में होंगे तो धातु के अन्तिम उ को वृद्धि होगी । जैसे—नु+मि = नौमि ।

(२) ङित् ( निर्बल ) तिङ बाद में होंगे तो धातु के अन्तिम इ या ई को इय् होगा और उ या ऊ को उव् ।

(३) झल् ( अन्तःस्थ और वर्ग के पंचम अक्षरों को छोड़ कर सभी व्यंजन ) बाद में होने पर तथा पदान्त में धातु के अन्तिम ह् को ढ् हो जाता है और यदि धातु का प्रारम्भिक अक्षर द है तो पूर्वोक्त स्थितियों में ह् को घ् होगा ।

(४) वर्ग के चतुर्थ वर्ण के बाद तिङ प्रत्ययों के प्रारम्भिक त् या थ् को ध् हो जाता है ।

(५) स बाद में होने पर ढ् या ष् को क् हो जाता है ।

(६) न् या म् के बाद श्, ष्, स् या ह् होंगे तो उन्हें अनुस्वार हो जाएगा । अन्य व्यंजन बाद में होंगे तो न् और म् को आगामी वर्ण जिस वर्ग का है, उस वर्ग का ही पंचम अक्षर हो जाएगा ।

(७) यदि धातु अनेकाच् ( एक से अधिक स्वरयुक्त ) है और उसमें अन्तिम इ या ई से पहले संयुक्त वर्ण नहीं है तो उस इ या ई को य् हो जाएगा, यदि बाद में अजादि ङित् ( निर्बल ) तिङ प्रत्यय होंगे तो ।

(८) लङ लकार मध्यम पुरुष एक० में धातु के अन्तिम द् के स्थान पर विकल्प से र् या विसर्ग (:) हो जाता है। धातु के अन्तिम स् को त् या द् हो जाता है, बाद में त् हो तो, यदि बाद में स् होगा तो त् या द् विकल्प से होगा ।

(९) यदि धातु के अन्त में स् या क् से प्रारम्भ होने वाला कोई संयुक्त व्यंजन है और उसके बाद झल् ( अन्तःस्थ और पंचम वर्ण को छोड़कर सभी व्यंजन ) होगा तो स् या क् का लोप हो जाएगा ।

**सूचना**—अध्याय २ और ३ में दिए गए सामान्य सन्धि-नियम यहाँ पर भी लगेंगे ।

**४१७.** हु ( जुहोत्यादि०, हवन करना ) धातु और झल् ( अन्तःस्थ और

पंचम वर्ण को छोड़कर सभी व्यंजन ) अन्त वाली धातुओं के बाद परस्मैपद के लोट् मध्यम पु० एक० में हि के स्थान पर धि हो जाता है।[1]

**४१८.** लङ् लकार प्र० पु० और म० पु० एक० के त् और म् का लोप हो जाता है, यदि वे किसी व्यंजन के बाद होते हैं तो।

**अदादिगण ( गण २ )**

**४१९.** इस गण में धातु से सीधे तिङ् प्रत्यय लगते है। बीच में कोई विकरण नहीं लगता है।

**४२०.** आकारान्त धातुओं से लङ् लकार प्र० पु० बहुवचन में विकल्प से उस् लगता है।

**उदाहरण**

**या** ( जाना ), पर०

| | लट् | | | लङ् | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | याति | यातः | यान्ति | अयात् | अयाताम् | अयान्, अयुः |
| म० | यासि | याथः | याथ | अयाः | अयातम् | अयात |
| उ० | यामि | यावः | यामः | अयाम् | अयाव | अयाम |
| | **लोट्** | | | **विधिलिङ्** | | |
| प्र० | यातु | याताम् | यान्तु | यायात् | यायाताम् | यायुः |
| म० | याहि | यातम् | यात | यायाः | यायातम् | यायात |
| उ० | यानि | याव | याम | यायाम् | यायाव | यायाम |

इसी प्रकार इन धातुओं के रूप चलेंगे—ख्या ( प०, कहना ), दा ( प०, काटना ), पा ( प०, रक्षा करना), प्रा ( प०, पूरा करना, भरना), प्सा ( प०, खाना ), द्रा ( प०, भागना, भाग जाना ), भा ( प०, चमकना ), मा ( प०, तोलना, नापना ), रा ( प०, देना ), ला ( प०, देना, लेना ), वा ( प०, बहना ), श्रा ( प०, पकाना ) और स्ना ( प०, नहाना )।

**४२१.** नियम ४१६ से ४१८ में दिए गए नियमों को स्पष्ट करने के लिए निम्नलिखित नियमित धातुओं के रूप दिए जाते है— वी, नु, जागृ, ईर्, चक्ष्, कश्, दुह्, लिह् और निञ्ज्।

---

१. हुझल्भ्यो हेर्धिः ( ६-४-१०१ )।

**वी** ( जाना ), पर०

| | अद् | | | लङ् | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | वेति | वीतः | वियन्ति | अवेत् | अवीताम् | अवियन् (अव्यन्) |
| म० | वेषि | वीथः | वीथ | अवेः | अवीतम् | अवीत |
| उ० | वेमि | वीवः | वीमः | अवयम् | अवीव | अवीम |

| | लोट् | | | विधिलिङ् | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | वेतु | वीताम् | वियन्तु | वीयात् | वीयाताम् | वीयुः |
| म० | वीहि | वीतम् | वीत | वीयाः | वीयातम् | वीयात |
| उ० | वयानि | वयाव | वयाम | वीयाम् | वीयाव | वीयाम |

नु (स्तुति करना) पर०

| | लोट् | | | लङ् | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | नौति | नुतः | नुवन्ति | अनौत् | अनुताम् | अनुवन् |
| म० | नौषि | नुथः | नुथ | अनौः | अनुतम् | अनुत |
| उ० | नौमि | नुवः | नुमः | अनवम् | अनुव | अनुम |

| | लोट् | | | विधिलिङ् | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | नौतु | नुताम् | नुवन्तु | नुयात् | नुयाताम् | नुयुः |
| म० | नुहि | नुतम् | नुत | नुयाः | नुयातम् | नुयात |
| उ० | नवानि | नवाव | नवाम | नुयाम् | नुयाव | नुयाम |

इसी प्रकार इन धातुओं के रूप चलेंगे—कु (प०, शब्द करना), क्षु (प०, छींकना, खाँसना), क्ष्णु ( प०, तीक्ष्ण करना ), द्यु ( प०, आक्रमण करना ), यु (प०, मिलना), सु (प०, प्रभुत्वयुक्त होना) और स्नु (प०, अर्क निकालना) ।

जागृ (जागना), पर०

| | लट् | | | लङ् | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | जागर्ति | जागृतः | जाग्रति[1] | अजागः | अजागृताम् | अजागरुः |
| म० | जागर्षि | जागृथः | जागृथ | अजागः | अजागृतम् | अजागृत |
| उ० | जागर्मि | जागृवः | जागृमः | अजागरम् | अजागृव | अजागृम |

१. देखो आगे चकास् धातु ।

| | लोट् | | | विधिलिङ् | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | जागर्तु | जागृताम् | जाग्रतु | जागृयात् | जागृयाताम् | जागृयुः |
| म० | जागृहि | जागृतम् | जागृत | जागृयाः | जागृयातम् | जागृयात |
| उ० | जागराणि | जागराव | जागराम | जागृयाम् | जागृयाव | जागृयाम |

ईर् (जाना) आत्मने०

| | लट् | | | लङ् | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | ईर्ते | ईराते | ईरते | ऐर्त | ऐराताम् | ऐरत |
| म० | ईर्षे | ईराथे | ईर्ध्वे | ऐर्थाः | ऐराथाम् | ऐर्ध्वम् |
| उ० | ईरे | ईर्वहे | ईर्महे | ऐरि | ऐर्वहि | ऐर्महि |

| | लोट् | | | विधिलिङ् | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | ईर्ताम् | ईराताम् | ईरताम् | ईरीत | ईरीयाताम् | ईरीरन् |
| म० | ईर्ष्व | ईराथाम् | ईर्ध्वम् | ईरीथाः | ईरीयाथाम् | ईरीध्वम् |
| उ० | ईरै | ईरावहै | ईरामहै | ईरीय | ईरीवहि | ईरीमहि |

चक्ष् (कहना), आत्मने०

| | लट् | | | लङ् | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | चष्टे | चक्षाथे | चक्षते | अचष्ट | अचक्षाताम् | अचक्षत |
| म० | चक्षे | चक्षाथे | चड्ढ्वे | अचष्ठाः | अचक्षाथाम् | अचड्ढ्वम् |
| उ० | चक्षे | चक्ष्वहे | चक्ष्महे | अचक्षि | अचक्ष्वहि | अचक्ष्महि |

| | लोट् | | | विधिलिङ् | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | चष्टाम् | चक्षाताम् | चक्षताम् | चक्षीत | चक्षीयाताम् | चक्षीरन् |
| म० | चक्ष्व | चक्षाथाम् | चड्ढ्वम् | चक्षीथाः | चक्षीयाथाम् | चक्षीध्वम् |
| उ० | चक्षै | चक्षावहै | चक्षामहै | चक्षीय | चक्षीवहि | चक्षीमहि |

कश् (जाना), आत्मने०

| | लट् | | | लङ् | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | कष्टे | कशाते | कशते | अकष्ट | अकशाताम् | अकशत |
| म० | कक्षे | कशाथे | कड्ढ्वे | अकष्ठाः | अकशाथाम् | अकड्ढ्वम् |
| उ० | कशे | कश्वहे | कश्महे | अकशि | अकश्वहि | अकश्महि |

| | लोट् | | | विधिलिङ |  | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | कष्टाम् | कशाताम् | कशताम् | कशीत | कशीयाताम् | कशीरन् |
| म० | कक्ष्व | कशाथाम् | कड्ढ्वम् | कशीथाः | कशीयाथाम् | कशीध्वम् |
| उ० | कशै | कशावहै | कशामहै | कशीय | कशीवहि | कशीमहि |

दुह् (दुहना), उभयपदी

| | पर० | | लट् | | आ० | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | दोग्धि | दुग्धः | दुहन्ति | दुग्धे | दुहाते | दुहते |
| म० | धोक्षि[1] | दुग्धः | दुग्ध | धुक्षे | दुहाथे | धुग्ध्वे |
| उ० | दोह्मि | दुह्वः | दुह्मः | दुहे | दुह्वहे | दुह्महे |

लङ

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | अधोक्-ग् | अदुग्धाम् | अदुहन् | अदुग्ध | अदुहाताम् | अदुहत |
| म० | अधोक्-ग् | अदुग्धम् | अदुग्ध | अदुग्धाः | अदुहाथाम् | अदुग्ध्वम् |
| उ० | अदोहम् | अदुह्व | अदुह्म | अदुहि | अदुह्वहि | अदुह्महि |

लोट्

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | दोग्धु | दुग्धाम् | दुहन्तु | दुग्धाम् | दुहाताम् | दुहताम् |
| म० | दुग्धि | दुग्धम् | दुग्ध | धुक्ष्व | दुहाथाम् | धुग्ध्वम् |
| उ० | दोहानि | दोहाव | दोहाम | दोहै | दोहावहै | दोहामहै |

विधिलिङ

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | दुह्यात् | दुह्याताम् | दुह्युः | दुहीत | दुहीयाताम् | दुहीरन् |
| म० | दुह्याः | दुह्यातम् | दुह्यात | दुहीथाः | दुहीयाथाम् | दुहीध्वम् |
| उ० | दुह्याम् | दुह्याव | दुह्याम | दुहीय | दुहीवहि | दुहीमहि |

इसी प्रकार दिह् धातु के रूप चलेंगे। दुह् के उ के स्थान पर इ कर दें और ओ के स्थान पर ए।

लिह् (चाटना), उभयपदी

| | पर० | | लट् | | आ० | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | लेढि | लीढः | लिहन्ति | लीढे | लिहाते | लिहते |
| म० | लेक्षि | लीढः | लीढ | लिक्षे | लिहाथे | लीढ्वे |
| उ० | लेह्मि | लिह्वः | लिह्मः | लिहे | लिह्वहे | लिह्महे |

१. द् के स्थान पर ध् के लिए देखो नियम ९५।

लङ्

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | अलेट्-ड् | अलीढाम् | अलिहन् | अलीढ | अलिहाताम् | अलिहत |
| म० | अलेट्-ड् | अलीढम् | अलीढ | अलीढाः | अलिहाथाम् | अलीढ्वम् |
| उ० | अलेहम् | अलिह्व | अलिह्म | अलिहि | अलिह्वहि | अलिह्महि |

लोट्

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | लेढु | लीढाम् | लिहन्तु | लीढाम् | लिहाताम् | लिहताम् |
| म० | लीढि | लीढम् | लीढ | लिक्ष्व | लिहाथाम् | लीढ्वम् |
| उ० | लेहानि | लेहाव | लेहाम | लेहै | लेहावहै | लेहामहै |

विधिलिङ्

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | लिह्यात् | लिह्याताम् | लिह्युः | लिहीत | लिहीयाताम् | लिहीरन् |
| | | इत्यादि । | | | | इत्यादि । |

निञ्ज्[1] (शुद्ध करना), आत्मनेपदी

लट् / लङ्

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | निङ्क्ते | निञ्जाते | निञ्जते | अनिङ्क्त | अनिञ्जाताम् | अनिञ्जत |
| म० | निङ्क्षे | निञ्जाथे | निङ्ग्ध्वे | अनिङ्क्थाः | अनिञ्जाथाम् | अनिङ्ग्ध्वम् |
| उ० | निञ्जे | निञ्ज्वहे | निञ्ज्महे | अनिञ्जि | अनिञ्ज्वहि | अनिञ्ज्महि |

लोट् / विधिलिङ्

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | निङ्क्ताम् | निञ्जाताम् | निञ्जताम् | निञ्जीत | निञ्जीयाताम् | निञ्जीरन् |
| म० | निङ्क्ष्व | निञ्जाथाम् | निङ्ग्ध्वम् | निञ्जीथाः | निञ्जीयाथाम् | निञ्जीध्वम् |
| उ० | निञ्जै | निञ्जावहै | निञ्जामहै | निञ्जीय | निञ्जीवहि | निञ्जीमहि |

**अनियमित धातुएँ**

अदादिगण की बहुत सी धातुओं के रूप अनियमित रूप से चलते हैं। उनका यहाँ पर अकारादि-क्रम से वर्णन किया जाता है।

**४२२.** अद् (प०, खाना) के लङ् लकार प्र० पु० और म० पु० एक० में क्रमशः आदत् और आदः रूप बनते हैं। अन्यत्र इसके रूप नियमित ढंग से चलते हैं।

अद् (खाना), पर०

लट् / लङ्

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | अत्तिः | अत्तः | अदन्ति | आदत् | आत्ताम् | आदन् |

१. इसी प्रकार इन धातुओं के रूप चलेंगे—शिञ्ज्, खिञ्ज्, पिञ्ज्, पृञ्ज्, वृज्, वृञ्ज्, पृच् । ये सभी आत्मनेपदी हैं।

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| म० | अत्सि | अत्थः | अत्थ | आदः | आत्तम् | आत्त |
| उ० | अद्मि | अद्वः | अद्मः | आदम् | आद्व | आद्म |

| | लोट् | | | विधिलिङ | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | अत्तु | अत्ताम् | अदन्तु | अद्यात् | अद्याताम् | अद्युः |
| म० | अद्धि | अत्तम् | अत्त | अद्याः | आद्यातम् | अद्यात |
| उ० | अदानि | अदाव | अदाम | अद्याम् | अद्याव | अद्याम |

**४२३**. निम्नलिखित धातुओं में धातु और प्रत्यय के बीच में इ लगता है, बाद में य को छोड़कर कोई भी व्यंजन हो तो। इनमें लङ लकार में प्र० पु० और म० पु० एक० में ई या अ बीच में लगता है। ये धातुएँ हैं—अन् (प०, साँस लेना), जक्ष् (प०, खाना), रुद् (प०, रोना), श्वस् (प०, साँस लेना) और स्वप् (प०, सोना)।

**अन्** (साँस लेना), पर०

| | लट् | | | लङ | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | अनिति | अनितः | अनन्ति | आनीत्<br>आनत् | आनिताम् | आनन् |
| म० | अनिषि | अनिथः | अनिथ | आनीः<br>आनः | आनितम् | आनित |
| उ० | अनिमि | अनिवः | अनिमः | आनम् | आनिव | आनिम |

| | लोट् | | | विधिलिङ | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | अनितु | अनिताम् | अनन्तु | अन्यात् | अन्याताम् | अन्युः |
| म० | अनिहि | अनितम् | अनित | अन्याः | अन्यातम् | अन्यात |
| उ० | अनानि | अनाव | अनाम | अन्याम् | अन्याव | अन्याम |

इसी प्रकार स्वप्, श्वस् और रुद् के रूप चलेंगे। जैसे—स्वप् के लट् प्र० पु० एक० स्वपिति। लङ प्र० पु० एक० अस्वपीत्-अस्वपत्, म० पु० एक० अस्वपीः—अस्वपः। लोट्—म० पु० एक० स्वपिहि, उ० पु० एक० स्वपानि। विधिलिङ—प्र० पु० एक० स्वप्यात् आदि। इसी प्रकार श्वस् के रूप होंगे—लट् प्र० पु० एक०—श्वसिति। लङ—प्र० पु० एक० अश्वसीत्-अश्वसत्, म० पु० एक० अश्वसीः—अश्वसः। लोट्—प्र० पु० एक० श्वसितु, म० पु० एक० श्वसिहि, उ० पु० एक० श्वसानि। विधिलिङ—प्र० पु० एक० श्वस्यात् आदि। रुद् के रूप होंगे—लट्—प्र० पु०

एक० रोदिति, उ० पु० रोदिमि, रुदिवः, रुदिमः। लङ्—प्र० पु० एक० अरोदीत्-अरोदत्, म० पु० एक०—अरोदीः-अरोदः, उ० पु० एक० अरोदम्। लोट्—प्र० पु० एक० रोदितु, म० पु० एक० रुदिहि, उ० पु० एक० रोदानि। विधिलिङ्—प्र० पु० एक०—रुद्यात्, आदि।

**४२४**. अस् (प०, कहीं पर आत्मनेपदी भी है[1]) (होना)। ङित् प्रत्यय बाद में होने पर अस् के अ का लोप हो जाता है। स् या ध्व बाद में होगा तो अस् के स् का लोप हो जाता है। लङ् में प्र० पु० और म० पु० एक० में बीच में ई लगता है। अन्य कई कारणों से यह अनियमित है।

अस् (होना) उभयपदी

| | पर० | | | आ० | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | | | **लट्** | | | |
| प्र० | अस्ति | स्तः | सन्ति | स्ते | साते | सते |
| म० | असि | स्थः | स्थ | से | साथे | ध्वे |
| उ० | अस्मि | स्वः | स्मः | हे | स्वहे | स्महे |
| | | | **लङ्** | | | |
| प्र० | आसीत् | आस्ताम् | आसन् | आस्त | आसाताम् | आसत |
| म० | आसीः | आस्तम् | आस्त | आस्थाः | आसाथाम् | आध्वम् |
| उ० | आसम् | आस्व | आस्म | आसि | आस्वहि | आस्महि |
| | | | **लोट्** | | | |
| प्र० | अस्तु | स्ताम् | सन्तु | स्ताम् | साताम् | सताम् |
| म० | एधि | स्तम् | स्त | स्व | साथाम् | ध्वम् |
| उ० | असानि | असाव | असाम | असै | असावहै | असामहै |
| | | | **विधिलिङ्** | | | |
| प्र० | स्यात् | स्याताम् | स्युः | सीत | सीतायाम् | सीरन् |
| म० | स्याः | स्यातम् | स्यात | सीथाः | सीयाथाम् | सीध्वम् |
| उ० | स्याम् | स्याव | स्याम | सीय | सीवहि | सीमहि |

**४२५**. आस् (बैठना) आ०। इसके भी स् का लोप होता है, ध्व बाद में होने पर।

---

१. कुछ स्थानों पर अस् धातु आत्मनेपदी है। देखो—भट्टिकाव्य (२-३५) अन्यो व्यतिस्ते तु ममापि धर्मः, आदि। यहाँ पर इसका कर्मव्यतिहार (एक का काम दूसरे के द्वारा किया जाना) अर्थ है।

आस् (बैठना), आत्मने०

| | लट् | | | लङ् | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | आस्ते | आसाते | आसते | आस्त | आसाताम् | आसत |
| म० | आस्से | आसाथे | आध्वे | आस्थाः | आसाथाम् | आध्वम् |
| उ० | आसे | आस्वहे | आस्महे | आसि | आस्वहि | आस्महि |
| | लोट् | | | विधिलिङ् | | |
| प्र० | आस्ताम् | आसाताम् | आसताम् | आसीत | आसीयाताम् | आसीरन् |
| म० | आस्स्व | आसाथाम् | आध्वम् | आसीथाः | आसीयाथाम् | आसीध्वम् |
| उ० | आसै | आसावहै | आसामहै | आसीय | आसीवहि | आसीमहि |

इसी प्रकार वम् (आ०, पहनना) धातु के रूप चलेंगे ।

**४२६.** इ (प०, जाना)[1] धातु के इ को य् हो जाता है, बाद में अजादि ङित् प्रत्यय होने पर । लट्—प्र० पु० एति इतः यन्ति । लङ्—प्र० पु० एक० ऐत्, म० पु० एक० ऐः, उ० पु० आयम् ऐव ऐम । लोट्—प्र० म० उ० एक०—एतु, इहि, अयानि । लोट् प्र० पु० बहु० यन्तु ।

अधि+इ[2] (आ०, पढ़ना) के रूप नियमित रूप से चलते हैं । जैसे—

अधि+इ (पढ़ना), आत्मने०

| | लट् | | | लङ् | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | अधीते | अधीयाते | अधीयते | अध्यैत | अध्यैयाताम् | अध्यैयत |
| म० | अधीषे | अधीयाथे | अधीध्वे | अध्यैथाः | अध्यैयाथाम् | अध्यैध्वम् |
| उ० | अधीये | अधीवहे | अधीमहे | अध्यैयि | अध्यैवहि | अध्यैमहि |

---

१. ई (प०, जाना) के रूप वी धातु के तुल्य चलते हैं । लट् एति ईतः इयन्ति । लोट्—प्र० पु० बहु० इयन्तु, म० पु० एक० ईहि ।

२. अधि+इ (पर०, याद करना) के रूप इ धातु के तुल्य चलेंगे । लट्—प्र० पु०बहु० अधियन्ति । कुछ आचार्यों का मत है कि इसके रूप केवल आर्धधातुक लकारों में ही इ धातु के तुल्य चलेंगे । उनके मतानुसार, लट् प्र० पु०बहु० में अधीयन्ति रूप होगा । अपने मत के समर्थन में उन्होंने भट्टि० (३-१८) की यह पंक्ति उद्धृत की है—ससीतयो राघवयोरधीयन्० । केचित्तु आर्धधातुकाधिकारोक्तस्यैवातिदेशमाहुः । तन्मते यण्न । (सि० कौ०) ।

| | लोट् | | | विधिलिङ | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | अधीताम् | अधीयाताम् | अधीयताम् | अधीयीत | अधीयीयाताम् | अधीयीरन् |
| म० | अधीष्व | अधीयाथाम् | अधीध्वम् | अधीयीथाः | अधीयीयाथाम् | अधीयीध्वम् |
| उ० | अध्ययै | अध्ययावहै | अध्ययामहै | अधीयीय | अधीयीवहि | अधीयीमहि |

**४२७.** ईड् (आ०, स्तुति करना) और ईश् (आ०, स्वामी होना), इन दोनों धातुओं में स् और ध्व से पहले इ लग जाता है, लङ म० पु० बहु० को छोड़कर।

ईड् (स्तुति), आत्मने०

| | लट् | | | लङ | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | ईट्टे | ईडाते | ईडते | ऐट्ट | ऐडाताम् | ऐडत |
| म० | ईडिषे | ईडाथे | ईडिध्वे | ऐट्ठाः | ऐडाथाम् | ऐड्ढ्वम् |
| उ० | ईडे | ईड्वहे | ईड्महे | ऐडि | ऐड्वहि | ऐड्महि |

| | लोट् | | | विधिलिङ | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | ईट्टाम् | ईडाताम् | ईडताम् | ईडीत | ईडीयाताम् | ईडीरन् |
| म० | ईडिष्व | ईडाथाम् | ईडिध्वम् | ईडीथाः | ईडीयाथाम् | ईडीध्वम् |
| उ० | ईडै | ईडावहै | ईडामहै | ईडीय | ईडीवहि | ईडीमहि |

इसी प्रकार ईश् धातु के रूप चलेंगे। लट् म० पु०—ईशिषे ईशाथे ईशिध्वे। लङ—प्र० पु० एक० ऐष्ट, म० पु० एक०, ऐष्ठाः, उ० पु० एक० ऐशि, म० पु० बहु० ऐड्ढ्वम्। लोट्—म० पु० बहु० ईशिध्वम्, उ० पु० एक० ईशै। विधिलिङ—प्र० पु० एक० ईशीत।

**४२८.** ऊर्णु (ढँकना, उभयपदी)—इसको हलादि पित् (सबल) तिङ बाद में होने पर विकल्प से उ को औ होता है, लङ प्र० पु० और म० पु० एक० को छोड़ कर।

ऊर्णु (ढकना)—उभयपदी

| | पर० | लट् | | आ० | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | ऊर्णोति-ऊर्णौति | ऊर्णुतः | ऊर्णुवन्ति | ऊर्णुते | ऊर्णुवाते | ऊर्णुवते |
| म० | ऊर्णोषि-ऊर्णौषि | ऊर्णुथः | ऊर्णुथ | ऊर्णुषे | ऊर्णुवाथे | ऊर्णुध्वे |
| उ० | ऊर्णोमि-ऊर्णौमि | ऊर्णुवः | ऊर्णुमः | ऊर्णुवे | ऊर्णुवहे | ऊर्णुमहे |

लङ्

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | और्णोत् | और्णुताम् | और्णुवन् | और्णुत | और्णुवाताम् | और्णुवत |
| म० | और्णोः | और्णुतम् | और्णुत | और्णुथाः | और्णुवाथाम् | और्णुध्वम् |
| उ० | और्णवम् | और्णुव | और्णुम | और्णुवि | और्णुवहि | और्णुमहि |

लोट्

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | ऊर्णोतु-ऊर्णौतु | ऊर्णुताम् | ऊर्णुवन्तु | ऊर्णुताम् | ऊर्णुवाताम् | ऊर्णुवताम् |
| म० | ऊर्णुहि | ऊर्णुतम् | ऊर्णुत | ऊर्णुष्व | ऊर्णुवाथाम् | ऊर्णुध्वम् |
| उ० | ऊर्णवानि | ऊर्णवाव | ऊर्णवाम | ऊर्णवै | ऊर्णवावहै | ऊर्णवामहै |

विधिलिङ्

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | ऊर्णुयात् | ऊर्णुयाताम् | ऊर्णुयुः | ऊर्णुवीत | ऊर्णुवीयाताम् | ऊर्णुवीरन् |
| म० | ऊर्णुयाः | ऊर्णुयातम् | ऊर्णुयात | ऊर्णुवीथाः | ऊर्णुवीयाथाम् | ऊर्णुवीध्वम् |
| उ० | ऊर्णुयाम् | ऊर्णुयाव | ऊर्णयाम | ऊर्णुवीय | ऊर्णुवीवहि | ऊर्णुवीमहि |

**४२९.** चकास् ( प०, चमकना ) । चकास्, जक्ष्, जागृ, दरिद्रा और शास् धातुओं को प्र० पु० बहु० में प्रत्यय में न् नहीं लगता है । इन धातुओं में लङ् लकार प्र० पु० बहु० में उस् लगता है । लोट् म० पु० एक० में चकास् के चकाद्धि-चकाधि रूप होते हैं ।

**चकास्** ( चमकना ) पर०

**उदाहरण**

| | लट् | | | लङ् | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | चकास्ति | चकास्तः | चकासति | अचकात्-द् | अचकास्ताम् | अचकासुः |
| म० | चकास्सि | चकस्थः | चकास्थ | अचकाः- अचकात्-द् | अचकास्तम् | अचकास्त |
| उ० | चकास्मि | चकास्वः | चकास्मः | अचकासम् | अचकास्व | अचकास्म |

| | लोट् | | | विधिलिङ् | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | चकास्तु | चकास्ताम् | चकासतु | चकास्यात् | चकास्याताम् | चकास्युः |
| म० | चकाद्धि-धि | चकास्तम् | चकास्त | चकास्याः | चकास्यातम् | चकास्यात |
| उ० | चकासानि | चकासाव | चकासाम | चकास्याम् | चकास्याव | चकास्याम |

जक्ष्—पर० ( देखो ऊपर अन् और चकास् धातु )

| | लट् | | | लङ् | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | जक्षिति | जक्षितः | जक्षति | अजक्षीत्, अजक्षत् | अजक्षिताम् | अजक्षुः |
| म० | जक्षिषि | जक्षिथः | जक्षिथ | अजक्षीः-अजक्षः | अजक्षितम् | अजक्षित |
| उ० | जक्षिमि | जक्षिवः | जक्षिमः | अजक्षम् | अजक्षिव | अजक्षिम |

| | लोट् | | | विधिलिङ् | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | जक्षितु | जक्षिताम् | जक्षतु | जक्ष्यात् | जक्ष्याताम् | जक्ष्युः |
| म० | जक्षिहि | जक्षितम् | जक्षित | जक्ष्याः | जक्ष्यातम् | जक्ष्यात |
| उ० | जक्षाणि | जक्षाव | जक्षाम | जक्ष्याम् | जक्ष्याव | जक्ष्याम |

**४३०.** दरिद्रा ( प०, दरिद्र होना ) । अजादि ङित् प्रत्यय बाद में होने पर दरिद्रा के आ का लोप हो जाता है और हलादि ङित् प्रत्यय बाद में होने पर दरिद्रा के आ को इ हो जाता है ।

**दरिद्रा**—पर०

| | लट् | | | लङ् | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | दरिद्राति | दरिद्रितः | दरिद्रति | अदरिद्रात् | अदरिद्रिताम् | अदरिद्रुः |
| म० | दरिद्रासि | दरिद्रिथः | दरिद्रिथ | अदरिद्राः | अदरिद्रितम् | अदरिद्रित |
| उ० | दरिद्रामि | दरिद्रिवः | दरिद्रिमः | अदरिद्राम् | अदरिद्रिव | अदरिद्रिम |

| | लोट् | | | विधिलिङ् | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | दरिद्रातु | दरिद्रिताम् | दरिद्रतु | दरिद्रियात् | दरिद्रियाताम् | दरिद्रियुः |
| म० | दरिद्रिहि | दरिद्रितम् | दरिद्रित | दरिद्रियाः | दरिद्रियातम् | दरिद्रियात |
| उ० | दरिद्राणि | दरिद्राव | दरिद्राम | दरिद्रियाम् | दरिद्रियाव | दरिद्रियाम |

**४३१. द्विष्** ( द्वेष करना )—उभयपदी। इसको पर० लङ् प्र० पु० बहु० में विकल्प से उस् होता है ।

**द्विष्**—उभयपदी

लट्

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | द्वेष्टि | द्विष्टः | द्विषन्ति | द्विष्टे | द्विषाते | द्विषते |
| म० | द्वेक्षि | द्विष्ठः | द्विष्ठ | द्विक्षे | द्विषाथे | द्विड्ढ्वे |
| उ० | द्वेष्मि | द्विष्वः | द्विष्मः | द्विष्वे | द्विष्वहे | द्विष्महे |

लङ्

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | **अद्वेट्-ड्** | अद्विष्टाम् | अद्विषन्-अद्विषुः | अद्विष्ट | अद्विषाताम् | अद्विषत |
| म० | **अद्वेट्-ड्** | अद्विष्टम् | अद्विष्ट | अद्विष्ठाः | अद्विषाथाम् | अद्विड्ढ्वम् |
| उ० | **अद्वेषम्** | अद्विष्व | अद्विष्म | अद्विषि | अद्विष्वहि | अद्विष्महि |

लोट्

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | **द्वेष्टु** | द्विष्टाम् | द्विषन्तु | द्विष्टाम् | द्विषाताम् | द्विषताम् |
| म० | **द्विड्ढि** | द्विष्टम् | द्विष्ट | द्विक्ष्व | द्विषाथाम् | द्विड्ढ्वम् |
| उ० | **द्वेषाणि** | द्वेषाव | द्वेषाम | द्वेषै | द्वेषावहै | द्वेषामहै |

विधिलिङ्

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | **द्विष्यात्** | द्विष्याताम् | द्विष्युः | द्विषीत | द्विषीयाताम् | द्विषीरन् |
| म० | **द्विष्याः** | द्विष्यातम् | द्विष्यात | द्विषीथाः | द्विषीयाथाम् | द्विषीध्वम् |
| उ० | **द्विष्याम्** | द्विष्याव | द्विष्याम | द्विषीय | द्विषीवहि | द्विषीमहि |

**४३२.** ब्रू ( कहना ) उभयपदी। इसमें हलादि पित् ( सबल ) प्रत्ययों से पूर्व ई लगता है।

**ब्रू**—उभयपदी

लट्

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | **ब्रवीति-** आह | ब्रूतः- आहतुः | ब्रुवन्ति- आहुः | ब्रूते | ब्रुवाते | ब्रुवते |
| म० | **ब्रवीषि-** आत्थ | ब्रूथः- आहथुः | ब्रूथ | ब्रूषे | ब्रुवाथे | ब्रूध्वे |
| उ० | **ब्रवीमि** | ब्रूवः | ब्रूमः | ब्रुवे | ब्रूवहे | ब्रूमहे |

लङ्

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | **अब्रवीत्** | अब्रूताम् | अब्रुवन् | अब्रूत | अब्रुवाताम् | अब्रुवत |
| म० | **अब्रवीः** | अब्रूतम् | अब्रूत | अब्रूथाः | अब्रुवाथाम् | अब्रूध्वम् |
| उ० | **अब्रवम्** | अब्रूव | अब्रूम | अब्रुवि | अब्रूवहि | अब्रूमहि |

लोट्

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | **ब्रवीतु** | ब्रूताम् | ब्रुवन्तु | ब्रूताम् | ब्रुवाताम् | ब्रुवताम् |
| म० | **ब्रूहि** | ब्रूतम् | ब्रूत | ब्रूष्व | ब्रुवाथाम् | ब्रूध्वम् |
| उ० | **ब्रवाणि** | ब्रवाव | ब्रवाम | ब्रवै | ब्रवावहै | ब्रवामहै |

विधिलिङ्

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | ब्रूयात् | ब्रूयाताम् | ब्रूयुः | ब्रुवीत | ब्रुवीयाताम् | ब्रुवीरन् |
| म० | ब्रूयाः | ब्रूयातम् | ब्रूयात | ब्रुवीथाः | ब्रुवीयाथाम् | ब्रुवीध्वम् |
| उ० | ब्रूयाम् | ब्रूयाव | ब्रूयाम | ब्रुवीय | ब्रुवीवहि | ब्रुवीमहि |

**४३३.** मृज् ( प०, साफ करना )। इसके ऋ को पित् ( सबल ) प्रत्यय बाद में होने पर वृद्धि अवश्य होती है और अजादि ङित् ( निर्बल ) प्रत्यय बाद में होने पर वृद्धि विकल्प से होती है।

**मृज्**—पर०

| | लट् | | | लङ् | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | मार्ष्टि | मृष्टः | मार्जन्ति, मृजन्ति | अमार्ट्-ड् | अमृष्टाम् | अमार्जन्, अमृजन् |
| म० | मार्क्षि | मृष्ठः | मृष्ठ | अमार्ट्-ड् | अमृष्टम् | अमृष्ट |
| उ० | मार्ज्मि | मृज्वः | मृज्मः | अमार्जम् | अमृज्व | अमृज्म |

| | लोट् | | | विधिलिङ् | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | मार्ष्टु | मृष्टाम् | मार्जन्तु, मृजन्तु | मृज्यात् | मृज्याताम् | मृज्युः |
| म० | मृड्ढि | मृष्टम् | मृष्ट | मृज्याः | मृज्यातम् | मृज्यात |
| उ० | मार्जानि | मार्जाव | मार्जाम | मृज्याम् | मृज्याव | मृज्याम |

**४३४.** वच् ( प०, बोलना )। इसके विषय में मत है कि इसका लट् प्र० पु० बहु० में प्रयोग नहीं होता है। कुछ के मतानुसार इसका बहुवचन-मात्र में ही प्रयोग नहीं होता है और कुछ के मतानुसार इसका प्र० पु० बहु० में ही प्रयोग नहीं होता है।[1]

**वच्**—पर०

| | लट् | | | लङ् | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | वक्ति | वक्तः | —१ | अवक्-ग् | अवक्ताम् | अवचन् |
| म० | वक्षि | वक्थः | वक्थ | अवक्-ग् | अवक्तम् | अवक्त |
| उ० | वच्मि | वच्वः | वच्मः | अवचम् | अवच्व | अवच्म |

१. अयमन्तिपरो न प्रयुज्यते। बहुवचनपर इत्यन्ये। झिपर इत्यपरे। (सि० कौ०)

| | लोट् | | | विधिलिङ् | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | वक्तु | वक्ताम् | वचन्तु | वच्यात् | वच्याताम् | वच्युः |
| म० | वग्धि | वक्तम् | वक्त | वच्याः | वच्यातम् | वच्यात |
| उ० | वचानि | वचाव | वचाम | वच्याम् | वच्याव | वच्याम |

**४३५.** वश् ( प०, चाहना )। ङित् ( निर्बल ) प्रत्यय बाद में होने पर व को उ हो जाता है।

**वश्**--पर०

| | लट् | | | लङ् | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | वष्टि | उष्टः | उशन्ति | अवट्-ड् | औष्टाम् | औशन् |
| म० | वक्षि | उष्ठः | उष्ठ | अवट्-ड् | औष्टम् | औष्ट |
| उ० | वश्मि | उश्वः | उश्मः | अवशम् | औश्व | औश्म |

| | लोट् | | | विधिलिङ् | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | वष्टु | उष्टाम् | उशन्तु | उश्यात् | उश्याताम् | उश्युः |
| म० | उड्ढि | उष्टम् | उष्ट | उश्याः | उश्यातम् | उश्यात |
| उ० | वशानि | वशाव | वशाम | उश्याम् | उश्याव | उश्याम |

**४३६.** विद् ( प०, जानना )। इसमें लट् लकार में लिट् लकार वाले **प्रत्यय** विकल्प से लगते हैं। इसमें लोट् लकार में विकल्प से धातु के बाद आम् लगता है और उसके बाद कृ धातु के लोट् लकार के रूप लगते हैं।

**विद्**--पर०

| | लट् | | | लङ् | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | वेत्ति, वेद | वित्तः, विदतुः | विदन्ति, विदुः | अवेत्-द् | अवित्ताम् | अविदुः |
| म० | वेत्सि, वेत्थ | वित्थः, विदथुः | वित्थ, विद | अवेः, अवेत्-द् | अवित्तम् | अवित्त |
| उ० | वेद्मि, वेद | विद्वः, विद्व | विद्मः, विद्म | अवेदम् | अविद्व | अविद्म |

लोट्

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | वेत्तु | वित्ताम् | विदन्तु | विदांकरोतु | विदांकुरुताम् | विदांकुर्वन्तु |
| म० | विद्धि | वित्तम् | वित्त | विदांकुरु | विदांकुरुतम् | विदांकुरुत |
| उ० | वेदानि | वेदाव | वेदाम | विदांकरवाणि | विदांकरवाव | विदांकरवाम |

विधिलिङ्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | विद्यात् | विद्याताम् | विद्युः |

| | | | |
|---|---|---|---|
| म० | विद्याः | विद्यातम् | विद्यात |
| उ० | विद्याम् | विद्याव | विद्याम |

**४३७.** शास्[1] ( प०, शासन करना, शिक्षा देना )। हलादि ङित् प्रत्यय बाद में होने पर इसके आ को इ हो जाता है। देखो पहले चकास् धातु। (पृष्ठ २७०)

**शास्—पर०**

| | लट् | | | लङ् | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | शास्ति | शिष्टः | शासति | अशात्-द् | अशिष्टाम् | अशासुः |
| म० | शास्सि | शिष्ठः | शिष्ठ | अशाः, अशात्-द् | अशिष्टम् | अशिष्ट |
| उ० | शास्मि | शिष्वः | शिष्मः | अशासम् | अशिष्व | अशिष्म |

| | लोट् | | | विधिलिङ् | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | शास्तु | शिष्टाम् | शासतु | शिष्यात् | शिष्याताम् | शिष्युः |
| म० | शाधि | शिष्टम् | शिष्ट | शिष्याः | शिष्यातम् | शिष्यात |
| उ० | शासानि | शासाव | शासाम | शिष्याम् | शिष्याव | शिष्याम |

**४३८.** शी ( आ०, सोना )। शी के ई को सभी तिङ् प्रत्ययों मे पूर्व गुण हो जाता है। विधिलिङ् को छोड़कर अन्य सार्वधातुक लकारों में प्र० पु० बहु० में प्रत्यय से पहले र् और लग जाता है।

**शी ( सोना ), आ०**

| | लट् | | | लङ् | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | शेते | शयाते | शेरते | अशेत | अशयाताम् | अशेरत |
| म० | शेषे | शयाथे | शेध्वे | अशेथाः | अशयाथाम् | अशेध्वम् |
| उ० | शये | शेवहे | शेमहे | अशयि | अशेवहि | अशेमहि |

| | लोट् | | | विधिलिङ् | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | शेताम् | शयाताम् | शेरताम् | शयीत | शयीयाताम् | शयीरन् |
| म० | शेष्व | शयाथाम् | शेध्वम् | शयीथाः | शयीयाथाम् | शयीध्वम् |
| उ० | शयै | शयावहै | शयामहै | शयीय | शयीवहि | शयीमहि |

**४३९.** सू ( आ०, जन्म देना )। इसको पित् ( सबल ) प्रत्ययों मे पूर्व गुण नहीं होता है।

---

१. आ + शास् धातु आत्मनेपदी है। इसके रूप आस् के तुल्य चलाने चाहिएँ।

## सू—( जन्म देना ), आ०

| | लट् | | | लङ् | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | सूते | सुवाते | सुवते | असूत | असुवाताम् | असुवत |
| म० | सूषे | सुवाथे | सूध्वे | असूथाः | असुवाथाम् | असूध्वम् |
| उ० | सुवे | सूवहे | सूमहे | असुवि | असूवहि | असूमहि |

| | लोट् | | | विधिलिङ् | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | सूताम् | सुवाताम् | सुवताम् | सुवीत | सुवीयाताम् | सुवीरन् |
| म० | सूष्व | सुवाथाम् | सूध्वम् | सुवीथाः | सुवीयाथाम् | सुवीध्वम् |
| उ० | सुवै | सुवावहै | सुवामहै | सुवीय | सुवीवहि | सुवीमहि |

**४४०.** स्तु ( उ०, स्तुति करना ), तु ( प०, बढ़ना ) और रु ( प०, शब्द करना ) धातुओं में हलादि तिङों से पूर्व विकल्प से ई लगता है।

## स्तु—उभयपदी

लट्

| | पर० | | | आत्मने० | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | स्तौति, | स्तुतः, | स्तुवन्ति | स्तुते, | स्तुवाते | स्तुवते |
| | स्तवीति | स्तुवीतः | ” | स्तुवीते | | |
| म० | स्तौषि, | स्तुथः, | स्तुथ | स्तुषे, | स्तुवाथे | स्तुध्वे, |
| | स्तवीषि | स्तुवीथः | स्तुवीथ | स्तुवीषे | | स्तुवीध्वे |
| उ० | स्तौमि, | स्तुवः, | स्तुमः, | स्तुवे | स्तुवहे, | स्तुमहे, |
| | स्तवीमि | स्तुवीवः | स्तुवीमः | | स्तुवीवहे | स्तुवीमहे |

लङ्

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | अस्तौत्, | अस्तुताम्, | अस्तुवन् | अस्तुत, | अस्तुवाताम् | अस्तुवत |
| | अस्तवीत् | अस्तुवीताम् | | अस्तुवीत | | |
| म० | अस्तौः, | अस्तुतम्, | अस्तुत, | अस्तुथाः, | अस्तुवाथाम्, | अस्तुध्वम्, |
| | अस्तवीः | अस्तुवीतम् | अस्तुवीत | अस्तुवीथाः | | अस्तुवीध्वम् |
| उ० | अस्तवम् | अस्तुव, | अस्तुम | अस्तुवि, | अस्तुवहि, | अस्तुमहि, |
| | | अस्तुवीव | अस्तुवीम | | अस्तुवीवहि | अस्तुवीमहि |

लोट्

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | स्तौतु, | स्तुताम्, | स्तुवन्तु | स्तुताम्, | स्तुवाताम् | स्तुवताम् |
| | स्तवीतु | स्तुवीताम् | | स्तुवीताम् | | |

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| म० | स्तुहि, स्तुवीहि | स्तुतम्, स्तुवीतम् | स्तुत, स्तुवीत | स्तुष्व, स्तुवीष्व | स्तुवाथाम् | स्तुध्वम्, स्तुवीध्वम् |
| उ० | स्तवानि | स्तवाव | स्तवाम | स्तवै | स्तवावहै | स्तवामहै |

विधिलिङ्

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | स्तुयात्, स्तुवीयात् | स्तुयाताम्, स्तुवीयाताम् | स्तुयुः, स्तुवीयुः | स्तुवीत | स्तुवीयाताम् | स्तुवीरन् |
| म० | स्तुयाः, स्तुवीयाः | स्तुयातम्, स्तुवीयातम् | स्तुयात स्तुवीयात | स्तुवीथाः | स्तुवीयाथाम् | स्तुवीध्वम् |
| उ० | स्तुयाम्, स्तुवीयाम् | स्तुयाव, स्तुवीयाव | स्तुयाम, स्तुवीयाम | स्तुवीय | स्तुवीवहि | स्तुवीमहि |

सूचना—इसी प्रकार तु और रु धातु के रूप चलेंगे।

**४४१.** हन् ( प०, आ०, मारना, हिंसा करना )। ङित् ( **निर्बल** ) झलादि ( अन्तःस्थ और पंचम वर्ण को छोड़ कर सभी व्यंजन ) **प्रत्यय बाद में होने** पर हन् के न् का लोप हो जाता है। अजादि प्रत्यय बाद में होने पर हन् के अ का लोप हो जाता है और ह को घ् हो जाता है। लोट् म० पु० एक० में जहि रूप बनता है।

हन् ( हिंसा करना, जाना ), पर०

| | लट् | | | लङ् | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | हन्ति | हतः | घ्नन्ति | अहन् | अहताम् | अघ्नन् |
| म० | हंसि | हथः | हथ | अहन् | अहतम् | अहत |
| उ० | हन्मि | हन्वः | हन्मः | अहनम् | अहन्व | अहन्म |

| | लोट् | | | विधिलिङ् | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | हन्तु | हताम् | घ्नन्तु | हन्यात | हन्याताम् | हन्युः |
| म० | जहि | हतम् | हत | हन्याः | हन्यातम् | हन्यात |
| उ० | हनानि | हनाव | हनाम | हन्याम् | हन्याव | हन्याम |

हन्[1]—आत्मने०

| | लट् | | | लङ् | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | हते | घ्नाते | घ्नते | अहत | अघ्नाताम् | अघ्नत |

१. **कुछ अर्थों में यह धातु आत्मनेपदी है।**

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| म० | हसे | हनाथे | हध्वे | अहथाः | अघ्नाथाम् | अहध्वम् |
| उ० | घ्ने | हन्वहे | हन्महे | अघ्नि | अहन्वहि | अहन्महि |
| | | लोट् | | | विधिलिङ् | |
| प्र० | हताम् | घ्नाताम् | घ्नताम् | घ्नीत | घ्नीयाताम् | घ्नीरन् |
| म० | हस्व | घ्नाथाम् | हध्वम् | घ्नीथाः | घ्नीयाथाम् | घ्नीध्वम् |
| उ० | हनै | हनावहै | हनामहै | घ्नीय | घ्नीवहि | घ्नीमहि |

**४४२.** ह्नु ( छिपाना ), आ०

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | | लट् | | | लङ् | |
| प्र० | ह्नुते | ह्नुवाते | ह्नुवते | अह्नुत | अह्नुवाताम् | अह्नुवत |
| म० | ह्नुषे | ह्नुवाथे | ह्नुध्वे | अह्नुथाः | अह्नुवाथाम् | अह्नुध्वम् |
| उ० | ह्नुवे | ह्नुवहे | ह्नुमहे | अह्नुवि | अह्नुवहि | अह्नुमहि |
| | | लोट् | | | विधिलिङ् | |
| प्र० | ह्नुताम् | ह्नुवाताम् | ह्नुवातम् | ह्नुवीत | ह्नुवीयाताम् | ह्नुवीरन् |
| म० | ह्नुष्व | ह्नुवाथाम् | ह्नुध्वम् | ह्नुवीथाः | ह्नुवीयाथाम् | ह्नुवीध्वम् |
| उ० | ह्नवै | ह्नवावहै | ह्नवामहै | ह्नुवीय | ह्नुवीवहि | ह्नुवीमहि |

## जुहोत्यादिगण (गण ३)

**४४३.** (क) इस गण में धातु को द्वित्व होकर अंग बनता है।

(ख) प्र० पु० बहु० में प्रत्यय का न् हट जाता है।

(ग) लङ् प्र० पु० बहु० में पर० में प्रत्यय को उः हो जाता है और इससे पूर्व धातु के आ का लोप हो जाता है तथा धातु के इ ई, उ ऊ और ऋ ॠ को गुण हो जाता है।

### धातु को द्वित्व करने के नियम

**४४४.** धातु के प्रथम स्वर को, यदि कोई व्यंजन उसके साथ है तो उसके सहित, द्वित्व ( दो बार पढ़ा जाना ) होता है। जैसे—पत् का पपत्, उख् का उउख् रूप होगा।

**सूचना**—द्वित्व होने पर धातु के प्रथम अक्षर को अभ्यास या द्वित्व अक्षर (Reduplicative Syllable) कहते हैं। जैसे—पपत् में पहला प, उउख् में पहला उ।

**४४५**. यदि धातु संयुक्त वर्ण से प्रारम्भ होती है तो अभ्यास में उस धातु का पहला वर्ण और स्वर शेष रहेगा। जैसे––प्रच्छ् का पप्रच्छ्।

(क) यदि धातु के संयुक्त वर्ण में पहला वर्ण ऊष्म ( श्, ष्, स् ) है और दूसरा वर्ण खर् ( कठोर व्यंजन ) है तो द्वित्व होने पर खर् ( कठोर व्यंजन ) ही शेष रहेगा। जैसे––स्पर्ध् का पस्पर्ध् और श्चुत् का चुश्चुत् होगा। परन्तु स्वन् का सस्वन् होगा।

**४४६**. अभ्यास ( द्वित्व अक्षर ) में महाप्राण ( वर्ग के २, ४ ) को अल्प-प्राण ( उसी वर्ग का १, ३ ) हो जाएगा। जैसे––छिद् का चिच्छिद्, धु का दुधु, भुज् का बुभुज्, इत्यादि।

**४४७**. द्वित्व होने पर अभ्यास में उपर्युक्त नियम के साथ यह नियम लगेगा :– अभ्यास के कवर्ग को वैसा ही चवर्ग हो जाता है। अभ्यास के ह को ज् होता है। जैसे––कम्>ककम्>चकम्, खन्>खखन्>कखन्>चखन्, हु>जुहु, आदि।

**४४८**. द्वित्व होने पर अभ्यास के दीर्घ स्वर को ह्रस्व स्वर हो जाता है और अभ्यास के ऋ को अ हो जाता है। जैसे––धा>दधा, नी>निनी, कृ>चकृ, आदि।

**४४९**. द्वित्व होने पर अभ्यास में धातु की उपधा के ए ऐ को इ और ओ औ को उ हो जाता है। जैसे––सेव्>सिषेव्, ढौक्>डुढौक्, आदि।

**उदाहरण**

**कि** ( जानना ), पर०

| | लट् | | | लङ् | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | चिकेति | चिकितः | चिक्यति | अचिकेत् | अचिकिताम् | अचिकयुः |
| म० | चिकेषि | चिकिथः | चिकिथ | अचिकेः | अचिकितम् | अचिकित |
| उ० | चिकेमि | चिकिवः | चिकिमः | अचिकयम् | अचिकिव | अचिकिम |
| | लोट् | | | विधिलिङ् | | |
| प्र० | चिकेतु | चिकिताम् | चिक्यतु | चिकियात् | चिकियाताम् | चिकियुः |
| म० | चिकिहि | चिकितम् | चिकित | चिकियाः | चिकियातम् | चिकियात |
| उ० | चिकयानि | चिकयाव | चिकयाम | चिकियाम् | चिकियाव | चिकियाम |

**हु** ( हवन करना ), पर०

| | लट् | | | लङ् | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | जुहोति | जुहुतः | जुह्वति | अजुहोत् | अजुहुताम् | अजुहवुः |

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| म० | जुहोषि | जुहुथः | जुहुथ | अजुहोः | अजुहुतम् | अजुहुत |
| उ० | जुहोमि | जुहुवः | जुहुमः | अजुहवम् | अजुहुव | अजुहुम |

| | लोट् | | | विधिलिङ् | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | जुहोतु | जुहुताम् | जुह्वतु | जुहुयात् | जुहुयाताम् | जुहुयुः |
| म० | जुहुधि | जुहुतम् | जुहुत | जुहुयाः | जुहुयातम् | जुहुयात |
| उ० | जुहवानि | जुहवाव | जुहवाम | जुहुयाम् | जुहुयाव | जुहुयाम |

**ह्री** ( लज्जित होना ), पर०

| | लट् | | | लङ् | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | जिह्रेति | जिह्रीतः | जिह्रियति | अजिह्रेत् | अजिह्रीताम् | अजिह्रयुः |
| म० | जिह्रेषि | जिह्रीथः | जिह्रीथ | अजिह्रेः | अजिह्रीतम् | अजिह्रीत |
| उ० | जिह्रेमि | जिह्रीवः | जिह्रीमः | अजिह्रयम् | अजिह्रीव | अजिह्रीम |

| | लोट् | | | विधिलिङ् | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | जिह्रेतु | जिह्रीताम् | जिह्रियतु | जिह्रीयात् | जिह्रीयाताम् | जिह्रीयुः |
| म० | जिह्रीहि | जिह्रीतम् | जिह्रीत | जिह्रीयाः | जिह्रीयातम् | जिह्रीयात |
| उ० | जिह्रयाणि | जिह्रयाव | जिह्रयाम | जिह्रीयाम् | जिह्रीयाव | जिह्रीयाम |

## अपवाद धातुएँ

**४५०**. द्वित्व होने पर अभ्यास में इन धातुओं के स्वरों को इ हो जाता है—मा, हा ( जाना ), भृ, पॄ या पृ ( पूरा करना ) और ऋ धातु ।

**४५१**. द्वित्व होने पर अभ्यास में निज्, विज् और विष् धातुओं के इ को सर्वत्र ए हो जाता है और धातु के इ को अजादि पित् ( सबल ) प्रत्यय बाद में होने पर गुण नहीं होता है ।

**४५२**. द्वित्व होने के बाद दा और धा धातुओं के आ का लोप हो जाता है, ङित् ( निर्बल ) प्रत्यय बाद में होने पर। स्, ध्व, त और थ बाद में होंगे तो दध् को धत् हो जाता है। लोट् म० पु० एक० परस्मै० में दा का देहि और धा का धेहि रूप होता है ।

**४५३**. हलादि ङित् ( निर्बल ) प्रत्यय बाद में होने पर 'भी' के ई को विकल्प से ह्रस्व हो जाता है ।

(क) मा और हा ( जाना ) धातुओं को अजादि प्रत्यय बाद में होने पर

मिम् और जिह् हो जाता है तथा हलादि प्रत्यय बाद में होने पर इन्हें मिमी और जिही हो जाता है ।

**४५४.** हा ( त्याग करना, छोड़ना ) धातु को हलादि ङित् प्रत्यय ( विधि-लिङ को छोड़ कर ) बाद में होने पर जहि या जही हो जाता है और अजादि प्रत्यय बाद में होने पर तथा विधिलिङ में जह् हो जाता है, लोट् म० पु० एक० में इसके ये रूप होते हैं—जहाहि, जहिहि और जहीहि ।

**उदाहरण**

ऋ ( जाना ), पर०

| | लट् | | | लङ | |
|---|---|---|---|---|---|
| प्र० इयर्ति | इयृतः | इय्रति | ऐयः | ऐयृताम् | ऐयरुः |
| म० इयर्षि | इयृथः | इयृथ | ऐयः | ऐयृतम् | ऐयृत |
| उ० इयर्मि | इयृवः | इयृमः | ऐयरम् | ऐयृव | ऐयृम |
| | **लोट्** | | | **विधि लिङ** | |
| प्र० इयर्तु | इयृताम् | इय्रतु | इयृयात् | इयृयाताम् | इयृयुः |
| म० इयृहि | इयृतम् | इयृत | इयृयाः | इयृयातम् | इयृयात |
| उ० इयराणि | इयराव | इयराम | इयृयाम् | इयृयाव | इयृयाम |

**धा** ( धारण करना, रखना ), उभयपदी

| पर० | | | लट् | आत्मने० | |
|---|---|---|---|---|---|
| प्र० दधाति | धत्तः | दधति | धत्ते | दधाते | दधते |
| म० दधासि | धत्थः | धत्थ | धत्से | दधाथे | धद्ध्वे |
| उ० दधामि | दध्वः | दध्मः | दधे | दध्वहे | दध्महे |
| | | | **लङ** | | |
| प्र० अदधात् | अधत्ताम् | अदधुः | अधत्त | अदधाताम् | अदधत |
| म० अदधाः | अधत्तम् | अधत्त | अधत्थाः | अदधाथाम् | अधद्ध्वम् |
| उ० अदधाम् | अदध्व | अदध्म | अदधि | अदध्वहि | अदध्महि |
| | | | **लोट्** | | |
| प्र० दधातु | धत्ताम् | दधतु | धत्ताम् | दधाताम् | दधताम् |
| म० धेहि | धत्तम् | धत्त | धत्स्व | दधाथाम् | धद्ध्वम् |
| उ० दधानि | दधाव | दधाम | दधै | दधावहै | दधामहै |

विधिलिङ

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | दध्यात् | दध्याताम् | दध्युः | दधीत | दधीयाताम् | दधीरन् |
| म० | दध्याः | दध्यातम् | दध्यात | दधीथाः | दधीयाथाम् | दधीध्वम् |
| उ० | दध्याम् | दध्याव | दध्याम | दधीय | दधीवहि | दधीमहि |

**सूचना**--इसी प्रकार दा धातु के रूप चलते हैं। धा धातु के रूपों में जहाँ पर ध् है, उसको द् कर देने से दा धातु के रूप बन जाएँगे।

**निज्** ( स्वच्छ करना ), उभयपदी

लट्

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | नेनेक्ति | नेनिक्तः | नेनिजति | नेनिक्ते | नेनिजाते | नेनिजते |
| म० | नेनेक्षि | नेनिक्थः | नेनिक्थ | नेनिक्षे | नेनिजाथे | नेनिग्ध्वे |
| उ० | नेनेज्मि | नेनिज्वः | नेनिज्मः | नेनिजे | नेनिज्वहे | नेनिज्महे |

लङ

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | अनेनेक्-ग् | अनेनिक्ताम् | अनेनिजुः | अनेनिक्त | अनेनिजाताम् | अनेनिजत |
| म० | अनेनेक्-ग् | अनेनिक्तम् | अनेनिक्त | अनेनिक्थाः | अनेनिजाथाम् | अनेनिग्ध्वम् |
| उ० | अनेनिजम् | अनेनिज्व | अनेनिज्म | अनेनिजि | अनेनिज्वहि | अनेनिज्महि |

लोट्

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | नेनेक्तु | नेनिक्ताम् | नेनिजतु | नेनिक्ताम् | नेनिजाताम् | नेनिजताम् |
| म० | नेनिग्धि | नेनिक्तम् | नेनिक्त | नेनिक्ष्व | नेनिजाथाम् | नेनिग्ध्वम् |
| उ० | नेनिजानि | नेनिजाव | नेनिजाम | नेनिजै | नेनिजावहै | नेनिजामहै |

विधिलिङ

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | नेनिज्यात् | नेनिज्याताम् | नेनिज्युः | नेनिजीत | नेनिजीयाताम् | नेनिजीरन् |
| म० | नेनिज्याः | नेनिज्यातम् | नेनिज्यात | नेनिजीथाः | नेनिजीयाथाम् | नेनिजीध्वम् |
| उ० | नेनिज्याम् | नेनिज्याव | नेनिज्याम | नेनिजीय | नेनिजीवहि | नेनिजीमहि |

इसी प्रकार विज् ( उभयपदी ) धातु के रूप चलेंगे।

**पॄ** ( रक्षा करना, भरना ), पर०

| | लट् | | | लङ | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | पिपर्ति | पिपृतः | पिप्रति | अपिपः | अपिपृताम् | अपिपरुः |
| म० | पिपर्षि | पिपृथः | पिपृथ | अपिपः | अपिपृतम् | अपिपृत |
| उ० | पिपर्मि | पिपृवः | पिपृमः | अपिपरम् | अपिपृव | अपिपृम |

| | लोट् | | | विधिलिङ् | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | पिपर्तु | पिपृताम् | पिप्रतु | पिपृयात् | पिपृयाताम् | पिपृयुः |
| म० | पिपृहि | पिपृतम् | पिपृत | पिपृयाः | पिपृयातम् | पिपृयात |
| उ० | पिपराणि | पिपराव | पिपराम | पिपृयाम् | पिपृयाव | पिपृयाम |

**पॄ** ( रक्षा करना, भरना ), पर०

| | लट् | | | लङ् | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | पिपर्ति | पिपूर्तः[1] | पिपुरति | अपिपः | अपिपूर्ताम् | अपिपरुः |
| म० | पिपर्षि | पिपूर्थः | पिपूर्थ | अपिपः | अपिपूर्तम् | अपिपूर्त |
| उ० | पिपर्मि | पिपूर्वः | पिपूर्मः | अपिपरम् | अपिपूर्व | अपिपूर्म |

| | लोट् | | | विधिलिङ् | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | पिपर्तु | पिपूर्ताम् | पिपुरतु | पिपूर्यात् | पिपूर्याताम् | पिपूर्युः |
| म० | पिपूर्हि | पिपूर्तम् | पिपूर्त | पिपूर्याः | पिपूर्यातम् | पिपूर्यात |
| उ० | पिपराणि | पिपराव | पिपराम | पिपूर्याम् | पिपूर्याव | पिपूर्याम |

**भी** (डरना), पर०

| | लट् | | | लङ् | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | विभेति | विभीतः<br>विभितः | विभ्यति | अविभेत् | अविभीताम्<br>अबिभिताम् | अविभयुः |
| म० | विभेषि | विभीथः<br>विभिथः | विभीथ<br>विभिथ | अविभेः | अविभीतम्<br>अबिभितम् | अबिभीत<br>अबिभित |
| उ० | विभेमि | विभीवः<br>विभिवः | विभीमः<br>विभिमः | अविभयम् | अविभीव<br>अबिभिव | अविभीम<br>अविभिम |

| | लोट् | | | विधिलिङ् | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | विभेतु | विभीताम्<br>विभिताम् | विभ्यतु | विभीयात्<br>विभियात् | विभीयाताम्<br>बिभियाताम् | विभीयुः<br>विभियुः |
| म० | विभीहि<br>बिभिहि | विभीतम्<br>विभितम् | विभीत<br>बिभित | विभीयाः<br>विभियाः | बिभीयातम्<br>विभियातम् | विभीयात<br>विभियात |
| उ० | विभयानि | विभयाव | विभयाम | विभीयाम्<br>विभियाम् | विभीयाव<br>विभियाव | विभीयाम<br>विभियाम |

१. देखो नियम ३९४।

**भृ** (धारण करना, पालन करना), उभयपदी

| | पर० | | लट् | आ० | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | बिभर्ति | बिभृतः | बिभ्रति | बिभृते | बिभ्राते | बिभ्रते |
| म० | बिभर्षि | बिभृथः | बिभृथ | बिभृषे | बिभ्राथे | बिभृध्वे |
| उ० | बिभर्मि | बिभृवः | बिभृमः | बिभ्रे | बिभृवहे | बिभृमहे |

लङ्

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | अबिभः | अबिभृताम् | अबिभरुः | अबिभृत | अबिभ्राताम् | अबिभ्रत |
| म० | अबिभः | अबिभृतम् | अबिभृत | अबिभृथाः | अबिभ्राथाम् | अबिभृध्वम् |
| उ० | अबिभरम् | अबिभृव | अबिभृम | अबिभ्रि | अबिभृवहि | अबिभृमहि |

लोट्

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | बिभर्तु | बिभृताम् | बिभ्रतु | बिभृताम् | बिभ्राताम् | बिभ्रताम् |
| म० | बिभृहि | बिभृतम् | बिभृत | बिभृष्व | बिभ्राथाम् | बिभृध्वम् |
| उ० | बिभराणि | बिभराव | बिभराम | बिभरै | बिभरावहै | बिभरामहै |

विधिलिङ्

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | बिभृयात् | बिभृतायाम् | बिभृयुः | बिभ्रीत | बिभ्रीयाताम् | बिभ्रीरन् |
| म० | बिभृयाः | बिभृयातम् | बिभृयात | बिभ्रीथाः | बिभ्रीयाथाम् | बिभ्रीध्वम् |
| उ० | बिभृयाम् | बिभृयाव | बिभृयाम | बिभ्रीय | बिभ्रीवहि | बिभ्रीमहि |

**मा** (तोलना, नापना, शब्द करना), आत्मने०

| | लट् | | | लङ् | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | मिमीते | मिमाते | मिमते | अमिमीत | अमिमाताम् | अमिमत |
| म० | मिमीषे | मिमाथे | मिमीध्वे | अमिमीथाः | अमिमाथाम् | अमिमीध्वम् |
| उ० | मिमे | मिमीवहे | मिमीमहे | अमिमि | अमिमीवहि | अमिमीमहि |

| | लोट् | | | विधिलिङ् | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | मिमीताम् | मिमाताम् | मिमताम् | मिमीत | मिमीयाताम् | मिमीरन् |
| म० | मिमीष्व | मिमाथाम् | मिमीध्वम् | मिमीथाः | मिमीयाथाम् | मिमीध्वम् |
| उ० | मिमै | मिमावहै | मिमामहै | मिमीय | मिमीवहि | मिमीमहि |

**विष्** (व्याप्त होना), उभयपदी

लट्

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | वेवेष्टि | वेविष्टः | वेविषति | वेविष्टे | वेविषाते | वेविषते |

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| म० | वेवेक्षि | वेविष्ठः | वेविष्ठ | वेविक्षे | वेविषाथे | वेविड्ढ्वे |
| उ० | वेवेष्मि | वेविष्वः | वेविष्मः | वेविषे | वेविष्वहे | वेविष्महे |

लङ्

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | अवेवेट्-ड् | अवेविष्टाम् | अवेविषुः | अवेविष्ट | अवेविषाताम् | अवेविषत |
| म० | अवेवेट्-ड् | अवेविष्टम् | अवेविष्ट | अवेविष्ठाः | अवेविषाथाम् | अवेविड्ढ्वम् |
| उ० | अवेविषम् | अवेविष्व | अवेविष्म | अवेविषि | अवेविष्वहि | अवेविष्महि |

लोट्

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | वेवेष्टु | वेविष्टाम् | वेविषतु | वेविष्टाम् | वेविषाताम् | वेविषताम् |
| म० | वेविड्ढि | वेविष्टम् | वेविष्ट | वेविक्ष्व | वेविषाथाम् | वेविड्ढ्वम् |
| उ० | वेविषाणि | वेविषाव | वेविषाम | वेविषै | वेविषावहै | वेविषामहै |

विधिलिङ्

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | वेविष्यात् | वेविष्याताम् | वेविष्युः | वेविषीत | वेविषीयाताम् | वेविषीरन् |
| म० | वेविष्याः | वेविष्यातम् | वेविष्यात | वेविषीथाः | वेविषीयाथाम् | वेविषीढ्वम् |
| उ० | वेविष्याम् | वेविष्याव | वेविष्याम | वेविषीय | वेविषीवहि | वेविषीमहि |

हा (छोड़ना), पर०

| | लट् | | | लङ् | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | जहाति | जहीतः | जहति | अजहात् | अजहीताम् | अजहुः |
| | | जहितः | | | अजहिताम् | |
| म० | जहासि | जहीथः | जहीथ | अजहाः | अजहीतम् | अजहीत |
| | | जहिथः | जहिथ | | अजहितम् | अजहित |
| उ० | जहामि | जहीवः | जहीमः | अजहाम् | अजहीव | अजहीम |
| | | जहिवः | जहिमः | | अजहिव | अजहिम |

| | लोट् | | | विधिलिङ् | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | जहातु | जहीताम् | जहतु | जह्यात् | जह्याताम् | जह्युः |
| | | जहिताम् | | | | |
| म० | जहाहि | जहीतम् | जहीत | जह्याः | जह्यातम् | जह्यात |
| | जहीहि | जहितम् | जहित | | | |
| | जहिहि | | | | | |
| उ० | जहानि | जहाव | जहाम | जह्याम् | जह्याव | जह्याम |

## रुधादिगण (गण ७)

**४५५.** इस गण में पित् (सबल) प्रत्यय परे होने पर धातु के प्रथम स्वर और व्यंजन के बीच में न लगता है और ङित् (निर्बल) प्रत्यय बाद में होने पर न् लगता है।

**४५६.** (क) धातु में पहले से न् होगा तो उसका लोप हो जाएगा। (ख) तृह् धातु में न के स्थान पर ने हो जाएगा, हलादि पित् (सबल) प्रत्यय बाद में होने पर।

**उदाहरण**

**अञ्ज्** (अंजन लगाना आदि), पर०

| | लट् | | | लङ् | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | अनक्ति | अङ्क्तः | अञ्जन्ति | आनक्-ग् | आङ्क्ताम् | आञ्जन् |
| म० | अनक्षि | अङ्क्थः | अङ्क्थ | आनक्-ग् | आङ्क्तम् | आङ्क्त |
| उ० | अनज्मि | अञ्ज्वः | अञ्ज्मः | आनजम् | आञ्ज्व | आञ्ज्म |
| | **लोट्** | | | **विधिलिङ्** | | |
| प्र० | अनक्तु | अङ्क्ताम् | अञ्जन्तु | अञ्ज्यात् | अञ्ज्याताम् | अञ्ज्युः |
| म० | अङ्ग्धि | अङ्क्तम् | अङ्क्त | अञ्ज्याः | अञ्ज्यातम् | अञ्ज्यात |
| उ० | अनजानि | अनजाव | अनजाम | अञ्ज्याम् | अञ्ज्याव | अञ्ज्याम |

**इन्ध्** (जलाना आदि), आ०

| | लट् | | | लङ् | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | इन्द्धे[1] | इन्धाते | इन्धते | ऐन्द्ध | ऐन्धाताम् | ऐन्धत |
| म० | इन्त्से | इन्धाथे | इन्द्ध्वे | ऐन्द्धाः | ऐन्धाथाम् | ऐन्द्ध्वम् |
| उ० | इन्धे | इन्ध्वहे | इन्ध्महे | ऐन्धि | ऐन्ध्वहि | ऐन्ध्महि |
| | **लोट्** | | | **विधिलिङ्** | | |
| प्र० | इन्द्धाम् | इन्धाताम् | इन्धताम् | इन्धीत | इन्धीयाताम् | इन्धीरन् |
| म० | इन्त्स्व | इन्धाथाम् | इन्द्ध्वम् | इन्धीथाः | इन्धीयाथाम् | इन्धीध्वम् |
| उ० | इनधै | इनधावहै | इनधामहै | इन्धीय | इन्धीवहि | इन्धीमहि |

---

१. **इस धातु के द्ध् वाले स्थानों पर केवल ध् वाला भी रूप बनता है। जैसे— इन्धे, ऐन्धाः, ऐन्ध्वम्, इन्धाम्, इन्ध्वम्, आदि। देखो नियम २० (क)।**

### क्षुद् (चूर्ण करना) उभयपदी

| | पर० | लट् | | आ० | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | क्षुणत्ति | क्षुन्त: | क्षुन्दन्ति | क्षुन्ते | क्षुदान्ते | क्षुन्दते |
| म० | क्षुणत्सि | क्षुन्त्थ: | क्षुन्त्थ | क्षुन्त्से | क्षुन्दाथे | क्षुन्द्ध्वे |
| उ० | क्षुणद्मि | क्षुन्द्व: | क्षुन्द्म: | क्षुन्दे | क्षुन्द्वहे | क्षुन्द्महे |

**लङ्**

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | अक्षुणत्-द् | अक्षुन्त्ताम् | अक्षुन्दन् | अक्षुन्त्त | अक्षुन्दाताम् | अक्षुन्दत |
| म० | अक्षुणत्-द् अक्षुण: | अक्षुन्त्तम् | अक्षुन्त्त | अक्षुन्त्था: | अक्षुन्दाथाम् | अक्षुन्द्ध्वम् |
| उ० | अक्षुणदम् | अक्षुन्द्व | अक्षुन्द्म | अक्षुन्दि | अक्षुन्द्वहि | अक्षुन्द्महि |

**लोट्**

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | क्षुणत्तु | क्षुन्त्ताम् | क्षुन्दन्तु | क्षुन्त्ताम् | क्षुन्दाताम् | क्षुन्दताम् |
| म० | क्षुन्द्धि | क्षुन्त्तम् | क्षुन्त्त | क्षुन्त्स्व | क्षुन्दाथाम् | क्षुन्द्ध्वम् |
| उ० | क्षुणदानि | क्षुणदाव | क्षुणदाम | क्षुणदै | क्षुणदावहै | क्षुणदामहै |

**विधिलिङ्**

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | क्षुन्द्यात् | क्षुन्द्याताम् | क्षुन्द्यु: | क्षुन्दीत | क्षुन्दीयाताम् | क्षुन्दीरन् |
| म० | क्षुन्द्या: | क्षुन्द्यातम् | क्षुन्द्यात | क्षुन्दीथा: | क्षुन्दीयाथाम् | क्षुन्दीध्वम् |
| उ० | क्षुन्द्याम् | क्षुन्द्याव | क्षुन्द्याम | क्षुन्दीय | क्षुन्दीवहि | क्षुन्दीमहि |

इसी प्रकार इन धातुओं के रूप चलेंगे—भिद् (उ०, तोड़ना), उन्द् (प०, गीला होना), खिद् (आ०, खिन्न होना), छिद् (उ०, काटना), छृद् (उ०, चमकना, खेलना), कृत् (प०, घेरना), तृद् (उ०, हिंसा करना, अनादर करना), विद् (आ०, जानना, विचारना)। उन्द् लट् प्र० पु० एक०—उनत्ति, कृत् लट् प्र० पु० एक०—कृणत्ति होगा।

### तृह् (हिंसा करना) पर०

| | लट् | | | लङ् | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | तृणेढि | तृण्ढ: | तृंहन्ति | अतृणेट्-ड् | अतृण्ढाम् | अतृंहन् |
| म० | तृणेक्षि | तृण्ढ: | तृण्ढ | अतृणेट्-ड् | अतृण्ढम् | अतृण्ढ |
| उ० | तृणेह्मि | तृंह्व: | तृंह्म: | अतृणहम् | अतृंह्व | अतृंह्म |

| | लोट् | | | विधिलिङ् | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | तृणेढु | तृण्ढाम् | तृंहन्तु | तृंह्यात् | तृंह्याताम् | तृंह्युः |
| म० | तृण्ढि | तृण्ढम् | तृण्ढ | तृंह्याः | तृंह्यातम् | तृंह्यात |
| उ० | तृणहानि | तृणहाव | तृणहाम | तृंह्याम् | तृंह्याव | तृंह्याम |

**पिष्** (पीसना) पर०

| | लट् | | | लङ् | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | पिनष्टि | पिंष्टः | पिंषन्ति | अपिनट्-ड् | अपिंष्टाम् | अपिंषन् |
| म० | पिनक्षि | पिंष्ठः | पिंष्ठ | अपिनट्-ड् | अपिंष्टम् | अपिंष्ट |
| उ० | पिनष्मि | पिंष्वः | पिंष्मः | अपिनषम् | अपिंष्व | अपिंष्म |

| | लोट् | | | विधिलिङ् | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | पिनष्टु | पिंष्टाम् | पिंषन्तु | पिंष्यात् | पिंष्याताम् | पिंष्युः |
| म० | पिण्ड्ढि | पिंष्टम् | पिंष्ट | पिंष्याः | पिंष्यातम् | पिंष्यात |
| उ० | पिनषाणि | पिनषाव | पिनषाम | पिंष्याम् | पिंष्याव | पिंष्याम |

इसी प्रकार शिष् (प०, छाँटना, अन्तर करना) के रूप चलेंगे ।

**युज्** (मिलाना) उभयपदी

| | पर० | | लट् | | आ० | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | युनक्ति | युङ्क्तः | युञ्जन्ति | युङ्क्ते | युञ्जाते | युञ्जते |
| म० | युनक्षि | युङ्क्थः | युङ्क्थ | युङ्क्षे | युञ्जाथे | युङ्ध्वे |
| उ० | युनज्मि | युञ्ज्वः | युञ्ज्मः | युञ्जे | युञ्ज्वहे | युञ्ज्महे |

| | | | लङ् | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | अयुनक्-ग् | अयुङ्क्ताम् | अयुञ्जन् | अयुङ्क्त | अयुञ्जाताम् | अयुञ्जत |
| म० | अयुनक्-ग् | अयुङ्क्तम् | अयुङ्क्त | अयुङ्क्थाः | अयुञ्जाथाम् | अयुङ्ग्ध्वम् |
| उ० | अयुनजम् | अयुञ्ज्व | अयुञ्ज्म | अयुञ्जि | अयुञ्ज्वहि | अयुञ्ज्महि |

| | | | लोट् | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | युनक्तु | युङ्क्ताम् | युञ्जन्तु | युङ्क्ताम् | युञ्जाताम् | युञ्जताम् |
| म० | युङ्ग्धि | युङ्क्तम् | युङ्क्त | युङ्क्ष्व | युञ्जाथाम् | युङ्ग्ध्वम् |
| उ० | युनजानि | युनजाव | युनजाम | युनजै | युनजावहै | युनजामहै |

| | | | विधिलिङ् | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | युञ्ज्यात् | युञ्ज्याताम् | युञ्ज्युः | युञ्जीत | युञ्जीयाताम् | युञ्जीरन् |

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| म० | युञ्ज्याः | युञ्ज्यातम् | युञ्ज्यात | युञ्जीथाः | युञ्जीयाथाम् | युञ्जीध्वम् |
| उ० | युञ्ज्याम् | युञ्ज्याव | युञ्ज्याम | युञ्जीय | युञ्जीवहि | युञ्जीमहि |

इसी प्रकार इन धातुओं के रूप चलेंगे :—भञ्ज् (प०, तोड़ना), भुज् (प०, रक्षा करना, आ० खाना), विज् (प०, हिलाना, काँपना) और वृज् (प०, छोड़ना)।

**रिच्** (खाली करना, रिक्त करना) उभयपदी

लट्

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | रिणक्ति | रिंक्तः | रिञ्चन्ति | रिंक्ते | रिंचाते | रिंचते |
| म० | रिणक्षि | रिंक्थः | रिंक्थ | रिंक्षे | रिंचाथे | रिंग्ध्वे |
| उ० | रिणच्मि | रिंच्वः | रिंच्मः | रिंचे | रिंच्वहे | रिंच्महे |

लङ्

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | अरिणक्-ग् | अरिंक्ताम् | अरिंचन् | अरिंक्त | अरिंचाताम् | अरिंचत |
| म० | अरिणक्-ग् | अरिंक्तम् | अरिंक्त | अरिंक्थाः | अरिंचाथाम् | अरिंग्ध्वम् |
| उ० | अरिणचम् | अरिंच्व | अरिंच्म | अरिंचि | अरिंच्वहि | अरिंच्महि |

लोट्

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | रिणक्तु | रिंक्ताम् | रिञ्चन्तु | रिंक्ताम् | रिंचाताम् | रिंचताम् |
| म० | रिंग्धि | रिंक्तम् | रिंक्त | रिंक्ष्व | रिंचाथाम् | रिंग्ध्वम् |
| उ० | रिणचानि | रिणचाव | रिणचाम | रिणचै | रिणचावहै | रिणचामहै |

विधिलिङ्

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | रिंच्यात् | रिंच्याताम् | रिंच्युः | रिंचीत | रिंचीयाताम् | रिंचीरन् |
| म० | रिंच्याः | रिंच्यातम् | रिंच्यात | रिंचीथाः | रिंचीयाथाम् | रिंचीध्वम् |
| उ० | रिंच्याम् | रिंच्याव | रिंच्याम | रिंचीय | रिंचीवहि | रिंचीमहि |

इसी प्रकार इन धातुओं के रूप चलेंगे—विच् (उ०, पृथक् करना), तञ्च् (प०, संकुचित करना) और पृच् (प०, मिलाना)।

**रुध्** (रोकना) उभयपदी

लट्

| | पर० | | | आ० | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | रुणद्धि | रुन्द्धः[1] | रुन्धन्ति | रुन्द्धे | रुन्धाते | रुन्धते |

---

१. द्ध् वाले स्थानों पर केवल ध् वाला भी रूप बनता है। जैसे—रुन्धः आदि। देखो नियम २० (क)।

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| म० | रुणत्सि | रुन्द्धः | रुन्द्ध | रुन्त्से | रुन्धाथे | रुन्द्ध्वे |
| उ० | रुणध्मि | रुन्ध्वः | रुन्ध्मः | रुन्धे | रुन्ध्वहे | रुन्ध्महे |

लङ्

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | अरुणत्-द् | अरुन्द्धाम् | अरुन्धन् | अरुन्द्ध | अरुन्धाताम् | अरुन्धत |
| म० | अरुणत्-द् अरुणः | अरुन्द्धम् | अरुन्द्ध | अरुन्द्धाः | अरुन्धाथाम् | अरुन्द्ध्वम् |
| उ० | अरुणधम् | अरुन्ध्व | अरुन्ध्म | अरुन्धि | अरुन्ध्वहि | अरुन्ध्महि |

लोट्

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | रुणद्धु | रुन्द्धाम् | रुन्धन्तु | रुन्द्धाम् | रुन्धाताम् | रुन्धताम् |
| म० | रुन्द्धि | रुन्द्धम् | रुन्द्ध | रुन्त्स्व | रुन्धाथाम् | रुन्द्ध्वम् |
| उ० | रुणधानि | रुणधाव | रुणधाम | रुणधै | रुणधावहै | रुणधामहै |

विधिलिङ्

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | रुन्ध्यात् | रुन्ध्याताम् | रुन्ध्युः | रुन्धीत | रुन्धीयाताम् | रुन्धीरन् |
| म० | रुन्ध्याः | रुन्ध्यातम् | रुन्ध्यात | रुन्धीथाः | रुन्धीयाथाम् | रुन्धीध्वम् |
| उ० | रुन्ध्याम् | रुन्ध्याव | रुन्ध्याम | रुन्धीथ | रुन्धीवहि | रुन्धीमहि |

**हिंस्** (हिंसा करना) पर०

| | लट् | | | लङ् | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | हिनस्ति | हिंस्तः | हिंसन्ति | अहिनत्-द् | अहिंस्ताम् | अहिंसन् |
| म० | हिनस्सि | हिंस्थः | हिंस्थ | अहिनः-त्-द् | अहिंस्तम् | अहिंस्त |
| उ० | हिनस्मि | हिंस्वः | हिंस्मः | अहिनसम् | अहिंस्व | अहिंस्म |

| | लोट् | | | विधिलिङ् | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | हिनस्तु | हिंस्ताम् | हिंसन्तु | हिंस्यात् | हिंस्याताम् | हिंस्युः |
| म० | हिन्धि | हिंस्तम् | हिंस्त | हिंस्याः | हिंस्यातम् | हिंस्यात |
| उ० | हिनसानि | हिनसाव | हिनसाम | हिंस्याम् | हिंस्याव | हिंस्याम |

## २. सामान्य या आर्धधातुक लकार

( General or Non-conjugational Tenses and moods )

**४५७.** आर्धधातुक लकारों में और प्रत्ययान्त धातुओं से बने रूपों में य को छोड़कर अन्य कोई भी हलादि प्रत्यय बाद में होगा तो धातु और प्रत्यय के बीच में नित्य या विकल्प से इ लगता है। यह नियम कुछ विशेष धातुओं में ही लगता

है। जिन धातुओं में इ नित्य लगता है, उन्हें सेट् (स + इट् अर्थात् इ-वाली) कहते हैं। जिन धातुओं में इ विकल्प से लगता है, उन्हें वेट् (वा + इट्) कहते हैं और जिन धातुओं में इ सर्वथा नहीं लगता है, उन्हें अनिट् (अन् + इट्, बिना इ-वाली) कहते हैं।

**४५८.** (क) अनेकाच् (एक से अधिक स्वर वाली) धातुओं, णिच् आदि प्रत्ययान्त धातुओं और चुरादिगण (गण १०) की धातुओं से इ नित्य लगता है। वे सेट् कहलाती हैं।

(ख) एकाच् (एक स्वर वाली) अजन्त धातुओं में जिन धातुओं का निम्नलिखित कारिका में उल्लेख है, वे सेट् (इ-वाली) हैं, शेष अनिट् हैं।

**ऊदॄदन्तैर्यौतिरुक्ष्णुशीङ्स्नुनुक्षुश्विडीङ्श्रिभिः।**
**वृङ्वृञ्भ्यां च विनैकाचोऽजन्तेषु निहताः स्मृताः॥**

अर्थात् ये धातुएँ सेट् हैं—दीर्घ ऊकारान्त और दीर्घ ॠकारान्त तथा यु, रु, क्ष्णु, शी, स्नु, नु, क्षु, श्वि, डी, श्रि, वृ (आ०, क्र्यादिगणी) और वृ (उ०, स्वादिगणी)। इनके अतिरिक्त सभी एकाच् अजन्त धातुएँ अनिट् हैं।

(ग) हलन्त एक अच् वाली धातुओं में निम्नलिखित १०२ धातुएँ अनिट् हैं, शेष सेट् हैं।

**शक्लृ[1] पच् मुच् रिच् वच् विच्, सिच् प्रच्छि त्यज् निजिर्भजः।**
**भञ्ज् भुज् भ्रस्ज् मस्जि यज् युज् रुज्, रञ्ज् विजिर् स्वञ्जि, सञ्ज्, सृजः॥१॥**

---

१. निम्नलिखित कारिका में धातुओं के अन्त्याक्षर और उनमें कितनी धातुएँ हैं, यह दिया गया है। अर्थात् ककारान्त, चकारान्त आदि कितनी धातुएँ अनिट् हैं, यह स्पष्ट किया गया है।

क च छ जा द ध न पा भ म शाः ष स हाः क्रमात्।
१ ६ १ १५ १५ ११ २ १३ ३ ४ १० ११ २ ८
क च का ण ण टाः खं डौ ग घ ञा ष्ट ख जाः स्मृताः॥

इस कारिका की पहली पंक्ति में धातुओं के अन्तिम हल् अक्षर दिए गए हैं। इससे विद्यार्थी तुरन्त जान सकते हैं कि ये व्यंजन अन्त वाली ही धातुएँ अनिट् हैं, शेष सेट् हैं। जैसे—पहली पंक्ति में ट् वर्ण नहीं है, अतः ट् अन्त वाली कोई भी धातु अनिट् नहीं है। अतः कुट् को तुरन्त सेट् कहा जा सकता है। दूसरी पंक्ति में क्रमशः यह दिया गया है कि अमुक व्यंजन अन्तवाली इतनी धातुएँ अनिट् हैं। संख्या के लिए वर्गों के अक्षर लिए गए हैं। जो

अद् क्षुद् खिद् छिद् तुदि नुदः, पद्य भिद् विद्यतिर्विनद् ।
शद् सदी स्विद्यति स्कन्दि, हदी क्रुध् क्षुधि बुध्यती ॥२॥
बन्धिर्युधिरुधी राधिर्, व्यध् शुध-साधिसिध्यती ।
मन्य हन्नाप् क्षिप् छुपि तप्, तिपस्तृप्यतिदृप्यती ॥३॥
लिप् लुप् वप् शप् स्वप् सृपि यभ्, रभ् लभ् गम् नम् यमो रमिः ।
क्रुशिर्दंशिदृशी दृश् मृश्, रिश् रुश् लिश् विश् स्पृशः कृषिः ॥४॥
त्विष् तुष् द्विष् दुष् पुष्य पिष् विष्, शिष् शुष् श्लिष्यतयो घसिः ।
वसतिर्दह् दिहिदुहो, नह् मिह् रुह् लिह् वहिस्तथा ॥५॥
अनुदात्ता हलन्तेषु धातवो द्व्यधिकं शतम् ॥

(घ) निम्नलिखित धातुएँ वेट् (विकल्प से इ वाली) हैं :—

स्वरतिः सूयते सूते पञ्चमे नवमे च धुञ् ।
तनक्तिर्वृश्चतिश्चान्तावनक्तिश्च तनक्तिना ॥१॥
मार्ष्टि मार्जति जान्तेषु दान्तौ क्लिद्यति स्यन्दते ।
रध्यतिः सेधतिर्धान्तौ पान्ताः पञ्चैव कल्पते ॥२॥
गोपायतिस्तृप्यतिश्च त्रपते दृप्यतिस्तथा ।
मान्तौ क्षाम्यति क्षमतेऽश्नुते क्लिश्नाति नश्यति ॥३॥
शान्तास्त्रयोथाक्षतिश्च निष्कुष्णातिश्च तक्षति ।
त्वक्षतिश्च षकारान्ता ह्यथ हान्ताश्च गाहते ॥४॥
पदद्वये गूहतिश्च ऋकारोपान्त्यगर्हते ।
तृहतितृंहतिद्रुह्यतयो बृहति मुह्यति ॥५॥
स्तृहति स्निह्यति स्नुह्यत्येते वेट्का हि धातवः ।
अजन्तानां तु थल्येव वेट् स्यादन्यत्र सर्वदा[1] ॥६॥

---

वर्ण जिस संख्या पर है, उतनी संख्या समझनी चाहिए । जैसे—क पहला वर्ण है, अतः क से १ संख्या । च छठा वर्ण है, अतः च से ६ संख्या । ण १५वाँ वर्ण है, अतः ण से १५ संख्या, आदि । क् अन्त वाली अनिट् धातु क अर्थात् १ है । च् अन्त वाली अनिट् धातुएँ च् अर्थात् ६ हैं । छ् अन्त वाली अनिट् धातु क अर्थात् १ है । सुविधा के लिए कारिका की द्वितीय पंक्ति में संख्याएँ भी दे दी गई हैं ।

१. ये श्लोक तथा लुङ के द्वितीय भेद के श्लोक पूना ट्रेनिंग कालेज के विद्वान् शास्त्री श्री चिन्तामन आत्माराम केलकर ने बनाए हैं ।

**४५९.** ए, ऐ और ओ अन्त वाली धातुओं को आ हो जाता है, अतः वे आकारान्त के तुल्य मानी जाती हैं। इन धातुओं को भी गुण या वृद्धि वाले स्थानों पर आ हो जाता है--मि (५ आ०, फेंकना), मी (९ उ०, हिंसा करना) और दी (४ आ०, नष्ट होना)। ली (९ प०, ४ आ०, चिपकना) को पूर्वोक्त स्थानों पर विकल्प से आ होता है।

**४६०.** आर्धधातुक लकारों में चुरादिगणी (गण १०) धातुओं में अय् (अर्थात् अ-रहित अय) शेष रहेगा। अम् से पहले धातुओं में जो परिवर्तन होते हैं, वे होंगे।

**४६१.** इन धातुओं का सार्वधातुक लकारों वाला अंग ( Base ) आर्धधातुक लकारों में भी विकल्प से शेष रहेगा--गुप्, धूप्, विच्छ्, पण्, पन्, कम् और ऋत्।

**४६२.** आर्धधातुक लकारों में अस् को भू और ब्रू को वच् हो जाता है।

**४६३.** तुदादिगण की निम्नलिखित कुछ धातुएँ हैं, जिनको पित् (सबल) प्रत्यय बाद में होने पर भी गुण या वृद्धि नहीं होती है। इनको केवल इन स्थानों पर गुण या वृद्धि होती है--लिट् प्र० पु० और उ० पु० एक० का अ बाद में होने पर, प्रेरणार्थक अय बाद में होने पर और कर्मवाच्य लुङ् प्र० पु० एक० का इ बाद में होने पर। ये धातुएँ हैं--कुट्, पुट्, कुच्, गुज्, छुर्, स्फुट्, त्रुट्, लुट्, स्फुर्, गुर्, नू, धू, कु तथा अन्य कुछ कम प्रचलित धातुएँ।

**४६४.** आर्धधातुक लकारों में भ्रस्ज् के भ्रज्ज् और भर्ज् रूप हो जाते हैं।

**४६५.** आर्धधातुक लकारों में हलादि पित् (सबल) प्रत्यय बाद में होने पर सृज् को स्रज् और दृश् को द्रश् हो जाता है।

**४६६.** विज् (६ आ०, ७ प०) धातु में बीच में होने वाला इट् (इ) ङित् होता है। ऊर्णु धातु में यह इ विकल्प से ङित् होता है।

**४६७.** दीधी (२ आ०, चमकना) और वेवी (२ आ०, जाना) धातुओं को किसी भी प्रत्यय के बाद में होने पर गुण या वृद्धि नहीं होते हैं। बाद में इ या य् होने पर इनके अन्तिम ई का लोप हो जाता है। आर्धधातुक लकारों में इ से पहले दरिद्रा के भी आ का लोप हो जाता है। सन् प्रत्यय और लुङ् लकार में इसके आ का लोप विकल्प से होता है।

## लुट्, लृट् और लृङ् लकार

### (१) लुट् लकार (First Future)

इसको अनद्यतन भविष्य (Periphrastic Future) भी कहते हैं।

**४६८.** प्रत्यय :—

| | परस्मै० | | | आत्मने० | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | ता[1] | तारौ | तारः | ता | तारौ | तारः |
| म० | तासि | तास्थः | तास्थ | तासे | तासाथे | ताध्वे |
| उ० | तास्मि | तास्वः | तास्मः | ताहे | तास्वहे | तास्महे |

**४६९.** इन प्रत्ययों से पहले सेट् धातुओं में इ लगेगा, वेट् में विकल्प से और अनिट् में सर्वथा नहीं।

**४७०.** ये सभी प्रत्यय पित् (सबल) हैं। अतएव ये बाद में होंगे तो धातु के अन्तिम स्वर और धातु की उपधा के ह्रस्व स्वर को गुण होगा।

**४७१.** ऋ उपधावाली अनिट् धातुओं के बाद झलादि (अन्तःस्थ और वर्ग के पंचम वर्ण को छोड़कर सभी व्यंजन) पित् (सबल) प्रत्यय होगा तो उपधा के ऋ को र विकल्प से हो जाएगा। जैसे—सृप्—सर्प्तास्मि, स्रप्तास्मि, आदि।

**दा** (देना) उभयपदी

| | पर० | | | आ० | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | दाता | दातारौ | दातारः | दाता | दातारौ | दातारः |
| म० | दातासि | दातास्थः | दातास्थ | दातासे | दातासाथे | दाताध्वे |
| उ० | दातास्मि | दातास्वः | दातास्मः | दाताहे | दातास्वहे | दातास्महे |

नी (उ०, ले जाना)—नेता नेतारौ नेतारः। उ० पु० नेतास्मि, नेतास्वः, नेतास्मः, नेताहे, नेतास्वहे, नेतास्महे।

पत् (प०)—पतिता पतितारौ पतितारः। उ० पु० पतितास्मि, पतितास्वः, पतितास्मः।

---

१. लुट् लकार के ये प्रत्यय इस प्रकार भी बनाए जा सकते हैं। तृच् प्रत्यय का प्रथमा एक० का ता रूप ले लें और बाद में अस् (होना) धातु के लट् लकार के म० पु० और उ० पु० के रूप जोड़ दें। प्र० पु० में प्रथमा के रूप ता तारौ तारः लगेंगे।

ईक्ष् (आ०)——ईक्षिता, ईक्षितारौ, ईक्षितारः। उ० पु०. ईक्षिताहे, ईक्षितास्वहे, ईक्षितास्महे।

## अनियमित धातुएँ

**४७२.** इन धातुओं में लुट् में विकल्प से इ लगता है——इष्, सह् (१ आ०), लुभ्, रिष् और रुष्। जैसे——प्र० एक० एषिता——एष्टा, सहिता——सोढा, लोभिता——लोब्धा, रेषिता——रेष्टा, रोषिता-रोष्टा।

**४७३.** क्लृप् धातु लुट् में विकल्प से परस्मैपदी है और इसमें परस्मैपद होने पर इ नहीं लगता। जैसे——उ० पु० एक०——कल्पिताहे, कल्प्ताहे, कल्प्तास्मि।

**४७४.** लिट् लकार को छोड़कर अन्य सभी आर्धधातुक लकारों में ग्रह् धातु के साथ इ के स्थान पर ई लगता है। जैसे——ग्रहीता, आदि।

**४७५.** वृ और ॠकारान्त धातुओं के बाद इ को विकल्प से दीर्घ हो जाता है। इन स्थानों पर दीर्घ नहीं होगा——लिट्, आशीर्लिङ आत्मनेपद और परस्मैपदी लुङ। जैसे——वृ का प्र० एक० वरिता-वरीता, कॄ का करिता-करीता, आदि।

**४७६.** झलादि (अन्तःस्थ और पंचम वर्ण को छोड़कर अन्य सभी व्यंजन) प्रत्यय बाद में होने पर मस्ज् और नश् धातु के अन्तिम व्यंजन से पूर्व न् और लग जाएगा। मस्ज् धातु में न् होने पर बीच के स् का लोप हो जाएगा। जैसे——मङ्क्ता आदि, नंष्टा-नशिता। अन्य स्थानों पर मस्ज् के स् को ज् हो जाता है।

**४७७.** अज् (१ प०, जाना) धातु को आर्धधातुक लकारों में वी हो जाता है। वलादि (य् को छोड़कर सभी व्यंजन) आर्धधातुक बाद में होंगे तो विकल्प से वी होगा। जैसे——वेता-अजिता, वेष्यति-अजिष्यति, आदि।

## (२) लृट् (Second Future) और (३) लृङ (Conditional)

**४७८.** लृट् के तिङ प्रत्यय ये हैं :——

| | परस्मै० | | | आत्मने० | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | स्यति[1] | स्यतः | स्यन्ति | स्यते | स्येते | स्यन्ते |
| म० | स्यसि | स्यथः | स्यथ | स्यसे | स्येथे | स्यध्वे |
| उ० | स्यामि | स्यावः | स्यामः | स्ये | स्यावहे | स्यामहे |

१. ये तिङ प्रत्यय इस प्रकार प्राप्त हो सकते हैं——स्य के बाद लट् लकार वाले तिङ प्रत्यय लगाने से। म् और व् बाद में होने पर स्य के अ को दीर्घ हो जाएगा और अच् बाद में होने पर स्य के अ का लोप हो जाएगा।

**४७९.** लृङ के तिङ प्रत्यय ये हैं :—

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | स्यत्[1] | स्यताम् | स्यन् | स्यत | स्येताम् | स्यन्त |
| म० | स्यः | स्यतम् | स्यत | स्यथाः | स्येथाम् | स्यध्वम् |
| उ० | स्यम् | स्याव | स्याम | स्ये | स्यावहि | स्यामहि |

**४८०.** धातु के अन्तिम स् को त् हो जाता है, बाद में यदि आर्धधातुक प्रत्यय का स् होगा तो।

**४८१.** धातु की स्थिति के अनुसार इन प्रत्ययों से पहले इ लगेगा या नहीं लगेगा। सेट् में इ लगेगा, वेट् में विकल्प से और अनिट् में नहीं। इन प्रत्ययों से पहले धातु के अन्तिम स्वर को और धातु की उपधा के ह्रस्व स्वर को गुण होगा।

**४८२.** जिस प्रकार लङ में धातु से पहले अ लगता है, उसी प्रकार लृङ में भी अ लगेगा।

### उदाहरण

### लृट् (Second Future)

| | शक् (५ प०) | | | लभ् (१ आ०) | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | शक्ष्यति | शक्ष्यतः | शक्ष्यन्ति | लप्स्यते | लप्स्येते | लप्स्यन्ते |
| म० | शक्ष्यसि | शक्ष्यथः | शक्ष्यथ | लप्स्यसे | लप्स्येथे | लप्स्यध्वे |
| उ० | शक्ष्यामि | शक्ष्यावः | शक्ष्यामः | लप्स्ये | लप्स्यावहे | लप्स्यामहे |

### लृङ (Conditional)

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | अशक्ष्यत् | अशक्ष्यताम् | अशक्ष्यन् | अलप्स्यत | अलप्स्येताम् | अलप्स्यन्त |
| म० | अशक्ष्यः | अशक्ष्यतम् | अशक्ष्यत | अलप्स्यथाः | अलप्स्येथाम् | अलप्स्यध्वम् |
| उ० | अशक्ष्यम् | अशक्ष्याव | अशक्ष्याम | अलप्स्ये | अलप्स्यावहि | अलप्स्यामहि |

ग्रह—लृट्—ग्रहीष्यति-ग्रहीष्यते, लृङ—अग्रहीष्यत्-ष्यत, आदि।

### अनियमित धातुएँ

**४८३.** गम् (पर०), हन् और अनिट् ऋकारान्त धातुओं में लृट् और लृङ में बीच में इ लगता है। गम् (पर०) से सन् प्रत्यय होने पर भी इ लगेगा।

---

१. ये तिङ प्रत्यय इस प्रकार प्राप्त हो सकते हैं—स्य के बाद लङ लकार के तिङ प्रत्यय लगाने से। सामान्य सन्धि-नियम लगेंगे।

इ (जाना) के स्थान पर गम् होने पर तथा अधि+इ (स्मरण करना) में भी यह नियम लगेगा। लृट् में—गमिष्यति, हनिष्यति, करिष्यति, आदि। लृङ में—अगमिष्यत्, अहनिष्यत्, अकरिष्यत्, आदि।

**४८४.** क्लृप्, वृत्, वृध्, शृध् और स्यन्द् धातुएँ लृट्, लृङ और सन् प्रत्यय होने पर विकल्प से परस्मैपदी हो जाती हैं। परस्मैपदी होने पर इनमें बीच में इ नहीं लगता है। लृट् में—कल्पिष्यते, कल्प्स्यते, कल्प्स्यति; वर्तिष्यते, वर्त्स्यति,; वर्धिष्यते, वर्त्स्यति; शर्धिष्यते, शर्त्स्यति; स्यन्दिष्यते, स्यन्त्स्यते, स्यन्त्स्यति, आदि। लृङ में—अकल्पिष्यत, अकल्प्स्यत, अकल्प्स्यत्; अवर्तिष्यत, अवर्त्स्यत्; अवर्धिष्यत, अवर्त्स्यत्; अशर्धिष्यत, अशर्त्स्यत्; अस्यन्दिष्यत, अस्यन्त्स्यत, अस्यन्त्स्यत्।

**४८५.** कृत्, चृत्, छृद्, तृद् और नृत् धातुओं के बाद कोई सकारादि (लुङ के स् को छोड़कर) आर्धधातुक प्रत्यय होगा तो इनमें इ विकल्प से लगेगा। जैसे—कृत्-कर्तिष्यति, कर्त्स्यति; अकर्तिष्यत्, अकर्त्स्यत्, आदि।

**४८६.** अधि+इ (आ०) में इ के स्थान पर विकल्प से गा हो जाता है, लृङ और लुङ में। निम्नलिखित धातुओं के अन्तिम स्वर के स्थान पर इ हो जाता है, हलादि ङित् प्रत्यय बाद में होने पर। ये धातुएँ हैं—दा (३ उ०, १ प०), धा, दो, दे, धे, मा, स्था, गा (इ २ प० के स्थान पर हुआ गा और अधि+इ के स्थान पर हुआ गा), पा, हा और सो। इ के स्थान पर हुए गा के बाद सभी तिङ ङित् (निर्बल) होते हैं।

**उदाहरण**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | अध्यैष्यत | अध्यैष्येताम् | अध्यैष्यन्त |
| म० | अध्यैष्यथाः | अध्यैष्येथाम् | अध्यैष्यध्वम् |
| उ० | अध्यैष्ये | अध्यैष्यावहि | अध्यैष्यामहि |
| प्र० | अध्यगीष्यत | अध्यगीष्येताम् | अध्यगीष्यन्त |
| म० | अध्यगीष्यथाः | अध्यगीष्येथाम् | अध्यगीष्यध्वम् |
| उ० | अध्यगीष्ये | अध्यगीष्यावहि | अध्यगीष्यामहि |

**४८७.** आगे कुछ कठिन रूप वाली धातुओं के लुट्, लृट् और लृङ के प्र० पु० एक० के रूप दिये जाते हैं। विद्यार्थी रूपों के द्वारा सम्बद्ध नियमों का ज्ञान प्राप्त करें।

| धातु | लुट् | लृट् | लृङ् |
| --- | --- | --- | --- |
| भू | भविता | भविष्यति | अभविष्यत् |
| स्तॄ | स्तरिता | स्तरिष्यति-ते | अस्तरिष्यत्-त |
| | स्तरीता | स्तरीष्यति-ते | अस्तरीष्यत्-त |
| यु (२ प०) | यविता | यविष्यति | अयविष्यत् |
| शी | शयिता | शयिष्यते | अशयिष्यत |
| स्नु | स्नविता | स्नविष्यति | अस्नविष्यत् |
| श्वि | श्वयिता | श्वयिष्यति | अश्वयिष्यत् |
| श्रि | श्रयिता | श्रयिष्यति-ते | अश्रयिष्यत्-त |
| पच् | पक्ता | पक्ष्यति | अपक्ष्यत् |
| मुच् | मोक्ता | मोक्ष्यति | अमोक्ष्यत् |
| सिच् | सेक्ता | सेक्ष्यति | असेक्ष्यत् |
| भञ्ज् | भङ्क्ता | भङ्क्ष्यति | अभङ्क्ष्यत् |
| भुज् | भोक्ता | भोक्ष्यति | अभोक्ष्यत् |
| भ्रस्ज् | भ्रष्टा | भ्रक्ष्यति | अभ्रक्ष्यत् |
| | भर्ष्टा | भर्क्ष्यति | अभर्क्ष्यत् |
| मस्ज् | मङ्क्ता | मङ्क्ष्यति | अमङ्क्ष्यत् |
| रञ्ज् | रङ्क्ता | रङ्क्ष्यति | अरङ्क्ष्यत् |
| सृज् | स्रष्टा | स्रक्ष्यति | अस्रक्ष्यत् |
| अद् | अत्ता | अत्स्यति | आत्स्यत् |
| पद् | पत्ता | पत्स्यते | अपत्स्यत |
| स्कन्द् | स्कन्ता | स्कन्त्स्यति | अस्कन्त्स्यत् |
| बन्ध् | बन्द्धा | भन्त्स्यति | अभन्त्स्यत् |
| व्यध् | व्यद्धा | व्यत्स्यति | अव्यत्स्यत् |
| मन् | मन्ता | मंस्यते | अमंस्यत |
| तृप् | तर्पिता | तर्पिष्यति | अतर्पिष्यत् |
| | तर्प्ता, त्रप्ता | तर्प्स्यति, त्रप्स्यति | अतर्प्स्यत्, अत्रप्स्यत् |
| सम् + गम् | संगन्ता | संगंस्यते | समगंस्यत |
| दृश् | द्रष्टा | द्रक्ष्यति | अद्रक्ष्यत् |

| धातु | लुट् | लृट् | लृङ |
|---|---|---|---|
| घस् | घस्ता | घत्स्यति | अघत्स्यत् |
| वस् (रहना) | वस्ता | वत्स्यति | अवत्स्यत् |
| दह् | दग्धा | धक्ष्यति | अधक्ष्यत् |
| नह् | नद्धा | नत्स्यति | अनत्स्यत् |
| वह् | वोढा[1] | वक्ष्यति | अवक्ष्यत् |

**वेट् धातुएँ**

| | | | |
|---|---|---|---|
| अञ्ज् | अञ्जिता | अञ्जिष्यति | आञ्जिष्यत् |
| | अङ्क्ता | अङ्क्ष्यति | आङ्क्ष्यत् |
| अश् | अशिता | अशिष्यते | आशिष्यत |
| | अष्टा | अक्ष्यते | आक्ष्यत |
| क्लिद् | क्लेदिता | क्लेदिष्यति | अक्लेदिष्यत् |
| | क्लेत्ता | क्लेत्स्यति | अक्लेत्स्यत् |
| क्लिश् | क्लेशिता | क्लेशिष्यति | अक्लेशिष्यत् |
| | क्लेष्टा | क्लेक्ष्यति | अक्लेक्ष्यत् |
| क्षम् | क्षमिता | क्षमिष्यते | अक्षमिष्यत |
| | क्षन्ता | क्षंस्यते | अक्षंस्यत |
| गाह् | गाहिता | गाहिष्यते | अगाहिष्यत |
| | गाढा | घाक्ष्यते | अघाक्ष्यत |
| गुप् | गोपिता | गोपिष्यति | अगोपिष्यत् |
| | गोप्ता | गोप्स्यति | अगोप्स्यत् |
| | गोपायिता | गोपायिष्यति | अगोपायिष्यत् |
| गुह् | गूहिता | गूहिष्यति | अगूहिष्यत् |
| | गोढा | घोक्ष्यति | अघोक्ष्यत् |
| तक्ष् | तक्षिता | तक्षिष्यति | अतक्षिष्यत् |
| | तष्टा | तक्ष्यति | अतक्ष्यत् |

---

१. वह् और सह् धातु के वोढा और सोढा रूपों में अ के स्थान पर ओ के लिए देखो नियम ५०६ में वह् धातु पर पाद-टिप्पणी ।

| धातु | लुट् | लृट् | लृङ |
|---|---|---|---|
| त्रप् | त्रपिता | त्रपिष्यते | अत्रपिष्यत |
| | त्रप्ता | त्रप्स्यते | अत्रप्स्यत |
| धू | धविता | धविष्यति | अधविष्यत् |
| | धोता | धोष्यति | अधोष्यत् |
| तृह् | तर्हिता | तर्हिष्यति | अतर्हिष्यत् |
| | तर्ढा | तर्क्ष्यति | अतर्क्ष्यत् |
| मुह् | मोहिता | मोहिष्यति | अमोहिष्यत् |
| | मोग्धा, मोढा | मोक्ष्यति | अमोक्ष्यत् |
| मृज् | मार्जिता | मार्जिष्यति | अमार्जिष्यत् |
| | मार्ष्टा | मार्क्ष्यति | अमार्क्ष्यत् |
| रध् | रधिता[1] | रधिष्यति | अरधिष्यत् |
| | रद्धा | रत्स्यति | अरत्स्यत् |
| व्रश्च् | व्रश्चिता | व्रश्चिष्यति | अव्रश्चिष्यत् |
| | व्रष्टा | व्रक्ष्यति | अव्रक्ष्यत् |
| स्निह् | स्नेहिता, | स्नेहिष्यति | अस्नेहिष्यत् |
| | स्नेढा, स्नेग्धा[2] | स्नेक्ष्यति | अस्नेक्ष्यत् |
| स्वृ | स्वरिता, स्वर्ता | स्वरिष्यति[3] | अस्वरिष्यत् |
| कु | कुता | कुष्यति | अकुष्यत् |
| कुट् | कुटिता | कुटिष्यति | अकुटिष्यत् |
| धू (६) | धुविता | धुविष्यति | अधुविष्यत् |
| धूप् | धूपिता | धूपिष्यति | अधूपिष्यत् |
| | धूपायिता | धूपायिष्यति | अधूपायिष्यत् |
| विच्छ् | विच्छिता | विच्छिष्यति | अविच्छिष्यत् |
| | विच्छायिता | विच्छायिष्यति | अविच्छायिष्यत् |
| ऋत् | अर्तिता | अर्तिष्यते | आर्तिष्यत |
| | ऋतीयिता | ऋतीयिष्यते | आर्तीयिष्यत |

१. देखो नियम ५०८ रध् धातु पर पाद-टिप्पणी। २. देखो नियम ५०८ द्रुह् धातु पर पाद-टिप्पणी। ३. स्वृ धातु लृट् और लृङ में सेट् है।

| धातु | लुट् | लृट् | लृङ् |
|---|---|---|---|
| कम् | कमिता | कमिष्यते | अकमिष्यत |
| | कामयिता | कामयिष्यते | अकामयिष्यत |
| जभ् | जम्भिता[1] | जम्भिष्यते | अजम्भिष्यत |
| मि, मी | माता | मास्यति-ते | अमास्यत्-त |
| दी | दाता | दास्यते | अदास्यत |
| ली | लेता, लाता | लेष्यति, लास्यति | अलेष्यत्, अलास्यत् |
| चृत् | चर्तिता | चर्तिष्यति, चर्त्स्यति | अचर्तिष्यत्, अचर्त्स्यत् |
| छृद् | छर्दिता | छर्दिष्यति-ते | अच्छर्दिष्यत्-त |
| | | छर्त्स्यति-ते | अच्छर्त्स्यत्-त |

तृद् (उ०) और नृत् (प०) के इसी प्रकार रूप चलते हैं।

| | | | |
|---|---|---|---|
| ऊर्णु | ऊर्णविता | ऊर्णविष्यति-ते | और्णविष्यत्-त |
| | ऊर्णुविता | ऊर्णुविष्यति-ते | और्णुविष्यत्-त |
| दरिद्रा | दरिद्रिता | दरिद्रिष्यति | अदरिद्रिष्यत् |
| दीधी | दीधिता | दीधिष्यते | अदीधिष्यत |

इसी प्रकार वेवी के रूप चलते हैं।

## (४) लिट् (Perfect)

**४८८.** लिट् दो प्रकार के हैं—(१) द्वित्व वाले (Reduplicative), (२) आम् अन्त वाले, जिनके बाद कृ आदि धातुओं का प्रयोग होता है, (Periphrastic)।

**४८९.** द्वित्व वाले लिट् सभी हलादि एकाच् धातुओं से तथा अ, आ, इ, उ और ऋ से प्रारम्भ होने वाली धातुओं से बनते हैं।

**अपवाद धातुएँ**—दय्, अय्, कास् और आस् धातुओं से सदा आम् अन्त वाले ही रूप लिट् में बनते हैं।

**४९०.** आम् अन्त वाले लिट् इन धातुओं से बनते हैं—अ या आ (स्वाभाविक आ या संयुक्ताक्षर के कारण दीर्घ माना जाने वाला अ) को छोड़कर अन्य कोई भी अजादि धातु और सभी अनेकाच् धातुएँ। अनेकाच् धातुओं में चुरादिगण की धातुएँ और अन्य प्रत्ययान्त धातुएँ भी संमिलित हैं।

---

**१. देखो नियम ५०८ रध् धातु पर पाद-टिप्पणी।**

अपवाद धातुएँ—ऊर्णु और ऋच्छ् । इनमें द्वित्व वाला लिट् होता है ।

**४९१**. उष्, विद्, जागृ, भी, ह्री, भृ, हु और दरिद्रा धातुओं से दोनों प्रकार का लिट् बनता है ।

## द्वित्व वाला लिट् (Reduplicative Perfect)

**४९२**. नियम ४४४ से ४४९ में वर्णित विधि से धातुओं को द्वित्व होता है ।

**४९३**. लिट् के तिङ् प्रत्यय—

| | परस्मैपद | | | आत्मनेपद | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | अ | अतुस् | उस् | ए | आते | इरे |
| म० | थ | अथुस् | अ | से | आथे | ध्वे |
| उ० | अ | व | म | ए | वहे | महे |

**४९४**. परस्मैपद में एकवचन वाले तिङ पित् (सबल) हैं, शेष ङित् (निर्बल) हैं । पित् (सवल) प्रत्ययों से पहले धातु की उपधा के ह्रस्व स्वरों को गुण हो जाता है । धातु के अन्तिम स्वरों तथा उपधा के अ को प्र० पु० एक० में नित्य वृद्धि हो जाती है और उ० पु० एक० में विकल्प से । म० पु० एक० में धातु के अन्तिम स्वर को गुण होता है और उपधा के अ में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

**४९५**. थ, व, म, से, ध्वे, वहे और महे प्रत्ययों से पूर्व इ के लिए कुछ विशेष नियम[1]—(देखो नियम ४५७)

(क) कृ, सृ, भृ, वृ, स्तु, द्रु, स्रु और श्रु को छोड़कर सेट् और अनिट् सभी धातुओं से इ होता है। सम् + कृ और वृ को थ बाद में होने पर इ होता है । जैसे—संचस्करिथ, ववरिथ ।

(ख) ऋ धातु को छोड़कर अन्य सभी ऋकारान्त अनिट् धातुओं से थ से पहले इ नहीं होता है । जैसे—स्मृ का सस्मर्थ, परन्तु ऋ का आरिथ होगा ।

(ग) अजन्त धातुओं को और उपधा में अ वाली धातुओं को थ बाद में होने पर विकल्प से इ होता है ।

---

१. **कृसृभृवृस्तुद्रुस्रुश्रुवो लिटि ( ७-२-१३ )**
**अजन्तोऽकारवान्वा यस्तास्यनिट् थलि वेडयम् ।**
**ऋदन्त ईदृङ नित्यानिट् क्राद्यन्यो लिटि सेड् भवेत् ।। (सि० कौ० )**

४९६. जहाँ पर धातु के प्रारम्भिक इ या उ को गुण या वृद्धि होता है, वहाँ पर धातु के अभ्यास के इ के इय् और उ को उव् हो जाता है। अन्य स्थानों पर दोनों स्वरों को दीर्घ होकर ई या ऊ हो जाता है। जैसे—इ+एप्+अ = इयेप, उ+ओख्+अ = उवोख्, ईषिव, आदि।

४९७. अजादि ङित् (निर्बल) स्वर बाद में होने पर धातु के अन्तिम उ या ऊ को उव् हो जाता है और संयुक्त अक्षर पहले होने पर इ या ई को इय् होगा और अन्यत्र इ या ई को य् होगा। जैसे—दुधू+इव = दुधुविव (उ० पु० द्विव०), निनी+इव = निन्यिव, शिश्रि+इव=शिश्रियिव, आदि।

४९८. आकारान्त धातुओं से प्र० पु० और उ० पु० एक० में अ के स्थान पर औ प्रत्यय लगता है। अजादि ङित् (निर्बल) प्रत्यय तथा इट् (इ) आगम वाले प्रत्यय बाद में होने पर आकारान्त धातु के आ का लोप हो जाता है। जैसे—दा धातु के प्र० पु० ददौ, ददतुः, ददुः, म० पु० एक० ददिथ-ददाथ, उ० पु० ददौ, ददिव, ददिम।

४९९. ङित् प्रत्यय बाद में होने पर इन धातुओं के अन्तिम स्वर को गुण होता है—संयुक्त वर्ण पूर्ववाली ऋकारान्त धातुएँ, दीर्घ ॠकारान्त धातुएँ, ऋ, ऋच्छ् और जागृ धातुएँ। जैसे—स्मृ का सस्मरिव (उ० पु०, द्विव०), आदि। ङित् (निर्बल) प्रत्यय बाद में होने पर शॄ, दॄ और पॄ धातुओं को विकल्प से गुण होता है और जहाँ पर इन्हें गुण नहीं होता है, वहाँ पर दीर्घ के स्थान पर ह्रस्व ऋ हो जाता है। जैसे—शॄ के उ० पु० द्विव० में शशरिव-शश्रिव, आदि।

५००. ह्रस्व अ उपधावाली एकाच् धातुओं के अ के स्थान पर ए हो जाता है और अभ्यास का लोप हो जाता है, बाद में ङित् प्रत्यय हो या इट् (इ) युक्त थ हो। यह नियम वहीं पर लगेगा, जहाँ पर द्वित्व होने पर अभ्यास के वर्ण में कोई परिवर्तन नहीं होता है। जैसे—पत् धातु का उ० पु० द्विव० में पपत्+इव = पेत्+इव=पेतिव होगा और म० पु० एक० में पेतिथ। शक् का म० पु० एक० में शेकिथ-शशक्थ। नन्द् का अ संयुक्ताक्षर के कारण गुरु है, अतः इसका म० पु० एक० में ननन्दिथ रूप बनेगा।

**अपवाद-धातुएँ**—यह नियम इन धातुओं में नहीं लगता है—व आदि वाली धातुएँ, शस् और दद् धातुएँ।

**५०१.** अकारादि और संयुक्ताक्षर अन्त वाली धातुओं तथा अश् (व्याप्त होना) और ऋच्छ् (जाना) धातुओं के अभ्यास के वर्ण के बाद न् लग जाता है। अभ्यास के अ को आ हो जाता है। जैसे——अञ्ज् का अअञ्ज्+अ=अ+न्+अञ्ज्+अ=आनञ्ज्+अ=आनञ्ज। इसी प्रकार अर्द् का आनर्द और अश् का आनशे, आदि।

**५०२.** सम्प्रसारण का अर्थ है——य् को इ, व् को उ, र् को ऋ और ल् को ऌ होना। निम्नलिखित धातुओं के बाद ङित् प्रत्यय होने पर साधारणतया सम्प्रसारण होता है——वच्, यज्, वप्, वह्, वस् (रहना), वे, व्ये, ह्वे, श्वि, वद्, स्वप्, ज्या, वश्, व्यच्, प्रच्छ्, व्रश्च्, भ्रस्ज्, ग्रह् और व्यध्। लिट् लकार में इन धातुओं को संप्रसारण नहीं होता है——प्रच्छ्, व्रश्च् और भ्रस्ज्।

**५०३.** लिट् लकार में पित् (सबल) प्रत्यय बाद में होने पर अभ्यास वाले अंश में ही संप्रसारण होता है। ऐसे स्थलों पर प्रारम्भिक संयुक्त वर्णों को जैसे का तैसा ही द्वित्व होगा। जैसे——स्वप् का स्वस्वप्, आदि।

(क) संप्रसारण के बाद के स्वर का लोप हो जाता है।

**५०४.** जिनमें लिट् में इ सर्वथा नहीं लगता ऐसी धातुएँ :——

कृ (करना), उभयपदी

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | चकार | चक्रतुः | चक्रुः | चक्रे | चक्राते | चक्रिरे |
| म० | चकर्थ | चक्रथुः | चक्र | चकृषे | चक्राथे | चकृढ्वे[1] |
| उ० | चकार, चकर | चकृव | चकृम | चक्रे | चकृवहे | चकृमहे |

इसी प्रकार इन धातुओं के रूप चलेंगे——सृ, भृ और वृ। वृ का म० पु० एक० में ववरिथ रूप होता है।

---

१. इण् (अ या आ को छोड़ कर अन्य सभी स्वर तथा य्, र्, ल्, व् और ह्) के बाद आशीर्लिङ के षीध्वम्, लिट् और लुङ के ध्वम् तथा ध्वे (म० पु० बहु०) के ध् के स्थान पर ढ् हो जाता है। जहाँ पर बीच से इ लगता है और उस इ से पहले पूर्वोक्त व्यंजनों में से कोई व्यंजन होता है तो ध् को ढ् विकल्प से होगा।

सम्+कृ[1] के रूप इस प्रकार चलेंगे

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | संचस्कार | संचस्करतुः | संचस्करुः | संचस्करे | संचस्कराते | संचस्करिरे |
| म० | संचस्करिथ | संचस्करथुः | संचस्कर | संचस्करिषे | संचस्कराथे | संचस्करिध्वे-ढ्वे |
| उ० | संचस्कार, संचस्कर | संचस्करिव[2] | संचस्करिम | संचस्करे | संचस्करिवहे | संचस्करिमहे |

स्तु—उभयपदी

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | तुष्टाव | तुष्टुवतुः | तुष्टुवुः | तुष्टुवे | तुष्टुवाते | तुष्टुविरे |
| म० | तुष्टोथ | तुष्टुवथुः | तुष्टुव | तुष्टुषे | तुष्टुवाथे | तुष्टुढ्वे |
| उ० | तुष्टाव, तुष्टव | तुष्टुव | तुष्टुम | तुष्टुवे | तुष्टुवहे | तुष्टुमहे |

इसी प्रकार इनके रूप चलेंगे—द्रु, स्रु, श्रु ।

**५०५. सेट् धातुएँ :—**

(१) अजन्त सेट् धातुएँ

वॄ ( छाँटना ), ९ आ०

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | ववार | ववरतुः | ववरुः | ववरे | ववराते | ववरिरे |
| म० | ववरिथ | ववरथुः | ववर | ववरिषे | ववराथे | ववरिध्वे-ढ्वे |
| उ० | ववार, ववर | ववरिव | ववरिम | ववरे | ववरिवहे | ववरिमहे |

इसी प्रकार इनके रूप चलेंगे—स्तॄ, गॄ, भॄ आदि । तस्तार, तस्तरतुः आदि ।

---

१. संपरिभ्यां करोतौ भूषणे ( ६-१-१३७ ), समवाये च ( ६-१-१३८ ), उपात् प्रतियत्नवैकृतवाक्याध्याहारेषु च ( ६-१-१३९ ) । सम् उपसर्ग के बाद कृ धातु से पहले स् लग जाता है—अलंकृत करना और समूह अर्थ में । उप सपसर्ग के बाद कृ धातु से पहले इन अर्थों में स् लगता है—अलंकृत करना, समूह, वस्तु में पूर्व गुणों को नष्ट न करते हुए नए गुण का आधान करना ( प्रतियत्नो गुणाधानम्, सि० कौ० ), भोजन आदि बनाना या वाक्य में अनुक्त की पूर्ति करना ।

२. यहाँ पर ऋ से पहले संयुक्त वर्ण है, अतः ऋ को गुण होगा । ( देखो नियम ४९९ । सूत्र ७-१-१० और ११ पर सि० कौ० ) ।

| | शॄ (काटना), ९ प० | | | क्ष्णु (तेज करना), २ प० | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | शशार | शशरतुः, शश्रतुः | शशरुः, शश्रुः | चुक्ष्णाव | चुक्ष्णुवतुः | चुक्ष्णुवुः |
| म० | शशरिथ | शशरथुः, शश्रथुः | शशर, शश्र | चुक्ष्णविथ | चुक्ष्णुवथुः | चुक्ष्णुव |
| उ० | शशार, शशर | शशरिव, शश्रिव | शशरिम, शश्रिम | चुक्ष्णाव, चुक्ष्णव | चुक्ष्णुविव | चुक्ष्णुविम |

इसी प्रकार दॄ और पॄ के रूप चलते हैं। इसी प्रकार स्नु के रूप चलते हैं।

रु ( शब्द करना, जाना, हानि पहुँचाना) १ आ०, २ प०

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | रुराव | रुरुवतुः | रुरुवुः | रुरुवे | रुरुवाते | रुरुविरे |
| म० | रुरविथ | रुरुवथुः | रुरुव | रुरुविषे | रुरुवाथे | रुरुविध्वे-ढ्वे |
| उ० | रुराव, रुरव | रुरुविव | रुरुविम | रुरुवे | रुरुविवहे | रुरुविमहे |

इसी प्रकार यु (प०) और नु (प०) के रूप चलेंगे।

शी ( सोना ), २ आ०

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | शिश्ये | शिश्याते | शिश्यिरे |
| म० | शिश्यिषे | शिश्याथे | शिश्यिध्वे-ढ्वे |
| उ० | शिश्ये | शिश्यिवहे | शिश्यिमहे |

श्रि ( आश्रय लेना ), १ उभय०

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | शिश्राय | शिश्रियतुः | शिश्रियुः | शिश्रिये | शिश्रियाते | शिश्रियिरे |
| म० | शिश्रयिथ | शिश्रियथुः | शिश्रिय | शिश्रियिषे | शिश्रियाथे | शिश्रियिध्वे-ढ्वे |
| उ० | शिश्राय, शिश्रय | शिश्रियिव | शिश्रियिम | शिश्रिये | शिश्रियिवहे | शिश्रियिमहे |

## (२) अजन्त अनिट् धातुएँ

दा ( देना), ३ उभय०

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | ददौ | ददतुः | ददुः | ददे | ददाते | ददिरे |
| म० | ददिथ, ददाथ | ददथुः | दद | ददिषे | ददाथे | ददिध्वे |
| उ० | ददौ | ददिव | ददिम | ददे | ददिवहे | ददिमहे |

**गै** ( गाना ), पर०

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | जगौ | जगतुः | जगुः |
| म० | जगाथ, जगिथ | जगथुः | जग |
| उ० | जगौ | जगिव | जगिम |

इसी प्रकार सभी आ, ए, ऐ और ओ अन्त वाली धातुओं के रूप चलेंगे। जैसे—ध्यै के प्र० पु० में दध्यौ, दध्यतुः, दध्युः। दो ( काटना ) प्र० पु०—ददौ, ददतुः, ददुः आदि।

**इ** ( जाना ) २ पर०

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | इयाय | ईयतुः | ईयुः |
| म० | इययिथ,इयेथ | ईयथुः | ईय |
| उ० | इयाय,इयय | ईयिव | ईयिम |

इ ( १ प०, जाना ) के नियमित ढंग से रूप चलते हैं। इयाय, ईयतुः, ईयुः आदि। ई (१, २ पर०, ४ आ०, जाना) के लिट् में आम् अन्त वाले रूप बनते हैं।

**नी** ( ले जाना ) उभय०

| | पर० | | | आ० |
|---|---|---|---|---|
| प्र० | निनाय | निन्यतुः | निन्युः | शी के तुल्य रूप चलेंगे। |
| म० | निनयिथ, निनेथ | निन्यथुः | निन्य | ( देखो पहले शी धातु ) |
| उ० | निनाय-निनय | निन्यिव | निन्यिम | |

**स्मृ** ( याद करना ) पर०

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | सस्मार | सस्मरतुः | सस्मरुः |
| म० | सस्मर्थ | सस्मरथुः | सस्मर |
| उ० | सस्मार-सस्मर | सस्मरिव | सस्मरिम |

| | **मि** ( फेंकना ), ५ उ० | | | **मी** ( नष्ट करना ), ९ उ० | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | ममौ | मिम्यतुः | मिम्युः | मिम्ये | मिम्याते | मिम्यिरे |
| म० | ममिथ, ममाथ | मिम्यथुः | मिम्य | मिम्यिषे | मिम्याथे | मिम्यिध्वे-ढ्वे |
| उ० | ममौ | मिम्यिव | मिम्यिम | मिम्ये | मिम्यिवहे | मिम्यिमहे |

ली ( १ प०, ४ आ०, चिपकना, १ प० पिघलना )

| | पर० | | | आ० |
|---|---|---|---|---|
| प्र० | लिलाय, लल्लौ | लिल्यतुः | लिल्युः | ली के तुल्य । |
| म० | लिलयिथ, लिलेथ<br>ललिथ, ललाथ | लिल्यथुः | लिल्य | |
| उ० | लिलाय, लिलय, लल्लौ | लिल्यिव | लिल्यिम | |

(३) हलन्त अनिट् धातुएँ:--

**शक्** ( सकना ), ५ पर०

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | शशाक | शेकतुः | शेकुः |
| म० | शेकिथ, शशक्थ | शेकथुः | शेक |
| उ० | शशाक, शशक | शेकिव | शेकिम |

**पच्** ( पकाना ), उभय०

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | पपाच | पेचतुः | पेचुः | पेचे | पेचाते | पेचिरे |
| म० | पेचिथ, पपक्थ | पेचथुः | पेच | पेचिषे | पेचाथे | पेचिध्वे |
| उ० | पपाच, पपच | पेचिव | पेचिम | पेचे | पेचिवहे | पेचिमहे |

**मुच्** ( छोड़ना ), ६ उभय०

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | मुमोच | मुमुचतुः | मुमुचुः | मुमुचे | मुमुचाते | मुमुचिरे |
| म० | मुमोचिथ | मुमुचथुः | मुमुच | मुमुचिषे | मुमुचाथे | मुमुचिध्वे |
| उ० | मुमोच | मुमुचिव | मुमुचिम | मुमुचे | मुमुचिवहे | मुमुचिमहे |

**रिच्** ( १ प०, पृथक् करना, ७ उ० रिक्त करना )

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | रिरेच | रिरिचतुः | रिरिचुः | रिरिचे | रिरिचाते | रिरिचिरे |
| म० | रिरेचिथ | रिरिचथुः | रिरिच | रिरिचिषे | रिरिचाथे | रिरिचिध्वे |
| उ० | रिरेच | रिरिचिव | रिरिचिम | रिरिचे | रिरिचिवहे | रिरिचिमहे |

इसी प्रकार इन धातुओं के रूप चलेंगे--विच् ( ७ उ० ), सिच् ( ६ उ० ), निज् ( ३ उ० ), विज् ( ३ उ० ), भुज् ( ७ उ० ), युज् (७ उ०), क्षुद् ( ७ उ० ) तथा अन्य इ या उ उपधावाली धातुएँ।

जैसे---सिच्--सिषेच ( प्र० एक० ), सिषेचिथ ( म० एक० ), सिषिचिव (उ० द्वि०), आदि। क्षुद्--चुक्षोद (प्र० एक०), चुक्षोदिथ (म० एक०), आदि।

**प्रच्छ्** ( पूछना ), ६ पर०

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | पप्रच्छ | पप्रच्छतुः | पप्रच्छुः |
| म० | पप्रच्छिथ, पप्रष्ठ | पप्रच्छथुः | पप्रच्छ |
| उ० | पप्रच्छ | पप्रच्छिव | पप्रच्छिम |

**त्यज्** ( छोड़ना ), १ पर०

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | तत्याज | तत्यजतुः | तत्यजुः |
| म० | तत्यजिथ, तत्यक्थ | तत्यजथुः | तत्यज |
| उ० | तत्याज, तत्यज | तत्यजिव | तत्यजिम |

**भञ्ज्** ( तोड़ना, नष्ट करना ), ७ पर०

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | बभञ्ज | बभञ्जतुः | बभञ्जुः |
| म० | बभञ्जिथ, बभङ्क्थ | बभञ्जथुः | बभञ्ज |
| उ० | बभञ्ज | बभञ्जिव | बभञ्जिम |

**भ्रस्ज्** ( भूनना ), ६ उभय०

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | बभर्ज | बभर्जतुः | बभर्जुः | बभर्जे | बभर्जाते | बभर्जिरे |
| | बभ्रज्ज | बभ्रज्जतुः | बभ्रज्जुः | बभ्रज्जे | बभ्रज्जाते | बभ्रज्जिरे |
| म० | बभर्जिथ, बभर्ष्ठ, बभ्रष्ठ, | बभर्जथुः, | बभर्ज | बभर्जिषे, | बभर्जाथे, | बभर्जिध्वे, |
| | बभ्रज्जिथ | बभ्रज्जथुः | बभ्रज्ज | बभ्रज्जिषे | बभ्रज्जाथे | बभ्रज्जिध्वे |
| उ० | बभर्ज, | बभर्जिव, | बभर्जिम, | बभर्जे, | बभर्जिवहे, | बभर्जिमहे, |
| | बभ्रज्ज | बभ्रज्जिव | बभ्रज्जिम | बभ्रज्जे, | बभ्रज्जिवहे, | बभ्रज्जिमहे |

**सृज्** ( बनाना ), ४ आ०, ६ प०

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | ससर्ज | ससृजतुः | ससृजुः | ससृजे | ससृजाते | ससृजिरे |
| म० | ससर्जिथ, सस्रष्ठ | ससृजथुः | ससृज | ससृजिषे | ससृजाथे | ससृजिध्वे |
| उ० | ससर्ज | ससृजिव | ससृजिम | ससृजे | ससृजिवहे | ससृजिमहे |

**दृश्** ( देखना ), १ प०

सृज् के तुल्य रूप चलेंगे। म० पु० एक० ददर्शिथ, दद्रष्ठ।

**छिद्** ( काटना ), ७ उभय०

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | चिच्छेद | चिच्छिदतुः | चिच्छिदुः | चिच्छिदे | चिच्छिदाते | चिच्छिदिरे |

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| म० | चिच्छेदिथ | चिच्छिदथुः | चिच्छिद | चिच्छिदिषे | चिच्छिदाथे | चिच्छिदिध्वे |
| उ० | चिच्छेद | चिच्छिदिव | चिच्छिदिम | चिच्छिदे | चिच्छिदिवहे | चिच्छिदिमहे |

| | **पद्** ( जाना ), ४ आ० | | | **शद्** ( नष्ट होना ), १,६ पर० | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | पेदे | पेदाते | पेदिरे | शशाद | शेदतुः | शेदुः |
| म० | पेदिषे | पेदाथे | पेदिध्वे | शेदिथ, शशत्थ | शेदथुः | शेद |
| उ० | पेदे | पेदिवहे | पेदिमहे | शशाद, शशद | शेदिव | शेदिम |

इसी प्रकार इन धातुओं के रूप चलेंगे—मन् ( आ० ), सद् ( प० ), तप् (प० ), शप् ( उ० ), यभ् ( प० ), रभ् ( आ० ), लभ् ( आ० ), नम् (प०), यम् (प०), रम् ( आ० ), दह् ( प० ), नह् ( प० )। म० पु० एक० में इन धातुओं के ये रूप होंगे—मन्—मेनिषे, सद्—सेदिथ-ससत्थ, नम्-नेमिथ-ननन्थ, दह्—देहिथ-ददग्ध, नह्—नेहिथ-ननद्ध, आदि ।

| | **स्कन्द्** ( डालना ), १ प० | | | **बन्ध्** ( बाँधना ) ९ प० | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | चस्कन्द | चस्कन्दतुः | चस्कन्दुः | बबन्ध | बबन्धतुः | बबन्धुः |
| म० | चस्कन्दिथ, चस्कन्त्थ | चस्कन्दथुः | चस्कन्द | बबन्धिथ, बबन्द्ध | बबन्धथुः | बबन्ध |
| उ० | चस्कन्द | चस्कन्दिव | चस्कन्दिम | बबन्ध | बबन्धिव | बबन्धिम |

| | **राध्** ( बढ़ना, सिद्ध करना ) ४,५ प० | | | **स्पृश्** ( छूना ) ६ प० | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | रराध | रराधतुः | रराधुः | पस्पर्श | पस्पृशतुः | पस्पृशुः |
| म० | रराधिथ | रराधथुः | रराध | पस्पर्शिथ | पस्पृशथुः | पस्पृश |
| उ० | रराध | रराधिव | रराधिम | पस्पर्श | पस्पृशिव | पस्पृशिम |

इसी प्रकार मृश्, कृश् के रूप चलेंगे ।

### (४) हलन्त सेट् धातुएँ—

| | **नन्द्** ( प्रसन्न होना ), १ प० | | | **वन्द्** ( प्रणाम करना ), १ आ० | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | ननन्द | ननन्दतुः | ननन्दुः | ववन्दे | ववन्दाते | ववन्दिरे |
| म० | ननन्दिथ | ननन्दथुः | ननन्द | ववन्दिषे | ववन्दाथे | ववन्दिध्वे |
| उ० | ननन्द | ननन्दिव | ननन्दिम | ववन्दे | ववन्दिवहे | ववन्दिमहे |

| | **नृत्** ( नाचना ), ४ प० | | | **मुद्** ( प्रसन्न होना ), १ आ० | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | ननर्त | ननृततुः | ननृतुः | मुमुदे | मुमुदाते | मुमुदिरे |
| म० | ननर्तिथ | ननृतथुः | ननृत | मुमुदिषे | मुमुदाथे | मुमुदिध्वे |
| उ० | ननर्त | ननृतिव | ननृतिम | मुमुदे | मुमुदिवहे | मुमुदिमहे |

| | **अर्द्** ( दुःख देना ), १ प० | | | **ऋच्छ्** ( जाना ), ६ प० | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | आनर्द | आनर्दतुः | आनर्दुः | आनर्च्छ | आनर्च्छतुः | आनर्च्छुः |
| म० | आनर्दिथ | आनर्दथुः | आनर्द | आनर्च्छिथ | आनर्च्छथुः | आनर्च्छ |
| उ० | आनर्द | आनर्दिव | आनर्दिम | आनर्च्छ | आनर्च्छिव | आनर्च्छिम |

| | **अर्च्** ( पूजा करना ), १ प० | | | **ऋज्** ( जाना, प्राप्त करना ), १ आ० | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | आनर्च | आनर्चतुः | आनर्चुः | आनृजे | आनृजाते | आनृजिरे |
| म० | आनर्चिथ | आनर्चथुः | आनर्च | आनृजिषे | आनृजाथे | आनृजिध्वे |
| उ० | आनर्च | आनर्चिव | आनर्चिम | आनृजे | आनृजिवहे | आनृजिमहे |

| | **वम्** ( कै करना ), १ प० | | | **दद्** ( देना ), १ आ० | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | ववाम | ववमतुः | ववमुः | दददे | ददद‍ाते | दददिरे |
| म० | ववमिथ | ववमथुः | ववम | दददिषे | ददद‍ाथे | दददिध्वे |
| उ० | ववाम, ववम | ववमिव | ववमिम | दददे | दददिवहे | दददिमहे |

| | **कुट्** ( मोड़ना, झुकना ), ६ प० | | | **स्फुर्** (चमकना, फड़कना), ६ प० | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | चुकोट | चुकुटतुः | चुकुटुः | पुस्फोर | पुस्फुरतुः | पुस्फुरुः |
| म० | चुकुटिथ | चुकुटथुः | चुकुट | पुस्फुरिथ | पुस्फुरथुः | पुस्फुर |
| उ० | चुकोट, चुकुट[1] | चुकुटिव | चुकुटिम | पुस्फोर | पुस्फुरिव | पुस्फुरिम |

**५०६. संप्रसारणवाली धातुएँ ( नियमित और अनियमित )**

**यज्** ( पूजा करना, यज्ञ करना ), १ उ०

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | इयाज | ईजतुः | ईजुः | ईजे | ईजाते | ईजिरे |
| म० | इयजिथ, इयष्ठ | ईजथुः | ईज | ईजिषे | ईजाथे | ईजिध्वे |
| उ० | इयाज, इयज | ईजिव | ईजिम | ईजे | ईजिवहे | ईजिमहे |

१. कुटादिगण ( देखो नियम ४६३ ) में पठित धातुओं को लिट् उ० पु० एक० में गुण आदि का अभाव विकल्प से होता है। नू का उ० पु० एक० नूनाव-नुनाव, नुनव ।

| वच्[1] | (बोलना) १,२ प० | | वस् (रहना), १ प० | | |
|---|---|---|---|---|---|
| प्र० उवाच | ऊचतुः | ऊचुः | उवास | ऊषतुः | ऊषुः |
| म० उवचिथ, उवक्थ | ऊचथुः | ऊच | उवसिथ, उवस्थ | ऊषथुः | ऊष |
| उ० उवाच, उवच | ऊचिव | ऊचिम | उवास, उवस | ऊषिव | ऊषिम |

वप् ( बीज बोना ), १ उ०

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| प्र० उवाप | ऊपतुः | ऊपुः | ऊपे | ऊपाते | ऊपिरे |
| म० उवपिथ, उवप्थ | ऊपथुः | ऊप | ऊपिषे | ऊपाथे | ऊपिध्वे |
| उ० उवाप, उवप | ऊपिव | ऊपिम | ऊपे | ऊपिवहे | ऊपिमहे |

वह् ( ले जाना, ढोना ), १ उ०

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| प्र० उवाह | ऊहतुः | ऊहुः | ऊहे | ऊहाते | ऊहिरे |
| म० उवहिथ, उवोढ[2] | ऊहथुः | ऊह | ऊहिषे | ऊहाथे | ऊहिध्वे-ढ्वे |
| उ० उवाह, उवह | ऊहिव | ऊहिम | ऊहे | ऊहिवहे | ऊहिमहे |

वद् ( कहना ), १ प० ( कुछ अर्थों में आ० भी है )

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| प्र० उवाद | ऊदतुः | ऊदुः | ऊदे | ऊदाते | ऊदिरे |
| म० उवदिथ | ऊदथुः | ऊद | ऊदिषे | ऊदाथे | ऊदिध्वे |
| उ० उवाद, उवद | ऊदिव | ऊदिम | ऊदे | ऊदिवहे | ऊदिमहे |

| स्वप् (सोना), २ प० | | | ज्या (वृद्ध होना), २ प० | | |
|---|---|---|---|---|---|
| प्र० सुष्वाप | सुषुपतुः | सुषुपुः | जिज्यौ | जिज्यतुः | जिज्युः |
| म० सुष्वपिथ, सुष्वप्थ | सुषुपथुः | सुषुप | जिज्यिथ, जिज्याथ | जिज्यथुः | जिज्य |

१. ब्रू के स्थान पर जो वच् धातु होती है, उसके आत्मने० में भी रूप चलते हैं। जैसे--ऊचे, ऊचाते, ऊचिरे आदि।

२. जब सह् और वह् धातुओं के ह् के स्थान पर हुए ढ् का लोप होता है तो पूर्ववर्ती अ को आ न होकर ओ हो जाता है। ववह् + थ = उवह् + थ = उवढ् + ध ( नियम ४१६, ३, ४ से ) = उवढ् + ढ = उवोढ।

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| उ० | सुष्वाप, सुष्वप | सुषुपिव | सुषुपिम | जिज्यौ | जिज्यिव | जिज्यिम |

**वश्** ( चाहना ), २ प० | **व्यच्** (धोखा देना, घेरना), ६ प०

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | उवाश | ऊशतुः | ऊशुः | विव्याच | विविचतुः | विविचुः |
| म० | उवशिथ | ऊशथुः | ऊश | विव्यचिथ | विविचथुः | विविच |
| उ० | उवाश, उवश | ऊशिव | ऊशिम | विव्याच, विव्यच | विविचिव | विविचिम |

**ग्रह्** ( लेना ), ९ उभय०

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | जग्राह | जगृहतुः | जगृहुः | जगृहे | जगृहाते | जगृहिरे |
| म० | जग्रहिथ | जगृहथुः | जगृह | जगृहिषे | जगृहाथे | जगृहिध्वे-ढ्वे |
| उ० | जग्राह,जग्रह | जगृहिव | जगृहिम | जगृहे | जगृहिवहे | जगृहिमहे |

**व्यध्** ( बींधना ), ४ प०

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | विव्याध | विविधतुः | विविधुः |
| म० | विव्यधिथ, विव्यद्ध | विविधथुः | विविध |
| उ० | विव्याध, विव्यध | विविधिव | विविधिम |

**श्वि**[1] ( सूजना ), १ प०

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | शिश्वाय,शुशाव | शिश्वियतुः, शुशुवतुः | शिश्वियुः, शुशुवुः |
| म० | शिश्वयिथ, शुशविथ | शिश्वियथुः, शुशुवथुः | शिश्विय, शुशुव |
| उ० | शिश्वाय, शिश्वय<br>शुशाव, शुशव | शिश्वियिव<br>शुशुविव | शिश्वियिम<br>शुशुविम |

**वे**[2] ( बुनना ) ( नियमित ), १ उ०

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | ववौ | ववतुः | ववुः | ववे | ववाते | वविरे |
| म० | वविथ, ववाथ | ववथुः | वव | वविषे | ववाथे | वविध्वे-ढ्वे |
| उ० | ववौ | वविव | वविम | ववे | वविवहे | वविमहे |

---

१. श्वि को लिट् में विकल्प से शु धातु हो जाती है ।

२. वे धातु का लिट् में पित् ( सबल) प्रत्यय बाद में होने पर विकल्प से उवय् रूप हो जाता है और ङित् ( निर्बल ) प्रत्यय बाद में होने पर ऊय् या ऊव् रूप हो जाता है ।

**वे** ( बुनना ) ( अनियमित ), १ उ०

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | उवाय | ऊयतुः | ऊयुः | ऊये | ऊयाते | ऊयिरे |
| | | ऊवतुः | ऊवुः | ऊवे | ऊवाते | ऊविरे |
| म० | उवयिथ | ऊयथुः | ऊय | ऊयिषे | ऊयाथे | ऊयिध्वे-ढ्वे |
| | | ऊवथुः | ऊव | ऊविषे | ऊवाथे | ऊविध्वे-ढ्वे |
| उ० | उवाय | ऊयिव | ऊयिम | ऊये | ऊयिवहे | ऊयिमहे |
| | उवय | ऊविव | ऊविम | ऊवे | ऊविवहे | ऊविमहे |

**व्ये**[1] (ढकना), १ उ०

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | विव्याय | विव्यतुः | विव्युः | विव्ये | विव्याते | विव्यिरे |
| म० | विव्ययिथ | विव्यथुः | विव्य | विव्यिषे | विव्याथे | विव्यिध्वे-ढ्वे |
| उ० | विव्याय, विव्यय | विव्यिव | विव्यिम | विव्ये | विव्यिवहे | विव्यिमहे |

**ह्वे**[2] (पुकारना), १ उ०

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | जुहाव | जुहुवतु | जुहुवुः | जुहुवे | जुहुवाते | जुहुविरे |
| म० | जुहविथ, जुहोथ | जुहुवथुः | जुहुव | जुहुविषे | जुहुवाथे | जुहुविध्वे-ढ्वे |
| उ० | जुहाव, जुहव | जुहुविव | जुहुविम | जुहुवे | जुहुविवहे | जुहुविमहे |

**५०७. वेट् धातुएँ**

**५०८.** स्वृ, सू और धू धातुओं को थ परे होने पर विकल्प से इ होता है तथा अन्य हलादि प्रत्यय परे होने पर नित्य इ होता है।

स्वृ—म० पु० एक० सस्वरिथ-सस्वर्थ, उ० पु० द्वि० सस्वरिव। धू—म० पु० एक० दुधविथ-दुधोथ, आदि।

**तञ्च्** (संकुचित होना), १,७ पर०　　　**व्रश्च्** (काटना), ६ प०

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | ततञ्च | ततञ्चतुः | ततञ्चुः | वव्रश्च | वव्रश्चतुः | वव्रश्चुः |

---

१. व्ये धातु को लिट् लकार में पित् ( सबल ) प्रत्यय बाद में होने पर विव्यय् हो जाता है और ङित् ( निर्बल ) प्रत्यय बाद में होने पर विवी हो जाता है।

२. ह्वे का लिट् में हु रूप रह जाता है।

म० ततञ्चिथ, ततञ्चथुः ततञ्च वव्रश्चिथ, वव्रश्चथुः वव्रश्च
ततङ्क्थ वव्रष्ठ
उ० ततञ्च ततञ्चिव, ततञ्चिम, वव्रश्च वव्रश्चिव, वव्रश्चिम,
ततञ्च्व ततञ्च्म वव्रश्च्व वव्रश्च्म

इसी प्रकार तञ्च् के रूप चलते हैं।

**मृज्** (स्वच्छ करना), १,२, प० **अञ्ज्** (अंजनादि लगाना), ७ प०

प्र० ममार्ज ममार्जतुः, ममार्जुः, आनञ्ज आनञ्जतुः आनञ्जुः
ममृजतुः ममृजुः
म० ममार्जिथ, ममार्जथुः, ममार्ज, आनञ्जिथ, आनञ्जथुः आनञ्ज
ममार्ष्ठ ममृजथुः ममृज आनङ्क्थ
उ० ममार्ज ममार्जिव, ममार्जिम, आनञ्ज आनञ्जिव आनञ्जिम
ममृजिव, ममृजिम,
ममृज्व ममृज्म

**क्लिद्** (गीला होना), ४ प० **स्यन्द्** (रस निकालना), १ आ०

प्र० चिक्लेद चिक्लिदतुः चिक्लिदुः सस्यन्दे सस्यन्दाते सस्यन्दिरे
म० चिक्लेदिथ, चिक्लिदथुः चिक्लिद सस्यन्दिषे, सस्यन्दाथे सस्यन्दिध्वे,
चिक्लेत्थ सस्यन्त्से सस्यन्द्ध्वे
उ० चिक्लेद चिक्लेदिव, चिक्लेदिम, सस्यन्दे सस्यन्दिवहे, सस्यन्दिमहे,
चिक्लिद्व चिक्लिद्म सस्यन्द्वहे सस्यन्द्महे

**रध्**[1] (नष्ट करना), ४ प० **सिध्** (जाना), १ प०

प्र० ररन्ध ररन्धतुः ररन्धुः सिषेध सिषिधतुः सिषिधुः
म० ररन्धिथ, ररन्धथुः ररन्ध सिषेधिथ, सिषिधथुः सिषिध
ररद्ध सिषेद्ध
उ० ररन्ध ररन्धिव, ररन्धिम, सिषेध सिषिधिव, सिषिधिम,
रेध्व रेध्म सिषिध्व सिषिध्म

---

१. रध् और जभ् धातुओं के बाद अजादि प्रत्यय होने पर उनके अन्तिम वर्ण से पूर्व न् लग जाता है। रध् धातु को लुङ् में और बाद में इ होने पर न् नहीं लगता है, लिट् में इ वाले स्थानों पर भी न् होगा।

| | **क्लृप्** (समर्थ होना), १ प० | | | **तृप्** (तृप्त होना), ४ प० | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | चक्लृपे | चक्लृपाते | चक्लृपिरे | ततर्प | ततृपतुः | ततृपुः |
| म० | चक्लृपिषे, चक्लृप्से | चक्लृपाथे | चक्लृपिध्वे, चक्लृब्ध्वे | ततर्पिथ, तत्रप्थ,[1] ततर्प्थ | ततृपथुः | ततृप |
| उ० | चक्लृपे | चक्लृपिवहे, चक्लृप्वहे | चक्लृपिमहे, चक्लृप्महे | ततर्प | ततृपिव, ततृप्व | ततृपिम, ततृप्म |

इसी प्रकार दृप् के रूप चलते हैं।

| | **त्रप्** (लज्जित होना), १ आ० | | | **क्षम्** (क्षमा करना), ४ प० | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | त्रेपे[2] | त्रेपाते | त्रेपिरे | चक्षाम | चक्षमतुः | चक्षमुः |
| म० | त्रेपिषे, त्रेप्से | त्रेपाथे | त्रेपिध्वे, त्रेब्ध्वे | चक्षमिथ, चक्षन्थ | चक्षमथुः | चक्षम |
| उ० | त्रेपे | त्रेपिवहे, त्रेप्वहे | त्रेपिमहे, त्रेप्महे | चक्षाम, चक्षम | चक्षमिव, चक्षण्व[3] | चक्षमिम, चक्षण्म |

| | **क्षम्** (क्षमा करना), १ आ० | | | **अश्** (व्याप्त होना) ५ आ० | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | चक्षमे | चक्षमाते | चक्षमिरे | आनशे | आनशाते | आनशिरे |
| म० | चक्षमिषे, चक्षंसे | चक्षमाथे | चक्षमिध्वे, चक्षन्ध्वे | आनशिषे, आनक्षे | आनशाथे | आनशिध्वे, आनड्ढ्वे |
| उ० | चक्षमे | चक्षमिवहे, चक्षण्वहे | चक्षमिमहे, चक्षण्महे | आनशे | आनशिवहे, आनश्वहे | आनशिमहे, आनश्महे |

| | **क्लिश्** (दुःख देना), ९ प० | | | **नश्** (नष्ट होना), ४ प० | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | चिक्लेश | चिक्लिशतुः | चिक्लिशुः | ननाश | नेशतुः | नेशुः |
| म० | चिक्लेशिथ, चिक्लेष्ठ | चिक्लिशथुः | चिक्लिश | नेशिथ, ननंष्ठ[4] | नेशथुः | नेश |
| उ० | चिक्लेश | चिक्लिशिव, चिक्लिश्व | चिक्लिशिम, चिक्लिश्म | ननाश, ननश | नेशिव, नेश्व | नेशिम, नेश्म |

---

१. देखो नियम ४७१।
२. देखो नियम ५१२।
३. धातु के अन्तिम म् को न् हो जाता है, बाद में म् या व् होने पर।
४. देखो नियम ४७६।

| | **अक्ष्** (प्राप्त होना), १ प० | | | **निर् + कुष्** (निकालना, फाड़ना), ९ प० | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | आनक्ष | आनक्षतुः | आनक्षुः | निश्चुकोष | निश्चुकुषतुः | निश्चुकुषुः |
| म० | आनक्षिथ, आनष्ठ | आनक्षथुः | आनक्ष | निश्चुकोषिथ, निश्चुकोष्ठ | निश्चुकुषथुः | निश्चुकुष |
| उ० | आनक्ष | आनक्षिव, आनक्ष्व | आनक्षिम, आनक्ष्म | निश्चुकोष | निश्चुकुषिव, निश्चुकुष्व | निश्चुकुषिम, निश्चुकुष्म |

त्वक्ष् और तक्ष् (छीलना) के रूप इसी प्रकार चलेंगे।

| | **गाह्** (घुसना), १ आ० | | | **गृह्** (लेना), १ आ० | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | जगाहे | जगाहाते | जगाहिरे | जगृहे | जगृहाते | जगृहिरे |
| म० | जगाहिषे, जघाक्षे | जगाहाथे | जगाहिध्वे, जघाढ्वे | जगृहिषे, जघृक्षे | जगृहाथे | जगृहिध्वे, जघृढ्वे |
| उ० | जगाहे | जगाहिवहे, जगाह्वहे | जगाहिमहे, जगाह्महे | जगृहे | जगृहिवहे, जगृह्वहे | जगृहिमहे, जगृह्महे |

गर्ह् (१ आ०) सेट् है। उसके रूप सेट् के तुल्य चलेंगे। गर्ह् (१० उ०) के रूप आम् प्रत्ययान्त वाले बनेंगे।

**गुह्** (छिपाना), १ उ०

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | जुगूह | जुगुहतुः | जुगुहुः | जुगुहे | जुगुहाते | जुगुहिरे |
| म० | जुगूहिथ, जुगोढ | जुगुहथुः | जुगुह | जुगुहिषे, जुघुक्षे | जुगुहाथे | जुगुहिध्वे-ढ्वे, जुघूढ्वे[1] |
| उ० | जुगूह | जुगुहिव, जुगुह्व | जुगुहिम, जुगुह्म | जुगुहे | जुगुहिवहे, जुगुह्वहे | जुगुहिमहे, जुगुह्महे |

| | **तृह्** (हिंसा करना), ६ प० | | | **तृंह्** (हिंसा करना), ६ प० | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | ततर्ह | ततृहतुः | ततृहुः | ततृंह | ततृंहतुः | ततृंहुः |
| म० | ततर्हिथ, ततर्ढ | ततृहथुः | ततृह | ततृंहिथ, ततृंढ | ततृंहथुः | ततृंह |
| उ० | ततर्ह | ततृहिव, ततृह्व | ततृहिम, ततृह्म | ततृंह | ततृंहिव, ततृंह्व | ततृंहिम, ततृंह्म |

---

१. ढ् या र् का लोप होने पर पूर्ववर्ती अ, इ, उ को दीर्घ हो जाता है।

| | दुह् (द्रोह करना), ४ प० | | | स्तृह् (हानि पहुँचाना), ६ प० | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | दुद्रोह | दुद्रुहतुः | दुद्रुहुः | तस्तर्ह | तस्तृहतुः | तस्तृहुः |
| म० | दुद्रोहिथ, दुद्रोढ, दुद्रोग्ध[1] | दुद्रुहथुः | दुद्रुह | तस्तर्हिथ, तस्तर्ढ | तस्तृहथुः | तस्तृह |
| उ० | दुद्रोह | दुद्रुहिव, दुद्रुह्व | दुद्रुहिम, दुद्रुह्म | तस्तर्ह | तस्तृहिव, तस्तृह्व | तस्तृहिम, तस्तृह्म |

इसी प्रकार मुह् के रूप चलेंगे। म० पु० एक० मुमोहिथ, मुमोढ, मुमोग्ध, उ० पु० द्वि० मुमुहिव, मुमुह्व, इत्यादि।

इसी प्रकार वृह् के रूप चलेंगे। म० पु० एक० ववर्हिथ, ववर्ढ, उ० पु० द्वि० ववृहिव, ववृह्व, आदि।

**स्निह्** (प्रेम करना), ४ प०

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | सिष्णेह | सिष्णिहतुः | सिष्णिहुः |
| म० | सिष्णेहिथ, सिष्णेढ, सिष्णेग्ध | सिष्णिहथुः | सिष्णिह |
| उ० | सिष्णेह | सिष्णिहिव, सिष्णिह्व | सिष्णिहिम, सिष्णिह्म |

इसी प्रकार स्नुह् के रूप चलेंगे।

**अनियमित धातुएँ:—**

**५०९.** श्रन्थ्, ग्रन्थ्, दम्भ् और स्वञ्ज् धातुओं के मध्यगत न् का विकल्प से लोप हो जाता है, लिट् लकार में। श्रन्थ्, ग्रन्थ् और दम्भ् के मध्यगत न् का लोप होने पर पित् (सबल) प्रत्ययों के बाद में होने पर भी नियम ५०० लगेगा।

| | श्रन्थ्—पर० | | | ग्रन्थ्—पर० | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | शश्रन्थ, श्रेथ | शश्रन्थतुः, श्रेथतुः | शश्रन्थुः, श्रेथुः | जग्रन्थ, ग्रेथ | जग्रन्थतुः, ग्रेथतुः | जग्रन्थुः ग्रेथुः |
| म० | शश्रन्थिथ, श्रेथिथ | शश्रन्थथुः, श्रेथथुः | शश्रन्थ, श्रेथ | जग्रन्थिथ, ग्रेथिथ | जग्रन्थथुः, ग्रेथथुः | जग्रन्थ, ग्रेथ |

१. द्रुह्, मुह्, स्नुह् और स्निह् के ह् को घ् या ढ् होता है, बाद में झल् (वर्ग के ५ और अन्तःस्थ को छोड़ कर सभी व्यंजन) हो तो या पदान्त हो तो।

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| उ० | शश्रन्थ | शश्रन्थिव | शश्रन्थिम | जग्रन्थ | जग्रन्थिव | जग्रन्थिम |
| | श्रेथ | श्रेथिव | श्रेथिम | ग्रेथ | ग्रेथिव | ग्रेथिम |

| | | **दम्भ्—**पर० | | | **स्वञ्ज्—**आ० | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | ददम्भ, | ददम्भतु, | ददम्भु: | सस्वञ्जे, | सस्वञ्जाते, | सस्वञ्जिरे |
| | देभ | देभतु: | देभु: | सस्वजे | सस्वजाते | सस्वजिरे |
| म० | ददम्भिथ, | ददम्भथु:, | ददम्भ, | सस्वञ्जिषे, | सस्वञ्जाथे, | सस्वञ्जिध्वे |
| | देभिथ | देभथु: | देभ | सस्वजिषे | सस्वजाथे | सस्वजिध्वे |
| उ० | ददम्भ, | ददम्भिव, | ददम्भिम, | सस्वञ्जे, | सस्वञ्जिवहे, | सस्वञ्जिमहे, |
| | देभ | देभिव | देभिम | सस्वजे | सस्वजिवहे | सस्वजिमहे |

**५१०.** गम्, हन्, जन्, खन् और घस् धातुओं के उपधा के अ का लोप **हो** जाता है, बाद में अजादि ङित् स्वर होने पर। लुङ में अङ (अ) होने पर **यह नियम** नहीं लगेगा। उपधा के अ का लोप होने पर हन् के ह को घ् हो **जाता** है, जन् को ज्ञ् और घस् को क्ष्।

| | | **गम्** | | | **हन्** | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | जगाम | जग्मतु: | जग्मु: | जघान | जघ्नतु: | जघ्नु: |
| म० | जगमिथ, जगन्थ | जग्मथु: | जग्म | जघनिथ, जघन्थ | जघ्नथु: | जघ्न |
| उ० | जगाम, जगम | जग्मिव | जग्मिम | जघान, जघन | जघ्निव | जघ्निम |

| | | **जन्** | |
|---|---|---|---|
| प्र० | जज्ञे | जज्ञाते | जज्ञिरे |
| म० | जज्ञिषे | जज्ञाथे | जज्ञिध्वे |
| उ० | जज्ञे | जज्ञिवहे | जज्ञिमहे |

**घस्**

अद् धातु को लिट् में विकल्प से घस् होता है। इसके रूप आगे देखें।

**खन्—**उभय०

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | चखान | चख्नतु: | चख्नु: | चख्ने | चख्नाते | चख्निरे |
| म० | चखनिथ | चख्नथु: | चख्न | चख्निषे | चख्नाथे | चख्निध्वे |
| उ० | चखान, चखन | चख्निव | चख्निम | चख्ने | चख्निवहे | चख्निमहे |

५११. अद् धातु को लिट् में विकल्प से घस् हो जाता है ।

अद् (घस्)

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | आद, | आदतुः, | आदुः, |
| | जघास | जक्षतुः | जक्षुः |
| म० | आदिथ[1], | आदथुः, | आद, |
| | जघसिथ | जक्षथुः | जक्ष |
| उ० | आद, | आदिव, | आदिम, |
| | जघास, जघस | जक्षिव | जक्षिम |

५१२. निम्नलिखित धातुओं में नियम ५०० नित्य लगता है :— तॄ, फल्, भज्, त्रप् और राध् ( हिंसा करना या हानि पहुँचाना अर्थ में )। इन धातुओं में नियम ५०० विकल्प से लगता है— जॄ, भ्रम्, त्रस्, फण् ( १ प०, जाना ), राज्, भ्राज्, भ्राश्, स्यम् और स्वन् ।[2]

| | तॄ ( पार करना ), १ प० | | | फल् ( फलना ), १ प० | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | ततार | तेरतुः | तेरुः | पफाल | फेलतुः | फेलुः |
| म० | तेरिथ | तेरथुः | तेर | फेलिथ | फेलथुः | फेल |
| उ० | ततार,ततर | तेरिव | तेरिम | पफाल,पफल | फेलिव | फेलिम |

भज् ( सेवा करना ), १ उ०

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | बभाज | भेजतुः | भेजुः | भेजे | भेजाते | भेजिरे |
| म० | भेजिथ, बभक्थ | भेजथुः | भेज | भेजिषे | भेजाथे | भेजिध्वे |
| उ० | बभाज,बभज | भेजिव | भेजिम | भेजे | भेजिवहे | भेजिमहे |

अप + राध्, ५ पर०

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | अप–रराध | अप–रेधतुः | अप–रेधुः |
| म० | अप–रेधिथ | अप–रेधथुः | अप–रेध |
| उ० | अप–रराध | अप–रेधिव | अप–रेधिम |

---

१. देखो नियम ५१५ ।

२. तॄफलभजत्रपश्च ( ६-४-१२२ )। राधो हिंसायाम् ( ६-४-१२३ )। वा जॄभ्रमुत्रसाम् ( ६-४-१२४ )। फणां च सप्तानाम् ( ६-४-१२५ )।

| | **जॄ** (वृद्ध होना), ४ प० | | | **भ्रम्** (घूमना), १,४ पर० | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | जजार | जजरतुः, जेरतुः | जजरुः, जेरुः | वभ्राम | वभ्रमतुः, भ्रेमतुः | वभ्रमुः, भ्रेमुः |
| म० | जजरिथ, जेरिथ | जजरथुः, जेरथुः | जजर, जेर | वभ्रमिथ, भ्रेमिथ | बभ्रमथुः, भ्रेमथुः | बभ्रम, भ्रेम |
| उ० | जजार, जजर | जजरिव, जेरिव | जजरिम, जेरिम | वभ्राम, वभ्रम | बभ्रमिव, भ्रेमिव | वभ्रमिम, भ्रेमिम |

| | **भ्राज्** (चमकना), १ आ० | | | **स्यम्** (शब्द करना), १ प० | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | वभ्राजे, भ्रेजे | वभ्राजाते, भ्रेजाते | वभ्राजिरे, भ्रेजिरे | सस्याम | सस्यमतुः, स्येमतुः | सस्यमुः, स्येमुः |
| म० | वभ्राजिषे, भ्रेजिषे | वभ्राजाथे, भ्रेजाथे | वभ्राजिध्वे, भ्रेजिध्वे | सस्यमिथ, स्येमिथ, | सस्यमथुः, स्येमथुः | सस्यम, स्येम |
| उ० | वभ्राजे, भ्रेजे | वभ्राजिवहे, भ्रेजिवहे | वभ्राजिमहे, भ्रेजिमहे | सस्याम, सस्यम | सस्यमिव, स्येमिव | सस्यमिम, स्येमिम |

इसी प्रकार भ्लाश्, भ्राश् और राज् धातु के रूप चलेंगे।

**५१३.** भू धातु को लिट् में वभूव् हो जाता है :—

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | वभूव | वभूवतुः | वभूवुः | वभूवे | बभूवाते | वभूविरे |
| म० | वभूविथ | वभूवथुः | वभूव | वभूविषे | बभूवाथे | बभूविध्वे |
| उ० | वभूव | वभूविव | वभूविम | वभूवे | बभूविवहे | बभूविमहे |

**५१४.** लिट् लकार में और सन् प्रत्यय होने पर इन धातुओं में अभ्यास के वाद वाले अक्षर को निम्नलिखित आदेश होते हैं—जि को गि, हि को घि और चि को विकल्प से कि।

| | **जि** | | | **हि** | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | जिगाय | जिग्यतुः | जिग्युः | जिघाय | जिघ्यतुः | जिघ्युः |
| म० | जिगयिथ, जिगेथ | जिग्यथुः | जिग्य | जिघयिथ, जिघेथ | जिघ्यथुः | जिघ्य |
| उ० | जिगाय, जिगय | जिग्यिव | जिग्यिम | जिघाय, जिघय | जिघ्यिव | जिघ्यिम |

**चि**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | चिकाय, | चिक्यतुः, | चिक्युः, |
| | चिचाय | चिच्यतुः | चिच्युः |
| म० | चिकयिथ,चिकेथ | चिक्यथुः, | चिक्य, |
| | चिचयिथ,चिचेथ | चिच्यथुः | चिच्य |
| उ० | चिकाय,चिकय | चिक्यिव, | चिक्यिम, |
| | चिचाय,चिचय | चिच्यिव | चिच्यिम |

**५१५.** अद्, ऋ और व्ये धातुओं को थ बाद में होने पर इ अवश्य लगताहै।

**ऋ**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | आर | आरतुः | आरुः |
| म० | आरिथ | आरथुः | आर |
| उ० | आर | आरिव | आरिम |

अद् और व्ये धातुओं के लिए देखो नियम ५११ और ५०६ के नीचे इन धातुओं के रूप।

**मस्ज्**[1]

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | ममज्ज | ममज्जतुः | ममज्जुः |
| म० | ममज्जिथ, ममङ्क्थ | ममज्जथुः | ममज्ज |
| उ० | ममज्ज | ममज्जिव | ममज्जिम |

**अज्**[2] ( जाना )

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | विवाय | विव्यतुः | विव्युः |
| म० | विवयिथ,विवेथ, आजिथ | विव्यथुः | विव्य |
| उ० | विवाय,विवय | विव्यिव,आजिव | विव्यिम,आजिम |

**५१६.** इ ( जाना ) धातु के अभ्यास के इ को ई हो जाता है, ङित् ( निर्बल) प्रत्यय बाद में होने पर।

इस धातु के रूप के लिए देखो नियम ५०५ के नीचे धातुरूप।

**५१७.** अधि+इ ( पढ़ना ) को अधिजगा हो जाता है।

---

१. देखो नियम ४७६ ।

२. देखो नियम ४७७ ।

अधि—इ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | अधिजगे | अधिजगाते | अधिजगिरे |
| म० | अधिजगिषे | अधिजगाथे | अधिजगिध्वे |
| उ० | अधिजगे | अधिजगिवहे | अधिजगिमहे |

**५१८.** ऊर्णु धातु को ऊर्णुनु हो जाता है। पित् ( सबल) प्रत्ययों से पूर्व इ होन पर विकल्प से गुण होगा।

ऊर्णु—पर०

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | ऊर्णुनाव | ऊर्णुनुवतुः | ऊर्णुनुवुः |
| म० | ऊर्णुनुविथ, ऊर्णुनविथ | ऊर्णुनुवथुः | ऊर्णुनुव |
| उ० | ऊर्णुनाव, ऊर्णुनव | ऊर्णुनुविव | ऊर्णुनुविम |

आत्मने०

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | ऊर्णुनुवे | ऊर्णुनुवाते | ऊर्णुनुविरे |
| म० | ऊर्णुनुविषे | ऊर्णुनुवाथे | ऊर्णुनुविध्वे-ढ्वे |
| उ० | ऊर्णुनुवे | ऊर्णुनुविवहे | ऊर्णुनुविमहे |

**५१६.** चक्ष् धातु को लिट् लकार में विकल्प से और अन्य आर्धधातुक लकारों में नित्य ख्या और क्शा आदेश होते हैं।

ख्या और क्शा धातुओं से दोनों पद होते हैं।

ख्या, क्शा—पर०

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | आचख्यौ, | आचख्यतुः, | आचख्युः, |
| | आचक्शौ | आचक्शतुः | आचक्शुः |
| म० | आचख्यिथ, आचख्याथ | आचख्यथुः, | आचख्य, |
| | आचक्शिथ, आचक्शाथ | आचक्शथुः | आचक्श |
| उ० | आचख्यौ, | आचख्यिव, | आचख्यिम, |
| | आचक्शौ | आचक्शिव | आचक्शिम |

आत्मने०

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | आचचक्षे, | आचचक्षाते, | आचचक्षिरे, |
| | आचख्ये, | आचख्याते, | आचख्यिरे, |
| | आचक्शे | आचक्शाते | आचक्शिरे |

| | | |
|---|---|---|
| म० आचचक्षिपे, | आचचक्षाथे, | आचचक्षिध्वे, |
| आचख्यिषे, | आचख्याथे, | आचख्यिध्वे-ढ्वे, |
| आचक्शिषे | आचक्शाथे | आचक्शिध्वे |
| उ० आचचक्षे, | आचचक्षिवहे, | आचचक्षिमहे, |
| आचख्ये, | आचख्यिवहे, | आचख्यिमहे, |
| आचक्शे | आचक्शिवहे | आचक्शिमहे |

**५२०.** दी ( ४ आ० आज्ञापालन करना ) को अजादि ङित् ( निर्बल ) प्रत्यय बाद में होने पर बीच में य् और लग जाता है।

| | | |
|---|---|---|
| प्र० दिदीये | दिदीयाते | दिदीयिरे |
| म० दिदीयिषे | दिदीयाथे | दिदीयिध्वे-ढ्वे |
| उ० दिदीये | दिदीयिवहे | दिदीयिमहे |

**५२१.** दे ( १ आ०, रक्षा करना ) का लिट् में दिगि रूप हो जाता है। जैसे—दिग्ये ( प्र० एक० ), दिग्यिध्वे-ढ्वे ( म० बहु० ), दिग्ये, दिग्यिवहे ( उ० एक०, द्वि० )।

**५२२.** द्युत् धातु का लिट् में दिद्युत् रूप हो जाता है। दिद्युते ( प्र० एक० ), दिद्युतिषे ( म० एक० )।

**५२३.** प्यै ( मोटा होना ) का लिट् में और यङ प्रत्यय होने पर पिपी रूप हो जाता है। जैसे—पिप्ये ( प्र० एक० ), पिप्यिध्वे-ढ्वे ( म० बहु० )।

**५२४.** व्यथ् धातु का लिट् में अभ्यास को संप्रसारण होकर विव्यथ् रूप हो जाता है। जैसे—विव्यथे ( प्र० एक० ), विव्यथिषे ( म० एक० )।

**५२५.** विज् धातु के रूपों के लिए देखो नियम ४६६, । विवेज (प्र० एक०), विविजिथ विविजथुः विविज ( म० पु० ), आदि।

### आम् प्रत्ययान्त लिट् ( Periphrastic Perfect )

**५२६.** आम् प्रत्ययान्त लिट् इस प्रकार बनते हैं—धातु के अन्त में आम् प्रत्यय लगता है और उसके बाद में कृ, भू या अस् धातु के लिट् लकार वाले रूप सभी पुरुषों में लगते हैं। जब आम् प्रत्ययान्त के बाद कृ धातु लगती है तो परस्मैपदी धातु में उसके रूप परस्मैपद वाले लगेंगे और आत्मनेपदी धातु में आत्मनेपद वाले रूप।

५२७. आम् प्रत्यय होने पर धातु के अन्तिम स्वर और उपधा के ह्रस्व **स्वर** को गुण हो जाता है। विद् धातु को गुण नहीं होता है।

**उदाहरण**

**ईड्** ( स्तुति करना ), २ आ०

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | ईडांचक्रे, | ईडांचक्राते, | ईडांचक्रिरे, |
| | ईडामास, | ईडामासतुः, | ईडामासुः, |
| | ईडांबभूव | ईडांबभूवतुः | ईडांबभूवुः |
| म० | ईडांचकृषे, | ईडांचक्राथे, | ईडांचकृढ्वे, |
| | ईडामासिथ, | ईडामासथुः, | ईडामास, |
| | ईडांबभूविथ | ईडांबभूवथुः | ईडांबभूव |
| उ० | ईडांचक्रे, | ईडांचकृवहे, | ईडांचकृमहे, |
| | ईडामास, | ईडामासिव, | ईडामासिम, |
| | ईडांबभूव, | ईडांबभूविव | ईडांबभूविम |

इसी प्रकार ईक्ष्, ईग्, ऊह आदि के रूप चलते हैं।

**दय्** ( देना )

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | दयांचक्रे | दयामास | दयांबभूव आदि |
| म० | दयांचकृषे | दयामासिथ | दयांबभूविथ आदि |
| उ० | दयांचक्रे | दयामास | दयांबभूव आदि |

इसी प्रकार अय् धातु के रूप चलते हैं।

**आस्**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | आसांचक्रे | आसांचक्राते | आसांचक्रिरे |
| म० | आसांचकृषे | आसांचक्राथे | आसांचकृढ्वे |
| उ० | आसांचक्रे | आसांचकृवहे | आसांचकृमहे |

इसके आसामास, आसांबभूव आदि भी रूप होते हैं।

इसी प्रकार कास् के भी रूप चलते हैं।

**ऊष्** ( जलाना ), १ प०

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | उवोष, | ऊषतुः, | ऊषुः, |
| | ओषांचकार | ओषांचक्रतुः | ओषांचक्रुः |

| | | | |
|---|---|---|---|
| म० | उवोषिथ, | ऊषथुः, | ऊष, |
| | ओषांचकर्थ | ओषांचक्रथुः | ओषांचक्र |
| उ० | उवोष, | ऊषिव, | ऊषिम, |
| | ओषांचकार | ओषांचकृव | ओषांचकृम |

इसके ओषामास, ओषांवभूव आदि भी रूप चलेंगे ।

**विद्** ( जानना ), २ प०

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | विवेद, | विविदतुः, | विविदुः, |
| | विदामास | विदामासतुः | विदामासुः |
| म० | विवेदिथ, | विविदथुः, | विविद, |
| | विदामासिथ | विदामासथुः | विदामास |
| उ० | विवेद, | विविदिव, | विविदिम, |
| | विदामास | विदामासिव | विदामासिम |

इसके ही विदांचकार, विदांबभूव आदि भी रूप चलेंगे ।

**जागृ** ( जागना ), २ प०

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | जजागार, | जजागरतुः, | जजागरुः, |
| | जागरामास | जागरामासतुः | जागरामासुः |
| म० | जजागरिथ, | जजागरथुः, | जजागर, |
| | जागरामासिथ | जागरामासथुः | जागरामास |
| उ० | जजागार, जजागर, | जजागरिव, | जजागरिम, |
| | जागरामास | जागरामासिव | जागरामासिम |

इसके जागरांचकार, जागरांबभूव आदि भी रूप चलते हैं ।

**गुप्**—प्र० एक०—जुगोप, गोपायांचकार आदि, म० एक० **जुगोपिथ,** **जुगोप्थ**, गोपायांचकर्थ आदि, उ० द्विव० जुगुपिव, जुगुप्व, गोपायांचकृव **आदि ।**

**धूप्**—प्र० एक० दुधूप, धूपायांचकार आदि ।

**विच्छ्**—प्र० एक०—विविच्छ, विच्छायांचकार आदि ।

**पण्**—प्र० एक०—पेणे, पणायांचकार आदि । ( बोपदेव के **मतानुसार** **पणायांचक्रे** आदि भी रूप बनते हैं ) ।

**पन्**—प्र० एक०—पेने, पनायांचकार आदि ।

**ऋत्**—प्र० एक० आनर्त, ऋतीयांचक्रे आदि ।

**५२८**. भी, ह्री, भृ और हु धातुओं को आम् लगने से पूर्व जुहोत्यादि के तुल्य द्वित्व होता है और बाद में आम् लगता है। जैसे—

**भी** ( डरना ), ३ प०

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | बिभाय, | बिभ्यतुः, | बिभ्युः, |
| | बिभयांचकार | बिभयांचक्रतुः | बिभयांचक्रुः |
| म० | बिभयिथ, बिभेथ, | बिभ्यथुः, | बिभ्य, |
| | बिभयांचकर्थ | बिभयांचक्रथुः | बिभयांचक्र |
| उ० | बिभाय, बिभय, | बिभ्यिव, | बिभ्यिम, |
| | बिभयांचकार-चकर | बिभयांचकृव | बिभयांचकृम |

इसके बिभयामास, बिभयांबभूव आदि रूप भी चलते हैं।

**ह्री** ( लज्जित होना ), ३ प०

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | जिह्राय, | जिह्रियतुः, | जिह्रियुः |
| | जिह्रयांचकार | जिह्रयांचक्रतुः | जिह्रयांचक्रुः |
| म० | जिह्रयिथ, जिह्रेथ, | जिह्रियथुः, | जिह्रिय, |
| | जिह्रयांचकर्थ | जिह्रयांचक्रथुः | जिह्रयांचक्र |
| उ० | जिह्राय, जिह्रय, | जिह्रियिव, | जिह्रियिम, |
| | जिह्रयांचकार-चकर | जिह्रयांचकृव | जिह्रयांचकृम |

इसके जिह्रयामास, जिह्रयांबभूव आदि भी रूप चलते हैं।

भृ—प्र० एक० बभार, बिभरांचकार, बिभरामास, बिभरांबभूव।

हु—प्र० एक० जुहाव, जुहवांचकार, जुहवामास, जुहवांबभूव।

## (५) लुङ् (Aorist)

**५२९**. लुङ् के ७ भेद हैं। लुङ् में भी लङ् के तुल्य धातु से पहले अ लगता है।

### प्रथमभेद

**५३०**. इसमें वही तिङ् प्रत्यय लगते हैं, जो लङ् में लगते हैं। केवल प्र० पु० बहु० में उस् ( उः ) लगेगा।

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | त् | ताम् | उस् |
| म० | स् | तम् | त |
| उ० | अम् | व | म |

**५३१.** उस् बाद में होने पर धातु के अन्तिम आ का लोप हो जाता है।

**५३२.** इन धातुओं में यह भेद लगता है—इ, स्था, दा, धा तथा अन्य धातुएँ जिनका दा और धा रूप रह जाता है (देखो नियम ४ ५९), पा (पीना) और भू धातु।

**५३३.** घ्रा, धे, शो, सो और छो धातुओं में यह भेद विकल्प से लगता है। इन धातुओं में विकल्प से षष्ठ भेद भी लगता है। धे धातु में तृतीय भेद भी लगता है।

**उदाहरण**

| | स्था—पर० | | | शो— पर० | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | अस्थात् | अस्थाताम् | अस्थुः | अशात् | अशाताम् | अशुः |
| म० | अस्थाः | अस्थातम् | अस्थात | अशाः | अशातम् | अशात |
| उ० | अस्थाम् | अस्थाव | अस्थाम | अशाम् | अशाव | अशाम |

**५३४.** भू धातु से प्र० पु० बहु० में उस् के स्थान पर अन् लगता है। अजादि तिङ बाद में होने पर भू के ऊ को ऊव् हो जाता है। जैसे—प्र० पु०—अभूत्, अभूताम्, अभूवन्, उ० पु०—अभूवम्, अभूव, अभूम।

**५३५.** इ धातु को लुङ में गा हो जाता है। प्र० पु०—अगात्, अगाताम्, अगुः। अधि+इ ( याद करना ) —अध्यगात्, अध्यगाताम्, अध्यगुः, आदि।

**५३६.** यह भेद परस्मैपद में ही लगता है। दा, धा और स्था धातुओं में आत्मनेपद में चतुर्थ भेद लगता है। भू धातु में आत्मनेपद में पंचम भेद लगता है और अधि+इ आत्मनेपदी में चतुर्थ भेद लगता है।

**द्वितीय भेद**

**५३७.** इस भेद में धातु के अन्त में अ लगता है और बाद में भ्वादिगण में लङ में लगने वाले तिङ यहाँ पर भी लगते हैं। वे ये हैं :—

| | पर० | | | आत्मने० | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | त् | ताम् | अन् | त | इताम् | अन्त |
| म० | स् | तम् | त | थास् | इथाम् | ध्वम् |
| उ० | अम् | व | म | इ | वहि | महि |

**५३८.** अन्, अम् और अन्त बाद में होने पर पूर्ववर्ती अ का लोप हो जाएगा। व और म बाद में होने पर अ को आ हो जाएगा। धातु के स्वरों को गुण या वृद्धि नहीं होती है। केवल इन स्थानों पर ही गुण या वृद्धि होती है—धातु के अन्तिम ऋ, ॠ को और दृश् धातु के ऋ को।

५३९. यह भेद प्रायः परस्मैपद में ही लगता है । कुछ स्थानों पर आत्मनेपद में भी । जैसे--सम् + ऋ, उपसर्ग के साथ ये धातुएँ--ख्या, वच् और अस् (फेंकना) । लिप्, सिच् और ह्वे धातुओं में यह भेद परस्मै० में नित्य लगता है और आत्मने० में विकल्प से । इनमें आत्मने० में चतुर्थ भेद भी लगता है ।

५४०. धातु की उपधा के अनुनासिक ( न्, म् ) का लोप हो जाता है । जैसे--भ्रंश्--अभ्रशत्, स्कन्द्--अस्कदत् आदि ।

५४१. निम्नलिखित धातुओं के ये रूप हो जाते हैं--अस्--अस्थ्, ख्या--ख्य्, पत्--पप्त्, वच्--वोच्, शास्--शिष्, श्वि--श्व्, ह्वे--ह्व्। जैसे--प्र० एक०--आस्थत्, अख्यत्, अवोचत्, अशिषत् आदि ।

५४२. निम्नलिखित कारिकाओं में दी गई धातुएँ इस भेद की हैं :--

ख्यातीयर्ती सर्सातिह्वे कान्तौ शक्नोतिशक्यती ।
उच् मुच् ववितः सिचिश्चान्ता लुटचतिः पततिस्तथा ॥१॥
दान्ताः क्लिद् क्ष्विद् मदि मिदो विन्दतिः शद्सदिस्विदः ।
ऋधिक्रुधी क्षुधिगृधी रधिः शुध्यतिसिध्यती ॥२॥
आप्कुपौ गुप्यतिडिपी युप् रुप् लिम्पतिलुप्यती ।
लुम्पतिः सर्पतिः पान्ताः क्षुभ्यतिस्तुभ्यतिर्नभिः ॥३॥
लुभ्यतिश्च भकारान्ता मान्ताः क्लाम्यतिक्षाम्यती ।
गमिस्तमिर्दमिभ्रमी शाम्यतिः श्राम्यतिः समिः ॥४॥
शान्ताः पञ्च कृशिनशी मृशिर्भ्रशतिवृश्यती ।
तुष्यतितृष्यतिदुषः पिनष्टिः पुष्यतिः प्लुषिः ॥५॥
रिष्यरुष् वेवेष्टिवुषो व्युषिः सह शिनष्टिना ।
शुष्यतिर्हृष्यतिः षान्ताः सान्ताः अस्यतिकुस्यती ॥६॥
घसिजसी तसिदसौ वस्यर्तिविस्यतिर्व्युसिः ।
मस्मुसी यस्वसिविसो वुस्यतिः शास्तिरित्यपि ॥७॥
द्रुह्यमुह्यस्निहिस्नुहो लुङ्यङ्विकरणा भवेत् ।
नवाशीतिश्च धातूनां परस्मैपदिनामियम् ॥८॥
समियर्तिः ख्यातिवक्ती अस्यतिश्चोपसर्गयुक् ।
आत्मनेपदिनोऽपीमे ह्वयर्तिलिपिसिञ्चती ॥९॥
एते विभाषयाऽङवन्त आत्मनेपदिनो यदा ॥

| ख्या—पर० | | | सम्+ख्या—आ० | | |
|---|---|---|---|---|---|
| प्र० अख्यत् | अख्यताम् | अख्यन् | अख्यत | अख्येताम् | अख्यन्त |
| म० अख्यः | अख्यतम् | अख्यत | अख्यथाः | अख्येथाम् | अख्यध्वम् |
| उ० अख्यम् | अख्याव | अख्याम | अख्ये | अख्यावहि | अख्यामहि |

| ऋ ( जाना ) पर० ( ३ प० ) | | | सम्+ऋ—आ० | | |
|---|---|---|---|---|---|
| प्र० आरत् | आरताम् | आरन् | समारत | समारेताम् | समारन्त |
| म० आरः | आरतम् | आरत | समारथाः | समारेथाम् | समारध्वम् |
| उ० आरम् | आराव | आराम | समारे | समारावहि | समारामहि |

सृ ( जाना )— १ प०

| | | |
|---|---|---|
| प्र० असरत् | असरताम् | असरन् |
| म० असरः | असरतम् | असरत |
| उ० असरम् | असराव | असराम |

ह्वे—१ उभय०

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| प्र० अह्वत् | अह्वताम् | अह्वन् | अह्वत | अह्वेताम् | अह्वन्त |
| म० अह्वः | अह्वतम् | अह्वत | अह्वथाः | अह्वेथाम् | अह्वध्वम् |
| उ० अह्वम् | अह्वाव | अह्वाम | अह्वे | अह्वावहि | अह्वामहि |

वच्—२ प० ( ब्रू उभय० के स्थान पर आदेश वच् भी )

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| प्र० अवोचत् | अवोचताम् | अवोचन् | अवोचत | अवोचेताम् | अवोचन्त |
| म० अवोचः | अवोचतम् | अवोचत | अवोचथाः | अवोचेथाम् | अवोचध्वम् |
| उ० अवोचम् | अवोचाव | अवोचाम | अवोचे | अवोचावहि | अवोचामहि |

सिच्—६ उ०

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| प्र० असिचत् | असिचताम् | असिचन् | असिचत | असिचेताम् | असिचन्त |
| म० असिचः | असिचतम् | असिचत | असिचथाः | असिचेथाम् | असिचध्वम् |
| उ० असिचम् | असिचाव | असिचाम | असिचे | असिचावहि | असिचामहि |

लिप्—६ उ०

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| प्र० अलिपत् | अलिपताम् | अलिपन् | अलिपत[1] | अलिपेताम् | अलिपन्त |

१. लिप्, सिच् और ह्वे धातुओं में आत्मनेपद में चतुर्थ भेद भी लगता है। अलिप्त, असिक्त, अह्वास्त।

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| म० | अलिपः | अलिपतम् | अलिपत | अलिपथाः | अलिपेथाम् | अलिपध्वम् |
| उ० | अलिपम् | अलिपाव | अलिपाम | अलिपे | अलिपावहि | अलिपामहि |

| | अस्—४ प० | | | परि+अस्—आ० | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | आस्थत् | आस्थताम् | आस्थन् | पर्यास्थत | पर्यास्थेताम् | पर्यास्थन्त |
| म० | आस्थः | आस्थतम् | आस्थत | पर्यास्थथाः | पर्यास्थेथाम् | पर्यास्थध्वम् |
| उ० | आस्थम् | आस्थाव | आस्थाम | पर्यास्थे | पर्यास्थावहि | पर्यास्थामहि |

शेष धातुओं के प्र० पु० एक० के रूप नीचे दिए जाते हैं:—

| धातु | धातु |
|---|---|
| शक्[1] (४ उ०, ५ प०)—अशकत् | शुध्—अशुधत् |
| उच् (४ प०, एकत्र करना)—औचत् | सिध्—असिधत् |
| मुच्—अमुचत् | आप्—आपत् |
| लुट् (४ प०, लपेटना)—अलुटत् | कुप्—अकुपत् |
| पत्—अपप्तत् | गुप् (४ प०, व्याकुल होना)—अगुपत् |
| क्लिद् (४ प०, गीला होना)—अक्लिदत् | डिप् (४ प०, फेंकना)—अडिपत् |
| क्ष्विद् (४ प०, सिक्त होना)—अक्ष्विदत् | युप्—अयुपत् |
| मद्—अमदत् | रुप्—अरुपत् |
| मिद् (१ आ०, ४ प०, पिघलना)—अमिदत् | लुप्[3]—(४ प०, ६ उ०)—अलुपत् |
| विद् (६ उ०)[2]—अविदत् | सृप्—असृपत् |
| शद् (१ प०, नष्ट होना)—अशदत् | क्षुभ्—अक्षुभत् |
| सद्—असदत् | तुभ् ( हिंसा करना )—अतुभत् |
| स्विद्—अस्विदत् | नभ् (४ प०, हिंसा करना)—अनभत् |
| ऋध् (४,५ प०, समृद्ध होना)—आर्धत् | लुभ्—अलुभत् |
| क्रुध्—अक्रुधत् | क्लम्—अक्लमत् |
| क्षुध्—अक्षुधत् | क्षम्—अक्षमत् |

१. शक् ( ४ आ० ) में आत्मनेपद में चतुर्थ और पंचम भेद लगता है। जैसे—प्र० एक० अशक्त, अशकिष्ट।

२. विद् ( आ० ) में चतुर्थ और पंचम भेद लगता है। प्र० एक०—अवित्त, अवेदिष्ट।

३. लुप् में आत्मने० में चतुर्थ भेद लगता है। अलुप्त।

गृध् (४ प०, लालच करना)—अगृधत्
रध् (४ प०, हानि पहुँचाना)—अरधत्

शम्—अशमत्
श्रम्—अश्रमत्
सम् (१ प०, क्षुब्ध होना)—असमत्

कृश् (४ प०, कृश होना)—अकृशत्
नश्—अनशत्
भृश् (४ प०, गिरना)—अभृशत्
भ्रंश्—अभ्रशत्
वृश् (४ प०, चुनना)—अवृशत्
तुष्—अतुषत्
तृप् (४ प०, प्यासा होना)—अतृपत्
दुप् (४ प०, दूषित होना)—अदुपत्
पिष्—अपिषत्
पुष्—अपुषत्
प्लुष् (४ प०, जलाना)—अप्लुषत्
रिष् (४ प०, हिंसा करना)—अरिषत्
रुष् (४ प०, रुष्ट होना)—अरुषत्
विष् (३ उ०, व्याप्त होना)[1]—अविषत्
वुष्—अवुषत्
व्युष् (४ प०, काटना)—अव्युषत्
शिष्—अशिषत्

गम्—अगमत्
तम्—अतमत्
दम्—अदमत्
भ्रम्—अभ्रमत्
शुष् (४ प०, सूखना)—अशुषत्
हृष्—अहृषत्
कुस् (४ प०, आलिंगन करना)—अकुसत्
घस् (१ प०, खाना)—अघसत्
जस् (४ प०, छोड़ना)—अजसत्
तस् (४ प०, मुरझाना)—अतसत्
दस् (४ प०, नष्ट होना)—अदसत्
बस् (४प०, रुकना)—अवसत्
बिस् (४ प०, जाना)—अबिसत्
ब्युस् (४ प०, फेंकना)—अब्युसत्
मस् (४ प०, तोलना)—अमसत्
मुस् (४ प०, काटना)—अमुसत्
यस् (४ प०, यत्न करना)—अयसत्
वस्—बस् वाले ही रूप होंगे।
विस्—विस् वाले ही रूप।
वुस् (बुस्)—अवुसत् (अबुसत्)।
शास्—अशिषत्
द्रुह्—अद्रुहत्
मुह्—अमुहत्
स्निह—अस्निहत्
स्नुह्—अस्नुहत्

**५४३.** निम्नलिखित धातुओं में द्वितीय भेद विकल्प से लगता है। जहाँ पर

---

**१. विष् (आ०) में सप्तम भेद लगता है। अविक्षत।**

दूसरा भेद नहीं लगता है, वहाँ पर अनिट् धातुओं में चतुर्थ भेद और सेट् धातुओं में पंचम भेद लगता है।

श्वयतिर्जीर्यतिग्रुची ग्लुचिग्लुञ्चिम्रुचिम्लुचः ।
रिणक्तिश्च विनक्तिश्च चान्तास्त्वष्टौ च शुच्यतिः ॥१॥
नेनेक्तिश्च युनक्तिश्च वेवेक्तिस्फोटती चुतिः ।
च्युतिजुती श्चोततिश्च श्च्युतिर्दान्ता रुदादयः ॥२॥
क्षुदिच्छिदी छृदितृदी बुन्दतिश्च भिनत्तिना ।
रुदिस्कन्दी बोधतिश्च रुणद्धिश्च तृपिर्दृपिः ॥३॥
स्तभ्नातिः स्तभ्नोतिदृशी घोषतिश्लिष्यती उहिः ।
तोहतिर्दोहतिबृही चत्वारिंशदियं लुङि ॥४॥
विभाषयाऽङ्विकरणा परस्मैपदिनी यदा ॥

| धातु प्र० पु० एक० | वैकल्पिक रूप | धातु प्र० एक० | वैक० रूप |
|---|---|---|---|
| श्वि—अश्वत् | अशिश्वियत्[1] अश्वयीत् | श्चुत्—अश्चुतत् | अश्चोतीत् |
| जॄ—अजरत् | अजारीत् | श्च्युत्—अश्च्युतत् | अश्च्योतीत् |
| ग्रुच्—अग्रुचत् | अग्रोचीत् | क्षुद्—अक्षुदत् | अक्षौत्सीत्, अक्षुत्त |
| ग्लुच्—अग्लुचत् | अग्लोचीत् | छिद्—अच्छिदत् | अच्छैत्सीत्, अच्छित्त |
| ग्लुञ्च्-अग्लुञ्चत् | अग्लुञ्चीत् | छृद्—अच्छृदत् | अच्छर्दीत्, अच्छर्दिष्ट |
| म्रुच्—अम्रुचत् | अम्रोचीत् | तृद्—अतृदत् | अतर्दीत्, अतर्दिष्ट |
| म्लुच्—अम्लुचत् | अम्लोचीत् | बुन्द्—अबुदत् | अबुन्दीत्, अबुन्दिष्ट |
| रिच्—अरिचत् | अरैक्षीत्, अरिक्त | भिद्—अभिदत् | अभैत्सीत्, अभित्त |
| विच्—अविचत् | अवैक्षीत्, अविक्त | रुद्—अरुदत् | अरोदीत् |
| शुच्—अशुचत् | अशोचीत्,अशोचिष्ट | स्कन्द्—अस्कदत् | अस्कान्त्सीत् |
| निज्—अनिजत् | अनैक्षीत्, अनिक्त | बुध्—अबुधत् | अबोधीत्, अबोधिष्ट |
| युज्—अयुजत् | अयौक्षीत्,अयुक्त | रुध्—अरुधत् | अरौत्सीत्, अरुद्ध |
| विज्—अविजत् | अवैक्षीत्, अविक्त | तृप्—अतृपत् | अताप्सीत्, |
| स्फुट्—अस्फुटत् | अस्फोटीत् | | अत्राप्सीत्, अतर्पीत् |

१. श्वि धातु में द्वितीय भेद के अतिरिक्त तृतीय और पंचम भेद भी लगता है।

| धातु | प्र० एक० | वैक० रूप | धातु | प्र० एक० | वै० रूप |
|---|---|---|---|---|---|
| चुत्— | अचुतत् | अचोतीत् | दृप्— | अदृपत् | अदार्प्सीत्, अद्राप्सीत्, अदर्पीत् |
| च्युत्— | अच्युतत् | अच्योतीत् | | | |
| जुत्— | अजुतत् | अजोतीत्, अजोतिष्ट | स्तम्भ्— | अस्तभत् | अस्तम्भीत् |
| दृश्— | अदर्शत् | अद्राक्षीत् | तुह्— | अतुहत् | अतोहीत् |
| श्लिष्— | अश्लिषत् | अश्लिक्षत् | दुह्— | अदुहत् | अदोहीत् |
| घुष्— | अघुषत् | अघोषीत् | बृह्— | अबृहत् | अबर्हीत् |
| उह्— | औहत् | औहीत् | | | |

**५४४.** निम्नलिखित २५ धातुएँ आत्मनेपदी हैं, परन्तु वे विकल्प से परस्मैपदी होती हैं और उनमें यह भेद लगता है। आत्मनेपद में अनिट् होने पर उनमें चतुर्थ भेद लगता है और सेट् में पंचम भेद।

**रुचिर्घुटिरुटिलुटो लोठते द्युतिवृत् श्वितः।**
**क्ष्वेदते मेदते स्यन्दिः स्वेदते च वृधिः शृधिः ॥१॥**
**कम्पते क्षुभ्तुभिनभः शोभते स्रंभते भ्रशिः।**
**भ्रंशिध्वंसी भ्रंसिस्रंसी रुचादिः पंचविंशतिः ॥२॥**
**आत्मनेपदिनी नित्यं लुङि त्वेषा विभाषया।**
**अङं परस्मैपदिनी भजन्त्यन्यत्र सिज्वती ॥३॥**

| धातु | प्र० एक० | वैक० रूप | धातु | प्र० एक० | वैक० रूप |
|---|---|---|---|---|---|
| रुच्— | अरुचत् | अरोचिष्ट | वृध्— | अवृधत् | अवर्धिष्ट |
| घुट्— | अघुटत् | अघोटिष्ट | शृध्— | अशृधत् | अशर्धिष्ट |
| रुट्— | अरुटत् | अरोटिष्ट | क्लृप्— | अक्लृपत् | अकल्पिष्ट, अक्लृप्त |
| लुट्— | अलुटत् | अलोटिष्ट | क्षुभ्— | अक्षुभत् | अक्षोभिष्ट |
| लुठ्— | अलुठत् | अलोठिष्ट | तुभ्— | अतुभत् | अतोभिष्ट |
| द्युत्— | अद्युतत् | अद्योतिष्ट | नभ्— | अनभत् | अनभिष्ट |
| वृत्— | अवृतत् | अवर्तिष्ट | शुभ्— | अशुभत् | अशोभिष्ट |
| श्वित्— | अश्वितत् | अश्वेतिष्ट | स्रंभ्— | अस्रभत् | अस्रंभिष्ट |
| क्ष्विद्— | अक्ष्विदत् | अक्ष्वेदिष्ट | भ्रश्— | अभ्रशत् | अभ्रशिष्ट |
| मिद्— | अमिदत् | अमेदिष्ट | भ्रंश्— | अभ्रशत् | अभ्रंशिष्ट |

| | | | |
|---|---|---|---|
| स्यन्द्—अस्यदत् | अस्यन्दिष्ट, अस्यन्त | ध्वंस्—अध्वसत् | अध्वंसिष्ट |
| | | भ्रंस्—अभ्रसत् | अभ्रंसिष्ट |
| स्विद्—अस्विदत् | अस्वेदिष्ट | स्रंस्—अस्रसत् | अस्रंसिष्ट |

### तृतीय भेद

**५४५.** तिङ् प्रत्यय :—

द्वितीय भेद के तुल्य ।

**५४६.** इन धातुओं में यह भेद नित्य लगता है—चुरादिगणी धातुएँ, णिच् प्रत्ययान्त धातुएँ, कुछ अन्य प्रत्ययान्त धातुएँ, कम् धातु तथा कर्तृवाच्य में श्रि, द्रु और स्रु धातुएँ। धे और श्वि धातुओं में यह भेद विकल्प से लगता है।

**५४७.** (क) पहले धातु को द्वित्व होता है और बाद में द्वितीय भेद के तुल्य धातु से पहले अ लगता है और अन्त में तिङ् प्रत्यय लगते हैं।

(ख) अ से पहले धातु के अन्तिम इ को इय् होता है और उ को उव् तथा अन्तिम ओ का लोप हो जाता है।

### उदाहरण

**श्रि** ( आश्रय लेना )—१ उभय०

पर०

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | अशिश्रियत् | अशिश्रियताम् | अशिश्रियन् |
| म० | अशिश्रियः | अशिश्रियतम् | अशिश्रियत |
| उ० | अशिश्रियम् | अशिश्रियाव | अशिश्रियाम |

आत्मने०

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | अशिश्रियत | अशिश्रियेताम् | अशिश्रियन्त |
| म० | अशिश्रियथाः | अशिश्रियेथाम् | अशिश्रियध्वम् |
| उ० | अशिश्रिये | अशिश्रियावहि | अशिश्रियामहि |

प्र० पु० एक० में इन धातुओं के ये रूप होंगे—द्रु—अदुद्रुवत्, स्रु—असुस्रुवत्, कम्—अचकमत। (जब कम् से आय् प्रत्यय होता है, तब इसका अचीकमत भी रूप बनता है। देखो नियम ४६१ और ५४८ ), श्वि—अशिश्वियत् ( देखो पृ० ३३५ पर पाद-टिप्पणी ), धे—अदधत् ( धे धातु में भी इसके अतिरिक्त प्रथम और षष्ठ भेद लगता है )।

**५४८.** चुरादिगणी और णिजन्त धातुएँ :—

(क) अंग ( Base ) के अय का लोप हो जाता है ( धातु में णिच् के कारण होने वाले गुण या वृद्धि लोप से पहले ही हो जाते हैं ) । दीर्घ स्वरों के स्थान पर ह्रस्व स्वर हो जाते हैं, ( ए, ऐ को इ हो जाता है और ओ, औ को उ ) ।

इस प्रकार के परिवर्तन के बाद अंग को सामान्य नियमानुसार द्वित्व होता है । जैसे—भावय ( भू का णिजन्त रूप ) = भाव् = भव् = द्वित्व होने पर बभव् । चेतय ( चित् का णिजन्त ) = चेत् = चित् = चिचित्, आदि ।

(ख) अभ्यास ( द्वित्व वाला अंश ) के अ को इ हो जाता है, यदि बाद में ह्रस्व स्वर हो, संयुक्त वर्णो के कारण दीर्घ माना जाने वाला स्वर न हो । यदि बाद में दीर्घ स्वर या संयुक्त वर्ण नहीं होगा तो अभ्यास के इस इ को ई हो जाएगा । जैसे—बभव् = बिभव् = बीभव्, चिचित् = चीचित् । स्खल् = चस्खल् चिस्खल् । यहाँ पर बाद में संयुक्त वर्ण हैं, अतः इ को दीर्घ नहीं हुआ । स्पन्द् का पस्पन्द् ही होगा, क्योंकि न्द् के कारण स्प का अ दीर्घ है ।

(ग) जिन धातुओं की उपधा में ह्रस्व या दीर्घ ऋ है, उनका यह ऋ या ॠ विकल्प से शेष रहता है । दीर्घ ॠ को ह्रस्व हो जाता है । वृत् + णिच् = वर्तय = अय हटाने पर वर्त् और इस नियम से वृत् । वर्त् = ववर्त् । वृत् = ववृत् = विवृत् = वीवृत् । कॄत्—कीर्तय = कीर्त् और इस नियम से कृत् । कीर्त् = चिकीर्त्, कृत् = चीकृत् ।

(घ) इस प्रकार से अंग के बन जाने पर द्वितीय भेद के तुल्य अंग से पूर्व अ लगेगा और बाद में तिङ लगेंगे । भू का अबीभवत्-त; चित् का अचीचितत्; स्खल् का अचिस्खलत्-त; स्पन्द् का अपस्पन्दत्-त; वृत् का अववर्तत्-त, अवीवृतत्-त; कॄत् का अचिकीर्तत्-त, अचीकृतत्-त; पृथ् का अपपर्थत्-त, अपीपृथत्-त, आदि ।

**सूचना**—जहाँ पर आत्मनेपद त वाले रूप नहीं दिए गए हैं, वहाँ पर भी आत्मनेपद वाले रूप बनते हैं । यह स्मरण रखना चाहिए ।

**५४९.** अजादि धातुएँ या अंग :—

(क) यदि धातु अजादि है और अन्त में एक ही व्यंजन है तो उस व्यंजन को ही द्वित्व होगा और अभ्यास वाले अंश में उस व्यंजन में इ और लग जाएगा । जैसे = अट् = अट्ट् = आटिट् = आटिटत्-त; आप् = आपिपत्-त; ऊह् = औजिहत्-त, आदि ।

(ख) यदि धातु के अन्त में संयुक्त वर्ण हैं और उनका पहला वर्ण न्, द् या र् है तो उससे बाद वाले व्यंजन को ही द्वित्व होगा। जैसे = उन्द् = उन्दद् = उन्दिद्, इसका ही अन्त में रूप बनेगा—औन्दिदत्-त। इसी प्रकार अट्ट् का आट्टिटत्-त। अट्ट् धातु मूलतः अद्ट् मानी जाती है, अन्यथा आटिट्टत् रूप बनेगा। अर्ह् का आर्जिहत्-त; अर्ज् का आर्जिजत्-त, आदि।

(ग) निम्नलिखित धातुओं के अभ्यास के इ को अ हो जाता है—अन्, अङ्क्, अङ्ग्, अन्ध्, अंस्, अर्थ् ( आ० ) तथा अन्य कुछ धातुएँ। जैसे—प्र० पु० एक० में—औननत्, आञ्चकत्, आञ्जगत्, आन्दधत्, आंसमत्, आर्तथत, आदि।

**५५०**. उ या ऊ अन्त वाली धातुओं के अभ्यास के उ को ई हो जाता है, बाद में पवर्ग, अन्तःस्थ या ज हों और इनके बाद अ या आ हो। अन्यत्र अभ्यास के उ को ऊ हो जाएगा। जैसे—नु–अनूनवत्-त, कू–अचूकवत्-त, द्रु–अदूदवत्, द्यु–अदुद्यवत्-त, आदि। परन्तु पू–अपीपवत्-त, भू–अबीभवत्-त, जु ( शीघ्रता करना ) —अजीजवत्, मू ( बाँधना )—अमीमवत्, यु ( बाँधना )—अयीयवत्, रु—अरीरवत्-त, लू—अलीलवत्, आदि।

(क) इन धातुओं के अभ्यास के उ को इ विकल्प से होता है—स्रु, श्रु, द्रु, प्रु (जाना), प्लु—(तैरना) और च्यु। असिस्रवत्-असुस्रवत्, अशिश्रवत्-अशुश्रवत्, अदिद्रवत्-अदुद्रवत्, अपिप्रवत्-अपुप्रवत्, अपिप्लवत्-अपुप्लवत्, अचिच्यवत्-अचुच्यवत्-त।

**५५१**. निम्नलिखित धातुओं के उपधा के स्वर को विकल्प से ह्रस्व होना है—भ्राज्, भास्, भाष्, दीप्, जीव्, मील्, पीड्, कण् (चीखना), चण् (शब्द करना, जाना), रण् ( शब्द करना ), भण्, वण् ( शब्द करना ), श्रण् ( देना ), लुप् ( ६ उ०, काटना ), हेठ् ( तंग करना ), ह्वे, लुट्, लुठ् और लुप् ( ४ प० )। जैसे—प्र० पु० एक०—अबिभ्रजत्-अबभ्राजत्, अबीभसत्-अबभासत्, अबीभषत्-अबभाषत्, अदीदिपत्-अदिदीपत्, अजीजिवत्-अजिजीवत्, अमीमिलत्-अमिमीलत्, अपीपिडत्-अपिपीडत्, अचीकणत्-अचकाणत्, अचीचणत्-अचचाणत्, अरीरणत्-अरराणत्, अबीभणत्-अबभाणत्, अवीवणत्-अववाणत्, अशिश्रणत्-अशश्राणत्, अलूलुपत्-अलुलोपत्, अजीहिठत्-अजिहेठत्, अजूहवत्-अजुहावत् ( देखो आगे नियम ५५३ ), अलूलुटत्-अलुलोटत्, अलूलुठत्-अलुलोठत्, आदि।

**५५२.** इन धातुओं के अभ्यास के अ को इ नहीं होता है---स्मृ, दृ, त्वर्, प्रथ्, म्रद् ( चूर्ण करना, चाहना ), स्तृ और स्पश्। वेष्ट् ( १ आ०, घेरना ) और चेष्ट् के अभ्यास के इ को विकल्प से अ होता है। असस्मरत्, अददरत्, अतत्वरत्, अपप्रथत्, अमम्रदत्, अतस्तरत्, अपस्पशत्। वेष्ट्---अविवेष्टत्-अववेष्टत्, चेष्ट्---अचिचेष्टत्-अचचेष्टत् ।

**५५३.** ह्वे और स्वप् णिजन्त को संप्रसारण होता है और श्वि को विकल्प से। ह्वे-हु-हावय्-हाव् या हव्-नियम ५५० से जुहव्, जुहाव्-अजुहावत्, अजूहवत् । स्वप्---स्वापय्-स्वाप्-सुप्-सुषुप्-सूषुप्-असूषुपत् । श्वि-अशूशवत्-अशिश्वयत् ।

**५५४.** नियम ४०० में दी हुई धातुओं के अभ्यास का स्वर वैसा ही रहता है। उसको इ आदि नहीं होता है। कथ्---अचकथत्, वर्---अववरत्, शठ्---अशशठत्, रह्---अररहत्, पत्---अपपतत्, स्पृह्---अपस्पृहत्, सूच्---असुसूचत् ।

**५५५.** इन धातुओं के उपधा के स्वर को ह्रस्व नहीं होता है---शास्, एज्, काश्, क्रीड्, क्षीव्, खाद्, खेल्, ढौक्, ताय्, दाश्, देव्, नाथ्, प्रोथ्, बाध्, याच्, योध्, राध्, राज्, लाघ्, लेप्, लोक्, लोच्, वेप्, वेल्, श्लाघ्, श्लोक, सेक्, सेव्, हेष् तथा अन्य कुछ कम प्रचलित धातुएँ। अशशासत्, ऐजिजत्, अचकाशत्, अचिक्रीडत्, अचिक्षीवत्, अचखादत्, अचिखेलत्, आदि ।

**५५६.** धातुएँ, जिनके णिजन्त के लुङ के रूप अनियमित रूप से बनते हैं :---

अधि+इ ( पढ़ना )---अध्यापिपत्-अध्यजीगपत्। अधि+इ ( स्मरण करना ) का रूप होता है---अध्यजीगमत् ।

ईर्ष्य् ( ईर्ष्या करना )--ऐर्षिष्यत्-त, ऐर्ष्यियत्-त ।

ऊर्णु---और्णूनवत् ।

गण्---अजगणत्-अजीगणत् ।

घ्रा---अजिघ्रपत्--अजिघ्रिपत् ।

चकास्---अचीचकासत्-अचचकासत् ।

द्युत्---अदुद्युतत्-त ।

पा ( पीना )---अपीप्यत्। पा ( रक्षा करना ) का रूप होता है---अपीपलत् ।

स्था---अतिष्ठिपत्-त ।

स्फुर्---अपुस्फुरत्-त ।

## उदाहरण

### कृ (करना)

| | पर० | | | आत्मने० | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | अचीकरत् | अचीकरताम् | अचीकरन् | अचीकरत | अचीकरेताम् | अचीकरन्त |
| म० | अचीकर: | अचीकरतम् | अचीकरत | अचीकरथा: | अचीकरेथाम् | अचीकरध्वम् |
| उ० | अचीकरम् | अचीकराव | अचीकराम | अचीकरे | अचीकरावहि | अचीकरामहि |

### त्रप्

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | अतित्रपत् | अतित्रपताम् | अतित्रपन् | अतित्रपत | अतित्रपेताम् | अतित्रपन्त |
| म० | अतित्रप: | अतित्रपतम् | अतित्रपत | अतित्रपथा: | अतित्रपेथाम् | अतित्रपध्वम् |
| उ० | अनित्रपम् | अनित्रपाव | अतित्रपाम | अतित्रपे | अतित्रपावहि | अतित्रपामहि |

### चुर्

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | अचूचुरत् | अचूचुरताम् | अचूचुरन् | अचूचुरत | अचूचुरेताम् | अचचुरन्त |
| म० | अचूचुर: | अचूचुरतम् | अचूचुरत | अचूचुरथा: | अचूचुरेथाम् | अचूचुरध्वम् |
| उ० | अचूचुरम् | अचूचुराव | अचूचुराम | अचूचुरे | अचूचुरावहि | अचूचुरामहि |

### षष्ठ भेद ( परस्मैपदी ही है )

**सूचना**—यहाँ पर सरलता की दृष्टि से चतुर्थ और पंचमभेद से पहले षष्ठ और मप्तमभेद दिया गया है ।

**५५७.** पष्ठ भेद के तिङ प्रत्यय:—

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | सीत् | मिष्टाम् | सिषु: |
| म० | सी: | सिष्टम् | सिष्ट |
| उ० | सिषम् | मिष्व | सिष्म |

**५५८.** पष्ठ भेद इन धातुओं में लगता है—आकारान्त धातुएँ (वे धातुएँ भी जिनके अन्तिम स्वरों को आ हो जाता है ), यम्, रम् ( पर०, अर्थात् वि, आ, परि के साथ ) और नम् धातु । उप या उद्+यम् ( आ० ) और रम् (आ०) में चतुर्थ भेद लगता है ।

**५५९.** आकारान्त धातुएँ जिनमें प्रथम, द्वितीय और तृतीय भेद ही लगते हैं, उनमें यह भेद नहीं लगेगा ।

### उदाहरण

**यम्**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | अयंसीत् | अयंसिष्टाम् | अयंसिषुः |
| म० | अयंसीः | अयंसिष्टम् | अयंसिष्ट |
| उ० | अयंसिषम् | अयंसिष्व | अयंसिष्म |

विरम्——व्यरंसीत्, व्यरंसिष्टाम्, व्यरंसिषुः, आदि; नम्——अनंसीत्, अनंसिष्टाम्, अनंसिषुः आदि; शो——अशासीत्, आदि; छो——अच्छासीत् आदि; मि या मी——अमासीत्, अमासिष्टाम्, अमासिषुः आदि; ली——अलासीत्, अलासिष्टाम्, अलासिषुः आदि ।

### सप्तम भेद ( पर० और आ० )

**५६०.** तिङ प्रत्यय ( Terminations )——

| | पर० | | | आत्मने० | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | सत् | सताम् | सन् | सत | साताम् | सन्त |
| म० | सः | सतम् | सत | सथाः | साथाम् | सध्वम् |
| उ० | सम् | साव | साम | सि | सावहि | सामहि |

**५६१.** इन धातुओं में यह भेद लगता है——श्, ष्, स् और ह् अन्त वाली अनिट् धातुएँ तथा इ, उ, ऋ या ऌ उपधा वाली धातुएँ। दृश् धातु अपवाद है। इसमें चतुर्थ भेद लगता है।

**५६२.** मृश्, स्पृश् और कृष् ( १ प०, ६ उ० ) में यह भेद विकल्प से लगता है।

**५६३.** दुह, दिह्, लिह् और गुह् धातुओं में आत्मनेपद में इन स्थानों पर प्रत्यय का अंश स या सा विकल्प से हट जाता है——प्र० पु० एक०, म० पु० एक० और बहु० और उ० पु० द्विव० ।

### उदाहरण

**दिश्**——उभय०

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | अदिक्षत् | अदिक्षताम् | अदिक्षन् | अदिक्षत | अदिक्षाताम् | अदिक्षन्त |
| म० | अदिक्षः | अदिक्षतम् | अदिक्षत | अदिक्षथाः | अदिक्षाथाम् | अदिक्षध्वम् |
| उ० | अदिक्षम् | अदिक्षाव | अदिक्षाम | अदिक्षि | अदिक्षावहि | अदिक्षामहि |

**दिह्—उभय०**

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | अधिक्षत् | अधिक्षताम् | अधिक्षन् | अधिक्षत, अदिग्ध | अधिक्षाताम् | अधिक्षन्त |
| म० | अधिक्षः | अधिक्षतम् | अधिक्षत | अधिक्षथाः, अदिग्धाः, | अधिक्षाथाम् | अधिक्षध्वम् अधिग्ध्वम् |
| उ० | अधिक्षम् | अधिक्षाव | अधिक्षाम | अधिक्षि | अधिक्षावहि, अदिह्वहि | अधिक्षामहि |

इसी प्रकार दुह् के रूप चलेंगे।

**लिह्**

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | अलिक्षत् | अलिक्षताम् | अलिक्षन् | अलिक्षत, अलीढ | अलिक्षाताम् | अलिक्षन्त |
| म० | अलिक्षः | अलिक्षतम् | अलिक्षत | अलिक्षथाः, अलीढाः | अलिक्षाथाम्, | अलिक्षध्वम् अलीढ्वम् |
| उ० | अलिक्षम् | अलिक्षाव | अलिक्षाम | अलिक्षि | अलिक्षावहि, अलिह्वहि | अलिक्षामहि |

**गुह्[1]—उभय०**

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | अघुक्षत् | अघुक्षताम् | अघुक्षन् | अघुक्षत, अगूढ | अघुक्षाताम् | अघुक्षन्त |
| म० | अघुक्षः | अघुक्षतम् | अघुक्षत | अघुक्षथाः, अगूढाः | अघुक्षाथाम् | अघुक्षध्वम्, अघूढ्वम् |
| उ० | अघुक्षम् | अघुक्षाव | अघुक्षाम | अघुक्षि | अघुक्षावहि, अगुह्वहि | अघुक्षामहि |

| धातु | प्र० पु० एक० | धातु | प्र० पु० एक० |
|---|---|---|---|
| रिश्— | अरिक्षत् | त्विप्— | अत्विक्षत्, अत्विक्षत |
| रुश्— | अरुक्षत् | द्विष्— | अद्विक्षत्, अद्विक्षत |
| लिश्— | अलिक्षत्, अलिक्षत | विष्— | अविक्षत् |
| विश्— | अविक्षत् | श्लिप्— | अश्लिक्षत् |

१. गुह् धातु वेट् है। इसमें विकल्प से पंचम भेद भी लगता है। अगूहीत्, अगूहिष्ट आदि।

| धातु— | प्र० पु० एक० | धातु | प्र० पु० एक० |
|---|---|---|---|
| कृश्—अकृक्षत् | | गृह्—अघृक्षत-अगर्हिष्ट | |
| क्लिश्[1]—अक्लिक्षत्, अक्लेशीत् | | मिह्—अमिक्षत् | |
| स्पृश्—अस्पृक्षत्, अस्पार्क्षीत्, अस्प्राक्षीत् | | तृह्—अतृक्षत् | |
| | | स्तृह्—अस्तृक्षत्, अस्तर्हीत् | |
| मृश्—अमृक्षत्, अमार्क्षीत्, अम्राक्षीत्, | | वृह्—अभृक्षत्, अवर्हीत् | |
| निर्+कुष्—निरकुक्षत्, निरकोषीत् | | वृह्—अवृक्षत्, अवर्हीत् | |
| कृष्—अकृक्षत्, अकृक्षत, अकार्क्षीत्, अक्राक्षीत्, अकृष्ट | | रुह्—अरुक्षत् | |

**चतुर्थ भेद**

**५६४.** तिङ् प्रत्यय :—

| | परस्मै० | | | आत्मने० | |
|---|---|---|---|---|---|
| प्र० सीत् | स्ताम् | सुः | स्त | साताम् | सत |
| म० सीः | स्तम् | स्त | स्थाः | साथाम् | ध्वम् |
| उ० सम् | स्व | स्म | सि | स्वहि | स्महि |

**५६५.** (क) जिन अनिट् धातुओं में पूर्वोक्त कोई भेद नहीं लगते हैं, उनमें यह भेद लगता है। जिन अनिट् धातुओं में विकल्प से कोई पूर्वोक्त भेद लगता है, उनमें यह भेद भी लगता है। वेट् धातुओं में भी यह भेद विकल्प से लगता है।

**अपवाद-नियम** (१) परस्मैपदी स्तु और सु धातु में पंचम भेद लगता है।

(२) संयुक्त वर्ण से प्रारम्भ होने वाली ऋकारान्त धातुओं में आत्मनेपद में चतुर्थ और पंचम दोनों भेद लगते हैं।

(३) परस्मैपदी अन्ज् और धू धातुओं में पंचम भेद ही लगता है। धू (आ०) में चतुर्थ और पंचम दोनों भेद लगते हैं।

(४) वृ और दीर्घ ॠकारान्त सेट् धातुओं से आत्मनेपद में चतुर्थ और पंचम दोनों भेद लगते हैं। आत्मनेपदी स्तु और क्रम् धातु से चतुर्थ भेद ही लगता है।

---

१. **जो वेट् धातुएँ अनिट् रूप में इस भेद में आती हैं, वे सेट् रूप में पंचम भेद में विकल्प से आती हैं।**

**५६६.** (क) परस्मैपद में धातु के स्वरों को वृद्धि हो जाती है। जैसे—नी—अनैषीत्, कृ—अकार्षीत्, भञ्ज्—अभांक्षीत्, आदि।

(ख) आत्मनेपद में धातु के अन्तिम इ ई और उ ऊ को गुण हो जाता है। अन्तिम ऋ और उपधा के स्वरों में कोई परिवर्तन नहीं होता है। धातु के अन्तिम ॠ को नियम ३९४ के अनुसार ईर् या ऊर् होगा। चि—अचेष्ट, नी—अनेष्ट, च्यु—अच्योष्ट, सू—असोष्ट। कृ के रूप आगे देखिए। भिद्—अभित्त, स्तॄ—अस्तीर्ष्ट, वॄ—अवूर्ष्ट।

(ग) अनिट् धातुओं के उपधा के ऋ को विकल्प से र हो जाता है। कृष्-अकार्क्षीत्–अक्राक्षीत्।

**५६७.** ह्रस्व स्वर के बाद और झल् ( वर्ग के पंचम अक्षर और अन्तःस्थ को छोड़कर सभी व्यंजन ) के बाद स्त और स्थ से प्रारम्भ होने वाले प्रत्ययों के स् का लोप हो जाता है। हृ—अहृत (प्र० एक०); कृ—अकृथाः (म० एक०); क्षिप्—अक्षिप्त, अक्षिप्थाः; कृष्—अकृष्ट ( प्र० एक० ), आदि।

**उदाहरण**

**पच्**

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | अपाक्षीत् | अपाक्ताम् | अपाक्षुः | अपक्त | अपक्षाताम् | अपक्षत |
| म० | अपाक्षीः | अपाक्तम् | अपाक्त | अपक्थाः | अपक्षाथाम् | अपग्ध्वम् |
| उ० | अपाक्षम् | अपाक्ष्व | अपाक्ष्म | अपक्षि | अपक्ष्वहि | अपक्ष्महि |

इसी प्रकार अन्य हलन्त अनिट् धातुओं के रूप चलेंगे—प्र० पु० एक० क्षिप्—अक्षैप्सीत् (पर०), अक्षिप्त (आ०); युज्—अयौक्षीत् (प०), अयुक्त (आ०), सृज्—अस्राक्षीत्,[1] अस्राप्टाम् (म० २); दृश्—अद्राक्षीत्, सम्—दृश्—समदृष्ट; प्रच्छ्—अप्राक्षीत्, म० पु० अप्राक्षीः अप्राष्टम्, अप्राष्ट; रुध्–अरौत्सीत्, म० पु० १—अरौत्सीः, म०पु० २—अरौद्धम्, उ० १—अरौत्सम्, आ०—अरुद्ध, अरुत्साताम् आदि, उ० १—अरुत्सि; दह्—अधाक्षीत्, अदाग्धाम् आदि, उ० १—अधाक्षम्।

| | **जि—पर०** | | | **वि+जि—आ०** | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | अजैषीत् | अजैष्टाम् | अजैषुः | व्यजेष्ट | व्यजेषाताम् | व्यजेषत |
| म० | अजैषीः | अजैष्टम् | अजैष्ट | व्यजेष्ठाः | व्यजेषाथाम् | व्यजेढ्वम् |
| उ० | अजैषम् | अजैष्व | अजैष्म | व्यजेषि | व्यजेष्वहि | व्यजेष्महि |

---

१. देखो नियम ४६५।

इसी प्रकार इनके रूप चलेंगे--चि, नी, ली[1] आदि, श्रु, यु ( ९ उ० ) आदि। प्र० पु० १--अचैषीत्, अचेष्ट; ली ( ९ प०, ४ आ० )--अलैषीत्, अलेष्ट-अलासि। श्रु--अश्रौषीत्, आदि।

**कृ**--उभय०

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | अकार्षीत् | अकार्ष्टाम् | अकार्षुः | अकृत | अकृषाताम् | अकृषत |
| म० | अकार्षीः | अकार्ष्टम् | अकार्ष्ट | अकृथाः | अकृषाथाम् | अकृढ्वम् |
| उ० | अकार्षम् | अकार्ष्व | अकार्ष्म | अकृषि | अकृष्वहि | अकृष्महि |

स्तृ ( उ० ) के रूप इसी प्रकार चलेंगे। वृ (आ०) के रूप इसी प्रकार चलेंगे।

| | **वॄ**--आ० | | | **स्तॄ**--आ० | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | अवूर्ष्ट | अवूर्षाताम् | अवूर्षत | अस्तीर्ष्ट | अस्तीर्षाताम् | अस्तीर्षत |
| म० | अवूर्ष्ठाः | अवूर्षाथाम् | अवूर्ढ्वम् | अस्तीर्ष्ठाः | अस्तीर्षाथाम् | अस्तीर्ढ्वम् |
| उ० | अवूर्षि | अवूर्ष्वहि | अवूर्ष्महि | अस्तीर्षि | अस्तीर्ष्वहि | अस्तीर्ष्महि |

| | **धू**--आ० | | | **कृष्**[2]--पर० | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | अधोष्ट | अधोषाताम् | अधोषत | अकार्क्षीत्, अक्राक्षीत् | अकार्ष्टाम्, अक्राष्टाम् | अकार्क्षुः, अक्राक्षुः |
| म० | अधोष्ठाः | अधोषाथाम् | अधोढ्वम् | अकार्क्षीः, अक्राक्षीः | अकार्ष्टम्, अक्राष्टम् | अकार्ष्ट, अक्राष्ट |
| उ० | अधोषि | अधोष्वहि | अधोष्महि | अकार्क्षम्, अक्राक्षम् | अकार्क्ष्व, अक्राक्ष्व | अकार्क्ष्म, अक्राक्ष्म |

आत्मनेपद में अकृष्ट आदि।

इसी प्रकार तृप्, दृप्, स्पृश् आदि के रूप चलेंगे।

तृप्--अतार्प्सीत्, अत्राप्सीत्, आदि।

स्पृश्--अस्पार्क्षीत्, अस्प्राक्षीत्, आदि।

मृश्--अमार्क्षीत्, अम्राक्षीत्, आदि।

---

१. जब ली के ई को आ हो जाता है, तब इसमें षष्ठ भेद भी लगता है।

२. कृष्, स्पृश् और मृश् धातुओं में सप्तम भेद भी लगता है। तृप् और दृप् धातुओं में इसके अतिरिक्त द्वितीय और पंचम भेद भी लगता है।

| | मृज्—पर० | | | वस्—[1] पर० | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | अमार्क्षीत् | अमार्ष्टाम् | अमार्क्षुः | अवात्सीत् | अवात्ताम् | अवात्सुः |
| म० | अमार्क्षीः | अमार्ष्टम् | अमार्ष्ट | अवात्सीः | अवात्तम् | अवात्त |
| उ० | अमार्क्षम् | अमार्क्ष्व | अमार्क्ष्म | अवात्सम् | अवात्स्व | अवात्स्म |

वह्—उभय०

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | अवाक्षीत् | अवोढाम् | अवाक्षुः | अवोढ | अवक्षाताम् | अवक्षत |
| म० | अवाक्षीः | अवोढम् | अवोढ | अवोढाः | अवक्षाथाम् | अवोढ्वम् |
| उ० | अवाक्षम् | अवाक्ष्व | अवाक्ष्म | अवक्षि | अवक्ष्वहि | अवक्ष्महि |

| | गाह्[2]—आ० | | | प्र+क्रम्—आ० | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | अगाढ | अघाक्षाताम् | अघाक्षत | प्राक्रंस्त | प्राक्रंसाताम् | प्राक्रंसत |
| म० | अगाढाः | अघाक्षाथाम् | अघाढ्वम् | प्राक्रंस्थाः | प्राक्रंसाथाम् | प्राक्रन्ध्वम् |
| उ० | अघाक्षि | अघाक्ष्वहि | अघाक्ष्महि | प्राक्रंसि | प्राक्रंस्वहि | प्राक्रंस्महि |

इसी प्रकार क्षम् के रूप चलेंगे। अक्षंस्त आदि।

### चतुर्थ भेद की अनियमित धातुएँ :—

**५६८.** दा, धा धातुओं तथा जिन धातुओं का दा या धा रूप रहता है ( देखो नियम ४५९ ) और स्था धातु के अन्तिम स्वर को इ हो जाता है, आत्मनेपद में। इस इ को गुण नहीं होता है। परस्मैपद में इन धातुओं में प्रथम भेद लगता है। ( देखो नियम ५३२ )।

**५६९.** आ+हन् ( आ० ) के न् का लोप हो जाता है, बाद में तिङ प्रत्यय होने पर।

हन् धातु में परस्मै० और आत्मने० दोनों में विकल्प से पंचम भेद भी लगता है और उस अवस्था में हन् के स्थान पर वध् हो जाता है।

**५७०.** गम् और उप+यम् ( विवाह करना ) के म् का विकल्प से लोप

---

**१. वस् के लिए देखो नियम ४८०। अवास्+स्ताम्=अवात्+स्ताम्= अवात्ताम् (प्र० पु० द्विव० )। वस् (आ०) सेट् है, अतः उसमें पंचम भेद लगता है।**

**२. इसमें पंचम भेद भी लगता है।**

हो जाता है, बाद में आत्मनेपदी तिङ प्रत्यय होने पर। जब यम् धातु का अर्थ 'दूसरों के दोष प्रकट करना' होगा तो म् का लोप अवश्य होगा।

५७१. पद् धातु का प्र० पु० एक० में अपादि रूप बनता है। बुध् धातु ( ४ आ० ) से प्र० पु० एक० में विकल्प से इ लगता है और उससे पहले धातु के उ को गुण होता है।

**उदाहरण**

**आ+हन्—आ०**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | आहत | आहसाताम् | आहसत |
| म० | आहथाः | आहसाथाम् | आहध्वम् |
| उ० | आहसि | आहस्वहि | आहस्महि |

**उद्+आ+यम्**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | उदायत | उदायसाताम् | उदायसत |
| म० | उदायथाः | उदायसाथाम् | उदायध्वम् |
| उ० | उदायसि | उदायस्वहि | उदायस्महि |

**सम्+गम् (१)**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | समगंस्त | समगंसाताम् | समगंसत |
| म० | समगंस्थाः | समगंसाथाम् | समगन्ध्वम् |
| उ० | समगंसि | समगंस्वहि | समगंस्महि |

(२)

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | समगत | समगसाताम् | समगसत |
| म० | समगथाः | समगसाथाम् | समगध्वम् |
| उ० | समगसि | समगस्वहि | समगस्महि |

इसी प्रकार उप+यम् के रूप चलेंगे। प्र० एक—उपायंस्त-उपायत, म० एक०—उपायंस्थाः-उपायथाः, उ० एक० उपायंसि—उपायसि, उ० द्विव०—उपायंस्वहि-उपायस्वहि, आदि।

**बुध्**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | अबुद्ध, अबोधि | अभुत्साताम् | अभुत्सत |
| म० | अबुद्धाः | अभुत्साथाम् | अभुद्ध्वम् |
| उ० | अभुत्सि | अभुत्स्वहि | अभुत्स्महि |

**पद्**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | अपादि | अपत्साताम् | अपत्सत |

| | | |
|---|---|---|
| म० अपत्थाः | अपत्साथाम् | अपद्ध्वम् |
| उ० अपत्सि | अपत्स्वहि | अपत्स्महि |

**अधि + इ**[1]

| | | |
|---|---|---|
| प्र० अध्यगीष्ट | अध्यगीषाताम् | अध्यगीषत |
| म० अध्यगीष्ठाः | अध्यगीषाथाम् | अध्यगीढ्वम् |
| उ० अध्यगीषि | अध्यगीष्वहि | अध्यगीष्महि |
| प्र० अध्यैष्ट | अध्यैषाताम् | अध्यैषत |
| म० अध्यैष्ठाः | अध्यैषाथाम् | अध्यैढ्वम् |
| उ० अध्यैषि | अध्यैष्वहि | अध्यैष्महि |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| स्था | — | प्र० एक० | — | समस्थित |
| दा | — | " | — | अदित |
| धा | — | " | — | अधित |
| मी | — | " | — | अमास्त |

**पंचम भेद**

**५७२.** तिङ प्रत्यय—चतुर्थ भेद वाले तिङों से पूर्व इ लगा देने से पंचम भेद के लिए तिङ् प्रत्यय प्राप्त हो जाते हैं। इसमें प्र० पु० और म० पु० एक० में स् का लोप हो जाता है। जैसे—

| | पर० | | | आत्मने० | |
|---|---|---|---|---|---|
| प्र० ईत् | इष्टाम् | इषुः | इष्ट | इषाताम् | इषत |
| म० ईः | इष्टम् | इष्ट | इष्ठाः | इषाथाम् | इध्वम् |
| उ० इषम् | इष्व | इष्म | इषि | इष्वहि | इष्महि |

**५७३.** जिन धातुओं में पूर्वोक्त कोई भेद नहीं लगता है, उनमें यह भेद लगता है। यह भेद मुख्यतया सेट् धातुओं में लगता है। ( देखो नियम ५६५ )

**५७४.** (क) परस्मैपद में निम्नलिखित स्थानों पर वृद्धि होती है—धातु के अन्तिम स्वर को, र् या ल् अन्त वाली धातुओं की उपधा के अ को, वद् और व्रज् धातुओं की उपधा के अ को। लू—अलावीत्, चर्—अचारीत्, फल्—अफालीत्, आदि।

---

१. देखो नियम ४८६।

(ख) धातुओं की उपधा के ह्रस्व स्वर को गुण होता है। बुध्—अबोधीत्, आदि।

(ग) हलादि (जिसके प्रारम्भ में कोई व्यंजन है) धातु की उपधा के ह्रस्व अ को विकल्प से वृद्धि होती है, धातु के अन्त में र् या ल् न हो तो। पठ्—अपाठीत्-अपठीत्, गद्—अगादीत्-अगदीत्।

(घ) निम्नलिखित धातुओं में स्वर को वृद्धि नहीं होती है—ह् म् य् अन्त वाली धातुएँ, क्षण्, श्वस्, जागृ, श्वि, कट् (ढकना, घेरना), चट् (तोड़ना, चोट पहुँचाना), चत्, चद् (माँगना), पथ् (जाना, हिलना), मथ् (मथना), लग् (लगना), ह्म् और ह्लम् (शब्द करना, न्यून होना)।

(ङ) आत्मनेपद में धातु के स्वर को गुण होता है। लू—अलविष्ट।

**उदाहरण**

स्तु— प्र० एक० अस्तावीत्
उ० एक० अस्ताविषम्

नु— प्र० एक० अनावीत्
उ० एक० अनाविषम्

धू— प्र० एक० अधावीत्, अधविष्ट
उ० एक० अधाविषम्, अधविषि

वृ, वॄ—पर० प्र० एक० अवारीत्
उ० एक० अवारिषम्

वृ, वॄ—आ० प्र० एक० अवरिष्ट-अवरीष्ट
म० एक० अवरिष्ठाः-अवरीष्ठाः
उ० एक० अवरिषि-अवरीषि
उ० द्वि० अवरिष्वहि-अवरीष्वहि

स्तृ— प्र० एक० अस्तरिष्ट
उ० एक अस्तरिषि

स्तॄ— प्र० एक० पर० अस्तारीत्।
आ० अस्तरिष्ट-अस्तरीष्ट[1]।
म० एक० अस्तरिष्ठाः-अस्तरीष्ठाः
उ० एक० अस्तरिषि-अस्तरीषि।

स्नु—प्र० एक० अस्नावीत्
उ० एक० अस्नाविषम्

मृज्—प्र० एक० अमार्जीत्
उ० एक० अमार्जिषम्

हन्—(उ०) प्र० एक० अवधीत्, अवधिष्ट
उ० एक० अवधिषम्, अवधिषि
(देखो नियम ५६९)

क्रम्—प्र० एक० अक्रमीत्
उ० एक० अक्रमिषम्

इन धातुओं के वैकल्पिक रूपों के लिए देखो पूर्वोक्त भेद।

---

१. देखो नियम ४७५।

श्वि—प्र० १ (=एक०) अश्वयीत्
उ० १– अश्वयिषम्
जागृ—प्र० १– अजागरीत्
उ० १– अजागरिषम्
अञ्ज्—प्र० १– आञ्जीत्
उ० १– आञ्जिषम्
व्रज्—प्र० १– अव्राजीत्
उ० १ – अव्राजिषम्
विज्[1] (७ प०)—अविजीत्
(६ आ०)—अविजिष्ट
भण्—प्र० १ – अभाणीत्- अभणीत्
वद्—प्र० १ – अवादीत्
उ० १ – अवादिषम्
श्वन्—प्र० १ – अश्वसीत्
उ० १ – अश्वसिषम्
ग्रह् (उ०)-प्र० १– अग्रहीत्, अग्रहीष्ट
उ० १– अग्रहीषम्, अग्रहीषि

गुप्[2]—प्र० १–अगोपायीत्, अगोपीत्
उ० १–अगोपायिषम्, अगोपिषम्
तृप्—प्र० १–अतर्पीत्
उ० १–अतर्पिषम्
स्यम्—प्र० १–अस्यमीत्
उ० १–अस्यमिषम्
क्षम्—प्र० १–अक्षमिष्ट
उ० १–अक्षमिषि
व्यय्—प्र० १–अव्ययीत्, अव्ययिष्ट
उ० १–अव्ययिषम्, अव्ययिषि
क्षर्—प्र० १–अक्षारीत्
ह्मल्—प्र० १–अह्मालीत्
गाह्—प्र० १–अगाहिष्ट
उ० १–अगाहिषि
गुह्[3]—प्र० १–अगूहीत्, अगूहिष्ट
उ० १–अगूहिषम्, अगूहिषि

**पंचम भेद की अनियमित धातुएँ :—**

**५७५.** इन धातुओं में आत्मने० प्र० पु० एक० में विकल्प से इष्ट के स्थान पर इ हो जाता है—दीप्, जन्, पूर्, ताय् और प्याय् ।

**५७६.** तनादिगण ( गण ८ ) की ण् या न् अन्त वाली धातुओं के ण् या न् का आत्मने० में विकल्प से लोप हो जाता है और लोप होने पर प्र० पु० एक० में इष्ट के स्थान पर त और म० पु० एक० में इष्ठाः के स्थान पर थाः हो जाता है। सन् धातु में न् का लोप होने पर सन् के अ को आ हो जाता है।

**५७७.** ऊर्णु धातु के उ के स्थान पर पर० में विकल्प से वृद्धि होती है।

---

**१. देखो नियम ४६६ ।**

**२. देखो नियम ४६१ ।**

**३. अदुपधाया गोहः ( ६-४-८९ ) । गुह् धातु में सप्तम भेद भी लगता है ।**

अन्यत्र विकल्प से गुण होता है और विकल्प से उ का उ ही रहता है, बाद में इ होने पर। ( देखो नि० ४६६, ५१८ )

**५७८.** लुङ में दरिद्रा के आ का लोप विकल्प से होता है। अतः इसमें पंचम और षष्ठ भेद लगते हैं।

**उदाहरण**

**ऊर्णु** ( ढकना )

परस्मै०

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | और्णुवीत् | और्णुविष्टाम् | और्णुविषुः |
| म० | और्णुवीः | और्णुविष्टम् | और्णुविष्ट |
| उ० | और्णुविषम् | और्णुविष्व | और्णुविष्म |

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | और्णावीत् | और्णाविष्टाम् | और्णाविषुः | और्णवीत् | और्णविष्टाम् | और्णविषुः |
| म० | और्णावीः | और्णाविष्टम् | और्णाविष्ट | और्णवीः | और्णविष्टम् | और्णविष्ट |
| उ० | और्णाविषम् | और्णाविष्व | और्णाविष्म | और्णविषम् | और्णविष्व | और्णविष्म |

आत्मने०

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | और्णुविष्ट | और्णुविषाताम् | और्णुविषत |
| म० | और्णुविष्ठाः | और्णुविषाथाम् | और्णुविध्वम्-ढ्वम् |
| उ० | और्णुविषि | और्णुविष्वहि | और्णुविष्महि |
| प्र० | और्णविष्ट | और्णविषाताम् | और्णविषत |
| म० | और्णविष्ठाः | और्णविषाथाम् | और्णविध्वम्-ढ्वम् |
| उ० | और्णविषि | और्णविष्वहि | और्णविष्महि |

| प्र० पु० एक०, उ० पु० एक० | प्र० पु० एक०, उ० पु० एक० |
|---|---|
| दरिद्रा—अदरिद्रीत्, अदरिद्रिषम् | ताय्—अतायि-अतायिष्ट, अतायिषि |
| जन्—अजनि-अजनिष्ट, अजनिषि | प्याय्—अप्यायि-अप्यायिष्ट, अप्यायिषि |
| दीप्—अदीपि-अदीपिष्ट, अदीपिषि | पूर्—अपूरि-अपूरिष्ट, अपूरिषि |

**तनादिगणी धातुएँ :—**

ऋण्—पर० आर्णीत्, आ० प्र० १ – आर्णिष्ट-आर्त, म० १ – आर्णिष्ठाः-आर्थाः, उ० १ – आर्णिषि।

तन्—पर० अतानीत्-अतनीत्, आ० प्र० १ – अतत-अतनिष्ट, म० १ – अतथाः-अतनिष्ठाः, उ० १ – अतनिषि।

क्षिण्—पर० अक्षेणीत्, आ० प्र० १ – अक्षित-अक्षेणिष्ट, म० १–अक्षिथाः–अक्षेणिष्ठाः, उ० १ – अक्षेणिषि।

घृण्—पर० अघर्णीत्, आ० प्र० १ – अघृत-अघर्णिष्ट, म० १ – अघृथाः-अघर्णिष्ठाः, उ० १ – अघर्णिषि।

तृण्—पर०-अतर्णीत्, आ० प्र० १ – अतृत–अर्तणिप्ट, म० १–अतृथाः-अर्तणिष्ठाः, उ० १ – अर्तणिपि

मन्—आ० प्र० १ –अमत-अमनिष्ट, म० १ – अमथाः-अमनिष्ठाः, उ० १ – अमनिषि।

वन्—पर०–अवानीत्-अवनीत्, आ० प्र० १ –अवत-अवनिष्ट, म० १ – अवथाः–अवनिष्ठाः, उ० १ – अवनिषि।

सन्—पर०–असानीत्-असनीत्, आ० प्र० १ –असात-असनिष्ट, म० १ – असाथाः-असनिष्ठाः, उ० १ – असनिषि।

## (६) आशीर्लिङ (Benedictive)

**५७९.** आशीर्लिङ के परस्मैपद और आत्मनेपद के तिङ प्रत्यय इस प्रकार बनाए जा सकते हैं—(क) पर० में लङ के तिङ प्रत्ययों से पूर्व यास् लगेगा। प्र० पु० १ और म० पु० १ के त् और स् से पहले यास् का स् हट जाएगा। (ख) आत्मने० में विधिलिङ के तिङ प्रत्ययों से पूर्व म् जुड़ेगा। जहाँ पर त या थ होंगे, वहाँ पर उनसे पूर्व भी स् लगेगा।

आशीर्लिङ के तिङ प्रत्यय ये हैं—

| | पर० | | | आ० | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | यात् | यास्ताम् | यासुः | सीष्ट | सीयास्ताम् | सीरन् |
| म० | याः | यास्तम् | यास्त | सीष्ठाः | सीयास्थाम् | सीध्वम् |
| उ० | यासम् | यास्व | यास्म | सीय | सीवहि | सीमहि |

### (क) परस्मैपद

**५८०.** परस्मैपद के तिङ प्रत्यय ङित् (निर्बल) हैं, अतः उनसे पूर्व धातु के स्वर को गुण या वृद्धि नहीं होगी। आशीर्लिङ में इट् (इ) बीच में नहीं लगेगा।

**५८१.** आशीर्लिङ परस्मैपद के तिङ प्रत्यय बाद में हों या कर्मवाच्य का य प्रत्यय बाद में हो तो धातुओं में ये परिवर्तन होते हैं—धातु के अन्तिम इ या उ को दीर्घ हो जाता है, अन्तिम ऋ ( ह्रस्व ऋ ) के स्थान पर रि आदेश होता है और ॠ के स्थान पर ईर् होता है, यदि पवर्ग या व पहले होगा तो ॠ को

ऊर् होगा । जैसे––जि–जीयात्, स्तु–स्तूयात्, कृ–क्रियात्, कॄ–कीर्यात्, पॄ–पूर्यात्, आदि ।

**५८२.** उपर्युक्त स्थितियों में ही संयुक्त वर्ण पूर्ववाली ऋकारान्त धातु को और ऋ धातु को गुण होता है । स्मृ–स्मर्यात्, ऋ–अर्यात् ।

**५८३.** जिन धातुओं में संप्रसारण हो सकता है, उनमें संप्रसारण होगा । शास् के आ को इ हो जाता है ।

**५८४.** धातुओं की उपधा के अनुनासिक ( ञ्, न्, म् ) का प्रायः लोप हो जाता है । जिनके अनुनासिक का लोप होता है, ऐसी कुछ धातुएँ ये हैं––अञ्च्, अञ्ज्, भञ्ज्, रञ्ज्, सञ्ज्, स्वञ्ज्, ग्रन्थ्, मन्थ्, उन्द्, स्कन्द्, स्यन्द्, इन्ध्, बन्ध्, दम्भ्, स्तम्भ्, दंश्, भ्रंश्, स्रंस् और तृंह् ।

**५८५.** इन धातुओं के अन्तिम स्वर को ए नित्य होता है––दा, धा, अन्य धातुएँ जिनका दा या धा रूप शेष रहा है, मा, स्था, गै, पा ( पीना ), हा ( छोड़ना ) और सो । यदि अन्तिम आ ( मूल रूप में हो या आदेश रूप में हो, देखो नि० ४५९ ) से पूर्व संयुक्त वर्ण होगा तो आ को ए विकल्प से होगा । दा–देयात्, पा–पेयात्, गै–गेयात्, ग्ला–ग्लेयात्-ग्लायात्, आदि । पा ( रक्षा करना ) का पायात् ही बनेगा ।

### आत्मनेपद

**५८६.** (क) सेट् धातुओं में तिङ् प्रत्ययों (Terminations) से पूर्व इ नित्य लगेगा और वेट् धातुओं में विकल्प से ।

(ख) इन धातुओं में इ विकल्प से लगता है––संयुक्त वर्ण पूर्व वाली ऋकारान्त धातुएँ, तॄ धातु और दीर्घ ॠकारान्त धातुएँ ।

**५८७.** आत्मनेपद के तिङ् प्रत्यय (Terminations) अङित् ( सबल ) हैं । इनसे पूर्व धातु के स्वर को गुण होगा । जहाँ पर बीच में इ नहीं लगा है, वहाँ पर ऋ को गुण नहीं होगा, दीर्घ ॠ को इर् होगा, पवर्ग या व् पहले होगा तो ॠ को उर् होगा । चि–चेषीष्ट, धु–धोषीष्ट, लू–लविषीष्ट, स्तॄ–स्तरिषीष्ट-स्तीर्षीष्ट, पॄ–परिषीष्ट-पूर्षीष्ट, आदि ।

### उदाहरण

| | पर० | चि | | आत्मने० | |
|---|---|---|---|---|---|
| प्र० चीयात् | चीयास्ताम् | चीयासुः | चेषीष्ट | चेषीयास्ताम् | चेषीरन |

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| म० | चीयाः | चीयास्तम् | चीयास्त | चेषीष्ठाः | चेषीयास्थाम् | चेषीढ्वम् |
| उ० | चीयासम् | चीयास्व | चीयास्म | चेषीय | चेषीवहि | चेषीमहि |

भू—उभय०

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | भूयात् | भूयास्ताम् | भूयासुः | भविषीष्ट | भविषीयास्ताम् | भविषीरन् |
| म० | भूयाः | भूयास्तम् | भूयास्त | भविषीष्ठाः | भविषीयास्थाम् | भविषीध्वम्-ढ्वम् |
| उ० | भूयासम् | भूयास्व | भूयास्म | भविषीय | भविषीवहि | भविषीमहि |

कृ—उभय०

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | क्रियात् | क्रियास्ताम् | क्रियासुः | कृषीष्ट | कृषीयास्ताम् | कृषीरन् |
| म० | क्रियाः | क्रियास्तम् | क्रियास्त | कृषीष्ठाः | कृषीयास्थाम् | कृषीढ्वम् |
| उ० | क्रियासम् | क्रियास्व | क्रियास्म | कृषीय | कृषीवहि | कृषीमहि |

| | स्मृ—पर० | | | ऋ—पर० | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | स्मर्यात् | स्मर्यास्ताम् | स्मर्यासुः | अर्यात् | अर्यास्ताम् | अर्यासुः |
| म० | स्मर्याः | स्मर्यास्तम् | स्मर्यास्त | अर्याः | अर्यास्तम् | अर्यास्त |
| उ० | स्मर्यासम् | स्मर्यास्व | स्मर्यास्म | अर्यासम् | अर्यास्व | अर्यास्म |

स्तृ—आत्मने०

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | स्तरिषीष्ट | स्तरिषीयास्ताम् | स्तरिषीरन् | स्तृषीष्ट | स्तृषीयास्ताम् | स्तृषीरन् |
| म० | स्तरिषीष्ठाः | स्तरिषीयास्थाम् | स्तरिषीध्वम्-ढ्वम् | स्तृषीष्ठाः | स्तृषीयास्थाम् | स्तृषीध्वम्-ढ्वम् |
| उ० | स्तरिषीय | स्तरिषीवहि | स्तरिषीमहि | स्तृषीय | स्तृषीवहि | स्तृषीमहि |

स्तृ पर० के रूप स्मृ के तुल्य चलेंगे।

प्र० पु० एक०

स्तॄ—स्तीर्यात्, स्तरिषीष्ट, स्तीर्षीष्ट
वृ—वूर्यात्, वरिषीष्ट, वूर्षीष्ट
दा—देयात्, दासीष्ट
धा—धेयात्-धासीष्ट
घ्रा—घ्रायात्-घ्रेयात्, घ्रासीष्ट
वच्—उच्यात्
स्वप्—सुप्यात्
वप्—उप्यात्, वप्सीष्ट
वह्—उह्यात्, वक्षीष्ट
वे—ऊयात्, वासीष्ट
व्ये—वीयात्, व्यासीष्ट
ह्वे—हूयात्, ह्वासीष्ट
ग्रह्—गृह्यात्, ग्रहीषीष्ट
व्रश्च्—वृश्च्यात्

प्रच्छ्--पृच्छ्यात् | शास्--शिष्यात्
भ्रस्ज्--भृज्ज्यात्, भ्रक्षीष्ट-भर्क्षीष्ट | शी--शयिषीष्ट
यज्--इज्यात्-यक्षीष्ट | हन्--वध्यात्

**आशीर्लिङ की अपवाद धातुएँ**

**५८८.** ई ( जाना )--ईयात् । यदि इससे पहले उपसर्ग होगा तो ई को ह्रस्व हो जाएगा। समियात् । आत्मने० एषीष्ट । ऊह् धातु से पहले यदि उपसर्ग होगा तो ऊ को ह्रस्व हो जाएगा, बाद में ङित् यकारादि प्रत्यय होंगे तो। समुह्यात्।

**भाग २**

**कर्मवाच्य, भाववाच्य** (Passive)

**५८९.** दसों गणों की सभी धातुओं से कर्मवाच्य या भाववाच्य होता है। इसके रूप दिवादिगण ( गण ४ ) की आत्मनेपदी धातुओं के तुल्य चलते हैं।[1]

**५९०.** कर्मवाच्य या भाववाच्य धातुओं के तीन भेद हैं :--

(१) कर्मवाच्य या कर्मणि-प्रयोग (Passive)। जैसे--रामेण द्रव्यं दीयते।

(२) भाववाच्य या भावे प्रयोग (Impersonal Passive)। जैसे--गम्यते ( जाया जाता है )। (३) कर्मकर्तृवाच्य या कर्मकर्तरि प्रयोग (Reflexive)। जैसे--ओदनः पच्यते ( भात पकता है )।

**सार्वधातुक लकार**[2] ( Conjugational Tenses )

**५९१.** धातु से अंग (Base) इस प्रकार बनता है :--

---

१. दोनों में केवल स्वर में अन्तर होता है। कर्मवाच्य या भाववाच्य में प्रत्यय य उदात्त होता है और दिवादिगण आ० में धातु का स्वर उदात्त होता है।

२. इस विषय में श्री मोनियर विलियम्स (Monier Williams) का कथन है कि :--

यहाँ पर यह सन्देह उचित है कि संभवतः कर्मवाच्य से पृथक् स्वतन्त्र दिवादिगणी धातुओं की सत्ता का कारण यह रहा हो कि कर्मवाच्य धातु कभी कभी अकर्मक अर्थ को प्रकट करती है और उसके साथ परस्मैपदी तिङ प्रत्यय लगते हैं। इस प्रकार के उदाहरण प्राप्य हैं, जहाँ पर कर्मवाच्य धातुओं के साथ परस्मैपदी तिङ प्रत्यय लगते हैं और कुछ कर्मवाच्य धातुओं को भारतीय वैयाकरणों ने दिवादिगण की आत्मनेपदी धातु माना है।

(क) धातु से य प्रत्यय होता है। य ङित् ( निर्बल ) है, अतः उससे पूर्व धातु को गुण या वृद्धि नहीं होगी। नी-नीय, भिद्-भिद्य।

(ख) परस्मै० आशीर्लिङ के 'या' से पहले धातु में जो परिवर्तन होते हैं, वे यहाँ पर भी य से पहले होंगे। जैसे—जि–जीय, कृ–क्रिय, स्मृ–स्मर्य, ऋ–अर्य, कॄ–कीर्य, पॄ–पूर्य, वन्ध्–वध्य ( निन्द् का निन्द्य होता है ), वच्—उच्य, ग्रह—गृह्य, आदि।

(ग) य बाद में होने पर इन धातुओं के अन्तिम आ ( मूल या आदेशरूप ) को ई हो जाता है—दा ( देना ), दे, दो, धा, धे, मा, गै, पा ( पीना ), सो और हा ( छोड़ना )। अन्य स्थानों पर आ का आ ही रहता है। दा या दो—दीय, गै—गीय, हा—हीय। अन्यत्र दा ( काटना, शुद्ध करना )–दाय, ज्ञा—ज्ञाय, ध्यै—ध्याय।

**५९२.** कर्मवाच्य या भाववाच्य धातु के रूप दिवादिगणी ( गण ४ ) आत्मने० धातु के तुल्य चलते हैं। जैसे:—

भू—होना

लट्

| | | |
|---|---|---|
| प्र० भूयते | भूयेते | भूयन्ते |
| म० भूयसे | भूयेथे | भूयध्वे |
| उ० भूये | भूयावहे | भूयामहे |

लङ्

| | | |
|---|---|---|
| प्र० अभूयत | अभूयेताम् | अभूयन्त |
| म० अभूयथाः | अभूयेथाम् | अभूयध्वम् |
| उ० अभूये | अभूयावहि | अभूयामहि |

---

( जैसे—जन् से जायते—वह उत्पन्न होता है, पॄ से पूर्यते—वह पूरा होता है और तप् से तप्यते—वह तपाया जाता है )। दिवादिगण में बहुत सी अकर्मक धातुएँ हैं, जो कि अन्य ९ गणों में से किसी एक में प्राप्य हैं और वहाँ पर वे सकर्मक हैं। जैसे—युज् ( जोड़ना ) धातु रुधादिगण और चुरादिगण में सकर्मक है, वही दिवादिगण में अकर्मक है। इसी प्रकार पुष् ( पोषण करना ), क्षुभ् ( उद्विग्न करना ), क्लिश् ( क्लेश देना ) और सिध् (पूरा करना ) धातुएँ हैं।

**लोट्**

| | | |
|---|---|---|
| प्र० भूयताम् | भूयेताम् | भूयन्ताम् |
| म० भूयस्व | भूयेथाम् | भूयध्वम् |
| उ० भूयै | भूयावहै | भूयामहै |

**विधिलिङ**

| | | |
|---|---|---|
| प्र० भूयेत | भूयेयाताम् | भूयेरन् |
| म० भूयेथाः | भूयेयाथाम् | भूयेध्वम् |
| उ० भूयेय | भूयेवहि | भूयेमहि |

**बुध्—लट्**

| | | |
|---|---|---|
| प्र० बुध्यते | बुध्येते | बुध्यन्ते |
| म० बुध्यसे | बुध्येथे | बुध्यध्वे |
| उ० बुध्ये | बुध्यावहे | बुध्यामहे |

लङ

| | | |
|---|---|---|
| प्र० अबुध्यत | अबुध्येताम् | अबुध्यन्त |
| म० अबुध्यथाः | अबुध्येथाम् | अबुध्यध्वम् |
| उ० अबुध्ये | अबुध्यावहि | अबुध्यामहि |

**लोट्**

| | | |
|---|---|---|
| प्र० बुध्यताम् | बुध्येताम् | बुध्यन्ताम् |
| म० बुध्यस्व | बुध्येथाम् | बुध्यध्वम् |
| उ० बुध्यै | बुध्यावहै | बुध्यामहै |

**विधिलिङ**

| | | |
|---|---|---|
| प्र० बुध्येत | बुध्येयाताम् | बुध्येरन् |
| म० बुध्येथाः | बुध्येयाथाम् | बुध्येध्वम् |
| उ० बुध्येय | बुध्येवहि | बुध्येमहि |

**५९३.** (क) खन्, जन्, तन् और सन् धातुओं के न् का विकल्प से लोप हो जाता है और लोप होने पर उनके अ को आ हो जाता है। खन्—खायते-खन्यते आदि।

(ख) शी (सोना) का शय्य और श्वि का शूय अंग होता है।

(ग) ऊह् से पहले उपसर्ग होने पर धातु के ऊ को ह्रस्व हो जाता है।

(घ) य बाद में होने पर दरिद्रा, दीधी और वेवी के अन्तिम स्वर का लोप हो जाता है।

(ङ) इन धातुओं के स्थान पर ये आदेश हो जाते हैं— ब्रू को वच्, अस् को भू, घस् को अद् और अज् को वी।

**५९४**. छात्रों की सुविधा के लिए नीचे कुछ नियमित और अनियमित धातुओं के लट् प्र० पु० एक० के रूप दिए जाते हैं :—

| धातु | प्र० १ | धातु | प्र० १ |
|---|---|---|---|
| घ्रा | घ्रायते | हा (प०) | हीयते |
| ज्या | जीयते | हा ( आ० ) | हायते |
| दा ( १ प०, ३ उ० ) | दीयते | चि | चीयते |
| दा ( २ प० ) | दायते | श्वि | शूयते |
| धा | धीयते | मि | मीयते |
| पा ( पीना ) | पीयते | मी | मीयते |
| | | शी | शय्यते |
| पा ( रक्षा करना ) | पायते | ऊर्णु | ऊर्णूयते |
| मा | मीयते | | |
| ऋ | अर्यते | अद् | अद्यते |
| कृ | क्रियते | वद् | उद्यते |
| | | वन्द् | वन्द्यते |
| जागृ | जागर्यते | इन्ध् | इध्यते |
| स्मृ | स्मर्यते | व्यध् | विध्यते |
| वृ | वूर्यते | बन्ध् | बध्यते |
| स्तृ | स्तर्यते | रुध् | रुध्यते |
| | | मन् | मायते, मन्यते |
| कॄ | कीर्यते | जन् | जायते, जन्यते |
| स्तॄ | स्तीर्यते | तन् | तायते, तन्यते |
| दे | दीयते | पन् | पनाय्यते, पन्यते |
| धे | धीयते | गुप् | गुप्यते, गोप्यते, गोपाय्यते |
| वे | ऊयते | वप् | उप्यते |

| धातु | प्र० १ | धातु | प्र० १ |
|---|---|---|---|
| व्ये | वीयते | स्वप् | सुप्यते |
| ह्वे | हूयते | कम् | कम्यते, काम्यते |
| गै | गीयते | चुर् | चोर्यते |
| पै | पायते | दिव् | दीव्यते |
| दो | दीयते | वश् | उश्यते |
| सो | सीयते | वस् | उष्यते |
| वच् | उच्यते | वस् ( पहनना ) | वस्यते |
| व्रश्च् | वृश्च्यते | अस् | भूयते |
| व्यच् | विच्यते | शास् | शिष्यते |
| प्रच्छ् | पृच्छयते | स्रंस् | स्रस्यते |
| विच्छ् | विच्छयते, विच्छाय्यते | वह् | उह्यते |
| भ्रस्ज् | भृज्ज्यते | ग्रह् | गृह्यते |
| यज् | इज्यते | सम् + ऊह् | समुह्यते |
| पण् | पणाय्यते, पण्यते | | इत्यादि |
| ऋत् | ऋत्यते, ऋतीयते | | |

## आर्धधातुक लकार

### (१) लिट्

**५९५.** (क) कर्मवाच्य और भाववाच्य में द्वित्व वाला लिट् सामान्य रूप से बनाया जाता है। इसमें सभी धातुएँ आत्मनेपदी मानी जाती हैं। नी–निन्ये, भू–बभूवे, निन्द्–निनिन्दे, अश्–आनशे, गम्–जग्मे, आदि।

(ख) कर्म० और भाववाच्य में आम् अन्त वाले लिट् में सामान्य कर्तृवाच्य वाले प्रयोग से विशेष अन्तर नहीं होता है। यहाँ पर अन्तर केवल यह होता है कि आमन्त के बाद में कृ, भू और अस् का आत्मनेपदी ही प्रयोग होगा। ईक्ष्–ईक्षांचक्रे, ईक्षांबभूवे, ईक्षामासे; कथयांचक्रे, ० बभूवे, कथयामासे, आदि।

### (२-५) लुट्, लृट्, लृङ और आशीर्लिङ

**५९६.** (क) लुट्, लृट्, लृङ और आशीर्लिङ में कर्मवाच्य में धातुरूप उसी प्रकार बनते हैं, जिस प्रकार कर्तृवाच्य में बनते हैं। कर्मवाच्य में सभी धातुएँ

आत्मनेपदी मानी जाती हैं। वुध्–बोधिता, बोधिष्यते, अबोधिष्यत, बोधिषीष्ट; तुद्–तोत्ता, तोत्स्यते, अतोत्स्यत, आदि।

(ख) लुट्, लृट्, लृङ और आशीर्लिङ में कर्मवाच्य में अजन्त धातुओं[1], हन्, ग्रह् और दृश् धातुओं के दो दो रूप बनते हैं। (१) सामान्य रूप से आत्मनेपदी रूप। (२) इसमें धातु के स्वर को वृद्धि होगी और आत्मनेपदी तिङ प्रत्ययों से पूर्व इ अवश्य लगेगा। आत्मनेपदी ही तिङ प्रत्यय लगेंगे। जो आकारान्त धातुएँ हैं (या जिन ए, ऐ और ओ को आ हो जाता है), उनमें धातु और इ के बीच में य् लगता है। दा––दायिता–दाता, दायिष्यते–दास्यते, अदायिष्यत–अदास्यत, दायिषीष्ट–दासीष्ट। इसी प्रकार ह्वे––ह्वायिता–ह्वाता आदि। नी––नायिता–नेता, नायिष्यते–नेष्यते, अनायिष्यत–अनेष्यत, नायिषीष्ट–नेषीष्ट। हन्––घातिता[2]–हन्ता, घानिष्यते–हनिष्यते, अघानिष्यत–अहनिष्यत, घानिषीष्ट–वधिषीष्ट। ग्रह्–ग्राहिता–ग्रहीता, ग्राहिष्यते–ग्रहीष्यते, अग्राहिष्यत–अग्रहीष्यत, ग्राहिषीष्ट–ग्रहीषीष्ट आदि। दृश्––दर्शिता–द्रष्टा, दर्शिष्यते–द्रक्ष्यते, अदर्शिष्यत–अद्रक्ष्यत, दर्शिषीष्ट–दृक्षीष्ट, आदि।

## (६) लुङ

**५६७.** (क) ४र्थ, ५म और ७म भेद वाली धातुओं के कर्मवाच्य लुङ में उसी प्रकार आत्मनेपदी तिङ प्रत्यय लगाने से रूप बनते हैं।

उ० पु० एक० भू–अभविषि, कृ–अकृषि, धा–अधिषि, पच्–अपक्षि, दिश्––अदिक्षि, द्विष्––अद्विक्षि, आदि।

(ख) प्रथम, द्वितीय, तृतीय और षष्ठ भेद वाली धातुओं के कर्मवाच्य लुङ में चतुर्थ, पंचम या सप्तम भेद लगता है। साथ ही सामान्य नियम भी लगेंगे। उ० पु० एक०––स्था–अस्थिषि, ख्या–अख्यासि, जॄ–अजरिषि, श्रि–अश्रयिषि, स्रु–अस्रोषि, नम्–अनंसि आदि।

(ग) कर्मवाच्य लुङ में सभी धातुओं से प्र० पु० एक० में इ लगता है :––

(१) इस इ से पहले उपधा के ह्रस्व स्वरों को गुण हो जाता है और उपधा

---

१. यहाँ पर नृ और धृ धातुओं को भी वृद्धि होगी। साधारणतया उनको वृद्धि नहीं होती है। देखो नियम ४६३। दृश् को केवल गुण ही होता है।

२. हन् धातु के ह् को घ् हो जाता है, यदि उसके तुरन्त बाद न् हो या हन् धातु के बाद ञ् या ण् इत्संज्ञक कोई प्रत्यय हो। यहाँ पर इ यह णित् प्रत्यय है।

के अ को तथा धातु के अन्तिम स्वरों को वृद्धि हो जाती है। इन स्थानों पर वृद्धि नहीं होगी—जन् धातु, अम् अन्त वाली सेट् धातुएँ। अम् अन्त वाली आ + चम्, कम् और वम् को वृद्धि होगी। भिद्—अभेदि। निन्द्—अनिन्दि। संयुक्त वर्ण के कारण नि का इ दीर्घ है। तुद्—अतोदि, कृष्—अकर्षि, वद्—अवादि, पठ्—अपाठि। किन्तु जन्—अजनि। गम्—अगामि, किन्तु दम्—अदमि, आदि। आ + चम्—अचामि, कम्—अकामि, आदि। नी—अनायि, स्तु—अस्तावि, लू—अलावि. कृ या कॄ—अकारि।

(२) इस इ से पहले आकारान्त धातुओं ( मूल या आदेश रूप, जैसे—, ऐ, ओ के स्थान पर आ ) से य् लग जाता है। दा—अदायि, धे—अधायि, गै—अगायि, शो—अशायि, आदि।

(३) रध्, जभ् और रभ् धातुओं में अन्तिम वर्ण से पहले अनुनासिक ( न्, म् ) लग जाता है, अतएव उपधा के अ को वृद्धि नहीं होगी। अरन्धि, अजम्भि, अरम्भि।

(४) लभ् धातु से पहले उपसर्ग होगा तो अन्तिम वर्ण से पूर्व म् नित्य लगेगा। पहले उपसर्ग नहीं होगा तो विकल्प से। जैसे—अलम्भि—अलाभि, प्र + लभ्—प्रालम्भि।

(५) इनके ये रूप बनते हैं—भञ्ज् ( तोड़ना )—अभञ्जि—अभाजि। शम् ( १० आ०, देखना )—अशमि—अशामि।

(६) मृज् को वृद्धि होती है और गुह् के उ को दीर्घ होता है। अमार्जि, अगूहि।

(७) इ ( जाना )—अगायि। अधि + इ ( आ० ) —अध्यायि—अध्यगायि।

(घ) नियम ४६१ में परिगणित धातुओं के दो रूप बनते हैं—गुप्—अगोपि—अगोपायि, विच्छ्—अविच्छि—अविच्छायि, आदि। ऋत्—आर्ति—आर्तियि।

(ङ) नियम ५९६ (ख) कर्मवाच्य लुङ में भी लगता है, प्र० पु० एक० को छोड़कर। वैकल्पिक रूपों में पंचम भेद के आत्मनेपद वाले तिङ प्रत्यय लगेंगे, क्योंकि इनमें बीच में इ नित्य लगता है। उ० पु० १—दा—अदिषि—अदायिषि; नी—अनेषि—अनायिषि; कृ—अकृषि—अकारिषि, हन्—अहसि, अघानिषि, अव - धिषि; ग्रह्—अग्रहीषि, अग्राहिषि, आदि।

**५९८**. चुरादिगणी ( गण १० ) धातुएँ :—

(क) लिट् को छोड़कर अन्य आर्धधातुक लकारों में अय् ( अर्थात् अय के अन्तिम अ का लोप होने पर ) का विकल्प से लोप हो जाता है । लुङ में प्र० पु० एक० को छोड़कर अन्यत्र पंचम भेद के तिङ प्रत्यय लगेंगे । चुर्–लिट् प्र० १––चोरयांचक्रे,० बभूवे, चोरयामासे; लुट्–प्र०१–चोरयिता, चोरिता; लृट्–चोरयिष्यते, चोरिष्यते; लुङ–अचोरयिष्ट, अचोरिष्ट; आशीर्लिङ–चोरयिषीष्ट, चोरिषीष्ट ।

(ख) जिन धातुओं के उपधा के अ को वृद्धि नहीं होती है, ( देखो नियम ६०३ भी ) उनके भी अ को विकल्प से आ हो जाता है, कर्मवाच्य में आर्धधातुक लकारों में, अय् का लोप होने पर । लिट् में यह अ को आ नहीं होता है । कथ्–– अकथयिष्ट, अकथिष्ट, आदि ।

(ग) कर्मवाच्य लुङ प्र० पु० एक० में अय् का लोप नित्य होता है और अन्त में इ जुड़ता है । चोरय–अचोर्–अचोरि; पीड्–अपीडि; पृ–अपारि, आदि । रह्–लुङ प्र० १––अरहि, अराहि; रम्–लुङ प्र० १––अरमि, अरामि, आदि ।

उदाहरण

बुध् ( जानना ), १ प०

| | लिट् | | | लुट् | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | बुबुधे | बुबुधाते | बुबुधिरे | बोधिता | बोधितारौ | बोधितारः |
| म० | बुबुधिषे | बुबुधाथे | बुबुधिध्वे | बोधितासे | बोधितासाथे | बोधिताध्वे |
| उ० | बुबुधे | बुबुधिवहे | बुबुधिमहे | बोधिताहे | बोधितास्वहे | बोधितास्महे |

लृट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | बोधिष्यते | बोधिष्येते | बोधिष्यन्ते |
| म० | बोधिष्यसे | बोधिष्येथे | बोधिष्यध्वे |
| उ० | बोधिष्ये | बोधिष्यावहे | बोधिष्यामहे |

लृङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | अबोधिष्यत | अबोधिष्येताम् | अबोधिष्यन्त |
| म० | अबोधिष्यथाः | अबोधिष्येथाम् | अबोधिष्यध्वम् |
| उ० | अबोधिष्ये | अबोधिष्यावहि | अबोधिष्यामहि |

लुङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | अबोधि | अबोधिषाताम् | अबोधिषत |

| | | |
|---|---|---|
| म० अबोधिष्ठाः | अबोधिषाथाम् | अबोधिध्वम् |
| उ० अबोधिषि | अबोधिष्वहि | अबोधिष्महि |

आशीर्लिङ

| | | |
|---|---|---|
| प्र० बोधिषीष्ट | बोधिषीयास्ताम् | बोधिषीरन् |
| म० बोधिषीष्ठाः | बोधिषीयास्थाम् | बोधिषीध्वम् |
| उ० बोधिषीय | बोधिषीवहि | बोधिषीमहि |

**सूचना**—चुरादिगणी धातुओं के कर्मवाच्य के रूप उसी प्रकार चलते हैं, जिस प्रकार णिजन्त धातुओं के कर्मवाच्य के रूप चलते हैं। इसके लिए देखो अगले अध्याय में णिजन्त बुध् धातु के कर्मवाच्य में रूप।

### भाग ३

# प्रत्ययान्त धातुएँ और उनके रूप

## (Derivative Verbs and their conjugation)

**५९९**. प्रत्ययान्त धातुओं के चार विभाग हैं :—
(१) णिजन्त (causals,), (२) सन्नन्त (Desieratives), (३) यङन्त (Frequentatives) और (४) नामधातु (Denominatives)। इस भाग में इनके स्वरूप-निर्माण का प्रकार तथा इनके रूप दिए जाएँगे।

### १ णिजन्त (Causals)

**६००**. दसों गणों की प्रत्येक धातु का णिजन्त रूप बन सकता है। इनके रूप चुरादिगणी धातुओं के तुल्य चलेंगे।

**६०१**. णिच् प्रत्ययान्त का अर्थ होता है कि कोई व्यक्ति या वस्तु किसी दूसरे व्यक्ति या वस्तु से काम करवाता है या उसे वैसा करने के लिए प्रेरित करता है। कभी-कभी अकर्मक धातु को सकर्मक बनाने के लिए भी णिच् प्रत्यय का उपयोग किया जाता है।

### (क) णिच् प्रत्ययान्त अंग को बनाना

**६०२**. णिच् प्रत्ययान्त अंग उसी प्रकार बनते हैं, जिस प्रकार चुरादिगणी धातुओं के अंग बनते हैं। चुरादिगणी धातुओं का जो रूप चुरादिगण में बनता है, णिच् प्रत्यय करने पर भी वही रूप बनता है। णिजन्त धातुओं के दोनों पदों में रूप

चलते हैं। बुध् का णिजन्त अंग बोधय होता है, बोधयति-ते (बताता है); क्षुभ्–क्षोभयति (क्षुब्ध करता है); गण्–गणयति (गिनवाता है); नी–नाययति (लिवा कर जाता है); कृ (करना) और कॄ (फैलाना)–कारयति (करवाता है या फैलवाता है); कॄत्–कीर्तयति, आदि।

६०३. अम् अन्त वाली धातुओं और मित् (म्-संकेतवाली) धातुओं[1] के स्वर को वृद्धि नहीं होती है, अपितु गुण होगा। अम् अन्त वाली इन धातुओं में वृद्धि होगी––अम् (जाना आदि), कम् (चाहना), चम् (खाना), शम् (देखना अर्थ में) और यम् (खाना अर्थ को छोड़ कर अन्य अर्थों में)। गम्–गमयति, क्रम्–क्रमयति, घट्–घटयति, जन्–जनयति, व्यथ्–व्यथयति, जॄ–जरयति, श्रा[2]–श्रपयति, ज्ञा[2]–ज्ञपयति, आदि। अन्यत्र कम्–कामयते, चम्–चामयति, शम्–शामयति (देखता है)––अन्य अर्थों में शमयति, यम्–यामयति, आदि। खाना अर्थ में यम् का यमयति रूप होगा।

(क) यदि कोई उपसर्ग पहले नहीं होगा तो इन धातुओं के अ को विकल्प से आ हो जाता है––वम्, नम्, वन्, ज्वल्, ह्वल् और ह्मल्। नमयति–नामयति। परन्तु प्रणमयति ही रूप होगा।

---

१. ये धातुएँ हैं :––घट्, व्यथ्, प्रथ्, प्रस् (फैलना), मुद् (चूर्ण करना), स्खद् (१ आ०, फाड़ना, नष्ट करना), क्षञ्ज् (१ आ०, जाना), दक्ष्, कृप् (१ आ०, कृपा करना), क्रन्द्, क्लन्द् (१ आ०), त्वर्, ज्वर्, गड् (१ प०, सींचना), हेड् (घेरना), वट्, भट् (बोलना), नट् (नाचना), स्तक् (१ प०, रोकना), चक् (१ प०, तृप्त होना), कख् (प०, हँसना), रग् (प०, शंका करना), लग् (प०, लगना), हग्, ह्लग्, सग्, स्तग् (चारों का अर्थ है घेरना), कग्, अक्, अग् (टेढ़ा चलना), कण्, रण् (प०, जाना), चण्, शण्, श्रण् (प०, देना), श्रथ्, श्लथ्, क्रथ्, क्लथ् (चारों परस्मै० हैं, हिंसा अर्थ है), वन् (हिंसा करना), ज्वल् (चमकना), ह्वल्, ह्मल् (हिलना, चलना), स्मृ, दॄ (१ प०, डरना), नॄ (ले जाना), श्रा (पकाना), ज्ञा (मारना, तुष्ट करना, तेज करना, प्रकट करना), चल्, छद् (रहना, होना), (अन्य अर्थों में छादयति), लड् (क्रीडा करना, जीभ हिलाना), मद् (दीन होना), ध्वन्, स्वन्, जन्, जॄ, क्नस् (कुटिल होना, चमकना), रञ्ज्, रम्, क्रम्, गम् और फण् (१ प०, जाना)।

२. देखो नियम ६०५ (ख)।

**६०४**. इन धातुओं में अय से पहले प् लगेगा और धातु के अन्तिम स्वर को गुण होता है :––आकारान्त धातुएँ ( ए ऐ और ओ अन्त वाली भी धातुएँ, जिनके स्थान पर आ होता है। देखो नियम ४५९ ), ऋ ( जाना ), ह्री (लज्जित होना ), री ( ९ प०, जाना, ४ आ०, बहना ) और व्ली ( छाँटना, जाना ) । दा, दे या दी ––दापयति, धे–धापयति, गै–गापयति, आदि । ऋ–अर्पयति, ह्री–ह्रेपयति, री–रेपयति, व्ली–व्लेपयति ।

**६०५**. (क) इन धातुओं में अन्तिम स्वर को आ हो जाता है और अय से पहले प् लगता है :––मि ( फेंकना ) ; मी ( नष्ट करना ), दी ( नष्ट होना ), जि ( जीतना ) और क्री ( खरीदना ) । मापयति, दापयति, जापयति, क्रापयति।

(ख) कोई उपसर्ग पहले नहीं होगा तो प् से पूर्ववर्ती आ को इन धातुओं में नित्य अ हो जाएगा :––क्षै, श्रा या श्रै ( पकाना ) और ज्ञा ( मित् ) । ग्लै और स्ना में विकल्प से आ को अ होगा । क्षपयति, ज्ञपयति ( पशुं संज्ञपयति–पशु को मारता है । प्रज्ञपयति शरम्, आदि ) । अन्यत्र–ज्ञापयति । ग्लपयति–ग्लापयति, स्नपयति–स्नापयति । अन्यत्र–प्रग्लापयति, उपस्नापयति ही होंगे ।

**६०६**. इन धातुओं में प् के स्थान पर बीच में य् लगेगा :––शो (छीलना, तेज करना ), छो ( काटना ), सो (समाप्त करना ), ह्वे ( पुकारना ), व्ये ( ढकना ), वे ( बुनना ), सै ( क्षय होना ) और पा ( पीना ) । शाययति, साययति, वाययति, , पाययति, आदि ।

(क) पा ( रक्षा करना ) में अय से पहले ल् लगेगा और वे ( हिलाना ) में ज् । पालयति ( वह रक्षा करता है ), वाजयति ( वह हिलाता है ) ।

**६०७**. जभ्, रध्, रभ् और लभ् में अन्तिम वर्ण से पूर्व अनुनासिक लगता है । जम्भयति-ते, रन्धयति-ते, आदि ।

**६०८**. गुप्, धूप्, विच्छ्, पण्, पन् और ऋत् धातुओं के णिच् में दो रूप बनते हैं । गोपयति-ते, गोपाययति-ते ; विच्छयति-ते, विच्छाययति-ते, आदि ।

**६०९**. अय् बाद में होने पर दीधी, वेवी और दरिद्रा के अन्तिम स्वर का लोप हो जाता है । दीधयति-ते, वेवयति-ते, दरिद्रयति-ते ।

**६१०**. निम्नलिखित धातुओं के णिजन्त रूप अनियमित रूप से बनते हैं :––

इ (जाना)– गमयति । अधि + इ ( स्मरण करना )–अधिगमयति ।
अधि + इ (पढ़ना)–अध्यापयति । प्रति + इ–प्रत्याययति ।

क्नू या क्नूय् (शब्द करना) —क्नोपयति ( शब्द करवाता है ) ।
क्ष्माय् (काँपना) —क्ष्माययति ( कँपवाता है ) ।
गूह् (छिपाना) —गूहयति ( छिपवाता है ) ।
चि ( ५, चुनना ) —चापयति-ते, चाययति-ते ( चुनवाता है ) ।
चि ( १० ) —चपयति-ते, चययति-ते ( " ) ।
जागृ (जागना) —जागरयति ( जगाता है ) ।
दुष् (पाप करना, दुष्ट होना) —दूषयति-ते ( पाप करवाता है ) ।
अन्यत्र—दुषयति-ते, दोषयति-ते
( दूषित करता है )
धू (हिलाना) —धूनयति-ते ( हिलवाता है ) ।
प्री (प्रसन्न करना ) —प्रीणयति ( प्रसन्न करवाता है ) ।
भी (डरना) —भाययति-ते ( डराता है )
भापयते-भीषयते ( भय की वस्तु से डराता है )
भ्रस्ज् (भूनना) —भर्जयति-ते, भ्रज्जयति-ते ( भुनवाता है ) ।
मृज् (साफ करना) —मार्जयति ।
रञ्ज् (रँगना) —रञ्जयति ( रँगता है ) । प्रसन्न या सन्तुष्ट करने अर्थ में भी यही रूप बनता है । जैसे—ब्रह्मापि नरं न रञ्जयति ( भर्तृ०नीति० ३ ) । अन्यत्र—रजयति ही होगा । ( वह मृगों का शिकार करता है ) । ( देखो किराता० ६-३४ ) ।
रुह् (उगना) —रोहयति-ते, रोपयति-ते ( पेड़ लगाता है या उगाता है ) ।
ला (लेना )
ली ( चिपकना, लगना ) } —लालयति-ते, विलापयति-ते, लीनयति और लापयति ( स्निग्ध वस्तु को द्रवित करता है ) ।
वा (बहना ) —{ वापयति ( हिलाता है ) । वाजयति ( कँपाता है ) ।
स्मि (मुस्कराना) —{ विस्माययति (आश्चर्य में डालता है या डराता है) । विस्मापयते (किसी कारण से आश्चर्य में डालता है ) ।

वी (जाना आदि) { --वापयति, वाययति ( गर्भाधान करवाता है )।
वाययति ( अन्य अर्थों में )।

शद् (गिरना ) { --शातयति ( गिराता है, काटता है )।
शादयति ( भेजता है )।

सिध् (पूरा होना ) { --साधयति ( वह पूरा करता है या तैयार होता है )।
सेधयति ( यज्ञ आदि को पूरा करता है )। जैसे-
सेधयति तापसं तपः, आदि।

स्फाय् (सूजना)- --स्फावयति ( सूजन उत्पन्न करता है )।

स्फुर् (काँपना, चमकना) --स्फोरयति, स्फारयति (कँपाता है, चमकाता है)।

हन् (मारना) --घातयति ( हिंसा कराता है )।

## (ख) णिजन्त धातुओं के रूप

**६११.** णिजन्त धातुओं के रूप परस्मैपद, आत्मनेपद और कर्मवाच्य में दसों लकारों में चुरादिगणी धातुओं के तुल्य चलते हैं। जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है कि लुङ और आशीर्लिङ को छोड़ कर अन्य आर्धधातुक लकारों में अय् ( अन्तिम अ का लोप होगा ) शेष रहता है और कर्मवाच्य में य से पहले अय् का लोप हो जाता है। नियम ५४८ से ५५६ में चुरादिगणी धातुओं के लुङ के प्रसंग में णिजन्त धातुओं के भी लुङ के रूप-निर्माण का प्रकार बताया गया है।

**६१२.** बुध् धातु के णिच् प्रत्ययान्त अंग बोधय् के परस्मै०, आत्मने० और कर्मवाच्य में उदाहरणार्थ रूप दिए जाते हैं।

### बोधय्--सार्वधातुक लकार

#### लट्

| | पर० | | | आत्मने० | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | बोधयति | बोधयतः | बोधयन्ति | बोधयते | बोधयेते | बोधयन्ते |
| म० | बोधयसि | बोधयथः | बोधयथ | बोधयसे | वोधयेथे | बोधयध्वे |
| उ० | बोधयामि | बोधयावः | बोधयामः | बोधये | बोधयावहे | बोधयामहे |

#### लङ्

| | पर० | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | अबोधयन्ध | अबोधयताम् | अबोयत् |

| | | | |
|---|---|---|---|
| म० | अबोधयः | अबोधयतम् | अबोधयत |
| उ० | अबोधयम् | अबोधयाव | अबोधयाम |

आत्मने०

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | अबोधयत | अबोधयेताम् | अबोधयन्त |
| म० | अबोधयथाः | अबोधयेथाम् | अबोधयध्वम् |
| उ० | अबोधये | अबोधयावहि | अबोधयामहि |

लोट्

| | प० | | | आ० | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | बोधयतु | बोधयताम् | बोधयन्तु | बोधयताम् | बोधयेताम् | बोधयन्ताम् |
| म० | बोधय | बोधयतम् | बोधयत | बोधयस्व | बोधयेथाम् | बोधयध्वम् |
| उ० | बोधयानि | बोधयाव | बोधयाम | बोधयै | बोधयावहै | बोधयामहै |

विधिलिङ्

| | पर० | | | आ० | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | बोधयेत् | बोधयेताम् | बोधयेयुः | बोधयेत | बोधयेयाताम् | बोधयेरन् |
| म० | बोधयेः | बोधयेतम् | बोधयेत | बोधयेथाः | बोधयेयाथाम् | बोधयेध्वम् |
| उ० | बोधयेयम् | बोधयेव | बोधयेम | बोधयेय | बोधयेवहि | बोधयेमहि |

**आर्धधातुक लकार**

लिट्

पर०

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | बोधयांचकार[1] | बोधयांचक्रतुः | बोधयांचक्रुः |
| म० | बोधयांचकर्थ | बोधयांचक्रथुः | बोधयांचक्र |
| उ० | बोधयांचकार-चकर | बोधयांचकृव | बोधयांचकृम |

आत्मने०

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | बोधयांचक्रे[1] | बोधयांचक्राते | बोधयांचक्रिरे |
| म० | बोधयांचकृषे | बोधयांचक्राथे | बोधयांचकृढ्वे |
| उ० | बोधयांचक्रे | बोधयांचकृवहे | बोधयांचकृमहे |

१. **बोधयमास, बोधयांबभूव आदि भी रूप बनेंगे।**

लुट्

पर०

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | बोधयिता | बोधयितारौ | बोधयितारः |
| म० | बोधयितासि | बोधयितास्थः | बोधयितास्थ |
| उ० | बोधयितास्मि | बोधयितास्वः | बोधयितास्मः |

आत्मने०

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | बोधयिता | बोधयितारौ | बोधयितारः |
| म० | बोधयितासे | बोधयितासाथे | बोधयिताध्वे |
| उ० | बोधयिताहे | बोधयितास्वहे | बोधयितास्महे |

लृट्

परस्मै०

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | बोधयिष्यति | बोधयिष्यतः | बोधयिष्यन्ति |
| म० | बोधयिष्यसि | बोधयिष्यथः | बोधयिष्यथ |
| उ० | बोधयिष्यामि | बोधयिष्यावः | बोधयिष्यामः |

आत्मने०

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | बोधयिष्यते | बोधयिष्येते | बोधयिष्यन्ते |
| म० | बोधयिष्यसे | बोधयिष्येथे | बोधयिष्यध्वे |
| उ० | बोधयिष्ये | बोधयिष्यावहे | बोधयिष्यामहे |

लृङ्

पर०

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | अबोधयिष्यत् | अबोधयिष्यताम् | अबोधयिष्यन्, आदि । |

आत्मने०

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | अबोधयिष्यत | अबोधयिष्येताम् | अबोधयिष्यन्त, आदि । |

लुङ्

पर०

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | अबूबुधत् | अबूबुधताम् | अबूबुधन् |
| म० | अबूबुधः | अबूबुधतम् | अबूबुधत |
| उ० | अबूबुधम् | अबूबुधाव | अबूबुधाम |

आत्मने०

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | अबूबुधत | अबूबुधेताम् | अबूबुधन्त |
| म० | अबूबुधथाः | अबूबुधेथाम् | अबूबुधध्वम् |
| उ० | अबूबुधे | अबूबुधावहि | अबूबुधामहि |

आशीर्लिङ

पर०

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | बोध्यात् | बोध्यास्ताम् | बोध्यासुः |
| म० | बोध्याः | बोध्यास्तम् | बोध्यास्त |
| उ० | बोध्यासम् | बोध्यास्व | बोध्यास्म |

आत्मने०

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | बोधयिषीष्ट | बोधयिषीयास्ताम् | बोधयिषीरन् |
| म० | बोधयिषीष्ठाः | बोधयिषीयास्थाम् | बोधयिषीध्वम्-ढ्वम् |
| उ० | बोधयिषीय | बोधयिषीवहि | बोधयिषीमहि |

**कर्मवाच्य**

| | लट् | | | लङ | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | बोध्यते | बोध्येते | बोध्यन्ते | अबोध्यत | अबोध्येताम् | अबोध्यन्त |
| म० | बोध्यसे | बोध्येथे | बोध्यध्वे | अबोध्यथाः | अबोध्येथाम् | अबोध्यध्वम् |
| उ० | बोध्ये | बोध्यावहे | बोध्यामहे | अबोध्ये | अबोध्यावहि | अबोध्यामहि |

| | लोट् | | | विधिलिङ | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | बोध्यताम् | बोध्येताम् | बोध्यन्ताम् | बोध्येत | बोध्येयाताम् | बोध्येरन् |
| म० | बोध्यस्व | बोध्येथाम् | बोध्यध्वम् | बोध्येथाः | बोध्येयाथाम् | बोध्येध्वम् |
| उ० | बोध्यै | बोध्यावहै | बोध्यामहै | बोध्येय | बोध्येवहि | बोध्येमहि |

लिट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | बोधयांचक्रे-बभूवे, बोधयामासे | बोधयांचक्राते-बभूवाते, बोधयामासाते | बोधयांचक्रिरे-बभूविरे, बोधयामासिरे |
| म० | बोधयांचकृषे-बभूविषे, बोधयामासिषे | बोधयांचक्राथे-बभूवाथे, बोधयामासाथे | बोधयांचकृढ्वे- ०बभूविध्वे-ढ्वे, बोधयामासिध्वे |

| | | | |
|---|---|---|---|
| उ० | बोधयांचक्रे-वभूवे, | बोधयांचकृवहे-वभूविवहे, | बोधयांचकृमहे-व्बभूविमहे, |
| | वोधयामासे | बोधयामासिवहे | बोधयामासिमहे |

लुट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | वोधयिता, | वोधयितारौ, | बोधयितारः, |
| | वोधिता | बोधितारौ | बोधितारः |
| म० | बोधयितासे, | बोधयितासाथे, | बोधयिताध्वे, |
| | बोधितासे | वोधितासाथे | बोधिताध्वे |
| उ० | वोधयिताहे, | बोधयितास्वहे, | वोधयितास्महे, |
| | वोधिताहे | बोधितास्वहे | वोधितास्महे |

लृट्

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | बोधयिष्यते, | बोधयिष्येते, | वोधयिष्यन्ते, |
| | वोधिष्यते | बोधिष्येते | बोधिष्यन्ते |
| म० | बोधयिष्यसे, | बोधयिष्येथे, | बोधयिष्यध्वे, |
| | बोधिष्यसे | वोधिष्येथे | बोधिष्यध्वे |
| उ० | बोधयिष्ये, | वोधयिष्यावहे, | बोधयिष्यामहे, |
| | बोधिष्ये | बोधिष्यावहे | बोधिष्यामहे |

लृङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | अबोधयिष्यत, | अबोधयिष्येताम्, | अबोधयिष्यन्त, |
| | अबोधिष्यत | अबोधिष्येताम् | अबोधिष्यन्त |
| म० | अबोधयिष्यथाः, | अबोधयिष्येथाम्, | अबोधयिष्यध्वम्, |
| | अबोधिष्यथाः | अबोधिष्येथाम् | अबोधिष्यध्वम् |
| उ० | अबोधयिष्ये, | अबोधयिष्यावहि, | अबोधयिष्यामहि, |
| | अबोधिष्ये | अबोधिष्यावहि | अबोधिष्यामहि |

आशीर्लिङ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | बोधयिषीष्ट, | वोधयिषीयास्ताम्, | बोधयिषीरन्, |
| | बोधिषीष्ट | बोधिषीयास्ताम् | बोधिषीरन् |
| म० | बोधयिषीष्ठाः, | वोधयिषीयास्थाम्, | बोधयिषीध्वम्-ढ्वम्, |
| | बोधिषीष्ठाः | बोधिषीयास्थाम् | बोधिषीध्वम् |

| | | |
|---|---|---|
| उ० बोधयिषीय, | बोधयिषीवहि, | बोधयिषीमहि |
| बोधिषीय | बोधिषीवहि | बोधिषीमहि |

लुङ्

| | | |
|---|---|---|
| प्र० अबोधि | अबोधयिषाताम्, | अबोधयिषत, |
| | अबोधिषाताम् | अबोधिषत |
| म० अबोधयिष्ठाः, | अबोधयिषाथाम्, | अबोधयिध्वम्-ढ्वम्, |
| अबोधिष्ठाः | अबोधिषाथाम् | अबोधिध्वम् |
| उ० अबोधयिषि, | अबोधयिष्वहि, | अबोधयिष्महि, |
| अबोधिषि | अबोधिष्वहि | अबोधिष्महि |

अन्य अनियमित रूपों आदि के लिए तृतीय भेद देखो।

## २. सन् प्रत्ययान्त (Desideratives)

**६१३**. दसों गणों की किसी भी मूल धातु से तथा णिच् प्रत्ययान्त धातु से विकल्प से सन् प्रत्यय होता है।[1] इसके तीनों वाच्यों और दसों लकारों में रूप चलते हैं।

**६१४**. सन् प्रत्ययान्त का अर्थ होता है कि कोई व्यक्ति या वस्तु कोई कार्य करना चाहता है या करने वाला है, अथवा धातु या सन्नन्त द्वारा वर्णित अर्थ को प्रकट करता है। पठ्--पिपठिषति ( वह पढ़ना चाहता है )। मृ--मुमूर्षति ( वह मरणासन्न है ), आदि।

---

१. इच्छा अर्थ सन् प्रत्यय तथा सामान्य वाक्य दोनों प्रकार से प्रकट किया जा सकता है। जैसे--पिपठिषति या पठितुम् इच्छति ( वह पढ़ना चाहता है ), आदि।

विशेष--(१) सन् प्रत्यय तभी होगा, जब धातु के द्वारा व्यक्त की गई क्रिया और इच्छा करने वाला व्यक्ति एक ही हो। अतः 'शिष्याः पठन्तु इति इच्छति गुरुः' में सन् नहीं होगा और पिपठिषति रूप नहीं होगा। यह भी आवश्यक है कि धातु का अर्थ इच्छा का कर्म हो। अतः गमनेन इच्छति और जिगमिषति समानार्थक नहीं हैं।

(२) यद्यपि सन्-प्रत्ययान्त धातुओं के तिङन्त रूप संस्कृत-साहित्य में कम मिलते हैं, तथापि सन्नन्त के उ प्रत्यय लगा कर संज्ञा-शब्द और क्त, तुम्, शतृ आदि कृत् प्रत्यय लगाकर बने हुए रूप पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होते हैं।

**६१५**. कुछ मूल धातुएँ ऐसी हैं, जिनसे सन् प्रत्यय तो होता है, परन्तु वे इच्छा अर्थ को प्रकट नहीं करती हैं, ( देखो नियम ३९६ ) । ये सन् प्रत्ययान्त धातुएँ भी मूल-धातु मानी जाती हैं, अतः इनसे इच्छा अर्थ को व्यक्त करने के लिए पुनः सन् प्रत्यय किया जाता है। जैसे––जुगुप्स से जुगुप्सिषते ( वह निन्दा करना चाहता है ), आदि ।

**६१६**. नियम ४४४ से ४४९ और ४५९ (क) (ख) में वर्णित द्वित्व के सामान्य नियमों के अनुसार धातु या अंग को द्वित्व करके सन् प्रत्ययान्त अंग बनाया जाता है। धातु को द्वित्व करने के बाद अन्त में स् लगता है। इस स् को सन्धि के नियमानुसार ष् भी हो जाता है। द्वित्व के बाद अभ्यास के अ को इ हो जाता है। जैसे––पठ्––पपठ्–पिपठ् + स् = पिपठिष् ( आगे वर्णित नियमानुसार ) ।

**सूचना**––जहाँ पर प्रत्यय के स् को ष् होता है, वहाँ पर धातु के स् को ष् नहीं होगा । सि–सिसीष्, सिच्–सिसिक्ष् (क् + ष् = क्ष्), स्मि–सिस्मयिष्, सू–सुसूष् । अन्यत्र–स्था–तिष्ठास्, सू + णिच्–सावय्–सुषावयिष्। स्तु का तुष्टूषति ही रूप बनता है ।

**६१७**. इससे पहले सेट् धातुओं में इ नित्य लगेगा, वेट् धातुओं में विकल्प से और अनिट् धातुओं में सर्वथा नहीं लगेगा । इसके निम्नलिखित अपवाद हैं :––

(१) इन धातुओं में इ नहीं लगेगा––उ, ऊ, ॠ और ॡ अन्त वाली धातुएँ तथा ग्रह् और गुह् धातुएँ। नु––नुनूष् ( देखो नियम ६१८ घ ), भू–बुभूष्, आदि।

**अपवाद**––इनमें इ लगता है––ॠ (जाना ), दॄ ( आ०, आदर करना ), धॄ ( ६ आ०, धारण करना ) और पू ( आ०, पवित्र करना ) । देखो आगे (४) भी।

(२) स्मि, अञ्ज्, प्रच्छ्, अश् में इ नित्य लगता है ।

(३) वृत्, वृध्, शृध्, स्यद् और क्लृप् में परस्मै० में इ नहीं लगता है ( देखो नियम ४८४ ) । इनमें आत्मनेपद में इ लगता है, अन्तिम दो धातुओं में विकल्प से । वृत्–विवृत्सति, विवर्तिषते, आदि ।

(४) इन धातुओं में विकल्प से इ लगता है––दीर्घ ॠ और इव् अन्त वाली धातुएँ तथा दरिद्रा, श्रि, ऊर्णु, यु, भृ, वृ, स्वृ, ऋध् ( समृद्ध होना ), दम्भ्, भ्रस्ज्, ज्ञप् ( चुरादिगणी ज्ञप् धातु और ज्ञा का वैकल्पिक णिजन्त रूप ), सन् ( देना ), तन्, पत्, कृत्, चृत्, छृद्, तृद् और नृत् ( देखो नि० ४८५ ) ।

अपवाद---कॄ ( फैलाना ) और गॄ ( निगलना ) में इ नित्य होता है। इन धातुओं में इस इ को दीर्घ नहीं होगा। चिकरिष्, आदि।

(५) क्रम्, गम् और स्रु धातुओं में परस्मै० में इ होता है और आत्मने० में नहीं।

६१८. सन् प्रत्यय होने पर धातु के स्वरों में निम्नलिखित परिवर्तन होते हैं :---

(क) इष् अङित् ( सबल ) है और केवल स् ङित् ( निर्बल ) है।

जहाँ पर इष् होगा वहाँ पर गुण होगा और जहाँ पर केवल स् होगा वहाँ पर गुण नहीं होगा। वृत्--विवर्तिष्, विवृत्स्; दॄ--दिदरिष्, आदि।

(ख) जहाँ पर स् से पूर्व इ नहीं लगता है, वहाँ पर धातु में ये परिवर्तन होते हैं---अन्तिम इ और उ को दीर्घ होता है। हन् और गम् ( इ, २ पर० जाना तथा अधि+इ, पढ़ना या स्मरण करना का स्थानीय ) के उपधा के अ को आ होता है। अन्तिम ऋ और ॠ को ईर् होता है, पवर्ग या व् पूर्व में होगा तो ऊर् होगा। जि--जिगीष्, द्रु--दुद्रुष्, कृ--चिकीर्ष्, तॄ--तितीर्ष्, मृ--मुमूर्ष्, पॄ--पुपूर्ष्, आदि।

(ग) रुद्, विद् और मुष् धातुओं के स्वर को गुण नहीं होता है। ग्रह्, स्वप् और प्रच्छ् धातुओं में संप्रसारण होता है। रुरुदिष्, विविदिष्, मुमुषिष्, जिघृक्ष्, सुषुप्स्, पिपृच्छिष्।

(घ) जहाँ पर स् से पूर्व इ लगता है, वहाँ पर इस प्रकार की धातुओं के स्वर को विकल्प से गुण होता है---धातु हलादि हो, उपधा में ह्रस्व इ या उ हो और अन्त में य् और व् को छोड़कर कोई व्यंजन हो। द्युत्--दिद्युतिष्, दिद्योतिष्; मुद्--मुमुदिष्, मुमोदिष्, आदि।

६१९. णिजन्त और चुरादिगणी धातुओं से सन् प्रत्ययान्त रूप बनाने में अन्य धातुओं के साथ लगने वाले नियम ही लगेंगे।

चुरादिगणी और णिजन्त धातुओं से सन्नन्त रूप बनाने में नियम ५५० का ध्यान रखना चाहिए।

६२०. सामान्य धातुओं से परस्मै० और आत्मने० में जो तिङ् प्रत्यय लगते हैं, वे ही सन्-प्रत्ययान्त धातुओं से भी लगेंगे। ज्ञा, श्रु, स्मृ और दृश् धातुओं से सन् प्रत्यय होने पर आत्मनेपद ही होता है।

६२१. इन धातुओं के सन्-प्रत्ययान्त रूप अनियमित ढंग से बनते हैं:---

| धातु | सन्नन्त अंग | लट् पु० पु० एक० |
|---|---|---|
| अद् (खाना) | जिघत्स् | जिघत्सति |
| आप् | ईप्स् | ईप्सति |
| इ (जाना) | जिगमिष् | जिगमिषति |
| अधि+इ (पढ़ना) | अधिजिगांस् | अधिजिगांसते |
| प्रति+इ (विश्वास करना) | प्रतीषिष् | प्रतीषिषति |
| इ | एषिषिष् | एषिषिषति |
| उ (शब्द करना) | ऊषिष् | ऊषिषति |
| ऊर्णु | ऊर्णुनूष् | ऊर्णुनूषति-ते |
| | ऊर्णुनुविष् | ऊर्णुनुविषति-ते |
| | ऊर्णुनविष् | ऊर्णुनविषति-ते |
| ऋ— | अरिरिष् | अरिरिषति |
| ऋध् (समृद्ध होना) | ईर्त्स् | ईर्त्सति |
| | अर्दिधिष् | अर्दिधिषति |
| गम्— | जिगमिष् | जिगमिषति |
| सम्+गम् (आ०) | संजिगांस् | संजिगांसते |
| गॄ (निगलना) | जिगरिष् | जिगरिषति |
| | जिगलिष् | जिगलिषति |
| चि (इकट्ठा करना) | चिचीष् | चिचीषति |
| | चिकीष् | चिकीषति |
| जि (जीतना) | जिगीष् | जिगीषति |
| ज्ञप् (१० उ० तथा ज्ञा + णिच् का वैकल्पिक रूप) | ज्ञीप्स् | ज्ञीप्सति |
| | जिज्ञपयिष् | जिज्ञपयिषति |
| ज्ञाप् (ज्ञा+णिच् वैक० रूप) | जिज्ञापयिष् | जिज्ञापयिषति |
| तन् (फैलाना) | तितंस्, तितांस् | तितंसति, तितांसति, |
| | तितनिष् | तितनिषति |
| तृंह् (हिंसा करना) | तितृक्ष् | तितृक्षति |
| | तितृंहिष् | तितृंहिषति |

| धातु | सन्नन्त अंग | लट् प्र० पु० १ |
|---|---|---|
| दम्भ् | धिप्स्, धीप्स् | धिप्सति, धीप्सति |
| | दिदम्भिष् | दिदम्भिषति |
| दरिद्रा | दिदरिद्रास् | दिदरिद्रासति |
| | दिदरिद्रिष् | दिदरिद्रिषति |
| दा (देना) | दित्स् | दित्सति |
| दे (रक्षा करना) | दित्स् | दित्सते |
| दो (काटना) | दित्स् | दित्सति |
| दिव् | दुद्यूष्, दिदेविष् | दुद्यूषति, दिदेविषति |
| धा | धित्स् | धित्सति |
| धे | धित्स् | धित्सति |
| नश् | निनङ्क्ष् | निनङ्क्षति |
| | निनशिष् | निनशिषति |
| पत् | पित्स् | पित्सति |
| | पिपतिष् | पिपतिषति |
| पद् | पित्स् | पित्सते |
| पू (आ०) | पिपविष् | पिपविषते |
| भ्रस्ज् | बिभर्क्ष् | बिभर्क्षति |
| ,, | बिभ्रक्ष् | बिभ्रक्षति |
| ,, | बिभर्जिष् | बिभर्जिषति |
| ,, | बिभ्रज्जिष् | बिभ्रज्जिषति |
| मस्ज् | मिमङ्क्ष् | मिमङ्क्षति |
| | मिमज्जिष् | मिमज्जिषति |
| मा (नापना) | मित्स् | मित्सति |
| मि (फेंकना) | मित्स् | मित्सति |
| मी (नष्ट करना) | मित्स् | मित्सति |
| मे (अदल-बदल करना) | मित्स् | मित्सते |
| मुच् | मोक्ष् | मोक्षते (मुक्त होना चाहता है) |

| धातु | सन्नन्त अंग | लट् प्र० पु० १ |
|---|---|---|
| मुच् | मुमुक्ष् | मुमुक्षते ( मुक्त होना चाहता है) |
| ,, | मुमुक्ष् | मुमुक्षति ( मुक्त करना चाहता है ) |
| मृज् | मिमृक्ष् | मिमृक्षति |
| | मिमार्जिष् | मिमार्जिषति |
| यु | युयूष् | युयूषति |
| | यियविष् | यियविषति |
| रभ् | रिप्स् | रिप्सते |
| राध् (हिंसा करना) | रित्स् | रित्सति |
| ,, (प्रसन्न करना) | रिरात्स् | रिरात्सति |
| लभ् | लिप्स् | लिप्सते |
| शक् | शिक्ष् | शिक्षति |
| सन् (८ उ०, पाना) | सिसनिष् | सिसनिषति |
| | सिषास् | सिषासति |
| सिव् | सुस्यूष् | सुस्यूषति |
| | सिषेविष् | सिषेविषति |
| हन् | जिघांस् | जिघांसति |
| हि (फेंकना ) | जिघीष् | जिघीषति |
| श्वायय् (श्वि + णिच्) | शिश्वाययिष् | शिश्वाययिषति |
| | शुशावयिष् | शुशावयिषति |
| स्फारय् (स्फुर् + णिच्) | पुस्फारयिष् | पुस्फारयिषति-ते |
| स्वापय् (स्वप् + णिच्) | सुष्वापयिष् | सुष्वापयिषति-ते |
| स्वादय्[1] (स्वद् + णिच्) | सिस्वादयिष् | सिस्वादयिषति-ते |
| स्वेदय्[1] (स्विद् + णिच्) | सिस्वेदयिष् | सिस्वेदयिषति-ते |
| साहय्[1] (सह् + णिच्) | सिसाहयिष् | सिसाहयिषति-ते |
| ह्वायय् (ह्वे + णिच्) | जुहावयिष् | जुहावयिषति-ते |

१. इन धातुओं के स् को ष् नहीं होता है।

## (ख) सन्नन्त धातुओं के रूप

### सार्वधातुक लकार (Conjugational Tenses)

**६२२.** सार्वधातुक लकारों में सन्नन्त अंग के अन्त में अ लगता है और इसके रूप तुदादिगणी ( गण ६) धातुओं के तुल्य कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य में चलते हैं।

### आर्धधातुक लकार (Non-conjugational Tenses)

**६२३.** (क) लिट् लकार में अंग के अन्त में आम् लगेगा और उसके बाद अस्, भू और कृ धातु के लिट् लकार वाले रूप लगेंगे। (देखो नियम ४९०, ५२६)।

(ख) लुङ् लकार में पंचम भेद वाले तिङ् प्रत्यय लगेंगे।

(ग) आशीर्लिङ् में परस्मै० में बिना इ के तिङ् प्रत्यय लगेंगे और आत्मने० में इ के साथ तिङ् प्रत्यय लगेंगे।

(घ) अन्य लकारों में कोई विशेष अन्तर नहीं होता है।

**६२४.** कर्मवाच्य में लुङ् प्र० पु० एक० नियम ५९७ (ग) के अनुसार बनता है। अन्य लकारों के रूप सामान्य विधि से बनते हैं।

**उदाहरण**

**बुबोधिष् ( बुध्+सन्)—प्र० पु० एक०**

| लकार | पर० | आ० | कर्मवाच्य |
|---|---|---|---|
| लट् | बुबोधिषति | बुबोधिषते | बुबोधिष्यते |
| लङ् | अबुबोधिषत् | अबुबोधिषत | अबुबोधिष्यत |
| लोट् | बुबोधिषतु | बुबोधिषताम् | बुबोधिष्यताम् |
| विधिलिङ् | बुबोधिषेत् | बुबोधिषेत | बुबोधिष्येत |
| लिट् | बुबोधिषांचकार | बुबोधिषांचक्रे | बुबोधिषांचक्रे |
| | बुबोधिषामास | बुबोधिषामासे | बुबोधिषामासे |
| | बुबोधिषांबभूव | बुबोधिषांबभूवे | बुबोधिषांबभूवे |
| लुट् | बुबोधिषिता | बुबोधिषिता | बुबोधिषिता |
| लृट् | बुबोधिषिष्यति | बुबोधिषिष्यते | बुबोधिषिष्यते |
| लृङ् | अबुबोधिषिष्यत् | अबुबोधिषिष्यत | अबुबोधिषिष्यत |
| लुङ् | अबुबोधिषीत् | अबुबोधिषिष्ट | अबुबोधिषि |
| आशीर्लिङ् | बुबोधिष्यात् | बुबोधिषिषीष्ट | बुबोधिषिषीष्ट |

| धातु | लट् प्र० १ | धातु | लट् प्र० १ |
| --- | --- | --- | --- |
| रुद्— | रुरुदिषति | कृत्— | चिकर्तिषति, चिकृत्सति |
| विद्— | विविदिषति | छृद्— | चिच्छर्दिषति-ते चिच्छृत्सति-ते |
| मुष्— | मुमुषिषति | | |
| स्वप्— | सुषुप्सति | तॄ— | तितरिषति, तितरीषति, तितीर्षति |
| प्रच्छ्— | पिपृच्छिषति | | |
| कॄ— | चिकरिषति | वृ (उ०)— | विवरिषति-ते, विवरीषति-ते, वुवूर्षति-ते |
| धृ (६ आ०)— | दिधरिषते | | |
| धृ (१ उ०)— | दिधरिषति-ते | उच्छ्— | उचिच्छिषति |
| गुह्— | जुघुक्षति | स्था— | तिष्ठासति |
| वृत्— | विवर्तिषते, विवृत्सति | स्नु+णिच्— | सिस्नावयिषति-ते, सुस्नावयिषति-ते |
| द्युत्— | दिद्युतिषते, दिद्योतिषते | | |
| श्रि— | शिश्रीषति, शिश्रयिषति | श्रु+णिच्— | शिश्रावयिषति-ते, शुश्रावयिषति--ते, |
| स्वृ— | सुस्वूर्षति, सिस्वरिषति | | |
| वृध्— | विवृत्सति, विवर्तिषते | प्रु+णिच्— | पिप्रावयिषति-ते, पुप्रावयिषति-ते |
| स्यन्द्— | सिस्यन्त्सति, सिस्यन्दिषते, सिस्यन्त्सते | प्लु+णिच्— | पिप्लावयिषति-ते, पुप्लावयिषति–ते |
| क्लृप्— | चिक्लृप्सति, चिकल्पिषते, चिक्लृप्सते | च्यु+णिच्— | चिच्यावयिषति-ते, चुच्यावयिषति-ते, आदि |

## ३. यङ प्रत्ययान्त (Frequentative or intensive)

**६२५.** यङ (य) प्रत्यय प्रारम्भिक ९ गणों की किसी भी एकाच् और हलादि धातु से हो सकता है। यङ प्रत्यय धातु के द्वारा निर्दिष्ट क्रिया को बार-बार करने या आधिक्य से करने अर्थ में होता है ।[1]

---

१. **धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ (३-१-२२)। पौनःपुन्यं भृशार्थश्च क्रियासमभिहारः। तस्मिन् द्योत्ये यङ स्यात्। (सि० कौ०)।**

अपवाद:—

६२६. (क) निम्नलिखित अजादि और अनेकाच् (चुरादिगणी) धातुओं से भी यङ प्रत्यय होता है:[1]—(१) अजादि धातुएँ—अट् (जाना), ऋ (जाना), अश् (खाना) और ऊर्णु (ढकना)। (२) अनेकाच् (चुरादिगणी) धातुएँ—सूचि (१०, सूचित करना), सूत्रि (१०, संक्षिप्त रूप में रखना) और मूत्रि (१०)।

(ख) गति (जाना) अर्थ वाली धातुओं से कुटिल गति अर्थ में ही यङ प्रत्यय होता है, बार-बार करने अर्थ में नहीं।[2] निम्नलिखित धातुओं से निन्दित ढंग से कार्य करने अर्थ में ही यङ प्रत्यय होता है—लुप् (काटना), सद् (बैठना), चर् (जाना), जप् (जप करना), जभ् (जँभाई लेना), दह् (जलाना), दंश् (काटना, डँसना), और गॄ (निगलना)।[3] लोलुप्यते (निन्दित ढंग से काटता है), सासद्यते (बुरे ढंग से बैठता है), चञ्चूर्यते आदि।

६२७. धातुओं से दो प्रकार के यङ प्रत्ययान्त रूप बनते हैं। दोनों प्रकार की धातुओं में असाधारण ढंग से द्वित्व का कार्य होता है। एक प्रकार की धातुओं में अन्त में यङ (य) प्रत्यय लगता है और उन धातुओं के रूप केवल आत्मनेपद में ही चलते हैं। दूसरे प्रकार की धातुओं में यङ (य) का लोप हो जाता है और उन्हें यङलुगन्त कहते हैं। इन धातुओं के रूप परस्मैपद में ही चलते हैं। (कुछ वैयाकरणों के मतानुसार आत्मनेपद में भी इनके रूप चलते हैं)। सुविधा के लिए इनमें से प्रथम को यङन्त कहा जाता है और दूसरे को यङलुगन्त।

**यङन्त या आत्मनेपद यङन्त (आत्मनेपद Frequentative)**

६२८. धातु से यङ (य) प्रत्यय करके यङन्त अंग बनता है। इस य से पूर्व धातु में वही परिवर्तन होते हैं जो कर्मवाच्य य प्रत्यय से पहले होते हैं। दा—दीय, चि—चीय, नी—नीय, भू—भूय, स्मृ—स्मर्य, ऋ—अर्य, कॄ—कीर्य, धे—धीय आदि। भिद्—भिद्य, पॄ—पूर्य, बन्ध्—बध्य, नन्द्—नन्द्य आदि।

(क) घ्रा और ध्मा के आ को ई हो जाता है। धातु के ऋ को री होगा,

---

१. सूचिसूत्रिमूत्र्यट्यर्त्यशूर्णोतिभ्यो यङ वाच्यः (वार्तिक पूर्वोक्त सूत्र पर)
२. नित्यं कौटिल्ये गतौ (३-१-२३)
३. लुपसदचरजपजभदहदशगॄभ्यो भावगर्हायाम् (३-१-२४)

रि नहीं, यदि उससे पूर्व एक व्यंजन वर्ण होगा तो। घ्रा–घ्रीय, ध्मा–ध्मीय, क्री–क्रीय।

(ख) निम्नलिखित धातुओं में ये परिवर्तन होते हैं:—(१) व्यच्, व्यध्, स्यम्, स्वप्, ग्रह्, प्रच्छ्, भ्रस्ज् और व्रश्च् धातुओं में संप्रसारण होता है। (२) ज्या और व्ये के अन्तिम स्वर को ई होता है। (३) ह्वे को हू हो जाता है। (४) शास् को शिष् और प्याय् को पी होता है। व्यच्–विच्य, स्वप्–सुप्य, ग्रह्–गृह्य, ह्वे–हूय, ज्या–जीय, शास्–शिष्य, प्याय्–पीय।

(ग) नियम ३९५ यहाँ भी लगेगा।

**६२९.** य अन्त वाले अंग को द्वित्व के सामान्य नियमों के अनुसार द्वित्व होगा।

(क) यदि धातु अजादि है तो उसके दूसरे वर्ण को द्वित्व होगा।

(ख) द्वित्व होने पर अभ्यास के इ और उ को गुण हो जाता है तथा अभ्यास के अ को आ हो जाता है। पुनः पुनः अतिशयेन वा भवति—बोभूयते, पच्–पापच्यते, आदि।

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| दा–दीय | (नि० ६२८) | दिदीय | (द्वित्व से) | देदीय | (नि० ६२९ ख से)-ते- | देदीयते |
| ज्ञा–ज्ञाय | ” | जज्ञाय | ” | जाज्ञाय | ” | =जाज्ञायते |
| धे–धीय | ” | दिधीय | ” | देधीय | ” ” | =देधीयते |
| भू–भूय | ” | बुभूय | ” | बोभूय | ” ” | =बोभूयते |
| ऋ–अर्य | ” | अरर्य | (नि० ६२९क) | अरार्य | ” | =अरार्यते |
| क्री–क्रीय | ” | चिक्रीय | (द्वित्व से) | चेक्रीय | ” ” | =चेक्रीयते |
| पॄ–पूर्य | ” | पुपूर्य | ” | पोपूर्य | ” ” | =पोपूर्यते |
| अट्–अट्य | ” | अटट्य | (नि०६२९क) | अटाट्य | ” ” | =अटाट्यते |
| अश्–अश्य | ” | अशश्य | ” | अशाश्य | ” ” | =अशाश्यते |
| व्रज्–व्रज्य | ” | वव्रज्य | (द्वित्व से) | वाव्रज्य | ” ” | =वाव्रज्यते |

इसी प्रकार ढौक्–डोढौक्यते, व्यच्–वेविच्यते, स्वप्–सोषुप्यते, शास्–शेशिष्यते, प्याय्–पेपीयते आदि। घ्रा–घ्रीय–जिघ्रीय–जेघ्रीयते, ध्मा–देध्मीयते आदि।

**६३०.** जिन धातुओं के अन्त में अनुनासिक वर्ण (न्, म्) हैं और उपधा में अ हैं, उनके अभ्यास के अ के बाद न् लगता है। इस न् को अनुस्वार होता है या

परसवर्ण होता है। यहाँ पर नियम ६२९ (ख) नहीं लगेगा और अभ्यास के अ को आ नहीं होगा।

यम्–यम्य–ययम्य = यंयम्यते–यँय्यम्यते, जन्–जन्य–जजन्य = जंजन्यते–जञ्जन्यते। परन्तु जब जन् = जाय होगा तो रूप होगा जाजाय–जाजायते (प्र० १)

(क) उपर्युक्त नियम इन धातुओं में भी लगता है:––चर्, फल्, जप्, जभ्, दह्, दंश्, भञ्ज् और पश्। चर् और फल् धातुओं में अभ्यास में न् लगने के बाद बाद के अ को उ हो जाता है। चर्–चर्य–चचर्य = चंचुर्य या चञ्चुर्य = चंचूर्यते या चञ्चूर्यते ( नि० ३९४ से )। फल्-फल्य–पफल्य = पंफुल्यते या पम्फुल्यते, दह्–दह्य–ददह्य–दंदह्यते या दन्दह्यते, जप्–जंजप्यते या जञ्जप्यते।

(ख) इन धातुओं में अभ्यास के अ के बाद नी लगेगा और अ को दीर्घ नहीं होगा:––वञ्च्, स्रंस्, ध्वंस्, भ्रंस्, कस्, पत्, पद् और स्कन्द्। वञ्च्–वञ्च्य–ववञ्च्य–वनीवञ्च्यते, स्रंस्–स्रस्य–सनीस्रस्यते, ध्वंस्–दनीध्वस्यते, भ्रंस्–बनीभ्रस्यते, कस्–कनीकस्यते, पत्–पनीपत्यते, पद्–पनीपद्यते, स्कन्द्–कनीस्कद्यते।

**६३१**. जिन धातुओं की उपधा में ऋ या लृ है ( मूल रूप में या संप्रसारण के द्वारा ), उनके अभ्यास के अ के बाद री लग जाता है और अभ्यास के अ को आ ( नि० ६२९ ख से ) नहीं होता है। वृत्–वृत्य–ववृत्य–वरीवृत्यते, प्रच्छ्–पृच्छ्य–परीपृच्छ्यते, नृत्–नरीनृत्यते, ग्रह्–जरीगृह्यते।

### यङन्त धातुओं के रूप

**६३२**. यङन्त धातुओं के सार्वधातुक लकारों में रूप दिवादिगणी धातुओं के आत्मनेपद के रूपों के तुल्य चलेंगे। आर्धधातुक लकारों में तथा कर्मवाच्य के सभी लकारों में जहाँ पर य से पहले स्वर होगा, वहाँ पर य के अ का लोप होगा और जहाँ पर य से पहले व्यंजन होगा,वहाँ पर पूरे य का ही लोप हो जाएगा। लिट् लकार में आम् अन्त वाले रूप बनेंगे। लुङ लकार में पंचम भेद के आत्मनेपद वाले तिङ प्रत्यय लगेंगे। अन्य लकारों में तिङ प्रत्ययों से पहले इ ,लगेगा और सामान्य रूप से आत्मनेपदी तिङ प्रत्यय लगेंगे। प्रत्ययान्त धातुओं के कर्मवाच्य के तुल्य इसके भी कर्मवाच्य के रूप बनेंगे।

**६३३**. उदाहरण :––

(क) **बोबुध्य** ( बुध+यङ ) के प्र० पु० एक० के रूप।

(ख) **देदीय** ( दा+यङ ) के प्र० पु० एक० के रूप ।

| **लकार** | **कर्तृवाच्य** | | **कर्मवाच्य** | |
|---|---|---|---|---|
| लट् | बोबुध्यते | देदीयते | बोबुध्यते | देदीय्यते |
| लङ | अबोबुध्यत | अदेदीयत | अबोबुध्यत | अदेदीय्यत |
| लोट् | बोबुध्यताम् | देदीयताम् | बोबुध्यताम् | देदीय्यताम् |
| वि०लिङ | बोबुध्येत | देदीयेत | बोबुध्येत | देदीय्येत |
| लिट् | बोबुधांचक्रे आदि | देदीयांचक्रे आदि | | कर्तृवाच्यवत् |
| लुङ | अबोबुधिष्ट | अदेदीयिष्ट | अबोबुधि | अदेदीयि |
| लुट् | बोबुधिता | देदीयिता | | कर्तृवाच्यवत् |
| लृट् | बोबुधिष्यते | देदीयिष्यते | | " |
| लृङ | अबोबुधिष्यत | अदेदीयिष्यत | | " |
| आशीर्लिङ | बोबुधिषीष्ट | देदीयिषीष्ट | | " |

**सूचना**--अनियमित यङन्त धातुओं के रूप नियम ६३९ के नीचे दिए गए हैं ।

## यङलुगन्त ( परस्मैपद Frequentative)

यङलुगन्त के रूप प्रायः वेद में ही मिलते हैं। इसका प्रयोग श्रेण्य संस्कृत साहित्य में बहुत कम होता है ।

### यङलुगन्त अंग की रचना

**६३४**. धातु को द्वित्व के सामान्य नियमानुसार द्वित्व होता है। द्वित्व होने पर अभ्यास के इ और उ को गुण होता है और अभ्यास के अ को आ होता है। दा--ददा--दादा, श्रि--शिश्रि--शेश्रि, भू--बुभू--बोभू, कृ--चकृ--चाकृ, विद्--विविद्--वेविद्, बुध्--बुबुध्--बोबुध् आदि ।

**६३५**. नियम ६३० (क) (ख) यङलुगन्त में भी लगते हैं। यम्--यंयम् या यँय्यम्, दह्--दंदह् या दन्दह्, वञ्च्--वनीवञ्च् आदि ।

**६३६**. जिन धातुओं के अन्त में या उपधा में ह्रस्व ऋ है, उनमें द्वित्व होने पर अभ्यास के अ के बाद र्, रि या री लगते हैं। इसी प्रकार क्लृप् धातु में अभ्यास के अ के बाद ल्, लि या ली लगते हैं। वृत्--ववृत्=वर्वृत्, वरिवृत्, वरीवृत्; कृ--चर्कृ, चरिकृ, चरीकृ; क्लृप्--चल्क्लृप्, चलिक्लृप्, चलीक्लृप्; दृश्--दर्दृश्, दरिदृश्, दरीदृश् ।

## यङ्लुगन्त धातुओं के रूप

**६३७.** यङ्लुगन्त धातुओं के सार्वधातुक लकारों में रूप जुहोत्यादिगण की पर० धातुओं के तुल्य चलते हैं। इन स्थानों पर तिङ् प्रत्ययों से पूर्व विकल्प से ई लगेगा—लट् के तीनों एकवचन में, लङ् के प्र० और म० एक० में और लोट् के प्र० एक० में। जहाँ पर बीच में ई लगेगा वहाँ पर उपधा के ह्रस्व स्वरों को गुण नहीं होगा। दा—दादाति, दादेति; वृत्—वर्वर्ति, वरिवर्ति, वरीवर्ति, वर्वृतीति, वरिवृतीति, वरीवृतीति; कृ—चर्कर्ति—चर्करीति, चरिकर्ति-चरिकरीति, चरीकर्ति—चरीकरीति।

**६३८.** आर्धधातुक लकारों के रूपों के विषय में वैयाकरणों में पर्याप्त मतभेद है। लिट् लकार के रूप अनेकाच् धातुओं के तुल्य चलते हैं। अन्य लकारों में तिङ् प्रत्ययों से पहले इ नित्य लगता है, आशीर्लिङ् में नहीं।

यङ्लुगन्त का प्रयोग अधिकांशतः वेद में ही प्राप्त होता है, अतः इसका विशेष विस्तार यहाँ पर नहीं दिया जा रहा है।

### उदाहरण

**बोभू या बोभव्** ( भू+यङ्लुक् )

| | लट् | | | लङ् | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | बोभोति<br>बोभवीति | बोभूतः | बोभुवति | अबोभोत्<br>अबोभवीत् | अबोभूताम् | अबोभवुः |
| म० | बोभोषि<br>बोभवीषि | बोभूथः | बोभूथ | अबोभोः<br>अबोभवीः | अबोभूतम् | अबोभूत |
| उ० | बोभोमि<br>बोभवीमि | बोभूवः | बोभूमः | अबोभवम् | अबोभूव | अबोभूम |

| | लोट् | | | विधिलिङ् | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | बोभोतु<br>बोभवीतु | बोभूताम् | बोभुवतु | बोभूयात् | बोभूयाताम् | बोभूयुः |
| म० | बोभूहि | बोभूतम् | बोभूत | बोभूयाः | बोभूयातम् | बोभूयात |
| उ० | बोभवानि | बोभवाव | बोभवाम | बोभूयाम् | बोभूयाव | बोभूयाम |

**लिट्**

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र० | बोभवांचकार आदि<br>बोभाव | बोभवांचक्रतुः<br>बोभुवतुः, बोभूवतुः | बोभवांचक्रुः<br>बोभुवुः, बोभूवुः |

| | | | |
|---|---|---|---|
| म० | बोभवांचकर्थ आदि | बोभवांचक्रथुः | बोभवांचक्र |
| | बोभविथ | बोभुवथुः | बोभुव |
| | बोभूविथ | बोभूवथुः | बोभूव |
| उ० | बोभवांचकार-चकर आदि | बोभवांचकृव | बोभवांचकृम |
| | बोभव, बोभाव, बोभूव | बोभुविव, बोभूविव | बोभुविम, बोभूविम |

**लुङ**

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| प्र० | अबोभवीत्, अबोभोत् | अबोभूताम् | अबोभूवुः | |
| | अबोभवीत्, अबोभूत् | | अबोभुवुः | |
| | अबोभावीत् | अबोभाविष्टाम् | अबोभाविषुः | |
| म० | अबोभोः, अबोभवीः | अबोभूतम् | अबोभूत | |
| | अबोभूः, अबोभूवीः | | | |
| | अबोभावीः | अबोभाविष्टम् | अबोभाविष्ट | |
| उ० | अबोभूवम् | अबोभूव | अबोभूम | |
| | अबोभाविषम् | अबोभाविष्व | अबोभाविष्म | |

**लुट्**

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| प्र० | बोभविता | बोभवितारौ | बोभवितारः | इत्यादि |

**लृट्**

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| प्र० | बोभविष्यति | बोभविष्यतः | बोभविष्यन्ति | इत्यादि |

**लृङ**

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| प्र० | अबोभविष्यत् | अबोभविष्यताम् | अबोभविष्यन् | इत्यादि |

आशीर्लिङ

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| प्र० | बोभूयात् | बोभूयास्ताम् | बोभूयासुः | इत्यादि |

| **लकार** | **आत्मनेपद** | **कर्मवाच्य** |
|---|---|---|
| लट् | बोभूते | बोभूयते |
| लङ | अबोभूत | अबोभूयत |
| लोट् | बोभताम् | बोभूयताम् |
| विधिलिङ | बोभुवीत | बोभूयेत |
| लिट् | बोभवांचक्रे, आदि | बोभवांचक्रे |
| लुट् | बोभविता | बोभविता, बोभाविता |
| लृट् | बोभविष्यते | बोभविष्यते, बोभाविष्यते |

| लकार | आत्मनेपद | कर्मवाच्य |
|---|---|---|
| लृङ् | अबोभविष्यत | अबोभविष्यत, अबोभाविष्यत |
| लुङ् | अबोभविष्ट | अबोभावि |
| आशीर्लिङ् | बोभविषीष्ट | बोभविषीष्ट, बोभाविषीष्ट |

६३९. निम्नलिखित धातुओं के यङ् प्रत्यय वाले रूप अनियमित ढंग से बनते हैं :—

| धातु | यङन्त रूप (आ०) | यङ्लुगन्त रूप (पर०) |
|---|---|---|
| ऊर्णु (ढकना) | ऊर्णोनूयते | —— |
| कु (१ आ० शब्द करना) | कोकूयते | —— |
| खन् (खोदना) | चङ्खन्यते | चंखनीति |
| | चंखन्यते | चङ्खन्ति आदि |
| | चाखायते | |
| गॄ (निगलना) | जेगिल्यते | जागर्ति |
| चर् (घूमना) | देखो नि० ६३० क | चञ्चरीति, चञ्चर्ति |
| चाय् (पूजा करना) | चेकीयते | चेकीयति, चेकेति |
| जन् (उत्पन्न होना) | दे० नि० ६३० क | जञ्जनीति, जञ्जन्ति, आदि |
| द्युत् (चमकना) | देद्युत्यते | देद्युतीति, देद्योति |
| फल् (फैलना) | दे० नि० ६३० क | पंफुलीति, पंफुल्ति |
| शी (सोना) | शाशय्यते | शेशयीति, शेशेति |
| श्वि (सूजना) | शेश्वियते, शोशूयते | शेश्वयीति, शेश्वेति |
| सन् (पाना) | संसन्यते, सासायते | संसनीति, संसन्ति |
| हन् (हिंसा करना) | जेघीयते | जंघनीति, जंघन्ति |
| ,, (अन्य अर्थों में) | जङ्घन्यते, जंघन्यते | —— |

## ४. नामधातु-प्रक्रिया (Nominal verbs)

६४०. प्रातिपदिकों से कुछ प्रत्यय लगाकर नामधातु बनाई जाती हैं। नामधातुओं का अधिक प्रचार नहीं है। इनका रूप सामान्यतया लट् लकार में ही मिलता है। ये धातुएँ कई अर्थों में बनती हैं। ये प्रत्यय कभी-कभी 'आचरति' अर्थात् संज्ञाशब्द के द्वारा उक्त अर्थ के अनुकूल आचरण या व्यवहार करने अर्थ में होते

हैं। ये नामधातु सकर्मक के तुल्य प्रयुक्त होते हैं। ये प्रत्यय कभी-कभी तद्वत् व्यव-हार करने या तद्वत् होने अर्थ में भी होते हैं। कभी-कभी ये प्रत्यय संज्ञा-शब्द के द्वारा उक्त अर्थ को चाहने अर्थ में भी होते हैं। विभिन्न प्रत्ययों के आधार पर इनको चार भागों में यहाँ रक्खा गया है।

**(क) क्यच् (य) प्रत्यय**—( परस्मै० में रूप चलेंगे )

**६४१**. किसी भी सुबन्त से इच्छा अर्थ में क्यच् (य) प्रत्यय लगाकर नाम-धातु बना सकते हैं। इस य प्रत्यय को लगाकर बनी हुई धातु के रूप परस्मैपद में ही चलते हैं।

**६४२**. यह य प्रत्यय करने पर शब्द में निम्नलिखित परिवर्तन होते हैं :—

(१) शब्द के अन्तिम अ या आ को ई हो जाता है। आत्मनः पुत्रम् इच्छति—पुत्रीयति ( पुत्र + य = पुत्री + य + ति ), ( वह पुत्र की इच्छा करता है )।

(२) अन्तिम इ और उ को दीर्घ हो जाता है। कवि—कवीयति ( वह कवि की इच्छा करता है )।

(३) अन्तिम ऋ को री हो जाता है। कर्तृ—कर्त्रीयति।

(४) अन्तिम ओ को अव् और औ को आव् होता है। गो-गव्यति, नौ-नाव्यति।

(५) शब्द का अन्तिम न् लुप्त हो जाता है और उससे पूर्ववर्ती स्वर को मूल स्वर के तुल्य कार्य होते हैं। राजन्—राजीयति ( वह राजा की इच्छा करता है )।

(६) अन्य स्थानों पर अन्तिम व्यंजन में कोई परिवर्तन नहीं होता है। वाच्—वाच्यति ( वह वाणी या शब्दों की इच्छा करता है )। दिव्—दिव्यति ( कुछ के मतानुसार दीव्यति ) ( वह स्वर्ग की इच्छा करता है )। समिध्—समि-ध्यति ( वह समिधा की इच्छा करता है )।

(७) पुत्र आदि अर्थों में हुए तद्धित प्रत्यय का लोप हो जाता है और तत्पश्चात् शब्द में पूर्वोक्त परिवर्तन होते हैं। आत्मनः गार्ग्यम् ( गर्ग का पुत्र ) इच्छति—गार्गीयति ( गार्ग्य + य + ति = गार्ग + य + ति = गार्गी + य + ति ), आदि।

**६४३**. शब्द और य प्रत्यय के बीच में सभी शब्दों में स् या अस् लग जाता है। आत्मनः मधु इच्छति—मधुस्यति, मध्वस्यति ( वह शहद की इच्छा करता है )। इसी प्रकार दधिस्यति, दध्यस्यति, आदि। अस् से पूर्ववर्ती शब्द के अन्तिम अ का लोप हो जाता है। पुत्र—पुत्रस्यति।

(क) अश्व और वृष शब्दों से मैथुन की इच्छा अर्थ में य प्रत्यय से पूर्व अस्

लगता है। क्षीर शब्द से पीनेकी इच्छा अर्थ में और लवण शब्दसे चाटनेकी इच्छा अर्थ में य प्रत्यय से पहले अस् लगता है। वृषस्यति गौः ( गाय बैल से संगम की इच्छा करती है ), अश्वस्यति वडवा ( घोड़ी घोड़े से संगम की इच्छा करती है )। क्षीरस्यति बालः ( बालक दूध पीना चाहता है ), लवणस्यति उष्ट्रः ( ऊँट नमक चाटना चाहता है )। अन्यत्र वृषीयति ( वह बैल प्राप्त करना चाहता है ), अश्वीयति ( वह घोड़ा प्राप्त करना चाहता है )। क्षीरीयति, लवणीयति।

**६४४**. म् अन्त वाले शब्दों से तथा अव्ययों से क्यच् (य) प्रत्यय नहीं होता है। कमिच्छति, स्वरिच्छति ( वह स्वर्ग की इच्छा करता है )।

**६४५**. खाने की इच्छा अर्थ में अशन का अशनाय रूप बनता है, पीने की इच्छा अर्थ में उदक का उदन्य और धनसंग्रह की इच्छा अर्थ में धन का धनाय रूप बनता है। अशन—अशनायति ( वह खाना चाहता है ), अन्यत्र अशनीयति ( वह अन्नसंग्रह करना चाहता है )। उदक—उदन्यति ( वह पानी पीना चाहता है ), अन्यत्र उदकीयति ( वह पानी प्राप्त करना चाहता है )। धन—धनायति ( वह धनसंग्रह करना चाहता है ), अन्यत्र धनीयति ( धनी होना चाहता है )।

**६४६**. इस क्यच् (य) प्रत्यय का केवल इच्छा ही अर्थ नहीं होता है।

(क) यह क्यच् (य) प्रत्यय तद्वत मानने या व्यवहार करने अर्थ में **भी** होता है। पुत्रीयति छात्रम् ( छात्र को पुत्रवत् मानता है ), विष्णूयति द्विजम् ( वह ब्राह्मण को विष्णु के तुल्य समझता है ), प्रासादीयति कुट्यां भिक्षुः ( भिक्षुक अपनी कुटिया को महल के तुल्य समझता है ), कुटीयति प्रासादे राजा ( राजा अपने महल में अपने आप को कुटिया में रहने वाले के तुल्य समझता है )।

(ख) नमस् शब्द से पूजा अर्थ में, वरिवस् शब्द से परिचर्या ( सेवा ) अर्थ में और चित्र शब्द से आश्चर्ययुक्त करना अर्थ में क्यच् (य) लगता है। नमस्यति देवान् ( देवों की पूजा करता है ), वरिवस्यति गुरुम् ( गुरु की सेवा करता है ), चित्रीयते लोकान् ( लोगों को आश्चर्यान्वित करता है )। तपस् शब्द से अभ्यास करना अर्थ में य होता है। तपस्यति।

**६४७**. आर्धधातुक लकारों में व्यंजन के बाद के य ( क्यच् और क्यङ ) का विकल्प से लोप हो जाता है। समिध्य का लिट्—समिधांचकार, लुट्—समिधिता—समिध्यिता, लृट्—समिधिष्यति—समिध्यिष्यति। परन्तु पुत्रीयते का लिट् पुत्रीयांचकार होगा।

**(ख) काम्यच् (काम्य) प्रत्यय** ( परस्मै० में रूप चलेंगे )

**६४८.** इच्छा अर्थ में संज्ञाशब्द से काम्यच् ( काम्य) प्रत्यय होता है। क्यच् ( य) प्रत्यय के तुल्य यह संज्ञा-शब्द के बाद में जुड़ जाता है और इसके परस्मैपद में रूप चलते हैं। पुत्रकाम्यति ( वह पुत्र की कामना करता है ), यशस्काम्यति ( वह यश की इच्छा करता है ), सर्पिष्काम्यति ( वह घी चाहता है )।

**६४९.** नियम ६४४ में वर्णित अपवाद यहाँ नहीं लगता है । किंकाम्यति, स्वःकाम्यति।

**(ग) क्विप् (०) प्रत्यय** ( परस्मै० में रूप चलेंगे )

**६५०.** क्विप् प्रत्यय का कुछ भी अंश शेष नहीं रहता है, अतः क्विप् प्रत्यय होने पर संज्ञाशब्द उसी रूप में धातु बन जाता है। उससे ही साक्षात् तिङ्प्रत्यय जुड़ेंगे। क्विप् प्रत्यय तद्वत् आचरण करने का अर्थ बताता है। इसके रूप परस्मै-पद में ही चलते हैं।

**६५१.** अनुनासिक ( न्, म् आदि ) अन्त वाले शब्दों की उपधा के अ इ उ को दीर्घ हो जाता है। क्विप्–प्रत्ययान्त अंग भ्वादिगणी धातु के तुल्य माना जाता है। मध्य में शप् ( अ) होने पर धातु के अन्तिम स्वर को गुण होता है । अ ( विष्णु) इव आचरति—अति ( विष्णु के तुल्य आचरण करता है)। कृष्ण–कृष्णति ( कृष्ण के तुल्य आचरण करता है ), उ० १—कृष्णामि। कवि–कवयति ( कवि के तुल्य आचरण करता है )। वि–वयति ( पक्षिवत् आचरण करता है )। माला–मालाति ( माला के तुल्य आचरण करता है ), लिट्–मालांचकार आदि। पितृ–पितरति ( पिता के तुल्य आचरण करता है )। भू–भवति ( पृथ्वी के तुल्य आचरण करता है ), लिट्–बुभाव। राजन्–राजानति ( राजा के तुल्य आचरण करता है )। पथिन्–पथीनति ( मार्ग के तुल्य काम देता है ), आदि। इसी प्रकार इदम्–इदामति, ऋभुक्षिन्–ऋभुक्षीणति ( इन्द्रवत् आचरण करता है )।

(क) अवगल्भ ( निर्भय व्यक्ति ), होड ( बालक ) और क्लीब शब्दों से क्विप् और क्यङ प्रत्यय विकल्प से होते हैं। इनके रूप आत्मनेपद में ही चलते हैं। अवगल्भते-अवगल्भायते, होडते-होडायते, क्लीबते-क्लीबायते ।

**(घ) क्यङ (य) प्रत्यय** ( आत्मने० में रूप चलेंगे )

**६५२.** क्यच् (य) आदि के तुल्य क्यङ (य) प्रत्यय भी इच्छा आदि अर्थों में संज्ञा-शब्दों से होता है। इससे बने हुए अंग के आत्मनेपद में ही रूप चलते हैं।

**६५३**. इस क्यङ (य) से पूर्व नामधातु के अन्तिम अ को आ हो जाता है, आ का आ ही रहता है और अन्य अन्तिम वर्णों में वही परिवर्तन होते हैं जो क्यच् (य) से पहले होते हैं। शब्द के अन्तिम स् को विकल्प से आ हो जाता है। अप्सरस् और ओजस् के स् को आ नित्य हो जाता है। कृष्ण इव आचरति—कृष्णायते ( कृष्ण के तुल्य आचरण करता है )। यशस्—यशायते, यशस्यते ( यशस्वी के तुल्य आचरण करता है )। विद्वस्—विद्वायते, विद्वस्यते ( विद्वान् के तुल्य आचरण करता है ), आदि। किन्तु ओजस्—ओजायते ( ओजस्वी के तुल्य आचरण करता है )। अप्सरस्—अप्सरायते ( अप्सरा के तुल्य आचरण करती है )।

(क) उपधा में क न हो तो स्त्रीलिंग शब्दों के अन्तिम स्त्री-प्रत्यय का लोप हो जाता है। कुमारी इव आचरति—कुमारायते ( वह लड़की के तुल्य व्यवहार करता है )। हरिणी इव आचरति—हरिणायते ( वह मृगी के तुल्य आचरण करती है )। गुर्वी इव आचरति—गुरूयते ( वह भारी औरत के तुल्य आचरण करती है )। अन्यत्र—पाचिका इव आचरति—पाचिकायते, इसका पाचकायते नहीं बनेगा।

(ख) सपत्नी के रूप होते हैं—सपत्नायते, सपत्नीयते, सपतीयते ( वह सौत के तुल्य व्यवहार करती है )। युवति का युवायते होता है, ( वह युवती के तुल्य व्यवहार करती है )।

**६५४**. भृश ( अधिक ), मन्द ( सुस्त ), पण्डित ( विद्वान् ), सुमनस् ( सहृदय ), उन्मनस् ( व्याकुल ) आदि शब्दों से 'जैसा पहले नहीं था वैसा होना' अर्थ में क्यङ (य) प्रत्यय होता है। शब्द के अन्तिम व्यंजन का लोप होता है। अभृशः भृशः भवति—भृशायते ( जो पहले अधिक नहीं था, अब अधिक हो रहा है )। उन्मनायते ( जो पहले उत्कंठित नहीं था, अब उत्कंठित होता है। ) इसी प्रकार सुमनायते आदि।

**६५५**. निम्नलिखित स्थानों पर कुछ विशेष शब्दों से विशिष्ट अर्थों में क्यङ (य) होता है।

(क) सत्र, कक्ष, कष्ट, कृच्छ्र और गहन शब्दों से 'पाप करने की इच्छा' अर्थ में क्यङ (य) प्रत्यय होता है। पापं चिकीर्षति—सत्रायते, कष्टायते आदि। कष्ट शब्द से उत्साह अर्थ में भी क्यङ (य) होता है। कष्टाय क्रमते—कष्टायते (पापं कर्तुम् उत्सहते इत्यर्थः, सि० कौ० )।

(ख) रोमन्थ शब्द से 'करना' अर्थ में। रोमन्थायते ( जुगाली करता है )।

अध्याय १३

# परस्मैपद और आत्मनेपद

**६६१.** पहले उल्लेख किया जा चुका है कि संस्कृत में दो पद होते हैं--परस्मैपद और आत्मनेपद। परस्मैपद का अभिप्राय है कि क्रिया का फल कर्ता के अतिरिक्त अन्य किसी को मिलता है। जैसे--पचति ( वह दूसरे के लिए पकाता है ), कारयति ( वह दूसरे के लिए किसी के द्वारा काम करवाता है ), आदि। आत्मनेपद का अभिप्राय है कि क्रिया का फल कर्तृगामी है अर्थात् कर्ता को मिलता है। जैसे--पचते ( वह अपने लिए पकाता है ), कारयते ( वह अपने लिए दूसरे से काम करवाता है ), आदि।[1]

(क) यदि वाक्य में ऐसा कोई पद है, जिससे यह प्रकट होता है कि क्रिया का फल कर्तृगामी है तो वहाँ पर विकल्प से आत्मनेपद होता है। जैसे--स्वं यज्ञं यजते यजति वा ( वह अपना यज्ञ करता है ), स्वं कटं कुरुते करोति वा ( वह अपनी चटाई बनाता है ), स्वं यज्ञं कारयति कारयते वा, आदि।

(ख) यदि किसी सकर्मक क्रिया का णिजन्त रूप स्व-कर्तृक रूप से प्रयुक्त होता है या सामान्य क्रिया का कर्म णिजन्त का कर्ता हो जाता है तो वहाँ पर आत्मनेपद होता है। यदि खेदपूर्वक स्मरण करना आदि अर्थ होगा तो आत्मनेपद नहीं होगा। भक्ता भवं पश्यन्ति ( भक्त भव को देखते हैं ), भवो भक्तान् दर्शयते (भव स्वयं भक्तों को अपना रूप दिखाता है। अन्यत्र--स्मरति वनगुल्मं कोकिलः, स्मरयति वनगुल्मः कोकिलम् ( उत्कण्ठापूर्वकस्मृतौ विषयो भवतीत्यर्थः, सि० कौ० )। देखो सूत्र १-३-६७ पर सि० कौ०।

---

१. इस अन्तर का वस्तुतः बहुत कम पालन हुआ है। संस्कृत के उद्भट लेखकों ने भी दोनों पदों का बिना किसी भेद के ही प्रयोग किया है। यह नहीं माना जा सकता है कि जिस धातु में दोनों पद होते हैं, उसमें यह अन्तर करना आवश्यक है। दशकुमारचरित और कादम्बरी में ऐसे अनेक उदाहरण हैं, जहाँ पर दोनों पदों का एक ही अर्थ में प्रयोग मिलता है।

(ग) यदि क्रिया का कर्ता कोई चेतन है तो उससे णिच् प्रत्यय होने पर कर्तृ-गामी फल होने पर भी परस्मैपद ही होता है। जैसे--कृष्णः शेते (कृष्ण सोता है), गोपी कृष्णं शाययति (गोपी कृष्ण को सुलाती है)। अन्यत्र--फलं पतति (फल गिरता है), वायुः फलं पातयति (वायु फल को गिराती है), आदि।

(घ) अद् को छोड़ कर अन्य खाने अर्थ की धातुओं और चलने अर्थ की धातुओं के णिजन्त रूप में कर्तृगामी फल होने पर भी परस्मैपद ही होता है। निगारयति, आशयति (खिलाता है), चालयति, कम्पयति (कँपाता है), आदि।

**अपवाद (ग) और (घ) के--**(ग) के अपवाद--दम् (दमन करना), आ + यम् (लाना), आ + यस् (प्रयत्न करना), परिमुह् (मूर्छित होना), रुच् (चमकना), वद् (कहना), वस् (रहना) और धे (पीना)। (घ) के अपवाद--पा (पीना), नृत् (नाचना)। इन धातुओं में सामान्य नियम लगते हैं। दमयति-दमयते, शमयति-ते, आदि।

**६६२.** कर्मव्यतिहार (जो कार्य करना उचित न हो उसको करना या कार्यों का अदल-बदल करना) अर्थ में धातु से आत्मनेपद होता है। ब्राह्मणः सस्यानि व्यतिलुनीते (ब्राह्मण खेती को काटता है, यह शूद्र का कार्य है उसका नहीं)। धर्मः व्यतिस्ते (कर्तव्य कर्म बदल जाते हैं, यदि शूद्र वैश्य के कार्य को करता है तो), आदि। संप्रहरन्ते राजानः (राजा लोग परस्पर प्रहार करते हैं)।

(क) कर्मव्यतिहार अर्थ में इन धातुओं से आत्मनेपद नहीं होता है--गति अर्थ वाली धातुएँ, हिंसा अर्थ वाली धातुएँ और हस् आदि धातुएँ। व्यतिगच्छन्ति, व्यतिघ्नन्ति, व्यतिहसन्ति, व्यतिजल्पन्ति।

**६६३.** इन धातुओं से णिच् प्रत्यय होने पर परस्मैपद होता है--बुध्, युध्, नश्, जन्, अधि + इ, प्रु, द्रु और स्रु। बोधयति पद्मम्, योधयति काष्ठानि, नाशयति दुःखम्, जनयति सुखम्, अध्यापयति वेदम्, प्रावयति (प्रापयतीत्यर्थः, सि० कौ०), द्रावयति (विलापयतीत्यर्थः, सि० कौ०), स्रावयति (स्यन्दयतीत्यर्थः, सि० कौ०)।

**६६४.** आगे अकारादिक्रम से धातुएँ दी जा रही हैं, जिनमें अपने मौलिक पद के स्थान पर कुछ विशेष अर्थों में उपसर्ग पहले लगने पर पद-परिवर्तन होता है।

**अस्**——उपसर्ग पहले लगने पर अस् धातु में दोनों पद होते हैं। बन्धं निरस्यति-ते।

**अधि + इ**——णिच् प्रत्यय होने पर परस्मै० होती है। अध्यापयति।

**ऊह्**——उपसर्ग पहले लगने पर दोनों पदों में रूप चलते हैं। पापम् अपोहति-ते (वह पापों को नष्ट करता है), तदपोहति (उसको हटाता है), समूहति-ते (वह संग्रह करता है)।

**सम् + ऋ**——आत्मनेपदी है। समारन्त ममाभीष्टाः (भट्टि० ८-१६) (मेरी सभी इच्छाएँ मुझे प्राप्त हो गई हैं अर्थात् सफल हो गई हैं)।

**सम् + ऋच्छ्**——सकर्मक परस्मै० है और अकर्मक आत्मने०। समृच्छति (वह एकत्र करता है), समृच्छते (संग्रह की गई है)।

**कृ**——बिना उपसर्ग के यह उभयपदी है। अनु और परा के बाद कृ परस्मै० है।[1] अनुकरोति भगवतो नारायणस्य (काद०), तां हनुमान् पराकुर्वन्० (भट्टि० ८-५०)। निम्नलिखित अर्थों में उपसर्गों के साथ यह आत्मनेपदी है[2]——(१) गन्धन (हिंसा करना या हानि पहुँचाना)। जैसे——उत्कुरुते (दूसरे को हानि पहुँचाने के लिए उसके विरुद्ध चुगली करता है), (२) अवक्षेपण (डराना, धमकाना)। श्येनो वर्तिकाम् उदाकुरुते (बाज चिड़िया को डराता है)। (३) सेवन (सेवा करना)। हरिम् उपकुरुते (हरि की सेवा करता है)। (४) साहसिक्य (बलात् काम करना)। जैसे——परदारान् प्रकुरुते (परस्त्री से बलात्कार करता है)। (५) प्रतियत्न (दूसरे के गुण को भी ग्रहण करना। सतो गुणान्तराधानम्, काशिका)। जैसे——एधः उदकस्य उपस्कुरुते (लकड़ी जल की गर्मी को ग्रहण करती है)। (६) प्रकथन (बाँचना)। जैसे——गाथाः प्रकुरुते (वेद की कथाओं को बाँचता है)। (७) उपयोग (काम में लगाना)। जैसे——शतं प्रकुरुते (१०० रुपए को धार्मिक कार्यों में लगाता है। धर्मार्थं शतं विनियुङ्क्ते इत्यर्थः) (देखो भट्टि० ८-१८)। अधि + कृ आत्मने० है, क्षमा करना और तिरस्कार करना अर्थ में।[3] शत्रुम् अधिकुरुते (शत्रु को क्षमा करता है या उसको तिरस्कृत करता है)। अन्यत्र——मनुष्यान् अधिकरोति शास्त्रम् (शास्त्र मनुष्यों

१. अनुपराभ्यां कृञः (१-३-७९)।
२. गन्धनावक्षेपणसेवनसाहसिक्यप्रतियत्नप्रकथनोपयोगेषु कृञः (१-३-३२)।
३. अधेः प्रसहने (१-३-३३)।

को अधिकार देता है )। वि+कृ उच्चारण या पढ़ना अर्थ में आत्मनेपदी है। जहाँ पर यह अकर्मक है, वहाँ पर भी आत्मनेपद होगा।[1] छात्रा विकुर्वते ( छात्र विकार को प्राप्त होते हैं ), स्वरान् विकुरुते गायकः ( गायक स्वरों का उच्चारण करता है )। अन्यत्र--चित्तं विकरोति कामः ( कामभाव चित्त को विकृत करता है )। विकुर्वे नगरे तस्य ( भट्टि० ८-२१ )। उप+कृ का उपकार करना अर्थ में दोनों पदों में प्रयोग होता है। नहि प्रदीपौ परस्परस्य उपकुरुतः। (शारीरभाष्य) (दो दीपक एक दूसरे का उपकार नहीं करते हैं ), सा लक्ष्मीरुपकुरुते यया परेषाम् ( लक्ष्मी वह है, जिसके द्वारा दूसरे का उपकार किया जाता है ) ( किराता० ७-२८ )।

मिथ्या पहले होने पर णिजन्त कृ का आत्मनेपद में प्रयोग होता है। पदं मिथ्या-कारयते ( पद के स्वर का अशुद्ध उच्चारण करता है )।

कृ ( बखेरना )--अप+कृ इन अर्थों में आत्मनेपदी है--हर्ष के साथ खोदना या फैलाना, पक्षी या पशुओं के द्वारा अपना आश्रय बनाना या जीविका-निर्वाह अर्थ में।[2] इन अर्थों में कृ धातु से पहले स् लग जाता है। अपस्किरते वृषो हृष्टः ( बैल प्रसन्नता के साथ भूमि को खोदता है )। इसी प्रकार अपस्किरते कुक्कुटो भक्ष्यार्थी, अपस्किरते श्वा आश्रयार्थी ( कुत्ता रहने के लिए गड्ढा खोदता है ) देखो--छायापस्किरमाणविष्किर० ( उत्तरराम० २-९ )।

जब धातु का अर्थ बखेरना या फैलाना ही होगा तो परस्मै० ही होगा और धातु से पहले स् नहीं लगेगा। कुसुमानि अपकिरति स्त्री ( स्त्री फूलों को फैलाती है )। अपकिरति गजो धूलिम्।

**क्रम्**[3]--कोई उपसर्ग पहले नहीं होगा तो इसके रूप दोनों पदों में चलते हैं। इन अर्थों में इसका आत्मने० में ही प्रयोग होता है--वृत्ति ( अबाध गति ),

---

१. **वेः शब्दकर्मणः ( १-३-३४ )। अकर्मकाच्च ( १-३-३५)।**
२. **अपाच्चतुष्पाच्छकुनिष्वालेखने ( ६-१-१४२)। अपात् किरतेः सुट् स्यात्। सुडपि हर्षादिष्वेव वक्तव्यः। ( सि० कौ० )।**
३. **वृत्तिसर्गतायनेषु क्रमः ( १-३-३८)। उपपराभ्याम् ( १-३-३९ )। आङ उद्गमने ( १-३-४० )। ज्योतिरुद्गमन इति वाच्यम् ( वा० )। वेः पाद-विहरणे ( १-३-४१)। प्रोपाभ्यां समर्थाभ्याम् ( १-३-४२ )। अनुपसर्गाद् वा ( १-३-४३)।**

सर्ग ( उत्साह ) और तायन ( वृद्धि या विस्तार )। ऋचि क्रमते बुद्धिः ( उसकी बुद्धि ऋग्वेद में अबाधगति से चलती है ), क्रममाणोऽरिसंसदि ( शत्रुओं की सभा में अबाधगति से चलता हुआ, भट्टि० ८-२२ ), अध्ययनाय क्रमते ( अध्ययन में अपना उत्साह दिखाता है ), न रञ्जनाय क्रमते जडानाम् ( विक्रमो० १-१६ ), क्रमन्तेऽस्मिन् शास्त्राणि ( इस व्यक्ति में शास्त्र विस्तार को प्राप्त होते हैं या इसने शास्त्रों पर पूरा अधिकार प्राप्त कर लिया है )। यदि उप या परा उपसर्ग पहले होंगे तो भी उपर्युक्त अर्थों में आत्मने० होगा। यदि अन्य उपसर्ग पहले होंगे तो परस्मै० होगा। उपक्रमते, पराक्रमते। तुलना करो—इत्युक्त्वा खे पराक्रंस्त ( उसने अपना पराक्रम दिखाया ), परीक्षितुमुपाक्रंस्त ( साहस किया ) राक्षसी तस्य विक्रमम् (भट्टि० ८.२२-२३)। अन्यत्र-संक्रामति (शास्त्रेषु बुद्धिः) आ। उपसर्ग पहले होने पर किसी दिव्य ज्योति के निकलने अर्थ में आत्मने० होता है। आक्रमते सूर्यः ( सूर्य निकलता है )। अन्यत्र आक्रामति धूमो हर्म्यतलात् ( महल के ऊपरी छज्जे से धूँआ निकल रहा है)। वि उपसर्ग पहले होने पर ठीक ढंग से पैर चलाने अर्थ में आत्मने० होता है। साधु विक्रमते वाजी ( घोड़ा ठीक ढंग से चलता है )। अन्यत्र—विक्रामति सन्धिः (जोड़ खुलता है)। प्र और उप सपसर्ग पहले होने पर प्रारम्भ अर्थ में आत्मने० होता है। प्रक्रमते, जैसे—वक्तुं मिथः प्राक्रमतैवमेनम् ( कुमार० ३-२ )। ( इस प्रकार उसने एकान्त में उससे यह कहना प्रारम्भ किया )। अन्यत्र—प्रक्रामति ( जाता है ), उपक्रामति ( पास आता है )।

**क्री**[1]—अव, परि और वि उपसर्ग पहले होने पर क्री को आत्मने० होता है। वि+क्री का अर्थ बेचना होता है। अवक्रीणीते, परिक्रीणीते। देखो भट्टि० (८-८)—कृतेनोपकृतं वायोः परिक्रीणानमुत्थितम्।

**क्रीड्**[2]—अनु, आ, परि और सम् उपसर्ग पहले होने पर क्रीड् आत्मने० होती है। अनुक्रीडते, आक्रीडते, परिक्रीडते, संक्रीडते। जब अनु कर्मप्रवचनीय होगा तो नहीं। माणवकमनुक्रीडति ( माणवक या बालक के साथ खेलता है )। सम्+क्रीड् शब्द करना अर्थ में परस्मै० है, संक्रीडति चक्रम् ( पहिया शब्द करता है )।

---

**१. परिव्यवेभ्यः क्रियः ( १-३-१८ )।**
**२. क्रीडोऽनुसंपरिभ्यश्च ( १-३-२१ )। अनोः कर्मप्रवचनीयान्न ( सि० कौ० )।**

**क्षिप्**[1]---अभि, प्रति और अति उपसर्ग पहले होने पर परस्मै० होती है। अभिक्षिपति ( ऊपर फेंकता है ), अतिक्षिपति ( बाहर फेंकता है ), प्रतिक्षिपति ( पीछे फेंकता है )।

**क्ष्णु**---सम् + क्ष्णु आत्मने० है। संक्ष्णुते शस्त्रम् ( अपने शस्त्र को तेज करता है ), उत्कण्ठां संक्ष्णुते ( चिन्ता को दूर करता है )।

**गम्**[2]---सम् + गम् युक्त होना, मिलना अर्थों में आत्मने० है। वाक्यं संगच्छते, सखीभिः संगच्छते, आदि। अन्यत्र---ग्रामं संगच्छति ( गाँव को जाता है )। धैर्य रखना या प्रतीक्षा करना अर्थ में गम् का णिजन्त रूप आत्मने० होता है। आगमयस्व तावत् ( पहले धैर्य धारण करो )।

**गृध्**---धोखा देना अर्थ में इसका णिजन्त रूप आत्मने० है। माणवकं गर्धयते ( वह बच्चे को धोखा देता है )। अन्यत्र---श्वानं गर्धयति ( वह कुत्ते को लालची बनाता है )।

**गॄ**[3]---सम् + गॄ प्रतिज्ञा करना या घोषित करना अर्थ में आत्मने० है। संगिरते शब्दम् ( वह अपने वचन की शपथ लेता है ), शतं संगिरते ( वह १०० रु० की प्रतिज्ञा करता है ), संगिरते स्वामिनो गुणान् ( अपने स्वामी के गुणों की घोषणा करता है )। अन्यत्र---संगिरति ग्रासम् ( ग्रास को निगलता है )। अव + गॄ ( तुदादि० ) आत्मने० है। अवगिरते शोणितं पिशाचः ( राक्षस खून को पीता है )।

**चर्**[4]---उद् + चर् सकर्मक होने पर आत्मने० है। धर्मम् उच्चरते ( धर्म का उल्लंघन करता है ), पानशौण्डाः पयःक्षीवा वृन्दैरुदचरन्त च ( भट्टि० ८-३१ )। अन्यत्र---बाष्पमुच्चरति ( भाप उठती है )। सम् और समुदा के साथ चर् आत्मने० है, यदि तृतीयान्त रथादि यानों के साथ हो। रथेन संचरते ( वह रथ में बैठ कर घूमता है )। देखो भट्टि० ८-३२। क्वचित् पथा संचरते

---

१. **अभिप्रत्यतिभ्यः क्षिपः** ( १-३-८० )।
२. **समो गम्यृच्छिभ्याम्** ( १-३-२९ )।
३. **अवाद् ग्रः** ( १-३-५१ )। **समः प्रतिज्ञाने** ( १-३-५२ )।
४. **उदश्चरः सकर्मकात्** ( १-३-५३ )। **समस्तृतीयायुक्तात्** ( १-३-५४ ) **दाणश्च सा चेच्चतुर्थ्यर्थे** ( १-३-५५ )।

सुराणाम् ( रघु० १३-१९, अब वह देवों के मार्ग मे विचरण करता है ) । रथेन समुदाचरते ।

**जन्**---णिजन्त जन् परस्मै० है। जनयति।

**जि**[1]---वि + जि जीतना अर्थ में और परा + जि हराना या असह्य होना अर्थ में आत्मने० है। विजयते, शत्रून् पराजयते, अध्ययनात् पराजयते (पढ़ाई से हार मानता है ), खं पराजयमानोऽसौ ( आकाश को पूरा करता हुआ ), आदि। तां पराजयमानां स प्रीतेः (हार मानती हुई उसको) (भट्टि० ८-९, ७१), आदि।

**ज्ञा**[2]---अकर्मक ज्ञा आत्मने० है। सर्पिषो जानीते ( सर्पिषा उपायेन प्रवर्तते, सि० कौ०, घी के द्वारा यज्ञ-कार्य के लिए प्रवृत्त होता है ) । अप + ज्ञा मना करना या मुकरना अर्थ में आत्मने० है। शतम् अपजानीते ( सौ० रु० को मुकरता है )। प्रति + ज्ञा स्वीकार करना या प्रतिज्ञा करना अर्थ में और सम् + ज्ञा आशा करना अर्थ में अत्मने० है। शतं प्रतिजानीते ( सौ रु० को स्वीकार करता है ), हर-चापारोपणेन कन्यादानं प्रतिजानीते ( शिव के धनुष को चढ़ाने की शर्त पर अपनी कन्या का विवाह कर देने की प्रतिज्ञा करता है ) । शतं संजानीते ( सौ रु० की आशा करता है ) । मातरं मातुर्वा संजानाति ( अपनी माता को याद करता है ) । जब ज्ञा का बिना उपसर्ग के प्रयोग होता है और क्रिया का फल कर्तृगामी होता है तो आत्मने० होता है। गां जानीते। यदि कोई उपसर्ग पहले होगा और सकर्मक के रूप में प्रयोग होगा तो परस्मै० होगा। स्वर्गलोकं न प्रजानाति मूर्खः। सन्नन्त ज्ञा आत्मने० होती है।

**तप्**[3]---उत् और वि के बाद तप् धातु अकर्मक होने पर आत्मने० होती है। उत्तपते या वितपते सूर्यः। सकर्मक होने पर यदि अपने शरीर का कोई अंग कर्म होगा तो यह आत्मने० होगी। उत्तपते या वितपते पाणिम् ( वह अपना हाथ गर्म करता है ) । अन्यत्र---उत्तपति सुवर्णं सुवर्णकारः ( सुनार सोने को तपाता है )। चैत्रो मैत्रस्य पाणिम् उत्तपति। तपस्या करने अर्थ में यह आत्मने० है और इसके रूप दिवादिगणी धातुओं के तुल्य चलेंगे।

---

१. **विपराभ्यां जेः (१-३-१९ )।**

२. **अपह्नवे ज्ञः (१-३-४४ )। अकर्मकाच्च (१-३-४५ )। संप्रतिभ्यामनाध्याने (१-३-४६ )।**

३. **उद्विभ्यां तपः (१-३-२७ )। स्वांगकर्मकाच्चेति वक्तव्यम् (वा० )।**

कुछ केमतानुसार अनु+तप् आत्मने० है। अनुतपते (पश्चात्ताप करता है)।

**दा**[1]—विना उपसर्ग के दा (जुहोत्यादि) धातु उभयपदी है। आ+दा धातु मुँह आदि खोलना अर्थ को छोड़ कर अन्य अर्थों में आत्मनेपदी है। धनम् आदत्ते (धन लेता है), विद्याम् आदत्ते (विद्या ग्रहण करता है), नादत्ते भवतां स्नेहेन या पल्लवम् (शाकु०) (जो प्रेम के कारण तुम्हारे पत्तों को नहीं तोड़ती है)। अन्यत्र—मुखं व्याददाति (अपना मुँह खोलता है)। विपादिकां व्याददाति वैद्यः (वैद्य पैर की बिवाई का मुँह खोलता है), नदी कूलं व्याददाति (नदी किनारे को तोड़ती है)। यदि दूसरे का मुख अर्थ होगा तो निषेध नहीं लगेगा। व्याददते पिपीलिकाः पतंगस्य मुखम् (चींटियाँ कीड़े के मुँह को खोलती हैं या नोचती हैं, महाभारत)।

**दा**—(देना, भ्वादि०) सम्+दा या सम्+प्र+दा आत्मने० है, यदि चतुर्थी के अर्थ में तृतीयान्त पद साथ में हो। दास्या संयच्छते या संप्रयच्छते (दासी को कुछ धनादि देता है)। अन्यत्र—दास्या धनं संप्रयच्छति विप्राय (दासी के द्वारा ब्राह्मण को धन देता है)।

**दृश्**—सम्+दृश् अकर्मक होने पर आत्मने० है। संपश्यसे (ठीक देखते हो या ठीक समझते हो)। सन्नन्त दृश् आत्मने० है। दिदृक्षते (देखना चाहता है)।

**द्रु**—णिजन्त द्रु परस्मै० है।

**नह्**—सम्+नह् तैयार होना अर्थ में आत्मने० है। युद्धाय संनह्यते (युद्ध के लिए तैयार होता है)। देखो—छेत्तुं वज्रमणीन् शिरीषकुसुमप्रान्तेन संनह्यते (भर्तृ०)।

**नाथ्**[2]—नाथ् धातु आशा करना, आशीर्वाद देना, शुभ कामना अर्थों में नित्य आत्मने० है। माँगना आदि अर्थों में यह परस्मै० है। सर्पिषो नाथते (सर्पिर्मे स्यादित्याशास्ते इत्यर्थः, सि० कौ०)। मोक्षाय नाथते मुनिः।

किराता० (१३-५९) 'नाथसे किमु पतिं न भूभृताम्' में आत्मने० का प्रयोग है। भट्टोजि दीक्षित का कथन है कि यहाँ पर नाधसे पाठ होना चाहिए,

---

**१. आङो दोऽनास्यविहरणे (१-३-२०)। आस्यग्रहणमविवक्षितम् (सि० कौ०)। परांगकर्मकान्न निषेधः (वा०)।**

**२. आशिषि नाथः (वा०)।**

नाथसे नहीं। मम्मट ने भी काव्यप्रकाश में 'दीन त्वामनुनाथते कुचयुगं पत्रावृतं मा कृथाः०' की आलोचना करते हुए कहा है कि यहाँ पर नाथते के स्थान पर नाथति पाठ होना चाहिए। नाथते प्रयोग अशुद्ध है।

**नी**[1]—उद्, उप, वि आदि उपसर्गों के वाद नी धातु निम्नलिखित अर्थों में आत्मनेपदी होती है:—

(१) संमानन ( संमान प्रदर्शन करना )—शास्त्रे नयते ( शास्त्र के सिद्धान्त शिष्यों को बताता है, इससे उनका संमान होता है ) ( तेन च शिष्यसंमानं फलितम्, सि० कौ० ), (२) उत्संजन ( उठाना )—दण्डम् उन्नयते ( उत्क्षिपतीत्यर्थः ), (३) आचार्यकरण ( उपनयन संस्कार करना )—माणवकम् उपनयते ( विधिना आत्मसमीपं प्रापयतीत्यर्थः। उपनयनपूर्वकेणाध्यापनन हि उपनेतरि आचार्यत्वं क्रियते, सि० कौ० ), (४) ज्ञान ( वस्तु-स्थिति का ठीक-ठीक निश्चय करना )—तत्त्वं नयते ( निश्चिनोतीत्यर्थः ), (५) भृति ( वेतन के आधार पर नियुक्त करना )—कर्मकारान् उपनयते ( वेतन के आधार पर श्रमिकों को नियुक्त करता है ), (६) विगणन ( ऋण या कर आदि चुकाना )—करं विनयते ( राज्ञे देयं भागं परिशोधयतीत्यर्थः ), (७) व्यय ( सत्कर्मों में धनादि लगाना )—शतं विनयते ( धर्मार्थं विनियुंक्ते इत्यर्थः, सि० कौ० )। वि + नि आत्मनेपदी है, यदि कर्ता के अन्दर रहने वाली शरीरावयव के अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु हो। जैसे—कोपं विनयते। अन्यत्र—गुरोः क्रोधं विनयति शिष्यः, गडुं विनयति ( हटाता है )।

**नु**[2]—आ + नु आत्मने० है। आनुते ( वह प्रशंसा करता है )।

**प्रच्छ्**—आ + प्रच्छ् बिदाई लेना अर्थ में आत्मने० है। आपृच्छस्व प्रियसखममुम् ( मेघ० १० ) ( अपने इस प्रिय मित्र से बिदाई लो )। सम् + प्रच्छ् अकर्मक होने पर आत्मने० है। संपृच्छते ( वह निश्चय करता है )।

---

१. **संमाननोत्संजनाचार्यकरणज्ञानभृतिविगणनव्ययेषु नियः (१-३-३६)। कर्तृस्थे चाशरीरे कर्मणि (१-३-३७)। नियः कर्तृस्थे कर्मणि यदात्मनेपदं प्राप्तं तच्छरीरावयवभिन्ने एव स्यात्। सूत्रे शरीरशब्देन तदवयवो लक्ष्यते। तेनेह न—गडुं विनयति। कथं तर्हि—विगणय्य नयन्ति पौरुषमिति। कर्तृगामित्वाविवक्षायां भविष्यति ( सि० कौ० )।**

२. **आङि नुप्रच्छ्योः (वा०)।**

**भुज्**[1]——रक्षा के अतिरिक्त अन्य अर्थों में आत्मने० है। ओदनं भुङ्क्ते ( भात खाता है )। बुभुजे पृथिवीपालः पृथिवीमेव केवलाम् ( पृथिवी के रक्षक राजा ने केवल पृथिवी का ही उपभोग किया )। वृद्धो जनो दुःखशतानि भुङ्क्ते ( वृद्ध व्यक्ति सैकड़ों दुःखों का अनुभव करता है )। महीं भुनक्ति ( पृथ्वी की रक्षा करता है )।

**मृष्**——परि + मृष् परस्मै० है। परिमृष्यति ( सहन करता है )। अन्यत्र——आमृष्यते ( वह छूता है )।

**यम्**[2]——आ + यम् आत्मने० है, अकर्मक होने पर या कर्ता के शरीर का कोई अवयव कर्म हो। आयच्छते तरुः ( वृक्ष फैलता है ), आयच्छते पाणिम् ( हाथ को फैलाता है )। अन्यत्र——आयच्छति कूपाद् रज्जुम् ( कूएँ से रस्सी को बाहर निकालता है )। सम्, उद् और आ के बाद यम् आत्मने० है, ग्रन्थ का अर्थ नहीं होना चाहिए। वस्त्रम् आयच्छते ( वस्त्र पहनता है ), भारम् उद्यच्छते ( भार उठाता है ), व्रीहीन् संयच्छते ( चावलों को एकत्र करता है )। अन्यत्र——उद्यच्छति वेदम् (वेदाध्ययन के लिए उद्यम करता है)। उप + यम् आत्मने० है, स्वीकार करना और कन्या से विवाह करना अर्थ में। दानम् उपयच्छते ( दान की वस्तु को स्वीकार करता है ), उपयच्छते कन्याम् ( कन्या से विवाह करता है )। लुङ् में इसके म् का विकल्प से लोप होता है। रामः सीताम् उपायत ( देखो उत्तरराम० ३-१२ ), उपायंस्त। अन्यत्र——परस्य भार्याम् उपयच्छति ( दूसरे की स्त्री को अपनी स्त्री बनाता है )।

**युज्**[3]——युज् धातु से पहले प्र या उप उपसर्ग हो अथवा अजादि या अजन्त कोई भी उपसर्ग पहले हो तो आत्मने० होता है, यदि यज्ञ-पात्र के लिए प्रयोग न हो तो। प्रयुङ्क्ते, उपयुङ्क्ते, प्रयुञ्जानः प्रिया वाचः ( भट्टि० ८-३९ )। अन्यत्र—यज्ञपात्राणि प्रयुनक्ति ( यज्ञ-पात्रों को ठीक लगाता है )। य इमाम् आश्रमधर्मे

---

१. **भुजोऽनवने ( १-३-६६ )। अदन इति वक्तव्येऽनवन इति पर्युदासग्रहणाद् अवनभिन्ने उपभोगादावर्थेऽपि आत्मनेपदविधानार्थमिदम्।**

२. **आङो यमहनः ( १-३-२८ )। समुदाङ्भ्यो यमोऽग्रन्थे ( १-३-७५ )। उपाद्यमः स्वीकरणे ( १-३-५६ )। विभाषोपयमने ( १-२-१६ )**

३. **प्रोपाभ्यां युजेरयज्ञपात्रेषु ( १-३-६४ )। स्वराद्यन्तोपसर्गादिति वक्तव्यम् (वा०)।**

नियुङ्क्ते ( जो इसको आश्रम के कार्यों में नियुक्त करता है, शाकु० ), अन्वयुङ्क्त गुरुमीश्वरः क्षितेः। (रघु० ११-६२, राजा ने अपने गुरु से पूछा ), पणबन्धमुखान् गुणानजः षडुपायुङ्क्त (शान्ति आदि ६ गुणों का अज ने उपयोग किया, रघु० ८-२१ ) ।

**युध्**––णिजन्त युध् परस्मै० है।

**रम्**[1]––वि, आ और परि उपसर्ग के बाद रम् परस्मै० हो जाती है। वत्सै-तस्माद् विरम ( पुत्र, इस कार्य को न करो, उत्तर० १-३३ ), रात्रिरेव व्यरंसीत् ( उत्तर० १-२७ )। आरमति, विरामोऽस्त्विति चारमेत् ( मनु० २-७९ ), परि-रमति, क्षणं पर्यरमत्तस्य दर्शनात् ( उसके दर्शन से वह कुछ समय के लिए आन-न्दित हुआ)। उप + रम् परस्मै० है। यज्ञदत्तम् उपरमति ( उपरमयतीत्यर्थः, सि० कौ० )। अकर्मक के रूप में प्रयोग होने पर दोनों पद होते हैं। उपरमति-ते ( क्रीडा करता है ) । देखो––उपारंसीच्च संपश्यन्; नात्र सीतेत्युपारंस्त० ( भट्टि० ८.५४-५५ ) ।

**ली**––णिजन्त ली धातु पूजा पाना, हराना और धोखा देना अर्थों में आत्मने० है। जटाभिर्लापयते ( जटाओं के कारण पूजा पाता है ), दण्डेन लापयते श्वा ( कुत्ता डंडे से पराजित होता है ), श्येनो वर्तिकाम् उल्लापयते ( वञ्चयती-त्यर्थः, धोखा देता है या हराता है ), मौर्ख्येण लापयते ब्राह्मणः ( ब्राह्मण मूर्खता के कारण धोखा खाता है ), बालम् उल्लापयते ( वञ्चयतीत्यर्थः ) ।

**वञ्च्**[2]––णिजन्त वञ्च् धातु धोखा देना अर्थ में आत्मने० है। माणवकं वञ्च-यते ( बच्चे को धोखा देता है )। अन्यत्र––अहिं वञ्चयति ( साँप से बचता है ) ।

**वद्**[3]––निम्नलिखित अर्थों में वद् धातु आत्मनेपदी है––(१) भासन ( चमकना या विशेष योग्यता प्राप्त करना )––शास्त्रे वदते ( शास्त्रों में विशेष योग्य है ), (२) उपसंभाषा ( सान्त्वना देना ) ( प्रायः उप उपसर्ग के साथ वद् )

---

१. **व्याङ्परिभ्यो रमः ( १-३-८३ )। उपाच्च ( १-३-८४ )। विभाषाऽकर्म-कात् ( १-३-८५ )।**

२. **गृधिवञ्च्योः प्रलम्भने ( १-३-६९ )।**

३. **भासनोपसंभाषाज्ञानयत्नविमत्युपमन्त्रणेषु वदः ( १-३-४७ )। व्यक्तवाचां समुच्चारणे ( १-३-४८ )। अनोरकर्मकात् ( १-३-४९ )। विभाषा विप्र-लापे ( १-३-५० )। अपाद् वदः ( १-३-७३ )।**

धातु इस अर्थ में आती है )---भृत्यानुपवदते ( सान्त्वयतीत्यर्थः ), (३) ज्ञान ( जानना )---शास्त्रे वदते ( शास्त्र को जानता है ), (४) यत्न ( प्रयत्न)— क्षेत्रे वदते ( खेत में परिश्रम करता है ), (५) विमति ( मतभेद, विवाद ) ( इस अर्थ में प्रायः वि उपसर्ग के साथ वद् धातु आती है )—विवदन्ते। परस्परं विवदमानानां शास्त्राणाम् ( परस्पर विरोधी विचारों वाले शास्त्रों का ),(६)उपमन्त्रण ( प्रार्थना करना, अनुकूल बनाना )---दातारम् उपवदते ( दानी का गुणगान करता है ), आदि। संप्र + वद् मनुष्यों आदि के स्पष्ट और सामूहिक उच्च स्वर से भाषण अर्थ में आत्मने० है। संप्रवदन्ते ब्राह्मणाः ( ब्राह्मण सामूहिक रूप से उच्च स्वर से बोल रहे हैं )। अन्यत्र---संप्रवदन्ति पक्षिणः, वरतनु संप्रवदन्ति कुक्कुटाः ( सुन्दरी, मुर्गे बोल रहे हैं )। अनु + वद् अकर्मक प्रयोग होने पर पूर्वोक्त अर्थों में आत्मने० है। अनुवदते कठः कलापस्य ( कठ ब्राह्मण कलाप ब्राह्मण के तुल्य उच्चारण करता है )। अन्यत्र---उक्तम् अनुवदति ( कहे हुए का अनुवाद करता है )। अनुवदति वीणा ( वीणा स्वरों का अव्यक्त उच्चारण करती है )। वि + प्र + वद् मतभेद या विरोध अर्थ में विकल्प से आत्मने० है। विप्रवदन्ति-न्ते वैद्याः ( वैद्यों में मतभेद है )। अप + वद् तिरस्कार या निषेध अर्थ में आत्मने० है, क्रिया का फल कर्तृगामी हो तो। अपवदते धनकामो अन्यायम् ( धन का इच्छुक अन्यायपूर्वक दूसरों का तिरस्कार करता है )। इसी प्रकार न्यायम् अपवदते ( न्याय का विरोध करता है )। अन्यत्र---अपवदति। ( तिरस्कार करता है, यहाँ पर क्रिया का फल कर्तृगामी नहीं है )। नार्तोऽप्यपवदेद् विप्रान् ( मनु० ४-२३६ )। जहाँ पर क्रिया का फल कर्तृगामी होता है, वहाँ पर आत्मने० विकल्प से होता है। स्वपुत्रम् अपवदति-ते वा ( सूत्र १-३-७७ पर सि० कौ० )। उप + वद् सकर्मक होने पर उपदेश देना और चोरी से बोलना अर्थ में आत्मने० है। शिष्यम् उपवदते ( शिष्य को उपदेश देता है ), परदारान् उपवदते (दूसरे की स्त्री से चोरी से बात करता है )।

वह्---उभयपदी है। प्र + वह् परस्मै० ही है। प्रवहति।

विद्[1]---( २, जानना )। सम् + विद् जानना या समझना अर्थ में अकर्मक प्रयोग होने पर आत्मने० है। इसको प्र० पु० बहु० में विकल्प से द् के बाद र् लग जाता है। संविदते-संविद्रते ( वे अच्छी तरह से जानते हैं )। के न संविद्रते वायोर्मैनाकाद्रिर्यथा सखा ( भट्टि० ८-१७, कौन नहीं जानते हैं कि मैनाक पर्वत वायु

१. विदिप्रच्छिस्वरतीनामुपसंख्यानम् (वा०)। वेत्तेर्विभाषा (७-१-७)।

का मित्र है ? ) । अन्यत्र—संवित्तः सहयुध्वानौ तच्छक्ति खरदूषणौ ( भट्टि० ५-३७ ) । यहाँ पर सकर्मक प्रयोग है। सम् + विद् पहचनना अर्थ में आत्मने० है । संवित्ते ।

**विश्**[1]—नि + विश् आत्मने० है। निविशते। किष्किन्धाद्रिं न्यविशत (भट्टि० ६-१४३ )। अभि + नि + विश् भी आत्मने० है। अभिनिविशते सन्मार्गम् (सन्मार्ग को अपनाता है, सि० कौ० ) । देखो भट्टि० ८-८० ।

**शप्**[2]—क्रिया का फल कर्तृगामी न हो तो ताना देना अर्थ में यह आत्मने० है । कृष्णाय शपते ।

**शिक्ष्**[3]—जिज्ञासा या जानने की इच्छा अर्थ में यह आत्मने० है। धनुषि शिक्षते ( धनुर्विद्या सीखना चाहता है ) ।

**श्रु**[4]—सम् + श्रु अकर्मक प्रयोग होने पर आत्मने० है। संशृणुते ( ठीक सुनता है ) । संशृणुष्व कपे ( हे कपि, ध्यान से सुनो, भट्टि० ७-१६ ) । तु० करो—हितान्न यः संशृणुते स किं प्रभुः ( किराता० १-५ ) । अन्यत्र—शब्दं संशृणोति ( वह शब्द सुनता है ) । सन्नन्त श्रु धातु आत्मने० है। यदि आ या प्रति उपसर्ग पहले होंगे तो परस्मै० होगी। शुश्रूषते। किन्तु आशुश्रूषति, प्रतिशुश्रूषति ।

**स्था**[5]—सम्, अव, प्र और वि उपसर्ग पहले होने पर स्था आत्मने० होती है ) संतिष्ठते। मृदौ परिभवत्रासान्न संतिष्ठते ( मुद्रा० १-३६ ) ( परिभव के भय से सरल व्यक्ति का कहना नहीं मानता है ) । देखो मृच्छ० १-३६ । स्थिर रहना अर्थ में परस्मै० ही होता है । क्षणं न संतिष्ठति जीवलोकः क्षयोदयाभ्यां परिवर्तमानः ( हरिवंश ) । क्षणमप्यवतिष्ठते श्वसन् यदि जन्तुः० ( यदि कोई जीव क्षण भर भी साँस लेता हुआ जीवित रहता है ), अनीत्वा पंकतां धूलिमुदकं नावतिष्ठते ( शिशु० २-३४ ) । प्रतिष्ठते ( देखो रघु० ४-६, कुमार० ३-२२) ।

---

१. **नेर्विशः (१-३-१७) ।** २. **शप उपालम्भे (वा०) ।**
३. **शिक्षेर्जिज्ञासायाम् (वा०) ।** ४. **अर्तिश्रुदृशिभ्यश्चेति वक्तव्यम् (वा०) ।**
५. **समवप्रविभ्यः स्थः (१-३-२२ ) । आङः प्रतिज्ञायामुपसंख्यानम् (वा०) । प्रकाशनस्थेयाख्ययोश्च (१-३-२३) । उदोऽनूर्ध्वकर्मणि (१-३-२४) । ईहायामेव (वा०) । उपान्मन्त्रकरणे (१-३-२५ ) । उपाद् देवपूजासंगतिकरणमित्रकरणपथिष्विति वाच्यम् (वा० ) । वा लिप्सायाम् (वा०) । अकर्मकाच्च (१-३-२६ ) ।**

वितिष्ठते । पदैर्भुवं व्याप्य वितिष्ठमानम् ( शिशु० ४–४ )। आ+स्था किसी सिद्धान्त या निश्चय की स्थापना में आत्मने० है। शब्दं नित्यम् आतिष्ठते ( शब्द को नित्य मानता है ) । जलं विषं वा तव कारणाद् आस्थास्ये ( महाभाष्य ) ( तुम्हारे लिए मैं जल या विष भी पी सकता हूँ ) । जब आ+स्था का सकर्मक के तुल्य प्रयोग होगा और कार्य करना अर्थ होगा तो परस्मै० होगा। विधिमातिष्ठति ( विधि या व्रत का अनुष्ठान करता है ) । अपने भाव को प्रकट करना और कहना मानना अर्थ में स्था आत्मने० है। गोपी कृष्णाय तिष्ठते ( आशयं प्रकाशयति इत्यर्थः ), संशय्य कर्णादिषु तिष्ठते यः ( किराता० ३-१४, सन्देह होने पर वह कर्ण आदि की संमति लेता है और उनका कहना मानता है) । उद्+स्था आत्मने० है, उठना और अधिकार के रूप में पाना अर्थ हो तो नहीं। मुक्तावुत्तिष्ठते (मुक्ति के लिए प्रयत्नशील है)(देखो किराता० ११-१३ और शिशु० १४-१७ )। अन्यत्र—पीठादुत्तिष्ठति, ग्रामाच्छतमुत्तिष्ठति ( गाँव से सौ रु० लगान आदि के रूप मे प्राप्त होता है ) । उप+स्था इन अर्थों में आत्मने० है—(१) मन्त्रपाठ-सहित देवपूजा अर्थ में—आग्नेय्याग्नीध्रमुपतिष्ठते ( वैदिक मन्त्रों के द्वारा आग्नीध्र अग्नि की पूजा करता है ), ये सूर्यमुपतिष्ठन्ते मन्त्राः ( भट्टि० ८-१३ )। अन्यत्र—भर्तारम् उपतिष्ठति यौवनेन ( यौवन के कारण पति के पास जाती है ), पतिमुपतिष्ठति नारी ( वोप० ) ( देखो भट्टि० ५-६८ ) । (२) देवपूजा अर्थ में—आदित्यमुपतिष्ठते । भट्टोजि दीक्षित का कथन है कि राजा को देवों का अंश मानने के कारण उसके लिए भी आत्मने० हो सकता है। अतः 'स्तुत्यं स्तुतिभिरर्थ्याभिरुपतस्थे सरस्वती' ( रघु० ६-६ ) में आत्मने० है। (३) संगम या मिलना अर्थ में—गंगा यमुनामुपतिष्ठते । (४) मित्रता करना अर्थ में—रथिकानुपतिष्ठते ( मित्रीकरोतीत्यर्थः, सि० कौ० ) । (५) मार्ग जाता है अर्थ में—पन्थाः स्रुघ्नम् उपतिष्ठते ( रास्ता स्रुघ्न की ओर जाता है ) । धनादि प्राप्त करने की इच्छा अर्थ होने पर उप+स्था विकल्प से आत्मने० है। भिक्षुकः प्रभुमुपतिष्ठतिते ( भिक्षुक धनादि की आशा से स्वामी के पास जाता है ) । अकर्मक के रूप में प्रयोग होने पर उप+स्था आत्मने० है। भोजनकाले उपतिष्ठते (भोजन के समय उपस्थित होता है ) ।

**स्मृ**—सन्नन्त स्मृ आत्मने० है । सुस्मूर्षते ।

**स्रु**—णिजन्त स्रु परस्मै० है। स्रावयति ।

स्वृ--सम् और आ उपसर्ग पहले होने पर आत्मने० है। संस्वरते ( डराने के लिए गरजता है ), द्रुतं संस्वरिषीष्ठास्त्वं० ( भट्टि० ९-२८ )। आस्वरते ( जोर से बोलता है। )।

हन्[1]--आ+हन् अकर्मक प्रयोग में या कर्ता के शरीर का अवयव कर्म होने पर आत्मने० है। आहते ( मारता है )। स्वशिर आहते ( अपना शिर पीटता है )। अन्यत्र--परस्य शिर आहन्ति ( सि० कौ० )।

हृ[2]--अनु+हृ प्राकृतिक स्वभाव को अपनाने या प्राप्त करने अर्थ में आत्मने० है। पैतृकमश्वा अनुहरन्ते ( घोड़े सदा अपने पिता की चाल को अपनाते हैं )। इसी प्रकार मातरं गावः अनुहरन्ते। अनुकरण के द्वारा कोई गुण सीखने अर्थ में यह परस्मै० है। पितरम् अनुहरति ( पिता का अनुकरण करता है )।

ह्वे[3]--उप, नि, वि और सम् उपसर्ग पहले होने पर तथा अकर्मक के रूप में प्रयोग होने पर ह्वे आत्मने० है। उपह्वयते, निह्वयते आदि। आ+ह्वे युद्धार्थ आह्वान अर्थ में आत्मने० है। कृष्णश्चाणूरमाह्वयते ( कृष्ण चाणूर को युद्धार्थ पुकारते हैं )। आह्वत चेदिराण्मुरारिम्० ( शिशु० २१-१ )। अन्यत्र--पुत्र-माह्वयति।

इस अध्याय में जो कुछ दिया गया है, उसके सारांश के रूप में निम्नलिखित कारिकाएँ आख्यातचन्द्रिका से उद्धृत की जा रही हैं। इनमें यथास्थान कुछ परि-वर्तनादि भी किया गया है। इससे अध्याय का सारांश स्मरण करने में छात्रों को सुविधा होगी।

## आत्मनेपद-परस्मैपद विवेकवर्गः

भावे कर्मणि सर्वस्माद् धातोः स्यादात्मनेपदम्।
ङिद्भ्यस्तथाऽनुदात्तेभ्यो भूयते प्यायते तु दिक् ॥१॥
क्रियाव्यतिहृतौ तद्वद् व्यतिस्ते व्यतिषिञ्जते।
शब्दार्थहस्प्रकाराहृगर्तिहिंसार्थकान्न तत् ॥२॥

---

१. आङो यमहनः (१-३-२८)। कथं तर्हि आजघ्ने विषमविलोचनस्य वक्षः इति भारविः। अहध्वं मा रघूत्तमम् इति भट्टिश्च। प्रमाद एवायमिति भाग-वृत्तिः। प्राप्येत्यध्याहारो वा (सि० कौ०)।
२. हरतेर्गतताच्छील्ये (वा०)।
३. निसमुपविभ्यो ह्वः (१-३-३०)। स्पर्धायामाङः (१-३-३१)।

व्यतिभ्यां जल्पति हसत्येवं हन्तीत्यमूर्दिशः ।
नात्र संप्रवदन्ते संप्रहरन्ते निषेधनम् ॥३॥
द्विरुक्तान्यतरेतरोपपदान्नात्मनेपदम् ।
अन्योन्यस्य व्यतिलुनन्त्येषा दिङ निपराद् विशेः ॥४॥
परिव्यवेभ्यः क्रीणातेर्जयतेर्विपरापरात् ।
आङो दोऽङ्गविकासस्वास्यप्रसारणयोर्न हि ॥५॥
गमेः क्षमायां णेराङि नुपृच्छयोः क्रीडतेरनोः ।
पर्याङभ्यां च समोऽकूजे जिज्ञासायां शकेः सनः ॥६॥
अप किरतेर्हरतेर्गतताच्छील्य आशिषि ।
नाथेः शपेस्तु शपथे स्थो निर्णीतः प्रकाशने ॥७॥
प्रतिज्ञायां चावसंविप्रादुदोऽनूर्ध्वचेष्टने ।
देवार्चासंगकरणमैत्रीषु पथि-कर्तृके ॥८॥
धात्वर्थे मन्त्रकरणेऽकर्मके चोपपूर्वकात् ।
वा लिप्सायां समः पृच्छिगमृच्छिस्वृश्रुवेत्तितः ॥९॥
दृशोर्तेश्चाकर्मकेभ्य आङपूर्वाभ्यां यमेर्हनः ।
उद्विभ्यां तपतेः स्वांगकर्मकेभ्योऽप्यथास्यतेः ॥१०॥
ऊहेर्वा सोपसर्गाभ्यां ह्वः संनिव्युपपूर्वकात् ।
आङस्तु स्पर्धतेः सूचनावक्षेपणसेवने ॥११॥
प्रतियत्नप्रकथनोपयोगे साहसे कृञः ।
अधेः, प्रसहने वेस्तु शब्दकर्मण्यकर्मकात् ॥१२॥
पूजाचार्यकृतिज्ञानोत्सञ्जने च भृतौ व्यये ।
नियो विगणने कर्तृस्थे तु चामूर्तकर्मणि ॥१३॥
वृत्त्युत्साहस्फीततासु क्रमेस्तद्वत् परोपयोः ।
ज्योतिरुद्गमने त्वाङो वेः पादविहृतार्थकात् ॥१४॥
आरम्भणेऽर्थे प्रोपाभ्यां विभाषाऽनुपसर्गकात् ।
अपह्नवेऽकर्मकाच्च ज्ञोऽनाध्याने समः प्रतेः ॥१५॥
यत्नोपसान्त्वनज्ञानभासनेषूपमन्त्रणे ।
विपत्तौ चापि वदतेः समनुभ्यां त्वकर्मकात् ॥१६॥
व्यक्तवाचा सहोक्तौ च विप्रलापे विभाषया ।

ग्रोऽवात् समः प्रतिज्ञाने चरेरुदि सकर्मकात् ॥१७॥
समस्तृतीयायुक्तात् स्वीकरणे तूपयच्छतेः ।
तृतीया चेच्चतुर्थ्यर्थे दाणः शिति शदेर्मृङः ॥१८॥
लिङ्लुङोश्च कृञः प्राग्वदामो यस्तु प्रयुज्यते ।
सनः श्रुस्मृदृशिज्ञाभ्यो नानोर्ज्ञो नाङ प्रतेः श्रुवः ॥१९॥
अयज्ञपात्रेषु युजेरजाद्यन्तोपसर्गतः ।
समः क्ष्णौतेरनवने भुनक्तेरथ णेरणौ ॥२०॥
यत्कर्म णौ स कर्ता चेद् भवेदाध्यानवर्जिते ।
यथा रोहयते हस्ती स्वयं दर्शयते नृपः ॥२१॥
भीस्म्योः प्रयोजकाद् भीतिस्मययोर्वञ्चतेर्गृधेः ।
प्रलम्भने लियः पूजान्यक्लृत्योर्वञ्चनेऽपि च ॥२२॥
मिथ्याशब्दोपपदतः पौनःपुन्ये कृञो णिचः ।
फले च कर्त्रभिप्राये स्वरितेतो ञितो णिचः ॥२३॥
पचते कुरुते ब्रूते घटं कारयते तथा ।
अपाद् वदः समाङुद्भ्यो यमेरग्रन्थगोचरे ॥२४॥
ज्ञश्चोपसर्गरहिताच्छब्दान्तरगतौ तु वा ।

इति आत्मनेपदाधिकारः ।

---

## अथ परस्मैपदाधिकारः

परस्मैपदमन्यस्मात् कृञोऽप्यनुपरापरात् ॥२५॥
क्षिपोऽभिप्रत्यतिभ्यः प्राद् वहेर्मृषिवहोः परेः ।
व्याङ्परिभ्यो रम उपाद् विभाषा चेदकर्मकः ॥२६॥
आहारचलनार्थाण्णेरण्यन्ते यद्यकर्मकः ।
चित्तवत्कर्तृको यद्वत् तोषयत्येष पार्थिवः ॥२७॥
प्रद्रुस्नुजन्युधबुधेङ्नशिभ्यश्च णिचोऽथ न ।
दम्यायमायसपरिमुहो न रुचिवद्वसः ॥२८॥
नृतिधेट्पिबतिभ्यश्च क्यषन्ताच्च विभाषया ।
वा द्युतादेर्लुङि वृद्भ्यः स्यसनोर्लृटि कल्पतेः ॥२९॥
परस्मैपदमन्यस्मात् तथा शिष्टप्रयोगतः ॥

## अध्याय १४

# कृदन्त प्रकरण (कृत्-प्रत्यय)

( Verbal Derivatives or Primary Nominal Bases )

**६६५.** कृत् प्रत्यय ( देखो नि० ३३७ ) धातुओं से या धातुनिर्मित अंग से होते हैं। इनसे बने हुए शब्द संज्ञा, विशेषण या अव्यय होते हैं। जैसे—कृ—कार, कर्तृ, करण, कुर्वत्, करिष्यत्, चकृवस्, कृत्वा, कर्तुम्, आदि। कृत् प्रत्ययों से बने हुए शब्दों को कृदन्त ( Primary Nominal Bases ) कहते हैं। इनसे भिन्न तद्धित प्रत्ययों से बने हुए रूपों को तद्धित-प्रत्ययान्त ( Secondary Derivatives ) कहते हैं।

**६६६.** कृत् प्रत्ययों का एक और भेद है। इसको संस्कृत के वैयाकरणों ने उणादि नाम दिया है। कृ वा पा आदि धातुओं से उण् (उ) प्रत्यय होकर कारु, वायु आदि रूप बनते हैं। इस उण् प्रत्यय के आधार पर यह उणादि नाम पड़ा है। इस गण का पहला प्रत्यय उण् है। उण् में उ प्रत्यय है, ण् इत् संज्ञक होकर लुप्त हो जाता है। अन्य कृत् प्रत्ययों के तुल्य उणादि-प्रत्यय भी धातुओं से होते हैं और इनसे बने हुए रूप कृदन्त माने जाते हैं। इनको पृथक् करके इसलिए रक्खा गया है कि इनसे बने हुए शब्द गिने चुने हैं। साथ ही इन प्रत्ययों से बने हुए संज्ञा-शब्द या तो अनियमित रूप से बनते हैं या जिन धातुओं से वे संज्ञा शब्द बनाए गए हैं, उन धातुओं के अर्थों में और संज्ञा शब्दों के अर्थों में वह स्पष्ट धात्वर्थ का नियम दिखाई नहीं पड़ता है, जो कि अन्य कृदन्त संज्ञा-शब्दों में दिखाई देता है। जैसे—अश्नुते अध्वानं व्याप्नोतीति वा अश्वः ( घोड़ा )। अश्व अश् ( व्याप्त होना ) धातु से बना है, अथवा अध्वन् ( मार्ग ) शब्द और वि+आप् धातु को मिला कर बना है। कृ धातु से कारु ( शिल्पी ) बना है, इत्यादि।

## भाग १

## शतृ आदि-कृत् प्रत्यय ( अव्यय और अव्ययभिन्न )
## ( Participles Declinable and Indeclinable )
### १. शतृ आदि प्रत्यय ( अव्ययभिन्न )
### (क) वर्तमान अर्थ वाले कृत् प्रत्यय
### ( Participles of the Present Tense )

**६६७.** वर्तमानार्थक शतृ-प्रत्ययान्त रूप बनाने का प्रकार यह है कि धातु ( मूल धातु या प्रत्यययुक्त ) का लट् लकार प्र०पु० वहुवचन में तिङ से पहले जो स्वरूप रहता है, वह शतृ ( अत् ) प्रत्यय करने पर भी होगा। धातु के उस स्वरूप के साथ अत् जुड़ जाएगा। यह परस्मैपदी धातुओं से ही होता है। यदि अंग के अन्त में अ है तो उसका लोप हो जाएगा। जैसे--

भू ( १ प० )-भव् + अन्ति लट् प्र० ३ भव् + अत् = भवत् (शतृ) (होता हुआ)
स्था ( १ प० )-तिष्ठ् + अन्ति " तिष्ठ् + अत् = तिष्ठत् (खड़ा होता हुआ)
द्विष् ( २ प० )-द्विष् + अन्ति " द्विष् + अत् = द्विषत् ( द्वेष करता हुआ )

इसी प्रकार इनके ये रूप होते हैं :--

अद् ( २ प० ) अदत् (खाता हुआ) रुध् ( ७ प० ) रुन्धत् (रोकता हुआ )
या ( २ प० ) यात् (जाता हुआ) कृ ( ८ प० ) कुर्वत् (करता हुआ)
हु ( ३ प० ) जुह्वत् (यज्ञ करता हुआ) तन् ( ८ प० ) तन्वत् (फैलाता हुआ)
दिव् ( ४ प० ) दीव्यत् (जुआ खेलता हुआ) क्री ( ९ प० ) क्रीणत् (खरीदता हुआ)
सु ( ५ प० ) सुन्वत् (रस निकालता हुआ) मुष् ( ९ प० ) मुष्णत् (चुराता हुआ )
तुद् ( ६ प० ) तुदत् (दुःख देता हुआ) चुर् ( १० प० ) चोरयत् (चुराता हुआ)

बुध् + णिच्--बोधय्--बोधयत् ( वताता हुआ )
बुध् + सन्--बुबोधिष्-बुबोधिषत् ( जानने की इच्छा करता हुआ )
दा + सन्--दित्स्--दित्सत् ( देना चाहता हुआ )
क्षिप् + यङलुक्--चेक्षिप्--चेक्षिपत् ( वार वार फेंकता] हुआ )
इत्यादि ।

(क) विद् के बाद शतृ ( अत् ) को विकल्प से वस् होता है। विद्वस् या विदत् ( जानता हुआ ) ।

(ख) द्विष् और सु ( यज्ञ में सोमरस निकालना ) धातु से शतृ ( अत् )

प्रत्यय करने पर कर्ता अर्थ होता है। जैसे——द्विषत् ( पुं०, शत्रु ), सर्वे यज्ञे सुन्वन्तः ( यज्ञ में सभी सोमरस निकालने वाले हैं ) ।

(ग) अर्ह् से अत् प्रत्यय होने पर पूज्य अर्थ होता है। अर्हत् ( पूज्य, पूजा के योग्य ) ।

(घ) इ ( २ पर० ) और णिजन्त धृ ( धारि ) से 'सरलता से कार्य होना' अर्थ में अत् प्रत्यय होता है। अधीयत् ( सरलता से पढ़ता है ), धारयत् ( सरलता से धारण करता है ) । अन्यत्र——कृच्छ्रेण अधीते, कृच्छ्रेण धारयति।

**६६८.** अत्-प्रत्ययान्त के रूप चलाने के लिए नियम ११६ देखें । वहीं पर इसका वर्णन है।

**६६९.** आत्मनेपदी धातुओं से लट् के स्थान पर शानच् ( आन ) होता है। लट् लकार प्र० पु० बहु० में अते या अन्ते से पूर्व जो धातु रूप रहता है, वही आन से भी पूर्व रहेगा। इन स्थानों पर आन का मान हो जाता है——भ्वादि० (१), दिवादि० (४), तुदादि० (६) और चुरादि० (१०) की धातुओं के अ के बाद तथा अन्य सभी प्रत्ययान्त धातुएँ जिनके अंग के अन्त में अ शेष रहता है। जैसे——एध् ( १ आ० ) एधमान ( बढ़ता हुआ ), वन्द् ( १ आ० ) वन्दमान ( वन्दना करता हुआ ), शी ( २ आ० ) शयान ( सोता हुआ ), द्विष् ( २ आ० ) द्विषाण, आ + हन् ( २ आ० ) आघ्नान ( हिंसा करता हुआ ), धा ( ३ आ० ) दधान ( रखता हुआ ), हु ( ३ आ० ) जुह्वान, दिव् (४) दीव्यमान ( जूआ खेलता हुआ ), सु (५ आ० ) सुन्वान ( रस निकालता हुआ ), तुद् (६ आ० ) तुदमान ( दुःख देता हुआ ), रुध् (७ आ० ) रुन्धान ( रोकता हुआ ), कृ ( ८ आ० ) कुर्वाण ( करता हुआ ), तन् ( ८ आ० ) तन्वान, ( फैलाता हुआ ), क्री ( ९ आ० ) क्रीणान ( खरीदता हुआ ), चुर् ( १० आ० ) चोरयमाण ( चुराता हुआ ), आदि । बुध् + णिच्——बोधय–बोधयमान ( बताता हुआ), बुध् + सन्–बुबोधिष——बुबोधिषमाण (जानने की इच्छा करता हुआ), इत्यादि।

**६७०.** (क) आस् ( २ आ० बैठना ) के बाद आन को ईन हो जाता है। अस्——आसीन ।

(ख) पू और यज् धातुओं से आन प्रत्यय होकर संज्ञा शब्द बनता है। जैसे——

पवमानः ( पवित्र करने वाला, अतः वायु ) । देखो—रघु० ८-९ । एक यज्ञिय अग्नि । यजमानः ( यज्ञ करने वाला ) ।

**६७१**. स्वभाव, आयु-बोधक भाव और सामर्थ्य अर्थ में किसी भी धातु से चानश् ( आन ) प्रत्यय हो सकता है।[1] जैसे—भोगं भुञ्जानः ( भोगों का भोग करने वाला ), कवचं बिभ्राणः ( कवच धारण करने के योग्य अर्थात् युवक या बड़ी आयु का व्यक्ति ), शत्रुं निघ्नानः ( शत्रु को नष्ट करने की सामर्थ्य वाला), आदि ।

**६७२**. भाववाच्य या कर्मवाच्य प्रयोगों में लट् लकार में य प्रत्ययान्त अंग से मान लगेगा । जैसे—बुध्यमान (जाना जाता हुआ ), अद्यमान ( खाया जाता हुआ ), दीयमान ( दिया जाता हुआ ), चीयमान ( संचय किया जाता हुआ ), क्रियमाण ( किया जाता हुआ ), कॄ—कीर्यमाण ( फैलाया जाता हुआ ), चोर्यमाण ( चुराया जाता हुआ ) । बुध् + णिच्—बोधय—बोध्यमान (बताया जाता हुआ ), बुध् + सन्=बुबोधिष—बुबोधिष्यमाण ( जानने की इच्छा किया जाता हुआ ), आदि ।

**६७३**. नियम ६६९ के अनुसार बने हुए शब्दों के रूप पुं० में रामवत्, स्त्री० में रमावत् और नपुं० में फलवत् चलते हैं ।

**(ख) लिट् के स्थानीय प्रत्यय** (Participles of the Perfect)

**६७४**. लिट् लकार के स्थान पर होने वाले प्रत्यय तथा क्त (त), क्तवतु ( तवत् ) प्रत्यय ङित् ( निर्बल ) हैं, अतः इनसे पूर्व धातु के स्वर को गुण नहीं होता है। उपधा के अनुनासिक ( न्, म्, ञ् आदि ) का प्रायः लोप हो जाता है। ( देखो नि० ५८४ ) ।

**६७५**. लिट् लकार के स्थान पर परस्मै० में वस् और आत्मने० में आन लगता है। इनसे पूर्व धातु का रूप प्रायः वह रहता है जो लिट् प्र० पु० बहु० में प्रत्यय से पूर्व रहता है। यदि धातु का रूप एकाच् है अथवा धातु आकारान्त है तो वस् से पहले इ और लगेगा। गम्, हन्, दृश्, विश् और विद् ( ६ प० ) के बाद वस् से पूर्व इ विकल्प से लगता है। जन्, खन्, गम् और हन् धातुओं में जहाँ पर वस् से पूर्व इ नहीं लगता है, वहाँ पर लिट् म० पु० एक० में तिङ प्रत्यय से पहले इनका जो रूप रहता है, उससे वस् लगेगा। जैसे :—

---

१. **ताच्छील्यवयोवचनशक्तिषु चानश्** (३-२-१२९ ) ।

### परस्मैपद

| धातु | | लिट् का अंग (प्र० ३) | वस् प्रत्ययान्त रूप | |
|---|---|---|---|---|
| इ | (जाना) | ईय् | ईयिवस् | ( गया हुआ ) |
| ऋ | ( जाना ) | आर् | आरिवस् | ( ,, ,, ) |
| नी | ( ले जाना ) | निनी | निनीवस् | ( ले जाया हुआ ) |
| पच् | (पकाना ) | पेच् | पेचिवस् | ( पकाया हुआ ) |
| वच् | (कहना ) | ऊच् | ऊचिवस् | ( कहा हुआ ) |
| यज् | (यज्ञ करना) | ईज् | ईजिवस् | ( यज्ञ किया हुआ ) |
| भञ्ज् | (तोड़ना) | बभञ्ज् | बभञ्ज्वस् | ( तोड़ा हुआ ) |
| अस् | (फेंकना ) | आस् | आसिवस् | ( फेंका हुआ ) |
| स्तु | (स्तुति करना ) | तुष्टु | तुष्टुवस् | ( स्तुति किया हुआ ) |
| कृ | (करना ) | चकृ | चकृवस् | ( किया हुआ ) |
| भिद् | ( तोड़ना ) | बिभिद् | बिभिद्वस् | ( तोड़ा हुआ ) |
| दा | ( देना ) | दद् | ददिवस् | ( दिया हुआ ) |
| घस् | ( खाना ) | जक्ष् | जक्षिवस् | ( खाया हुआ ) |
| दृश् | ( देखना ) | ददृश् | ददृशिवस्, ददृश्वस् | ( देखा हुआ ) |
| विद् | ( जानना ) | विविद् | विविदिवस्, विविद्वस् | ( जाना हुआ ) |
| विश् | ( घुसना ) | विविश् | विविशिवस्, विविश्वस् | ( घुसा हुआ ) |

इनके ये रूप होते हैं——जन्——जजन्वस्, खन्——चखन्वस्, गम्——जग्मिवस्–जगन्वस्, हन्–जघ्निवस्–जघन्वस् ।

(१) अकारादि धातुओं में लिट् के तुल्य बीच में न् नहीं लगता है। अञ्ज्–आजिवस् ।

(क) वस्-प्रत्ययान्त शब्दों के रूपों के लिए देखो नियम १२४ ।

### आत्मनेपद

| | | |
|---|---|---|
| नी (ले जाना ) | निनी | निन्यान |
| दा (देना ) | दद् | ददान |
| पच् ( पकाना ) | पेच् | पेचान |
| यज् ( यज्ञ करना ) | ईज् | ईजान |
| कृ (करना ) | चकृ | चक्राण |

| | | |
|---|---|---|
| वच् (कहना) | ऊच् | ऊचान |
| स्तु (स्तुति करना) | तुष्टु | तुष्टुवान |
| श्रु (सुनना) | शुश्रु | शुश्रुवाण |

इत्यादि ।

(ख) इनके रूप पुं०, स्त्री० और नपुं० में राम, रमा और फलवत् चलते हैं।

**६७६.** ॠ अन्त वाली धातुओं ( तॄ और जॄ भी ) के वस् और आन प्रत्यय होने पर अनियमित ढंग से रूप बनते हैं। वस् धातु के अन्त में लगता है, तत्पश्चात् इसमें नियम ३९४ के अनुसार परिवर्तन होते हैं और बाद में इसको द्वित्व होता है। जहाँ धातु आत्मनेपदी है, वहाँ पर पहले द्वित्व होता है और बाद में आन लगता है और अन्तिम ॠ में पूर्ववत् परिवर्तन होते हैं। जैसे—कॄ + वस्=कीर्वस्—द्वित्व होकर चिकीर्वस्, कॄ को द्वित्व होकर चकॄ + आन = चकिराण। इसी प्रकार तॄ—तितीर्वस्, ततिराण; शॄ—शिशीर्वस्, शशिराण; पॄ—पुपूर्वस्, पपुराण, इत्यादि।

**६७७.** लिट् लकार से बनने वाले कृदन्त रूपों का प्रयोग अधिक नहीं होता है। निम्नलिखित धातुओं से बनने वाले लिट् के कृदन्त रूपों का प्रयोग अधिकांशतः मिलता है :—सद्, वस्, स्था और श्रु।

**६७८.** आम् अन्त वाले लिट् लकार का कृदन्त रूप परस्मै० और आत्मने० में अन्त में जुड़ने वाली कृ, भू और अस् धातुओं के वस् या आन प्रत्यय वाले रूप लगा कर बनते हैं। आम् प्रत्ययान्त अंग में ये रूप जुड़ जाते हैं। जैसे—दयामासिवस्, उन्दांबभूवस्, गण्—गणयामासिवस्, गणयांबभूवस्, आदि।

### (ग) भूतार्थक क्त प्रत्यय (Past Passive Participles)

**६७९.** भूतार्थक कर्मवाच्य कृदन्त रूप धातु से क्त (त) प्रत्यय लगाकर बनाया जाता है। जैसे—स्ना–स्नात (नहाया), जि–जित (जीता), नी–नीत (ले गया), श्रु–श्रुत (सुना), भू–भूत (हुआ), हृ–हृत (हरण किया), त्यज्–त्यक्त (छोड़ा), चित्-चित्त (सोचा, विचारा), आदि।

**६८०.** जिन धातुओं में संप्रसारण हो सकता है, उनमें त से पहले संप्रसारण होता है।

**६८१.** त प्रत्यय ङित् (निर्बल) है।

**अपवाद—**

(क) इन धातुओं में त से पहले इ लगने पर धातु को गुण होता है—

शी, स्विद् ( भ्वादि० ), मिद्, क्ष्विद्, धृष् और मृष् । पू ( १ आ० ) में भी त से पहले इ लगने पर गुण होता है । ( देखो नियम ६८६ ख ) ।

(ख) भ्वादिगण की जिन धातुओं की उपधा में उ है, उनके उ को विकल्प से गुण होता है, यदि बाद में त प्रत्यय से पहले इ लगा हो और इसका प्रयोग भाववाच्य में या कार्य के प्रारम्भ अर्थ में हो । मुद् ( प्रसन्न होना )––मुदित । प्रसन्न होने का प्रारम्भ अर्थ होने पर रूप होंगे––प्रमुदित या प्रमोदित । प्रमुदितं प्रमोदितं वा साधुना । प्रमुदितः प्रमोदितः वा साधुः । इसी प्रकार द्युत्–प्रद्युतित, प्रद्योतित, आदि ।

**६८२**. साधारणतया धातु की उपधा के अनुनासिक का लोप हो जाता है । ( देखो नि० ६७४ )

**६८३**. इस क्त (त) से पहले कुछ धातुओं में इ नित्य लगता है, कुछ में विकल्प से और कुछ में सर्वथा नहीं ।

**६८४**. सामान्यतया इन धातुओं में त से पहले इ नहीं लगता है––(१) सभी अजन्त धातुएँ, (२) जिन धातुओं में किसी भी प्रत्यय से पहले विकल्प से इ लगता है, (३) हलन्त अनिट् धातुएँ । पूर्व अध्यायों में वर्णित सन्धि के नियम यथास्थान लगेंगे ।

| **धातु** | **क्त प्रत्ययान्त रूप** | | **धातु** | **क्त प्र० रूप** | |
|---|---|---|---|---|---|
| पा | पात | ( रक्षा की ) | त्यज् | त्यक्त | ( छोड़ा ) |
| श्रि | श्रित | ( आश्रय लिया) | भ्रस्ज् | भृष्ट | ( भुना ) |
| नी | नीत | ( ले गया ) | यज् | इष्ट | ( यज्ञ किया ) |
| श्रु | श्रुत | ( सुना ) | बुध् | बुद्ध | ( जागा ) |
| भू | भूत | ( हुआ ) | व्यध् | विद्ध | ( बींधा ) |
| कृ | कृत | ( किया ) | स्वप् | सुप्त | ( सोया ) |
| ऊर्णु | ऊर्णुत | (ढका) | लभ् | लब्ध | ( पाया ) |
| वे | उत | ( बुना ) | बन्ध् | बद्ध | ( बाँधा ) |
| व्ये | वीत | ( ढका ) | दृश् | दृष्ट | ( देखा ) |
| ह्वे[1] | हूत | ( पुकारा ) | क्रुश् | क्रुष्ट | ( रोया, चिल्लाया ) |
| वच् | उक्त | ( कहा ) | दंश् | दष्ट | ( काटा ) |

१. ह्वे में व् को ऊ हो जाता है ।

| धातु | क्त प्रत्ययान्त रूप | | धातु | क्त प्र० रूप | |
|---|---|---|---|---|---|
| गुह् | गूढ | ( छिपाया ) | द्विष् | द्विष्ट | ( द्वेष किया ) |
| मृज् | मृष्ट | ( स्वच्छ किया ) | शास्[1] | शिष्ट | ( समझाया ) |
| सिध् | सिद्ध | ( पूरा किया ) | दह् | दग्ध | ( जलाया ) |
| तृप् | तृप्त | ( सन्तुष्ट हुआ ) | वह् | ऊढ | ( ढोया ) |
| नश् | नष्ट | ( नष्ट हुआ ) | सह् | सोढ | ( सहा ) |
| वृध् | वृद्ध | ( बड़ा हुआ ) | ध्वंस् | ध्वस्त | ( नष्ट किया ) |
| वृत् | वृत्त | ( हुआ, पूरा किया ) | लिह् | लीढ | ( चाटा ) |
| शक् | शक्त | ( समर्थ ) | मुह् | मुग्ध, मूढ | ( बेहोश हुआ ) |
| सिच् | सिक्त | ( सींचा ) | नह् | नद्ध | ( बाँधा ) |
| प्रच्छ् | पृष्ट | ( पूछा ) | स्रंस् | स्रस्त | ( गिरा ) |

**अपवाद**--(क) शी, जागृ, स्था और दरिद्रा में इ होता है। शी और जागृ के अन्तिम स्वर को गुण होता है तथा स्था और दरिद्रा के अन्तिम आ का लोप होता है। शयित, जागरित, स्थित, दरिद्रित।

(ख) पत् में इ होता है, यद्यपि सन् प्रत्यय करने पर इसमें इ विकल्प से होता है। पतित।

(ग) अनिट् वस् और क्षुध् धातुओं में त और त्वा बाद में होने पर इ होता है। उषित, क्षुधित।

**६८५**. सभी सेट् धातुओं में ( नियम ६८४ का पालन करते हुए ) तथा सभी प्रत्ययान्त धातुओं में इ लगता है। चुरादि० और णिजन्त धातुओं के अन्तिम अय का लोप हो जाता है। यङन्त में अन्तिम य का और यङ्लुगन्त में अन्तिम अ का लोप हो जाता है।

| धातु | क्त प्र० रूप | | धातु | क्त प्र० रूप |
|---|---|---|---|---|
| शंक् | शंकित | ( शंका किया गया) | बुध्+णिच्--बोधय--बोधित | ( बताया ) |
| वद् | उदित | ( कहा हुआ ) | | |
| कथ् | कथित | ( कहा गया) | कृ+सन्--चिकीर्ष्--चिकीर्षित | ( करना चाहा ) |
| प्रथ् | प्रथित | ( फैला हुआ ) | | |
| एध् | एधित | (बढ़ा ) | बुध्+यङ--बोबुध्य-बोबुधित | ( बार बार जाना ) |

१. देखो नि० ४३७।

| धातु | क्त प्र० रूप | | धातु | क्त प्र० रूप |
| --- | --- | --- | --- | --- |
| कम्प् | कम्पित | ( काँपा ) | | |
| मुष् | मुषित | ( चुराया ) | भू—यङ—बोभूय— | बोभूयित |
| ग्रह् | गृहीत | ( लिया, पकड़ा ) | | ( बार बार हुआ ) |

**अपवाद**——इन्ध्, ऋप् ( जाना, मारना ), चित् ( जानना, देखना ), जुप्, त्रस्, दीप्, मद् और यत्। इद्ध, ऋप्ट, चित्त, जुप्ट, त्रस्त, दीप्त, मत्त, यत्त।

**सूचना**——इनके अतिरिक्त और भी बहुत सी सेट् धातुएँ हैं, जिनमें इ नहीं लगता है, परन्तु उनमें से कुछ के क्त-प्रत्ययान्त रूपों में त को न होता है या अनियमित ढंग से रूप बनते हैं, उनका आगे यथास्थान विचार किया गया है।

**६८६.** इन धातुओं में इ विकल्प से लगता है:——

(क) दम्, शम्, पुर्, दस्, स्पश्, छद्, ज्ञप्, रुष्, अम्, सम्+घुष्, आ+स्वन् और हृष् ( १, ४ प० ) धातु ( जब इसका लोमन् के साथ प्रयोग हुआ हो और बाल, आश्चर्य या निराशा अर्थ हो )। दान्त—दमित ( देखो नि० ६९६ क ), शान्त—शमित, पूर्ण—पूरित ( देखो नि० ६८८), दस्त ( नष्ट हुआ )—दसित, स्पष्ट-स्पशित, छन्न-छादित, ज्ञप्त-ज्ञपित, रुष्ट-रुषित, आन्त ( देखो नि० ६९६ क )—अमित, संघुष्ट—संघुषित, आस्वान्त-आस्वनित, हृष्ट-हृषित लोमन् ( आनन्द से रोमांचित ), हृष्टो हृषितो वा मैत्रः ( विस्मितः प्रतिहतो वा )।

(ख) क्लिश् और पू धातु में त या त्वा बाद में होने पर इ विकल्प से लगता है। क्लिष्ट-क्लिशित, पूत-पवित।

(ग) निम्नलिखित धातुओं में त से पहले विकल्प से इ लगता है, यदि इसका प्रयोग भाववाच्य में हो या क्रिया का प्रारम्भ अर्थ सूचित किया गया हो। ये हैं:—— तृप्, त्वर्, धृप्, फल्, भिद्, मूर्च्छ्, स्विद् ( भ्वादि०, दिवादि० ), स्फुर्च्छ्, स्फुर्ज्, क्ष्विड् और क्ष्विद् ( १, ४ प०, १ आ० )। स्विद्—प्रस्वेदितः प्रस्विन्नो वा चैत्रः ( चैत्र को पसीना आना प्रारम्भ हुआ है )। प्रस्वेदितं प्रस्विन्नं वा अनेन ( इसे पसीना आया है ), आदि। स्विद् ( दिवादि० ) का स्विदित भी रूप बनता है।

**सूचना**——जब इन धातुओं का उपर्युक्त अर्थों में प्रयोग नहीं होता है तो इनमें इ नहीं लगता है। क्ष्विड्—क्ष्विण्ण ( पसीना आया या अव्यक्त शब्द किया ), आदि।

**६८७.** (क) अञ्च् धातु में पूजा अर्थ में इ लगता है। अञ्चित ( पूजित )। अन्यत्र अक्त ( गया )। सम्+अञ्च्–समक्त।

(ख) धृष् और शस् धातु में धृष्ट अर्थ में इ नहीं लगता है। धृष्ट ( ढीठ ), विशस्त ( अशिष्ट )। अन्यत्र––धर्षित ( हराया गया, डरा हुआ ), विशसित ( पीडित )।

**६८८.** धातु के अन्तिम द् और र् के बाद त को न हो जाता है तथा अन्तिम द् को भी न् हो जाता है।[1] भिद्-भिन्न, शॄ–शीर्ण, तुर्व्-तूर्ण ( देखो नि० ६९८ )।

**अपवाद**––(क) आधा या टुकड़ा अर्थ होने पर भिद् का भित्त रूप बनता है। अन्यत्र भिन्न।

(ख) विद् ( ६ उ० ) का 'भोग के योग्य वस्तु और प्रसिद्ध' अर्थ में वित्त रूप बनता है। वित्तम् ( धन, सम्पत्ति ), वित्तः पुरुषः ( प्रसिद्ध पुरुष )। अन्य अर्थों में विन्न।

(ग) मद्, पुर् और मूर्च्छ् के बाद त को न नहीं होगा। मत्त, पूर्त ( भरा हुआ ) ( पॄ धातु वाला अर्थ होने पर उसका पूर्ण रूप भी होता है ), मूर्त।

**६८९.** जिन धातुओं के अन्त में आ ( ए, ऐ और ओ का स्थानीय भी आ ) है, यदि वे संयुक्त अक्षर से प्रारम्भ होने वाली हैं और बीच में अन्तःस्थ वर्ण है, तो त को न हो जाएगा।[2] द्रा ( दौड़ना, सोना )–द्राण, ग्लै ( मुरझाना )–ग्लान, स्त्यै–स्त्यान ( समूहरूप में एकत्र ), आदि।

**अपवाद**––ख्या ( कहना ), ध्यै ( ध्यान करना ), व्ये और ह्वे। ख्यात, ध्यात, वीत, हूत।

**६९०.** नियम ४१४ में दी हुई धातुओं और ज्या धातु के बाद त को न हो जाता है।[3]

| धातु | क्त प्र० | रूप | धातु | क्त प्र० | रूप |
|---|---|---|---|---|---|
| री | ( जाना, बहना) | रीण | जॄ | ( वृद्ध होना) | जीर्ण |
| ली | ( पिघलना आदि) | लीन | दॄ | ( फाड़ना) | दीर्ण |

---

१. **रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः (८-२-४२ )।**
२. **संयोगादेरातो धातोर्यण्वतः (८-२-४३ )।**
३. **ल्वादिभ्यः (८-२-४४)।**

| धातु | क्त प्र० रू० | धातु | क्त प्र० रू० |
|---|---|---|---|
| क्ली ( जाना, पकड़ना ) | क्लीन | नॄ ( ले जाना ) | नीर्ण |
| प्ली ( जाना, हिलना ) | प्लीन | पॄ ( भरना, तुष्ट करना ) | पूर्ण |
| धू ( हिलाना ) | धून | भॄ ( धारण करना, पालना ) | भूर्ण |
| पू ( नष्ट करना ) | पून | मॄ ( मारना ) | मूर्ण |
| लू ( काटना ) | लून | वॄ ( चुनना ) | वूर्ण |
| ॠ ( जाना ) | ईर्ण | शॄ ( फाड़ना ) | शीर्ण |
| कॄ ( फैलाना ) | कीर्ण | स्तॄ ( फैलाना ) | स्तीर्ण |
| गॄ ( कहना, प्रशंसा करना ) | गीर्ण | ज्या ( वृद्ध होना ) | जीन |

**६९१.** दु ( जाना ) और गु ( अस्पष्ट शब्द करना ) धातुओं के बाद त को न हो जाता है और इनके स्वर को दीर्घ हो जाता है। दून ( गया ), गून।

**६९२.** निम्नलिखित धातुओं में त को न हो जाता है--

| धातु | क्त प्र० रूप | धातु | क्त प्र० रूप |
|---|---|---|---|
| डी ( ४ आ०, उड़ना ) | डीन, उड्डीन | सू ( ४ आ०, जन्म देना ) | सून |
| दू ( तंग करना ) | दून | विज् | विग्न, उद्विग्न |
| धी ( पकड़ना, पूरा करना ) | धीन | व्रश्च् | वृक्ण |
| ली ( ४ आ० ) | लीन | स्फुर्ज् ( १ प० ) | स्फूर्ग्ण |
| मी ( ४ आ०, दुःख देना ) | मीन | भञ्ज् ( तोड़ना ) | भग्न |
| दी ( ४ आ०, नष्ट होना ) | दीन | भुज् ( ६ प० ) | भुग्न |
| री ( ४ आ०, दुःख देना ) | रीण | मस्ज् ( ६ प० ) | मग्न |
| हा ( जाना ) | हान | रुज् ( ६ प०, तोड़ना ) | रुग्ण |
| हा ( छोड़ना ) | हीन | लज् ( ६ आ० ) | लग्न |
| वै ( सूखना ) | वान | लस्ज् ( लज्जित होना ) | लग्न |
| व्री ( ४ आ०, हिलना ) | व्रीण | वि+स्कन्द् | विस्कन्न |
| | | परि+स्कन्द् | परिस्कन्न-स्कण्ण |
| श्वि ( १ प०, सूजना ) | शून | विद् ( ४ आ० ) | विन्न |

**६९३.** (क) ॠ धातु के बाद त को न हो जाता है, ऋण अर्थ में।[1] ऋण ( कर्जा )। अन्यत्र ऋत ( बीता हुआ )।

---

१. **ऋणमाधमर्ण्ये** ( ८-२-६० )।

(ख) क्षि धातु के बाद त को न हो जाता है और धातु के इ को दीर्घ हो जाता है, कर्तृवाच्य प्रयोग होने पर। क्षीण ( कृश, दुर्बल )। शाप और दया अर्थ में यह न और दीर्घ विकल्प से होगा। क्षीणायुः क्षितायुः वा भव (मर जाओ)। क्षीणः क्षितः वा अयं तपस्वी ( ओह, यह बेचारा तपस्वी कृश हो गया है )। अन्यत्र क्षितः कामो मया।

(ग) जुआ खेलना अर्थ को छोड़कर अन्यत्र दिव् के बाद त को न हो जाता है।[1] द्यून ( कोई खेल जिसमें बाजी नहीं लगाई जाती है)। अन्यत्र द्यूतम् (जुआ)।

(घ) निर्+वा के बाद त को न हो जाता है, यदि वात (वायु) उसका कर्ता न हो तो।[2] निर्वाणोऽग्निः ( अग्नि बुझ गई ), निर्वाणो मुनिः ( मुनि को निर्वाण प्राप्त हो गया )। अन्यत्र—निर्वातः वातः।

(ङ) श्यै धातु के बाद त को न हो जाता है, यदि स्पर्श अर्थ न हो तो। संश्यानो वृश्चिकः ( ठंड से सिकुड़ा हुआ विच्छू )। द्रव वस्तु का जमना और ठंडा स्पर्श अर्थों में श्यै धातु में संप्रसारण होकर य् को ई हो जाता है। शीनं वृतम्। परन्तु शीतम् उदकम् होगा, यहाँ पर स्पर्श का भाव विद्यमान है। प्रति उपसर्ग पहले होने पर भी शीन रूप बनेगा। प्रतिशीनं घृतम् आदि। अभि और अव उपसर्ग पहले होंगे तो श्यै का शीन रूप विकल्प से बनेगा। अभिश्यानम् अभिशीनं वा घृतम्। अवश्यानः अवशीनो वा वृश्चिकः। किन्तु समवश्यानः ही रूप बनता है।

**६६४**. इन धातुओं के बाद त को न विकल्प से होता है—नुद्, विद् ( ७ आ० ), उन्द्, त्रै, घ्रा और ह्री। नुन्नः-नुत्तः, विन्नः-वित्तः, त्राणः-त्रातः, घ्राणः-घ्रातः, ह्रीणः-ह्रीतः।

**६६५**. प्याय् धातु का पीन रूप बनता है, अपने शरीर का अंग अर्थ हो तो। पीनं मुखम्। अन्यत्र प्यान और पीन दोनों रूप बनेंगे। जैसे—प्यानः पीनः वा स्वेदः। कोई उपसर्ग पहले होगा तो प्याय् को पीन नहीं होगा। प्रप्यानः। आ + प्याय् को आपीन नित्य हो जाता है यदि अन्धु या ऊधस् के साथ इसका प्रयोग हो तो। आपीनः अन्धुः, आपीनम् ऊधः।

**६६६**. (क) अनुनासिक अन्त वाली धातुओं के उपधा के ह्रस्व स्वर को दीर्घ हो जाता है, बाद में क्विप् या झलादि ( अन्तःस्थ और वर्ग के पंचम वर्ण को

---

१. **दिवोऽविजिगीषायाम्** (८-२-४९)।
२. **निर्वाणोऽवाते** (८-२-५०)।

छोड़ कर सभी वर्ण ) कोई ङित् ( निर्बल ) प्रत्यय हो तो। शम्-शान्त, क्रम्-क्रान्त, आदि।

(ख) अनुनासिक अन्त वाली अनिट् धातुओं, वन् ( १ प० ) धातु और तनादिगण की तन् आदि ८ धातुओं ( देखो नि० ५७८ ) के अनुनासिक का लोप हो जाता है, वाद में कोई झलादि ङित् प्रत्यय हो तो।

| धातु | क्त प्र० रू० | धातु | क्त प्र० रू० |
|---|---|---|---|
| मन् ( सोचना ) | मत | नम् ( झुकना ) | नत |
| हन् ( मारना ) | हत | यम् ( रोकना ) | यत |
| रम् ( क्रीडा करना ) | रत | वन् ( १ प०, सेवा करना ) | वत |
| गम् (जाना) | गत | घृण् ( चमकना ) | घृत |
| तन् | तत | तृण् ( चरना ) | तृत |
| क्षण् | क्षत | वन् ( माँगना ) | वत |
| ऋण् | ऋत | | |

**६९७.** खन्, जन् और सन् धातुओं के अन्तिम न् का लोप हो जाता है तथा अ को आ हो जाता है। खात, जात, सात।

**६९८.** धातु के व् के पहले या वाद में स्वर होने पर कभी-कभी उसे ऊ हो जाता है, वाद में त या न हो तो। यदि र् पहले होगा तो व् का लोप हो जाएगा। वर्-ऊर्ण, त्वर्-तूर्ण, तुर्व्-तूर्ण, सिव्-स्यूत, दिव्-द्यूत या द्यून (देखो नि० ६९३ग)।

**६९९.** निम्नलिखित धातुओं में कुछ विशेष अर्थों में इ नहीं लगता है। इनमें से कुछ क्त-प्रत्ययान्त रूप अनियमित ढंग से बनते हैं।

क्षुभ्—क्षुब्ध (मथनी, रई)
स्वन्—स्वान्त (मन)
**ध्वन्**—ध्वान्त (अन्धकार)
लग्—लग्न (सक्त, लगा हुआ)
म्लेच्छ्—म्लिष्ट (अस्पष्ट)
विरेभ्—विरिब्ध (एक स्वर)
फण्—फाण्ट ( मट्ठा या सरलता से साध्य खट्टी वस्तु। अनायास-साध्यः कषायविशेषः, सि० कौ०,)
वाह्—वाढ ( बहुत )

अपने अन्य स्वाभाविक अर्थों में इनके रूप होंगे—क्षुभित, ध्वनित, लगित, म्लेच्छित, विरेभित, फणित और वाहित।

**७००.** दा ( देना ) और दे का क्त-प्रत्ययान्त रूप दत्त होता है। यदि कोई अजन्त उपसर्ग पहले होगा तो दत्त के द का लोप हो जाएगा। प्रत्त, अवत्त आदि।

दत्त के द का लोप होने पर पूर्ववर्ती उपसर्ग के अन्तिम इ और उ को दीर्घ हो जाता है। नीत्त, सूत्त आदि। उपसर्गों के बाद दत्त का द विकल्प से रह भी सकता है। प्रदत्त, अवदत्त, सुदत्त आदि।[1]

७०१. निम्नलिखित क्त-प्रत्ययान्त रूप अनियमित ढंग से बनते हैं :—

| धातु० | क्त प्र० रू० | धातु | क्त प्र० रू० |
|---|---|---|---|
| अद् (खाना) | जग्ध, अन्न | मव् (बाँधना) | मूत |
| अर्द् (सम्, नि, वि +) | समर्ण, न्यर्ण, व्यर्ण + | मा (नापना) | मित |
| | | मे (आदान-प्रदान करना) | मित |
| अभि + अर्द् (समीप अर्थ में) | अभ्यर्ण | मूर्च्छ् (मूर्च्छित होना) | मूर्त, मूर्च्छित |
| अर्द् (अन्य अर्थों में) | अर्दित | लाघ् (उत् +) | उल्लाघ (पथ्यकारी) |
| ऊय् (१ आ०, बुनना) | ऊत | | |
| कष् (कष्टकारी या दुःखद होना) | कष्ट, जैसे—कष्टं व्याकरणम् (व्याकरण का अध्ययन कष्ट साध्य है), कष्टं वनम्, आदि। अन्यत्र-कषितं सुवर्णम् (कसौटी पर रगड़ा गया सोना) | वृह्, बृह् (परि +) | परिवृढ |
| | | वृंह, बृंह् (,,) | परिवृंहित, परिबृंहित, परिवृंहित, परिबृंहित (बढ़ा हुआ) |
| | | शो (तेज करना) | शात, शित |
| | | स्रिव् (जाना, सूखना) | स्रुत |
| कृश् (निर्बल होना) | कृश | ल्लाद् (प्रसन्न होना) | ल्लन्न |
| क्षीब् (मत्त होना) | क्षीब | श्रा (पकाना) (श्रा + णिच्-श्रप्) | शृत (पकाया हुआ) (जब यह क्षीर या हवि का विशेषण होगा)। अन्यत्र श्राण, श्रपित |
| क्नूय् (शब्द करना) | क्नूत | | |
| क्ष्माय् (हिलाना) | क्ष्मात | | |
| क्षै (कृश होना) | क्षाम | | |

---

१. अवदत्तं विदत्तं च प्रदत्तं चादिकर्मणि।
सुदत्तमनुदत्तं च निदत्तमिति चेष्यते ॥ (महाभाष्य)

| धातु | क्त प्र० रू० | धातु | क्त प्र० रू० |
|---|---|---|---|
| गै ( गाना ) | गीत | स्तम्भ् (प्रति या नि + | प्रतिस्तब्ध, निस्तब्ध ( यहाँ पर स् का ष् नहीं होता है ) |
| छा (तोड़ना ) | छात, छित | | |
| ज्यो (निर्देश देना) | जीत | | |
| दो (काटना) | दित | स्फाय् (बढ़ना) | स्फीत |
| दृंह् (दृढ़ होना) | दृढ | स्त्यै (प्र + ) | प्रस्तीत, प्रस्तीम ( शब्द किया ) |
| दृह् (अन्य अर्थों में) | दृहित, दृंहित | | |
| | | स्ना ( नि + ) | निष्णात (चतुर) |
| धा (रखना) | हित | स्ना (नदी + ) | नदीष्ण ( चतुर, अनुभवी, शाब्दिक अर्थ है—नदी के खतरे के स्थानों को जानने वाला ) । अन्य अर्थों में—निस्नात, नदीस्नात । |
| धाव् (स्वच्छ करना), | धौत, धावित | | |
| धे (पीना, चूसना) | धीत | | |
| पच् (पकाना) | पक्व | | |
| पा (पीना) | पीत | | |
| पूय् (दुर्गन्धित होना) | पूत | | |
| फल् (फैलना) | फुल्ल | | |

**७०२**. सु और यज् धातुओं से न के तुल्य ही वत् प्रत्यय कर्तृवाच्य में लगता है। सुन्वन् ( जिसने सोमरस निकाला है ), यज्वन् ( जिसने यज्ञ किया है ) । जॄ धातु से पूर्वोक्त अर्थ में विकल्प से अत् होता है। जीर्ण या जरन् ( जो वृद्ध हो गया है ) । जीर्णवत् भी रूप बनता है ।

**७०३**. क्त ( त या न ) प्रत्ययान्त के रूप अकारान्त शब्दों के तुल्य तीनों लिंगों में चलेंगे ।

क्त प्रत्यय इन स्थानों पर कर्मवाच्य में नहीं होता है :—

**७०४**. बैठना, जाना और खाना अर्थ वाली धातुओं से क्त (त) प्रत्यय अधिकरण ( स्थान ) अर्थ को बताता है।[1] इदं मुकुन्दस्य आसितम् ( यह मुकुन्द के बैठने का स्थान है ), इदं यातं रमापतेः ( यह रमा के पति विष्णु के जाने का मार्ग है ), भुक्तम् एतद् अनन्तस्य ( यह अनन्त के भोजन करने का स्थान है ) ।

---

१. **क्तोऽधिकरणे च ध्रौव्यगतिप्रत्यवसानार्थेभ्यः** ( ३-४-७६ ) ।

**७०५.** इन स्थानों पर क्त प्रत्यय कर्तृवाच्य में होता है—गमन अर्थ वाली धातुओं, अकर्मक धातुओं, श्लिष्, शी, स्था, आस्, वस् ( रहना ), जन्, रुह् और जॄ धातुओं से। गतोऽहं मद्रपुरम् ( मैं मद्रास गया था ), ग्लानो बालः ( बालक क्षीण हो गया है ), लक्ष्मीम् आश्लिष्टो हरिः ( हरि ने लक्ष्मी का आलिंगन किया ), शेषम् अधिशयितः ( शेषनाग पर सोया ), वैकुण्ठम् अधिष्ठितः ( वैकुण्ठ में रहा ), शिवमुपासितः ( शिव की उपासना की ), हरिदिनम् उपोषितः ( हरि के प्रिय दिन उसने उपवास किया ), रामम् अनुजातः ( राम के बाद उत्पन्न हुआ ), गरुडम् आरूढः ( गरुड पर बैठा ), विश्वम् अनुजीर्णः ( संसार के बाद में वृद्ध हुआ )।

**७०६.** क्त ( त ) प्रत्यय कहीं कहीं पर भाववाचक संज्ञा-शब्द बनाते हैं। जैसे—जल्पितम् ( भाषण ), शयितम् ( सोना ), हसितम् ( हँसना )। इसी प्रकार स्थितम्, गतम् आदि। देखो भट्टि० ७-१२५।

**७०७.** इन धातुओं से वर्तमान अर्थ में क्त (त) प्रत्यय होता है—मति ( सोचना, चाहना ), बुद्धि ( जानना ) और पूजा अर्थ वाली धातुओं से तथा इन्ध्, भी आदि धातुओं से। राज्ञः मतः ( राजा के द्वारा संमानित है ), सतां पूजितः, इद्धः अग्निः ( अग्नि जलाई गई है )। इसी प्रकार भीतः आदि।

### (घ) क्तवतु (तवत्) प्रत्यय (Past active Participles)

**७०८.** क्त ( त या न ) प्रत्ययान्त रूपों में अन्त में वत् लगा देने से क्तवतु ( तवत् ) प्रत्ययान्त रूप बन जाते हैं।

| धातु | क्त प्र० रू० | क्तवतु प्र० रू० |
|---|---|---|
| भू (होना) | भूत | भूतवत् ( हुआ) |
| कृ (करना) | कृत | कृतवत् ( किया ) |
| कॄ ( फैलाना ) | कीर्ण | कीर्णवत् ( फैलाया ) |
| छिद् ( काटना ) | छिन्न | छिन्नवत् ( काटा ) |

इत्यादि।

### (ङ) लृट् के स्थानीय प्रत्यय (Participles of Future tense)

**७०९.** कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य में लृट् के स्थानीय कृत्-प्रत्ययान्त शब्द इस प्रकार बनाए जाते हैं—इसके लिए लृट् लकार का प्र० पु० एक० का रूप लिया जाता है। परस्मै० में अन्तिम इ हटा दिया जाता है तथा आत्मनेपद और कर्मवाच्य में ते के स्थान पर मान लगा देते हैं। जैसे :—

| धातु | पर० | आत्मने० | कर्मवाच्य | |
|---|---|---|---|---|
| दा | दास्यत् | दास्यमान | दास्यमान, | दायिष्यमाण |
| भू | भविष्यत् | भविष्यमाण | भविष्यमाण, | भाविष्यमाण |
| चुर् | चोरयिष्यत् | चोरयिष्यमाण | चोरयिष्यमाण, | चोरिष्यमाण |
| गम् | गमिष्यत् | संगमिष्यमाण | गमिष्यमाण | |
| जि | जेष्यत् | विजेष्यमाण | जेष्यमाण, | जायिष्यमाण |
| कृ | करिष्यत् | करिष्यमाण | करिष्यमाण, | कारिष्यमाण |
| श्रु | श्रोष्यत् | संश्रोष्यमाण | श्रोष्यमाण, | श्राविष्यमाण |
| एध् (आ० )— | | एधिष्यमाण | एधिष्यमाण | |
| तुद् | तोत्स्यत् | तोत्स्यमान | तोत्स्यमान | |

इसी प्रकार पठ् + सन्—पिपठिष्-पिपठिषिष्यत्, पिपठिषिष्यमाण आदि। भू + यङ्—बोभू—बोभविष्यत्, बोभविष्यमाण आदि।

**७१०.** तवत् प्रत्ययान्त शब्दों के रूप त् अन्त वाले शब्दों के तुल्य चलेंगे और मान अन्त वालों के अकारान्त शब्दों के तुल्य।

### (च) तव्य, अनीय आदि प्रत्यय (Potential Participles)

**७११.** धातुओं या प्रत्ययान्त धातुओं से तव्य, अनीय या कहीं कहीं एलिम प्रत्यय होते हैं।[1] ये प्रत्यय सकर्मक धातुओं से कर्मवाच्य में और अकर्मक धातुओं से भाववाच्य में होते हैं। ये शब्द योग्य आदि अर्थ बताते हुए विशेषण के तुल्य भी प्रयुक्त होते है।

### (१) तव्य और अनीय प्रत्यय

**७१२.** धातुओं या प्रत्ययान्त धातुओं से 'योग्य या होना चाहिए' अर्थ मे तव्य और अनीय प्रत्यय होते हैं। इन प्रत्ययों के बाद में होने पर धातु के अन्तिम स्वर और उपधा के ह्रस्व स्वरों को गुण हो जाता है। तव्य से पहले सेट् धातुओं में नित्य इ लगेगा, वेट् धातुओं में विकल्प से और अनिट् धातुओं में सर्वथा इ नहीं लगेगा। अनीय से पहले धातु की उपधा के ऋ को अर् होगा। र नहीं होगा, जैसा कि कहीं कहीं पर होता है। जैसे—

| धातु | तव्य | अनीय | अर्थ |
|---|---|---|---|
| दा | दातव्य | दानीय | देने योग्य |

1. **तव्यत्तव्यानीयरः (३-१-९६)। केलिमर उपसंख्यानम् (वा०)।**

| धातु | तव्य | अनीय | अर्थ |
|---|---|---|---|
| चि | चेतव्य | चयनीय | संग्रह के योग्य |
| नी | नेतव्य | नयनीय | ले जाने योग्य |
| श्रु | श्रोतव्य | श्रवणीय | सुनने योग्य |
| भू | भवितव्य | भवनीय | होने योग्य |
| कृ | कर्तव्य | करणीय | करने योग्य |
| बुध् | बोधितव्य, बोद्धव्य | बोधनीय | जानने योग्य |
| मुच् | मोक्तव्य | मोचनीय | छोड़ने योग्य |
| मृज् | मार्ष्टव्य[1] | मार्जनीय | स्वच्छ करने योग्य |
| सृज् | स्रष्टव्य | सर्जनीय | बनाने योग्य |
| भ्रस्ज् | भर्ष्टव्य, भ्रष्टव्य | भर्जनीय, भ्रज्जनीय | भूनने योग्य |
| भिद् | भेत्तव्य | भेदनीय | तोड़ने योग्य |
| निन्द् | निन्दितव्य | निन्दनीय | निन्दा के योग्य |
| गुह् | गोढव्य, गूहितव्य[2] | गूहनीय | छिपाने योग्य |

**७१३**. अनीय बाद में होने पर धातुओं में ये कार्य होते हैं--चुरादि० और णिजन्त के अय का लोप हो जाता है, यङन्त रूपों में यदि य से पहले कोई स्वर है तो य के अ का लोप होगा और यदि य से पहले कोई व्यंजन है तो पूरे य का लोप होगा। सन्-प्रत्ययान्त अंग में कोई परिवर्तन नहीं होता है। जैसे--

| धातु | अनीय | अर्थ |
|---|---|---|
| कथ् | कथनीय | कहने योग्य |
| चुर् | चोरणीय | चुराने योग्य |
| बोधय (बुध + णिच्) | बोधनीय | बताने योग्य |
| बोबुध्य (बुध् + यङ) | बोबुधनीय | बार-बार जानने योग्य |
| बोभूय (भू + यङ) | बोभूयनीय | बार-बार होने योग्य |
| बुबोधिष् (बुध् + सन्) | बुबोधिषणीय | जिज्ञासा के योग्य |

---

१. मृज् के ऋ को आर् हो जाता है।

२. अजादि पित् (सबल) प्रत्यय बाद में होने पर गुह् के उ को गुण न होकर दीर्घ हो जाता है।

## (२) य (यत्, क्यप्, ण्यत्) प्रत्यय

### यत् (य) प्रत्यय

**७१४.** अजन्त धातुओं से 'योग्य या होना चाहिए' अर्थ में यत् (य) प्रत्यय होता है।[1] इससे पूर्व धातु के स्वर को गुण होता है तथा अन्तिम आ (ए, ऐ, और ओ का स्थानीय आ भी) को ए होता है।

| | | |
|---|---|---|
| दा | देय | देने योग्य |
| धे | धेय | चूसने योग्य |
| गै | गेय | गाने योग्य |
| छो | छेय | काटने योग्य |
| चि | चेय | चुनने योग्य |
| नी | नेय | ले जाने योग्य |

**७१५.** जिन धातुओं की उपधा में अ है और अन्त में पवर्ग का कोई वर्ण है, उनसे य प्रत्यय होता है। शप्—शप्य, लभ्—लभ्य, रम्—रम्य, आदि।

(क) लभ् से पहले आ उपसर्ग होगा तो ल और भ् के बीच में न् (न् को म् हो जाता है) लगता है। आलभ्—आलम्भ्य (हिंसा के योग्य)। उप + लभ् में भी प्रशंसा अर्थ में बीच में न् लगता है। उपलम्भ्यः साधुः (प्रशंसा के योग्य साधु)। अन्यत्र—उपलभ्यं धनम् (धन प्राप्त करना चाहिए)।

**७१६.** इन धातुओं से य प्रत्यय होता है—तक् (हँसी उड़ाना), शस् (हिंसा करना), चत् (पूछना), यत् (प्रयत्न करना), जन्, शक् और सह्। तक्यम् (हँसी उड़ाने के योग्य), शस्य (हिंसा के योग्य), आदि।

**७१७.** यदि कोई उपसर्ग पहले न हो तो गद्, मद्, चर् और यम् धातुओं से य प्रत्यय होता है। गद्-गद्य (कहने योग्य), मद्य, चर्य, यम्य। आ + चर् से आचार्य अर्थ में ण्यत् (य) प्रत्यय होता है, अन्य अर्थों में य प्रत्यय होता है। आचर्यो देशः (घूमने के योग्य देश)। अन्यत्र—आचार्यः (आचार्य)।

**७१८.** इन धातुओं से इन विशेष अर्थों में य प्रत्यय होता है—वद् से निन्दनीय अर्थ में, पण् से विक्रेय अर्थ में और वृ (९ आ०) से अप्रतिबन्ध अर्थ में। जैसे—अवद्यं पापम् (पाप निन्दनीय है)। अन्यत्र—अनुद्यं (अन् + वद् + क्यप् अर्थात् य) गुरुनाम (आदरणीय होने के कारण गुरु का नाम उच्चारण नहीं

---

[1] **अचो यत् (३-१-९७)।**

करना चाहिए )। पण्या गौः ( गाय बेचने के योग्य है )। अन्यत्र पाण्यः ( पण् + ण्यत् अर्थात् य ) ब्राह्मणः ( प्रशंसनीय ब्राह्मण )। वर्य ( चुने जाने योग्य या वरण किए जाने योग्य )। जैसे—शतेन वर्या कन्या ( सैकड़ों के द्वारा अर्थात् किसी भी व्यक्ति के द्वारा वरण की जाने योग्य कन्या )। अन्यत्र वृत्या (वृ + क्यप् अर्थात् य ) कन्या ( किसी एक व्यक्ति से विवाह के योग्य कन्या )।

**७१९.** वह् धातु से ढोने के साधन अर्थ में और ऋ धातु से स्वामी और वैश्य अर्थ में य प्रत्यय होता है। वह्यम् ( गाड़ी )। अन्यत्र—वाह्य ( वह् + ण्यत्, ढोने योग्य )। अर्य ( स्वामी या वैश्य )। अन्यत्र आर्य (ऋ + ण्यत्, आदरणीय)।

**७२०.** उप + सृ से गर्भाधान के योग्य अर्थ में य प्रत्यय होता है। उपसर्या गौः ( गर्भाधानार्थं वृषभेण उपगन्तुं योग्येत्यर्थः, सि० कौ० )। अन्यत्र उपसार्या ( उपसृ + ण्यत् ) काशी ( प्राप्तव्या इत्यर्थः, सि० कौ० )।

**७२१.** नञ् ( अ) पूर्वक जॄ धातु से य प्रत्यय होकर अजर्य रूप बनता है। यह संगतम् का विशेषण होना चाहिए। अजर्यं संगतम् ( ऐसी मित्रता जो कभी पुरानी नहीं होती है )। तु० करो—तेन संगतमार्येण रामाजर्यं कुरु द्रुतम् ( भट्टि० ६-५३ )। मृगैरजर्यं जरसोपदिष्टमदेहबन्धाय पुनर्बबन्ध (रघु० १८-७ )। इस श्लोक में संगतम् का अध्याहार करना चाहिए। जहाँ पर यह संगतम् का विशेषण नहीं होगा, वहाँ पर तृ प्रत्यय लग कर अजरिता रूप बनेगा। अजरिता कम्बलः।

**७२२.** हन् धातु से विकल्प से यत् (य) प्रत्यय होता है। य प्रत्यय होने पर हन् को वध् आदेश हो जाता है। हन् + य = वध्य ( हिंसा के योग्य )। इससे विकल्प से ण्यत् ( य) प्रत्यय भी होता है और उसके होने पर हन् को घात् हो जाता है। घात्यः।

### क्यप् ( य) प्रत्यय

**७२३.** 'योग्य या चाहिए' अर्थ में ही इन धातुओं से क्यप् (य) प्रत्यय होता है—इ ( १, २ प०, जाना ), स्तु, शास्, वृ ( ५ उ० ), दृ, जुष्, उपधा में ऋ वाली धातुएँ, क्लृप् और चृत् को छोड़ कर। ह्रस्व स्वर अन्त वाली धातुओं के बाद य से पहले त् और लग जाता है। जैसे—इत्य ( जिसके पास जाना चाहिए ), स्तुत्य ( स्तुति के योग्य ), शास्-शिष्य ( उपदेश के योग्य ), वृ-वृत्य, दृ-आदृत्य, जुष्-जुष्य ( सेवा के योग्य ), वृत्-वृत्य, वृध्-वृध्य ( बढ़ाने के योग्य, जैसे धनादि)।

अन्यत्र—कल्प्य ( क्लृप्+यत्, योग्य ), चृत्—चर्त्य ( चृत्+ण्यत्, तंग करने के योग्य ) ।

**७२४.** वामन के मतानुसार शंस्, दुह् और गुह् धातुओं से विकल्प से क्यप् (य) होता है। शंस्—शस्य ( प्रशंसनीय ), दुह्-दुह्य, गुह्-गुह्य। पक्ष में इनसे ण्यत् (य) प्रत्यय होता है। शंस्य, दोह्य, गोह्य।

**७२५.** मृज् धातु से विकल्प से क्यप् (य) प्रत्यय होता है। मृज्य ( स्वच्छता के योग्य )। पक्ष में ण्यत् होता है और अन्तिम ज् को ग् होता है। मार्ग्य।

**७२६.** (क) भू धातु से पहले कोई सुबन्त पद हो तथा कोई उपसर्ग भू से पहले न लगा हो तो भाववाच्य में क्यप् (य) प्रत्यय होता है। ब्रह्मणो भावः ब्रह्म-भूयम् ( ब्रह्मत्व )। जहाँ पर कोई सुबन्त पहले नहीं लगा है, वहाँ पर यत् (य) होता है, भव्य, प्रभव्य।

(ख) पूर्वोक्त स्थितियों में ही वद् धातु से क्यप् और ण्यत् होता है, भाववाच्य या कर्मवाच्य में। ब्रह्मोद्यम्, ब्रह्मवद्यम् ( वेद की व्याख्या करना, ब्रह्म वेदः तस्य वदनमित्यर्थः, सि० कौ० )।

**७२७.** खन् धातु से क्यप् प्रत्यय होता है और खन् के न् का लोप होता है तथा ख के बाद ई लग जाता है। खन् + य = ख + य = ख + ई + य = खेय ( खुदाई के योग्य)

**७२८.** भृ ( भ्वादि० ) से क्यप् प्रत्यय होता है, संज्ञावाचक न हो तो। भृत्याः ( जिनका पालन-पोषण करना चाहिए, अतः नौकर )। अन्यत्र—भार्याः ( भृ + ण्यत्, क्षत्रियों का एक वर्ग )। सम् + भृ में क्यप् और ण्यत् दोनों होते हैं। संभृत्याः, संभार्याः।

**सूचना**—स्त्री-वाचक भार्या शब्द भृ ( जुहोत्यादि० ) से ण्यत् प्रत्यय करके बनाना चाहिए।

**७२९.** निम्नलिखित ७ शब्द क्यप् प्रत्यय करके नीचे निर्दिष्ट अर्थों में निपातन होते हैं अर्थात् सिद्ध माने जाते हैं।[1] राजसूयः ( राजन् + सू + क्यप् )। राज्ञा सोतव्यः, अभिषवद्वारा निष्पादयितव्यः। यद्वा लतात्मकः सोमो राजा, स सूयते कण्डयतेऽत्र इत्यधिकरणे क्यप्, निपातनाद् दीर्घः। राजसूयम् भी रूप बनता है।

---

१. **राजसूयसूर्यमृषोद्यरुच्यकुप्यकृष्टपच्याव्यथ्याः ( ३-१-११४ ) ( देखो इस सूत्र पर सि० कौ० )।**

सूर्यः (सृ + क्यप् या सृ ६ प० प्रेरणा देना + क्यप्)। सरति आकाशे। कर्तरि क्यप्, निपातनाद् उत्वम्, यद्वा षू प्रेरणे तुदादिः। सुवति कर्मणि लोकं प्रेरयति[1] क्यपो रुट्। मृषोद्यम् ( असत्य ) ( मृषा + वद्+क्यप् )। रोचते इति रुच्यः। कुप्यम् ( कोई घटिया धातु ) ( गुप् + क्यप् ), गुपेरादेः कुत्वं च संज्ञायाम्। सुवर्णरजतभिन्नं धनं कुप्यम्। तु० करो—किराता० १-३५, मनु० ७-९६। अन्य अर्थों में गुप् धातु से ण्यत् होगा। गोप्यम् ( छिपाने योग्य )। कृष्टे स्वयमेव पच्यन्ते कृष्टपच्याः कर्म-कर्तरि। शुद्धे तु कर्मणि कृष्टपाक्याः ( जुती हुई भूमि में उत्पन्न होने वाला )। न व्यथते अव्यथ्यः ( कष्ट अनुभव न करने वाला )।

**७३०.** (क) निम्नलिखित दो शब्द, जो कि नदियों के नाम हैं, क्यप् प्रत्यय के द्वारा बनते हैं। भिनत्ति कूलं भिद्यः( भिद् + क्यप् ), उज्झति उदकम् उद्ध्यः ( उज्झ् + क्यप्, उज्झ् को उद्ध् हो जाता है )। देखो रघु० ११-८। अन्यत्र इनसे तृ प्रत्यय होता है। भेत्ता, उज्झिता।

(ख) इसी प्रकार पुष्य और सिध्य शब्द पुष् और सिध् धातु से क्यप् प्रत्यय करके बनते है। ये दोनों पुष्य नक्षत्र के नाम हैं। पुष्यन्ति अस्मिन्नर्थाः पुष्यः। सिध्यन्ति अस्मिन् सिध्यः।

**७३१.** वि+पू, वि+नी और जि धा तु से क्यप् प्रत्यय होता है, यदि इनका क्रमशः सम्बन्ध मुञ्ज, कल्क और हलि शब्दों से हो। विपूयो मुञ्जः (रज्वादिकर-णाय शोधयितव्यः इत्यर्थः, सि० कौ०, मूंज घास रस्सी आदि बनाने के लिए साफ करनी चाहिए )। विनीयः कल्कः ( पाप नष्ट करना चाहिए )। जित्यो हलिः ( हल जो कि अधिक बल से खींचा जा सके, बलेन कृष्टव्यः )। अन्य अर्थों में इनसे यत् प्रत्यय होता है। विपव्यम्, विनेयम्, जेयम्।

**७३२.** निम्नलिखित शब्द ग्रह् धातु से क्यप् प्रत्यय करके बनते हैं—अव-गृह्यम्, प्रगृह्यं पदम् ( अवग्रह और प्रगृह्य ये दोनों व्याकरण के पारिभाषिक शब्द हैं ), गृह्यकाः शुकाः ( पञ्जरादिबन्धनेन परतन्त्रीकृता इत्यर्थः, सि० कौ०, तोते आदि जो कि पींजरे आदि में बन्धन के द्वारा परतन्त्र बना लिए गए हैं )। ग्रामगृह्या सेना ( गाँव से बाहर स्थित सेना )। आर्यैर्गृह्यते आर्यगृह्यः (तत्पक्षाश्रित इत्यर्थः, सि० कौ०, आर्यों का पक्ष लेने वाला )। देखो रघु० २-४३।

---

१. तु० करो—मित्रो जनान् यातयति ब्रुवाणो० ( ऋग्० ३-५९-१ )।

**७३३**. कृ और वृष् धातुओं से क्यप् और ण्यत् दोनों प्रत्यय होते हैं। कृत्य-कार्य, वृष्य-वर्ष्य ।

**७३४**. युज् धातु से 'रथादि में जुतने योग्य' अर्थ में क्यप् प्रत्यय होता है और अन्तिम ज् को ग् हो जाता है। युग्यः गौः ( जूए में जुतने योग्य बैल ) । अन्य अर्थों में युज् से ण्यत् होता है। योज्य ।

**ण्यत् प्रत्यय**

**७३५**. ऋकारान्त और हलन्त धातुओं से 'योग्य या चाहिए' अर्थ में ण्यत् (य) प्रत्यय होता है। ण्यत् से पहले धातु के च् को क् और ज् को ग् होता है। धातु के अन्तिम स्वर और उपधा के अ को वृद्धि हो जाती है। उपधा के अन्य स्वरों को प्रायः गुण हो जाता है।

कृ—कार्यम् ( करने योग्य ), धृ—धार्यम् ( धारण करने योग्य ), आदि । ग्रह्—ग्राह्यम्, दभ्—दाभ्यम् ( प्रेरणा देने योग्य ), आदि । वच्—वाक्यम् ( क्रम-बद्ध बोलने योग्य, वाक्य ), पच्—पाक्यम् ( पकाने योग्य ), मृज्—मार्ग्यम् ( सफाई के योग्य ), आदि ।

**७३६**. अमा+वस् से ण्यत् (य) प्रत्यय होता है और वस् की उपधा के अ को विकल्प से आ होता है। अमा सह वसतोऽस्यां चन्द्रार्कौ अमावस्या, अमावास्या ( अमावास्या, जिस दिन सूर्य और चन्द्रमा एक साथ या एक स्थान पर रहते हैं ) ।

(क) पाणि शब्द या समव उपसर्ग पहले होने पर सृज् धातु से ण्यत् होता है। पाणिभ्यां सृज्यते पाणिसर्ग्या रज्जुः । इसी प्रकार समवसर्ग्या ।

**७३७**. (क) ण्यत् होने पर इन धातुओं के च् या ज् को क् या ग् नहीं होता है—यज्, याच्, रुच्, प्रवच्, ऋच्, त्यज् और पच् । याज्यम्, याच्यम्, रोच्यम्, प्रवाच्यम् ( ग्रन्थविशेषः ), अर्च्यम्, त्याज्यम्, पाच्यम् ।

(ख) ण्यत् बाद में होने पर वच् के च् को क् नहीं होता है वक्तव्य अर्थ में। वाच्यम् ( कहने योग्य, वक्तव्य ) । अन्यत्र—वाक्यम् ( वाक्य ) ।

(ग) वञ्च् धातु के च् को क् नहीं होता है, जाना अर्थ में। वञ्च्यम् । मोड़ना या टेढ़ा करना अर्थ में इसके च् को क् होगा। वङ्क्यं काष्ठम् ।

(घ) प्र और नि उपसर्गों के बाद शक्य ( संभव या करना संभव ) अर्थ में युज् धातु से ण्यत् प्रत्यय होता है और इसके ज् को ग् नहीं होता है। प्रयोक्तुं शक्यः प्रयोज्यः, नियोक्तुं शक्यः नियोज्यः भृत्यः ।

(ङ) भुज् धातु का अन्न अर्थ में भोज्य रूप बनता है और उपभोग के योग्य अर्थ में भोग्य।

**७३८**. ह्रस्व और दीर्घ उकारान्त धातुओं से 'अवश्य कर्तव्य' अर्थ में ण्यत् (य) प्रत्यय होता है। लू–लाव्यम् ( अवश्य काटे जाने योग्य ), पाव्यम् ( अवश्य स्वच्छ करने योग्य ), आ+सू–आसाव्यम्, यु ( मिलाना)–याव्यम्, आदि।

(क) इन धातुओं से भी अवश्य कर्तव्य अर्थ में ण्यत् होता है—वप्, रप्, लप्, त्रप् और चम्। वाप्यम् ( अवश्य बोने योग्य ), राप्यम् ( अवश्य स्पष्ट कहने योग्य), लाप्यम्, त्राप्यम्, चाम्यम्।

**७३९**. निम्नलिखित शब्द ण्यत् (य) प्रत्यय के द्वारा अनियमित रूप से बनते हैं—आ+नी–आनाय्य ( गार्हपत्य अर्थात् दक्षिणाग्नि से लाने योग्य ) ( दक्षिणाग्निविशेष एवेदम्। स हि गार्हपत्यादानीयतेऽनित्यश्च सततमप्रज्वलनात्, सि० कौ० )। अन्यत्र–आनेयः ( लाने योग्य घड़ा आदि )। प्र+नी–प्रणाय्यः चोरः ( प्रीत्यनर्ह इत्यर्थः, सि० कौ०, सांसारिक भोगों से प्रेम के अयोग्य ), प्रणाय्यः अन्तेवासी ( विरक्त इत्यर्थः )। अन्य अर्थों में प्रणेयः।

**७४०**. ये शब्द भी निपातन से बनते हैं—मीयते अनेन इति पाय्यम् ( मा धातु से, एक नाप ), सम्यङ्‌ नीयते होमार्थम् अग्निं प्रति इति सान्नाय्यम् ( सम्+नी+ण्यत् ) हविर्विशेषः ( एक प्रकार की हवि ) ( देखो शिशु० ११-४१ ), निचीयतेऽस्मिन् धान्यादिकं निकाय्यः निवासः ( नि+चि+ण्यत् ), धीयतेऽनया समिदिति धाय्या ऋक् ( धा+ण्यत् ), कुण्डेन पीयतेऽस्मिन् सोमः—कुण्डपाय्यः क्रतुः, संचीयतेऽसौ संचाय्यः ( एक यज्ञ )। परिचाय्यः, उपचाय्यः, समूह्यः ( विशेष स्थान जहाँ पर यज्ञिय अग्नि रक्खी जाती है )। अन्य अर्थों में—परिचेयम्, उपचेयम्, संवाह्यम्। चीयते असौ चित्यः अग्निः, अग्नेः चयनम् अग्निचित्या।

**७४१**. निम्नलिखित धातुओं से कर्तृवाच्य में ये प्रत्यय होते हैं—भू और गै से यत्, वच् और स्था से अनीय, जन् प्लु और पत् से ण्यत्। भवतीति भव्यः ( भव्यम् अनेन वा ), गायतीति गेयः ( गाने वाला ) ( गेयं साम अनेन यह भी बनता है ), प्रवचनीयः ( वक्ता ), उपस्थानीयः ( पास में खड़ा रहने वाला )। जन्यः, प्लाव्यः, पात्यः।

### (३) केलिमर् ( एलिम ) प्रत्यय

**७४२**. योग्य या चाहिए अर्थ में कुछ सकर्मक धातुओं से केलिमर् ( एलिम )

प्रत्यय लगता है। पच्–पचेलिम ( पकाने योग्य )। जैसे–पचेलिमा माषाः, भिद्–भिदेलिमाः सरलाः ( काटने के योग्य चीड़ के पेड़ ), आदि।

**७४३.** एलिम–प्रत्ययान्त के रूप तीनों लिंगों में अकारान्त शब्दों के तुल्य चलेंगे।

## २. अव्यय कृदन्त प्रत्यय ( Indeclinable Participles )

### (क) क्त्वा और ल्यप् प्रत्यय

**७४४.** अव्यय कृदन्त रूप दो प्रकार से बनाए जाते हैं––(१) मूल धातु के साथ क्त्वा ( त्वा ) प्रत्यय करके, (२) उपसर्ग या उपसर्ग के तुल्य प्रयोग में आने वाले शब्दों के साथ समास होने पर धातु से ल्यप् (य) प्रत्यय करके। गम्-गत्वा ( जाकर ), अनु + भू–अनुभूय ( अनुभव करके ), इत्यादि।

### १. क्त्वा प्रत्यय से बने अव्यय कृदन्त रूप

**७४५.** धातु से पहले कोई उपसर्ग या उपसर्गवत् प्रयुक्त होने वाला शब्द नहीं होगा तो धातु या प्रत्ययान्त धातु से क्त्वा (त्वा) प्रत्यय लगाकर अव्यय कृदन्त रूप बनता है। त्वा प्रत्यय के होने पर भी वे सभी कार्य प्रायः होते हैं, जो क्त (त) प्रत्यय करने पर होते हैं। त्वा-प्रत्ययान्त रूप बनाने का सरल प्रकार यह है कि क्त-प्रत्ययान्त रूपों में से अन्तिम त या न को हटाकर त्वा लगा देने से त्वा-प्रत्ययान्त रूप बन जाता है। जैसे––

| धातु | क्त प्र० रूप | त्वा प्र० रूप |
|---|---|---|
| ज्ञा ( जानना ) | ज्ञात | ज्ञात्वा |
| दा ( देना ) | दत्त | दत्त्वा |
| स्था ( खड़ा होना ) | स्थित | स्थित्वा |
| हा ( जाना ) | हान | हात्वा |
| हा ( छोड़ना ) | हीन | हित्वा |
| धा ( रखना ) | हित | हित्वा |
| जि ( जीतना ) | जित | जित्वा |
| पू ( पवित्र करना ) | पवित, पूत | पवित्वा, पूत्वा |
| भू ( होना ) | भूत | भूत्वा |
| कृ ( करना ) | कृत | कृत्वा |
| तॄ ( पार करना ) | तीर्ण | तीर्त्वा |
| पॄ ( पूरा करना ) | पूर्ण | पूर्त्वा |

| धातु | | क्त प्र० रूप | त्वा प्र० रूप |
|---|---|---|---|
| त्रै | ( रक्षा करना ) | त्रात | त्रात्वा |
| मुच् | ( छोड़ना ) | मुक्त | मुक्त्वा |
| अद् | ( खाना ) | जग्ध | जग्ध्वा |
| छो | (काटना) | छात, छित | छात्वा, छित्वा |
| दृश् | ( देखना ) | दृष्ट | दृष्ट्वा |
| क्षुध् | (भूखा होना )[1] | क्षुधित | क्षुधित्वा, क्षोधित्वा |
| वस् | (रहना )[1] | उषित | उषित्वा |
| वच् | ( कहना ) | उक्त | उक्त्वा |
| वह् | (ढोना ) | ऊढ | ऊढ्वा |
| यज् | (यज्ञ करना ) | इष्ट | इष्ट्वा |
| वप् | ( बोना ) | उप्त | उप्त्वा |
| बन्ध् | (बाँधना ) | बद्ध | बद्ध्वा |
| बुध् | ( जानना ) | बुद्ध | बुद्ध्वा |
| शास् | ( उपदेश देना ) | शिष्ट | शिष्ट्वा |

**७४६**. जहाँ पर त्वा से पहले इ लगता है, वहाँ पर धातु के अन्तिम स्वर को गुण हो जाता है। शी-शयित्वा, कु-कवित्वा, जागृ-जागरित्वा, आदि।

(क) तृष्, मृष्, कृष् और ऋत् धातुओं को गुण विकल्प से होता है। तृषित्वा-तर्षित्वा, मृषित्वा-मर्षित्वा, कृषित्वा-कर्षित्वा, ऋत्-ऋतित्वा-अर्तित्वा।

(ख) इन धातुओं में गुण नहीं होता है—मृड्, मृद्, गुध्, कुष्, मुष् और क्लिश्, नियम ४६३ में दी हुई धातुएँ और विज् ( रुधादि० )। मृड्—मृडित्वा (आनन्द पाकर), मृद्—मृदित्वा, गुध्—गुधित्वा ( ढककर ), कुषित्वा, मुषित्वा, क्लिश्-क्लिशित्वा-क्लिष्ट्वा, कुट्-कुटित्वा, विज्-विजित्वा, आदि।

**७४७**. इन धातुओं में त्वा से पहले विकल्प से इ लगता है—वेट् ( विकल्प से इ वाली ) धातुओं से, नियम ४७२ में उल्लिखित पाँच धातुओं से और अन्त में उ इत्संज्ञक धातुओं से।[2] ( व्रश्च्, धातु में इ नित्य लगता है। स्वृ सू और धू, धातुओं में इ सर्वथा नहीं लगता है )। जैसे—

---

१. देखो नि० ६८४ (ग) और ७५०।

२. उ इत्संज्ञक मुख्य धातुएँ ये हैं :—

| धातु | क्त्वा प्र० रूप |
|---|---|
| मृज् (स्वच्छ करना) | मार्जित्वा, मृष्ट्वा |
| गाह् (प्रवेश करना) | गाहित्वा, गाढ्वा |
| गुह् (छिपाना) | गुहित्वा, गूहित्वा, गूढ्वा |
| गुप् (रक्षा करना) | गोपायित्वा, गोपित्वा, गुपित्वा, गुप्त्वा |
| इष् (चाहना) | एषित्वा, इष्ट्वा |
| सह् (सहन करना) | सहित्वा, सोढ्वा |
| लुभ् (लोभ करना) | लोभित्वा, लुब्ध्वा |
| अञ्च् (जाना) | अक्त्वा (जाकर) |
| अञ्च् (पूजा करना) | अञ्चित्वा (पूजा करके) |
| क्षण् (मारना) | क्षत्वा, क्षणित्वा |
| खन् (खोदना) | खनित्वा, खात्वा |
| तन् (फैलाना) | तनित्वा, तत्वा |

---

अच् ( १ उ० ), अञ्च् ( १, १० उ० ), अस् (४ प० ), ऋण्, कम् (५ प०, १ आ० ), कुज्, क्रम् (१ प० ), क्लम् (४ प०), क्षण् (८ उ० ), क्षिण् ( ८ उ० ), क्षिव् ( १, ४ प०), क्षीव् (१ प० ), क्ष्वेद् (१ प०), खन् ( १ उ० ), गृध् (४ प० ), ग्रस् (१ आ० ), ग्रुच् (१ प० ), ग्लुच् (१ प०), ग्लुञ्च् (१ प०), घृण् (८ उ०), घृष् (१ प०), चञ्च् (१ प०), चम् (१, ५ प० ), छृद् ( ७, ५ आ० ), जभ् (१ प०), जस् (४, प०, १० उ० ), तञ्च् (१ प० ), तन् (८ उ०, १ उ०, १० प०), तृण् (८ उ०), दम्भ् (५ प० ), दम् (४ प० ), दिव् (४ प०, १० आ०), धाव् (१ उ० ), ध्वंस् (१ आ० ), पृष् (१ प०), प्लुष् (१ प०), बस् (४ प०), भृश् (४ प० ), भ्रम् (१,४ प०), भ्रंश् (१ आ०, ४ प० ), भ्रंस् (१ आ०), मन् (८ आ०), मृष् (१ प०), म्रुच्, म्रुञ्च्, म्लुच्, म्लुञ्च् (१ प०), यस्, युप्, रुप्, लुप् (ये सभी ४ प०), वञ्च् (१ उ०), वन् (८ प०), वस् (४ प०), विष् (१ प०), वृत् (१,४ आ०, १० उ०), वृध् (१ आ०, १० उ०), वृष् (१ प०), शम् (४ उ० ), शस् (१ प०), शंस् (१ प०), शास् (१ प०, २ उ०), शृध् (१ उ०), श्रम्भ् (१ प०), श्रम् (४ प०), श्रिष् (१, ४ प०), श्लिष् (१ प०), सन् (१ प०, ८ उ०), ष्ठिव् (१,४ प०), सिध् (१,४ प०), स्कम्भ्, स्तम्भ् (४,९ प०), स्यम् (१ प०), स्रंस् (१ आ०), स्रिव् (४ प०), हृष् (१ प०) ।

| धातु | क्त्वा प्र० रूप |
|---|---|
| दम् (संयत करना) | दमित्वा, दान्त्वा |
| शम् ( शान्त करना ) | शमित्वा, शान्त्वा |
| क्रम् (जाना आदि ) | क्रमित्वा, क्रन्त्वा, क्रान्त्वा[1] |
| वस् ( ४ प०, दृढ़ रहना) | वसित्वा, वस्त्वा |
| वृत् ( १ आ० होना ) | वर्तित्वा, वृत्त्वा, इत्यादि । |

किन्तु––व्रश्च्-व्रश्चित्वा, स्वृ-स्वृत्वा, सू-सूत्वा, धू-धूत्वा होंगे ।

**७४८**. इन धातुओं में त्वा से पहले इ लगता है––श्वि, डी, शी, पू और जॄ, हलन्त सेट् धातुएँ, चुरादिगणी तथा अन्य प्रत्ययान्त धातुएँ । त्वा से पहले चुरादिगणी धातुओं का अय् लुप्त नहीं होता है । श्वि–श्वयित्वा, डी–डयित्वा, जॄ–जरित्वा-जरीत्वा, नृत्-नर्तित्वा, व्यच्-विचित्वा, लज्-लजित्वा, जीव्-जीवित्वा आदि । चुर्–चोरयित्वा, कथ्–कथयित्वा । बोधय ( बुध्+णिच् )–बोधयित्वा, बुबोधिष् ( बुध् + सन् )–बुबोधिषित्वा, बुध्+यङ–बुबोध्य–बुबोधित्वा, आदि ।

**७४९**. (क) स्कन्द् और स्यन्द् के न् का लोप नहीं होता है ।

स्कन्द्––स्कन्त्वा, स्यन्द्––स्यन्त्वा, स्यन्दित्वा ।

(ख) इन धातुओं की उपधा के अनुनासिक का विकल्प से लोप होता है––थ् या फ् अन्त वाली धातुएँ, वञ्च् ( घूमना, धोखा देना ) और लुञ्च् ( नोचना ) । ग्रन्थ्–ग्रन्थित्वा, ग्रथित्वा; गुम्फ्-गुम्फित्वा, गुफित्वा; वञ्च्–वञ्चित्वा, वचित्वा, वक्त्वा; लुञ्च्-लुञ्चित्वा, लुचित्वा ।

(ग) त्वा से पहले इन धातुओं के अनुनासिक का विकल्प से लोप होता है–– ज् अन्त वाली भञ्ज्, रञ्ज्, सञ्ज्, स्यञ्ज् आदि और तञ्च् धातु । भञ्ज्–भङ्क्त्वा, भक्त्वा; रञ्ज्–रङ्क्त्वा, रक्त्वा; अञ्ज्–अञ्जित्वा, अङ्क्त्वा, अक्त्वा ।

(घ) मस्ज् और नश् धातुओं में विकल्प से बीच में न् लगता है । मक्त्वा, मङ्क्त्वा; नशित्वा, नंष्ट्वा, नष्ट्वा ।

**७५०**. त्वा से पहले इ लगने पर हलादि और हलन्त ( य्, व् को छोड़ कर ) धातुओं की उपधा के इ और उ को विकल्प से गुण होता है । लिख्–लिखित्वा, लेखित्वा; क्लिद्–क्लिदित्वा, क्लेदित्वा ( क्लित्त्वा भी ); लुभ् ( ६ प० )–

१. त्वा से पहले अ को विकल्प से आ हो जाता है ।

लुभित्वा, लोभित्वा; द्युत्–द्युतित्वा, द्योतित्वा; रिप्–रिपित्वा, रेपित्वा, रिप्ट्वा। इसी प्रकार रुप् के रूप होंगे। अन्यत्र–दिव्–देवित्वा, द्युत्वा।

## २. ल्यप्-प्रत्ययान्त अव्यय कृदन्त

**७५१**. एक या अनेक उपसर्गों के साथ अथवा उपसर्गों के तुल्य प्रयुक्त होने वाले शब्दों के साथ धातु का समास होने पर त्वा के स्थान पर ल्यप् (य) प्रत्यय धातु के अन्त में लगता है। ह्रस्व स्वरान्त धातुओं के बाद य को त्य हो जाता है। (यदि धातु का स्वर उपसर्ग के साथ सन्धि होकर दीर्घ हो जाएगा, तब भी य को त्य हो जाएगा।) जैसे––

| | | | |
|---|---|---|---|
| आ+दा | आदाय | प्र+इ | प्रेत्य |
| निस्+चि | निश्चित्य | सम्+कृ | संस्कृत्य |
| परा+जि | पराजित्य | द्विधा+कृ | द्विधाकृत्य |
| वि+नी | विनीय | निस्+भिद् | निर्भिद्य |
| अनु+भू | अनुभूय | उत्+प्लु | उत्प्लुत्य |
| अधि+इ | अधीत्य | इत्यादि। | |

**७५२**. नियम ३९४, ३९५, ४५९, ५०२ और ५८७ ल्यप् (य) प्रत्यय करने पर भी लगते हैं :––

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्र+दिव् | प्रदीव्य | प्र+वच् | प्रोच्य |
| अव+कॄ | अवकीर्य | प्र+वस् | प्रोष्य |
| आ+पॄ | आपूर्य | वि+ग्रह् | विगृह्य |
| नि+बन्ध् | निबध्य | आ+ह्वे | आहूय |
| अनु+मि, मी, मा, मे[1] | अनुमाय | उप+दी | उपदाय |
| परि+त्रै | परित्राय | वि+ली | विलीय, विलाय |
| आ+दे | आदाय | | इत्यादि। |

**७५३**. इन धातुओं के अन्तिम अनुनासिक का नित्य लोप हो जाता है–– तनादि गण (गण ८) की धातुएँ (सन् को छोड़ कर), मन्, वन् और हन्। गम्, नम्, यम् और रम् के न् का लोप विकल्प से होता है। वि+तन्––वितत्य, अव+मन्––अवमत्य, नि+यम्–नियम्य, नियत्य; वि+रम्–विरम्य, विरत्य; प्र+नम्–प्रणम्य, प्रणत्य, इत्यादि।

---

१. मे के ए को विकल्प से इ हो जाता है। अतः अनुमित्य भी होता है।

७५४. खन्, जन् और सन् के न् को विकल्प से आ हो जाता है। निखन्य–निखाय, प्रजन्य–प्रजाय, प्रसन्य–प्रसाय ।

७५५. य बाद में होने पर क्षि के इ को दीर्घ हो जाता है और जागृ के ऋ को गुण हो जाता है। प्रक्षीय, प्रजागर्य ।

७५६. वे, ज्या और व्ये को संप्रसारण नहीं होता है। प्रवाय, प्रज्याय ( वृद्ध होकर ), उपव्याय ( ढक कर )। किन्तु सम् और परि उपसर्ग पहले होने पर व्ये को विकल्प से संप्रसारण होता है। परिव्याय–परिवीय, संव्याय-संवीय ।

७५७. नियम ४८६ में दी हुई धातुओं के आ को ई नहीं होता है। प्रयाय; प्रधाय, प्रमाय, आदि ।

७५८. यदि उपधा में ह्रस्व स्वर है तो चुरादिगणी और णिजन्त धातुओं का अय् शेष रहता है, य बाद में होने पर। यदि ऐसा नहीं है तो अय् का लोप हो जाएगा। चोरय–प्रचोर्य, बोधय–प्रबोध्य, कृ+णिच्–विकार्य, आ+नी+णिच्––आनाय्य, आदि । किन्तु गण्–विगणय्य, प्रणमय्य, प्रकथय्य, प्रवेभिदय्य ( बार-बार तुड़वा कर ) ।

७५९. आपि ( आप्+णिच् ) के अय् का विकल्प से लोप होता है। प्राप्य, प्रापय्य ।

७६०. सन्नन्त अंग में ल्यप् ( य ) तुरन्त बाद में लगता है। यङन्त अंग में यदि यङ के य से पहले व्यंजन है तो यङ के य का लोप हो जाएगा और यदि यङ के य से पहले स्वर है तो यङ के य के अ का ही लोप होगा। बुध्+सन्––प्रबुबोधिष्य, बुध्+यङ––प्रबोबुध्य, भू+यङ–प्रबोभूय्य, आदि ।

## (ख) णमुल् (अम्) प्रत्यय (अव्यय कृदन्त )

## ( The Adverbial Indeclinable Participle )

७६१. त्वा ( कर या करके ) वाले अर्थ में ही णमुल् ( अम् ) प्रत्यय लगा कर भी अव्यय कृदन्त शब्द बनते हैं। इस प्रत्यय के होने पर धातु में या प्रत्ययान्त धातु में प्रायः वही परिवर्तन होते हैं जो कि कर्मवाच्य लुङ प्र० पु० एक० में इ से पहले धातु में होते हैं। धातु के अन्तिम स्वरों को वृद्धि होती है तथा उपधा के अ को आ होता है और अन्य उपधा के ह्रस्व स्वरों को गुण होता है। नी–नायम् ( ले जा कर ), दा–दायम् ( देकर ), भू–भावम्, भिद्–भेदम्, ग्रह्–ग्राहम्, गम्–गमम्, इत्यादि ।

**७६२**. ये अम्-प्रत्ययान्त रूप साधारणतया समास के अन्त में प्रयुक्त होते हैं। स लोष्ठघातं हतः ( वह ढेले की चोट से मारा गया ), वन्दिग्राहं गृहीता ( विक्रमो० १ ) ( वह वन्दी बनाई गई ), स मूलघातं न्यवधीदरींश्च ( भट्टि० १-२ )। ( उसने अपने शत्रुओं को समूल नष्ट कर दिया ), आदि।

**७६३**. त्वा और अम् प्रत्ययान्त जब दो बार पढ़े जाते हैं तो वे क्रिया की द्विरुक्ति या पुनः पुनः होने का भाव प्रकट करते हैं।[1] जैसे——स्मृत्वा स्मृत्वा, स्मारं स्मारम् ( बार बार याद करके ) पीत्वा पीत्वा, पायं पायम् ( बार बार पीकर )। इसी प्रकार भुज्—भुक्त्वा भुक्त्वा, भोजं भोजम्; श्रु—श्रुत्वा श्रुत्वा, श्रावं श्रावम्; गम्—गत्वा गत्वा, गामं गामम्, गमं गमम्; लभ्—लब्ध्वा लब्ध्वा, लम्भं लम्भम्, लाभं लाभम्, प्रलम्भं प्रलम्भम्; जागृ—जागरं जागरम्, आदि।[2]

**७६४**. कतिपय स्थानों पर अम्-प्रत्ययान्त कृदन्त द्विरुक्त का भाव प्रकट नहीं करते हैं।

**७६५**. अग्रे, प्रथमम् और पूर्वम् उपसर्ग के तुल्य पहले प्रयुक्त होने पर धातु से त्वा या अम् लगता है और इन समासों में द्विरुक्त का अर्थ नहीं होता है। अग्रे भोजम्, अग्रे भुक्त्वा वा व्रजति (पहले खाकर वह बाहर जाता है)। इसी प्रकार प्रथमं भोजम्, प्रथमं भुक्त्वा वा व्रजति। पूर्वं भोजम्, पूर्वं भुक्त्वा वा व्रजति।

**७६६**. कृ धातु का अम्-प्रत्ययान्त कारम् रूप इन स्थानों पर लगता है[3]:——

---

१. आभीक्ष्ण्ये णमुल् च ( ३-४-२२ )

२. समास के अन्त में यह दो बार न पढ़े जाने पर भी द्विरुक्त का भाव प्रकट करता है। जैसे——

लतानुपातं कुसुमान्यगृह्णात् स नद्यवस्कन्दमुपास्पृशच्च।
कुतूहलाच्चारुशिलोपवेशं काकुत्स्थ ईषत् स्मयमान आस्त॥
( भट्टि० २-११ )

ककुत्स्थ के वंशज राम ने कुछ मुस्कराते हुए बार बार लताओं को झुका कर उनसे फूल तोड़े, बार बार प्राप्त हुई नदियों को पार करते समय उनक जल पिया और कुतूहलता के कारण सुन्दर शिलाओं पर (दृश्य की प्रशंसा करते हुए ) बैठे।

३. कर्मण्याक्रोशे कृञः खमुञ् ( ३-४-२५ )। स्वादुमि णमुल् ( ३-४-२६ )। अन्यथैवंकथमित्थंसु सिद्धाप्रयोगश्चेत् ( ३-४-२७ )। यथातथयोरसूयाप्रतिवचने ( ३-४-२८ )।

(क) किसी द्वितीयान्त उपपद का इसके साथ समास हो और निन्दा अर्थ अभिप्रेत हो। चौरंकारम् आक्रोशति ( चौरशब्दम् उच्चार्येत्यर्थः, वह चोर है, चोर है, इस प्रकार चिल्लाता है )। यहाँ पर चौर शब्द के बाद म् लगता है।

(ख) स्वादु, लवण और संपन्न पहले होने पर कारम् लगता है। इन शब्दों के बाद में म् लगता है। अस्वादुं स्वादुं कृत्वा भुङ्क्ते, स्वादुंकारं भुङ्क्ते। इसी प्रकार लवणंकारं, संपन्नंकारं भुङ्क्ते ( अपने भोजन को स्वादिष्ट या मसालेदार बना कर खाता है )।

(ग) अन्यथा, एवम्, इत्थम् और कथम् के बाद कारम् लगता है। इन स्थलों पर कारम् का स्वतन्त्र अर्थ नहीं होता है। अन्यथाकारं ब्रूते ( दूसरे ढंग से बोलता है ), एवंकारं भुङ्क्ते ( वह इस प्रकार से खाता है )। इसी प्रकार इत्थंकारम्, कथंकारम्। अन्यत्र—शिरोऽन्यथा कृत्वा भुङ्क्ते।

(घ) यथा और तथा के साथ कारम् लगता है, क्रोधपूर्वक उत्तर देने अर्थ में। यथाकारम् अहं भोक्ष्ये तथाकारं भोक्ष्ये किं तवानेन ( सि० कौ० ) ( मैं इस तरह खाऊँगा, मैं उस तरह खाऊँगा, तुझे इससे क्या ? )

**७६७.** दृश् और विद् धातुओं के अम्-प्रत्ययान्त रूपों का अपने कर्म के साथ समास होता है, यदि समस्त ( सभी ) का अर्थ अभिप्रेत हो तो।[1] कन्यादर्शं वरयति ( जितनी कन्याओं को देखता है, उन सभी को वरण करता है ), ब्राह्मणवेदं भोजयति ( यं यं ब्राह्मणं जानाति लभते विचारयति वा तं सर्वं भोजयतीत्यर्थः, सि० कौ० ) ( वह जिस किसी ब्राह्मण को जानता है या पाता है, उन सभी को भोजन खिलाता है )।

(क) विद् ( पाना ) और जीव् ( जीवित रहना ) का अम्-प्रत्ययान्त रूप यावत् के साथ उसी अर्थ में प्रयुक्त होता है।[2] यावद्वेदं भुङ्क्ते ( जितना पाता है, उतना खाता है )। यावज्जीवम् अधीते।

(ख) चर्मन् और उदर पहले होने पर पूर् से अम् प्रत्यय होता है।[3] चर्मपूरं स्तृणाति। उदरपूरं भुङ्क्ते ( पेट भरने के लिए खाता है )।

**७६८.** शुष्क, चूर्ण और रूक्ष पहले होने पर पिष् धातु से अम् प्रत्यय होता

---

१. **कर्मणि दृशिविदोः साकल्ये** (३-४-२९)।
२. **यावति विन्दजीवोः** (३-४-३०)।
३. **चर्मोदरयोः पूरेः** (३-४-३१)।

है।[1] शुष्कपेषं पिनष्टि ( शुष्कं पिनष्टि इत्यर्थः, सि० कौ० )। इसी प्रकार चूर्ण-पेषं पिनष्टि ( बहुत बारीक करके पीसता है )। रूक्षपेषम्।

**७६९.** इन स्थानों पर अम् प्रत्यय होता है :[2]—

(क) समूल, अकृत और जीव पहले होंगे तो क्रमशः हन्, कृ और ग्रह् धातुओं से कर्म अर्थ में अम् होता है। समूलघातं हन्ति ( समूल नष्ट करता है ), अकृतकारं करोति ( न करने योग्य को करता है )। जीवग्राहं गृह्णाति ( जीवित को ही सुरक्षित रखने के लिए पकड़ता है )।

(ख) क्रिया के करण पहले होने पर हन् और पिष् धातुओं से अम् होता है : पादघातं हन्ति = पादेन हन्ति ( पैर से चोट मारता है )। उदपेषं पिनष्टि = उदकेन पिनष्टि ( जल के साथ पीसता है )।

(ग) हस्त या हाथ वाची शब्द पहले होने पर वृत् और ग्रह् से अम् होता है। स्व पहले होने पर पुष् धातु से अम् होता है। हस्तवर्तं वर्तयति। इसी प्रकार कर-वर्तम् ( हस्तेन गुलिकां करोतीत्यर्थः, सि० कौ० )। हस्तग्राहं गृह्णाति। इसी प्रकार पाणिग्राहम्, करग्राहम्, आदि। स्वपोषं पुष्णाति।

**७७०.** विशेष प्रकार की छन्द-रचना के बोधक आदि पद पहले होने पर बन्ध् से अम् प्रत्यय होता है।[3] चक्रबन्धं बध्नाति, क्रौञ्चबन्धं बद्धः, मरजबन्धं बद्धः, मयूरिकाबन्धम्, अट्टालिकाबन्धम्, आदि।

**७७१.** जीव और पुरुष शब्द कर्ता के रूप में पहले हों तो नश् और वह् धातुओं से अम् प्रत्यय होता है।[4] जीवनाशं नश्यति ( जीवो नश्यतीत्यर्थः ), पुरुषवाहं वहति ( पुरुषो वहतीत्यर्थः )।

(क) ऊर्ध्व शब्द कर्ता के रूप में पहले होगा तो शुष् और पूर् धातुओं से अम् प्रत्यय होता है।[5] ऊर्ध्वशोषं शुष्यति ( वृक्षादिरूर्ध्व एव तिष्ठन् शुष्यतीत्यर्थः ),

---

१. **शुष्कचूर्णरूक्षेषु पिषः ( ३-४-३५ )।**
२. **समूलाकृतजीवेषु हन्कृञ्ग्रहः ( ३-४-३६ )। करणे हनः ( ३-४-३७ )। स्नेहने पिषः ( ३-४-३८ )। हस्ते वर्तिग्रहोः ( ३-४-३९ )। स्वे पुषः ( ३-४-४० )।**
३. **अधिकरणे बन्धः ( ३-४-४१ )। संज्ञायाम् ( ३-४-४२ )।**
४. **कर्त्रोर्जीवपुरुषयोर्नशिवहोः ( ३-४-४३ )।**
५. **ऊर्ध्वे शुषिपूरोः ( ३-४-४४ )।**

ऊर्ध्वपूरं पूर्यते ( ऊर्ध्वमुख एव घटादिर्वर्षोदकादिना पूर्णो भवतीत्यर्थः, सि० कौ० ) ।

(ख) उपमान-वाचक शब्द पहले होने पर धातु से अम् प्रत्यय होता है।[1] घृतनिधायं निहितं जलम् ( जल को घी की तरह बहुत सँभाल कर रक्खा हुआ था ), अजकनाशं नष्टः ( अजक इव नष्ट इत्यर्थः ) ।

**७७२**. इन स्थानों पर णमुल् ( अम् ) प्रत्यय होता है[2]:—

(क) तृतीयान्त पद पहले होने पर हिंसा अर्थ वाली धातु से अम् प्रत्यय होता है, धातु का कर्म और अमन्त का कर्म एक ही होना चाहिए। दण्डोपघातं गाः कालयति ( दण्डेनोपघातम् ) ( वह डण्डे से मार कर गायों को एकत्र करता है ) । दण्डताडम् । अन्यत्र—दण्डेन चोरमाहत्य गाः कालयति ।

(ख) सप्तम्यन्त या तृतीयान्त पद पहले होने पर उपपूर्वक पीड्, रुध् और कर्ष् धातुओं से अम् प्रत्यय होता है। पार्श्वोपपीडं शेते ( पार्श्वाभ्याम् उपपीडम् ), व्रजोपरोधं गाः स्थापयति ( व्रजेन व्रजे वा उपरोधम् ), पाण्युपकर्षं धानाः संगृह्णाति ( पाणावुपकर्षं पाणिनोपकर्षं वा, सि० कौ० ) ।

(ग) इसी प्रकार केशग्राहं युध्यन्ते ( केशेषु गृहीत्वा ), हस्तग्राहम् (हस्तेन गृहीत्वा ), द्व्यङ्गुलोत्कर्षं खण्डिकां छिनत्ति ( द्व्यङ्गुलेन द्व्यङ्गुले वा उत्कर्षम्, सि० कौ० ) ।

(घ) पंचमी और द्वितीया के अर्थ वाले शब्द पहले होने पर शीघ्रता अर्थ में धातु से अम् प्रत्यय होता है। शय्योत्थायं धावति ( शीघ्रता से बिस्तर छोड़कर भागता है ), यष्टिग्राहं युध्यन्ते, लोष्ठग्राहम्, आदि ।

**७७३**. द्वितीयान्त शरीरावयववाची शब्द पहले होने पर धातु से अम् प्रत्यय होता है। यह शरीरावयव ऐसा होना चाहिए जिसके कटने पर भी मृत्यु न हो ।[3] भ्रूविक्षेपं कथयति ( भौंओं को हिलाता हुआ कहता है ) । अन्यत्र—शिर उत्क्षिप्य, यहाँ पर शिर उत्क्षेपम् नहीं होगा। शिर के कटने से मृत्यु हो जाती है।

---

१. **उपमाने कर्मणि च** (३-४-४५) ।
२. **हिंसार्थानां च समानकर्मकाणाम्** (३-४-४८) । **सप्तम्यां चोपपीडरुधकर्षः** (३-४-४९) । **समासत्तौ** (३-४-५०) । **प्रमाणे च** (३-४-५१) । **अपादाने परीप्सायाम्** (३-४-५२) । **द्वितीयायां च** (३-४-५३) ।
३. **स्वाङ्गेऽध्रुवे** (३-४-५४) । **येन विना न जीवनं तद् ध्रुवम्, सि० कौ०** ।

(क) पूर्णतया पीड़ित द्वितीयान्त शरीरावयववाची शब्द पहले होने पर धातु से अम् होता है।[1] उरःप्रतिषेधं युध्यन्ते ( कृत्स्नम् उरः पीडयन्त इत्यर्थः, सि० कौ०, सारे हृदय को पीडित करते हुए )। उरोविदारं प्रतिचस्करे नखैः।

**७७४.** द्वितीयान्त पद पहले होने पर विश्, पत्, पद् और स्कन्द् धातुओं से अम् प्रत्यय होता है, पूर्णतया व्याप्त होना या बार बार क्रिया को करना अर्थ में।[2] गेहानुप्रवेशम् आस्ते। गेहं गेहम् अनुप्रवेशम्। गेहम् अनुप्रवेशम् अनुप्रवेशम्। इसी प्रकार गेहानुप्रपातम्, गेहानुप्रपादम्, गेहानुस्कन्दम्, आदि।

**७७५.** (क) कालवाचक द्वितीयान्त शब्द पहले होने पर अस् और तृष् धातुओं से अम् प्रत्यय होता है, यदि समय का व्यवधान अर्थ अभिप्रेत हो तो।[3] द्व्यहात्यासं द्व्यहमत्यासं वा गाः पाययति ( दो दिन छोड़कर गायों को पानी पिलाता है ) ( अद्य पाययित्वा द्व्यहम् अतिक्रम्य पुनः पाययतीत्यर्थः, सि० कौ० )। इसी प्रकार द्व्यहतर्षम्, द्व्यहंतर्षम्।

(ख) द्वितीयान्त नामन् शब्द पहले होने पर आ+दिश् और ग्रह् धातुओं से अम् प्रत्यय होता है।[4] नामादेशम् आचष्टे, नामग्राहम् आह्वयति, आदि।

(ग) तूष्णीम् और अन्वच् शब्द पहले होने पर भू धातु से विकल्प से अम् प्रत्यय होता है। तूष्णींभूय–भूत्वा–भावम्। अन्वग्भूय, अन्वग्भूत्वा, अन्वग्भावम्।

### (ग) तुमुन् प्रत्यय ( The Infinitive )

**७७६.** धातु से तुमुन् ( तुम् ) प्रत्यय होता है। धातु को गुण होता है। जैसे—

| धातु | तुम् प्र० रूप | धातु | तुम् प्र० रूप |
|---|---|---|---|
| इ ( जाना ) | एतुम् | ग्रन्थ् ( ग्रन्थ बनाना ) | ग्रन्थितुम् |
| एध् ( बढ़ना ) | एधितुम् | पच् ( पकाना ) | पक्तुम् |
| दा ( देना ) | दातुम् | व्रश्च् ( काटना ) | व्रश्चितुम्, व्रष्टुम् |

१. परिक्लिश्यमाने च (३-४-५५)।
२. विशिपतिपदिस्कन्दां व्याप्यमानासेव्यमानयोः (३-४-५६)। गेहादिद्रव्याणां विश्यादिक्रियाभिः साकल्येन संबन्धो व्याप्तिः। क्रियायाः पौनःपुन्यमासेवा। (सि० कौ०)।
३. अस्यतितृषोः क्रियान्तरे कालेषु (३-४-५७)।
४. नाम्न्यादिशिग्रहोः (३-४-५८)।

| धातु | तुम् प्र० रूप | धातु | तुम् प्र० रूप |
| --- | --- | --- | --- |
| नी (ले जाना) | नेतुम् | गुह् (छिपाना) | गुहितुम्, गोढुम् |
| कृ (करना) | कर्तुम् | सह् (सहना) | सहितुम्, सोढुम् |
| भू (होना) | भवितुम् | चुर् (चुराना) | चोरयितुम् |
| धू (कँपाना) | धवितुम्, धोतुम् | बुध्+णिच् | बोधयितुम् |
| वृ (चुनना) | वरितुम्, वरीतुम् | बुध्+सन् | बुबोधिषितुम् |
| गै (गाना) | गातुम् | बुध्+यङ | बुबोधितुम् |
| गम् (जाना) | गन्तुम् | | इत्यादि |

भाग २

## कृत्प्रत्ययों से बने हुए विविध शब्द

**७७७.** निम्नलिखित सूची में प्रायः सभी विशेष प्रचलित कृत्-प्रत्ययों से बनने वाले शब्दों ( संज्ञा या विशेषण ) का उल्लेख किया गया है। कृत्-प्रत्यय अकारादि-क्रम से दिए गए हैं। ये कृत्-प्रत्यय विभिन्न अर्थों में धातु से या प्रत्ययान्त धातुओं से होते हैं। अ—(अच्, अण्, अप्, कञ्, खच्, खश्, खल्, घ, घञ्, ट, टक्, ड, ण और श ) :—

**अच्**—अच् ( अ ) प्रत्यय कर्ता अर्थ में पच् आदि धातुओं से होता है। पचतीति पचः ( पकाने वाला ), चर्—चरः, चुर्—चोरः, भू-भवः, नद्-नदः (नदी)। जार और श्वन् पहले होंगे तो भृ और पच् धातुओं से क्रमशः अच् प्रत्यय होता है। जारभरा ( परपुरुषगामिनी ), श्वपचः ( चाण्डाल )। कोई द्वितीयान्त शब्द पहले होने पर और परिश्रम का भाव न होने पर या आयुबोधक अर्थ होने पर हृ धातु से अच् प्रत्यय होता है। अंशं हरतीति अंशहरः ( दायाद, हिस्सेदार, उत्तराधिकारी )। अन्यत्र—भारहारः ( बोझा ढोने वाला ) ( भार+हृ+अण् )। कवचहरः ( युवक )। स्वभाव अर्थ में आ+हृ से अच् प्रत्यय होता है। पुष्पाणि आहर्तुं शीलमस्य असौ—पुष्पाहरः। शक्ति ( वज्र, परशु ), लांगल ( हल ), अंकुश ( अंकुश ), तोमर ( भाला ), यष्टि ( लाठी ), घट, घटी और धनुष् पहले होने पर ग्रह् धातु से अच् प्रत्यय होता है। शक्तिं गृह्णातीति शक्तिग्रहः ( परशु धारण करने वाला ), लांगलग्रहः, आदि। सूत्र शब्द पहले होने पर और धारण करना अर्थ होने पर ग्रह् धातु से अच् होगा। सूत्रग्रहः ( यज्ञोपवीत धारण करने वाला )। अन्यत्र—सूत्रग्राहः ( यज्ञोपवीत हाथ में लेने वाला, न कि

उसे पहनने वाला)। द्वितीयान्त शब्द पहले होने पर अर्ह् धातु से अच् होता है। पूजाम् अर्हतीति पूजार्हो ब्राह्मणः ( पूजा के योग्य ब्राह्मण )। सप्तम्यन्त स्तम्ब और कर्ण शब्द पहले होने पर क्रमशः रम् और जप् धातुओं से अच् प्रत्यय होता है। स्तम्बेरमः ( हाथी ), कर्णेजपः ( चुगलखोर, पिशुन )। शम् पहले होने पर किसी भी धातु से अच् हो सकता है। शंकरः, शंभवः, शंवदः आदि। अधिकरण (आधार) वाचक शब्द पहले होने पर शी धातु से अच् होता है। खे शेते—खशयः, खेशयः ( आकाश में रहने वाला )। इसी प्रकार हृच्छयः ( हृदय में रहने वाला, कामदेव )। पार्श्व, उदर, पृष्ठ आदि तथा उत्तान आदि शब्द पहले होने पर शी से अच् होता है। पार्श्वशयः, उदरशयः, पृष्ठशयः, आदि ( बगल से सोने वाला, आदि )। उत्तानशयः ( ऊपर की ओर मुँह करके पीठ के बल सोने वाला )। इसी प्रकार अवमूर्धशयः ( अवनतो मूर्धा अस्य तथा शेते, नीचे की ओर सिर करके सोने वाला )। इकारान्त धातुओं तथा अन्य कुछ धातुओं से अच् प्रत्यय करके भाववाचक शब्द बनते हैं। चि—चयः ( संग्रह ), जि—जयः, भी—भयम्, वृष्—वर्षः ( वर्षा ), आदि।

**अण्**——कर्मवाचक शब्द पहले होने पर धातु से अण् ( अ ) प्रत्यय होता है। कुम्भकारः ( कुम्हार ), भारहारः। कोई सुबन्त पहले होने पर सम्+हन् से अण् होता है। धातु के न् को विकल्प से ट् हो जाता है। वर्णसंघातः, वर्णसंघाटः ( शब्दों का समूह )।

**अप्**——ह्रस्व और दीर्घ उकारान्त और ऋकारान्त धातुओं से अप् (अ) प्रत्यय होता है। अप् प्रत्यय लगा कर कुछ भाववाचक शब्द बनते हैं, कुछ स्थानवाचक और कुछ क्रिया के साधनवाचक शब्द होते हैं। स्तु—स्तवः (प्रशंसा), यु—यवः ( जौ ), पू—पवः, भू-भवः, कृ—करः ( करने का साधन अर्थात् हाथ ), गॄ-गरः ( विष ), दृ-दरः ( डर ), वृ-वरः (वर), आदि। वि + स्तृ-विष्टरः ( वृक्ष या आसन ), अन्यत्र विस्तरः। सम् + हन् से अप्। संघः (समूह)। गम् से अप्—गमः। कोई उपसर्ग पहले होने पर अद् से अप् और अद् को घस्। निघसः, विघसः, प्रघसः आदि ( अन्न या भोजन )। जहाँ पर उपसर्ग पहले नहीं होता है, वहाँ पर घञ् प्रत्यय होकर घासः रूप होता है। उपसर्ग पहले न होने पर जप् और व्यध् से अप्। जपः ( जप करना ), व्यधः ( बींधना )। जहाँ पर उपसर्ग पहले होता है, वहाँ पर घञ् होता है। जैसे——उपजापः ( कान में चुपके

कुछ कहना, वियोग आदि )। स्वन् और हस् से अप् और घञ् दोनों होते हैं ; स्वन्—स्वनः, स्वानः ( ध्वनि ), हस्-हसः, हासः। उपसर्ग पहले होने पर घञ् ही होता है। प्रस्वानः, प्रहासः, आदि। उपसर्ग-रहित यम् धातु से तथा उप, नि, वि और सम् उपसर्ग-पूर्वक यम् धातु से अप् और घञ् दोनों होते हैं। यमः-यामः ( संयम, नियन्त्रण ) आदि। उपयमः-उपयामः ( विवाह )। इसी प्रकार नियमः-नियामः आदि। नि उपसर्गपूर्वक गद्, नद्, पद् और स्वन् से अप् और घञ् दोनों होते हैं। निगदः-निगादः ( भाषण, वचन ), निनदः-निनादः ( ध्वनि ), आदि। क्वण् धातु स्वतंत्र और नि-पूर्वक से अप् और घञ् दोनों होते हैं। क्वणः-क्वाणः, निक्वणः-निक्वाणः ( वीणा का स्वर )। उपसर्ग के अतिरिक्त कोई शब्द पहले होने पर मद् से अप् होता है और उपसर्ग पहले होने पर घञ्। धनमदः ( धन का मद ), उन्मादः ( घमण्ड, प्रमत्तता )। प्र या सम् पहले होने पर अप् ही होगा, प्रसन्नता अर्थ में। प्रमदः, संमदः। अन्य अर्थों में घञ् होता है। प्रमादः, संमादः ( प्रमत्तता, असावधानी, भूल-चूक )। उपर्युक्त धातुओं के अतिरिक्त अन्य बहुत सी धातुएँ हैं, जिनसे अप् और घञ् प्रत्यय होते हैं। उन सब का यहाँ पर उल्लेख करना संभव नहीं है। अप् और घञ् में अन्तर यह है कि घञ् होने पर धातु में वृद्धि होगी, अप् होने पर नहीं।

**क**—उपधा में इ, उ, ऋ या ऌ वाली धातुओं से तथा प्री और कॄ धातुओं से क (अ) प्रत्यय होता है। यह कर्ता का बोधक होता है। लिख्-लिखः ( लेखक), क्षिप्-क्षिपः ( फेंकने वाला ), बुध्-बुधः, आदि। प्री-प्रियः (आनन्दित करने वाला ), कॄ-किरः ( फैलाने वाला )। उपसर्ग-रहित या उपसर्ग-सहित आकारान्त धातुओं से क होता है और अन्तिम आ का लोप हो जाता है। ज्ञा—ज्ञः या प्रज्ञः ( जानने वाला, विद्वान् ), ह्वे-ह्व या आह्वः ( पुकारने वाला )। आकारान्त धातु से पहले कोई सुबन्त होने पर भी क होता है। दा-गोदः ( गायों को देने वाला या बाल काटने वाला ), पा-द्विपः ( द्वाभ्यां पिबतीति, हाथी )। स्था धातु से विभिन्न अर्थों में क होता है। समस्थः ( प्रसन्न, स्वस्थ ), विषमस्थः ( विपत्तिग्रस्त ), प्रस्थ ( एक तोल ), आदि। ग्रह् धातु से भी क होता है। ग्रह्—गृहम् ( घर ), गृहाः ( स्त्री, गृह )।

**कञ्**—कोई उपसर्ग पहले होने पर दृश् धातु से कञ् (अ) प्रत्यय होता है, देखना अर्थ न हो तो। तत्+दृश्+अ=तादृशः (वैसा )। समान और अन्य

पहले हों तो भी कञ् होगा। सदृशः ( सदृश ), अन्यादृशः ( दूसरे के सदृश )। बीच में स भी लगता है। सदृक्षः, तादृक्षः, आदि।

**खच् और खश्**--इन प्रत्ययों के होने पर द्वितीयान्त उपपद के अ के बाद म् लग जाता है। प्रिय और वश पहले होने पर वद् से खच् (अ) होता है। प्रियं वदतीति प्रियंवदः ( प्रिय बोलने वाला ), वशंवदः ( आज्ञाकारी )। क्षेम, प्रिय, भद्र और भय पहले होने पर कृ से खच् (अ) होता है। क्षेमंकरः, प्रियंकरः, भद्रंकरः ( शुभ करने वाला ), आदि। भयंकरः ( भयकारी ), अभयंकरः। सुबन्त पहले होने पर गम् से खच्। विहंगमः ( आकाश में घूमने वाला, पक्षी )। संज्ञावाचक होने पर भृ, तॄ, वृ, जि, धृ, सह्, तप् और दम् से खच्। विश्वंभरः ( परमात्मा ), रथन्तरम् ( सामवेद का एक अंश ), पतिंवरा ( पति का वरण करने वाली कन्या ), शत्रुंजयः ( हाथी ), युगन्धरः ( एक पर्वत का नाम ), परन्तपः ( एक राजा का नाम ), अरिन्दमः ( एक राजा का नाम )। वाच् पहले होने पर यम् धातु से खच्। वाचंयमः ( वाणी पर संयम रखने वाला, मौन )। सर्व और पुर पहले होने पर क्रमशः सह् और दृ धातुओं से खच्। सर्वंसहा ( पृथ्वी ), पुरन्दर ( इन्द्र )। सर्व, कूल, अभ्र और करीष पहले होने पर कप् धातु से खच्। सर्वंकपः ( सब को नष्ट करने वाला, सर्वशक्तिमान् ), कूलंकपा ( नदी, किनारे को तोड़ने वाली ), अभ्रंकपः ( बादलों से रगड़ने वाला, वायु ), करीषंकपः ( सूखे गोबर को उड़ाने वाली, वायु या आँधी )। णिजन्त एज् से खश् होता है। जनमेजयः ( लोगों को भय से कँपा देने वाला, एक राजा का नाम )। वात, शुनी, तिला और शर्ध शब्द पहले होने पर क्रमशः अज्, धे, तुद् और हा धातु से खश् होता है। वातमजः ( हवा को सहने वाला, एक प्रकार का मृग ), शुनिंधयः ( बिल्ली का बच्चा ), तिलंतुदः ( तेली ) और शर्धजहाः ( उड़द )। स्तन और नाडी पहले होने पर क्रमशः धे और ध्मा से खश्। स्तनन्धयः ( दूध पीने वाला बच्चा ), नाडिन्धमः या नाडींधमः ( सुनार )। विधु और अरुष् पहले होने पर तुद् से खश्। विधुन्तुदः ( चन्द्रमा को दुःख देने वाला, राहु ), अरुन्तुदः ( अरूंषि मर्माणि तुदतीति, मर्मस्थलों को दुःख देने वाला, दुःखद )। परिमाणवाची शब्द पहले होने पर पच् से खश्। जैसे--प्रस्थंपचा स्थाली, खारिंपचः कटाहः। मित और नख पहले होने पर पच् से खश्। मितंपचः (नापतोल कर खाना पकाने वाला, कंजूस), नखंपचा ( नाखून को खरोंचने वाली, जैसे यवागूः )। असूर्य और ललाट पहले होने

पर दृश् और तप् से खश् । असूर्यपश्याः ( सूर्य को न देखने वाली, अर्थात् महारानियाँ जो अन्तःपुर से बाहर धूप में नहीं निकलती हैं ), ललाटंतपः ( माथे को तपाने वाला ) । उग्र, इरम् और पाणि पहले होने पर क्रमशः दृश्, मद् और ध्मा से खश् । उग्रंपश्यः ( देखने में भयंकर ), इरंमदः ( बिजली ), पाणिंधमः ( घोर अन्धकार से युक्त मार्ग, जहाँ पर मार्ग में पड़े हुए सर्प आदि को हटाने के लिए ताली पीटनी पड़ती है ) । अपने आप को समझना अर्थ में मन् धातु से खश् । जैसे—पण्डितंमन्यः ( अपने आपको पण्डित समझने वाला ), गांमन्यः ( अपने आपको गाय समझने वाला, विनम्र ), आदि ।

खल्—ईषत्, दुर् या सु पहले होने पर कठिन या सरल अर्थ में किसी भी धातु से खल् ( अ ) होता है । ईषत्करः ( सरलता से किया गया ), दुष्करः ( कठिनाई से किया गया ), सुकरः ( सरलता से किया गया ) । इसी प्रकार दुःशासनः, दुर्योधनः आदि ।

घ—साधन और स्थान अर्थ में घ ( अ) प्रत्यय होता है । इससे भाववाचक शब्द भी बनते हैं । आ + कृ—आकरः (खान), आ + खन्-आखनः (फावड़ा), आ + पण्-आपणः ( बाजार ), कष्—निकषः (कसौटी का पत्थर), चर्-गोचरः ( चरागाह ), संचरः ( मार्ग), वह्—वहः ( कन्धा), निगमः ( लोगों का पथ-प्रदर्शक, वेद ), व्रजः और व्यजः ( पंखा ) । घ प्रत्यय होने पर छाद् धातु को छद् हो जाता है, यदि एक से अधिक उपसर्ग पहले न हो तो । दन्तच्छदः ( होठ ), प्रच्छदः । अन्यत्र—समुपच्छादः ।

घञ्—प्रायः सभी धातुओं से घञ् (अ) प्रत्यय होता है । यह विभिन्न अर्थों में होता है । घञ् से पहले धातु के अन्तिम च् को क् और ज् को ग् होता है। पच्-पाकः ( भोजन ), कम्—कामः (इच्छा), श्रम्-विश्रामः (आराम), सृ-सारः ( बल या सारभाग ), अति + सृ—अतिसारः, अतीसारः ( पेचिश ), हृ—हारः ( गले का हार ), पद्-पादः ( पैर ), भू-भावः ( होना, वस्तु ), आदि । विश्-वेशः ( घर ), रुज्-रोगः ( रोग ), स्पृश्-स्पर्शः ( छूना ), इन्ध्-एधः ( लकड़ी), श्रन्थ्-प्रश्रन्थः ( ढीलापन ) । चि—चायः ( चीयतेऽस्मिन् अन्नादिकम्, शरीर ) । नि+चि—निकायः ( घर ), आदि । उपसर्ग पहले होने पर रु से घञ् । विरावः ( पक्षियों का कलरव ), अन्यत्र—(रवः) घञ् होने पर स्फुर् और स्फुल् के उ को आ हो जाता है । स्फारः, स्फालः ( हाथ का फड़कना आदि ) । आ पहले होने

पर रु और प्लु से घञ् और अप् दोनों होते हैं। आरावः-आरवः ( जोर का शब्द ), आप्लावः-आप्लवः ( बाढ़ ) । कभी कभी घञ् और अप् भिन्न भिन्न अर्थों में होते हैं । नी-नायः (प्रमुख ), प्रणयः ( प्रेम, दयाभाव ); परिणायः ( शतरंज की गोटियों को इधर उधर हटाना, आदि ), परिणयः ( विवाह ) । नि + इ-न्यायः ( न्याय ), न्ययः ( नाशः ) । अव और नि पहले होने पर ग्रह् से घञ् और अप् । अवग्राहः, निग्राहः ( विघ्न, वियोग ), अवग्रहः ( व्याकरण में ऽचिह्न ), चोरस्य निग्रहः ( चोर को पकड़ना ) । किन्तु अवग्राहः-अवग्रहः ( अनावृष्टि, वर्षा का अभाव ) । पुष्प पहले होने पर चि से घञ्, यदि हाथ से फूल तोड़ना अर्थ हो तो । पुष्पचायः । अन्यत्र पुष्पचयः ( डंडे से फूल तोड़ता है), आदि । भुज् और नि+उब्ज् से भी घञ् होता है । भुजः (हाथ), न्युब्जः (कुब्बड़ वाला, बड़ का वृक्ष) ।

**ट**—दिवा, भास्, यत्, तत्, किम्, संख्यावाचक शब्द और कर्मवाचक संज्ञा-शब्द पहले होने पर कृ धातु से ट (अ) प्रत्यय होता है । दिवा करोतीति दिवाकरः, भास्करः (सूर्य), यत्करः आदि । पुरः, अग्रतः, अग्रे और पूर्व पहले हो तो सृ धातु से ट होता है । पुरःसरः, अग्रतःसरः ( नेता ), आदि । भिक्षा, सेना, दाय और अधिकरणवाचक शब्द पहले होने पर चर् से ट होता है । भिक्षाचरः (भिखारी), सेनाचरः (सैनिक ) आदि ।

**टक्**—जाया और पति शब्द पहले होने पर हन् धातु से टक् (अ) होता है और हन् को घ्न हो जाता है, यदि शरीर पर मृत्युसूचक कोई अशुभ चिह्न अर्थ हो तो । जायाघ्नः ( पति के शरीर पर ऐसा चिह्न होना जो यह सूचित करे कि उसकी पत्नी मर जाएगी ) । इसी प्रकार पतिघ्नी । क्रिया का कर्ता यदि मनुष्य से भिन्न कोई वस्तु पहले हो तो हन् से टक् होगा । पित्तघ्नम् ( पित्त को नष्ट करने वाला, घी आदि ), पतिघ्नी ( पाणिरेखा ), आदि । हस्तिन् और कपाट शब्द पहले होने पर हन् से टक् होगा, नष्ट करने की शक्ति अर्थ हो तो । हस्तिघ्नः ( जो हाथी को मार सकता है ), आदि । पाणि और ताड शब्द पहले होने पर हन् से टक् होगा, वाद्यवादन में चतुरता अर्थ हो तो । पाणिघः ( तबला या ढोलक बजाने वाला ) । उपसर्ग से भिन्न कोई शब्द पहले होगा तो पा (पीना) और गै धातु से टक् होगा । सोमपः ( सोमरस का पान करने वाला ), साम गायतीति सामगः ( सामवेद का गान करने वाला ) । अन्यत्र—उपसर्ग पहले होने पर सामसंगायः । पा ( रक्षा करना ) से अ होता है । क्षीरपा ब्राह्मणी, आदि ।

**ड**——ये शब्द पहले होंगे तो गम् धातु से ड ( अ ) प्रत्यय होगा——अन्त, अत्यन्त, अध्वन्, दूर, पार, सर्व, अनन्त, सर्वत्र, पन्न ( रगड़ते हुए भूमि पर चलना), उरस् और विहायस् । यह कर्ता अर्थ का बोधक होता है । दुर् और सु पहले होने पर गम् से ड प्रत्यय अधिकरण का बोधक होता है । ड प्रत्यय होने पर धातु की टि अर्थात् अन्तिम स्वर या अन्तिम स्वर-सहित व्यंजन का लोप हो जाता है । अन्तं गच्छतीति अन्तगः ( अन्त तक जाने वाला ), अध्वगः ( पथिक), पन्नगः, उरोगः ( साँप ), विहायस् को विह हो जाता है । विहगः ( पक्षी) । दुर्गः ( किला ), आदि । हन् धातु से ड होता है, आशीर्वाद अर्थ में । तव पुत्रः शत्रुहः भवेत् ( तेरा पुत्र शत्रुओं को नष्ट करने वाला हो ) । क्लेश और तमस् पहले हों तो अप+हन् से ड होता है। क्लेशापहः ( दुःखनाशक, पुत्र), तमोऽपहः ( अन्धकार का नाशक, सूर्य ) । जातिभिन्न अर्थ में सप्तम्यन्त या पंचम्यन्त शब्द पहले होने पर, अथवा कोई उपसर्ग पहले होने पर संज्ञावाचक अर्थ में जन् धातु से ड प्रत्यय होता है । मन्दुरजः ( घुड़साल में पैदा हुआ ), सरसिजम् ( कमल), संस्कारजः ( चीरा-फाड़ी के बाद उत्पन्न हुआ ), अदृष्टजः आदि । प्रजाः, अनुजः ( छोटा भाई ) । द्विजः, अजः, ब्राह्मणजः आदि भी इसी प्रत्यय से वनते हैं । परि+खन् से भी ड होता है । परिखा ( खाई ) ।

**ण**——इन स्थानों पर होता है——आकारान्त धातुओं से ण (अ) प्रत्यय होता है और आ के वाद य् लग जाता है । दा–दायः ( जो हिस्से को लेता है ), धा–धायः ( जो पकड़ता है ), आदि । अव और प्रति पहले होंगे तो श्यै से । अवश्यायः ( कुहरा ), प्रतिश्यायः ( सर्दी, जुकाम ) । कोई उपसर्ग पहले हो तो इ, स्रु, सो और हृ धातुओं से । अत्यायः ( उल्लंघन ), संस्रावः ( चूना, टपकना ), अवसायः ( अन्त ), अवहारः ( चोर ) । लिह्, श्लिष्, ग्रह्, व्यध्, श्वस् और भू धातुओं से । लेहः ( चाटने योग्य वस्तु, चटनी), श्लेषः ( आलिंगन), ग्राहः ( मगर ), व्याधः ( बहेलिया), श्वासः ( साँस ), भावः ( वस्तु )। कोई उपसर्ग पहले न हो तो नी और दु धातुओं से । नायः ( नेता), दावः ( दावाग्नि ) । ज्वल्, चल्, जल्, टल् ( घबड़ा जाना ), तल् (सूँघना ), हल्, पल्, बल्, पुल्, कुल्, शल्, हुल्, पत्, क्वथ्, पथ्, नथ्, वम्, भ्रम्, क्षर्, सह्, शद्, कुश्,वुध् और कस् धातुओं से । इनसे अच् प्रत्यय भी होता है । ज्वालः-ज्वलः ( ज्वाला, लपट ), आदि । यदि कर्म पहले होंगे तो शील्, कम् और भक्ष् धातुओं से । मांसशीलः (मांस रखने वाला), मांस-

कमः ( मांस का इच्छुक), मांसभक्षः ( मांस खाने वाला ) । ईक्ष्, क्षम् और आ + चर् से । सुखप्रतीक्षः (सुख का इच्छुक), बहुक्षमः ( बहुतों को क्षमा करने वाला ), कल्याणाचारः ( अच्छे आचरण वाला ) । कर्म पहले होने पर ह्वे, वे और मा से । स्वर्ग ह्वयते स्वर्गह्वायः, तन्तुवायः ( जुलाहा ), धान्यमायः (धान को तोलने वाला ) । नि+अद् से । न्यदः ( अन्न ) ।

**श**—इन स्थानों पर होता है—पा, घ्रा, ध्मा, धे और दृश् से श (अ) होता है। पिबः ( पीने वाला), जिघ्रः ( सूँघने वाला ), दृश्–पश्यः (देखने वाला) । जुहोत्यादि० की दा और धा से । दा–ददः ( देने वाला ), धा–दधः ( रखनेवाला)। लिम्प् और विद् से । लिम्पः ( लीपने वाला ), विन्दः ( जानने वाला ) । नि+ लिम्प् और गो आदि +विद् से भी । निलिम्पः ( देवता ), गोविन्दः ( विष्णु का नाम ) , अरविन्दः (कमल) । णिजन्त चित्, पृ , उत्+एज् और धृ से । चेतयः ( जानने वाला या सोचने वाला ), पारयः ( पूरा करने वाला ), उदेजयः (दूसरों को कँपाने वाला ) ( देखो भट्टि० १-२५ ), धारयः ( धारण करने वाला )। सभी धातुओं से श (अ) प्रत्यय करने पर भाववाचक स्त्रीलिंग शब्द बनते हैं । कृ–क्रिया ( कार्य ), इष्–इच्छा ( इच्छा ), परिचर्–परिचर्या ( सेवा ), मृग–मृगया ( शिकार खेलना ), अट्–अटाट्या ( घूमना ), जागृ–जागर्या ( जागरूकता ), आदि ।

**अ**—प्रत्ययान्त धातुओं से इसे लगाकर भाववाचक शब्द बनाए जाते हैं । कृ–चिकीर्षा ( करने की इच्छा ), पुत्रकाम्या ( पुत्र की इच्छा), आदि । उपधा में दीर्घ स्वर वाली और हलन्त धातुओं से । ईह्–ईहा (इच्छा ), ऊह्–ऊहा ( अनुमान, तर्क), आदि ।

**अङ**—इस प्रत्यय को लगाकर भी भाववाचक शब्द बनते हैं । यह पित् ( प् इत्संज्ञक वाली ) और भिद् आदि धातुओं से होता है। जॄ—जरा (बुढ़ापा), त्रप्—त्रपा, आदि । भिद्–भिदा ( पृथक् करना ), चिन्त्–चिन्ता ( सोचना, चिन्ता ), मृज्–मृजा ( स्वच्छता ), आदि । कृप् धातु से । कृप् के र को ऋ हो जाएगा । कृपा ( दया ) । यदि कोई उपसर्ग, श्रत् और अन्तर् शब्द पहले होंगे तो आकारान्त धातुओं से अङ होगा । दा–प्रदा ( दान देना ), भा–प्रभा (चमक), आदि। श्रत्+धा–श्रद्धा ( विश्वास) । अन्तर्+ धा–अन्तर्धा ( लुप्त होना ) ।

**अक**--(क्वुन्, ण्वुल्, वुञ्, वुन्, ष्वुन् ) --

**क्वुन्**---रञ्ज् से क्वुन् ( अक ) । रजकः ( धोबी ) ।

**ण्वुल्**---यह सभी धातुओं से होता है और कर्ता का अर्थ बताता है। कृ--कारकः ( करने वाला ) आदि। पच्--पाचकः ( पकाने वाला ), हन्--घातकः, दा--दायकः, धा--धायकः, आदि। शम् आदि धातुओं से ण्वुल् होता है, परन्तु इनकी उपधा को वृद्धि नहीं होती है। शम्--शमकः, दम्--दमकः, वधकः ( वध करने वाला ), जनकः ( पिता ), आदि। कुछ धातुओं से ण्वुल् प्रत्यय होने पर रोगों के नाम बनते हैं। छृद्---प्रच्छर्दिका ( कै ), वह--प्रवाहिका ( पेचिश, दस्त ), चर्च्---विचर्चिका ( खाज, खुजली ), आदि। कभी कभी अक प्रत्यय करने पर भाववाचक शब्द बनता है और धात्वर्थ बताता है। आस्---आसिका ( बैठना ), शी--शयिका ( सोना ), आदि। यह कभी कभी भविष्य अर्थ भी बताता है। कृष्णं दर्शको याति ( कृष्ण को देखने के लिए जाता है, सतां पालकः, आदि।

**वुञ्**---इन धातुओं से कर्ता अर्थ में या स्वभाव अर्थ में वुञ् ( अक ) होता है---निन्द्, हिंस्, क्लिश्, खाद्, वि+नश्, परि+क्षिप्, रट्, वद्, व्ये, भाष् और सृ। निन्द्--निन्दकः ( निन्दा करने वाला या निन्दा करने के स्वभाव वाला ),हिंस्--हिंसकः, क्लिश्--क्लेशकः, आदि। आपूर्वक दिव् और क्रुश् से। आदेवकः ( जुआरी ), आक्रोशकः ( चिल्लाने वाला ) ।

**वुन्**---प्रु, सृ और लु धातुओं से कुशल अर्थ में वुन् ( अक ) होता है। प्रु--प्रवकः, सृ--सरकः ( चलने में चतुर ), लवकः ( काटने में चतुर ) । आशीर्वाद अर्थ में किसी भी धातु से अक हो सकता है। जीवकस्त्वं भूयाः ( तुम बहुत समय तक जीवित रहो ), नन्दकस्त्वं भूयाः ( तुम आनन्दित करने वाले होओ ) ।

**ष्वुन्**---नृत्, खन् और रञ्ज् धातुओं से उस विद्या को जानने अर्थ में ष्वुन् (अक) होता है। नर्तकः ( नृत्यकला जानने वाला ), खनकः ( खुदाई करने वाला ), रञ्जकः ( रँगने वाला ) ।

**अथु ( अथुच् )**---वेप्--वेपथुः ( कम्पन ), श्वि-श्वयथुः ( सूजन ), दु--दवथुः ( पीड़ा, चिन्ता, ) आदि ।

**अन**--( ण्युट्, युच्, ल्यु, ल्युट् ) --

**ण्युत्**—गै और हा से ण्युत् ( अन ) होता है। गायनः ( गाने वाला ), हायनः ( वर्ष, एक प्रकार का चावल )।

**युच्**—जाना और शब्द करना अर्थ वाली धातुओं से युच् ( अन ) होता है। चल्—चलनः ( चलने वाला ), रु—रवणः ( शब्द करने वाला )। इसी प्रकार शब्दनः आदि। यह अलंकृत करना और क्रुद्ध होना अर्थ वाली धातुओं से भी होता है। भूष्—भूषणः ( अलंकार का साधन ), मण्ड्-मण्डनः, क्रुध्—क्रोधनः, रुष्—रोषणः ( क्रोधी )। यह जु, सृ, गृध्, ज्वल्, शुच्, लष्, पत्, पद् से भी होता है। जु—जवनः ( तीव्र चलने वाला ), सृ—सरणः ( जाने वाला ), गृध्—गर्धनः ( पेटू, लोभी ), ज्वलनः ( जलाने वाली, आग )। कुछ हलन्त धातुओं से भी यह होता है। वृत्—वर्तनः, वृध्—वर्धनः, आदि। क्रम् और द्रम् के यङन्त रूप से। चंक्रमणः, दंद्रमणः ( बार बार जाने वाला )। णिजन्त धातुओं, श्रन्थ्, घट्, वन्द् और इच्छार्थक इष् धातु से अन होकर स्त्रीप्रत्ययान्त भाववाचक शब्द बनते हैं। कृ—कारणा ( करना ), हृ—हारणा, आस्-आसना, श्रन्थ्-श्रन्थना, घट्-घटना, वन्द्—वन्दना, विद्—वेदना, अनु+इष्—अन्वेषणा ( अन्वेषण करना )।

**ल्यु**—नन्द् आदि धातुओं से ल्यु ( अन ) होता है। नन्दनः ( आनन्दित करने वाला, पुत्र ), मद्-मदनः ( उन्मत्त करने वाला, कामदेव ), साध्-साधनः ( पूरा करने वाला ), सह्-सहनः ( सहन करने वाला ), सूद्—मधुसूदनः ( मधु राक्षस का नाशक ), अर्द्—जनार्दनः ( पापियों का संहर्ता ), भी—विभीषणः ( डराने वाला, रावण के भाई का नाम )।

**ल्युट्**—यह सभी धातुओं से होता है। इससे नपुंसकलिंग भाववाचक शब्द बनते हैं। सह्—सहनम् ( सहना ), हस्—हसनम् ( हँसना ), शी—शयनम् ( सोना ), पा—पानम् ( पीना ), भुज्—भोजनम्, साध्—साधनम्, आदि। यह करण अर्थ में भी होता है। व्रश्च्—व्रश्चनः ( काटने का साधन, कुल्हाड़ी ), आदि। दुह्—गोदोहनी ( गाय दुहने का पात्र ), यहाँ पर यह अधिकरण अर्थ में है।

**आक ( षाकन् )**—स्वभाव अर्थ में जल्प्, भिक्ष्, कुट्ट्, लुण्ट् और वृ से षाकन् ( आक ) होता है। जल्पाकः ( जल्पितुं शीलमस्य, अधिक बातूनी ), भिक्ष्—भिक्षाकः ( भिखारी ), कुट्टाकः ( काटने वाला ), लुण्टाकः ( लुटेरा ), वराकः ( बेचारा )।

**आरु**—शृ—शरारुः ( घातक ), वन्द्—वन्दारु ( स्तुतिकर्ता )।

आलु---स्पृह्, गृह् और पत् के णिजन्त से, दय् धातु से और निद्रा, तन्द्रा तथा श्रद्धा शब्दों से होता है। स्पृहयालुः ( इच्छुक ), दयालुः ( कृपालु ), निद्रालुः ( अधिक सोने वाला ), तन्द्रालुः, श्रद्धालुः ( श्रद्धाभाव से युक्त )।

इ---( इक्, इञ्, इण्, कि ):---

**इक्** ( इ )---कृप्-कृपिः ( कृपक ), गॄ-गिरिः ( पर्वत )।

**इञ्** ( इ )---वप् आदि से होता है। वापिः ( तालाव ), वासिः ( घर )।

**इण्** ( इ ) ---अज् आदि धातुओं से होता है। आजिः ( युद्ध ), आतिः, आदि।

**कि** ( इ )---दा और धा आदि धातुओं से कि ( इ ) प्रत्यय होकर ये रूप बनते हैं। धा-उपाधिः ( छल, शर्त आदि ), निधिः ( कोश ), सन्धि ( जोड़, मेल आदि ), जलधिः ( समुद्र ), यहाँ पर यह अधिकरण अर्थ में है।

**इत्रच्** ( इत्र )---ऋ, लू, धू, सू, खन्, सह् और चर् से इत्रच् ( इत्र ) होता है। ऋ-अरित्रम् ( पतवार, डांड ), लवित्रम् ( चाकू, दराँती ), धवित्रम्, ( मृगचर्म से बना पंखा ), सवित्रम् ( उत्पन्न करने वाला ), खनित्रम् ( फावड़ा ), सहित्रम् ( सहनशीलता ), चरित्रम्।

इन्---( इनि, विनुण्, णिनि ):---

**इनि** ( इन् )---यह इन धातुओं से होता है---प्र+जु, जि, दृ, क्षि, वि+श्रि, वम्, आ+व्यय्, अभि+अम्, परि+भू और प्र+सू। प्रजविन् ( शीघ्र-गामी ), जयिन् ( विजयी ), दरिन् ( सुस्त ), आदि। क्षयिन् ( क्षय करने वाला )। कर्म पहले होने पर वि+क्री से इन् होता है, निन्दा अर्थ में। तैलविक्रयी, सोम-विक्रयी, आदि।

**विनुण्** ( इन् )---इन स्थानों पर कर्ता अर्थ में होता है---त्यज्, रञ्ज्, भज्, दुष्, द्विष्, द्रुह्, दुह्, युज्, आ+यम्, आ+यस्, आ+क्रीड्, आ+मुष्; परिपूर्वक सृ, दिव्, क्षिप्, रट्, वद्, दह् और मुह् धातु; सम्पूर्वक सृज्, पृच् और ज्वर् धातु; विपूर्वक विच् और चर् धातु, प्रपूर्वक लप्, सृ, मन्थ्, वद् और वस्, अति और अपपूर्वक चर्, अभि+हन्, अनु+रुध्। त्यज्-त्यागिन् ( त्यागी ), रागिन् ( प्रेमयुक्त, प्रेमी ), भागिन् ( हिस्सेदार ), दोषिन् ( दोष देने वाला )। इसी प्रकार द्वेषिन्, द्रोहिन् आदि। यह शम् आदि धातुओं से भी होता है, परन्तु उनमें

गुण वृद्धि आदि नहीं होगी। शम्–शमिन् ( शान्त ), मद्–मदिन्। अन्यत्र उत्+मद्–उन्मादिन्, प्र+मद्–प्रमादिन्।

**णिनि ( इन् )**––कर्ता अर्थ में ग्रह् आदि धातुओं से होता है। गृह्णातीति ग्राहिन् ( लेने वाला ), स्था–स्थायिन्, वि+सि–विषयिन् ( भोगों में लिप्त ), अप+राध्–अपराधिन् ( अपराधी ), परि+भू––परिभाविन् (हराने वाला ), आदि। कुमार और शीर्ष पहले होने पर हन् से। कुमारं हन्तीति कुमारघातिन् ( बच्चे की हत्या करने वाला ), शीर्षघातिन् ( सिर काटने वाला )। जाति-वाचक से भिन्न सुबन्त पहले होने पर स्वभाव अर्थ में किसी भी धातु से इन् प्रत्यय हो सकता है। उष्णभोजिन् (उष्णं भोक्तुं शीलमस्य, गर्म खाना खाने वाला), साधुकारिन् ( सत्कर्म करने वाला ), ब्रह्मवादिन् ( ब्रह्म या वेद की व्याख्या करने वाला )। कोई सुबन्त पहले होने पर मन् धातु से। पण्डित-मानिन् ( अपने आप को पण्डित मानने वाला ), दर्शनीयमानिन् ( अपने आपको सुन्दर समझने वाला ), आदि। यज्ञवाचक शब्द पहले होने पर यज् धातु से भूत-काल में इन् होता है। सोमयाजिन् ( जिसने सोमयाग किया है )। इसी प्रकार अग्निष्टोमयाजिन्। कर्म पहले होने पर हन् धातु से। पितृव्यघातिन् ( अपने चाचा को मारने वाला )। उपमान–शब्द पहले होने पर किसी भी धातु से यह हो सकता है। उष्ट्रक्रोशिन् ( ऊँट की तरह बोलने वाला ), ध्वांक्षराविन् ( कौवे की तरह बोलने वाला )। व्रत के अर्थ में भी यह होता है। स्थण्डिलशायिन् ( चबूतरे पर सोने की प्रतिज्ञा वाला )। यह अवश्य अर्थ में और ऋण उतारने अर्थ में भी होता है। अवश्यंभाविन् ( अवश्य होने वाला ), शतंदायिन् ( सौ रु० ऋण उतारने वाला )।

**इष्णु ( इष्णुच्, खिष्णुच् )**––निम्नलिखित धातुओं से 'स्वभाव है, उसका गुण है और उस कार्य को ठीक ढंग से करता है' अर्थों में इष्णुच् ( इष्णु) प्रत्यय होता है। अलं+कृ, निरा+कृ, प्र+जन्, उत्+पच्, उत्+पत्, उत्+मद्, रुच्, अप+त्रप्, वृत्, वृध्, सह् और चर् से। अलंकरिष्णु ( सजाने वाला, सजाने में निपुण ), निराकर्तुं शीलमस्य निराकरिष्णुः ( देखो भट्टि० ५-१, हटाने वाला ), उत्पतिष्णुः ( उड़ने में चतुर ), वर्तिष्णुः, वर्धिष्णुः, सहिष्णुः, रोचिष्णुः आदि। कवियों ने इस प्रत्यय का अन्य कुछ धातुओं के साथ भी प्रयोग किया है। जैसे–– प्रभविष्णुः ( शक्तिशाली ), भ्राजिष्णुः ( तेजस्वी ), क्षयिष्णुः आदि।

**इष्णु ( खिष्णुच् ) और उक ( खुकञ् )**—अभूततद्भाव ( जैसा पहले नहीं था वैसा होना ) अर्थ में आढ्य, सुभग, स्थूल, पलित, नग्न, अन्ध और प्रिय शब्द पहले होने पर भू धातु से इष्णु और उक प्रत्यय होते हैं। अनाढ्यः आढ्यः संजातः —आढ्यंभविष्णुः, आढ्यंभावुकः ( जो पहले सेठ नहीं था, वह सेठ होता है, देखो भट्टि० ३-१ ) । इसी प्रकार ख्युन् ( अन ) प्रत्यय होकर आढ्यंकरणम् आदि भी रूप बनते हैं ।

**उ—**( उ और डु ):—

**उ—**सन्नन्त धातुओं से उ प्रत्यय होकर संज्ञा-शब्द बनते हैं। चिकीर्षुः (करने का इच्छुक ), विजिगीषुः ( जीतने का इच्छुक), आदि । आ+शंस्, भिक्ष्, विद् और इष् से भी उ होता है । आशंसुः ( इच्छुक, आशायुक्त ), भिक्षुः ( भिखारी ), विदुः ( जानने वाला ), इच्छुः ( चाहने वाला ) ।

**डु ( उ )**—वि, प्र और सम् उपसर्ग पहले होने पर भू धातु से होता है। विभुः ( व्यापक ), प्रभुः ( समर्थ ), संभुः ( उत्पादक ) । द्रु धातु से भी डु होता है। मितद्रुः ( निश्चित स्थान तक जाने वाला ), शतद्रुः ( एक नदी का नाम, जो सैकड़ों नदियों में मिलती है ) ।

**उक ( उकञ् )**—इन धातुओं से कर्ता अर्थ में उक प्रत्यय होता है—लष्, पत्, पद्, स्था, भू, वृष्, हन्, कम्, गम् और शॄ। लष्–लाषुकः ( चमकने वाला इच्छुक), पातुकः ( गिरने वाला ), भू–भावुकः ( होने वाला, जीवित ), हन्––घातुकः, कम्––कामुकः ( विषयी ) ।

**उर ( कुरच् )**—यह विद्, भिद् और छिद् से होता है। विदुरः ( जानने वाला ), भिदुरः ( टूटने वाला ), छिदुरः ( कटने वाला ) ।

**ऊक—**यह जागृ धातु से तथा यज्, जप् और दंश् के यङन्त अंग से होता है। जागरूकः ( सावधान ) आदि। ( देखो भट्टि० २-२२, रघु० १४-८५, शिशु० २०-३६ ) । पुनः पुनः अतिशयेन वा यजनशीलः यायजूकः ( बार बार यज्ञ करने वाला, देखो भट्टि० २-२० ) । पुनः पुनः अतिशयेन वा जपतीति जंजपूकः ( बार-बार जप करने वाला, एक यति ) । पुनः पुनः अतिशयेन वा दशतीति दंदशूकः ( बार बार काटने वाला, साँप, दैत्य, देखो भट्टि० १-२६ ) ।

**क्विन्, क्विप् और ण्वि—**धातुओं से इन प्रत्ययों को लगाकर रूप बनाए जाते हैं। इन प्रत्ययों का कुछ भी शेष नहीं रहता है। इन प्रत्ययों को लगाने से

अन्तर यह पड़ता है कि यदि धातु के अन्त में ह्रस्व स्वर है तो उसके बाद त् और जुड़ जाता है।

**क्विन् (०)**——इन स्थानों पर लगता है——यदि कोई सुबन्त पहले होगा तो स्पृश् धातु से। घृतस्पृश् ( घी को छूने वाला ), मन्त्रस्पृश् ( मन्त्र पढ़ने के बाद किसी वस्तु को छूने वाला )। यदि सुबन्त जलवाचक होगा तो नहीं। उदकस्पर्शः ( जल को छूने वाला ), इसका उदकस्पृश् नहीं बनेगा। निम्नलिखित क्विन्-प्रत्ययान्त शब्द निपातन ( ऐसा इष्ट है ) से बनते हैं——यज्——ऋत्विज् ( ऋतौ ऋतौ यजते, प्रत्येक ऋतु में यज्ञ करने वाला, यज्ञ में पुरोहित ), धृष्—दधृष् ( घमण्डी), सृज्—स्रज् (माला), दिश्-दिश् ( दिशा ), स्निह्-उष्णिह् ( एक छन्द का नाम )। इस प्रत्यय से ही अञ्च् धातु से प्राङ आदि रूप तथा युज् और क्रुञ्च् रूप बनते हैं।

**क्विप् (०)**——धातुओं से यह प्रत्यय होता है, उपसर्ग पहले हो या न हो। सूते असौ सूः या प्रसूः ( जन्म देने वाली, माता ), सद्—द्युसदः (द्युलोक में रहने वाले, देवता ), द्विप्——प्रद्विप् ( शक्तिशाली शत्रु ), युज्—अश्वयुज् (अश्विनी नक्षत्र ), नी—सेनानी ( सेनापति ), राज्—विराज् (विराट्), चि——अग्निचित् ( अग्निहोत्र करने वाला, गृहस्थ ), जि—इन्द्रजित् ( इन्द्र को जीतने वाला, रावण का पुत्र मेघनाद ), स्तु—देवस्तुत् ( देवों की स्तुति करने वाला ), सु—सोमसुन् ( सोमरस निकालने वाला ), कृ—कर्मकृत्, भाषाकृत्, टीकाकृत् आदि। कर्म पहले होने पर दृश्, स्पृश् और सृज् से क्विप् होता है। सर्वदृश् ( सबको देखने वाला ), मर्मस्पृश् ( मर्मस्थलों को छूने वाला ), विश्वसृज् ( संसार का स्रष्टा)। अद् और हन् से। क्रव्याद् ( मांसभक्षक, राक्षस ), ब्रह्महन् ( ब्राह्मण का हन्ता)। छाद् को क्विप् होने पर छद् हो जाता है। तनुच्छद् ( वस्त्र )। क्विप् प्रत्यय होने पर अनुनासिक अन्त वाली धातुओं की उपधा को दीर्घ हो जाता है। जैसे——शम्—प्रशाम् ( शान्त ), तन्—प्रतान् ( फैलाने वाला ), आदि। इन धातुओं की उपधा को दीर्घ नहीं होता है, अपितु इनके अन्तिम अनुनासिक का लोप हो जाता है और अन्त में त् जुड़ जाता है:—गम्, नम्, यम् और तन्। अध्वानं गच्छतीति अध्वगत् ( यात्री ), परि तनोतीति—परीतत् ( चारों ओर फैला हुआ ), सुनत् ( झुकने वाला, विनम्र ), संयत् (संयमी), आदि। क्विप् होने पर शास् के आ को इ हो जाता है। मित्रं शास्तीति—मित्रशिष् ( मित्र को संमति देने वाला ),

आशिष् ( आशीर्वाद )। गॄ का गिर् ( वाणी ) बनता है। भ्रंस्, स्रंस् और ध्वंस् के अनुनासिक का लोप होता है और स् को द् हो जाता है। वाहभ्रत् ( घोड़े से गिरने वाला ), उखास्रत् ( वर्तन से नीचे गिरने वाला ), पर्णध्वत् ( पत्ते से नीचे गिरने वाला )। क्विप् प्रत्यय होने पर दिव् के व् को उ होता है और अन्य धातुओं के व् को ऊ होता है। अक्षद्युत् ( अक्षैर्दीव्यति, जुआरी ), वे–ऊः ( जुलाहा ), अव्–ऊः ( रक्षक )। इस ऊ को पूर्ववर्ती अ के साथ वृद्धि हो जाती है। जन+ऊः= जनौः ( मनुष्यों का रक्षक )। ज्वर–जूर् ( ज्वरयुक्त ), त्वर्–तूर् ( तीव्र चलने वाला )। क्विप् प्रत्यय होने पर धातु के र् के बाद च् और छ् का लोप हो जाता है। मूर्च्छ्-मूर् ( मूर्च्छित), धुर्व्–धूर् ( चोट पहुँचाने वाला ), अक्षधूर् (गाड़ी की धुरी को हानि पहुँचाने वाला अर्थात् बोझ )। निम्नलिखित शब्द अनियमित रूप से बनते हैं––वच्–वाच् ( वाणी ), प्रच्छ्–प्राच्छ् ( पूछने वाला ), प्रु–कटप्रूः ( इच्छानुसार काम करने वाला, शिव का नाम, एक कीड़ा, जुआरी ), आदि। श्रि–श्रीः ( लक्ष्मी, धन ), व्रज्–परिव्राज् ( संन्यासी ), द्युत्–दिद्युत् ( बिजली ), गम्–जगत् ( संसार ), ध्यै–धीः ( बुद्धि )।

**ण्वि (०)**––भज् धातु से ण्वि होता है और धातु के अ को आ हो जाता है। अंशभाज् ( अपना हिस्सा लेने वाला ), प्रभाज् ( भक्त, पूजक ), आदि।

**ति ( क्तिन् )**––इससे स्त्रीलिंग संज्ञा-शब्द बनते हैं। कृ–कृति ( कार्य), स्तु–स्तुति ( स्तुति, प्रशंसा ), गम्–गति ( चाल), रम्–रति ( आनन्द ), नम्–नति ( झुकना ), स्था–स्थिति ( परिस्थिति ), गै–गीति ( गाना ), पा–पीतिः ( पीना), पच्–पक्तिः ( पकाना ), यज्–इष्टिः, आदि। श्रु, त्यज्, स्तु और इष् धातुओं से करण ( साधन ) अर्थ में ति होता है। श्रुतिः ( श्रवण का साधन, कान ), आदि। सम्+पद् और वि+पद् से क्तिन् और क्विप् दोनों होते हैं। संपत्तिः–संपद् ( धन, समृद्धि ), विपत्तिः–विपद् ( आपत्ति)। दीर्घ ॠकारान्त धातुओं और लू आदि के बाद ति को नि हो जाता है। कॄ–कीर्णिः ( बखेरना )। ये रूप निपातन से बनते हैं–– सो–साति ( अन्त), हन्–हेति (शस्त्र ), कृत्–कीर्ति ( यश )।

**तृ (तृच्, तृन् )**––तृच्–सभी धातुओं से कर्ता अर्थ में तृच् (तृ) होता है। कृ–कर्तृ (करने वाला), गम्–गन्तृ, पच्–पक्तृ, सह्–सोढृ, सहितृ, इष्–एष्टृ,

एषितृ आदि । क्रम्–क्रन्तृ, क्रान्तृ, क्रमितृ ( जाने वाला ), आदि । तृन्–होतृ ( नियम से यज्ञ करने वाला ), आदि ।

त्र ( **ष्ट्रन्** )—इन धातुओं से करण ( साधन ) अर्थ में त्र होता है—दा या दो, नी, शस्, यु, युज्, स्तु, तुद्, सि, सिच्, मिह्, पत्, पद्, नह् और दंश्। दा या दो—दात्रम् ( काटने का साधन, दराँती ), नेत्रम् ( आँख ), शस्–शस्त्रम् ( शस्त्र ), शास्-शास्त्रम्, यु–योत्रम्, युज्-योक्त्रम् ( रथ आदि के जुए में पशु को बाँधने की रस्सी), स्तु–स्तोत्रम् ( स्तोत्र ), तुद्–तोत्रम् ( चाबुक ), सिच्-सेक्त्रम् ( सिंचाई का फव्वारा ), मिह्—मेढ्रम्, पत्–पत्रम् ( यान, पंख आदि ), नह्–नद्ध्री ( चमड़े का फीता ), दंश्–दंष्ट्रा ( दाढ़ )। करण अर्थ में ही पू धातु से भी त्र होता है। पोत्रम् ( सूअर का मुँह, हल की फाल, बिजली, छोटे वस्त्र पोतड़े ), पवित्रम् ( पवित्रता का साधन, कुशा की बनी हुई अँगूठी जो धार्मिक कृत्यों के समय अनामिका में पहनी जाती है )। धै और धा से धात्री ( माता, दाई, पृथ्वी, एक वृक्ष का नाम )।

**त्रि** ( **क्त्रि** )—यह कुछ धातुओं से ही लगता है। इसके बाद अन्त में म लग जाता है। पच्–पक्त्रिमः ( पाकेन निवृत्तः, पका हुआ, परिपक्व ), कृ–कृत्रिम ( बनावटी ), दा–दत्त्रिम ( दान से बना हुआ, देखो भट्टि ० १-१०, १३ )।

**थक**—गै—गाथकः ( गाने वाला )

**न**—(नङ, नन्)—

**नङ** ( **न** )—इन धातुओं से न लगता है—यज्, याच्, यत्, विच्छ्, प्रच्छ् और रक्ष्। यज्ञः ( यज्ञ ), याच्ञा ( माँगना ), यत्नः ( प्रयत्न ), विश्नः (जाना, तेज ), प्रश्नः ( प्रश्न ), रक्ष्णः (रक्षक )।

**नन्** (**न**)—स्वप्-स्वप्नः ( सोना )।

**नज्** ( **नजिङ** )—स्वभाव अर्थ में स्वप्, तृप् और धृष् से नज् होता है। स्वप्नज् ( निद्रालु ), तृष्णज् ( प्यासा ), धृष्णज् ( ढीठ, आत्मविश्वासी )।

**नु** (**क्नु**)—स्वभाव अर्थ में त्रस्, गृध्, धृष् और क्षिप् से नु होता है। त्रस्नु ( डरपोक ), गृध्नु ( लालची ), धृष्णु ( ढीठ ), क्षिप्नु ( फेंकने वाला )।

**मर** (**क्मरच्**)—सृ–सृमर (जाना, एक मृग ), घस्-घस्मर ( अधिक खाने वाला ), अद्–अद्मर ( अधिक खाने वाला, पेटू )।

**य** ( **क्यप्** )—इन स्थानों पर होता है—व्रज्, यज् और कृ से य होकर

भाववाचक स्त्रीलिंग शव्द वनते हैं। व्रज्या (संन्यासीपन, आक्रमण ), इज्या ( यज्ञ ), कृत्या ( करना )। कृ से श और क्तिन् भी होते हैं, क्रिया, कृतिः। करण और अधिकरण अर्थों में सम्+अज् (अज् को वी नहीं होगा), नि+सद्, नि+पत्, मन्, विद्, सु, शी, भृ और इ से य होगा। समज्या ( सभागृह ), निषद्या ( बाजार, पलंग, सभागृह ), निपत्या ( रपटन वाली भूमि ), मन्या, विद्या, सुत्या ( सोमरस छिड़कना ), शय्या ( बिस्तर ), भृत्या ( नौकरी, वेतन ), इत्या ( सवारी, यान )।

**र**—इन धातुओं से होता है—नम्, कम्प्, स्मि, कम्, हिंस् और दीप्। नम्र ( झुकना, विनीत ), कम्प्र ( काँपने वाला), स्मेर ( मुस्कराना ), कम्र (सुन्दर), हिंस्र ( हिंसक ), दीप्त ( चमकने वाला )। नञ् + जस् से अजस्रम् ( क्रियाविशेषण ) रूप वनता है। नञ् को अ हो जाता है। अन्त में र प्रत्यय है।

**रु**—दा, धे, सि, शद् और सद् से रु होता है। दा—दारुः ( देने वाला या खाने वाला ), धे—धारुः ( पीने वाला ), सेरुः ( बाँधने वाला ), शद्रुः ( जाने वाला या नष्ट करने वाला ), सद्रुः ( जाने वाला या विश्राम करने वाला )।

**वन् ( क्वनिप् )**—दृश् से पारदृश्वन् ( जिसने उसका अन्त देखा है, अतः विद्वान् या चतुर ), युध्—राजयुध्वन् ( राजा से युद्ध करने वाला)। इसी प्रकार राजकृत्वन्, सहयुध्वन् और सहकृत्वन्।

**वर (क्वरप्)**—इ, जि, नश् और सृ से वर होता है। इत्वर ( जाने वाला, क्रूर ) जित्वर ( विजयी ), नश्वर ( नष्ट होने वाला )। गम् से भी वर होता है। गत्वर ( जाने वाला, नश्वर )।

# अध्याय १५

## वाक्य-विन्यास ( Syntax )

७७८. वाक्य-विन्यास में वाक्य में विभिन्न पदों को यथास्थान रखने की पद्धति पर विचार होता है। वाक्य-विन्यास में तीन बातें आती हैं--पदों का परस्पर समन्वय, कारक और क्रम। संस्कृत के वाक्य-विन्यास में प्रथम दो पर ही विचार हुआ है। इंग्लिश में वाक्य-विन्यास में अन्तिम पर ही मुख्यतया विचार हुआ है। संस्कृत और उसकी सजातीय भाषाएँ विभक्ति-प्रधान हैं, अतः उनमें परस्पर पदों का संबन्ध शब्द के अन्त में होने वाली विभक्तियों से निर्धारित होता है, भले ही वे कहीं पर भी रख दिए जाएँ। क्रम-परिवर्तन से अर्थ-परिवर्तन नहीं होता है। किन्तु इंग्लिश तथा अन्य भाषाएँ विभक्ति-हीन हैं, उनमें क्रम ही सर्वोत्तम महत्त्व की बात है। उनमें क्रम-परिवर्तन करते ही अर्थ में परिवर्तन हो जाता है। अतः संस्कृत में केवल पदों का क्रम ही बहुत महत्त्व नहीं रखता है, तथापि संस्कृत में इस विषय में पूर्णतया स्वच्छन्दता नहीं बरती जा सकती है। संस्कृत वाक्य-विन्यास में सुप् और विभिन्न तिङ् प्रत्ययों, कृत्-प्रत्ययों आदि के अर्थ और प्रयोग पर भी विचार किया जाता है। इन पर आगे यथास्थान विचार किया जाएगा।[1]

---

१. संस्कृत-साहित्य का अधिकांश भाग पद्य-बद्ध है, अतः उसमें वाक्य-विन्यास के नियमों का कवियों ने प्रायः पालन नहीं किया है। सामान्य गद्यात्मक रचना में वाक्य में पदों का क्रम प्रायः इस प्रकार होता है--पहले कर्ता और कर्ता के विशेषण, उसके बाद कर्म और कर्म के विशेषण, उसके बाद क्रिया-विशेषण और अन्य अव्यय तथा अन्त में विधेय या क्रिया-शब्द। प्रो० मैक्स मूलर ( Max Muller ) के कथनानुसार संस्कृत की शैली की मुख्य विशेषताएँ ये हैं--संबद्ध उपवाक्यों की अधिकता, सप्तम्यन्त क्रियार्थक क्रिया, उपवाक्य के स्थान पर समासयुक्त पदों और क्त्वा आदि प्रत्ययान्त रूपों का प्रयोग, तिङन्त रूपों के स्थान पर क्त या क्तवतु-प्रत्ययान्त प्रयोग, कर्मवाच्य प्रयोग की ओर अभिरुचि, अप्रत्यक्ष वाक्य-रचना ( Indirect Construction ) और लेट् लकार के प्रयोग का अभाव। अतएव लकारों का प्रयोग अपेक्षाकृत सरल है। विभक्तियों का प्रयोग लेटिन और ग्रीक की अपेक्षा अस्पष्ट है और कुछ कठिनाइयाँ उपस्थित करता है।—M. Williams' Grammar for Beginners.

## वाक्यार्थनिर्णायक अव्यय शब्द ( The Article )

**७७९.** जिस प्रकार इंग्लिश में निश्चित और अनिश्चित के बोधक वाक्यार्थ-निर्णायिक अव्यय शब्द हैं, उस प्रकार संस्कृत में वाक्यार्थ-निर्णायिक अव्यय शब्द नहीं हैं। 'कोई' अर्थ को सूचित करने के लिए संस्कृत में कश्चित् और एक शब्द हैं तथा इंग्लिश के The का अर्थ सूचित करने के लिए तत् (पुं०, स्त्री०, नपुं०) शब्द है। कश्चित् नरः (कोई आदमी), एकः पान्थः (एक पथिक), स राजा (वह राजा), आदि।

**७८०.** पहले (देखो नि० ५४) उल्लेख किया जा चुका है कि संस्कृत में तीन वचन हैं। एक व्यक्ति या वस्तु के लिए एकवचन, दो के लिए द्विवचन और दो से अधिक के लिए वहुवचन। इन सामान्य नियमों के अतिरिक्त ऐसा भी होता है :—

(क) जाति अर्थ में एकवचन का प्रयोग होता है। सिंहः श्वापदराजः (शेर जानवरों का राजा है), बुद्धिमत्सु नरः श्रेष्ठः, आदि।

(ख) कभी कभी द्विवचन उसी वर्ग के पुंलिंग और स्त्रीलिंग का सूचक होता है। पितरौ (माता-पिता) चटकौ (पुं० और स्त्री० चिड़िया)।

**(१) सूचना**—द्वय, द्वितीय, युग, द्वन्द्व आदि शब्द 'दो' अर्थ के बोधक हैं। इनका अर्थ द्विवचन वाला है और स्वरूप एकवचन वाला। इनका एकवचन में ही प्रयोग होगा। जब कई जोड़े का अर्थ होगा तब द्विवचन आदि होंगे।

**(२) सूचना**—हस्तौ, नेत्रे, पादौ आदि शब्द संस्कृत में सदा द्विवचनान्त ही प्रयुक्त होते हैं।

(ग) एकवचन की तरह वहुवचन भी जाति का सूचक होता है। ब्राह्मणाः पूज्याः या ब्राह्मणः पूज्यः (ब्राह्मण जाति पूजनीय है)।

(१) पूजा या आदर अर्थ की सूचना के लिए प्रायः एकवचन के स्थान पर वहुवचन लगाया जाता है। इति श्रीशंकराचार्याः (श्रीशंकराचार्यजी ऐसा कहते हैं), इति आचार्यपादाः (पूजनीय आचार्यजी की यह संमति है), आदि।

(२) विशिष्ट व्यक्ति और विशिष्ट लेखक कभी कभी उत्तमपुरुष के एक-वचन के स्थान पर वहुवचन का प्रयोग करते हैं। वयमपि भवत्यौ किमपि पृच्छामः (हम आप से कुछ पूछते हैं। यहाँ पर मैं के स्थान पर हम है)। इति तु वयम्

(यह हमारा अर्थात् लेखक का मत है)। वयमपि च गिरामीश्महे (हमारा वाणी या भाषा पर अधिकार है)।

(३) निम्नलिखित शब्दों का बहुवचन में ही प्रयोग होता है भले ही अर्थ एकवचन भी हो। दाराः, गृहाः, अक्षताः, सिकताः, आपः, प्राणाः, लाजाः आदि।

(४) देश में निवासी जनता के नाम के आधार पर पड़े हुए देश के नामों में बहुवचन का ही प्रयोग होता है। स विदेहान् उपाययौ (वह विदेह देश को गया), आदि।

यदि समस्त पद के अन्त में देश, विषय आदि देशवाचक शब्द होंगे तो वहाँ पर एकवचन ही होगा। अस्ति मगधदेशे पाटलिपुत्रं नाम नगरम् (मगध-देश में पाटलिपुत्र या पटना नामक नगर है)।

(५) व्यक्तिवाचक नामों में बहुवचन गोत्र या वंश का सूचक होता है। जनकानां रघूणां च यत् कृत्स्नं गोत्रमङ्गलम् (उत्तर०)।

भाग १

## पदों का परस्पर समन्वय ( Concord )

**७८१.** पदों के परस्पर समन्वय का अर्थ है—वाक्य में पदों के लिंग, वचन, पुरुष या काल की समरूपता।

संस्कृत में पदों के परस्पर समन्वय के विषय में तीन बातें विशेष उल्लेखनीय हैं—(१) कर्ता और क्रिया का समन्वय, (२) विशेषण और विशेष्य का समन्वय, (३) सापेक्ष शब्दों का अपने पूर्ववर्ती संबद्ध शब्द से समन्वय।

### कर्ता और क्रिया का समन्वय

**७८२.** क्रिया का वचन और पुरुष वही होना चाहिए जो कर्ता का है। आसीत् राजा नलो नाम (नल नाम का एक राजा था), अहं गच्छामि (मैं जाता हूँ), ब्राह्मणौ गच्छतः (दो ब्राह्मण जाते हैं), इत्यादि।

**७८३.** (क) जब दो या अधिक कर्ताओं का च (और) शब्द के द्वारा संबन्ध हो और वे भिन्न-भिन्न वचनों के हों तो क्रिया में बहुवचन लगेगा। ततः कुन्ती च राजा च भीष्मश्च सह बन्धुभिः। ददुः श्राद्धं तदा पाण्डोः० (महाभारत)। कभी कभी समीपवर्ती कर्ता के आधार पर क्रिया का रूप होता है। सा च सत्य-वती देवी गान्धारी च यशस्विनी। राजदारैः परिवृता गान्धारी चापि निर्ययौ। (महाभारत)। अहश्च रात्रिश्च उभे च सन्ध्ये धर्मोऽपि जानाति नरस्य वृत्तम्।

(ख) जब सभी कर्ता एकवचन हों और उनका 'वा' (अथवा) के द्वारा संबन्ध हो तो क्रिया एकवचन होती है। जहाँ पर कर्ता विभिन्न वचनों के होंगे और वा के द्वारा संबद्ध होंगे, वहाँ पर निकटतम कर्ता के अनुसार क्रिया का रूप होगा। रामः गोविन्दो वा व्रजतु (राम या गोविन्द जावे)। स वा इमे बालका वा आम्रं गृह्णन्तु (वह या ये बालक आम लें)।

**७८४.** (क) जहाँ पर प्रथम, मध्यम और उत्तम पुरुष में से दो या तीन विभिन्न पुरुषों के कर्ता हों और 'च' के द्वारा संबद्ध हों, वहाँ पर प्रथम और मध्यम से उत्तम पुरुष प्रबल होता है तथा प्रथम और मध्यम में मध्यम प्रबल होता है। त्वमहं रामश्चैतत् करिष्यामः (राम, तू और मैं इस काम को करेंगे), त्वं रामश्च पाठशालां गच्छतम्।

(ख) किन्तु जब 'वा' (अथवा) के द्वारा कर्ताओं का संबन्ध होगा तो निकटतम कर्ता के अनुसार क्रिया का रूप होगा। स वा वयं वा तत् संपादयामः (वह या हम उस काम को पूरा करते हैं), अहं रामोऽथवा राजा लक्ष्मणो वा मरिष्यति (मैं या राजा राम या लक्ष्मण मृत्यु को प्राप्त होगा)।

**७८५.** यह आवश्यक नहीं है कि विधेय तिङन्त क्रिया ही हो, अपितु कोई कृत्प्रत्ययान्त या संज्ञा अथवा विशेषण शब्द उसका स्थान ले सकता है।

(क) जब विधेय के रूप में क्त या क्तवतु प्रत्ययान्त का प्रयोग होता है तो क्त प्रत्ययान्त के लिंग और वचन कर्म के अनुसार होते हैं तथा क्तवतु-प्रत्ययान्त के लिंग और वचन कर्ता के अनुसार होते हैं। स तदुक्तवान् (उसने वह बात कही), सा तदुक्तवती (उस स्त्री ने वह बात कही), तेषां बन्धनानि छिन्नानि (उनके बन्धन कट गए), कार्यं कृतम् (काम किया), लता छिन्ना (लता काटी गई), आदि।

(ख) जब विशेषण या संज्ञा-शब्द का विधेय के रूप में प्रयोग होता है तो उसके साथ अस् या भू धातु का कोई रूप प्रयुक्त होता है अथवा अनुमित रहता है। विधेय के रूप में प्रयुक्त विशेषण शब्दों के लिंग और वचन कर्ता के तुल्य होते हैं, किन्तु आस्पद, पात्र, भाजन, स्थान, पद आदि शब्दों के लिंग और वचन वही रहते हैं, उनमें अन्तर नहीं होता है। सुभृत्यः दुर्लभः (अच्छा नौकर दुर्लभ है), सुपुत्रः पितुः गर्वास्पदम् (सुपुत्र पिता के लिए गर्व की वस्तु है), सम्पदः पदमापदाम् (सम्पत्ति आपत्ति का घर है), स तु तस्या अभिमानभूमिः, आदि।

इन स्थानों पर कर्ता के वचन के अनुसार क्रिया का वचन होगा, न कि विधेय के वचन के अनुसार। सम्पदः आपदां पदं सन्ति प्रयोग होगा, न कि अस्ति।

७८६. जहाँ पर अपूर्ण क्रिया के साथ संज्ञा या विशेषण का विधेय के रूप में प्रयोग होता है और क्रिया का उगना, प्रतीत होना, होना, प्रकट होना आदि अर्थ होता है, वहाँ पर विधेय के रूप में प्रयुक्त संज्ञा या विशेषण शब्द में कर्ता वाला ही कारक लगेगा। एप मे निश्चयः (यह मेरा निश्चय है), स भूपतिः प्रजागरकृशः लक्ष्यते (वह राजा रात्रिजागरण के कारण दुर्बल दिखाई दे रहा है), प्रभुर्बुभूषुर्भुवनत्रयस्य (तीनों लोकों का स्वामी होने का इच्छुक)।

(क) यदि सकर्मक धातु कर्मवाच्य में अपूर्ण विधेय के साथ प्रयुक्त होगी तो भी उपर्युक्त नियम लगेगा। तेन मुनिना स मूपकः विडालः कृतः (उस मुनि ने उस चूहे को बिलाव बना दिया)। नृपो हि विष्णुः मन्यते (राजा को विष्णु माना जाता है)।

७८७. यदि क्रिया के स्थान पर किसी अव्यय का कर्मवत् प्रयोग होता है तो उसके कर्म में प्रथमा विभक्ति होती है।[1] विषवृक्षोऽपि संवर्ध्य स्वयं छेत्तुमसाम्प्रतम् (कुमार० २-५५) (विष के वृक्ष को भी बड़ा करके स्वयं उसे काटना उचित नहीं है)। यहाँ पर असाम्प्रतम् यह अव्यय 'न युज्यते' के स्थान पर है और इसका पूरा वाक्य होगा—वृक्षं संवर्ध्य तं छेत्तुम् असाम्प्रतम् (न युज्यते), योऽपि विषवृक्षः स्यात्।

### विशेषण और विशेष्य का समन्वय

७८८. विशेषण (कृत्प्रत्ययान्त या शुद्ध) में लिंग, विभक्ति और वचन वही होता है जो विशेष्य में होता है। रूपवान् पुरुषः (सुन्दर पुरुष), रूपवती स्त्री (सुन्दर स्त्री), महत् संकटम् (महान् संकट)। एते मयूराः, तानि पुस्तकानि, गच्छन्ती नारी, आदि।

किन्तु जिन संख्यावाचक विशेषण शब्दों के लिंग और वचन निश्चित हैं, उनमें परिवर्तन नहीं होता है। शतं ब्राह्मणाः (सौ ब्राह्मण), शतं स्त्रियः (सौ स्त्रियाँ), विंशतिः बालकाः (२० बालक)।

७८९. जहाँ पर एक विशेषण के दो या अधिक विशेष्य होंगे, वहाँ पर विशेष्यों की सामूहिक संख्या के अनुसार विशेषण में वचन होगा। यदि विशेष्य

---

१. निपातेनाभिहिते कर्मणि न विभक्तिपरिगणनस्य प्रायिकत्वात्। (वामन)

विभिन्न लिंगों के हैं और उनमें से एक पुलिंग और दूसरा स्त्रीलिंग है तो विशेषण पुंलिग होगा और यदि विशेष्य पुं०, स्त्री० और नपुं० तीनों हैं तो विशेषण नपुं० होगा। राजा राज्ञी च स्तुत्यचरितौ स्तः (राजा और रानी प्रशंसनीय चरित्र वाले हैं)। धर्मः कामश्च दर्पश्च हर्षः क्रोधः सुखं वयः। अर्थादेतानि सर्वाणि प्रवर्तन्ते न संशयः ॥ (धर्म, इच्छापूर्ति, गर्व, हर्ष, क्रोध, सुख, दीर्घ आयु, ये सभी चीजें धन से प्राप्त होती हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है) ।

(क) कभी कभी अधिकांश विशेष्यों में जो लिंग होता है, वही विशेषण में भी हो जाता है। वृद्धौ च मातापितरौ साध्वी भार्या सुतः शिशुः। अप्यकार्यशतं कृत्वा भर्तव्या मनुरब्रवीत् ॥ (मनु का कथन है कि सैकड़ों अनुचित कार्य करने पर भी वृद्ध माता-पिता, सती स्त्री और छोटे बालक का पालन करना ही चाहिए ) ।

(ख) जहाँ पर च ( और ) अव्यय का प्रयोग होता है, वहाँ पर कभी कभी निकटतम शब्द का लिंग और वचन विशेषण में लगता है। उद्वेगः कलहः कण्डूः सेव्यमाना च वर्धते। (खिन्नता, झगड़ा और खुजली सेवा किए जाने पर बढ़ते ही हैं), यस्य वीर्येण कृतिनो वयं च भुवनानि च (कृतीनि) (जिसके पराक्रम से हम और तीनों लोक प्रसन्न हुए हैं) ।

७६०. जहाँ पर भूतकालिक कृदन्त (क्त, क्तवतु प्रत्ययान्त) या कृत्य-प्रत्ययान्त (तव्य आदि प्रत्ययान्त) किसी कर्ता के साथ विधेय के रूप में प्रयुक्त होते हैं, वहाँ पर इनमें लिंग और वचन कर्ता के अनुरूप होंगे। कृताः शरव्यं हरिणा तवासुराः ( शाकु० ६ ) ( इन्द्र ने असुरों को तुम्हारे बाणों का लक्ष्य बनाया है ) ।

### यत् और तत् का परस्पर समन्वय

७६१. तत् शब्द में वही लिंग, वचन और पुरुष होता है, जो यत् शब्द में होता है। यत् और तत् में कारक का निर्णय वाक्य में उनकी स्थिति के अनुसार होता है। यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः (जिसके पास धन है, वह आदमी कुलीन माना जाता है) । यस्य बुद्धिर्बलं तस्य। यद्येन युज्यते लोके बुधस्तत्तेन योजयेत् (संसार में जिस वस्तु को जिससे मिलाना उपयुक्त है, विद्वान् को चाहिए कि वह उस वस्तु को उससे मिला दे ) ।

७६२. जहाँ पर तत् शब्द के विशेष्य का लिंग यत् शब्द के विशेष्य के

लिंग से भिन्न होता है, वहाँ पर यत् शब्द में अपने विशेष्य का लिंग होता है और तत् शब्द में अपने विशेष्य का। परगुणासहिष्णुत्वं हि यत् स दुर्जनानां स्वभावः (दूसरे के गुणों को न सहना, यह दुर्जनों का स्वभाव है), शैत्यं हि यत् सा प्रकृतिर्जलस्य।

**७९३.** यत् नपुं० एकवचन का प्रयोग 'कि' (इंग्लिश् का That) के अर्थ में होता है और यह नए उपवाक्य का प्रारम्भ करता है। बाद में तत् शब्द में वही लिंग होगा जो कि पूर्ववाक्य में विशेष्य शब्द में है। यद् विद्वान् अपि नरः अन्यान् विगणयति स धनमद एव (यह धन का ही मद है कि विद्वान् मनुष्य भी अन्यों का तिरस्कार करता है)। सत्योऽयं जनप्रवादः यत् संपत् सम्पदमनुबध्नातीति (यह लोकोक्ति सत्य है कि सम्पत्ति के पीछे संपत्ति चलती है)।

**विशेष**—कभी कभी पूर्ववाक्य में संज्ञा या सर्वनाम शब्द लुप्त रहता है और इसका आगामी वाक्य के लिंग और वचन के आधार पर अनुमान किया जाता है। जैसे—धनेन किं यो न ददाति याचके (यहाँ पर तस्य धनेन किम्, अर्थ होगा। उसके धन से क्या लाभ, जो याचकों को नहीं देता है।)

**भाग २**

## कारक-प्रकरण (Government)

**७९४.** संस्कृत व्याकरण में वाक्य-विन्यास में केवल कारक-प्रकरण का ही पृथक् विचार हुआ है। एक वाक्य में संज्ञा और क्रिया के बीच जो संबन्ध है, उसके आधार पर ही कारक नाम दिया गया है। संस्कृत में ६ कारक हैं। षष्ठी को कारक नहीं माना जाता है, क्योंकि उसमें संज्ञा शब्दों का ही सम्बन्ध बताया जाता है, क्रिया के साथ संबन्ध नहीं। ६ कारक ये हैं:—कर्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान और अधिकरण।

**७९५.** संस्कृत में कुछ अव्यय शब्द हैं, जिनके आधार पर कारक होते हैं। इन अव्ययों के आधार पर होने वाली विभक्तियों (कारकों) को उपपदविभक्ति कहते हैं और क्रियाओं के आधार पर होने वाली विभक्तियों को कारक-विभक्ति कहते हैं। जहाँ पर दोनों प्रकार की विभक्तियाँ प्राप्त होती हैं, वहाँ पर उपपद-विभक्ति की अपेक्षा कारक-विभक्ति अधिक बलवान् होती है। (उपपदविभक्तेः कारकविभक्तिर्बलीयसी)। जैसे—मुनित्रयं नमस्कृत्य, में नमः के कारण चतुर्थी होनी चाहिए थी, पर कारक-विभक्ति द्वितीया हुई।

७९६. इंग्लिश् तथा अन्य भाषाओं के तुल्य कर्ता कारक कर्ता या वस्तु का निर्देशमात्र करता है। प्रथमा विभक्ति इन अर्थों को प्रकट करती है—प्रातिपदिक के अर्थ को, लिंग, परिमाण और संख्या मात्र को।[1] क्रिया के साथ प्रयुक्त होने पर यह कर्ता होता है।

**कर्मकारक या द्वितीया विभक्ति** (Accusative case)

७९७. द्वितीया विभक्ति कर्म का संकेत करती है। जिस व्यक्ति या वस्तु पर क्रिया का फल पड़ता है, वह कर्म है। हरिं सेवते (वह हरि की सेवा करता है)। ग्रामं गच्छन् तृणं स्पृशति (गाँव को जाता हुआ वह तिनके को छूता है)।[2]

७९८. सभी सकर्मक धातुओं में कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है। पुष्पाण्यवचिनोति (वह फूलों को चुनता है), अप एव ससर्जादौ (परमात्मा ने सर्वप्रथम जल को उत्पन्न किया), इत्यादि। कुछ सकर्मक धातुओं में मुख्य कर्म के अतिरिक्त गौण या कृत्रिम कर्म भी होता है, इंग्लिश् में इसको Factitive object कहते हैं। त्वामामनन्ति प्रकृतिं त्वामेव पुरुषं विदुः (कुमार० २-१३, वे तुझको प्रकृति मानते हैं और तुझको ही पुरुष समझते हैं), कुमारं नेतारं कृत्वा (कुमार को सेना का नेता बनाकर)। नाम्ना तमात्मजन्मानम् अजं चकार (उसने अपने पुत्र का नाम अज रक्खा)।

७९९. अकर्मक धातुओं के साथ समय या स्थान की दूरी तथा स्थान या देश के वाचक शब्दों में द्वितीया विभक्ति होती है।[3] कुरून् स्वपिति (कुरुदेश में सोता है), तत्र कतिपयान् दिवसान् अवसत् (वह वहाँ कुछ दिन रहा), गोदोहम् आस्ते (वह गाय के दुहे जाने तक वहाँ बैठता है), क्रोशं प्रतिष्ठते (वह एक कोस जाता है), क्रोशं कुटिला नदी (नदी एक कोस तक टेढ़ी-मेढ़ी गई है)। अन्यत्र—मासस्य द्विरधीते (महीने में दो दिन पढ़ता है), क्रोशस्यैकदेशे पर्वतः (एक कोस के एक हिस्से में पहाड़ है)।

८००. गत्यर्थक धातुओं (वास्तविक या आलंकारिक) के साथ स्थानवाची शब्द में द्वितीया विभक्ति होती है। ग्रामं गच्छति (गाँव को जाता है), अधिज्य-

१. प्रातिपदिकार्थलिंगपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा (२-३-४६)।
२. जब कर्मवाच्य में क्रिया और कर्म का संबन्ध प्रकट करना होता है, तो वहाँ पर कर्म में प्रथमा विभक्ति होती है। हरिः सेव्यते।
३. कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे (२-३-५)।

धन्वा विचचार दावम् (धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाए हुए वह सारे वन में घूमा), आनन्दस्य परां कोटिमभ्यगच्छन् (उन्होंने आनन्द की चरम सीमा प्राप्त की), मनसा कृष्णमेति (मन से कृष्ण का ध्यान करता है), इति चिन्तयन्नेव स निद्रां ययौ (यह सोचता हुआ ही वह सो गया)।

(क) जहाँ पर वास्तविक क्रिया है, वहाँ पर चतुर्थी विभक्ति भी होती है। ग्रामाय ग्रामं वा गच्छति। परन्तु मार्गवाचक शब्दों में चतुर्थी नहीं होगी। पन्थानं गच्छति, ही होगा। ठीक मार्ग पर आना अर्थ होगा तो चतुर्थी हो जाएगी। उत्पथेन पथे गच्छति (कुमार्ग से सन्मार्ग पर आता है)।

**८०१.** अधि उपसर्गपूर्वक शी, स्था और आस् धातुओं से अधिकरण में द्वितीया विभक्ति होती है।[1] अधिशेते, अधितिष्ठति, अध्यास्ते वा वैकुण्ठं हरिः। शिलापट्टम् अधिशयाना (शिलापट्ट पर लेटी हुई), अर्धासनं गोत्रभिदोऽधितस्थौ (इन्द्र के आधे आसन पर वह बैठा), अध्यास्त सर्वर्तुसुखामयोध्याम् (सभी ऋतुओं में सुखदायी अयोध्या में वह रहा)।

**८०२.** अभिनि-पूर्वक विश् धातु के आधार में द्वितीया विभक्ति होती है।[2] अभिनिविशते सन्मार्गम् (वह सन्मार्ग का आश्रय लेता है)। धन्या सा गणिकादारिका यामेव भवन्मनोऽभिनिविशते (वह वेश्या की पुत्री धन्य है, जिस पर आपका मन लगा है), (देखो भट्टि० ८-८०)। कभी-कभी इसके साथ सप्तमी भी होती है। अभिनिविशते पापे (वह पाप में प्रवृत्त होता है)। विश् धातु से पहले उपसर्ग होने पर आधार में द्वितीया होती है, परन्तु उप+विश् (बैठना) के साथ सप्तमी होती है। आसनेऽस्मिन्नुपविश (इस आसन पर बैठो)।

**८०३.** वस् धातु से पहले उप, अनु, अधि और आ उपसर्ग होंगे तो द्वितीया होगी।[3] उपवसति अनुवसति अधिवसति आवसति वा वैकुण्ठं हरिः (हरि वैकुण्ठ में रहते हैं)। शून्यमन्ववसद् वनम् (वह निर्जन वन में रहा)। उपवास अर्थवाले उप+वस् धातु के साथ सप्तमी होगी। उपवसति वने रामः (राम वन में उपवास करता है)।

**८०४.** इन अव्ययों के साथ द्वितीया होती है—उभयतः, सर्वतः, उपर्युपरि,

---

१. **अधिशीङ्स्थासां कर्म** (१-४-४६)।
२. **अभिनिविशश्च** (१-४-४७)।
३. **उपान्वध्याङ्वसः** (१-४-४८)।

अधोऽधः, अध्यधि, धिक्, अभितः, परितः, समया, निकषा, हा, प्रति (ओर), अन्तरा (बीच में), अन्तरेण (बिना, बारे में) ।[1] उभयतः कृष्णं गोपाः (कृष्ण के दोनों ओर गोप हैं), सर्वतः प्रासादं जाग्रति दण्डधारिणः (महल के चारों ओर रक्षक जागरूक हैं), उपर्युपरि लोकं हरिः (हरि लोकों के ऊपर है), अधोऽधो लोकं पातालः (संसार के नीचे पाताल है), अध्यधि लोकम्, धिग् वो जाल्मान् (तुम दुष्टों को धिक्कार है), धिक् सानुजं कुरुपतिम् (भाइयों के सहित कौरवों के पति को धिक्कार है) । कभी कभी प्रथमा और संबोधन के साथ भी धिक् का प्रयोग मिलता है । धिगर्थाः कष्टसंश्रयाः (धनों को धिक्कार है, जो कष्टों के कारण हैं), धिङ् मूर्ख (तुझ मूर्ख को धिक्कार है)। रक्षांसि वेदिं परितो निरस्थाद् अङ्गान्ययाक्षीदभितः प्रधानम् (उसने वेदी के चारों ओर से राक्षसों को भगा दिया और प्रधान देवता के चारों ओर स्थापित गौण देवताओं के लिए यज्ञ किया ।) (भट्टि० १-१२) । अभितस्तं पृथासूनुः स्नेहेन परितस्तरे (किराता० ११-८), ग्रामं समया निकषा वा व्रजति (वह गाँव के पास जाता है) । (देखो शिशु० १-६८, ६-७३) । हा कृष्णाभक्तम् (कृष्ण के अभक्त के लिए खेद है), मन्दौत्सुक्योऽस्मि नगरगमनं प्रति (नगर की ओर जाने के लिए मेरी उत्सुकता मन्द पड़ गई है), अन्तरा त्वां मां हरिः, हरिमन्तरेण न सुखम् (हरि के बिना सुख नहीं मिल सकता है), देवीं वसुमतीमन्तरेण (देवी वसुमति के बारे में) ।

उपर्युक्त अव्ययों में कुछ के साथ षष्ठी होती है । जैसे—उपर्युपरि सर्वेषामादित्य इव तेजसा (वह अपने तेज के कारण सूर्य के तुल्य सबसे ऊपर दिखाई पड़ रहा था) ।

**८०५.** निम्नलिखित उपसर्गों के साथ द्वितीया होती है :[2]—

(क) अति (अतिक्रमण करना, बढ़कर होना, पूजा अर्थ में), अनु (बाद

१. **उभयसर्वतसोः कार्या धिगुपर्यादिषु त्रिषु । द्वितीयाम्रेडितान्तेषु ततोऽन्यत्रापि दृश्यते । अभितःपरितःसमयानिकषाहाप्रतियोगेऽपि । सूत्र १-४-४८ पर वार्तिक । अन्तरान्तरेण युक्ते ( २-३-४ ) ।**

२. **कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया ( २-२-८ ) । जो उपसर्ग स्वतन्त्ररूप से प्रयुक्त होकर कर्म आदि कारकों के कारण होते हैं, उन्हें कर्मप्रवचनीय कहते हैं । तृतीयार्थे ( १-४-८५ ) । हीने (१-४-८६) । उपोऽधिके च (१-४-८७) । लक्षणेत्थंभूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्यनवः ( १-४-९० ) । अभिरभागे ( १-४-९१ ) ।**

में, तुरन्त बाद में, पास में, हीन अर्थ में), अभि (समीप) और उप (समीप, हीन)। जैसे—अति देवान् कृष्णः (कृष्ण शक्ति में देवों से बढ़कर है), अति रामं गोविन्दः (गोविन्द राम से बढ़कर है), जपमनु प्रावर्षत् (जप के तुरन्त बाद में वर्षा हुई), सर्वं मामनु ते (तुम्हारी सब वस्तु मेरे पीछे है), अनु पितरं गच्छति सुतः (पुत्र पिता का अनुसरण करता है), न भवान् अनु रामं चेत् (यदि आप राम से हीन नहीं हैं तो)। इसी प्रकार अनु हरिं सुराः, भक्तो हरिम् अभि (भक्त हरि के समीप है), उप शूरं न ते वृत्तम् (तुम्हारा कार्य शूर के अनुकूल नहीं है, अर्थात् उससे हीन है), आदि।

(ख) अभि, अनु, परि और प्रति जब किसी वस्तु का संकेत करते हैं तो इनके साथ द्वितीया होती है। गिरिम् अभि-अनु-परि-प्रति वा विद्योतते विद्युत् (बिजली पहाड़ के समीप चमक रही है)। 'प्रत्येक' आदि अर्थों में भी द्वितीया होती है। वृक्षं वृक्षम् अभि-अनु-परि-प्रति वा सिंचति (प्रत्येक वृक्ष को सींचता है)। इसी प्रकार अभि-अनु-परि-प्रति वा स्त्रीं स्त्रीं जातमन्मथः।

(ग) अनु, परि और प्रति के साथ 'अपना हिस्सा' अर्थ में द्वितीया होती है। लक्ष्मीः हरिम् अनु-परि-प्रति वा (लक्ष्मी हरि के हिस्से में है)।

८०६. निम्नलिखित कारिका में दिए हुए धातुओं के साथ दो कर्म होते हैं :—

**दुह्याच्पच्दण्ड्रुधिप्रच्छिचिब्रूशासुजिमथ्मुषाम्।**
**कर्मयुक्स्यादकथितं तथा स्यान्नीहृकृष्वहाम्॥**

अर्थात् इन धातुओं के साथ दो कर्म होते हैं—दुह् (दुहना), पच् (पकाना), दण्ड् (दण्ड देना), रुध् (रोकना), प्रच्छ् (पूछना), चि (इकट्ठा करना), ब्रू (कहना), शास् (निर्देश देना, शिक्षा देना), जि (जीतना), मन्थ् (मथना), मुष् (चुराना), नी, हृ, कृष् और वह् धातुएँ तथा इन अर्थों वाली अन्य धातुएँ। गां दोग्धि पयः (वह गाय का दूध दुहता है), बलिं याचते वसुधाम् (वह बलि से भूमि माँगता है), तण्डुलान् ओदनं पचति (वह चावलों से भात पकाता है)। इसी प्रकार ये रूप बनेंगे—गर्गान् शतं दण्डयति, व्रजम् अवरुणद्धि गाम्, माणवकं पन्थानं पृच्छति, वृक्षम् अवचिनोति फलानि, माणवकं धर्मं ब्रूते शास्ति वा, शतं जयति देवदत्तम्, सुधां क्षीरनिधिं मथ्नाति, देवदत्तं शतं मुष्णाति, ग्रामम् अजां नयति-हरति-कर्षति-वहति वा। इसी प्रकार माणवकं धर्मं भाषते—वक्ति वा, बलिं सुधां भिक्षते, आदि। देखो भट्टि० ६.८-१०।

**८०७.** जब इन धातुओं का कर्मवाच्य में प्रयोग होता है तो पहली बारह धातुओं के गौण कर्म में और अन्तिम चार धातुओं के प्रधान कर्म में प्रथमा होती है। अन्य कर्म में पूर्ववत् द्वितीया रहती है।[1] धेनुः पयः दुह्यते, दशरथः रामं ययाचे कौशिकेन, उदधिः सुधां ममन्थे देवैः, आदि। तेन गावः ग्रामं नीयन्ते ह्रियन्ते कृष्यन्ते उह्यन्ते वा, आदि।

**८०८.** निम्नलिखित धातुओं का अणिजन्त अवस्था का कर्ता णिजन्त के साथ कर्म हो जाता है :--जाना अर्थ वाली धातुएँ, ज्ञान अर्थ वाली धातुएँ, खाना अर्थ वाली धातुएँ, ग्रन्थ कर्मवाली धातुएँ, अकर्मक धातुएँ, तथा ये धातुएँ--दृग्, जल्प्, आ+भाप्, वि+लप्, ग्रह् और श्रु।[2]

**शत्रूनगमयत् स्वर्गं वेदार्थं स्वानवेदयत्।**
**आशयच्चामृतं देवान् वेदमध्यापयद् विधिम्।**
**आसयत् सलिले पृथ्वीं यः स मे श्रीहरिर्गतिः॥ ( सि० कौ० )**

(पूजनीय हरि मेरी गति हैं। उन्होंने देवों के शत्रुओं को स्वर्ग भेजा है, उन्होंने अपने अनुयायियों को वेदों का अर्थ बताया है। उन्होंने देवों को अमृत पिलाया है, विधाता को वेद पढ़ाया है और पृथ्वी को जल पर स्थिर करके रक्खा है।)

दर्शयति हरिं भक्तान् (उसने भक्तों को हरि को दिखाया), जल्पयति, भापयति, विलापयति वा धर्मं पुत्रं देवदत्तः। पुत्रं विद्याम् अग्राहयत् (देखो कुमार० १-५२)। अश्रावयत् पारिपदान् कथाम्। जहाँ पर दो णिचों का प्रयोग होता है, वहाँ पर प्रथम णिजन्त का कर्ता द्वितीय णिजन्त का करण हो जाता है, अतः उसमें तृतीया होती है। गमयति देवदत्तः यज्ञदत्तम्, गमयति देवदत्तेन यज्ञदत्तं विष्णुमित्रः।

**विशेष**--कभी-कभी दृग् धातु के साथ चतुर्थी विभक्ति का भी प्रयोग मिलता है। प्रत्यभिज्ञानरत्नं च रामायादर्शयत् कृती (रघु० १२-५४)।

(क) नी और वह् धातु के णिजन्त रूप के साथ अणिजन्त अवस्था के कर्ता

---

१. **गौणे कर्मणि दुह्यादेः प्रधाने नीहृकृष्वहाम्।...लादयो मताः। (विभाषा चिण्णमुलोः, ७-१-६९ पर सि० कौ० )।**

२. **गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्ता स णौ ( १-४-५२ )। जल्पतिप्रभृतीनामुपसंख्यानम् ( वा० ), दृशेश्च (वा०)।**

में तृतीया विभक्ति होती है, यदि कर्ता रथादि का चालक न हो तो ।[1] नाययति वाहयति वा भारं भृत्येन (वह नौकर के द्वारा बोझा लिवा जाता है)। अन्यत्र—वाहयति रथं वाहान् सूतः (सारथि घोड़ों से रथ को खिचवाता है) ।

(१) अद् और खाद् धातुओं के णिजन्त रूप के साथ अणिजन्त अवस्था के कर्ता में तृतीया होती है ।[2] आदयति खादयति वा अन्नं वटुनां (वह विद्यार्थी को अन्न खिलता है) ।

(२) भक्ष् धातु के णिजन्त रूप के साथ भी अणिजन्त के कर्ता में तृतीया होती है, यदि हिंसा (कष्ट या दुःख देना) अर्थ न हो तो ।[3] भक्षयत्यन्नं वटुना । अन्यत्र—भक्षयति बलीवर्दान् सस्यम् (बैलों को दूसरे का अन्न खिलाता है, अतः उसे दुःख देता है) ।

(ख) स्मृ (स्मरण करना) और घ्रा (सूँघना) के णिजन्त रूप के साथ तृतीया होती है । दुःखपूर्वक स्मरण करना अर्थ होने पर स्मृ के णिजन्त के साथ द्वितीया विभक्ति का भी कहीं-कहीं पर प्रयोग मिलता है । स्मारयति घ्रापयति वा देवदत्तेन । अयि चन्द्रगुप्तदोषा अतिक्रान्तपार्थिवगुणान् स्मारयन्ति प्रकृतीः । देखो शिशु० ६-५६ भी ।

(ग) नामधातु शब्दाय के णिजन्त के साथ भी तृतीया विभक्ति का प्रयोग होता है ।[4] शब्दाययति देवदत्तेन (वह देवदत्त से शब्द करवाता है ) ।

**सूचना**—यहाँ पर अकर्मक से अभिप्राय है कि जिनका देश, काल आदि से भिन्न कर्म नहीं है । जो धातुएँ सकर्मक होते हुए भी कर्म की अविवक्षा के कारण अकर्मक हैं, वे यहाँ पर अकर्मक नहीं गिनी जायँगी ।[5] जैसे—मासम् आसयति देवदत्तम् । अन्यत्र—देवदत्तेन पाचयति, यहाँ पर देवदत्तम् नहीं होगा । पच् सकर्मक है, किन्तु यहाँ पर कर्म की अविवक्षा के कारण अकर्मक है ।

८०६. हृ और कृ धातु तथा अभिवद् और दृश् (आत्मनेपदी होने पर) के

---

१. **नीवह्योर्न (वा०), नियन्तृकर्तृकस्य वहेरनिषेधः (वा०) ।**
२. **आदिखाद्योर्न (वा०) ।**
३. **भक्षेरहिंसार्थस्य न ( वा०) ।**
४. **शब्दायतेर्न (वा०) ।**
५. **येषां देशकालादिभिन्नं कर्म न संभवति तेऽत्राकर्मकाः । न त्वविवक्षितकर्माणोऽपि । ( सि० कौ०)**

णिजन्त रूप के साथ अणिजन्त के कर्ता में द्वितीया और तृतीया दोनों विभक्तियाँ होती हैं ।[1] हारयति कारयति वा भृत्यं भृत्येन वा कटम् (वह नौकर से चटाई लिवा जाता है या बनवाता है) । अभिवादयते दर्शयते देवं भक्तं भक्तेन वा (वह भक्त के द्वारा देवता को प्रणाम करवाता है या भक्त को देवता के दर्शन कराता है) ।

**८१०.** णिजन्त धातुओं का जब कर्मवाच्य में प्रयोग होता है तब उनके मुख्य कर्म (अर्थात् मूलधातु का कर्ता) में प्रथमा होती है, परन्तु ज्ञानार्थक धातुओं, भक्षणार्थक धातुओं और ग्रन्थादि कर्म वाली धातुओं के मुख्य कर्म में प्रथमा होती है और गौण कर्म में द्वितीया होती है, अथवा इसके विपरीत भी कार्य होता है अर्थात् गौण कर्म में प्रथमा और मुख्य कर्म में द्वितीया ।[2] देवदत्तः कटं करोति (देवदत्त चटाई बनाता है), देवदत्तं देवदत्तेन वा कटं कारयति । देवदत्तः कटं कार्यते (देवदत्त के द्वारा चटाई बनाई जाती है) । देवदत्तः ग्रामं गच्छति (देवदत्त गाँव को जाता है), देवदत्तं ग्रामं गमयति (देवदत्त को गाँव भेजता है), देवदत्तः ग्रामं गम्यते (देवदत्त को गाँव भेजा जाता है), आदि । माणवकं धर्मं बोधयति (बालक को धर्म समझाता है), बोध्यते माणवकं धर्मः—माणवको धर्मं वा (बालक को धर्म समझाया जाता है), आदि । वटुम् ओदनं भोजयति (बालक को चावल खिलाता है), वटुरोदनं भोज्यते, अथवा वटुम् ओदनो भोज्यते (बालक को चावल खिलाया जाता है ), आदि ।

**८११.** जिन धातुओं के दो कर्म हैं, उनके णिजन्त रूप के साथ नि० ८०८ के अनुसार कार्य होगा । कौशिकः दशरथं रामम् अयाचत, देवाः कौशिकेन दशरथं रामम् अयाचयन् । गोपोऽजां ग्रामं हरति, स्वामी गोपेन अजां ग्रामं हारयति, आदि ।

## तृतीया विभक्ति (Instrumental Case)

**८१२.** तृतीया विभक्ति मुख्यतया निम्नलिखित अर्थों को प्रकट करती है—कर्मवाच्य प्रयोग में कर्ता को अथवा क्रिया के करण या साधन को ।[3] तव महिमा-

---

१. **हृक्रोरन्यतरस्याम् ( १-४-५३ ) । अभिवादिदृशोरात्मनेपदे वेति वाच्यम् (वा०) ।**

२. **बुद्धिभक्षार्थयोः शब्दकर्मणां च निजेच्छया । प्रयोज्यकर्मण्यन्येषां ण्यन्तानां लादयो मताः ॥ ( सूत्र ७-१-६९ पर सि० कौ० ) ।**

३. **कर्तृकरणयोस्तृतीया (२-३-१८ ) ।**

नम् अजानता मया असत्कृतोऽसि (तुम्हारी महिमा को न जानने के कारण मैंने तुम्हारा अपमान किया है)। रामेण वाणेन हतो वाली (राम ने वाण से वाली को मारा)। यहाँ पर राम कर्ता है और वाण साधन या करण है।

(क) निम्नलिखित अर्थों में भी तृतीया होती है[1]—प्रकृत्या दर्शनीयः (स्वभाव से ही दर्शनीय है), प्रायेण याज्ञिकः (वह प्रायः यज्ञकर्ता है), गोत्रेण गार्ग्यः (उसका गोत्र-नाम गार्ग्य है), सुखेन याति (वह सुख से जाता है)। इसी प्रकार समेनैति, विषमेणैति, आदि। द्विद्रोणेन धान्यं क्रीणाति (वह एक बार में दो द्रोण के हिसाब से धान ख़रीदता है), साहस्रेण पशून् क्रीणाति (वह एक बार में एक हजार पशुओं को ख़रीदता है), आदि।

(१) संख्यावाची और परिमाणवाची शब्दों में द्वितीया भी होती है। द्विद्रोणं क्रीणाति धान्यम्, शतेन शतेन शतं शतं वा वत्सान् पाययति पयः, आदि।

(ख) **विशेष**—दिव् (जूआ खेलना) धातु के साथ साधन में द्वितीया और तृतीया दोनों होती हैं।[2] अक्षैः अक्षान् वा दीव्यति (वह पाशों से जुआ खेलता है)।

(ग) सम्+ज्ञा के कर्म में द्वितीया और तृतीया दोनों होती हैं।[3] पित्रा पितरं वा संजानीते (वह पिता को पहचानता है या पिता के साथ शान्ति से रहता है)। परन्तु विष्णुं संजानीष्व (विष्णु को स्मरण करो)।

**८१३.** जब कार्य की पूर्णता या सफलता अर्थ प्रकट करना हो तो समय और मार्ग की दूरी के वाचक शब्दों में तृतीया होती है।[4] अह्ना क्रोशेन वाऽनुवाकोऽधीतः (उसने एक दिन में या कोस भर चलकर वेद का एक अनुवाक याद कर लिया)। अन्यत्र—मासम् अधीतो नायातः, यहाँ पर की कार्य की सफलता नहीं हुई है।

**८१४.** शरीर के अंग में विकार होने पर विकृत अंग में तृतीया होती है।[5] अक्ष्णा काणः (आँख का काणा)। इसी प्रकार पादेन खञ्जः, आदि।

---

१. प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम् (वा०)।
२. दिवः कर्म च (१-४-४३)।
३. संज्ञोऽन्यतरस्यां कर्मणि (२-३-२२)।
४. अपवर्गे तृतीया (२-३-६)। अपवर्गः फलप्राप्तिः, तस्यां द्योत्यायां कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे तृतीया स्यात्।
५. येनांगविकारः (२-३-२०)

**८१५.** किसी प्रकार का कोई विशेष चिह्न, जिससे किसी व्यक्ति या वस्तु की पहचान होती है, उसमें तृतीया होती है ।[1] जटाभिः तापसः (वह जटाओं से तपस्वी ज्ञात होता है) (जटाज्ञाप्यतापसत्वविशिष्ट इत्यर्थः, सि० कौ०)।

**८१६.** किसी कार्य के कारण, उद्देश्य या हेतु अर्थ को प्रकट करने के लिए भी तृतीया होती है ।[2] यह साधारण करण से भिन्न है। पुण्येन दृष्टो हरिः (पुण्य के कारण हरि को देख सका) । तेनापराधेन दण्ड्योऽसि (उस अपराध के कारण तुम दण्ड के योग्य हो) । अध्ययनेन वसति (वह अध्ययन के हेतु रहता है) । जहाँ पर क्रिया अनुमेय है, वहाँ पर भी तृतीया होती है। अलं श्रमेण (श्रम मत करो अर्थात् श्रम से यह कार्य सिद्ध नहीं होगा) (श्रमेण साध्यं नास्ति इत्यर्थः, सि० कौ०) ।

**८१७.** इन अर्थों को प्रकट करने वाले शब्दों से तृतीया होती है:—

(क) बढ़कर होना। पूर्वान् महाभाग तयाऽतिशेषे (हे भाग्यवान्, तुम भक्ति में अपने पूर्वजों से बढ़कर हो), धाम्नाऽतिशाययति धाम सहस्रधाम्नः (मुद्रा० ३-१७, वह अपने तेज के द्वारा सूर्य के तेज से भी बढ़कर है) । दूरीकृताः खलु गुणैरुद्यानलता वनलताभिः (शाकु०१) ।

(ख) समानता, सदृशता, बराबरी । स्वरेण पितरम् अनुहरति (स्वर में पिता के समान है), देहबन्धेन स्वरेण च रामभद्रम् अनुहरति (उत्तर० ४) । अस्य मुखं मातुः मुखेन संवदति (इसका मुँह अपनी माता के मुँह से मिलता है)। विष्णुना सदृशो वीर्ये (पराक्रम में विष्णु के बराबर है) ।

(ग) शपथ लेना, कसम खाना । भरतेनात्मना चाहं शपे (मैं अपनी और भरत की कसम खाता हूँ) । शापितासि मम जीवितेन (मेरे जीवन की कसम है)।

(घ) आनन्दित होना और प्रसन्न होना । भक्त्या गुरौ मय्यनुकम्पया च प्रीतास्मि (गुरु पर तुम्हारी भक्ति और मुझ पर कृपा के कारण मैं तुमसे प्रसन्न हूँ) । कापुरुषः स्वल्पकेनापि तुष्यति (नीच पुरुष थोड़े से भी सन्तुष्ट हो जाता है)।

(ङ) यान या शरीरावयव, जिस पर चढ़कर या रखकर यात्रा आदि की जाती है। रथेन संचरते (रथ में बैठकर जाता है)।

---

१. **इत्थंभूतलक्षणे ( २-३-२१ )** ।

२. **हेतौ (२-३-२३) । फलमपीह हेतुः । द्रव्यादिसाधारणं निर्व्यापारसाधारणं च हेतुत्वम् । करणत्वं तु क्रियामात्रविषयं व्यापारनियतं च । ( सि० कौ० )।**

(च) जिस मूल्य (वास्तविक या रूपकात्मक) से कोई वस्तु खरीदी जाती है। शतेन क्रीतः (सौ रुपए में खरीदा), स्वप्राणव्ययेनापि रक्षणीयाः सुहृदसवः (अपने प्राण देकर भी मित्र के प्राणों की रक्षा करनी चाहिए।)

८१८. इन शब्दों के साथ भी तृतीया विभक्ति होती है :—

(क) लाभ या प्रयोजन अर्थ के सूचक किम्, कार्यम्, अर्थः, प्रयोजनम् आदि शब्द तथा किम्+कृ धातु इसी अर्थ में हो तो। धनेन किं यः० (ऐसे धन से क्या लाभ जो०), तृणेन कार्यं भवतीश्वराणाम् (धनवानों को भी तिनके की आवश्यकता पड़ जाती है)। इसी प्रकार कोऽर्थः पुत्रेण जातेन यो न विद्वान्न धार्मिकः, न स्वामिपादानां मया किमपि प्रयोजनम्, आदि।

(ख) बस या पर्याप्त अर्थ के सूचक अलम् और कृतम् शब्द। अलं रुदितेन (मत रोवो, रोने से बस करो), कृतम् अत्यादरेण (अति आदर मत कीजिए)। अलम् का क्त्वा और ल्यप् प्रत्ययान्त के साथ भी प्रयोग मिलता है। अलम् अन्यथा संभाव्य (मुझे उलटा मत समझिए)।

(ग) साथ अर्थ के सूचक साकम्, सार्धम्, समम्, सह आदि अव्यय। आस्स्व साकं मया सौधे (भट्टि० ८—७०), वनं मया सार्धमसि प्रपन्नः (रघु० १४-६३), आहो निवत्स्यति समं हरिणाङ्गनाभिः (शाकु० १-२७), आदि।

(घ) युक्त और अभाव या हीन अर्थ के सूचक शब्द। समायुक्तोऽप्यर्थैः परिभवपदं याति कृपणः (धन से युक्त भी पुरुष०), अर्थेन हीनः (धन से रहित)।

**सूचना**—तृतीया विभक्ति के वैकल्पिक प्रयोगों के लिए देखो पंचमी, षष्ठी और सप्तमी विभक्ति के नियम।

## चतुर्थी विभक्ति (Dative Case)

८१९. चतुर्थी विभक्ति का मुख्य अर्थ संप्रदान है।[1] दा धातु के गौण कर्म को सम्प्रदान कहते हैं। जिसके लिए कोई क्रिया की जाती है, उस व्यक्ति या वस्तु को भी संप्रदान कहते हैं। विप्राय गां ददाति (वह ब्राह्मण को गाय दान देता है)। युद्धाय संनह्यते (वह युद्ध के लिए तैयार होता है)। न शूद्राय मतिं दद्यात् (शूद्र को वेद का ज्ञान न दे), आदि।

१. **चतुर्थी संप्रदाने (२-३-१३)। कर्मणा यमभिप्रैति स संप्रदानम् (१-४-३२)। क्रियया यमभिप्रैति सोऽपि संप्रदानम् (वा०)।**

किन्तु यज् धातु के कर्म में तृतीया होती है और उसके गौण कर्म में द्वितीया होती है[1] पशुना रुद्रं यजते (वह रुद्र के लिए पशु की बलि देता है)।

**सूचना**—यद्यपि दा धातु के साथ गौण कर्म में चतुर्थी होती है, तथापि इसके साथ कभी कभी षष्ठी और सप्तमी का भी प्रयोग मिलता है। राज्यं शिबीनां वृद्धं वै ददामि तव खेचर (हे आकाशगामी, मैं तुम्हें शिवियों का समृद्ध राज्य दूँगा), यस्त्वं रामे पृथिवीं दातुमिच्छसि (तुम जो पृथिवी राम को देना चाहते हो), आदि।

**८२०.** रुच् धातु तथा इस अर्थ वाली अन्य धातुओं के साथ सन्तुष्ट या प्रसन्न होने वाले व्यक्ति या वस्तु में चतुर्थी होती है।[2] हरये रोचते भक्तिः (हरि को भक्ति अच्छी लगती है), अपां हि तृप्ताय न वारिधारा स्वादुः सुगन्धिः स्वदते तुषारा (जल से तृप्त व्यक्ति को स्वादिष्ट सुगन्धित और शीतल जल की धारा रुचिकर नहीं होती है)।

**८२१.** श्लाघ् (प्रशंसा करना), ह्नु (छिपाना), स्था (रुकना) और शप् (शपथ लेना) धातुओं के साथ अभीष्ट व्यक्ति में चतुर्थी होती है।[3] गोपी स्मरात् कृष्णाय श्लाघते-ह्नुते-तिष्ठते-शपते वा (गोपी कामभाव के कारण कृष्ण की प्रशंसा करती है, उमसे अपने भावों को छिपाती है, उसकी प्रतीक्षा करती है या उसके सन्मुख शपथ लेती है) (देखो भट्टि० ७.७३-७४)। किन्तु —राजानं श्लाघते मन्त्री (मन्त्री राजा की प्रशंसा करता है) ही रूप होता है।

**८२२.** धारि (ऋणी होना) धातु के साथ जिसका ऋणी है, उसमें चतुर्थी होता है।[4] स्पृह् धातु के साथ जिस व्यक्ति या वस्तु को चाहते हैं, उसमें चतुर्थी होती है।[5] वृक्षसेचने द्वे धारयसि मे (शाकु०, तुम मेरे दो वृक्षों को सींचने की ऋणी हो), भक्ताय धारयति मोक्षं हरिः (सि० कौ०), तस्यै स्पृहयति माणोऽसौ (वह उस स्त्री को चाहता हुआ, भट्टि० ८-१५), पुष्पेभ्यः स्पृहयति (वह फूलों को चाहता है)। अन्यत्र—पुष्पाणि स्पृहयति। जहाँ पर तीव्र इच्छा होगी, वहाँ पर द्वितीया ही होगी।

---

१. **यजेः कर्मणः करणसंज्ञा संप्रदानस्य च कर्मसंज्ञा** (वा०)।
२. **रुच्यर्थानां प्रीयमाणः** (१-४-३३)।
३. **श्लाघह्नुङ्स्थाशपां ज्ञीप्स्यमानः** (१-४-३४)।
४. **धारेरुत्तमर्णः** (१-४-३५)।
५. **स्पृहेरीप्सितः** (१-४-३६)।

८२३. क्रुध्, द्रुह्, ईर्ष्य् और असूय् धातुओं तथा इन अर्थों वाली अन्य धातुओं के साथ जिस पर क्रोध आदि किया जाए, उसमें चतुर्थी होती है ।[1] हरये क्रुध्यति-द्रुह्यति-ईर्ष्यति-असूयति वा (सि० कौ०, वह हरि पर क्रोध करता है, उससे द्रोह करता है, उससे ईर्ष्या करता है या उसके दोष निकालता है) । सीतायै नाक्रुध्यन्नाप्यसूयत (भट्टि० ८-७५, राम सीता पर न क्रुद्ध हुए और न उन्होंने उसके दोष निकाले) । अन्यत्र—भार्याम् ईर्ष्यति ( वह अपनी स्त्री पर ईर्ष्या भरी दृष्टि रखता है कि कोई अन्य व्यक्ति उसको न देखे । मैनामन्योऽद्राक्षीदिति, सि० कौ०) ।

(क) क्रुध् और द्रुह् धातुओं से पहले कोई उपसर्ग होगा तो उसके साथ द्वितीया होगी ।[2] किं मां संक्रुध्यसि (तुम मुझसे क्यों क्रुद्ध हो ?), नित्यमस्मच्छरीरमभिद्रोग्धुं यतते (मुद्रा० १, वह हमारे शरीर को सदा हानि पहुँचाने का यत्न करता है) ।

**विशेष**—अभि+द्रुह् के साथ चतुर्थी का भी प्रयोग मिलता है । मया पुनरेभ्य एवाभिद्रुग्धमज्ञेन (उत्तर० ७) ।

८२४. राध् और ईक्ष् (शुभाशुभ भाग्य का विचार करना) धातुओं के साथ जिस व्यक्ति के विषय में विचार किया जा रहा हो, उसमें चतुर्थी होती है ।[3] कृष्णाय राध्यति ईक्षते वा । पृष्टो गर्गः शुभाशुभं पर्यालोचयतीत्यर्थः (सि० कौ०) ।

८२५. प्रति+श्रु और आ+श्रु (प्रतिज्ञा करना) के साथ उस व्यक्ति में चतुर्थी होती है, जिसकी प्रार्थना पर उसे कुछ वस्तु देने की प्रतिज्ञा की जाती है ।[4] विप्राय गां प्रतिशृणोति आशृणोति वा । विप्रेण मह्यं देहीति प्रवर्तितः तत् प्रतिजानीते इत्यर्थः । (सि० कौ०)

८२६. परि+क्री (नौकर आदि को भाड़े पर खरीदना) के साथ जिस

---

१. **क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः (१-४-३७) । क्रोधोऽमर्षः । द्रोहोऽपकारः । ईर्ष्याऽक्षमा । असूया गुणेषु दोषाविष्करणम् । द्रोहादयोऽपि कोपप्रभवा एव गृह्यन्ते । अतो विशेषणं सामान्येन । ( सि० कौ० ) ।**
२. **क्रुधद्रुहोरुपसृष्टयोः कर्म ( १-४-३८ ) ।**
३. **राधीक्ष्योर्यस्य विप्रश्नः ( १-४-३९ ) ।**
४. **प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः पूर्वस्य कर्ता ( १-४-४० ) ।**

मूल्य पर खरीदा गया है, उसमें विकल्प से चतुर्थी होती है और पक्ष में तृतीया होती है।[1] शतेन शताय वा परिक्रीतः (सि० कौ०)।

**८२७.** (क) इन स्थानों पर चतुर्थी होती है[2] :—प्रयोजन-वाचक शब्द जिसके लिए कोई कार्य किया जाता है, या किसी कार्य का कोई परिणाम, या किसी वस्तु की सत्ता से होने वाला कोई कार्य। मुक्तये हरिं भजति (मुक्ति के लिए हरि का भजन करता है), भक्तिर्ज्ञानाय कल्पते सम्पद्यते जायते वा (भक्ति से ज्ञान होता है), मूत्राय कल्पते जायते संपद्यते यवागूः (यवागू या जौ की लपसी मूत्र को उत्पन्न करती है, महाभारत), कुण्डलाय हिरण्यम् (महाभाष्य, कुण्डल के लिए सोना), यूपाय दारु (यज्ञिय स्तम्भ के लिए लकड़ी), आदि।

**सूचना**—इन अर्थों में जहाँ पर चतुर्थी होती है, वहाँ पर भू या अस् धातु का प्रयोग प्रायः नहीं होता है। काव्यं यशसे (भवति) (काव्य यश के लिए होता है)।

(ख) किसी उत्पात के द्वारा अशुभ कार्य की सूचना होने पर अशुभ कार्य में चतुर्थी होती है)[3] वाताय कपिला विद्युत् (पीली बिजली का चमकना आँधी आने का सूचक है)।

(ग) हित शब्द के साथ चतुर्थी होती है।[4] ब्राह्मणाय हितम् (ब्राह्मण का हित हो)।

**८२८.** वाक्य में अप्रयुक्त किन्तु अनुमित तुमुन्-प्रत्ययान्त के कर्म में चतुर्थी होती है।[5] फलेभ्यो याति (अर्थात् फलानि आहर्तुं याति, फलों को लाने के लिए जाता है), नृसिंहाय नमस्कुर्मः (अर्थात् नृसिंहम् अनुकूलयितुम्, हम नृसिंह को प्रसन्न करने के लिए उसे नमस्कार करते हैं)।

(क) तुमुन् के अर्थ में हुए भाववाचक घञ्-प्रत्ययान्त से चतुर्थी होती

---

१. परिक्रयणे संप्रदानमन्यतरस्याम् (१-४-४४) नियतकालं भृत्या स्वीकरणं परिक्रयणम्। (सि० कौ०)।
२. तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्या (वा०)। क्लृपि संपद्यमाने च (वा०)।
३. उत्पातेन ज्ञापिते च (वा०)। वाताय कपिला विद्युद् आतपायातिलोहिनी। पीता वर्षाय विज्ञेया दुर्भिक्षाय सिता भवेत्। (महाभाष्य)।
४. हितयोगे च (वा०)।
५. क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः (२-३-१४)।

है ।[1] यागाय याति (यज्ञ के लिए जाता है), त्यागाय संभृतार्थानाम् (रघु० १-७, उन्होंने दान के लिए ही धन का संग्रह किया था) ।

८२९. इन अव्ययों के साथ चतुर्थी होती है—नमः, स्वस्ति, स्वाहा (देवों को आहुति देने में प्रयुक्त), स्वधा (पितरों को अन्नादि देने में प्रयुक्त), अलम् (पर्याप्त या समर्थ अर्थ में) और वषट् (देवों को आहुति देने में प्रयुक्त) ।[2] तस्मै नमः शंभवे (उस शंभु को नमस्कार), प्रजाभ्यः स्वस्ति (प्रजाओं का कल्याण हो), स्वस्त्यस्तु ते (रघु० ५-१७, तुम्हारा कुशल हो), अग्नये स्वाहा (अग्नि के लिए आहुति है) । इसी प्रकार पितृभ्यः स्वधा, दैत्येभ्यो हरिः अलम् (हरि दैत्यों को हराने के लिए पर्याप्त है) । इसी प्रकार अलं मल्लो मल्लाय (महाभाष्य—यह पहलवान उस पहलवान से लड़ने में समर्थ है) । (देखो रघु० २-३९, भट्टि० ८-९८), इन्द्राय वषट् (यह इन्द्र के लिए आहुति है) ।

(क) जब नमः+कृ का प्रयोग होगा तब यह मुख्य क्रिया हो जाएगी, अतः इसके साथ द्वितीया विभक्ति होगी ।[3] नमस्करोति देवान् (देवों को नमस्कार करता है) । यदि तुमुन् का अर्थ अनुमित होगा तो नियम ८२८ से चतुर्थी होगी ।

(ख) अलम् अर्थ वाले प्रभुः, समर्थः, शक्तः आदि शब्द तथा प्र+भू धातु के साथ चतुर्थी होती है । (सि० कौ०) । दैत्येभ्यो हरिः प्रभुः समर्थः शक्तो वा, प्रभुः–समर्थः–शक्तो वा मल्लो मल्लाय, प्रभवति मल्लो मल्लाय, विधिरपि न येभ्यः प्रभवति (भर्तृहरि २-९४) । प्रभु आदि शब्दों के साथ षष्ठी भी होती है । (सि० कौ०) । प्रभवति निजस्य कन्यकाजनस्य महाराजः (मालती०— महाराज का अपनी कन्याओं पर पूरा अधिकार है) ।

(ग) प्रणाम करना अर्थ वाली धातुओं प्रणम्, प्रणिपत् आदि के साथ चतुर्थी और द्वितीया दोनों होती हैं । न प्रणमन्ति देवताभ्यः (कादम्बरी, वे देवताओं को प्रणाम नहीं करते हैं), तां भक्तिप्रवणेन चेतसा प्रणनाम (भक्तिभाव से युक्त चित्त से उसने उसको प्रणाम किया), प्रणिपत्य सुरास्तस्मै शमयित्रे सुरद्विषाम् (रघु० १०-१५), राक्षसों का संहार करने वाले उसको देवताओं ने प्रणाम किया), वागीशं (वाग्भिरर्थ्याभिः) प्रणिपत्य (कुमार० २-३, वाणी के स्वामी उसको प्रणाम करके) ।

---

१. **तुमर्थाच्च भाववचनात्** (२-३-१५) ।
२. **नमःस्वस्तिस्वाहास्वधालंवषड्योगाच्च** (२-३-१६) ।
३. **उपपदविभक्तेः कारकविभक्तिर्बलीयसी (वा०)** ।

**८३०**. 'कहना' अर्थ वाली कथ्, ख्या, शंस्, चक्ष्, निवेदि आदि धातुओं और 'भेजना' अर्थ वाली प्र+हि, वि+सृज्, आदि धातुओं के साथ गौण कर्म में चतुर्थी होती है। राममिप्वसनदर्शनोत्सुकं मैथिलाय कथयांबभूव सः (रघु० ११-३७, उसने मिथिला के राजा जनक से कहा कि राम धनुष को देखने के लिए उत्सुक हैं), आख्याहि मे को भवानुग्ररूपः (गीता ११-३१, मुझे बताइए कि भयंकर रूप वाले आप कौन हैं?) आदि। उपस्थितां होमवेलां गुरवे निवेदयामि (शाकु० ४, मैं गुरु जी को बताने जाता हूँ कि हवन का समय हो गया है), हरिरस्मै सुरांगनां प्रजिघाय (रघु० ८-७९, इन्द्र ने उसके तप को भंग करने के लिए एक अप्सरा भेजी), रक्षस्तस्मै महोपलं प्रजिघाय (रघु० १५-२१)।

**८३१**. मन् (दिवादि०, मानना) धातु के प्राणिभिन्न कर्म में द्वितीया और चतुर्थी दोनों होती हैं, यदि अनादर अर्थ विवक्षित हो तो।[1] न त्वां तृणं मन्ये तृणाय वा (मैं तुझे तिनके के बराबर भी नहीं समझता हूँ)। अन्यत्र—न त्वां तृणं मन्वे (यह तनादि० का रूप है, दिवादि० का नहीं, अतः द्वितीया हुई)। जब केवल तुलना अर्थ अभिप्रेत होगा, तब द्वितीया ही होगी। त्वां तृणं मन्ये (महाभाष्य)।

**८३२**. जहाँ पर वास्तविक क्रिया होती है, ऐसे स्थान पर गति (चलना, जाना, हिलना) अर्थ वाली धातुओं के साथ कर्म में द्वितीया और चतुर्थी दोनों विभक्तियाँ होती हैं, मार्ग अर्थ वाले शब्दों में नहीं।[2] ग्रामं ग्रामाय वा गच्छति (गाँव को जाता है)। अन्यत्र—मनसा हरिं व्रजति, पन्थानं गच्छति।

### पंचमी विभक्ति (Ablative Case)

**८३३**. पंचमी विभक्ति का मुख्य अर्थ है अपादान अर्थात् किसी स्थान से पृथक् होना, अतः जिससे विश्लेष या पृथक्करण (वास्तविक या अनुमित) होता

---

१. **मन्यकर्मण्यनादरे विभाषाऽप्राणिषु (२-३-१७)। अप्राणिषु के विषय में कात्यायन का कथन है कि 'अप्राणिष्वित्यपनीय नौकाकान्नशुकशृगालवर्जेष्विति वाच्यम्' अर्थात् इस सूत्र में से अप्राणिषु (प्राणि-भिन्न) शब्द हटा कर यह कहना चाहिए कि नौ (नाव), काक (कौआ), अन्न, शुक (तोता) और शृगाल (गीदड़) से भिन्न कर्म होना चाहिए। अतः न त्वां नावम् अन्नं वा मन्ये, में प्राणिभिन्न कर्म होने पर भी चतुर्थी नहीं होगी। न त्वां शुने श्वानं वा मन्ये, में कर्म श्वन् प्राणि होने पर भी विकल्प से चतुर्थी होगी।**

२. **गत्यर्थकर्मणि द्वितीयाचतुर्थ्यौ चेष्टायामनध्वनि (२-३-१२)।**

है, उसमें पंचमी विभक्ति होती है।[1] ग्रामादायाति (गाँव से आता है), धावतोऽश्वात् पतति (दौड़ते हुए घोड़े से गिरता है), सदाचारात् भ्रंशते।

(क) जुगुप्सा (घृणा करना), विराम (रुकना) और प्रमाद (प्रमाद करना) अर्थ वाले शब्दों के साथ पंचमी होती है।[2] पापात् जुगुप्सते (वह पाप से घृणा करता है), न नवः प्रभुराफलोदयात् स्थिरकर्मा विरराम कर्मणः (रघु० ८-२२, वह दृढ़-निश्चयी नया राजा फल-प्राप्ति होने तक अपने कार्यों से निवृत्त नहीं होता था), धर्मात् प्रमाद्यति (धर्म से प्रमाद करता है), स्वाधिकारात् प्रमत्तः (मेघ० १, अपने अधिकार के कार्यों को करने में प्रमत्त)। इसी प्रकार धर्मान्मुह्यति, प्रसमीक्ष्य निवर्तेत सर्वमांसस्य भक्षणात् (मनु० ५-४९), आदि।

प्र+मद् (असावधानी करना) के साथ सप्तमी विभक्ति भी होती है। अतोऽर्थान्न प्रमाद्यन्ति प्रमदासु विपश्चितः (मनु० २-२१३, अतएव विद्वान् व्यक्ति अपनी स्त्रियों के विषय में असावधानी नहीं बरतते हैं)।

**८३४**. भय और रक्षा अर्थ की धातुओं और शब्दों के साथ भय के कारण में पंचमी होती है।[3] चोराद् विभेति (चोर से डरता है), भीतो रणे श्वेतवाहात् (युद्ध में सफेद घोड़ों वाले अर्जुन से मैं डरा हुआ था), स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् (गीता २-४०, धर्म का थोड़ा भी अंश मनुष्य को बड़े भयों से बचाता है), कपेस्त्रासिपुर्नादात् (भट्टि० ९-११, वन्दर की ध्वनि से वे सब डर गए)।

(क) जिससे किसी को हटाया जाता है, उसमें पंचमी होती है।[4] पापान्निवारयति (पाप से हटाता है), यवेभ्यो गां वारयति (जौ से गाय को हटाता है)।

**८३५**. परा+जि के साथ असह्य वस्तु में पंचमी होती है।[5] अध्ययनात् पराजयते (पढ़ाई से हार मानता है), तां पराजयमानां स प्रीतेः (भट्टि० ८-७१, वह सीता रावण के प्रेम से तंग आई हुई थी)। अन्यत्र—शत्रून् पराजयते।

---

१. ध्रुवमपायेऽपादानम् (१-४-२४), अपादाने पञ्चमी (२-३-२८)।
२. जुगुप्साविरामप्रमादार्थानामुपसंख्यानम् (वा०)।
३. भीत्रार्थानां भयहेतुः (१-४-२५)।
४. वारणार्थानामीप्सितः (१-४-२७)।
५. पराजेरसोढः (१-४-२६)।

**८३६**. छिपने अर्थ की धातुओं के साथ जिससे छिपना चाहता है, उसमें पंचमी होती है।[1] मातुर्निलीयते कृष्णः (कृष्ण अपनी माता से छिपता है)। अन्यत्र—चोरान्न दिदृक्षते ।

**८३७.** (क) जिस गुरु से नियमपूर्वक विद्या पढ़ी जाती है, उसमें पंचमी होती है।[2] उपाध्यायादधीते (गुरु से पढ़ता है)। अन्यत्र—नटस्य गाथां शृणोति।

(ख) इसी प्रकार जन् (उत्पन्न होना) धातु के मूल कारण में और भू धातु के उत्पत्तिस्थान में पंचमी होती है।[3] ब्रह्मणः प्रजाः प्रजायन्ते (ब्रह्मा से सृष्टि उत्पन्न होती है), गोमयाद् वृश्चिको जायते (गोबर से बिच्छू उत्पन्न होता है), हिमवतो गङ्गा प्रभवति (हिमालय से गंगा निकलती है), कामात् क्रोधोऽभि-जायते (काम से क्रोध उत्पन्न होता है)।

**सूचना**—उत्पन्न होना या जन्म लेना अर्थ वाली धातुओं के साथ प्रायः सप्तमी होती है। तस्यां शतानन्द आङ्गिरसोऽजायत (उससे शतानन्द आंगिरस उत्पन्न हुए), मेनकायाम् उत्पन्नाम् (मेनका से उत्पन्न उसको)। (देखो मनु० १-९)

**८३८**. जहाँ पर किसी ल्यप्-प्रत्ययान्त क्रिया का लोप है, उसके कर्म और अधिकरण (आधार या स्थान) में पंचमी होती है।[4] प्रासादात् प्रेक्षते (प्रासादम् आरुह्य प्रेक्षते, सि० कौ०, महल पर चढ़कर देखती है), इसी प्रकार आसनात् प्रेक्षते = आसने उपविश्य प्रेक्षते । श्वशुराज्जिह्लेति = श्वशुरं वीक्ष्य जिह्लेति (सि० कौ०)।

**८३९**. (क) जिस स्थान और समय से किसी स्थान और समय की दूरी प्रकट की जाती है, उसमें पंचमी होती है। स्थान की दूरी के वाचक शब्द में प्रथमा और सप्तमी होती है तथा समय की दूरी के बोधक शब्द में सप्तमी होती है।[5] वनात् ग्रामो योजनं योजने वा (सि० कौ०, वन से गाँव एक योजन पर है), गवीधुमतः सांकाश्यं चत्वारि योजनानि चतुर्षु योजनेषु वा (महाभाष्य),

---

१. **अन्तर्धौ येनादर्शनमिच्छति (१-४-२८)।**
२. **आख्यातोपयोगे (१-४-२९)।**
३. **जनिकर्तुः प्रकृतिः (१-४-३०)। भुवः प्रभवः (१-४-३१)।**
४. **ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे च (वा०)।**
५. **यतश्चाध्वकालनिर्माणं तत्र पञ्चमी (वा०)। तद्युक्तादध्वनः प्रथमा-सप्तम्यौ (वा०)। कालात् सप्तमी च वक्तव्या (वा०)।**

कार्तिक्या आग्रहायणी मासे (सि० कौ०, कार्तिक-पूर्णिमा से अगहन पूर्णिमा एक मास बाद होती है), समुद्रात् पुरी क्रोशौ ।

(ख) प्रश्न और उत्तर में भी पंचमी विभक्ति होती है ।[1] कस्मात् त्वम् । नद्याः । (तुम कहाँ से आ रहे हो ? नदी से), कुतो भवान् ? पाटलिपुत्रात् (आप कहाँ से आ रहे हैं ? पटना से) ।

**८४०.** इन शब्दों के साथ भी पंचमी होती है[2] —अन्य, इतर तथा इन अर्थों वाले अन्य शब्द, आरात् (दूर और समीप), ऋते (विना), दिशावाची शब्द जो कि देश या काल के अर्थ में प्रयुक्त हुए हों (ये शब्द शरीरावयववाची होंगे तो नहीं), अञ्च् धातु से बने हुए शब्द उत्तरपद में हों तो, आ और आहि अन्त वाले अव्यय शब्द । अन्यो भिन्न इतरो वा कृष्णात् (कृष्ण से भिन्न), इतरो रावणादेष राघवानुचरो यदि (भट्टि० ७-१०६, यदि यह रावण से भिन्न कोई राम का अनुचर है तो), आराद् वनात् (वन से दूर या वन के समीप), ऋते क्रौर्यात् समायातः (भट्टि० ७-१०५, अपनी क्रूरता को छोड़कर आया है), ग्रामात् पूर्व उत्तरो वा (गाँव के पूर्व या उत्तर दिशा की ओर), चैत्रात् पूर्वः फाल्गुनः (फाल्गुन का महीना चैत्र से पहले आता है) । अन्यत्र—पूर्वं कायस्य (शरीर का अगला भाग) । प्राक् प्रत्यग् वा ग्रामात् (गाँव के पूर्व या पश्चिम की ओर), प्राक् प्रभातात् (भट्टि० ८-१०६, प्रातःकाल होने से पहले), दक्षिणा दक्षिणाहि वा ग्रामात् (गाँव के दक्षिण की ओर), उत्तरा समुद्रात् (भट्टि०, समुद्र के उत्तर की ओर) ।

**विशेष**—ऋते के साथ कभी-कभी द्वितीया भी होती है । ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे (गीता ११-३२, तुम्हारे विना भी इन सब का नाश हो जाएगा)।

(क) प्रभृति, आरभ्य, बहिः, अनन्तरम्, ऊर्ध्वम्, परम् आदि शब्दों के साथ पंचमी होती है । प्रभृति शब्द का समयवाची क्रियाविशेषणों के साथ भी प्रयोग होता है । तस्मात् दिनात् प्रभृति (उस दिन से लेकर), ततः प्रभृति या तदाप्रभृति (तब से लेकर), अद्यप्रभृत्यवनताङ्गि तवास्मि दासः (कुमार० ५-८६) । ततः तस्माद् दिनाद् वा आरभ्य, मालत्याः प्रथमावलोकदिवसादारभ्य । ग्रामाद् बहिः (गाँव से बाहर), पुरगारुत्मतगोपुराद् बहिः निरगात् (वह नगर के रत्न-जटित

---

१. **गम्यमानापि क्रिया कारकविभक्तीनां निमित्तम् (वा०) ।**

२. **अन्यारादितरर्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते (२-३-२९) ।**

द्वार से बाहर निकला), ऊर्ध्वं संवत्सरात् (मनु० ९-७७, एक वर्ष बाद), अत ऊर्ध्वम् (इसके बाद), वर्त्मनः परम् (रघु० १-१७, रास्ते से आगे), भाग्यायत्त-मतः परम् (शाकु०), पुराणपत्रापगमादनन्तरम् (रघु० ३-७०, पुराने पत्तों के गिर जाने के बाद)। देखो गीता १२-१२।

**८४१.** इन उपसर्गों के साथ पंचमी होती है[1]—

(क) अप और परि (जब ये दोनों बिना, दूर या छोड़ कर अर्थ में हों) तथा आ (तक अर्थ में हो। उस स्थान से पहले या उस स्थान को लेते हुए)। यत् संप्रत्यप लोकेभ्यो लंकायां वसतिर्भयात् (रामायण, जो कि वह संसार से दूर भयपूर्वक लंका में रहा), अप हरेः संसारः (संसार हरि से अलग ही स्थित है), अप त्रिगर्तेभ्यो वृष्टो देवः (त्रिगर्त देश को छोड़कर और सभी जगह वर्षा हुई)। इसी प्रकार परि हरेः संसारः, परि त्रिगर्तेभ्यो वृष्टो देवः (वोप०) आदि। आ मुक्तेः संसारः, आ सलकाद् ब्रह्म (ब्रह्म सभी स्थानों पर व्याप्त है), आ परितोषाद् विदुषाम् (शाकु०, विद्वानों के सन्तुष्ट होने तक)।

(ख) प्रतिनिधि और आदान-प्रदान (अदल-बदल) अर्थ में प्रति उपसर्ग के साथ। प्रद्युम्नः कृष्णात् प्रति (सि० कौ०, प्रद्युम्न कृष्ण का प्रतिनिधि है), तिलेभ्यः प्रतियच्छति मापान् (तिलों के बदले में उड़द देता है)।

**८४२.** यदि कोई ऋणवाची-शब्द बन्धन आदि का कारण होगा तो उसमें पंचमी होगी।[2] शताद् बद्धं द्रव्यम् (सौ रुपए के लिए गिरवी रक्खी हुई वस्तु), ऋणाद् बद्धम् इव (ऋण के कारण बद्ध सा)।

**८४३.** (क) किसी कार्य के कारण में भी प्रायः पंचमी होती है। अतः इसका अनुवाद 'के कारण, कारण से या हेतु से' शब्दों से किया जाता है। मौनान्मूर्खः गण्यते (चुप रहने के कारण व्यक्ति मूर्ख समझा जाता है), गोमानुषाणां वधात् (हितो०, गायों और मनुष्यों को मारने के कारण मुझे)।

(ख) युक्ति-प्रदर्शन में या अनुमान का हेतु देने में पंचमी होती है। पर्वतो वह्निमान् धूमात् (पहाड़ पर आग है, क्योंकि धुआँ दिखाई पड़ रहा है), स्मृत्यन-

---

१. **अपपरी वर्जने (१-४-८८), आङ् मर्यादावचने (१-४-८९)। पञ्चम्यपाङ्परिभिः (२-३-१०)। प्रतिः प्रतिनिधिप्रतिदानयोः (१-४-९२)। प्रतिनिधिप्रतिदाने च यस्मात् (२-३-११)।**

२. **अकर्तर्यृणे पञ्चमी (२-३-२४)।**

वकाशदोषप्रसंग इति चेन्नान्यस्मृत्यनवकाशदोषप्रसंगात् (वेदान्तसूत्र २-१-१) (पूर्वपक्षी का कथन है कि यदि आप यह कहें कि हमारी युक्ति सदोष है, क्योंकि उसमें तुम्हारी स्मृतियों को कोई स्थान नहीं रह जाता है तो हमारा उत्तर है कि आपका यह कथन भी युक्तियुक्त नहीं है, क्योंकि इस प्रकार अन्य स्मृतियों को कोई स्थान नहीं रहता है )।

(ग) तुलना अर्थ में या तुलना अर्थ के बोधक शब्दों के साथ पंचमी होती है। भक्तिमार्गात् ज्ञानमार्गः श्रेयान् ( भक्तिमार्ग से ज्ञान का मार्ग अधिक अच्छा है), अणोरप्यणीयान् (परमाणु से भी अधिक छोटा), अश्वमेधसहस्रेभ्यः सत्यमेवातिरिच्यते (एक हजार अश्वमेध यज्ञों से भी बढ़कर सत्य है), चैत्ररथादनूने (चैत्ररथ से कुछ कम नहीं) ।

**८४४.** पृथक्, विना और नाना अव्ययों के साथ पंचमी, द्वितीया और तृतीया तीनों विभक्तियाँ होती हैं।[1] पृथक् रामात्-रामं-रामेण वा (राम से भिन्न या राम के विना) । इसी प्रकार नाना रामम् आदि । नाना नारीं निष्फला लोकयात्रा (वोप०, स्त्री अर्थात् पत्नी के बिना यह लौकिक जीवन निष्फल है) ।

**८४५.** स्तोक ( थोड़ा ), अल्प ( थोड़ा ), कृच्छ्र ( कठिनाई ) और कतिपय ( कुछ ) शब्द जब क्रिया के साथ क्रिया-विशेषण के रूप में प्रयुक्त होते हैं तो इनमें पंचमी और तृतीया दोनों होती हैं।[2] स्तोकेन स्तोकाद् वा मुक्तः ( थोड़े से छूट गया ) । इसी प्रकार अल्पेन अल्पाद् वा मुक्तः । कृच्छ्रेण कृच्छ्राद् वा कृतः (कठिनाई से किया) । कतिपयेन कतिपयाद् वा प्राप्तः। अन्यत्र—स्तोकेन विषेण हतः ( थोड़े विष से मारा गया ) । यहाँ पर यह द्रव्यवाचक है । इनका क्रिया-विशेषण के तुल्य प्रयोग होने पर इनमें द्वितीया भी होती है ) स्तोकं गच्छति ।

(क) दूर और अन्तिक शब्द तथा इन अर्थों के अन्य शब्दों में पंचमी, द्वितीया और तृतीया तीनों होती हैं।[3] ग्रामस्य दूरात् दूरं दूरेण वा ( गाँव से दूर ) । इसी प्रकार ग्रामस्य अन्तिकात् अन्तिकम् अन्तिकेन वा ( गाँव के पास ) ।

### षष्ठी विभक्ति (Genitive Case)

**८४६.** पहले उल्लेख किया जा चुका है कि षष्ठी विभक्ति को कारक नहीं

---

१. **पृथग्विनानानाभिस्तृतीयान्यतरस्याम्** (२-३-३२ ) ।

२. **करणे च स्तोकाल्पकृच्छ्रकतिपयस्यासत्त्ववचनस्य** (२-३-३३ ) ।

३. **दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीया च** (२-३-३५ ) ।

माना जाता है। इसमें वाक्य के अन्तर्गत संज्ञा-शब्दों के अन्दर विद्यमान सम्बन्ध को प्रकट किया जाता है।[1] जैसे—राज्ञः पुरुषः में राजा और पुरुष के अन्दर विद्यमान स्व-स्वामिभाव सम्बन्ध को षष्ठी से प्रकट किया जाता है। इस सम्बन्ध को कोई कारक-विभक्ति प्रकट नहीं करती है। राज्ञः पुरुषः, पुत्रस्य माता, द्रव्यस्य गुणः, आदि। जहाँ पर अन्य विभक्तियों के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग होता है, वहाँ पर भी सम्बन्ध अर्थ ही प्रकट होता है। जैसे—सतां गतम्, सर्पिषो जानीते, मातुः स्मरति, एध उदकस्य उपकुरुते, भजे शंभोश्चरणयोः, फलानां तृप्तः आदि।

**८४७.** जहाँ पर वाक्य में हेतु शब्द का प्रयोग होता है, वहाँ पर हेतु शब्द में और हेतु के कर्म में षष्ठी होती है।[2] अन्नस्य हेतोर्वसति (अन्न के लिए या अन्न-प्राप्ति के निमित्त रहता है)। रोदिषि कस्य हेतोः (मार्कण्डेय पुराण २३-१२), हेतोर्बोधस्य मैथिल्याः प्रास्तावीद् रामसंकथाम् (भट्टि० ८-१०३, हनुमान् राम का दूत है, इस बात को बताने के लिए उसने सीता से राम की कथा कहनी प्रारम्भ की)।

(क) हेतु शब्द के साथ यदि किसी सर्वनाम का प्रयोग होता है तो उसमें तृतीया और षष्ठी दोनों विभक्तियों का प्रयोग होता है।[3] कस्य हेतोः, केन हेतुना (किस लिए ? किस उद्देश्य से ?)। ऐसे स्थानों पर पंचमी भी होती है। तेन हेतुना, तस्माद् हेतोः, तस्य हेतोः। जब हेतु शब्द के पर्यायवाची निमित्त, कारण आदि शब्दों का किसी सर्वनाम के साथ प्रयोग होता है तो वहाँ पर कोई भी विभक्ति हो सकती है। सर्वनाम और हेतुबोधक शब्दों में एक ही विभक्ति होगी। कस्य निमित्तस्य, कस्य प्रयोजनस्य, केन निमित्तेन, कस्मै निमित्ताय, आदि। सामान्यतया इनका द्वितीया विभक्ति में क्रियाविशेषण के तुल्य प्रयोग होता है। किं निमित्तम्, किं कारणम्, किं प्रयोजनम्, किमर्थम् आदि। जब सर्वनाम का प्रयोग नहीं होता

---

१. षष्ठी शेषे (२-३-५०)। कारकप्रातिपदिकार्थव्यतिरिक्तः स्वस्वामिभावादिसंबन्धः शेषस्तत्र षष्ठी स्यात्। कर्मादीनामपि सम्बन्धमात्रविवक्षायां षष्ठ्येव। (सि० कौ०)।

२. षष्ठी हेतुप्रयोगे (२-३-२६)।

३. सर्वनाम्नस्तृतीया च (२-३-२७)। निमित्तपर्यायप्रयोगे सर्वासां प्रायदर्शनम् (वा०)।

तो प्रथमा और द्वितीया को छोड़ कर कोई भी अन्य विभक्ति हो सकती है। ज्ञानेन निमित्तेन ( हरिः सेव्यः), ज्ञानाय निमित्ताय (ज्ञान-प्राप्ति के लिए ) ।

**८४८.** इन शब्दों के साथ षष्ठी विभक्ति होती है[1]— तः प्रत्यय अन्त वाले दिशावाचक शब्द तथा इन्हीं अर्थों वाले अन्य शब्द, जैसे—उपरि, उपरिष्टात्, अधः, अधस्तात्, पुरः, पुरस्तात्, पश्चात्, अग्रे आदि । ग्रामस्य दक्षिणतः, उत्तरतः आदि ( गाँव के दक्षिण या उत्तर की ओर आदि ), अर्कस्योपरि ( शाकु० २-८, आक के वृक्ष के ऊपर ), तरूणामधः ( शाकु० १, पेड़ों के नीचे ), तस्य स्थित्वा कथमपि पुरः ( मेघ०, कठिनाई से उसके सामने खड़े होकर ) आदि ।

(क) एन प्रत्यय अन्तवाले दक्षिणेन उत्तरेण आदि शब्दों के साथ षष्ठी और द्वितीया दोनों होती हैं ।[2] दक्षिणेन ग्रामं ग्रामस्य वा ( गाँव के दक्षिण की ओर ), उत्तरेण स्रवन्तीम् ( मालती० ९-२४, नदी के उत्तर की ओर ), दण्डकान् दक्षिणेनाहम् ( भट्टि० ८-१०८), धनपतिगृहानुत्तरेण ( मेघ० ८०, कुबेर के महल के उत्तर की ओर ) ।

**८४९.** दूर और अन्तिक शब्द तथा इनके पर्यायवाची शब्दों के साथ षष्ठी और पंचमी दोनों होती हैं ।[3] ग्रामात् ग्रामस्य वा वनं दूरं निकटं समीपं वा (वन गाँव से दूर या गाँव के समीप है ) । रामाद् रुद्रस्य यो दूरं पापाद् दुःखस्य सोऽन्तिकम् ( जो व्यक्ति राम या शिव से दूर है, वह पाप के समीप है ), प्रत्यासन्नो माधवीमण्डपस्य ( माधवी लता के मण्डप के समीप ), तस्य सकाशम् आदि ।

**८५०.** अवास्तविक ज्ञान अर्थ होने पर जो ज्ञा धातु के साथ षष्ठी होती है ।[4] तैलं सर्पिषो जानीते ( तेल को घी समझता है ) । अन्यत्र—सर्पिर्जानीते ।

(क) इन धातुओं के कर्म में षष्ठी होती है[5]—स्मरण अर्थ वाली धातुएँ, जैसे—स्मृ, अधि+इ, स्वामी होना अर्थ वाली धातुएँ, जैसे—ईश्, प्र+भू आदि, दया करना अर्थ वाली दय् आदि धातुएँ । कच्चिद् भर्तुः स्मरसि ( मेघ० ९०, क्या तुम अपने पति को स्मरण करती हो ? ), स्मरन् राघवबाणानां विव्यथे राक्षसे-

---

१. षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन ( २-३-३० ) ।
२. एनपा द्वितीया (२-३-३१)। एनपेति योगविभागात् षष्ठ्यपि। (सि०कौ०)।
३. दूरान्तिकार्थैः षष्ठ्यन्यतरस्याम् (२-३-३४ ) ।
४. ज्ञोऽविदर्थस्य करणे (२-३-५१ ) ।
५. अधीगर्थदयेशां कर्मणि (२-३-५२ ) ।

श्वरः ( रामायण ६-६०-३ ), अध्येति तव लक्ष्मणः ( भट्टि० ८-११९, लक्ष्मण तुम्हें याद करता है ), प्रभवति निजस्य कन्यकाजनस्य महाराजः ( मालती० ४, महाराज का अपनी पुत्रियों पर पूर्ण अधिकार है ), यदि तं प्रेक्षमाणा आत्मनः प्रभविष्यामि (उत्तर०, यदि उसको देखकर मैं अपने आपको सँभाल सकी तो), गात्राणाम् अनीशोऽस्मि संवृत्तः ( शाकु०, मेरा अपने अंगों पर कोई अधिकार नहीं रहा है ), कथंचिदीशा मनसां बभूवुः ( कुमार० ३–३४, बड़ी कठिनाई से वे अपने मन को वश में कर सके ), शौवस्तिकत्वं विभवा न येषां व्रजन्ति तेषां दयसे न कस्मात् (भट्टि० २-३३, जिनका ऐश्वर्य कल तक भी स्थायी नहीं है, उन पर दया क्यों नहीं करते हो ? (रामस्य दयमानः (भट्टि० ८-११९, राम पर दया करते हुए ) ।

(ख) कृ धातु अन्य गुणों के आधान अर्थ में हो तो उसके साथ षष्ठी होती है।[1] एधोदकस्योपस्कुरुते ( लकड़ी जल के गुण को भी ग्रहण करती है ) । मा कस्यचिदुपस्कृथाः ( भट्टि० ८-११९ ) ।

**८५१.** रोग अर्थ वाली धातुओं के कर्म में षष्ठी होती है, जब उनका भाववाचक प्रयोग हुआ हो अथवा रोगों के नाम कर्ता होंगे, तब षष्ठी होगी ।[2] चौरस्य ज्वरस्य रुजा ( चोर ज्वर से पीड़ित है ), पुरुषस्य रुजयत्यतिसारः ( पेचिश मनुष्य को दुःख देती है ) । ज्वर और सन्ताप कर्ता होंगे तो नहीं । देखो भट्टि० ८-१२० । तं रुजयति ज्वरः सन्तापो वा (ज्वर या सन्ताप उसको पीड़ित करता है)।

**८५२.** आशीर्वाद अर्थ होने पर नाथ् ( चाहना ) धातु के कर्म में षष्ठी होती है।[3] धृत्या नाथस्व ( धैर्य की इच्छा करो ), धनस्य नाथते ( धन की इच्छा करता है ) । इसी प्रकार सर्पिषः नाथनम् ।

**८५३.** हिंसा, दण्ड देना या हानि पहुँचाना अर्थ होगा तो इन धातुओं के कर्म में षष्ठी होगी—जस्, नि या प्र उपसर्गों के साथ पृथक् पृथक् या समस्त रूप से हन् धातु, नट्, क्रथ् और पिष् धातु ।[4] चौरस्योज्जासयति राजा ( राजा

---

१. **कृञः प्रतियत्ने (२-३-५३ ) ।**
२. **रुजार्थानां भाववचनानामज्वरेः (२-३-५४ ) । अज्वरिसन्ताप्योरिति वाच्यम् । (वा०) ।**
३. **आशिषि नाथः (२-३-५५ ) ।**
४. **जासिनिप्रहणनाटक्राथपिषां हिंसायाम् (२-३-५६ ) ।**

चोर को दण्ड देता है ), निजौजसोज्जासयितुं जगद्द्रुहाम् ( शिशु० १-३७, अपने तेज से जगत् के शत्रु राक्षसों को नष्ट करने के लिए ), मन्योरुज्जासयात्मनः (अपने क्रोध को नष्ट करो या दूर करो )। राक्षसानां निहनिष्यति-प्रहणिष्यति–निप्रहणिष्यति–प्रणिहनिष्यति रामः ( राम राक्षसों का संहार करेगा )। वृषलस्य उन्नाटयति क्राथयति वा ( वृषल या शूद्र को नष्ट करता है ), साहसिकस्य पिनष्टि गजः आदि। अन्य अर्थों में इनके साथ द्वितीया होती है। धानाः पिनष्टि ( धानों को पीसता है )।

**८५४.** व्यापार और जूए में शर्त (बाजी) लगाना अर्थों में इन धातुओं के कर्म में षष्ठी होती होती है—व्यवहृ(वि+अव+हृ), पण् और दिव्।[१] शतस्य व्यवहरति ( सौ रु० व्यापार में लगाता है ), प्राणानामपणिष्टासौ ( उसने अपने प्राणों की बाजी लगा दी ), अदेवीत् बन्धुभोगानाम् ( उसने जूए में अपने बन्धुओं और सभी भोगों को खो दिया ), आदि। यदि दिव् धातु से पहले कोई उपसर्ग होगा तो षष्ठी और द्वितीया दोनों होंगी। शतस्य शतं वा प्रतिदीव्यति (सि०कौ०)।

**८५५.** कृत्वः (बार) प्रत्यय के अर्थ को सूचित करने वाले द्विः, त्रिः, पञ्चकृत्वः आदि शब्दों के साथ कालवाचक अधिकरण में षष्ठी होती है।[२] पञ्चकृत्वोऽह्नो भोजनम् ( दिन में पाँच बार भोजन करना ), द्विरह्नो भुङ्क्ते आदि।

**८५६.** कृत्-प्रत्ययान्त शब्दों के साथ कर्ता और कर्म में षष्ठी होती है।[३] कृष्णस्य कृतिः ( कृष्ण का कार्य )। यहाँ पर कृष्ण कार्य का कर्ता है। जगतः कर्ता ( जगत् का कर्ता )। यहाँ पर जगत् कर्तृ का कर्म है। इसी प्रकार सतां पालकः ( सज्जनों का पालक ), पयसः पानम् ( दूध का पीना ), तस्य कवेः क्रिया ( उस कवि का कार्य ), साधारणी सृष्टिरियं न धातुः ( रामचरित १२-११७ ) ( यह विधाता की साधारण रचना नहीं है )।

(क) द्विकर्मक धातुओं के साथ गौण कर्म में षष्ठी और द्वितीया दोनों होते हैं।[४] नेताश्वस्य स्रुघ्नं स्रुघ्नस्य वा ( सि० कौ०, घोड़े को स्रुघ्न ले जाने वाला )।

---

१. **व्यवहृपणोः समर्थयोः (२-३-५७)। दिवस्तदर्थस्य (२-३-५८)। विभाषोपसर्गे (२-३-५९)।**
२. **कृत्वोऽर्थप्रयोगे कालेऽधिकरणे (२-३-६४)।**
३. **कर्तृकर्मणोः कृति (२-३-६५)।**
४. **गुणकर्मणि वेष्यते (वा०)।**

(ख) जहाँ पर कृदन्त शब्द के साथ कर्ता और कर्म दोनों होते हैं, वहाँ पर कर्म में ही षष्ठी होती है, कर्ता में नहीं।[1] आश्चर्यो गवां दोहोऽगोपेन ( जो ग्वाला नहीं है, उनके द्वारा गायों का दुहा जाना आश्चर्य की बात है )।

**अपवाद-नियम**—अक और अ कृत्प्रत्ययान्त शब्द यदि स्त्रीलिंग होंगे तो उनके साथ यह नियम नहीं लगेगा।[2] भेदिका बिभित्सा वा रुद्रस्य जगतः ( सि० कौ०, जगत् को विभाजित करने की रुद्र की इच्छा या रुद्र के द्वारा जगत् का विभाजित किया जाना )। कुछ आचार्यों के मतानुसार कृत्-प्रत्ययान्त शब्द यदि स्त्रीलिंग होंगे और उनके साथ कर्ता और कर्म दोनों का प्रयोग होगा तो कर्ता में षष्ठी और तृतीया दोनों होती हैं। कुछ के मतानुसार ये कृत्प्रत्ययान्त शब्द किसी भी लिंग में होंगे तो भी कर्ता में षष्ठी और तृतीया दोनों होंगी। विचित्रा जगतः कृतिः हरेर्हरिणा वा ( हरि के द्वारा जगत् की रचना आश्चर्यजनक है ), शब्दानामनुशासनम् आचार्येणाचार्यस्य वा ( सि० कौ० ), शोभना खलु पाणिनेः (पाणिनिना वा ) सूत्रस्य कृतिः ( महाभाष्य )।

**८५७.** जब क्त प्रत्यय वर्तमान अर्थ में होता है तो उसके साथ षष्ठी होती है।[3] राज्ञां मतो बुद्धः पूजितो वा ( राजाओं के द्वारा संमानित, विदित या पूजित ), यो धर्मः स सतां मतः। रामस्य संमतम् ( भट्टि० ८-१२४ )।

(क) अधिकरण या आधार-वाचक क्त प्रत्यय के साथ तथा भावार्थक क्त-प्रत्ययान्त के साथ षष्ठी होती है।[4] मुकुन्दस्यासितमिदमिदं यातं रमापतेः। भुक्तमेतदनन्तस्येत्यूचुर्गोप्यो दिदृक्षवः॥ मयूरस्य नृत्तम्, कोकिलस्य व्याहृतम्, नटस्य भुक्तम्, छात्रस्य हसितम् आदि ( महाभाष्य )। देखो भट्टि० ८-१२५।

**८५८.** इन स्थानों पर षष्ठी नहीं होती है[5]:—शतृ और शानच् प्रत्ययान्तों के साथ ( द्विष् में शतृ के साथ विकल्प से षष्ठी होगी ), उ और उक कृत्प्रत्य-

---

१. **उभयप्राप्तौ कर्मणि ( २-३-६६ )।**
२. **स्त्रीप्रत्यययोरकाकारयोर्नायं नियमः ( वा० )। शेषे विभाषा ( वा० ), स्त्रीप्रत्यये इत्येके। केचिदविशेषेण विभाषामिच्छन्ति। ( सि० कौ० )।**
३. **क्तस्य च वर्तमाने ( २-३-६७ )।**
४. **अधिकरणवाचिनश्च ( २-३-६८ )।**
५. **न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम् ( २-३-६९ )। कमेरनिषेधः ( वा० ), द्विषः शतुर्वा ( वा० )।**

यान्तों के साथ ( कामुकः के साथ षष्ठी होगी ), क्त्वा तुमुन् आदि कृत्प्रत्यान्त अव्ययों के साथ, क्त और क्तवतु प्रत्ययान्तों के साथ, खल्-प्रत्ययान्त तथा खल् अर्थ वाले ( स्वभाव, चतुर, निपुण आदि अर्थों वाले ) अन्य प्रत्ययान्तों के साथ। कर्म कुर्वन् कुर्वाणः वा। अन्यत्र—मुरं मुरस्य वा द्विषन् हरिः ( मुर का शत्रु हरि )। हरिं दिदृक्षुः ( हरि को देखने का इच्छुक ), हरिम् अलङ्करिष्णुः, दैत्यान् घातुको हरिः ( दैत्यों का नाशक हरि ), लक्ष्म्याः कामुकः, जगत् सृष्ट्वा, सुखं कर्तुम् आदि। विष्णुना हता दैत्याः, दैत्यान् हतवान् विष्णुः, ईषत्करः प्रपञ्चो हरिणा (जगत् का विस्तार हरि के लिए सरल कार्य है ), आत्मानम् अलंकरिष्णुः (अपने आपको सजाने के स्वभाव वाला ), अन्नं भिक्षुः ( स्वभावतः भिक्षा माँगने वाला ), कर्ता कटम् ( चटाई बनाने वाला )। जहाँ पर भविष्यत् अर्थ में कृत्-प्रत्यय अक होगा और ऋणी अर्थ में इन् प्रत्यय होगा, उनके साथ भी षष्ठी नहीं होगी।[1] हरिं दर्शको याति ( हरि को देखने की इच्छा से जाता है ), शतं दायी ( सौ रुपए देनदार )।

**८५९.** कृत्य-प्रत्ययान्त के साथ कर्ता में षष्ठी और तृतीया होनी है।[2] मया मम वा सेव्यो हरिः (हरि मेरे द्वारा सेवनीय है), राक्षसेन्द्रस्य संरक्ष्यं मया लव्यमिदं वनम् ( भट्टि० ८-१२९, राक्षसों के स्वामी रावण के द्वारा रक्षणीय यह वन मेरे द्वारा नष्ट करने के योग्य है )। गन्तव्या ते वसतिरलका० ( मेघ०, तुम्हें अलका जाना है )।

**८६०.** तुल्य या समानता अर्थ वाले तुल्य सदृश आदि शब्दों के साथ जिस व्यक्ति या वस्तु से समानता बताई जाती है, उसमें षष्ठी और तृतीया दोनों होती हैं। तुला और उपमा शब्दों के साथ केवल षष्ठी ही होती है।[3] तुल्यः सदृशः समो वा कृष्णस्य कृष्णेन वा ( कृष्ण के सदृश )। कोऽन्योऽस्ति सदृशो मम (मेरे समान कौन है ?)। अन्यत्र—कृष्णस्य तुला उपमा वा नास्ति (सि० कौ० )।

**विशेष**—पाणिनि के इस नियम के विरुद्ध कतिपय महाकवियों ने तुला और उपमा शब्दों के साथ तृतीया का प्रयोग किया है। तुलां यदारोहति दन्त-

---

१. अकेनोर्भविष्यदाधमर्ण्ययोः ( २-३-७० )।
२. कृत्यानां कर्तरि वा ( २-३-७१ )।
३. तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयाऽन्यतरस्याम् ( २-३-७२ )।

वाससा ( कुमार० ५-३४, वह तुम्हारे ओष्ठ की समानता को प्राप्त होता है )। स्फुटोपमं भूतिसितेन शंभुना ( शिशु० १-४, जिसकी उपमा राख से श्वेत शिव के साथ स्पष्ट रूप से दी जा सकती थी )। देखो रघु० ८-१५।

**८६१.** आयुष्यम्, मद्रम्, भद्रम्, कुशलम्, सुखम्, अर्थः और हितम् तथा इन अर्थों वाले अन्य शब्दों के साथ आशीर्वाद अर्थ में चतुर्थी और षष्ठी दोनों होती हैं।[1] आयुष्यं चिरंजीवितं कृष्णाय कृष्णस्य वा भूयात् ( सि० कौ०, कृष्ण चिरंजीवी हो )। इसी प्रकार मद्रं भद्रं कुशलं निरामयं सुखं शम् अर्थः प्रयोजनं हितं पथ्यं वा भूयात् ( सि० कौ० )।

**८६२.** मध्ये, पारे, कृते आदि अव्ययों के साथ षष्ठी होती है। गंगाया मध्ये पारे वा ( गंगा के बीच में या पार )। अमीषां प्राणानां कृते ( इन प्राणों के लिए या इस जीवन के लिए )।

**८६३.** तम-प्रत्ययान्त या इस अर्थ वाले अन्य शब्दों के साथ षष्ठी होती है। नृणां ब्राह्मणः श्रेष्ठः। अग्रणीर्मन्त्रकृतामृषीणाम् ( रघु० ५-४, मन्त्रकर्ता ऋषियों में प्रमुख )।

**सूचना**—दो में तुलना अर्थ वाले शब्दों के साथ पंचमी होती है। कभी-कभी तृतीया भी होती है। अयमस्माद् बलेन हीनः अधिको वा ( यह व्यक्ति उससे बल में न्यून या अधिक है )। इसी प्रकार देवदत्तो यज्ञदत्तात् पटुः मूर्खो वा, को नु स्वन्ततरो मया ( मुझसे अधिक अच्छे अन्त वाला कौन होगा ? )। अधिक शब्द के साथ षष्ठी, सप्तमी और तृतीया तीनों होती हैं। सुतैर्हि तासामधिकोऽपि सोऽभवत् ( वह उनको अपने पुत्रों से भी अधिक प्रिय था ), तेषामप्यधिका मासाः पञ्च च द्वादश क्षपाः ( उन्होंने उनकी अपेक्षा ५ मास १२ दिन और अधिक बिताए ), कुडवेऽधिकः प्रस्थः ( कुडव से प्रस्थ बड़ा होता है )।

## सप्तमी विभक्ति (Locative case)

**८६४.** कर्ता और कर्म से संबद्ध किसी क्रिया का जो आधार ( या स्थान ) होता है, उसे अधिकरण कहते हैं[2] और उसमें सप्तमी विभक्ति होती है।[3] स्वपिति गिरिगर्भे ( भामती० १-६० ), वासो नन्दनकानने ( वही ६४ ),

---

१. **चतुर्थी चाशिष्यायुष्यमद्रभद्रकुशलसुखार्थहितैः** ( २-३-७३ )।
२. **आधारोऽधिकरणम्** ( १-४-४५ )।
३. **सप्तम्यधिकरणे च** (२-३-३६ )।

स्थाल्याम् ओदनं पचति ( पतीली में चावल पकाता है ), कर्णे कथयति ( कान में कुछ कहता है ), मोक्षे इच्छा अस्ति, आदि। किसी कार्य के होने के समय-बोधक शब्दों में सप्तमी होती है। तस्मिन् विप्रकृताः काले दिवौकसः ( कुमार० २-१, उस समय व्याकुल देवों ने ), दिनान्ते निलयाय गन्तुम् ( रघु० २-१५ )।

(क) क्त-प्रत्ययान्त शब्दों से इन् प्रत्यय होने पर उनके कर्म में सप्तमी होती है।[1] अधीती व्याकरणे ( जिसने व्याकरण पढ़ा है ), गृहीती षट्स्वंगेषु ( जिसने वेद के ६ अंगों को पढ़ लिया है ) आदि।

साधु और असाधु शब्दों के साथ जिसके प्रति साधुता आदि प्रदर्शित की जाती है, उसमें सप्तमी होती है।[2] साधुः कृष्णो मातरि ( कृष्ण अपनी माता के प्रति सज्जन है ), असाधुर्मातुले ( कृष्ण अपने मामा के प्रति अशिष्ट व्यवहार वाला है )।

(ख) जिस उद्देश्य या फल के लिए कोई कार्य किया जाता है, उसमें सप्तमी होती है, यदि उस फल का कर्म के साथ कोई घनिष्ठ सम्बन्ध हो तो।[3] चर्मणि द्वीपिनं हन्ति दन्तयोर्हन्ति कुञ्जरम्। केशेषु चमरी हन्ति सीम्नि पुष्कलको हतः॥ ( महाभाष्य ) ( मनुष्य चर्म के लिए चीते को मारता है, हाथी-दांतों के लिए हाथी को मारता है, बालों के लिए चमरी मृग को मारता है और कस्तूरी-मृग को कस्तूरी के लिए मारता है )। यदि वस्तु का कर्म के साथ घनिष्ठ संबन्ध नहीं होगा तो चतुर्थी होगी।

**विशेष**—जिस उद्देश्य से कोई कार्य किया जाता है, उसमें कभी कभी तृतीया का भी प्रयोग मिलता है। वेतनेन धान्यं लुनाति (वेतन के लिए धान काटता है)। कभी कभी सामान्यतया उद्देश्य का बोध कराने के लिए सप्तमी होती है। यथा सृष्टोऽसि धात्रा कर्मसु तत् कुरु (परमात्मा ने तुम्हें कर्मों को करने के लिए उत्पन्न किया है, अतः उन्हें करो )।

**८६५.** इन शब्दों के साथ षष्ठी और सप्तमी दोनों विभक्तियाँ होती

---

१. **क्तस्येन्विषयस्य कर्मण्युपसंख्यानम् ( वा० )।**
२. **साध्वसाधुप्रयोगे च ( वा० )।**
३. **निमित्तात् कर्मयोगे ( वा० )। निमित्तमिह फलम्। योगः संयोगसमवायात्मकः। ( सि० कौ० )। समवायः नित्यसंबन्धः। नित्य संबन्ध को समवाय कहते हैं ( तर्ककौ० )।**

हैं[1]:––स्वामी ( मालिक ), ईश्वर, अधिपति (स्वामी ), दायाद (उत्तराधिकारी ), साक्षिन्, प्रतिभू और प्रसूत ( जिस उद्देश्य से उत्पन्न हुआ हो ) । गवां गोषु वा स्वामी ( गायों का मालिक ), पृथिव्याः पृथिव्यां वा ईश्वरः ( पृथ्वी का स्वामी ), ग्रामाणां ग्रामेषु वा अधिपतिः ( गाँवों का स्वामी ) । इसी प्रकार पित्रंशस्य पित्रंशे वा दायादः, व्यवहारे व्यवहारस्य वा साक्षी, दर्शने दर्शनस्य वा प्रतिभूः ( वह व्यक्ति जो न्यायालय में अपराधी को अपने उत्तरदायित्व पर छुड़ाता है और उसके स्थान पर न्यायालय में उपस्थित होने का उत्तरदायित्व लेता है ), गोषु गवां वा प्रसूतः गोपः ( ग्वाला गायों के लिए ही उत्पन्न होता है ) ।

**८६६.** आयुक्त और कुशल शब्द जब नियुक्त या लग्न अर्थ में होंगे तो उनके साथ षष्ठी और सप्तमी दोनों होती हैं ।[2] आयुक्तः कुशलो वा हरिपूजने हरिपूजनस्य वा ( हरि की पूजा के लिए नियुक्त ) । कुशलोऽन्वेषणस्याहम् आयुक्तो दूतकर्मणि ( भट्टि० ८-११५ ) । अन्य अर्थों में इनके साथ सप्तमी होती है । आयुक्तो गौः शकटे (गाड़ी के जूए में लगाया गया बैल ), कर्मणि कुशलः (कार्य में निपुण) ।

**८६७.** जब किसी व्यक्ति या वस्तु को किसी एक वर्ग से छाँटा जाता है, तब उसमें षष्ठी और सप्तमी दोनों होती हैं ।[3] नृणां नृषु वा ब्राह्मणः श्रेष्ठः (देखो मनु० १-९६ ), गोषु गवां वा कृष्णा बहुक्षीरा, गच्छतां गच्छत्सु वा धावन् शीघ्रः, छात्राणां छात्रेषु वा मैत्रः पटुः ( सि० कौ० ) ।

**८६८.** साधु और निपुण शब्दों के साथ सप्तमी होती है, यदि पूजा अर्थ हो तो । प्रति, परि या अनु उपसर्ग पहले होगा तो नहीं ।[4] मातरि साधुर्निपुणो वा ( माता के प्रति शिष्टता से युक्त ) । अन्यत्र––निपुणः राज्ञः भृत्यः ( राजा का चतुर सेवक ) । प्रति, परि या अनु उपसर्ग पहले होंगे तो द्वितीया होगी । साधुर्निपुणो वा मातरं प्रति पर्यनु वा ।

**८६९.** प्रसित और उत्सुक शब्दों के साथ सप्तमी और तृतीया दोनों होती

---

१. **स्वामीश्वराधिपतिदायादसाक्षिप्रतिभूप्रसूतैश्च ( २-३-३९ ) ।**
२. **आयुक्तकुशलाभ्यां चासेवायाम् ( २-३-४० ) ।**
३. **यतश्च निर्धारणम् ( २-३-४१ ) । जातिगुणक्रियासंज्ञाभिः समुदायादेकदेशस्य पृथक्करणं निर्धारणम् । ( सि० कौ० ) ।**
४. **साधुनिपुणाभ्यामर्चायां सप्तम्यप्रतेः ( २-३-४३ ) । अप्रत्यादिभिरिति वक्तव्यम् ( वा० ) ।**

हैं ।[1] प्रसित उत्सुको वा हरिणा हरौ वा (हरि की ओर उत्सुक) । पत्या प्रस्थितेन पत्यौ प्रस्थिते वा योषिदुत्सुका ( पति के प्रस्थान के समय स्त्री व्याकुल हो जाती है ) । तेजस्विभिरुत्सुकानाम् ( किराता० १६-७ ) ।

**८७०.** नक्षत्रवाचक शब्द यदि समय-विशेष के वाचक के रूप में प्रयुक्त होते हैं तो उनके साथ सप्तमी और तृतीया दोनों होती हैं ।[2] मूलेनावाहयेद् देवीं श्रवणेन विसर्जयेत् । मूले श्रवणे इति वा । ( सि० कौ० ) ।

**८७१.** समय और स्थान के अन्तर-बोधक शब्दों के साथ सप्तमी और पंचमी होती हैं ।[3] अद्य भुक्त्वाऽयं द्व्यहे द्व्यहाद् वा भोक्ता ( आज खाना खा कर यह दो दिन बाद खाना खाएगा ), इहस्थोऽयं क्रोशे क्रोशाद् वा लक्ष्यं विध्येत् ( यहाँ खड़ा होकर यह दो मील दूर के निशाने को मार सकता है ) ।

**८७२.** अधिक या बढ़ कर अर्थ में उप उपसर्ग के साथ तथा स्वामी अर्थ में अधि उपसर्ग के साथ सप्तमी होती है ।[4] उप परार्धे हरेर्गुणाः ( हरि के गुण परार्ध से भी अधिक हैं ), अधि भुवि रामः, अधि रामे भूः वा ( राम पृथ्वी का स्वामी है ) । अन्य अर्थों में इन उपसर्गों के साथ द्वितीया होती है । देखो नियम ८०५ ।

**८७३.** दूर और अन्तिक शब्द तथा इन अर्थों वाले अन्य शब्दों के साथ सप्तमी भी होती है । ग्रामस्य दूरे दूरं दूरेण दूरात् वा, तस्याः समीपे समीपेन समीपाद् गत्वा ।

**८७४.** प्रेम, आदर और आसक्तिसूचक स्निह्, अनुरञ्ज्, अभिलष्, रम् आदि धातुओं के साथ तथा इनसे बने हुए शब्दों के साथ प्रायः सप्तमी होती है । पिता पुत्रे स्निह्यति ( पिता पुत्र से स्नेह करता है ), अस्ति मे सोदरस्नेहोऽपि एतेषु ( शाकु० १, इन पौधों पर मेरा सगी बहन के तुल्य प्रेम है ) । न खलु तापसकन्यकायां ममाभिलाषः ( वस्तुतः मेरा इस तपस्वी की कन्या से प्रेम नहीं है ) । अशुद्धप्रकृतौ राज्ञि जनता नानुरज्यते ( जिस राजा के मन्त्री दुश्चरित्र होते हैं, उससे जनता प्रेम नहीं करती है ), भ्रातुर्मृतस्य भार्यायां योऽनुरज्येत कामतः

---

**१. प्रसितोत्सुकाभ्यां तृतीया च । ( २-३-४४ ) । विषयविवक्षया सप्तमी । करणत्वविवक्षया तृतीया ( भट्टि० ८-११७ पर भरत ) ।**

**२. नक्षत्रे च लुपि ( २-३-४५ ) ।**

**३. सप्तमीपञ्चम्यौ कारकमध्ये ( २-३-७ ) ।**

**४. यस्मादधिकं यस्य चेश्वरवचनं तत्र सप्तमी ( २-३-९ ) ।**

( मनु० ३-१७९ ), रहसि रमते ( मालती० ३-२, एकान्त में आनन्दित रहता है ), रतः श्रेयसि ( भट्टि० १, अपने कल्याण में लगा हुआ ) ।

**सूचना**—अनुरञ्ज् और अभिलष् के साथ कभी कभी द्वितीया भी होती है। समस्थमनुरज्यन्ति (रामायण ), मानुषानभिलषन्ती ( भट्टि० ४-२२ ) ।

**८७५.** व्यवहार करना, बर्ताव करना अर्थ वाली वृत्, व्यवहृ आदि धातुओं तथा फेंकना अर्थ वाली अस्, मुच्, क्षिप् आदि धातुओं के साथ सप्तमी होती है। गुरुषु विनयेन वृत्तिः कार्या ( अपने गुरुओं के प्रति विनय का व्यवहार करना चाहिए ), कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने ( शाकु० ४ ), ते तस्मिन् शरान् मुमुचुः चिक्षिपुर्वा, न खलु न खलु बाणः संनिपात्योऽयमस्मिन् मृदुनि मृगशरीरे ( शाकु० १ ), तस्मिन्नास्थदिषीकास्त्रम् ( रघु० ७-२३ ), ।

**८७६.** अप+राध् ( अपराध करना ) धातु के साथ साधारणतया सप्तमी होती है। कभी कभी षष्ठी भी होती है। कस्मिन्नपि पूजार्हे अपराद्धा शकुन्तला ( किसी पूजनीय के प्रति शकुन्तला ने अपराध किया है ), न तु ग्रीष्मस्यैवं सुभगमपराद्धं युवतिषु ( शाकु० ३-९ ), किं पुनरसुरावलेपेन भवतीनामपराद्धम् ( विक्रमो० १ ) ।

### भावलक्षणार्थक षष्ठी और सप्तमी

### (The Genitive and the Locative Absolutes)

**८७७.** क्रिया के कर्ता से भिन्न यदि किसी कर्ता के साथ क्रिया-शब्दों ( Participle ) का समन्वय होता है तो उसे भावलक्षणार्थक रचना (Absolute construction) कहते हैं। (Bain)

अंग्रेजी में भावलक्षण अर्थ में कर्ता ( प्रथमा ) का प्रयोग होता है, परन्तु संस्कृत में ऐसे स्थानों पर षष्ठी और सप्तमी का प्रयोग होता है । अतः अंग्रेजी के भावलक्षणार्थक कर्ता का अनुवाद संस्कृत में भावलक्षणार्थक सप्तमी के द्वारा करना चाहिए। जहाँ पर भावलक्षणार्थक प्रयोग करना हो वहाँ पर कृदन्त क्रिया-शब्द (Participle) के कर्ता में षष्ठी या सप्तमी का प्रयोग करना चाहिए और कृदन्त क्रिया- शब्द में वही लिंग, विभक्ति और वचन होगा जो कर्ता में होता है ।

**सूचना**—जहाँ पर मुख्य वाक्य का कर्ता या कर्म और कृदन्त क्रिया-शब्द का कर्ता या कर्म एक ही होते हैं, वहाँ पर भावलक्षणार्थक प्रयोग नहीं करना चाहिए। **जैसे**—अयोध्यां निवृत्तो रामो राज्यम् अकरोत्, प्रयोग करना चाहिए। अयोध्यां

निवृत्ते रामे सः० नहीं। आगतेभ्यो विप्रेभ्यो दक्षिणामयच्छत्। इसके स्थान पर आगतेषु विप्रेषु तेभ्यः० प्रयोग नहीं।

८७८. जहाँ पर एक क्रिया दूसरी क्रिया के होने का संकेत करती है अर्थात् जहाँ पर एक क्रिया के बाद दूसरी क्रिया होती है, वहाँ पर भावलक्षणार्थक सप्तमी का प्रयोग होता है।[1] गोषु दुह्यमानासु गतः ( जब गाएँ दुही जा रही थीं, तब वह गया ), अवसन्नायां रात्रौ ( रात्रि के बीतने पर ), कुतो धर्मक्रियाविघ्नः सतां रक्षितरि त्वयि (जब तक सज्जनों के रक्षक आप विद्यमान हैं, तब तक हमारी धार्मिक क्रियाओं में विघ्न कहाँ से हो सकता है)।

८७९. 'जब, जिस समय, यद्यपि, आदि अर्थों को प्रकट करने के लिए भी भावलक्षण अर्थ में षष्ठी और सप्तमी होती हैं। एवं तयोः परस्परं वदतोः ( जब वे दोनों इस प्रकार बात कर रहे थे ), सूर्ये दृष्टे पुनरपि भवान् वाहयेदध्वशेषम् (फिर जब सूर्य दिखाई पड़े तब आप अपने शेष मार्ग की यात्रा को पूरा कीजिएगा)।

८८०. जहाँ पर अनादर या अपमान अर्थ प्रकट करना होता है, वहाँ पर भी भावलक्षण अर्थ में षष्ठी और सप्तमी होती हैं।[2] रुदति रुदतो वा पुत्रे पुत्रस्य वा प्राव्राजीत् ( पुत्र को रोता हुआ छोड़कर वह संन्यासी हो गया )। ऐसे स्थानों पर षष्ठी का प्रयोग अधिक मिलता है। ऐसे प्रयोगों वाले स्थलों पर 'तथापि, फिर भी' आदि अर्थ प्रकट होता है।

(क) भावलक्षणार्थक षष्ठी और सप्तमी वाले प्रयोगों के बाद एव या मात्र का समास करने पर 'ज्योंही...त्योंही, ज्योंही, जैसे ही' आदि अर्थ प्रकट होते हैं। तस्मिन्....संहितमात्र एव (रघु० १६-७८, ज्योंही बाण को धनुष पर चढ़ाया त्योंही ० ), अनवसितवचन एव मयि (मैंने अपनी बात समाप्त भी नहीं की थी तभी )।

## भाग ३

## सर्वनाम (Pronoun)

८८१. सर्वनामों की वाक्य-विचार-संबन्धी मुख्य विशेषताओं का उल्लेख अध्याय ४ में किया जा चुका है।

---

१. यस्य च भावेन भावलक्षणम् ( २-३-३७ )। यस्य क्रियया क्रियान्तरं लक्ष्यते ततः सप्तमी स्यात्। ( सि० कौ० )

२. षष्ठी चानादरे ( २-३-३८ )।

**८८२.** मध्यम पुरुष और उत्तम पुरुष के सर्वनामों अर्थात् युष्मद् और अस्मद् शब्दों का कोई लिंग नहीं है। अन्य सर्वनामों का विशेष्य के अनुसार लिंग होता है। युष्मद् और अस्मद् शब्दों के छोटे रूपों के प्रयोग के लिए देखो अध्याय ४।

**८८३.** भवत् शब्द का प्रयोग तू के अर्थ में होता है और यह आदर-सूचक शब्द है। भवत् शब्द को प्रथम पुरुष का सर्वनाम माना जाता है, अतः इसके साथ प्र० पु० ही होता है। भवान् अत्र प्रष्टव्यः ( यहाँ आपसे पूछना है ), भवान् अपि तत्र गच्छतु ( आप भी वहाँ जाइए )।

(क) आदर-सूचनार्थ भवत् शब्द से पहले अत्र और तत्र शब्दों का प्रयोग होता है। समीपस्थ व्यक्ति के लिए अत्रभवान् और दूरस्थ या अनुपस्थित व्यक्ति के लिए तत्रभवान्। अत्रभवान् काश्यपः ( समीपस्थ पूजनीय काश्यप ), इदमासनम् अलंकरोत्वत्रभवान् ( आप इस आसन को सुशोभित कीजिए ), तत्रभवतीं इरावती ( पूजनीया इरावती, जो यहाँ अनुपस्थित है )। कभी कभी आदरार्थ में भवत् शब्द से पहले तद् शब्द का प्रयोग होता है। जैसे—यस्मां विधेयविषये स भवान् नियुङ्क्ते ( मालती० १ )

**८८४.** तद् सर्वनाम का प्रायः प्रसिद्ध या विख्यात अर्थ होता है। तौ पार्वतीपरमेश्वरौ ( वे विख्यात पार्वती और परमेश्वर ), तान्येव वनस्थलानि ( वे प्रसिद्ध वन-प्रदेश )।

(क) जहाँ पर तद् शब्द का दो वार पाठ किया जाता है, वहाँ पर इसका 'विविध या अनेक' अर्थ होता है। तेषु तेषु रम्यतरेषु स्थानेषु ( उन विविध अति रमणीय स्थानों पर ), कृतैरपि तैस्तैः प्रयत्नैः ( विविध प्रयत्नों के करने पर भी ), कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः० ( गीता ७-२० )।

**८८५.** एक और अपर या अन्य सर्वनामों का 'कुछ...अन्य' अर्थ में बहुवचन में प्रयोग होता है। विधवायाः पुनरुद्वाहः सशास्त्र इत्येके, शास्त्रप्रतिषिद्ध इत्यन्ये, कलौ निषिद्ध इत्यपरे ( कुछ का मत है कि विधवाओं का पुनर्विवाह शास्त्रसम्मत है, अन्य लोगों का विचार है कि यह शास्त्रों में निषिद्ध है और कुछ का मत है कि यह कलियुग में निषिद्ध है )। एके के स्थान पर केचित् का भी प्रयोग होता है।

**८८६.** युष्मद्, अस्मद्, यद् और किम् सर्वनामों का अन्य सर्वनामों के साथ मिला हुआ भी प्रयोग होता है। सोऽहं...रघूणामन्वयं वक्ष्ये ( वह मैं रघुओं के

वंश का वर्णन करूँगा ), सोऽहं सर्वाधमो लोके ( मैं संसार में सब से नीच व्यक्ति हूँ ), स त्वं प्रशस्ते महिते मदीये—अग्न्यागारे—वसन् (वह तू मेरे पवित्र और आदरणीय अग्निशाला में रहता हुआ), ते वयं दमयन्त्यर्थं चरामः पृथिवीमिमाम् ( इस प्रकार के हम दमयन्ती के लिए इस पृथिवी पर घूम रहे हैं ) । कहीं कहीं पर युष्मद् और अस्मद् शब्द लुप्त रहते हैं। सा क्षिप्रमातिष्ठ रथं गजं वा, अर्थात सा त्वम् ( वह तू शीघ्र ही रथ पर या हाथी पर बैठ ), सोऽयं पुत्रस्तव मदमुचां वारणानां विजेता ( यह वह तेरा पुत्र है, जो मद वहाने वाले हाथियों का विजेता है ), तथा विनाकृतः पुत्रैर्योऽहमिच्छामि जीवितुम् (इस प्रकार पुत्रों से रहित होकर भी मैं जीवित रहना चाहता हूँ) ।

## तुलनार्थक और अतिशय-बोधक प्रत्यय
## (Comparative and Superlative Degrees)

**८८७.** दो की तुलना वाले विशेषण शब्दों के साथ पंचमी का प्रयोग होता है। वर्धनाद् रक्षणं श्रेयः ( प्रजा की वृद्धि की अपेक्षा उसकी रक्षा करना अधिक अच्छा है ), अर्जुनाद् युधिष्ठिरो ज्यायान् ( अर्जुन से युधिष्ठिर बड़ा था ) ।

(क) कभी कभी तुलनार्थक प्रत्ययान्तों के साथ तृतीया भी होती है । प्राणैः प्रियतरः ( प्राणों से भी अधिक प्रिय ) । देखो नियम ८६३ पर सूचना ।

**८८८.** अतिशय-बोधक शब्दों के साथ षष्ठी और सप्तमी दोनों होती हैं । अयमेतेषाम् एतेषु वा गरिष्ठः गुरुतमो वा ।

**८८९.** तुलना और अतिशय का अर्थ विभिन्न विशेष विभक्तियों के प्रयोग से प्रकट किया जा सकता है । अस्य हृदयं पाषाणात् कठिनम् ( इसका हृदय पत्थर से भी अधिक कठोर है ), छात्राणां छात्रेषु वा चैत्रः पटुः ( चैत्र सभी छात्रों से अधिक चतुर है ) ।

**८९०.** जब अतिशय अर्थ में वर और प्रवर शब्दों का प्रयोग होता है तो इनके साथ षष्ठी और सप्तमी होती हैं । पुत्रः स्पर्शवतां वरः ( स्पर्श के योग्य वस्तुओं में पुत्र सर्वोत्तम है ), चतुष्पदां गौः प्रवरा लोहानां काञ्चनं वरम् ( पशुओं में गाय सर्वश्रेष्ठ है और धातुओं में सोना ) । नपुं० एक० वरम् का निषेधात्मक शब्दों के साथ 'अधिक अच्छा है, या पर नहीं' अर्थ में प्रयोग होता है । अकरणान्मन्दकरणं वरम् ( कुछ न करने से धीरे धीरे काम करना अधिक अच्छा है ), अजातमृतमूर्खाणां वरमाद्यौ न चान्तिमः ( तीन प्रकार के पुत्रों अर्थात्

अनुत्पन्न, मृत और मूर्ख में से प्रथम दो अच्छे हैं, पर अन्तिम अच्छा नहीं है )। याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा ( मेघ० १-६ ), वरं प्राणैः वियोगः न तु मानहानिः ( मानहानि से मर जाना अधिक अच्छा है )।

भाग ४

## कृत्प्रत्ययान्त क्रियाशब्द ( Participles )

**८९१.** सभी कृत्प्रत्ययान्त क्रिया-शब्द जिनके रूप चलते हैं, वे संस्कृत में विशेषण के तुल्य प्रयुक्त होते हैं अर्थात् विशेष्य के तुल्य उनके लिंग, विभक्ति और वचन होते हैं। कृत्प्रत्ययान्त क्रियाशब्द प्रायः क्रिया का कार्य करते हैं। इनका विशेष रूप से प्रयोग भूत और भविष्यत् लकारों के स्थान पर होता है और मुख्यतया कर्मवाच्य तिङन्त प्रयोगों के स्थान पर। जब इनका इस प्रकार प्रयोग होता है तो इनमें वे ही वाक्य-विचार के नियम लागू होते हैं, जो उन धातुओं के लिए बताए गए हैं।

### शतृ और शानच् प्रत्यय ( Present Participles )

**८९२.** शतृ और शानच् प्रत्ययों का प्रयोग कार्य की समान-कालीनता का बोध कराने के लिए होता है। इसका 'जब या जिस समय' अर्थ में मुहावरे वाला प्रयोग होता है। अरण्ये चरन् ( जब वह वन में घूम रहा था ), विवाहकौतुकं बिभ्रत एव ( जब वह विवाह का कंगन पहने हुए था, तभी )।

देखो नियम ६७० (ख)।

**८९३.** किसी कार्य के करने के ढंग में, उसके कारण और फल अर्थ में शतृ तथा शानच् प्रत्यय होते हैं।[1] शयाना भुञ्जते यवनाः ( यवन लेटे हुए खाते हैं ), हरिं पश्यन् मुच्यते ( हरि को देखने से मनुष्य मुक्त हो जाता है )। इसी प्रकार तिष्ठन् मूत्रयति, गच्छन् भक्षयति ( महाभाष्य )।

**८९४.** शतृ और शानच् प्रत्ययान्त रूपों के बाद में स्था और आस् धातुओं का प्रायः प्रयोग होता है और वह धातु के द्वारा उक्त कार्य की अबाधगति को सूचित करता है। पशूनां वधं कुर्वन् आस्ते (वह पशुओं का वध करता हुआ रहता था ), तं प्रतिपालयन् तस्थौ ( वह उसकी प्रतीक्षा करता रहा )।

### क्वसु प्रत्यय (Perfect participle)

**८९५.** क्वसु ( वस् ) प्रत्यय का प्रयोग बहुत कम पाया जाता है। यह लिट्

---

१. लक्षणहेत्वोः क्रियायाः ( ३-२-१२६ )। हेतुः फलं कारणं च ( सि० कौ० )

लकार के स्थान में 'हुआ है, हो चुका है' अर्थ में होता है। तं तस्थिवांसं नगरोपकण्ठे ( रघु० ५-६१, नगर के समीप रुके हुए उसको ), श्रेयांसि सर्वाण्यधिजग्मुषस्ते ( रघु० ५-३४, जिसने सभी कल्याणकारी वस्तुओं को प्राप्त कर लिया है, ऐसे तेरे ), स शुश्रुवांस्तद्वचनम् (भट्टि० १-२०, जब उसने उसकी बात सुनी ), आदि।

## क्त और क्तवतु प्रत्यय (Past Participles)

**८९६.** क्त प्रत्यय का प्रयोग अधिकांश में भूतकालिक तिङन्त रूप के स्थान पर होतय है। इसका प्रयोग वहुत होता है। कभी कभी इसके बाद सहायक क्रिया अस् या भू का भी प्रयोग होता है। क्त प्रत्ययान्त के लिंग, विभक्ति और वचन कर्म के अनुसार होते हैं, कर्ता में तृतीया होती है। क्तवतु प्रत्ययान्त के लिंग आदि कर्ता के तुल्य होने हैं। क्त प्रत्यय का प्रयोग कर्मवाच्य में होता है और क्तवतु का कर्तृवाच्य में। तेन कार्यं कृतम् ( उसके द्वारा काम किया गया ), तेन बन्धनानि छिन्नानि ( उसके द्वारा बन्धन काटे गए )। आदिष्टास्मि देव्या धारिण्या ( देवी धारिणी ने मुझे आदेश दिया है )। स कार्यं कृतवान् ( उसने कार्य किया ), रामः दैत्यान् हतवान् ( राम ने राक्षसों को मारा ), कृतवत्यसि नावधीरणाम् ( तुमने कभी मेरा अपमान नहीं किया )।

**८९७.** अकर्मक धातुओं से जब क्त प्रत्यय होता है तो उसके कर्ता में प्रथमा विभक्ति होती है। तदा प्ररुदितो राजा रक्षसाम् ( तब राक्षसों का राजा रोया ), सत्यं मृतोऽयं पापः, आदि।

**८९८.** क्त प्रत्यय का भाववाच्य में भी प्रयोग होता है। तब कर्ता में तृतीया होती है। प्रद्युतितं प्रद्योतितं वा सूर्येण ( सूर्य के द्वारा प्रकाशित हुआ गया ), जितं पुत्रप्रेम्णा ( पुत्र-प्रेम की जय हुई )। पण्डितायितं तत्रभवता ( आपने अपनी पण्डिताई दिखाई )। प्रमुदितं प्रमोदितं वा साधुना, आदि।

**८९९.** मन्, वुध्, पूज् और इन अर्थों वाली अन्य धातुओं से क्त प्रत्यय वर्तमान अर्थ में होता है और इनके साथ षष्ठी होती है। देखो नियम ८५७।

अन्य विवरणों के लिए देखो नियम ७०५ से ७०७।

**९००.** कुछ स्थानों पर क्त प्रत्यय कर्तृवाच्य में होता है और कर्तृवाच्य लिट् के तुल्य उनके साथ द्वितीया होती है। आरूढमद्रीन् ( रघु० ६-७७, जो पहाड़ों पर चढ़ गया है )। इसी प्रकार गगनमध्यमारूढः सविता, आपदमुत्तीर्णः

( उसने आपत्ति को पार कर लिया है ) । यमुनाकच्छमवतीर्णः ( यमुना के किनारे उतरा ), आदि ।

९०१. क्तप्रत्ययान्त का प्रयोग नपुंसक० संज्ञाशब्द के तुल्य भी होता है। गतम् ( जाना ), दत्तम् (दान ), खातम् ( खाई ), भुक्तम्, सुप्तम्, आदि ।

९०२. क्त और क्तवतु प्रत्ययान्त के बाद सहायक क्रिया अस् और भू का किसी भी लकार में प्रयोग हो सकता है । तदनुसार ही इनके अर्थों में भी परिवर्तन होता जाएगा । गतोऽस्मि, गतवानस्मि ( मैं गया हूँ ) । इसी प्रकार गतवानभवम्, गतवानासम्, गतोऽभवम् ( मैं गया था ) । इसी प्रकार कृतवानस्मि, गतो वनं श्वो भवितेति रामः ( राम कल वन को चले जाएँगे ), संप्राप्तः कीर्तिमतुलां भविष्यसि ( तुम्हें अनुपम कीर्ति प्राप्त होगी ), आदि ।

**भविष्यत् अर्थ वाले शतृ, शानच्** (Future Participles)

९०३. भविष्यत् अर्थ में होने वाले शतृ और शानच् यह प्रकट करते हैं कि धातु के द्वारा उक्त अर्थ होने वाला है या होगा । करिष्यन् ( अभी करने वाला ), करिष्यमाण ( अभी किया जाने वाला या अभी करने वाला ) ।

९०४. ये भविष्यत् अर्थ वाले प्रत्यय भविष्यत् अर्थ के अतिरिक्त इच्छा या उद्देश्य अर्थ को भी प्रकट करते हैं । अनुयास्यन् मुनितनयाम् ( मुनि की पुत्री के पीछे जाने की इच्छा वाला ), दास्यन् ( देने की इच्छा वाला ), वन्यान् विनेष्यन्निव दुष्टसत्त्वान् ( मानों वन के दुष्ट प्राणियों को विनीत बनाने की इच्छा वाला ) ।

**कृत्य प्रत्यय**

(Potential Passive Participles)

९०५. कृत्य प्रत्ययों ( तव्य, अनीय आदि ) का प्रयोग 'चाहिए या करना चाहिए' अर्थ में होता है । इसके अतिरिक्त इनका अभिप्राय होता है कि योग्य है, समर्थ है, कर्तव्य है, उसमें सामर्थ्य है, आदि । इनके साथ कर्ता में तृतीया होती है । विमर्शमकरोच्चित्ते किं कर्तव्यं मयाऽधुना ( देवीभागवत ४-७-१, उसने मन में सोचा कि मुझे क्या करना चाहिए ) । धर्मः अनुसरणीयः ( धर्म का अनुसरण करना चाहिए ), त्वया भारो वहनीयः ( तुम इस भार को ढो सकते हो ), हन्तव्योऽयं शठः ( इस धूर्त का वध करना चाहिए ) । गन्तव्या ते वसतिरलका नाम यक्षेश्वराणाम् ( तुम्हें अलका नगरी जाना है, जहाँ यक्षों के राजा रहते हैं ) ।

**विशेष**—कभी कभी कृत्य प्रत्ययों के साथ कर्ता में षष्ठी भी होती है। मम सेव्यो हरिः ( हरि मेरे द्वारा सेवनीय है ), द्विजातीनां भक्ष्यम् अन्नम् ( भात ब्राह्मणों को खाना चाहिए ) ।

**९०६.** कभी कभी कृत्य प्रत्ययों का भाववाच्य में प्रयोग होता है और उसमें नपुंसक० एक० रहता है। तत्रभवता तपोवनं गन्तव्यम् ( आपको तपोवन जाना चाहिए ), मया चाण्डालैः सह स्थातव्यम् (मुझे चाण्डालों के साथ रहना चाहिए ), आदि ।

**९०७.** नपुंसक लिंग वाले रूप भवितव्यम् और भाव्यम् का भाववाच्य में प्रयोग होता है और इसका अर्थ होता है—'होना चाहिए, अधिक संभव है, होगा।' इसके साथ कर्ता में तृतीया होती है। अत्र केनापि कारणेन भवितव्यम् ( इसमें अवश्य कोई कारण होना चाहिए ), अस्य शब्दानुरूपेण पराक्रमेण भवितव्यं भाव्यं वा ( अधिक संभव है कि इसके शब्द के अनुकूल ही इसका बल भी होगा )। आर्यया प्रवहणमारूढया भवितव्यम् ( आर्या संभवतः गाड़ी में बैठी हुई होंगी ), आदि।

**९०८.** कृत्य-प्रत्ययान्तों का कभी-कभी संज्ञा-शब्द के तुल्य भी प्रयोग होता है। प्रष्टव्य पृच्छतस्तस्य ( पूछने योग्य बात पूछते हुए उसका ), भवितव्यं भवत्वेव ( होनहार को होने दो ) ।

### क्त्वा और ल्यप् प्रत्यय (Gerunds )

**९०९.** क्त्वा और ल्यप् प्रत्यय कर्ता के द्वारा किए गए दो कार्यों में से प्रथम का बोध कराते हैं। इति उक्त्वा विरराम ( यह कहकर वह चुप हो गया ), तान् पृष्ठम् आरोप्य जलाशयं नीत्वा भक्षयति (उनको पीठ पर लाद कर तालाब के समीप ले जाकर वह उन्हें खा जाता था ) ।

क्त्वा और ल्यप् प्रत्ययान्त रूप क्रिया-शब्द का कार्य करते हुए वाक्यों के संयोजक का भी काम करते हैं, अतएव संस्कृत में संयोजक अव्ययों आदि का प्रयोग कम होता है। जहाँ पर किसी वाक्य में कई क्त्वा या ल्यप् प्रत्ययान्त रूपों का प्रयोग होता है, उसका अनुवाद विभिन्न क्रिया-शब्दों और संयोजक अव्ययों का प्रयोग करके करना चाहिए, अथवा 'कर या करके' का प्रयोग करके अनुवाद किया जा सकता है। प्रवृत्ते प्रदोषसमये चन्द्रापीडः चरणाभ्यामेव राजकुलं गत्वा पितुः समीपे मुहूर्तं स्थित्वा दृष्ट्वा च विलासवतीम् आगत्य स्वभवनं शयनतलमधिशिश्ये ( सायं काल का समय होने पर, चन्द्रापीड पैदल ही राजभवन में गया,

थोड़ी देर पिता के समीप रहा और विलासवती को देख कर अपने महल में पहुँच कर बिस्तर पर सोया )।

६१०. कुछ क्त्वा और ल्यप् प्रत्ययान्तों का संस्कृत में उपसर्ग के तुल्य प्रयोग होता है। विहाय, मुक्त्वा ( सिवाय ), आदाय ( सहित ), उद्दिश्य, अधिकृत्य, अनुरुध्य ( विषय में ), आदि।

तुमुन् प्रत्यय ( Infinitive Mood )

६११. संस्कृत में तुमुन् प्रत्यय सामान्यतया उद्देश्य को सूचित करता है या जिस लिए कोई कार्य किया गया है। वह इंग्लिश् के Infinitive of purpose या Gerund का समकक्ष है। अतः संस्कृत में तुमुन् वाले प्रयोगों में चतुर्थी का अर्थ विद्यमान रहता है और यदि आवश्यकता हो तो तुमुन् प्रत्ययान्त रूप के स्थान पर धातु के ल्युट् ( अन ) प्रत्ययान्त शब्द का चतुर्थी-विभक्ति वाला प्रयोग किया जा सकता है। पानीयं पातुं यमुनाकच्छम् अवततार ( वह पानी पीने के लिए यमुना के किनारे उतरा )। यहाँ पर पातुम् के स्थान पर पानाय ( पानीयस्य पानाय ) प्रयोग किया जा सकता है। शब्दादीन् विषयान् भोक्तुम् ( रघु० १०-२५ )। यहाँ पर भोक्तुम् के स्थान पर भोगाय प्रयोग हो सकता है।

प्रो० मोनियर विलियम्स ( Prof. Monier Williams ) का कथन है कि —संस्कृत में तुम् प्रत्यय से बने हुए क्रियाशब्द का उतने व्यापक ढंग से प्रयोग नहीं किया जा सकता है, जितना कि अन्य भाषाओं में ( Infinitive का किया जाता है। लेटिन में इसके समानार्थक प्रत्यय का जितना प्रयोग होता है, उसकी अपेक्षा संस्कृत में इसका प्रयोग बहुत कम होता है।

(क) अतः विद्यार्थी को संस्कृत के तुमुन् प्रत्यय और लेटिन तथा ग्रीक के Infinitive का अन्तर समझ लेना चाहिए। लेटिन और ग्रीक भाषाओं में Infinitive किसी उपसर्ग का कर्ता हो सकता है, दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि Infinitive कर्ता के स्थान पर प्रयुक्त होता है और इससे पूर्व कर्म का प्रयोग प्रायः हो सकता है। इसके कई रूप हो जाते हैं और वे वर्तमान, भूत तथा भविष्य का अर्थ प्रकट करते हैं, साथ ही क्रिया की पूर्णता या अपूर्णता का बोध कराते हैं। दूसरी ओर संस्कृत का तुमुन्-प्रत्ययान्त रूप कभी भी क्रिया का कर्ता नहीं हो सकता है। इससे पहले कभी भी

कर्म नहीं आ सकता है। यह अनिश्चित समय तथा अपूर्ण क्रिया को सूचित करता है। जहाँ कहीं भी इसका प्रयोग होता है, इसको उक्त या अनुक्त क्रिया का कर्म ही समझना चाहिए, कर्ता कभी भी नहीं। क्रिया के कर्म के रूप में इसे धातुज प्रातिपदिक का समकक्ष समझना चाहिए और उस अवस्था में इसमें द्वितीया तथा चतुर्थी इन दो विभक्तियों की शक्ति इसमें रहती है। अन्य प्रातिपदिकों में विभिन्न विभक्तियाँ होती हैं, परन्तु इसमें नहीं। यह अन्य प्रातिपदिकों से इसका अन्तर है। द्वितीया विभक्ति की शक्ति के साथ प्रातिपदिक के रूप में इसका प्रयोग लेटिन के Infinitive के समान ही है। इस प्रकार—तत् सर्वं श्रोतुम् इच्छामि ( मैं वह सब कुछ सुनना चाहता हूँ ) और लेटिन का Id audire capio समानार्थक हैं। इसमें श्रोतुम् और audire दोनों द्वितीया के बराबर हैं। इसी प्रकार रोदितुं प्रवृत्ता ( उसने रोना प्रारम्भ किया ) और महीं जेतुम् आरेभे ( उसने पृथ्वी को जीतना प्रारम्भ किया )। यहाँ पर महीजयम् आरेभे प्रयोग का भी वही अर्थ होगा।

(ख) 'बॉप ( Bopp ) का विचार है कि तुम् प्रत्यय 'तु' प्रत्यय का द्वितीया का रूप है ( देखो नियम ४५८ ) । यह सत्य है कि वेद में तु प्रत्यय के ही अन्य विभक्तियों के रूप तुमुन् (तुम्) प्रत्यय के अर्थ में प्राप्त होते हैं। जैसे–तु के चतुर्थी के रूप तवे या तवै। हन् धातु से हन्तवे ( मारने को ), अनु + इ से अन्वेतवे ( पीछे चलने को ), मन् धातु से मन्तवै ( सोचने को )। इसी प्रकार इसका पंचमी वाला रूप तोः पंचमी के अर्थ में मिलता है। जैसे—इ धातु से एतोः ( जाने से ), हन् से हन्तोः, जैसे पुरा हन्तोः ( मारने से पहले )। इसका ही एक त्वि वाला प्रयोग मिलता है, जो श्रेण्य संस्कृत के त्वा प्रत्यय के समानार्थक है। जैसे—हन् से हन्त्वि ( मार कर ), भू से भूत्वि ( होकर ), आदि।' (Sanskrit Grammar )

**९१२.** किसी क्रिया के कर्ता या कर्म के रूप में तुमुन् प्रत्ययान्त का प्रयोग नहीं किया जा सकता है। इस कार्य के लिए भाववाचक शब्दों का प्रयोग करना चाहिए। अतः अंग्रेजी में जहाँ पर वाक्य में कर्ता या कर्म के रूप में Infinitive आता है, वहाँ पर संस्कृत में धातु से बने हुए ल्युट् (अन) प्रत्ययान्त का प्रयोग करना चाहिए। अतः 'अपने धर्म का आचरण करना हितकर है' का अनुवाद 'स्वधर्माचरणं हितावहम्' करना चाहिए, न कि 'स्वधर्मम् आचरितुम्'०।

६१३. यदि क्रिया और इच्छा का कर्ता एक ही होगा तो इच्छा अर्थ वाली धातुओं और धातुज शब्दों के साथ तुम् प्रत्ययान्त का प्रयोग होता है।[१] को हर्तुमिच्छति हरेः दंष्ट्राम् ( मुद्रा० १, कौन शेर की दाढ़ को उखाड़ना चाहता है ), माधुर्यं मधुबिन्दुना रचयितुं क्षाराम्बुधेरीहते ( भर्तृहरि० ,२-६ ) । 'मैं चाहता हूँ कि वह यह काम करे' का अनुवाद तमेतत् कर्तुम् अहम् इच्छामि, अशुद्ध है।

६१४. इन स्थानों पर भी तुमुन् ( तुम् ) का प्रयोग होता है—

(क) इन अर्थों वाली धातुओं के साथ तुम् होता है—सकना, धृष्ट होना, जानना, व्याकुल होना, लगना, प्रारम्भ करना, पाना, कार्य शुरू करना, सहना, योग्य होना और होना।[२] न शक्नोति शिरोधरां धारयितुम् ( काद०, वह अपनी गर्दन को नहीं सँभाल सकता है ), जानासि कोपं निग्रहीतुम् ( तुम अपने क्रोध को रोकना जानते हो ), अंगदेन समं योद्धुमघटिष्ट ( भट्टि० १५-७७, वह अंगद के साथ लड़ने लगा ), गन्तुं व्यवस्येद् भवान् ( मेघ० २२, आप जाने का यत्न कीजिए ), वक्तुं प्रक्रमेथाः ( मेघ० १०३, तुम कहना शुरू करो ), अस्ति भवति विद्यते वा भोक्तुमन्नम् ( सि० कौ०, यहाँ पर खाने के लिए अन्न है ), आदि।

(ख) अलम् आदि शब्दों तथा पर्याप्ति समर्थ कुशल अर्थ वाले शब्दों के साथ तुमुन् होता है।[३] पर्याप्तोऽसि प्रजाः पातुम् ( रघु० १०-२५, तुम प्रजा की रक्षा करने में समर्थ हो ), कः समर्थो दैवमन्यथा कर्तुम् ( भाग्य को कौन बदल सकता है ), प्रासादास्त्वां तुलयितुमलम् ( मेघ० ६६, वहाँ के महल ऊँचाई में तुम्हारी समानता कर सकते हैं ), भोक्तुं प्रवीणः कुशलः पटुर्वा ( सि० कौ०, खाने में निपुण )।

(ग) 'काम करने का यह समय है' इस अर्थ वाले शब्दों के साथ तुम् होता है।[४] कालः समयो वेला अनेहा वा भोक्तुम् ( सि० कौ०, यह खाना खाने का समय है )।

---

१. **समानकर्तृकेषु तुमुन् ( ३-३-१५८ )।**
२. **शकधृषज्ञाग्लाघटरभलभक्रमसहार्हास्त्यर्थेषु तुमुन् ( ३-४-६५ )। देखो** Apte's Guide **नियम १७६ और उस पर टिप्पणी।**
३. **पर्याप्तिवचनेष्वलमर्थेषु ( ३-४-६६ )।**
४. **कालसमयवेलासु तुमुन् ( ३-३-१६७ )।**

६१५. संस्कृत में तुम् प्रत्ययान्त का कर्मवाच्य रूप नहीं होता है । अतः तुम् प्रत्ययान्त रूप से युक्त किसी कर्तृवाच्य प्रयोग का कर्मवाच्य बनाना हो तो क्रिया के रूप का कर्मवाच्य वाला रूप हो जाएगा और कर्ता में तदनुसार तृतीया हो जाएगी । तुम-प्रत्ययान्त रूप में कोई अन्तर नहीं आएगा । स ग्रामं गन्तुम् इच्छति, तेन ग्रामं गन्तुम् इष्यते । स भारं वोढुम् इच्छति का कर्मवाच्य होगा—तेन भारः वोढुम् इष्यते ।

६१६. जब तुमुन् प्रत्ययान्त के साथ अर्ह् धातु का ( मध्यम पुरुष में ) प्रयोग होता है तो वह प्रार्थना अर्थ को प्रकट करता है । अग्निं शमयितुमर्हसि ( मेघ० ५५, अग्नि को शान्त करने की कृपा कीजिएगा ), न चेद् रहस्यं प्रतिवक्तुमर्हसि ( कुमार० ५-४०, यदि कोई छिपाने की बात न हो तो कृपया उत्तर दीजिएगा ), द्वित्राण्यहान्यर्हसि सोढुमर्हन् ( रघु० ५-२५, हे माननीय, दो तीन दिन प्रतीक्षा करने की कृपा कीजिएगा ) । कहीं कहीं पर यह विनम्र आदेश अर्थ प्रकट करता है। इमां प्रसादयितुमर्हसि ( आपको चाहिए कि इनको प्रसन्न करें ), न तं शोचितुमर्हसि ( तुम्हें उसका शोक नहीं करना चाहिए ) । जब तुमुन् प्रत्ययान्त के साथ अर्ह् धातु का प्रथम पुरुष में प्रयोग होता है तो वह योग्य या समर्थ अर्थ को प्रकट करता है । द्रोणं हि समरे कोऽन्यो योद्धुमर्हति फाल्गुनात् ( महाभारत ४-५८-२७ ), दैवं प्रज्ञाविशेषेण को निवर्तितुमर्हति ( महाभारत १-१-२४६ ) ।

६१७. काम और मनस् शब्द बाद में होते हैं तो तुमुन् प्रत्ययान्त के अन्तिम म् का लोप हो जाता है और वह समस्त पद विशेषण के तुल्य प्रयुक्त होता है तथा उसका अर्थ होता है 'इच्छा वाले या करने के इच्छुक' ।[1] एतावदुक्त्वा प्रतियातुकामं शिष्यं महर्षेः० ( रघु० ५-१८, यह कहकर महर्षि का शिष्य लौटने की इच्छा करने लगा ), अयं जनः प्रष्टुमनास्तपोधने ( कुमार० ५-४०, हे तपस्विनी, यह मैं आपसे कुछ प्रश्न पूछना चाहता हूँ ) ।

### लकारार्थ-विचार

#### लट् लकार

६१८. लट् लकार का अर्थ है कि कार्य इस समय हो रहा है । अयमागच्छति तव पुत्रः ( तेरा पुत्र यह आ रहा है ) । प्रो० बेन ( Bain ) का कथन है कि वस्तुतः वर्तमान काल वह है जहाँ पर कोई कार्य प्रारम्भ हो चुका हो और वह

१. तुंकाममनसोरपि ।

निरन्तर चल रहा हो )[1] किसी क्रिया-विशेषण शब्द के द्वारा या प्रसंग के द्वारा क्रिया के वस्तुतः वर्तमान काल का अर्थ निर्धारित किया जाता है । अधुना स इमां पुरीम् अधिवसति ( अब वह इस नगरी में रहता है ) ।

९१९. उपर्युक्त सामान्य अर्थ के अतिरिक्त संस्कृत में लट् लकार निम्नलिखित अर्थों को भी प्रकट करता है :—

(क) कभी कभी 'समीपवर्ती भविष्य' के अर्थ में भी लट् का प्रयोग होता है ।[2] कदा गमिष्यसि ( कब जाओगे ? ), एष गच्छामि ( अभी जाता हूँ या जाऊँगा ) । ऊर्ध्वं म्रिये मुहूर्ताद्धि ( एक क्षण या घंटे बाद मर जाऊँगा ) ।

(ख) शीघ्र ही पूरा किए गए कार्य का संकेत करने के लिए भी लट् का प्रयोग होता है । कदा त्वं नगराद् आगतोऽसि—अयमागच्छामि ( तुम शहर से कब आए ? मैं अभी आया हूँ ) ।

(ग) वर्णनात्मक प्रसंगों में भूतकाल के अर्थ में लट् का प्रयोग होता है । गृध्रो ब्रूते—कस्त्वम् ( गृद्ध ने कहा—तुम कौन हो ? ) ।

(घ) कभी कभी यह स्वभाव या अभ्यस्त कार्य का बोध कराता है । पशुवधेनासौ जीवति ।

९२०. यदि ननु अव्यय का प्रयोग होता है और किसी प्रश्न का उत्तर दिया जाता है तो भूतकाल के स्थान पर लट् का प्रयोग होता है ।[3] कटम् अकार्षीः किम्—ननु करोमि भोः । यहाँ पर अकार्षम् के स्थान पर करोमि प्रयोग है । जहाँ पर न या नु अव्ययों का प्रयोग होता है, वहाँ पर विकल्प से लट्

---

१. 'वर्तमान काल का मुख्यतया प्रयोग इसलिए होता है कि जो बात सभी कालों में सत्य हो, उसको प्रकट किया जाए । जैसे—सूर्य प्रकाश देता है, दो गुणा दो चार होते हैं । अतः इसको शाश्वत काल नाम देना अधिक उपयुक्त है । यह शाश्वत काल का बोध कराते हुए वर्तमान अर्थ को प्रकट करता है । अतः वर्तमान काल इन अर्थों को प्रकट करता है—प्राकृतिक नियम, स्थायी प्रबन्ध, जीवमात्र की विशेषताएँ, स्वभाव और गुण-धर्म तथा जो कुछ भी शाश्वत, स्थायी, नियमित और एकरूप है । विशेष क्रियाविशेषणों और प्रसंग आदि के द्वारा इसका केवल वर्तमान काल अर्थ समझा जाता है ।' बेन कृत हायर इंगलिश ग्रामर ।

२. वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद् वा ( ३-३-१३१ ) । देखो नियम ९३६ ।

३. ननौ पृष्टप्रतिवचने ( ३-२-१२० )

होता है।[1] कटम् अकार्षीः किम्—न करोमि-न अकार्ष वा, नु करोमि-न्वकार्षं वा।

६२१. प्रश्नवाचक किम् आदि शब्दों का प्रयोग होने पर भविष्यत् अर्थ में विकल्प से लट् होता है, कोई विचार या इच्छा अभिप्रेत हो तो।[2] किं करोमि करिष्यामि वा, क्व गच्छामि गमिष्यामि वा ( मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ ? )। एतयोः कतरम् एतेषां कतमं वा भोजयसि–भोजयिष्यसि–भोजयितासि वा ( इनमें से किसको आप भोजन खिलाएँगे ? )। इसी प्रकार कं नु पृच्छामि दुःखार्ता, आदि। अन्यत्र—कः ग्रामं गमिष्यति।

(क) जहाँ पर अभीष्ट अर्थ की सिद्धि होती है, वहाँ पर भी हेतुमत् वाक्यों में भविष्यत् अर्थ में लट् लकार का प्रयोग विकल्प से होता है।[3] योऽन्नं ददाति–दास्यति–दाता वा, स स्वर्गं याति–यास्यति–याता वा ( जो अन्न का दान करता है, वह स्वर्ग को जाता है )।

६२२. यावत् और तावत् तथा इन अर्थों वाले अन्य शब्दों के साथ विकल्प से भविष्यत् अर्थ में लट् होता है। यावत् स त्वां न पश्यति तावद् दूरम् अपसर ( जब तक वह तुम्हें नहीं देख लेता, तब तक तुम यहाँ से दूर हट जावो )।

(क) यावत् और पुरा निपातों का प्रयोग होने पर भविष्यत् अर्थ में लट् लकार का प्रयोग होता है, निश्चय अर्थ हो तो।[4] यावद् यते साधयितुं त्वदर्थम् ( रघु० ५-२५, मैं तुम्हारे काम को पूरा करने का प्रयत्न करूँगा )। पुरा सप्त-द्वीपां जयति वसुधाम् ( शाकु० ७-३३, वह सात द्वीपों वाली पृथ्वी को जीतेगा), पुरानुशेते तव चञ्चलं मनः ( किराता० ८-८ )

६२३. स्म निपात के साथ लट् लकार का प्रयोग होता है और वह भूतकाल का अर्थ बताता है।[5] कस्मिंश्चिदधिष्ठाने मित्रशर्मा नाम ब्राह्मणः प्रतिवसति स्म ( एक गाँव में मित्रशर्मा नाम का एक ब्राह्मण रहता था ), पौराः शतशोऽभिधा-

---

१. नन्वोर्विभाषा ( ३-२-१२१ )।
२. किंवृत्ते लिप्सायाम् ( ३-३-६ )।
३. लिप्स्यमानसिद्धौ च ( ३-३-७ )।
४. यावत्पुरानिपातयोर्लट् ( ३-३-४ )।। निपातावेतौ निश्चयं द्योतयतः ( सि० कौ० )।
५. लट् स्मे ( ३-२-११८ )।

वन्ति स्म ( सैकड़ों नागरिक दौड़ पड़े )। स्म को क्रिया के साथ ही रखना अनिवार्य नहीं है। त्वं स्म वेत्थ महाराज यत् स्माह न विभीषणः, मन्त्रे स्म द्वितमाचष्टे, आदि।

६२४. वाक्य में अपि और जातु का प्रयोग होने पर लुङ आदि तीन लकारों के स्थान पर लट् होता है, निन्दा अर्थ अभिप्रेत हो तो।[१] अपि जायां त्यजसि, जातु गणिकाम् आधत्से। यहाँ पर त्यजसि और आधत्से भूत और भविष्यत् कालों का भी अर्थ बताते हैं। जातु तत्रभवान् वृषलान् याजयति ( आप शूद्रों से भी यज्ञ कराएँगे )।

### लङ, लिट् और लुङ
### (Imperfect, Perfect, Aorist)

६२५. संस्कृत में भूतकाल के बोधक तीन लकार हैं—लङ, लिट् और लुङ। मूल रूप में इन लकारों का अपना अपना स्वतन्त्र अर्थ था और प्राचीन लेखों में इनका विशेष अर्थों में प्रयोग हुआ है।[२] जब से संस्कृत बोल चाल की भाषा नहीं रही, तब से इन लकारों के मौलिक भेदों का ध्यान नहीं रक्खा गया और लेखकों ने इनका अन्धाधुन्ध प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया। अतः अब भूतकाल अर्थ में कुछ नियमन के साथ तीनों लकारों में से किसी का भी प्रयोग किया जा सकता है। नीचे इनके तथा इनके अन्य भेदों के मौलिक अर्थों का उल्लेख किया गया है।

### लङ (Imperfect)

६२६. पाणिनि के अनुसार लङ लकार आज को छोड़ कर अन्य किसी भी भूतकाल अर्थ में होता है।[3] तानभाषत पौलस्त्यः ( भट्टि, विभीषण ने उनसे कहा )।

६२७. यदि वाक्य में ह और शश्वत् अव्ययों का प्रयोग होगा तो लिट् के स्थान पर लङ विकल्प से होगा।[४] इति ह अकरोत्–चकार वा, शश्वद् अकरोत्–चकार वा।

---

१. गर्हायां लडपिजात्वोः ( ३-३-१४२ )।

२. इन तीनों लकारों के अन्तर का और विवरण प्राप्त करने के लिए छात्रों को चाहिए कि वे डा० भाण्डारकर की पुस्तक (Second Book of Sanskrit) के प्रथम संस्करण की भूमिका देखें।

३. अनद्यतने लङ ( ३-२-१११ )। ४. हशश्वतोर्लङ च ( ३-२-११६ )।

(क) समीपवर्ती भूतकाल से संबद्ध यदि कोई प्रश्न किया जाता है तो वहाँ पर लिट् के स्थान में विकल्प से लङ् होगा।[1] (प्रश्न) अगच्छत् किम्? (उत्तर) अगच्छत्, अथवा जगाम किम्? जगाम। जहाँ पर दूरवर्ती भूतकाल का अभिप्राय होगा, वहाँ पर केवल लिट् का ही प्रयोग होगा। कृष्णः कंसं जघान किम्? जघान।

६२८. जहाँ पर लोट् लकार के अर्थ में मा स्म निपातों के साथ लङ् लकार का प्रयोग होता है, वहाँ पर तिङन्त रूप में पहले लगे हुए अ का लोप हो जाता है। मा स्म भवः, मा स्म करोत्, मा स्म प्ररुदितं युवाम्।

### लिट् ( Perfect )

६२९. लिट् लकार परोक्ष भूत में हुई घटना का सूचक है।[2] यह अति प्राचीन समय का बोध कराता है, अतः अतिप्राचीन भूतकाल के वर्णनात्मक प्रसंगों में ही इसका प्रयोग करना चाहिए। तां ताटकाख्यां निजघान रामः (उस ताड़का को राम ने मारा), प्रययाविन्द्रजित् प्रत्यक् (भट्टि० १४-१६)।

(क) लिट् लकार के उत्तम पुरुष में चित्त के विक्षेप आदि के कारण परोक्षता समझनी चाहिए। वक्ता उस समय अचेतन अवस्था में था, अतः उस समय घटी हुई घटना का उसे कुछ भी ज्ञान नहीं होता है। अथवा उसने जो कुछ किया है, उससे वह मुकरना चाहता है। बहु जगद पुरस्तात् तस्य मत्ता किलाहम् (शिशु० ११-३९, मुझे ज्ञात हुआ है कि उन्मत्तावस्था में मैंने उसके सामने बहुत बकवाद की थी)। कलिंगेष्ववात्सीः किम् (क्या तुम कलिंग प्रदेश में रहे हो?), नाहं कलिंगान् जगाम (मैं कभी भी कलिंगदेश में नहीं गया हूँ)। इन अपवाद-स्थलों के अतिरिक्त अन्य स्थानों पर लिट् के उत्तम पुरुष का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

### लुङ् ( Aorist )

६३०. लुङ् लकार सामान्य रूप से भूत काल का बोध कराता है।[3] किसी विशेष समय का इससे बोध नहीं होता है। (भूतसामान्ये लुङ्)। सोऽध्यैष्ट वेदांस्त्रिदशानयष्ट पितॄनपारीत् सममंस्त बन्धून्। व्यजेष्ट षड्वर्गमरंस्त नीतौ समूलघातं न्यवधीदरींश्च (भट्टि० १-२) (उसने वेदों को पढ़ा, देवों के लिए

१. प्रश्ने चासन्नकाले (३-२-११७)।
२. परोक्षे लिट् (३-२-११५)। उत्तमपुरुषे चित्तविक्षेपादिना पारोक्ष्यम् (सि० कौ०)। अत्यन्तापह्नवे लिङ् वक्तव्यः (वा०)।
३. लुङ् (३-२-११०)।

यज्ञ किया, पितरों को तृप्त किया, अपने संबन्धियों का आदर किया, ६ चीजों ( काम, क्रोध आदि ) पर विजय पाई, राजनीति में रमा और अपने शत्रुओं का उसने समूल नाश किया। लुङ लकार वस्तुतः उसी दिन के भूत काल के कार्य का बोध कराता है। डा० भाण्डारकर का कथन है कि[1] 'यह अंग्रेजी के Present Perfect के तुल्य है, जिसका लक्षण किया गया है कि वह कार्य जो वर्तमान दिन के ही किसी अंश में पूरा हुआ है। यह भूतकाल के कार्य को वर्तमान से संबद्ध करता है।' अभूद् वृष्टिरद्य ( आज वर्षा हुई )।

**६३१.** जहाँ पर क्रिया की निरन्तरता और समय की समीपता बताई जाती है, वहाँ पर लुङ लकार होता है।[2] यावज्जीवमन्नमदात् ( सि० कौ०, उसने जीवन भर अन्न का दान किया )। येयं पौर्णमास्यतिक्रान्ता तस्यामग्नीनाधित सोमेनायष्ट ( सि० कौ०, जो यह पूर्णिमा बीती है, उस दिन इसने अग्नि का आधान किया था और सोम-यज्ञ किया था )।

**६३२.** पुरा अव्यय का प्रयोग होगा तो वहाँ पर लुङ, लङ, लिट् और लट् चारों का प्रयोग होता है, यदि स्म का साथ में प्रयोग होगा तो नहीं।[3] वसन्तीह पुरा छात्राः—अवात्सुः—अवसन् —ऊषुर्वा ( सि० कौ०, यहाँ पर पहले छात्र रहते थे )। यदि पुरा के साथ स्म भी होगा तो केवल लट लकार ही होगा। यजति स्म पुरा ( वह पहले यज्ञ करता था )।

**६३३.** निषेधार्थक मा ( माङ ) और मा स्म के साथ लुङ लकार का प्रयोग होता है। धातु के पूर्ववर्ती अ ( अट् ) का लोप हो जाता है और यह लोट् लकार का अर्थ सूचित करता है। इति ते संशयो मा भूत् ( महाभारत ५-१३२-१६, तुम्हें सन्देह न हो ), मा स्म प्रतीपं गमः ( प्रतिकूल न जाओ )। प्राचीन ग्रन्थों में कुछ स्थानों पर मा के साथ धातु के पूर्ववर्ती अ की सत्ता भी मिलती है। मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः ( हे निषाद, तू बहुत समय तक जीवित न रह )। जहाँ पर धातु से पूर्व कोई उपसर्ग होता है, वहाँ पर कभी कभी अ का लोप नहीं होता है। मा मन्युवशमन्वगाः ( तुम क्रोध या शोक के वशीभूत न होना )। यहाँ

---

१. Second Book of Sanskrit, पृष्ठ १५४।

२. **नानद्यतनवत्० ( ३-३-१३५ )।**

३. **पुरि लुङ चास्मे ( ३-२-१२२ )। पुराशब्दयोगे भूतानद्यतने विभाषया लुङ चाल्लट् न तु स्मयोगे। ( सि० कौ० )**

पर अ का लोप नहीं हुआ है। कहीं कहीं पर उपसर्ग पहले होने पर लोप होता भी है। जैसे—मावमंस्थाः स्वमात्मानम् ( अपनी आत्मा का अपमान न करो )। कुछ लोगों ने अ रहने वाले स्थानों का समाधान किया है कि यहाँ पर निषेधार्थक निपात मा है, माङ नहीं।

### लुट् और लृट्

**६३४**. लुट् और लृट् में वही अन्तर है जो लङ और लुङ में है। दोनों में अन्तर यही है कि लुट् और लृट् में भविष्यत् विषयक अन्तर है और लङ-लुङ में भूतकाल विषयक। लुट् भविष्यत् अर्थ को निश्चित रूप से बताता है, आज के भविष्य अर्थ को छोड़ कर। लृट् भविष्यत् अर्थ को अनिश्चित रूप से बताता है। वह आज के भविष्य अर्थ को भी बताता है। लृट् लकार समीपस्थ काल और निरन्तर भविष्यत् काल को भी बताने के लिए प्रयुक्त होता है। जैसे—अयोध्यां श्वः प्रयातासि कपे भरतपालिताम् ( भट्टि० २२, हे हनुमान्, तुम भरत के द्वारा पालित अयोध्या को कल जाओगे )। आनन्दितारस्त्वां दृष्ट्वा प्रष्टारश्चावयोः शिवम्। मातरः सह मैथिल्या तोष्टा च भरतः परम् ( भट्टि० २२-१४ ) ( हमारी माताएँ तुम को देख कर आनन्दित होंगी, वे हम दोनों और सीता का कुशल समाचार पूछेंगी। भरत भी बहुत अधिक प्रसन्न होंगे ), एते....उन्मूलितारः कपिकेतनेन (किराता० ३-२२, वे सब कपि-ध्वज अर्जुन के द्वारा नष्ट किए जाएँगे )। यास्यत्यद्य शकुन्तला ( शाकु० ४, शकुन्तला आज जाएगी ), मरिष्यामि विजेष्ये वा हताश्चेत् तनया मम ( भट्टि० १६-१३, यदि मेरे पुत्र मारे गए होंगे तो या मैं ही मरूँगा या शत्रुओं को नष्ट करूँगा ), आदि।

### लुट् (First Future या Periphrastic Future)

**६३५**. **विशेष**—यदि कार्य की निरन्तरता और समय की समीपता ( अव्यवधान ) बताई जाती है तो वहाँ पर लुट् लकार का प्रयोग नहीं होता है।[1] यावज्जीवमन्नं दास्यति ( वह जीवन भर अन्न-दान करेगा )। यहाँ पर 'दाता' प्रयोग नहीं हो सकता है। या इयम् अमावास्या आगामिनी तस्याम् अग्नीन् आधास्यते सोमेन च यक्ष्यते ( वह इस आगामी अमावास्या के दिन अग्नि का आधान करेगा और सोम से यज्ञ करेगा )। यहाँ पर आधाता और यष्टा प्रयोग नहीं हो सकता है। जहाँ पर वाक्य में अवर शब्द का प्रयोग होगा तथा समय या स्थान की कोई

---

**१. नानद्यतनवत् क्रियाप्रबन्धसामीप्ययोः ( ३-३-१३५ )।**

सीमा बताई जाएगी, वहाँ पर भी लुट् नहीं होगा ।[1] यः अयमध्वा गन्तव्यः आपाटलिपुत्रात् तस्य यदवरं कौशाम्ब्याः तत्र सक्तून् पास्यामः । यहाँ पर पातास्मः प्रयोग नहीं होगा । यः अयं संवत्सरः आगामी तस्य यदवरम् आग्रहायण्याः तत्र युक्ता अध्येष्यामहे । यहाँ अध्येतास्महे प्रयोग नहीं होगा । यदि वाक्य में अहन् या रात्र शब्द का प्रयोग होगा तो लुट् हो जाएगा । योऽयं मास आगामी तस्य योऽवरः पञ्चदशरात्रः तत्र अध्येतास्महे ( अगले महीने के शुरू के जो पन्द्रह दिन हैं, उनमें हम पढ़ेंगे )। जहाँ पर वाक्य में पर शब्द का प्रयोग होगा और किसी काल-विशेष से बाद का अर्थ अभिप्रेत होगा तो वहाँ पर लुट् और लृट् दोनों हो सकते हैं ।[2] योऽयं संवत्सर आगामी तस्य यत्परम् आग्रहायण्याः तत्र अध्येष्यामहे अध्येतास्महे वा।

## लृट् ( Second or Simple Future )

**६३६.** जहाँ पर वर्तमान का समीपवर्ती भविष्यत् अर्थ कहना होता है, वहाँ पर लृट् और लट् दोनों होते हैं ।[3] कदा गमिष्यसि ( कब जाओगे ? ), एष गच्छामि गमिष्यामि वा ( अभी जाता हूँ या जाऊँगा ) ।

**६३७.** यदि हेतुमद् वाक्य में आशा अर्थ भी होगा तो वहाँ पर भविष्यत् अर्थ में लुङ, लट् और लृट् ये तीनों दोनों वाक्यों में होते हैं ।[4] देवश्चेद् अवर्षीत्-वर्षति–वर्षिष्यति वा, धान्यम् अवाप्स्म–वपामः–वप्स्यामः वा ( सि० कौ० ) ( यदि वर्षा होगी तो धान बोएँगे ) ।

**६३८.** यदि नम्रतापूर्ण आदेश अर्थ होगा तो भी लृट् लकार का प्रयोग होता है । पश्चात् सरं प्रति गमिष्यसि ( विक्रमो० ४, तब आप तालाब की ओर जाइएगा ) ।

**६३९.** क्षिप्र ( शीघ्र ) या क्षिप्र के पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग होने पर आशा अर्थ में लृट् लकार होता है ।[5] वृष्टिश्चेत् क्षिप्रम् आशु त्वरितं वा यास्यति, शीघ्रं वप्स्यामः ( यदि वर्षा शीघ्र हो जाती है तो हम शीघ्र ही धान बो देंगे) ।

---

१. भविष्यति मर्यादावचनेऽवरस्मिन् ( ३-३-१३६ ) । कालविभागे चानहोरात्राणाम् (३-३-१३७ ) ।
२. परस्मिन् विभाषा ( ३-३-१३८ ) ।
३. वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद् वा (३-३-१३१ ) ।
४. आशंसायां भूतवच्च ( ३-३-१३२ ) ।
५. क्षिप्रवचने लृट् ( ३-३-१३३ ) ।

९४०. यदि स्मरणार्थक स्मृ आदि धातुओं के साथ यत् शब्द का प्रयोग नहीं है तो लङ लकार के अर्थ में लृट् लकार होता है। स्मरसि कृष्ण गोकुले वत्स्यामः ( हे कृष्ण, क्या तुम्हें याद है कि हम गोकुल में रहते थे ? ) ।

९४१. असंभावना या असहनशीलता अर्थ होने पर या प्रश्न रूप में निन्दा अर्थ होने पर विधिलिङ लकार के स्थान पर विकल्प से लृट् होता है।[1] न संभावयामि न मर्षये वा भवान् हरिं निन्देत् निन्दिष्यति वा ( मैं यह आशा नहीं करता हूँ, या सहन नहीं कर सकता हूँ कि आप हरि की निन्दा करेंगे या निन्दा करें ), कः–कतरः–कतमः वा हरिं निन्देत्–निन्दिष्यति वा ( कौन हरि की निन्दा करेगा, अर्थात् मैं यह आशा नहीं करता हूँ कि कोई उसकी निन्दा करेगा ), कं वृषलं भवान् याजयेत् याजयिष्यति वा, आदि। जहाँ पर किंकिल ( उग्र क्रोध-सूचक निपात ) शब्द और होना अर्थ वाली किसी धातु का पहले प्रयोग होगा, वहाँ पर लृट् लकार ही होता है।[2] न संभावयामि न मर्षये वा भवान् किंकिल वृषलं याजयिष्यति ( मैं आशा नहीं करता हूँ या सहन नहीं कर सकता हूँ कि आप शूद्र से यज्ञ कराएंगे ) । इसी प्रकार अस्ति भवति विद्यते वा भवान् वृषलं याजयिष्यति ।

९४२. यदि आश्चर्य अर्थ हो और वाक्य में यच्च, यत्र और यदि का प्रयोग न हो तो लृट् लकार का प्रयोग होता है।[3] आश्चर्यमन्धो नाम कृष्णं द्रक्ष्यति ( यह आश्चर्य की बात है कि एक अन्धा कृष्ण को देख लेता है ) ।

(क) यदि सन्देह अर्थ में उत और अपि उपसर्ग होंगे तो उनके साथ लृट् लकार होगा। उत दण्डः पतिष्यति ( क्या डंडा गिरेगा ? ), अपि धास्यति द्वारम् ( क्या वह दरवाजा वन्द करेगा ? )

(ख) समर्थ या अवश्य अर्थ में अलम् अव्यय होगा तो उसके साथ भी लृट् लकार होगा। अलं कृष्णो हस्तिनं हनिष्यति ( कृष्ण अवश्य हाथी को मार देगा या कृष्ण हाथी को मारने में समर्थ है ) ।

## लोट् ( Imperative Mood )

९४३. लोट् लकार का केवल आज्ञा अर्थ ही नहीं होता है, अपितु इसके

१. किंवृत्ते लिङ्लृटौ (३-३-१४४), अनवक्लृप्त्यमर्षयोरकिंवृत्तेऽपि (३-३-१४५)।
२. किंकिलास्त्यर्थेषु लृट् ( ३-३-१४६ ) ।
३. शेषे लृडयदौ ( ३-३-१५१ ) ।

ये अर्थ भी हैं——विधि ( आदेश या प्रेरणा देना ), निमन्त्रण ( निमन्त्रित करना ), आमन्त्रण ( स्वीकृति देना ), अधीष्ट ( सत्कारपूर्वक नियुक्ति ), संप्रश्न (विनय-पूर्वक प्रश्न पूछना), प्रार्थना (प्रार्थना करना), आशीर्वाद देना, परामर्श देना आदि।[1]

(क) लोट् लकार का मध्यम पुरुष में प्रयोग इन अर्थों में होता है——आज्ञा, प्रार्थना, परामर्श देना और आशीर्वाद देना। गच्छ ( त्वं ) कुसुमपुरम् ( कुसुमपुर जाओ ), परित्रायध्वं परित्रायध्वम् ( बचाओ, बचाओ), क्षमस्वापराधम् ( हे परमात्मन्, मेरे अपराधों को क्षमा कीजिए ), शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने ( शाकु० ४, अपने से बड़ों की सेवा करना और अपनी सपत्नियों से प्रिय सखी का सा व्यवहार करना ), एधि कार्यकरस्त्वं मे गत्वा प्रवद राघवम् ( तुम मेरे संदेशवाहक होओ और राम के पास जाकर उनसे कहना ), अनन्य-भाजं पतिमाप्नुहीति सा तथ्यमेवाभिहिता हरेण ( शिव ने उससे ठीक ही कहा कि तुम ऐसे पति को प्राप्त करना, जिसका अन्य किसी स्त्री से प्रेम न हो )।

(ख) प्रथम पुरुष में यह प्रायः आशीर्वाद का अर्थ प्रकट करता है और कभी कभी विनम्र आदेश का अर्थ। विधत्तां सिद्धिं नो....प्रकीर्णः पुष्पाणां हरिचरण-योरञ्जलिरयम् ( हरि के चरणों में डाली हुई यह फूलों की अंजलि हमारी सिद्धि को करे ), पर्जन्यः कालवर्षी भवतु ( मेघ समय पर वर्षा करें ), पश्चात् तिष्ठन्तु वीराः शकनरपतयः ( मुद्रा० ५-११ )।

(ग) उत्तम पुरुष में यह इन अर्थों को प्रकट करता है——प्रश्न, आवश्यकता, योग्यता आदि। किं करवाणि ते ( मैं तुम्हारा क्या काम करूँ ? ), अधुनाहं गच्छामि ( मुझे अब जाना चाहिए ), करवामैतद् वयं देवि प्रियं तव ( हे देवी, हम आपका यह प्रिय काम कर सकते हैं ), नहि प्रेष्यवधं घोरं करवाण्यस्तु ते मतिः ( भट्टि० २०-६, तुम्हारा विचार यह होना चाहिए कि मैं किसी दूत का घोर वध नहीं करूँगा )।

**६४४**. लोट् लकार के प्रथम पुरुष एकवचन का कर्मवाच्य का प्रयोग प्रायः मिलता है और कहीं कहीं विनम्र कथन के ढंग को प्रकट करता है। आनीयतां राज-पुत्रः ( राजकुमार को लाइए ), श्रूयतां भो पण्डिताः ( हे पण्डितो, आप सुनिए ), एतदासनम् आस्यताम् ( इस आसन पर बैठिए )।

---

**१. लोट् च ( ३-३-१६२ )। सूत्र ३-३-१६१ भी देखो। यह अगले पृष्ठ पर उद्धृत है।**

**६४५.** जहाँ पर एक मुहूर्त (लगभग १ घंटे का समय) से बाद का समय बताया जाता है, वहाँ पर लोट् होता है। मुहूर्ताद् यजतां स्म (एक घंटे बाद यज्ञ करना)

**६४६.** जहाँ पर विनम्र प्रार्थना करना अर्थ होता है, वहाँ पर लोट् लकार के साथ स्म का प्रयोग होता है। बालमध्यापय स्म ( कृपया बच्चे को पढ़ाइए ) ।

**६४७.** जब लोट् लकार का मा निपात के साथ प्रयोग होता है तो इसका वर्तमान काल अर्थ होता है। मा भवतु ( नहीं, ऐसा नहीं है )। मा च ते निघ्नतः शत्रून् मन्युर्भवतु पार्थिव ।

**६४८.** इच्छामि भवान् भुञ्जीत भुङ्क्तां वा ( मैं चाहता हूँ कि आप खाना खाएँ ) । देखो नियम ९५८ ।

**६४९.** लोट् लकार का एक विचित्र प्रकार का प्रयोग होता है, उसका ध्यान रखना चाहिए । जब पौनः पुन्य ( बार बार करना ) या अधिकता अर्थ कहना होता है तो लोट् लकार मध्यम पुरुष एकवचन का दो बार पाठ किया जाता है और उसके बाद धातु का किसी भी लकार में प्रयोग हो सकता है ।[1] याहि याहि इति याति ( सि० कौ०, वह बार बार जाता है ) । इसी प्रकार यात यातेति यूयं यात, याहि याहीत्ययासीत्, अधीष्वाधीष्वेत्यधीते ( वह निरन्तर पढ़ता है ) । यदि एक ही व्यक्ति ने अनेक काम किए हैं तो भी लोट् मध्यम पुरुष का प्रयोग होता है। सक्तून् पिब, धानाः खादेत्यभ्यवहरति ( सि० कौ०, वह खाना खाता है, कभी सत्तू खाता है और कभी भुने चावल खाता है ) । इसी प्रकार अन्नंभुङ्क्ष्व दाधिकमास्वादयस्वेत्यभ्यवहरते ( सि० कौ० ) ।

## विधिलिङ् ( Potential Mood )

**६५०.** विधिलिङ् इन अर्थों में होता है—विधि ( आदेश देना, अधीनस्थ को निर्देश देना आदि ), निमन्त्रण ( साग्रह निमन्त्रित करना ), आमन्त्रण ( स्वीकृति देना),अधीष्ट ( किसी को कोई अवैतनिक कार्य करने के लिए कहना ), संप्रश्न ( नम्रतापूर्वक किसी से कोई प्रश्न पूछना ) और प्रार्थना ( प्रार्थना करना ) ।[2] यजेत ( यज्ञ करना चाहिए ), त्वं ग्रामं गच्छेः ( तू गाँव को जा ),

---

१. **क्रियासमभिहारे लोट् लोटो हिस्वौ वा च तध्वमोः ( ३-४-२ ) । समुच्चयेऽन्यतरस्याम् ( ३-४-३ ) । यथाविध्यनुप्रयोगः पूर्वस्मिन् ( ३-४-४ ) । समुच्चये सामान्यवचनस्य (३-४-५) । क्रियासमभिहारे द्वे वाच्ये (वा०) ।**

२. **विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसंप्रश्नप्रार्थनेषु लिङ् ( ३-३-१६१ ) ।**

इह भवान् भुञ्जीत ( आप यहाँ खाना खाइए ), इहासीत भवान् ( आप यहाँ बैठिए ), पुत्रमध्यापयेद् भवान् ( आप मेरे पुत्र को पढ़ा दीजिए, अवैतनिक रूप से ), किं भो वेदमधीयीय उत तर्कम् ( मैं वेद पढ़ूँ या तर्कशास्त्र ? ), भो भोजनं लभेय ( श्रीमन्, क्या मुझे यहाँ भोजन मिलेगा ? अर्थात् क्या आप मुझे भोजन देंगे ? ) । ये सभी अर्थ लोट् लकार के द्वारा भी विकल्प से प्रकट किये जाते हैं ।

(क) विधि, निमन्त्रण और 'उचित समय है' अर्थ में धातु से विधिलिङ के स्थान पर कृत्य प्रत्यय ( तव्य आदि ) भी होते हैं ।[1] भवता यष्टव्यम्, आदि ।

**९५१**. यदि वाक्य में 'मुहूर्ताद् ऊर्ध्वम्' ( एक घंटे बाद ) शब्दों का प्रयोग होगा तो विधिलिङ, लोट् और कृत्य प्रत्यय ( तव्य आदि ) भी होते हैं ।[2] मुहूर्ताद् ऊर्ध्वं यजेत–यजताम्–यष्टव्यं वा ( सि० कौ० ) ।

**९५२**. काल, समय और वेला शब्दों के साथ यदि यत् शब्द का भी प्रयोग होगा तो विधिलिङ होता है ।[3] कालः समयः वेला वा यद् भुञ्जीत भवान् ( अब समय है कि आप खाना खावें ) ।

**९५३**. योग्य अर्थ होने पर धातु से विधिलिङ, कृत्य प्रत्यय ( तव्य आदि ) और तृच् ( तृ ) प्रत्यय होते हैं ।[4] त्वं कन्यां वहेः, त्वं कन्याया वोढा, त्वया कन्या वोढव्या वा ( तुम कन्या से विवाह के योग्य हो ) ।

(क) जहाँ पर समर्थ अर्थ होता है, वहाँ पर भी विधिलिङ और कृत्य प्रत्यय ( तव्य आदि ) होते हैं ।[5] त्वं भारं वहेः, भारस्त्वया वोढव्यः वा ( तुम इस भार को ले जा सकते हो ) ।

**९५४**. यदि प्रश्नवाचक शब्द किम्, कतरः, कतमः आदि का प्रयोग होगा तो विधिलिङ और लृट् लकार होते हैं, निन्दा अर्थ हो तो ।[6] देखो नियम ९४१ । कः–कतरः–कतमो वा हरिं निन्देत्–निन्दिष्यति वा ।

(क) जहाँ पर आश्चर्य अर्थ होगा और यदि शब्द का प्रयोग नहीं होगा तो वहाँ पर लृट् लकार होगा । यदि शब्द का प्रयोग होगा तो विधिलिङ होगा ।[7]

---

**१. प्रैषातिसर्गप्राप्तकालेषु कृत्याश्च ( ३-३-१६३ ) ।**
**२. लिङ चोर्ध्वमौहूर्तिके (३-३-१६४) ।** **३. लिङ यदि ( ३-३-१६८ ) ।**
**४. अर्हे कृत्यतृचश्च ( ३-३-१६९ ) ।** **५. शकि लिङ च (३-३-१७२) ।**
**६. किंवृत्ते लिङ्लृटौ ( गर्हायाम् ) ( ३-३-१४४ ) ।**
**७. शेषे लृडयदौ ( चित्रीकरणे ) ( ३-३-१५१ ) ।**

आश्चर्यम् अन्धो नाम कृष्णं द्रक्ष्यति ( यह आश्चर्य की बात है यदि अन्धा व्यक्ति कृष्ण को देख लेता है ) । किन्तु आश्चर्यं यदि सोऽधीयीत ( आश्चर्य की बात है, यदि वह पढ़ता है ) ।

९५५. यदि कच्चित् शब्द का प्रयोग न हो और इच्छा या आशा अर्थ अभिप्रेत हो तो विधिलिङ होता है।[1] कामो मे भुञ्जीत भवान् ( मेरी इच्छा है कि आप खाना खावें)। अन्यत्र—कच्चिज्जीवति (मैं आशा करता हूँ कि वह जीवित है) ।

९५६. जहाँ पर 'मैं आशा करता हूँ' अर्थ होता है और यत् शब्द का प्रयोग नहीं होता है, वहाँ पर विधिलिङ और लृट् दोनों होते हैं।[2] संभावयामि भुञ्जीत भोक्ष्यते वा भवान् ( मैं आशा करता हूँ कि आप खाना खाएँगे ) । अन्यत्र—संभावयामि यद् भुञ्जीथास्त्वम् ( सि० कौ० ) ।

९५७. हेतु-हेतुमद् ( कारण-कार्य ) वाले वाक्य में जहाँ कार्य-कारण संबन्ध प्रकट किया जाता है, वहाँ पर विधिलिङ और लृट् दोनों होते हैं।[3] कृष्णं नमेच्चेत् सुखं यायात् ( यदि वह कृष्ण को नमस्कार करेगा तो सुख प्राप्त करेगा ) । इसी प्रकार कृष्णं नंस्यति चेत् सुखं यास्यति ।

९५८. जब इच्छार्थक इष्, कम् आदि धातुओं का प्रयोग होगा तो विधिलिङ और लोट् लकार होते हैं।[4] इच्छामि भवान् भुञ्जीत भुङ्क्तां वा ( सि० कौ०, मैं चाहता हूँ कि आप खाना खावें। ) इच्छामि सोमं पिबेत् पिबतु वा भवान् ( मैं चाहता हूँ कि आप सोम-पान करें ) ।

(क) जहाँ पर दोनों क्रियाओं का कर्ता एक ही व्यक्ति होता है, वहाँ पर केवल विधिलिङ ही होता है और वह तुमुन् प्रत्यय का अर्थ बताता है।[5] भुञ्जीयेतीच्छति ( सि० कौ०, भोक्तुम् इच्छतीत्यर्थः, वह खाना खाना चाहता है ) ।

९५९. कभी कभी नीति या उपदेश के वाक्यों में कर्ता के बिना भी विधिलिङ का प्रयोग होता है। आपदर्थे धनं रक्षेद् दारान् रक्षेद् धनैरपि। आत्मानं सततं रक्षेद् दारैरपि धनैरपि ॥ ( मनुष्य को चाहिए कि वह आपत्तिकाल के लिए धन बचा कर रक्खे। धन-व्यय करके भी अपनी पत्नी की रक्षा करे और अपनी सदा

---

१. **कामप्रवेदनेऽकच्चिति** ( ३-३-१५३ ) ।
२. **विभाषा धातौ संभावनवचनेऽयदि** ( ३-३-१५५ ) ।
३. **हेतुहेतुमतोर्लिङ** ( ३-३-१५६ ) ।
४. **इच्छार्थेषु लिङलोटौ** ( ३-३-१५७ ) । ५. **लिङ च** ( ३-३-१५९ ) ।

रक्षा करे, धन-व्यय करके भी तथा पत्नी-त्याग कर के भी )। यद्यद् रोचेत विप्रेभ्यस्तत्तद् दद्यादमत्सरः ( मनुष्य को चाहिए कि ईर्ष्यभाव को छोड़कर ब्राह्मणों को जो कुछ अच्छा लगे, वह वह वस्तु उन्हें दान करे )।

### आशीर्लिङ (Benedictive Mood)

**६६०.** आशीर्लिङ आशीर्वाद अर्थ को प्रकट करता है या वक्ता की कामना को व्यक्त करता है। चिरं जीव्यात् भवान् ( आप चिरंजीवी हों )। वर्धिषीष्ठाः स्वजातेषु वध्यास्त्वं रिपुसंहतीः। भूयास्त्वं गुणिनां मान्यस्तेषां स्थेया व्यवस्थितौ॥ ( भट्टि० १९-२६ )। कृतार्थः भूयासम् ( मैं कृतार्थ होऊँ )।

### लृङ (Conditional)

**६६१.** हेतुहेतुमद् ( कारण-कार्यभाव ) वाले वाक्यों में लृङ लकार होता है, जहाँ पर कार्य की असफलता या अपूर्णता होने पर विधिलिङ होना चाहिए अथवा जहाँ पर कारण की असफलता संभव है।[1] यह भूत और भविष्यत् दोनों अर्थों को प्रकट करता है। लृङ लकार कारण और कार्य दोनों वाक्यों में होता है। सुवृष्टिश्चेदभविष्यत् तदा सुभिक्षमभविष्यत् ( यदि अच्छी वर्षा होगी तो अनाज भी अच्छा होगा )। यदि सुरभिमवाप्स्यस्तन्मुखोच्छ्वासगन्धं तव रतिरभविष्यत् पुण्डरीके किमस्मिन् ( यदि तुम्हें उसके श्वासों की मधुर गन्ध प्राप्त हो जाती तो क्या तुम इस कमल को चाहते ? )

**६६२. विशेष**—जहाँ पर किसी भूतकाल के कार्य का अर्थ बताना होता है, वहाँ पर विधिलिङ के अर्थ में विकल्प से लृङ लकार होता है।[2] कथं नाम तत्रभवान् धर्ममत्यजत् त्यजेः वा ( आपने कैसे अपने धर्म का परित्याग किया ? )।

(क) जहाँ पर उत, अपि, जातु आदि के साथ विधिलिङ का प्रयोग होता है, वहाँ पर भी लृङ लकार होता है। अपि तत्र रिपुः सीतां नार्थयिष्यत दुर्मतिः। क्रूरं जात्ववदिष्यच्च जात्वस्तोष्यच्छ्रियं स्वकाम्॥ संकल्पं नाकरिष्यच्च तत्रेयं शुद्धमानसा। ( मृषा ) सत्यामर्षमवाप्स्यस्त्वं रामसीतानिबन्धनम् ( भट्टि० २१-३, ४ )।

(ख) जहाँ पर यच्च, यत्र और यदि निपातों के साथ विधिलिङ का प्रयोग

---

**१. लिङनिमित्ते लृङ क्रियातिपत्तौ (३-३-१३९)। हेतुहेतुमद्भावादि लिङनिमित्तं तत्र भविष्यत्यर्थे लृङ स्यात् क्रियाया अनिष्पत्तौ गम्यमानायाम्। ( सि० कौ० )।**

**२. भूते च ( ३-३-१४० )।**

होता है और आश्चर्य अर्थ होता है, वहाँ पर विकल्प से लृङ् लकार का प्रयोग होता है, यदि कोई चेष्टा न हुई हो तो। आश्चर्य यत्र यत्र स्त्री कृच्छ्रेऽवत्स्यन्मते तव। त्रासादस्यां विनष्टायां किं किमालप्स्यथाः फलम्॥ ( भट्टि० २१-८ )

## भाग ५

# अव्यय ( Indeclinables )

## क्रिया-विशेषण ( Adverbs )

**९६३**. कुछ संज्ञाशब्दों के नपुंसकलिंग प्रथमा एकवचन तथा अन्य विभक्तियों के रूप क्रियाविशेषण के तुल्य प्रयुक्त होते हैं । चिरं–चिरेण–चिराय वा ध्यात्वा ( वहुत देर तक विचार करके ), दुःखं-दुःखेन वा तिष्टति ( वह दुःख में है )। इसी प्रकार सुखं सुखेन वा ०, आदि।

(क) वहु, नाना आदि कई शब्दों के साथ विधा शब्द लगता है और उनका क्रियाविशेषण के रूप में प्रयोग होता है। बहुविधम्, नानाविधम् ( अनेक प्रकार से )। कुछ समस्त पदों के अन्त में पूर्व शब्द लगता है और उसका क्रियाविशेषण के रूप में प्रयोग होता है। इन शब्दों में कुछ क्रिया के घटित होने का वर्णन होता है। सान्त्वपूर्वम् ( सान्त्वना देने के साथ ही ), बुद्धिपूर्वम् ( बुद्धिपूर्वक, विचार से )। अवुद्धिपूर्व भगवन् धेनुरेषा हता मया ( हे भगवन्, मैंने अज्ञानवश इस गाय की हत्या की है ), शपथपूर्वम् अकथयत्, आदि।

## उपसर्ग ( Prepositions )

**९६४**. नियम ३६५ से ३७१ में उपसर्गों के प्रयोग का वर्णन किया जा चुका है। जिन उपसर्गों के साथ विविध विभक्तियाँ होती हैं, उनका कारक के प्रसंग में उल्लेख किया जा चुका है।

## संयोजक ( Conjunctions )

**९६५**. संयोजकों के प्रयोग में वाक्य-विचार संबन्धी अधिक विशेषताएँ नहीं हैं, अतः उनका यहाँ विशेष वर्णन आवश्यक नहीं है। उनका वाक्यों में अपने विशेष अर्थों में प्रयोग होता है।

**९६६**. इन संयोजकों में सब से अधिक प्रयुक्त और सब से अधिक महत्त्वपूर्ण 'च' है। इसका वाक्य के प्रारम्भ में प्रयोग नहीं किया जा सकता है और न ही इसका हिन्दी 'और' की तरह ही प्रयोग हो सकता है। यह जिन शब्दों या वाक्यों को जोड़ता है, उन शब्दों या वक्तव्यों के बाद इसका प्रयोग होता है। जैसे—रामश्च लक्ष्मणश्च,

अथवा——रामः लक्ष्मणश्च । कामश्च जृम्भितगुणो नवयौवनं च ( विस्तृत गुणों से युक्त काम और नवयौवन), कुलेन कान्त्या वयसा नवेन गुणैश्च तैस्तैर्विनयप्रधानैः ।

(क) कभी कभी 'च' वियोजक का भी काम करता है । शान्तमिदमाश्रमपदं स्फुरति च बाहुः ( यह आश्रम शान्त है, तथापि मेरी भुजा फड़क रही है ) ।

(ख) कुछ थोड़े स्थलों पर च का प्रयोग 'यदि' अर्थ में भी हुआ है । जीवितुं चेच्छसि मूढ हेतुं मे गदतः शृणु ( हे मूर्ख, यदि तू जीवित रहना चाहता है तो मुझ से उसका कारण सुन ) ।

(ग) कभी कभी इसका प्रयोग पाद-पूर्त्यर्थक के रूप में भी होता है । भीमः पार्थस्तथैव च ।

(घ) कभी-कभी गौण तथ्य को मुख्य तथ्य से संयुक्त करने के लिए भी इसका प्रयोग होता है । भिक्षामट गां चानय ( भिक्षा के लिए घूमना और गाय को लाना ), कुट्टिनी च शासिता गोपी च निःसारिता कन्दर्पकेतुश्च पुरस्कृतः (कुट्टिनी को दण्ड दिया, गोपी को बाहर निकाला और कन्दर्पकेतु को पुरस्कार दिया ) ।

(ङ) जहाँ पर च का दो बार प्रयोग होता है, वहाँ पर कभी कभी इसका अर्थ होता है——एक ओर. . .दूसरी ओर, फिर भी । क्व च हरिणकानां जीवितं चातिलोलं, क्व च निशितनिपाता वज्रसाराः शरास्ते ( एक ओर कहाँ तो छोटे मृगों का अति चंचल जीवन और दूसरी ओर कहाँ तीक्ष्ण रूप से गिरने वाले तथा वज्र के तुल्य कठोर तेरे बाण ) । न सुलभा सकलेन्दुमुखी च सा किमपि चेदमनंगविचेष्टितम् ( एक ओर तो वह पूर्ण-चन्द्रमुखी सुलभ नहीं है और दूसरी ओर फिर भी ये कामभाव की चेष्टाएँ हैं,) ।

(च) कभी कभी च की यह द्विरुक्ति दो घटनाओं की समकालीनता को सूचित करती है । ते च प्रापुरुदन्वन्तं बुबुधे चादिपूरुषः ( वे समुद्र के समीप पहुँचे ही थे कि उसी समय आदिपुरुष जाग गए ) ।

**६६७.** कभी कभी तथा ( वैसा ) का प्रयोग च के स्थान पर मिलता है । रामस्तथा लक्ष्मणश्च ( राम और लक्ष्मण ), अनागतविधाता च प्रत्युत्पन्नमतिस्तथा ( अनागत-विधाता और प्रत्युत्पन्नमति दोनों ) । तथा हि ( उदाहरणार्थ, स्पष्टीकरण के लिए, क्योंकि ), तथा च ( उसी प्रकार ), ये दोनों प्रायः उद्धरण के प्रारम्भ में रक्खे जाते हैं ।

**६६८.** तु ( तो ), हि ( क्योंकि ) और वा, ये वाक्य के प्रारम्भ में नहीं

रक्खे जाते हैं । आत्मा पुत्रः सखा भार्या कृच्छ्रं तु दुहिता किल ( पुत्र अपनी आत्मा के तुल्य है, पत्नी मित्रवत् है, किन्तु पुत्री कष्ट का कारण है ) । अप्याज्ञया शासितु-रात्मना वा प्राप्नोति संभावयितुं वनान्माम् । कालो ह्ययं संक्रमितुं द्वितीयं सर्वो-पकारक्षममाश्रमं ते ( रघु० ५-१० ), अस्त्राणि वा शरीरं वा वरय ( चाहे अस्त्रों को वर रूप में माँगो या अपना जीवन माँगो ) ।

**९६९**. यदि और चेत् ( यदि ) का प्रायः विधिलिङ और लृङ के साथ प्रयोग होता है । जैसे—यदि सोऽत्र संनिहितो भवेत् तर्हि मम साहाय्यं कुर्यात् ( यदि वह यहाँ होता तो मेरी सहायता करता ), यदि देवदत्तोऽत्राभविष्यत् नूनमेतदकरि-ष्यत् ( यदि देवदत्त यहाँ होता तो अवश्य इस काम को करता ) । यदि और चेत् के साथ लट् का भी प्रयोग होता है । यदि जीवति भद्राणि पश्यति ( यदि वह जीवित रहता है तो सुख को प्राप्त करता है ), यदि मया देवपादानां प्रयोजनमस्ति ( यदि आपको मेरी कुछ आवश्यकता है तो ), शापितासि मम जीवितेन यदि वाचा न कथयसि (मैं अपने जीवन की कसम दिलाता हूँ यदि तुम स्पष्ट शब्दों में नहीं बताती हो ) । चेत् का वाक्य के प्रारम्भ में प्रयोग नहीं होता है । तं चेत् सहस्रकिरणो धुरि नाकरिष्यत् ( शाकु० ७-४, यदि सूर्य उसको अपनी धुरा में नहीं लगाता ), यदि रोषमुरीकरोषि नो चेत् ।

### अथ और इति

**९७०**. अथ का निम्नलिखित अर्थों में प्रयोग होता है[1]:—(१) यह मंगल-सूचक शब्द है।[2] अथातो ब्रह्मजिज्ञासा ( अब यहाँ से ब्रह्म की जिज्ञासा का प्रसंग प्रारम्भ होता है ) देखो इस सूत्र का भाष्य । (२) यह किसी ग्रन्थ के प्रारम्भ का सूचक है । अथेदमारभ्यते प्रथमं तन्त्रम् ( अब पहला तन्त्र प्रारम्भ होता है ), अथ योगानुशासनम्, आदि । (३) 'तब, उसके बाद' । अथ प्रजानामधिपः० ( रघु० २-१, इसके बाद अर्थात् रात्रि के बीतने पर प्रजा के स्वामी उस राजा ने । (४) प्रश्न पूछना अर्थ में । अथ भगवान् लोकानुग्रहाय कुशली काश्यपः ( भगवान् काश्यप संसार पर अनुग्रह करने के लिए सकुशल तो हैं ? ), अथ शक्नोषि भोक्तुम् ( क्या तुम खाना खा सकते हो ? ) । (५) 'और, साथ ही' । भीमः अथ अर्जुनः

१. **मंगलानन्तरारम्भप्रश्नकार्त्स्न्येष्वथो अथ ( अमर० ) ।**
२. **वस्तुतः यह अथ का अर्थ नहीं है । यह ब्रह्म के कण्ठ से निकला हुआ शब्द माना गया है, अतः इसके उच्चारण और सुनने से मंगल होता है ।**

( भीम और अर्जुन ) । (६) 'यदि' । अथ मरणमवश्यमेव जन्तोः (यदि एक जीव का मरना अवश्यंभावी है तो ), आदि ।

६७१. जिस प्रकार अथ प्रारम्भ का सूचक है, इसी प्रकार इति किसी ग्रन्थ की समाप्ति का सूचक है । यह निपात निम्नलिखित अर्थों में प्रयुक्त होता है:—(१) किसी दूसरे के द्वारा कहे गए शब्दों को ठीक उसी रूप में उद्धृत करने अर्थ में । इस प्रकार यह उद्धरण-चिह्न का काम करता है और प्रायः उद्धृत किए गए शब्दों के बाद प्रयुक्त होता है ।[1] देव काचिच्चण्डालकन्यका शुकमादाय देवं विज्ञापयति. . .देवपादमूलमागताहमिच्छामि देवदर्शनसुखमनुभवितुमिति ( हे स्वामिन्, एक चण्डाल-कन्या आपसे प्रार्थना करती है कि—'मैं आपके चरणों में आई हूँ और आपके दर्शन के सुख का अनुभव करना चाहती हूँ' ) । ब्राह्मणा, ऊचुः कृतकृत्याः स्म इति ( ब्राह्मणों ने कहा कि 'हम कृतार्थ हो गए हैं' ) । (२) 'कारण अर्थ में । इसलिए , क्योंकि आदि से हिन्दी में इसका अनुवाद किया जाएगा । वैदेशिकोऽस्मीति पृच्छामि ( मैं विदेशी हूँ, अतः आपसे पूछता हूँ ), पुराणमित्येव न साधु सर्वम् (प्रत्येक वस्तु पुरानी है, इसलिए अच्छी नहीं हो सकती है) । (३) लक्ष्य या उद्देश्य अर्थ में । मा भूदाश्रमपीडेति परिमेयपुरःसरः ( आश्रम को कोई कष्ट न हो, इसलिए बहुत थोड़े से अनुचरों के साथ ) । (४) 'इस प्रकार, ऐसा, निम्नलिखित रूप से' अर्थों में । रामाभिधानो हरिरित्युवाच । (५) 'इस रूप में, ऐसे ' अर्थों में । पितेति स पूज्यः, गुरुरिति निन्द्यः ( पिता के रूप में उनका आदर करना चाहिए और गुरुरूप में वे निन्दा के योग्य हैं) । (६) 'कोई मत प्रकट करना' अर्थ में । इति आश्मरथ्यः ( यह आश्मरथ्य का मत है ) । टीकाकारों ने इसका 'इस नियमानुसार' अर्थ में प्रायः प्रयोग किया है । इति शक्यार्थे लिङ्, इत्यादि ।

### विस्मयसूचक अव्यय ( Interjections )

६७२. भट्टिकाव्य के निम्नलिखित श्लोक में कुछ विस्मयसूचक शब्दों को उदाहरण के रूप में प्रयुक्त किया गया है :—

**आः कष्टं बत ही चित्रं हूँ मातर्दैवतानि धिक् ।**
**हा पितः क्वासि हे सुभ्रु बह्वेवं विललाप सः ।।**

---

[1] **संस्कृत में Indirect ( अप्रत्यक्ष ) रचना नहीं होती है । अतः अप्रत्यक्ष रचना का अनुवाद करते समय वक्ता के वास्तविक प्रयुक्त शब्दों के अन्त में 'इति' शब्द का प्रयोग करना चाहिए ।**

# परिशिष्ट-१

## छन्दःशास्त्र (Prosody)[1]

१. संस्कृत में काव्य-रचना दो प्रकार की मानी गई है :—गद्य (Prose) या पद्य (Verse) (छन्दोबद्ध रचना)।[2]

२. छन्दःशास्त्र में छन्द-निर्माण के नियमों पर विचार किया गया है। संस्कृत के छन्द वर्णों या मात्राओं से नियन्त्रित होते हैं, उदात्त स्वर से नहीं।

३. एक पद्य (Stanza) में चार पंक्तियाँ होती हैं। उनको पाद या चरण (Quarter) कहते हैं। प्रत्येक पाद में अक्षरों (या वर्णों) या मात्राओं की गणना की जाती है।

(क) अक्षर या वर्ण शब्द के उतने अंश को कहते हैं जितना कि उच्चारण के एक प्रयत्न से उच्चरित होता है, अर्थात् एक या अनेक व्यंजनों के सहित अथवा व्यंजनों से रहित एक स्वर वर्ण।

(ख) एक ह्रस्व स्वर के उच्चारण में जितना समय लगता है, उतने समय के परिमाण को एक मात्रा कहते हैं।

४. ह्रस्व स्वर को लघु कहते हैं और दीर्घ स्वर को गुरु।

(क) अ, इ, उ, ऋ और लृ, ये लघु (ह्रस्व) स्वर हैं और आ, ई, ऊ, ॠ, ए, ए, ओ और औ, ये गुरु (दीर्घ) स्वर हैं। ह्रस्व स्वर के बाद अनुस्वार, विसर्ग या कोई संयुक्त व्यंजन होगा तो उस ह्रस्व को गुरु माना जाता है।[3] जैसे—गन्ध, अच्छ, आदि।

५. पाद का अन्तिम स्वर ह्रस्व हो या दीर्घ, वह छन्द की आवश्यकता के अनुसार ह्रस्व या दीर्घ दोनों माना जा सकता है।[4] जैसे इन स्थानों पर—वक्षःस्थली रक्षतु सा जगन्ति, आदि (विक्रमो० १), तस्याः खुरन्यासपवित्रपांसुम् (रघु० २-२)।

---

**१. छन्दःशास्त्र का सबसे प्राचीन लेखक पिंगलाचार्य है। उसके ग्रन्थ का नाम है—पिंगलछन्दःशास्त्र। यह सूत्रों में लिखा हुआ है। इसमें ८ अध्याय हैं। अग्निपुराण में भी इस विषय का पूर्ण विवेचन है। इस अध्याय का विवरण मुख्यतया वृत्तरत्नाकर और छन्दोमंजरी पर आश्रित है।**

**२. काव्यं गद्यं च पद्यं च तद्द्विधैव व्यवस्थितम्। दण्डी—काव्यादर्श प्र० १**

**३. सानुस्वारश्च दीर्घश्च विसर्गी च गुरुर्भवेत्।**

**४. देखो वृत्तरत्नाकर १-९।**

**वर्णः संयोगपूर्वश्च तथा पादान्तगोऽपि वा।—छन्दोमंजरी**

६. वर्णवृत्तों के प्रत्येक पाद गणों में विभक्त होते हैं। प्रत्येक गण में ३ वर्ण होते हैं। ये गण ८ हैं। इनके नाम हैं :—म, न, भ, य, ज, र, स और त। निम्नलिखित श्लोक में इनके नाम और इनके ह्रस्व या दीर्घ वर्णों का क्रम दिया गया है।

मस्त्रिगुरुस्त्रिलघुश्च नकारो, भादिगुरुः पुनरादिलघुर्यः।
जो गुरुमध्यगतो रलमध्यः, सोऽन्तगुरुः कथितोऽन्तलघुस्तः॥

अर्थात् म या मगण में तीनों अक्षर गुरु होते हैं, नगण में तीनों लघु, भगण में पहला अक्षर गुरु होता है, यगण में पहला अक्षर लघु होता है, जगण का बीच का अक्षर गुरु होता है, रगण का बीच का अक्षर लघु होता है, सगण का अन्तिम अक्षर गुरु होता है और तगण का अन्तिम अक्षर लघु होता है।[1]

लघु वर्ण के लिए। (या ˘) चिह्न है और गुरु वर्ण के लिए ऽ (या—) चिह्न है। इन चिह्नों के अनुसार गणों को इस प्रकार लिखा जाएगा :—

म ऽऽऽ   न ।।।   भ ऽ।।   य ।ऽऽ
ज ।ऽ।   र ऽ।ऽ   स ।।ऽ   त ऽऽ।

इसी प्रकार पाद के अन्त में लघु के लिए ल वर्ण प्रयुक्त होता है और गुरु के लिए ग।

७. मात्रिक छन्दों में प्रत्येक पाद की मात्राओं की गणना की जाती है। प्रत्येक पाद को ४, ४ मात्राओं में विभक्त करते हैं और इन चार मात्राओं को मात्रागण कहते हैं। लघु (ह्रस्व) स्वर की एक मात्रा गिनी जाती है और गुरु (दीर्घ) की दो मात्राएँ। मात्रागण ५ हैं। इनको चिह्नों के अनुसार इस प्रकार लिखा जाएगा:—

म ऽऽऽ   स ।।ऽ   ज ।ऽ।   भ ऽ।।   न ।।।।

८. पद्य दो प्रकार के होते हैं—वृत्त या जाति।

(क) जिन छन्दों के प्रत्येक पाद में गणों के अनुसार वर्णों की गणना की जाती है, उन्हें वृत्त कहते हैं।

(ख) जिन छन्दों के प्रत्येक पाद में मात्रागणों के अनुसार मात्राओं की गणना की जाती है, उन्हें जाति कहते हैं।

---

**१. उपर्युक्त श्लोक के स्थान पर निम्नलिखित श्लोक को सरलता से स्मरण किया जा सकता है—**

**आदिमध्यावसानेषु यरता यान्ति लाघवम्।**
**भजसा गौरवं यान्ति मनौ तु गरुलाघवम्॥**

९. वृत्त ३ प्रकार के हैं––(१) समवृत्त, जिनमें चारों पदों में वर्णों की संख्या बराबर होती है, (२) अर्धसमवृत्त, जिनमें १, ३ और २, ४ पाद समान होते हैं, (३) विषम, जिनमें प्रत्येक पाद में वर्णों की संख्या विषम होती है।[1]

१०. समवृत्तों के सामान्यतया २६ वर्ग स्वीकार किए गए हैं। यह वर्गीकरण इस बात पर निर्भर है कि पद्य के एक पाद में एक अक्षर से लेकर २६ अक्षर तक हो सकते हैं। इनमें से प्रत्येक वर्ग में कितने ही छन्द हैं। वे गणों के क्रम के भेद के आधार पर हैं और सभी छन्द एक दूसरे से भिन्न प्रकार के होते हैं।

११. संस्कृत में यति का अभिप्राय है कि पद्य के एक पाद के पढ़ने में कितने अक्षरों के बाद अल्प-विराम या थोड़ा विश्राम होता है।

१२. यहाँ पर अधिक प्रचलित छन्दों का ही विवरण दिया गया है, साथ ही उनके गणों का भी निर्देश किया गया है। अप्रचलित छन्दों तथा वैदिक और प्राकृत के छन्दों का उल्लेख नहीं किया गया है।

---

# भाग १

## समवृत्त

[ एक पाद में ८ अक्षरों वाले छन्द ]

### (१) अनुष्टुभ् या श्लोक

१३. संस्कृत के छन्दों में यह सब से प्रचलित छन्द है। रामायण, महाभारत और बहुत से पुराणों में इसी छन्द का मुख्यतया प्रयोग हुआ है।

इस छन्द के कई भेद हैं, परन्तु सामान्यतया इसके एक चरण (पाद) में ८ वर्ण होते हैं और उनमें पंचम वर्ण ह्रस्व होता है। (रामायण और महाभारत में इन नियमों के कितने ही अपवाद भी प्राप्त होते हैं।)

उदाहरण के लिए देखो रघुवंश का प्रथम सर्ग।

### (२) गजगति (४, ४)

**लक्षण**––नभलगा गजगतिः। **गण**––न, भ, ल, ग, (। । ।, ऽ । ।, ।ऽ)

रविसुतापरिसरे विहरतो दृशि हरेः।
व्रजवधूगजगतिर्मुदमलं व्यतनुत ॥

---

**१. सममर्धसमं वृत्तं विषमं च तथा परम् ॥ अङ्घ्रयो यस्य चत्वारस्तुल्यलक्षणलक्षिताः। तच्छन्दःशास्त्रतत्त्वज्ञाः समं वृत्तं प्रचक्षते ॥ प्रथमाङ्घ्रिसमो यस्य तृतीयश्चरणो भवेत्। द्वितीयस्तुर्यवद् वृत्तं तदर्धसममुच्यते ॥ यस्य पादचतुष्केऽपि लक्ष्म भिन्नं परस्परम्। तदाहुर्विषमं वृत्तं छन्दःशास्त्रविशारदाः ॥**

(३) **प्रमाणिका** (४, ४)

**लक्षण**—प्रमाणिका जरौ लगौ । **गण**—ज, र, ल, ग, । ऽ ।, ऽ । ऽ, । ऽ

पुनातु भक्तिरच्युता सदाच्युतांघ्रिपद्मयोः ।
श्रुतिस्मृतिप्रमाणिका भवाम्बुराशितारिका ।।

(४) **माणवक** (४, ४)

**लक्षण**—भात्तलगा माणवकम् । **गण**—भ, त, ल, ग, ऽ । ।,ऽ ऽ ।, । ऽ

चंचलचूडं चपलवत्सकुलैः केलिपरम् ।
ध्याय सख स्मेरमुखं नन्दसुतं माणवकम् ।।

(५) **विद्युन्माला** (४, ४)

**लक्षण**—मो मो गो गो विद्युन्माला । **गण**—म, म, ग, ग,
(ऽ ऽ ऽ, ऽ ऽ ऽ, ऽ ऽ)

वासोवल्ली विद्युन्माला बर्हश्रेणी शाक्रश्चापः ।
यस्मिन्नास्तां तापोच्छित्त्यै गोमध्यस्थः कृष्णाम्भोदः ।।

(६) **समानिका** (४, ४)

**लक्षण**—ग्लौ रजौ समानिका तु । **गण**—र, ज, ग, ल, ऽ । ऽ, । ऽ ।, ऽ ।

यस्य कृष्णपादपद्ममस्ति हृत्तडागसद्म ।
धीः समानिका परेण नोचितात्र मत्सरेण ।।

## बृहती

[ एक पाद में ९ वर्णों वाले छन्द ]

(१) **भुजगशिशुभृता** (७, २)

**लक्षण**—भुजगशिशुभृता नौ मः ।। गण—न, न, म, । । ।, । । ।, ऽ ऽ ऽ

हृदतटनिकटक्षौणी भुजगशिशुभृता याऽऽसीत् ।
मुररिपुदलिते नागे व्रजजनसुखदा साऽभूत् ।।

(२) **भुजंगसंगता** (३, ६)

**लक्षण**—सजरैर्भुजंगसंगता । **गण**—स, ज, र, । । ऽ, । ऽ ।, ऽ । ऽ,

तरला तरंगिरिंगितैर्यमुना भुजंगसंगता ।
कथमेति वत्सचारकश्चपलः सदैव तां हरिः ।।

(३) **मणिमध्यम्** (५, ४)

**लक्षण**—स्यान्मणिमध्यं चेद्भमसाः ।। **गण**—भ, म, स, ऽ । ।, ऽ ऽ ऽ, । । ऽ

कालियभोगाभोगगतस्तन्मणिमध्यस्फीतरुचा ।
चित्रपदाभो नन्दसुतश्चारु ननर्त स्मेरमुखः ।।

## पंक्तिः

[ एक पाद में १० वर्णों वाले छन्द ]

(१) **त्वरितगतिः** (५, ५)

**लक्षण**—त्वरितगतिश्च नजनगैः ।
**गण**—न, ज, न ग, । । ।, । ऽ ।, । । ।, ऽ

त्वरितगतिर्व्रजयुवतिस्तरणिमुता विपिनगता ।
मुररिपुणा रतिगुरुणा परिरमिता प्रमदमिता ।।

(२) **मत्ता** ( ४, ६)

**लक्षण**—ज्ञेया मत्ता मभसगसृष्टा । गण—म, भ, स, ग
(ऽऽऽ, ऽ।।, ।।ऽ, ऽ)

पीत्वा मत्ता मधु मधुपाली कालिन्दीये तटवनकुञ्जे ।
उद्दीव्यन्तीर्व्रजजनरामाः कामासक्ता मधुजिति चक्रे ।।

(३) **रुक्मवती** (५, ५)
( अथवा चंपकमाला)

**लक्षण**—रुक्मवती सा यत्र भमस्गाः । **गण**—भ, म, स, ग ।
(ऽ।।, ऽऽऽ, ।।ऽ, ऽ)

कायमनोवाक्यैः परिशुद्धैर्यस्य सदा कंसद्विषि भवितः ।
राज्यपदे हर्म्यालिरुदारा रुक्मवती विघ्नः खलु तस्य ।।

## त्रिष्टुभ्

[ एक पाद में ११ वर्णों वाले छन्द ]

(१) **इन्द्रवज्रा** (५, ६)

**लक्षण**—स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः । **गण**—त, त, ज, ग, ग ।
(ऽ ऽ ।, ऽ ऽ ।, ।ऽ।, ऽऽ)

गोष्ठे गिरिं सव्यकरेण धृत्वा रुष्टेन्द्रवज्राहतिमुक्तवृष्टौ ।
यो गोकुलं गोपकुलं च सुस्थं चक्रे स नो रक्षतु चक्रपाणिः ।।

(२) **उपेन्द्रवज्रा** ( ५, ६)

**लक्षण**—उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ। **गण**—ज, त, ज, ग, ग ।
(।ऽ।, ऽऽ।, ।ऽ।, ऽऽ)

उपेन्द्रवज्रादिमणिच्छटाभिर्विभूषणानां छुरितं वपुस्ते ।
स्मरामि गोपीभिरुपास्यमानं सुरद्रुमूले मणिमण्डपस्थम् ।।

(३) **उपजाति**

**लक्षण**—अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः ।
इत्थं किलान्यास्वपि मिश्रितासु वदन्ति जातिष्विदमेव नाम ।।

**गण**—इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा छन्दों के मिश्रण से उपजाति छन्द होता है। इसके १४ भेद माने जाते हैं। उदाहरण के लिए देखो—रघुवंश सर्ग २, कुमार० सर्ग ३, किराता० सर्ग १७, भट्टि० सर्ग २, आदि ।

जहाँ पर किसी श्लोक में अन्य दो छन्दों का मिश्रण होता है, उसे भी उपजाति ही कहते हैं । शिशुपालवध के निम्नलिखित श्लोक में वंशस्थ और इन्द्रवंशा दोनों छन्दों का मिश्रण है ।

इत्थं रथाश्वेभनिषादिनां प्रगे गजो नृपाणामथ तोरणाद्बहिः ।
प्रस्थानकालक्षमवेशकल्पनाकृतक्षणक्षेपमुदैक्षताच्युतम् ।।

(४) **दोधकम्** (६, ५)

**लक्षण**––दोधकमिच्छति भत्रितयाद् गौ। **गण**––भ, भ, भ, ग, ग,
(ऽ।।, ऽ।।, ऽ।।, ऽऽ)

देव सदोध कदम्बतलस्य श्रीधर तावक नामपदं ते ।
कण्ठतले सुविनिर्गमकाले स्वल्पमणिक्षणमेष्यति योगम् ।।

(५) **भ्रमरविलसितम्** (५, ६)

**लक्षण**––म्भौ न्लौ गः स्याद्भ्रमरविलसितम्। **गण**––म, भ, न, ल, ग,
(ऽऽऽ, ऽ।।, ।।।, ।ऽ)

मुग्धे मानं परिहर न चिरात्तारुण्यं ते सफलयतु हरिः ।
फुल्ला वल्ली भ्रमरविलसिताभावे शोभा कलयतु किमु ताम् ।।

(६) **रथोद्धता** (३, ८ या ४, ७)

**लक्षण**––रान्नराविह रथोद्धता लगौ। **गण**––र, न, र, ल, ग,
(ऽ।ऽ, ।।।, ऽ।ऽ, ।ऽ)

राधिका दधिविलोडनस्थिता कृष्णवेणुनिनदैरथोद्धता ।
यामुनं तटनिकुञ्जमञ्जसा सा जगाम सलिलाहृतिच्छलात्। ।

(७) **शालिनी** (४, ७)

**लक्षण**––शालिन्युक्ता म्तौ तगौ गोब्धिलोकैः। **गण**––म, त, त, ग, ग,
(ऽऽऽ, ऽऽ।, ऽऽ।, ऽऽ)

अंघो हन्ति ज्ञानवृद्धिं विधत्त धर्मं दत्ते काममर्थं च सूते ।
मुक्ति दत्ते सर्वदोपास्यमाना पुंसा श्रद्धाशालिनी विष्णुभक्तिः ।।

(८) **स्वागता** (३, ८)

**लक्षण**––स्वागता रनभगैर्गुरुणा च। **गण**––र, न, भ, ग, ग,
(ऽ।ऽ, ।।।, ऽ।।, ऽऽ)

यस्य चेतसि सदा मुरवैरी बल्लवीजनविलासविलोलः ।
तस्य नूनममरालयभाजः स्वागतादरकरः सुरराजः ।।

## जगती

[ एक पाद में १२ वर्णो वाले छन्द ]

(१) **वंशस्थविल ( वंशस्थ या वंशस्तनित)** (५, ७)

**लक्षण**––वदन्ति वंशस्थविलं जतौ जरौ। **गण**––ज, त, ज, र,
(।ऽ।, ऽऽ।, ।ऽ।, ऽ।ऽ)

विलासवंशस्थविलं मुखानिलैः प्रपूर्य यः पञ्चमरागमुद्गिरन् ।
व्रजाङ्गनानामपि गानशालिनां जहार मानं स हरिः पुनातु नः ।।

(२) **इन्द्रवंशा**

**लक्षण**––तच्चेन्द्रवंशा प्रथमाक्षरे गुरौ। वंशस्थविल छन्द में ही पहला वर्ण गुरु होने पर इन्द्रवंशा छन्द होता है। **गण**––त, त, ज, र।
(ऽऽ।, ऽऽ।, ।ऽ।, ऽ।ऽ)

दैत्येन्द्रवंशाग्निरुदीर्णदीधितिः पीताम्बरोऽसौ जगतां तमोऽपहः ।
यस्मिन्ममज्जुः शलभा इव स्वयं ते कंसचाणूरमुखा मखद्विषः ।।

**(३) चन्द्रवर्त्म (४, ८)**

**लक्षण**—चन्द्रवर्त्म निगदन्ति रनभसैः । **गण**—र, न, भ, स,
(ऽ।ऽ, ।।।, ऽ।।, ।।ऽ)

चन्द्रवर्त्म पिहितं घनतिमिरै राजवर्त्म रहितं जनगमनैः ।
इष्टवर्त्म तदलंकुरु सरसे कुंजवर्त्मनि हरिस्तव कुतुकी ।।

**(४) जलधरमाला (४, ८)**

**लक्षण**—मो भस्मौ चेज्जलधरमालाब्ध्यन्त्यैः । **गण**—म, भ, स, म
(ऽऽऽ, ऽ।।, ।।ऽ, ऽऽऽ,)

या भक्तानां कलिदुरितोत्तप्तानां तापच्छेदे जलधरमाला नव्या ।
भव्याकारा दिनकरपुत्रीकूले केलीलोला हरितनुरव्यात्सा वः ।।

**(५) जलोद्धतगतिः (६, ६)**

**लक्षण**—जसौ जसयुतौ जलोद्धतगतिः । **गण**—ज, स, ज, स,
(।ऽ।, ।।ऽ, ।ऽ।, ।।ऽ)

यदीयहलतो विलोक्य विपदं कलिन्दतनया जलोद्धतगतिः ।
विलासविपिनं विवेश सहसा करोतु कुशलं हरिः स जगताम् ।।

**(६) तामरसम् (५, ७)**

**लक्षण**—इह वद तामरसं नजजा यः । **गण**—न, ज, ज, य,
(।।।, ।ऽ।, ।ऽ।, ।ऽऽ)

स्फुटसुषमामकरन्दमनोज्ञं व्रजललनानयनालिनिपीतम् ।
तव मुखतामरसं मुरशत्रो हृदयतडागविकाशि ममास्तु ।।

**(७) तोटकम् (४, ४)**

लक्षण—वद तोटकमब्धिसकारयुतम् । गण—स, स, स, स,
(।।ऽ, ।।ऽ, ।।ऽ, ।।ऽ)

यमुनातटमच्युतकेलिकलालसदङ्घ्रिसरोरुहसङ्गरुचिम् ।
मुदितोऽट कलेरपनेतुमघं यदि चेच्छसि जन्म निजं सफलम् ।।

**(८) द्रुतविलम्बितम् (४, ८ या ४, ४, ४)**

**लक्षण**—द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ । **गण**—न, भ, भ, र,
(।।।, ऽ।।, ऽ।।, ऽ।ऽ)

तरणिजापुलिने नवबल्लवीपरिषदा सह केलिकुतूहलात् ।
द्रुतविलम्बितचारुविहारिणं हरिमहं हृदयेन सदा वहे ।।

**(९) मन्दाकिनी या प्रभा (७, ५)**

**लक्षण**—ननररघटिता तु मन्दाकिनी । **गण**—न, न, र, र,
(।।।, ।।।, ऽ।ऽ, ऽ।ऽ,)

बलिदमनविधौ बभौ संगता पदजलरुहि यस्य मन्दाकिनी ।
सुरनिहितसिताम्बुजस्रङ्निभा हरतु जगदघं स पीताम्बरः ।।

(१०) **प्रमिताक्षरा** (५, ७)

**लक्षण**—प्रमिताक्षरा सजससैः कथिता । **गण**—स, ज, स, स,
(।।ऽ, ।ऽ।, ।।ऽ, ।।ऽ)

अमृतस्य शीकरमिवोद्गिरती रदमौक्तिकांशुलहरीच्छुरिता ।
प्रमिताक्षरा मुररिपोर्भणितिर्व्रजसुभ्रुवामधिजहार मनः ।।

(११) **भुजंगप्रयातम्** (६, ६)

**लक्षण**—भुजङ्गप्रयातं चतुर्भिर्यकारैः । **गण**—य, य, य, य,
(।ऽऽ, ।ऽऽ, ।ऽऽ, ।ऽऽ,)

सदारात्मजज्ञातिभृत्यो विहाय स्वमेतं ह्रदं जीवनं लिप्समानः ।
मया क्लेशितः कालियेत्थं कुरु त्वं भुजंगप्रयातं द्रुतं सागराय ।।

(१२) **मणिमाला** (६, ६)

लक्षण—त्यौ त्यौ मणिमाला छिन्नागुहवक्त्रैः । गण—त, य, त, य,
(ऽऽ।, ।ऽऽ, ऽऽ।, ।ऽऽ,)

प्रह्वामरमौलौ रत्नोपलक्लृप्ते जातप्रतिबिम्बा शोणा मणिमाला ।
गोविन्दपदाब्जे राजी नखराणामास्तां मम चित्ते ध्वान्तं शमयन्ती ।।

(१३) **मालती (यमुना)** (५, ७)

**लक्षण**—भवति नजावथ मालती जरौ । **गण**—न, ज, ज, र,
(।।।, ।ऽ।, ।ऽ।, ऽ।ऽ)

इह कथयाच्युत केलिकानने मधुरससौरभसारलोलुपः ।
कुसुमकृतस्मितचारुविभ्रमामलिरपि चुम्बति मालतीं मुहुः ।।

(१४) **वैश्वदेवी** (५, ७)

**लक्षण**—बाणाश्वैश्छिन्ना वैश्वदेवी ममौ यौ । **गण**—म, म, य, य,
(ऽऽऽ, ऽऽऽ, ।ऽऽ, ।ऽऽ)

अर्चामन्येषां त्वं विहायामराणामद्वैतेनकं विष्णुमभ्यर्च्य भक्त्या ।
तत्राशेषात्मन्यर्चिते भाविनी ते भ्रातः सम्पन्नाराधना वैश्वदेवी ।।

(१५) **स्रग्विणी** (६, ६)

**लक्षण**—कीर्तितैषा चतूरेफिका स्रग्विणी । **गण**—र, र, र, र,
(ऽ।ऽ, ऽ।ऽ, ऽ।ऽ, ऽ।ऽ)

इन्द्रनीलोपलेनेव या निर्मिता शातकुम्भद्रवालंकृता शोभते ।
नव्यमेघच्छविः पीतवासा हरेर्मूर्तिरास्तां जयायोरसि स्रग्विणी ।।

## अतिजगती

[ एक पाद में १३ वर्णों वाले छन्द ]

(१) **कलहंसः** (सिंहनाद या कुटजा) (७, ६)

**लक्षण**—सजसाः सगौ च कथितः कलहंसः । **गण**—स, ज, स, स, ग ।

यमुनाविहारकुतुके कलहंसो व्रजकामिनीकमलिनीकृतकेलिः ।
जनचित्तहारिकलकण्ठनिनादः प्रमदं तनोतु तव नन्दतनूजः ।।

### (२) क्षमा ( चन्द्रिका, उत्पलिनी) (७, ६)

**लक्षण**—तुरगरसयतिर्नौ ततौ गः क्षमा । **गण**—न, न, त, त, ग ।
इह दुरधिगमैः किंचिदेवागमैः सततमसुतरं वर्णयन्त्यन्तरम् ।
अमुमतिविपिनं वेददिग्व्यापिनं पुरुषमिव परं पद्मयोनिः परम् ।।

### (३) प्रहर्षिणी (३, १०)

**लक्षण**—त्र्याशाभिर्मनजरगाः प्रहर्षिणीयम् । **गण**—म, न, ज, र, ग ।
ते रेखाध्वजकुलिशातपत्रचिह्नं सम्राजश्चरणयुगं प्रसादलभ्यम् ।
प्रस्थानप्रणतिभिरङ्गुलीषु चक्रुर्मौलिस्रक्च्युतमकरन्दरेणुगौरम् ।।

### (४) मंजुभाषिणी (५, ७)

(इसको ही प्रबोधिता और सुनन्दिनी भी कहते हैं)

**लक्षण**—सजसा जगौ च यदि मंजुभाषिणी । **गण**—स, ज, स, ज, ग ।
अमृतोर्मिशीतलकरेण लालयंस्तनुकान्तिरोचितविलोचनो हरे ।
नियतं कलानिधिरसीति बल्लवी मुदमच्युते व्यधित मञ्जुभाषिणी ।।

### (५) मत्तमयूरी (४, ९)

**लक्षण**—वेदैरन्ध्रैर्म्तौ यसगा मत्तमयूरः । **गण**—म, त, य, स, ग ।
हा तातेति क्रन्दितमाकर्ण्य विषण्णस्तस्यान्विष्यन्वेतसगूढं प्रभवं सः ।
शल्यप्रोतं वीक्ष्य सकुम्भं मुनिपुत्रं तापादन्तःशल्य इवासीत्क्षितिपोऽपि ।।

### (६) रुचिरा (४, ९) ( इसको प्रभावती भी कहते हैं)

**लक्षण**—जभौ सजौ गिति रुचिरा चतुर्ग्रहैः । **गण**—ज, भ, स, ज, ग ।
अभून्नृपो विबुधसखः परन्तपः श्रुतान्वितो दशरथ इत्युदाहृतः ।
गुणैर्वरं भुवनहितच्छलेन यं सनातनः पितरमुपागमत्स्वयम् ।।

## शक्वरी

[ एक पाद में १४ वर्णों वाले छन्द ]

### (१) अपराजिता (७, ७)

**लक्षण**—ननरसलघुगैः स्वरैरपराजिता । **गण**—न, न, र, स, ल, ग ।
यदनवधिभुजप्रतापकृतास्पदा यदुनिचयचमूः परैरपराजिता ।
व्यजयत समरे समस्तरिपुव्रजं स जयति जगतां गतिर्गरुडध्वजः ।।

### (२) असंबाधा (५, ९)

**लक्षण**—म्तौ न्सौ गावक्षग्रहविरतिरसंबाधा । **गण**—म, त, न, स, ग, ग ।
वीर्याग्नौ येन ज्वलति रणवशात्क्षिप्ते दैत्येन्द्रे जाता धरणिरियमसंबाधा ।
धर्मस्थित्यर्थं प्रकटिततनुसम्बन्धः साधूनां बाधां प्रशमयतु स कंसारिः ।।

### (३) प्रहरणकलिका (७, ७)

**लक्षण**—ननभनलगिति प्रहरणकलिका । **गण**—न, न, भ, न, स, ग,

व्यथयति कुसुमग्रहणकलिका प्रमदवनभवा तव धनुषि तता ।
विरहविपदि मे शरणमिह ततो मधुमथनगुणस्मरणमविरतम् ॥

(४) **मध्यक्षामा** (४, १०)

(इसको ही हंसश्येनी और कुटिला भी कहते हैं)

**लक्षण**—मध्यक्षामा युगदशविरमा म्भौ न्यौ गौ । **गण**—म, भ, न, य, ग, ग ।
नीतोच्छ्रायं मुहुरशिशिररश्मेरुस्रैरानीलाभैर्विरचितपरभागा रत्नैः ।
ज्योत्स्नाशंकामिह वितरति हंसश्येनी मध्येऽप्यह्नः स्फटिकरजतभित्तिच्छाया ॥

(५) **वसन्ततिलका** (८, ६)

**लक्षण**—ज्ञेयं (उक्ता) वसंन्ततिलकं (का) तभजा जगौ गः । **गण**—त, भ, ज, ज, ग, ग ।
फुल्लं वसन्ततिलकं तिलकं वनाल्या लीलापरं पिककुलं कलमत्र रौति ।
वात्येष पुष्पसुरभिर्मलयाद्रिवातो यातो हरिः स मथुरां विधिना हताः स्मः ॥

(६) **वासन्ती** (४, ६, ४)

**लक्षण**—मात्तो नो मो गौ यदि गदिता वासन्तीयम् । **गण**—म, त, न, म, ग, ग ।
भ्राम्यद्भृङ्गीनिर्भरमधुरालापोद्गीतैः श्रीखण्डाद्रेरद्भुतपवनैर्मन्दान्दोला ।
लीलालोला पल्लवविलसद्धस्तोल्लासैः कंसारातौ नृत्यति सदृशी वासन्तीयम् ॥

## अतिशक्वरी (पंचदशाक्षरा वृत्तिः)

[ एक पाद में १५ वर्णों वाले छन्द ]

(१) **तूणकम्** (४, ४, ४, ३ या ७, ८)

**लक्षण**—तूणकं समानिकापदद्वयं विनान्तिमम् । **गण**—र, ज, र, ज, र ।
सा सुवर्णकेतकं विकाशि भृङ्गपूरितं पञ्चबाणबाणजाल पूर्ण हेतितूणकम् ।
राधिका वितर्क्य माधवाद्य मासि माधवे मोहमेति निर्भरं त्वया विना कलानिधे ।

(२) **मालिनी** (८, ७)

**लक्षण**—ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः । **गण**—न, न, म, य, य ।
मृगमदकृतचर्चा पीतकौशयवासा रुचिरशिखिशिखण्डा बद्धधम्मिल्लपाशा ।
अनृजुनिहितमंसे वंशमुत्क्वाणयन्ती धृतमधुरिपुलीला मालिनी पातु राधा ॥

(३) **लीलाखेलः**

**लक्षण**—एकन्यूनौ विद्युन्मालापादौ चेल्लीलाखेलः । **गण**—म, म, म, म, म ।
पायाद्वो गोविन्दः कालिन्दीकूलक्षोणीचक्रे
रासोल्लासक्रीडद्गोपीभिः सार्धं लीलाखेलः ।
मन्दाकिन्यास्तीरोपान्ते स्वैरक्रीडाभिर्लोलो
यद्वद्देवानामीशः स्वर्वेश्याभिः खेलन्तीभिः ॥

(४) **शशिकला** (७, ८)

**लक्षण**—गुरुनिधनमनुलघुरिह शशिकला । **गण**—न, न, न, न, स ।
मलयजतिलकसमुदितशशिकला व्रजयुवतिलसदलिकगगनगता ।
सरसिजनयनहृदयसलिलनिधिं व्यतनुत विततरभसपरितरलम् ॥

इस छन्द में ही यदि ६ठे और १५ वें वर्ण पर यति होगी तो इसे स्रक् छन्द कहेंगे और यदि ८ वें और १५ वें वर्ण पर यति होगी तो गुणिगुणनिकर छन्द कहेंगे। जैसे—

अयि सहचरि रुचिरतरगुणमयी अदिमवसतिरनपगतपरिमला।
स्रगिव निवस विलसदनुपमरसा सुमुखि मुदितदनुजदलनहृदये॥
नरकरिपुरवतु निखिलसुरगतिरमितमहिमभरसहजनिवसतिः।
अनवधिमणिगुणनिकरपरिचितः सरिदधिपतिरिव धृततनुविभवः॥

## अष्टिः (षोडशाक्षरा वृत्तिः)

[ एक पाद में १६ वर्णों वाले न्द ]

### (१) चित्रम् (८, ८ या ४, ४, ४, ४)

**लक्षण**—चित्रसंज्ञमीरितं समानिकापदद्वयं तु।
समानिका छन्द के दो पादों को मिलाकर चित्र छन्द का एक पाद होता है।
**गण**—र, ज, र, ज, र, ग।
विद्रुमारुणाधरौष्ठशोभिवेणुवाद्यहृष्टवल्लवीजनाङ्गसङ्गजातमुग्धकण्टकाङ्ग।
त्वां सदैव वासुदेव पुण्यलभ्यपाद देव वन्यपुष्पचित्रकेश संस्मरामि गोपवेश॥

### (२) पंचचामरम् (८, ८ या ४, ४, ४, ४)

**लक्षण**—प्रमाणिकापदद्वयं वदन्ति पंचचामरम्। **गण**—ज, र, ज, र, ज, ग।
सुरद्रुमूलमण्डपे विचित्ररत्ननिर्मिते लसद्वितानभूषिते सलीलविभ्रमालसम्।
सुराङ्गनाभवल्लवीकरप्रपञ्चचामरस्फुरत्समीरवीजितं सदाच्युतं भजामि तम्॥

### (३) वाणिनी

**लक्षण**—नजभजरैर्यदा भवति वाणिनी गयुक्तैः। **गण**—न, ज, भ, ज, र, ग।
स्फुरतु ममाननेऽद्य ननु वाणि नीतिरम्यं
तव चरणप्रसादपरिपाकतः कवित्वम्।
भवजलराशिपारकरणक्षमं मुकुन्दं
सततमहं स्तवैः स्वचरितैः स्तवामि नित्यम्॥

## अत्यष्टि

[ एक पाद में १७ वर्णों वाले छन्द ]

### (१) नर्दटकम् (८, ९)

**लक्षण**—यदि भवतो नजौ भजजला गुरु नर्दटकम्।
**गण**—न, ज, भ, ज, ज, ल, ग।
व्रजवनितावसन्तलतिकाविलसन्मधुपं
मधुमथनं प्रणम्रजनवाञ्छितकल्पतरुम्।
विभुमभिनौति कोपि सुकृतो मुदितेन हृदा
रुचिरपदावलीघटितनर्दटकेन कविः॥

## (२) पृथ्वी (८, ६)

**लक्षण**——जसौ जसयला वसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरुः ।
**गण**——ज, स, ज, स, य, ल, ग ।

दुरन्तदनजेश्वरप्रकरदुःस्थपृथ्वीभरं
जहार निजलोलया व्रजकुलेऽवतोर्याशु यः ।
स एष जगतां गतिर्दुरितभारमस्मादृशां
हरिष्यति हरिः स्तुतिस्मरणचाटुभिस्तोषितः ।।

## (३) मन्दाक्रान्ता (४, ६, ७)

**लक्षण**——मन्दाक्रान्ताम्बुधिरसनगैर्मो भनौ तौ गयुग्मम् ।
**गण**——म, भ, न, त, त, ग, ग ।

प्रेमालापैः प्रियवितरणैः प्रीणितालिङ्गनाद्यै-
र्मन्दाक्रान्ता तदनु नियतं वश्यतामेति बाला ।
एवं शिक्षावचनसुधया राधिकायाः सखीनां
प्रीतः पायात्स्मितसुवदनो देवकीनन्दनो नः ।।

## (४) वंशपत्रपतितम् (१०, ७)

**लक्षण**——दिङ्मुनिवंशपत्रपतितं भरनभनलगैः ।। **गण**—भ, र, न, भ, न, ल, ग।

सम्प्रति लब्धजन्म शनकैः कथमपि लघुनि
क्षीणपयस्युपेयुषि भिदां जलधरपटले ।
खण्डितविग्रहं बलभिदो धनुरिह विविधाः
पूरयितुं भवन्ति विभवः शिखरमणिरुचः ।।

## (५) शिखरिणी (६, ११)

**लक्षण**——रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी ।

**गण**—य, म, न, स, भ, ल, ग ।

करादस्य भ्रष्टे ननु शिखरिणी दृश्यति शिशो-
र्विलीनाः स्मः सत्यं नियतमवधेयं तदखिलैः ।
इति त्रस्यद्गोपानुचितनिभृतालापजनितं
स्मितं बिभ्रद्देवो जगदवतु गोवर्धनधरः ।।

## (६) हरिणी (६, ४, ७)

**लक्षण**——नसमरसला गः षड्वेदैर्हयैर्हरिणी मता ।
**गण**——न, स, म, र, स, ल, ग ।

व्यधित स विधिर्नेत्रं नीत्वा ध्रुवं हरिणीगणाद्
व्रजमृगदृशां संदोहस्योल्लसन्नयनश्रियम् ।
यदयमनिशं दूर्वाश्यामे मुरारिकलेवरे
व्यकिरदधिकं बद्धाकांक्षे विलोलविलोचनम् ।।

## धृतिः

[ एक पाद में १८ वर्णों वाले छन्द ]

### (१) चित्रलेखा (४, ७, ७)

**लक्षण**––मन्दाक्रान्ता नपरलघुयुता कीर्तिता चित्रलेखा ।
**गण**––म, भ, न, य, य, य ।

शङ्केऽमुष्मिञ् जगति मृगदृशां साररूपं यदासी-
दाकृष्येदं व्रजयुवतिसभा वेधसा सा व्यधायि ।
नैतादृक्चेत्कथमुदधिसुतामन्तरेणाच्युतस्य
प्रीतं तस्यां नयनयुगमभूच्चित्रलेखाद्भुतायाम् ॥

### (२) नन्दनम् (११, ७)

**लक्षण**––नजभजरैस्तु रेफसहितैः शिवैर्हयैर्नन्दनम् । **गण**–न, ज, भ, ज, र, र ।

तरणिसुतातरङ्गपवनैः सलीलमान्दोलितं
मधुरिपुपादपङ्कजरजःसुपूतपृथ्वीतलम् ।
मुरहरचित्रचेष्टितकलाकलापसंस्मारकं
क्षितितलनन्दनं व्रज सखे सुखाय वृन्दावनम् ॥

### (३) नाराचम् (८, ५, ५)

**लक्षण**––इह ननरचतुष्कसृष्टं तु नाराचमाचक्षते । **गण**––न, न, र, र, र, र ।

दिनकरतनयातटीकानने चारु संचारिणी
श्रवणनिकटकृष्टमेणेक्षणा कृष्ण राधा त्वयि ।
ननु विकिरति नेत्रनाराचमेषातिहृच्छेदनं
तदिह मदनविभ्रमोद्भ्रान्तचित्तां विधत्स्व द्रुतम् ॥

## अतिधृतिः

[ एक पाद में १९ वर्णों वाले छन्द ]

### (१) मेघविस्फूर्जिता ( ६, ६, ७)

**लक्षण**––रसर्त्वश्वैर्य्मौ न्सौ ररगुरुयुतो मेघविस्फूर्जिता स्यात् ।
**गण**––य, म, न, स, र, र, ग ।

कदम्बामोदाढ्या विपिनपवनाः केकिनः कान्तकेकाः
विनिद्राः कन्दल्यो दिशि दिशि मुदा दर्दुरा दृप्तनादाः ।
निशानृत्यद्विद्युद्विलसितलसन्मेघविस्फूर्जिता चेत्
प्रियः स्वाधीनोऽसौ दनुजदलनो राज्यमस्मात्किमन्यत् ।

### (२) शार्दूलविक्रीडितम् (१२, ७)

**लक्षण**––सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम् ।
**गण**––म, स, ज, स, त, त, ग ।

गोविन्दं प्रणमोत्तमाङ्ग रसने तं घोषयाहर्निशं
पाणो पूजयतं मनः स्मर पदे तस्यालयं गच्छतम् ।
एवं चेत्कुरुताखिलं मम हितं शीर्षादियस्तद्ध्रुवं
न प्रेक्षे भवतां कृते भवमहाशार्दूलविक्रीडितम् ॥

(३) सुमधुरा (७, ६, ६)

**लक्षण**—म्रौ भ्नौ मो नो गुरुश्चेद् हयऋतुरसैरुक्ता सुमधुरा ।
**गण**—म, र, भ, न, म, न, ग ।

वेदार्थान्प्राकृतस्त्वं वदसि न च ते जिह्वा निपतिता
मध्याह्ने वीक्षसेऽर्कं न तव सहसा दृष्टिर्विचलिता ।
दीप्ताग्नौ पाणिमन्तः क्षिपसि स च ते दग्धो भवति नो
चारित्र्याच्चारुदत्तं चलयसि न ते देहं हरति भूः ॥

## कृतिः

[ एक पाद में २० वर्णों वाले छन्द ]

(१) गीतिका (५, ७, ८)

**लक्षण**—सजजा भरौ सलगा यदा कथिता तदा खलु गीतिका ।
**गण**—स, ज, ज, भ, र, स, ल, ग ।

करतालचंचलकङ्कणस्वनमिश्रणेन मनोरमा
रमणीयवेणुनिनादरङ्गिमसङ्गमेन सुखावहा ।
बहुलानुरागनिवासरासमुद्भवा तव रागिणं
विदधौ हरिं खलु बल्लवीजनचारुचामरगीतिका ॥

(२) सुवदना (७, ७, ६)

**लक्षण**—ज्ञया सप्ताश्वषड्भिर्मरभनययुता भ्लौ गः सुवदना ।
**गण**—म, र भ, न, य, भ, ल, ग ।

प्रत्याहृत्येन्द्रियाणि त्वदितरविषयान्नासाग्रनयना
त्वां ध्यायन्ती निकुञ्जे परकरपुरुषं हर्षोत्थपुलका ।
आनन्दाश्रुप्लुताक्षी वसति सुवदना योगैकरसिका
कामार्तिं त्यक्तुकामा ननु नरकरिपो राधा मम सखी ॥

## प्रकृतिः

[ एक पाद में २१ वर्णों वाले छन्द ]

(१) सरसी (अथवा पञ्चकावली, धृतश्रीः )

**लक्षण**—नजभजजा जरौ यदि तदा गदिता सरसी कवीश्वरैः ।
**गण**—न, ज, भ, ज, ज, ज, र ।

चिकुरकलापशैवलकृतप्रमदासु लसद्रसोर्मिषु
स्फुटवदनाम्बुजासु विलसद्भुजबालमृणालवल्लिषु ।
कुचयुगचक्रवाकमिथुनानुगतासु कलाकुतूहली
व्यरचयदच्युतो व्रजमृगीनयनासरसीषु विभ्रमम् ॥

### (२) स्रग्धरा (७, ७, ७)

**लक्षण**—म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम् ।
**गण**—म, र, भ, न, य, य, य ।

व्याकोषेन्दीवराभा कनककषलसत्पीतवासाः सुहासा
बर्हैरुच्चन्द्रकान्तैर्वलयितचिकुराचारुकर्णावतंसा ।
अंसव्यासक्तवंशीध्वनिसुखितजगद्बल्लवीभिर्लसन्ती
मूर्तिर्गोपस्य विष्णोरवतु जगति नः स्रग्धरा हारिहारा ॥

## आकृति

[ एक पाद में २२ वर्णों वाले छन्द ]

### (१) मदिरा

**लक्षण**—सप्तभकारयुतैकगुरुर्गदितेयमुदारतरा मदिरा ।
**गण**—भ, भ, भ, भ, भ, भ, भ, ग ।

माधवमासि पिकस्वरकेसरपुष्पलसन्मदिरामुदितै-
र्भृङ्गकुलैरुपगीतवने वनमालिनमालि कलानिलयम् ।
कुञ्जगृहोदरपल्लवकल्पिततल्पमनल्पमनोजरसं
तं भज माधविकामृदुनर्तनयामुनवातकृतोपगमा ॥

### (२) हंसी (८, १४ )

**लक्षण**—मौ गौ नाश्चत्वारो गो गो वसुभुवनयतिरिति भवति हंसी ।
**गण**—म, म, त, न, न, न, स, ग ।

सार्धं कान्तेनैकान्तेऽसौ विकचकमलमधु सुरभि पिबन्ती
कामक्रीडाकूतस्फीतप्रमदसरसतरमलघु रसन्ती ।
कालिन्दीये पद्मारण्ये पवनपतनपरितरलपरागे
कंसाराते पश्य स्वेच्छं सरभसगतिरिह विलसति हंसी ।

## विकृति

[ एक पाद में २३ वर्णों वाले छन्द ]

### (१) अद्रितनया ( अथवा अश्वललित )

**लक्षण**—नजभजभा जभौ, लघुगुरू बुधैस्तु गदितेयमद्रितनया ।
**गण**—न, ज, भ, ज, भ, ज, भ, ल, ग ।

खरतरशौर्यपावकशिखापतङ्गनिभभग्नदृप्तदनुजो
जलधिसुताविलासवसतिः सतां गतिरशेषमान्यमहिमा ॥
भुवनहितावतारचतुरश्चराचरधरोऽवतीर्ण इह हि
क्षितिवलयेऽस्ति कंस शमनस्तवति तमवोचदद्रितनया ॥

एक पाद में २४, २५, २६ वर्णो वाले छन्द बहुत कम प्रयुक्त होते हैं, अतः छोड़ दिए गए हैं ।

**दण्डक**

एक पाद में २७ या इससे अधिक वर्णों वाले छन्दों का सामान्य नाम दण्डक है। इसके बहुत से भेदों का उल्लेख है। ( यहाँ तक कि एक पाद में ९९९ वर्ण तक हो सकते है। ) जैसे—चण्डवृष्टिप्रयात, प्रचितक, मत्तमातंगलीलाकर, सिंहविक्रान्त, कुसुमस्तबक, अनंगशेखर, संग्राम, आदि। मालतीमाधव (५–२३) अन्त में उल्लिखित भेदों में से एक का उदाहरण है। इसमें प्रत्येक पाद में ५४ वर्ण हैं।

# भाग २

# अर्धसमवृत्तानि

[ आधे अंश में समानता वाले छन्द ]

## (१) उपचित्रम्

**लक्षण**—विषमे यदि सौ सलगा दले भौ युजि भाद्गुरुकावुपचित्रम्।
**गण**—स, स, स, ल, ग, (पाद १, ३) भ, भ, भ, ग, ग। (पाद २, ४)

मुरवैरिवपुस्तनुतां मुदं हेमनिभांशुकचन्दनलिप्तम्।
गगनं चपलामिलितं यथा शारदनीरधरैरुपचित्रम्॥

## (२) अपरवक्त्रम्

( इसको ही वैतालीयम् भी कहते हैं )

**लक्षण**—अयुजि ननरला गुरुः समे तदपरवक्त्रमिदं नजौ जरौ।
**गण**—न, न, र, ल, ग, ( विषम पाद) न, ज, ज, र। (सम पाद)

स्फुटसुमधुरवेणुगीतिभिस्तमपरवक्त्रमवेत्य माधवम्।
मृगयुवतिगणैः समं स्थिता व्रजवनिता धृतचित्तविभ्रमा॥

## (३) पुष्पिताग्रा

( इसको ही औपच्छन्दसिक भी कहते हैं )

**लक्षण**—अयुजि नयुगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा।
**गण**—न, न, र, य, ( विषम पाद), न, ज, ज, र, ग। (सम पाद)

अथ मदनवधूरुपप्लवान्तं व्यसनकृशा परिपालयांबभूव।
शशिन इव दिवातनस्य लेखा किरणपरिक्षयधूसरा प्रदोषम्॥

## (४) मालभारिणी

**लक्षण**—विषमे ससजे नगे नगे नाविषमस्भ्र्येण तु मालभारिणीयम्।
**गण**—स, स, ज, ग, ग, (विषम पाद), स, भ, र, य। (सम पाद)

मुहुरङ्गुलिसंवृताधरोष्ठं प्रतिषेधाक्षरविक्लवाभिरामम्।
मुखमंसविवर्ति पक्ष्मलाक्ष्याः कथमप्युन्नमितं न चुम्बितं तु॥

( शाकुन्तल ३–२३)

### (५) वियोगिनी

( इसको ही वैतालीय या सुन्दरी भी कहते हैं)

**लक्षण**—विषमे ससजा गुरुः समे सभरा लोऽथ गुर्वियोगिनी।

**गण**—स, स, ज, ग, (विषम पाद), स, भ, र, ल, ग। (सम पाद)

सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्।
वृणुते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव संपदः॥

### (६) वेगवती

**लक्षण**—सयुगात्सगुरू विषमे चेद् भाविह वेगवती युजि भाद्गौ।

**गण**—स, स, स, ग, (विषम पाद ), भ, भ, भ, ग, ग। (सम पाद)

स्मरवेगवती व्रजरामा केशववंशरवैरतिमुग्धा।
रभसान्न गुरून् गणयन्ती केलिनिकुंजगृहाय जगाम॥

### (७) हरिणप्लुता

**लक्षण**—सयुगात्सलघू विषमे गुरुर्युजि नभौ भरकौ हरिणप्लुता।

**गण**—स, स, स, ल, ग, (विषम पाद), न, भ, भ, र। (सम पाद)

स्फुटफेनचया हरिणप्लुता बलिमनोज्ञतटा तरणेः सुता।
कलहंसकुलारवशालिनी विहरतो हरति स्म हरेर्मनः॥

## भाग ३

### विषमवृत्तानि ( विषम वर्णों वाले छन्द)

इस वर्ग का सबसे प्रचलित छन्द उद्गता है।

**लक्षण**—प्रथमे सजौ यदि सलौ च नसजगुरुकाण्यनन्तरम्।
यद्यथ भनजलगाः स्युरथो सजसा जगौ च भवतीयमुद्गता॥

**गण**—स, ज, स ल, ( पाद १), न, स, ज, ग। (पाद २)। भ, न, ज, ल, ग, (पाद ३) ।स, ज, स, ज, ग। (पाद ४)

अथ वासवस्य वचनेन रुचिरवदनस्त्रिलोचनम्।
क्लान्तिरहितमभिराधयितुं विधिवत्तपांसि विदधे धनंजयः॥
( किराता० १२–१)

उद्गता के एक और भेद का उल्लेख है, जिसमें तृतीय पाद में भ, न, ज, ल, ग के स्थान पर भ, न, भ, ग होते हैं।

इसके अतिरिक्त अन्य छन्दों का सामान्य नाम 'गाथा' है, जिनके प्रत्येक चरण (पाद) में वर्णों की संख्या पृथक्-पृथक् होती है। जिन छन्दों में पादों की संख्या से ४ कम या अधिक होती है, उनको भी गाथा ही कहा जाता है।

### जाति (मात्रिक छन्द)

इन छन्दों में मात्राएँ गिनी जाती हैं।

१४. मात्रिक छन्दों में सबसे प्रचलित छन्द आर्या है। इसके ९ भेद हैं :—

पथ्या विपुला चपला मुखचपला जघनचपला च।
गीत्युपगीत्युद्गीतय आर्यागीतिश्च नवधार्या॥

इनमें से अन्तिम चार का ही अधिक प्रयोग होता है। उनपर ही यहाँ विचार किया गया है।

**आर्या**

**लक्षण**—यस्याः पादे प्रथमे द्वादश मात्रास्तथा तृतीयेऽपि ।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश सार्या ।।

इसके प्रथम और तृतीय पाद में १२ मात्राएँ होती हैं, द्वितीय में १८ और चतुर्थ में १५।

येनामन्दमरन्दे दलदरविन्दे दिनान्यनायिषत ।
कुटजे खलु तेनेहा तेनेहा मधुकरेण कथम् ।।

**गीतिः**

**लक्षण**—आर्याप्रथमार्धसमं यस्याः परार्धमीरिता गीतिः ।

इसके तृतीय और चतुर्थ पाद क्रमशः आर्या के प्रथम और द्वितीय पाद के सदृश होते हैं।

पाटीर तव पटीयान्कः परिपाटीमिमामुरीकर्तुम् ।
यत्पिषतामपि नृणां पिष्टोऽपि तनोषि परिमलैः पुष्टिम् ।।

**उपगीतिः**

**लक्षण**—आर्यापरार्धतुल्ये दलद्वये प्राहुरुपगीतिम् ।

इसके प्रथम और तृतीय पाद आर्या के तुल्य होते हैं तथा द्वितीय और चतुर्थ पाद में १५, १५ मात्राएँ होती हैं।

नवगोपसुन्दरीणां लासोल्लासे मुरारातिम् ।
अस्मारयदुपगीतिः स्वर्गकुरङ्गीदृशां गीतेः ।।

**उद्गीतिः**

**लक्षण**—आर्याशकलद्वितये विपरीते पुनरिहोद्गीतिः ।

इसके प्रथम और तृतीय पाद में १२, १२ मात्राएँ होती हैं तथा द्वितीय में १५ और चतुर्थ में १८ मात्राएँ।

नारायणस्य सततमुद्गीतिः संस्मृतिर्भक्त्या ।
अर्चायामासक्तिर्दुस्तरसंसारसागरे तरणिः ।।

**आर्यागीतिः**

**लक्षण**—आर्या प्राग्दलमन्तेऽधिकगुरु तादृक्परार्धमार्यागीतिः ।

इसके प्रथम और तृतीय पाद में १२ मात्राएँ होती हैं तथा द्वितीय और चतुर्थ पाद में २० मात्राएँ।

चारुसमीरणविपिने हरिणकलङ्ककिरणावली सविलासा ।
आबद्धराममोहा वेलामूले विभावरी परिहीना ।।

**(१) वैतालीयम्**

**लक्षण**—षड्विषमेऽष्टौ समे कलास्ताश्च समे स्युर्निरन्तराः ।
न समऽत्र पराश्रिता कला वैतालीयेऽन्ते रलौ गुरुः ।।

इस छन्द के प्रथम और तृतीय पाद में १४, १४ मात्राएँ होती हैं तथा द्वितीय और चतुर्थ पाद में १६, १६ मात्राएँ। इनमें से अन्तिम ८ मात्राएँ इस प्रकार होनी चाहिएँ—एक रगण (ऽ।ऽ) और उसके बाद लघु, गुरु (।ऽ)। द्वितीय और चतुर्थ चरण में केवल लघु (ह्रस्व) या केवल गुरु (दीर्घ) मात्राएँ ही नहीं होनी चाहिएँ। प्रत्येक चरण में सम मात्राएँ (अर्थात् द्वितीय, चतुर्थ और अष्टम मात्रा) विषम मात्राओं (अर्थात् तृतीय, पंचम और नवम मात्रा) पर आश्रित न हों।

कुशलं खलु तुभ्यमेव तद् वचनं कृष्ण यदभ्यधामहम्।
उपदेशपराः परेष्वपि स्वविनाशाभिमुखेषु साधवः ॥

## (२) औपच्छन्दसिकम्

**लक्षण**—पर्यन्ते र्यौ तथैव शेषमौपच्छन्दसिकं सुधीभिरुक्तम्।

यह छन्द प्रायः वैतालीय ही है, केवल प्रत्येक पाद के अन्त में रगण और यगण रहेंगे। इसका अभिप्राय यह है कि वतालीय छन्द के प्रत्येक पाद के अन्त में एक गुरु वर्ण और जुड़ जाएगा।

आतन्वानं सुरारिकान्तास्वौपच्छन्दसिकं हृदो विनोदम्।
कंसं यो निर्जघान देवो वन्दे तं जगतां स्थितिं दधानम् ॥

---

# परिशिष्ट—२

## धातुकोश

### संक्षिप्त-रूप आदि

लट् (Present), लोट् (Imperative), लङ् (Imperfcet), विधिलिङ (वि० लिङ, Potential), लिट् (Perfct), लुट् (Periphrastic, I Future), लृट् (Future Simple, II Future), लृङ (Conditional), लुङ (Aorist), आशीर्लिङ (आ० लिङ, Benedictive), णिच् (Causal), सन् (Desiderative), यङन्त या यङलुगन्त (Frequentative), परस्मैपद (प०, पर०), आत्मनेपद (आ०, आत्मने०), उभयपद (उ०, उभय०), कर्मवाच्य (Passive), क्त (त, Past Passive Participle), तुम् (Infinitive), क्त्वा, ल्यप् (Gerund), १, २, ३ आदि संख्याएँ धातु के बाद भ्वादि०, अदादि० आदि गण के सूचक हैं, शतृ-शानच् (Present Participle)।

अ

**अंश्**——१० उ०, विभाजने (बाँटना), लट्—अंशयति-ते, (अंशापयति-ते, भी होता है), लिट्—अंशायांचकार-चक्रे-आस-बभूव, लुट्—अंशयिता, लृङ—आंशयिष्यत्, लुङ—आंशिशत्-त, आ० लिङ—अंश्यात्, अंशयिषीष्ट ।

**अंस्**——१० उ०, धातुरूप अंश् पूर्वोक्त के तुल्य रूप चलेंगे । केवल अन्तर यह है कि श् के स्थान पर स् रहेगा ।

**अंह्**——१ आ०, गतौ (जाना), लट्—अंहते, लिट्—आनंहे, लुट्—अंहिता लुङ——आंहिष्ट, आ० लिङ—अंहिषीष्ट । णिच्-लट्—अंहयति-ते, लुङ—आंजिहत्—त ।

**अंह्**——१० उ०, भासने (चमकना), लट्—अंहयति-ते, लिट्—अंहयांचकार-चक्रे इत्यादि, लुट्—अंहयिता, लुङ—आंजिहत्-त, आ० लिङ—अंह्यात्, अंहयिषीष्ट । तुम्—अंहितुम्, क्त—अंहिता ।

**अक्**——१ प०, कुटिलायां गतौ (कुटिल गति से चलना), लट्——अकति, लिट्—आक, लुट्—अकिता, लृट्—अकिष्यति, लुङ—आकीत् । णिच्-लट्—अकयति-ते । क्त—अकित ।

**अक्ष्**——१, ५ प०, (पहुँचना, व्याप्त होना, एकत्र करना), लट्—अक्षति-अक्ष्णोति, अक्षसि-अक्ष्णोषि, अक्षामि-अक्ष्णोमि, लङ—आक्षत्-आक्ष्णोत्, आक्षः-आक्ष्णोः, आक्षम्-आक्ष्णवम्, लोट्—अक्षतु-अक्ष्णोतु, अक्ष-अक्ष्णुहि, अक्षाणि-अक्ष्णवानि, वि० लिङ—अक्षेत्, अक्ष्णुयात्, अक्षेः-अक्ष्णुयाः, अक्षेयम्-अक्ष्णुयाम्, लिट्—आनक्ष, लुट्—अक्षिता-अष्टा, लृट—अक्षिष्यति, अक्ष्यति, आ० लिङ—

अक्ष्यात्, लृङ–आक्षिष्यत्-आक्ष्यत्, लुङ–आक्षीत्, प्र० पु० द्विव०–आक्षिष्टाम्-आष्टाम्, प्र० पु० बहु०–आक्षिषुः-आक्षुः । सन्–अचिक्षिषति-अचिक्षति, कर्म०, लट्–अक्ष्यते, लुङ–आक्षि, णिच्-लट्–अक्षयति-ते, लुङ–आचिक्षत्-त । क्त–अष्ट, क्त्वा–अक्षित्वा-अष्ट्वा, तुम्–अक्षितुम्-अष्टुम्, क्वसु–आनक्ष्वस् ।

**अग्**––१ प०, कुटिलायां गतौ, (कुटिल गति से चलना), लट्–अगति, लिट्–आग, लुट्–अगिता, लुङ–आगीत् ।

**अघ्**––१० उ०, पापकरणे (पाप करना), लट्–अघयति-ते, लिट्–अघयांचकार-चक्रे, लुट्–अघयिता, लुङ–आजिघत्-त, आ० लिङ–अघ्यात्-अघयिषीष्ट ।

**अङ्क्**––१ आ०, लक्षणे (चिह्न करना), लट्–अङ्कते, लिट्–आनङ्के, लुट्–अङ्किता, लृट्–अङ्किष्यते, लृङ–आङ्किष्यत्, आ० लिङ–अङ्किषीष्ट, लङ–आङ्किष्ट । सन्–अञ्चिकिषते, कर्म०–अङ्क्यते ।

**अङ्क्**––१० उ०, पदे लक्षणे च, (गिनती करना, चिह्न लगाना), लट्–अङ्कयति-ते, लिट्–अङ्कयांबभूव-आस-अङ्कयांचकार-चक्रे इत्यादि, लुट्–अङ्कयिता, लृट्–अङ्कयिष्यति-ते, लृङ–आङ्कयिष्यत्-त, लुङ–आञ्चकत्-त, आ० लिङ–अङ्क्यात्-अङ्कयिषीष्ट । सन्–लट्–अञ्चिकयिषति-ते, कर्म०–अङ्क्यते (अङ्काप्यते भी) ।

**अङ्ग्**––१ प०, जाना, लट्–अंगति, लिट्–आनङ्ग, लुट्–अंगिता, लुङ––आङ्गीत् । सन्–अञ्जिगिषति, तुम्–अंगितुम् ।

**अङ्ग्**––१० उ०, अङ्क् धातु के तुल्य ।

**अंघ्**––१ आ०, गत्याक्षेपे (जाना, दोष लगाना), लट्––अंघते, लिट्–आनंघे, लुट्––अंघिता, लुङ–आंघिष्ट, आ० लिङ–अंघिषीष्ट । सन्–अञ्जिघिषति ।

**अच्**––१ उ०, गतौ अविस्पष्टकथने च (जाना, अस्पष्ट कहना), लट्–अचति-ते, लिट्–आच-आचे, लुट्–अचिता, लुङ–आचीत्-आचिष्ट । सन्–अचिचिषति-ते, क्त–अक्त, क्त्वा–अचित्वा, अक्त्वा ।

**अज्**––१ प०, गतिक्षेपणयोः (जाना, दौड़ना, निन्दा करना), लट्–अजति, लिट्–विवाय, उ० पु० द्वि०–विव्यिव, आजिव, बहु०–विव्यिम, आजिम, म० पु० एक०–विवयिथ-विवेथ, आजिथ, लुट्–वेता या अजिता, लृट्–वेष्यति, अजिष्यति, लृङ–अवेष्यत्-आजिष्यत्, लुङ–अवैषीत्-आजीत्, आ० लिङ–वीयात् । सन्–विवीषति-अजिजिषति, क्त–वीत या अजित, क्त्वा–वीत्वा, अजित्वा, संवीय । णिच्, लट्–वाययति-ते, लुङ–अवीवयत्, कर्म० लट्–वीयते, लिट्०–विव्ये, लुट्–वायिता, वेता, अजिता, लृट्–वायिष्यते-वेष्यते-अजिष्यते, आ० लिङ–वायिषीष्ट-वेषीष्ट-अजिषीष्ट, लृङ–

अवायिष्यत-अवेष्यत-आजिष्यत, लुङ--प्र० पु० एक०-अवायि, द्विव० अवायिषाताम्-अवेषाताम्-आजिषाताम्, म० पु० बहु०-अवायिध्वम्-ढ्वम्-अवेढ्वम्-आजिढ्वम् ।

**अञ्च्**--१ प०, गतिपूजनयोः[1] (जाना, पूजा करना), लट्-अञ्चति, लिट्-आनञ्च, लुट्-अञ्चिता, लृट्-अञ्चिष्यति, आ० लिङ-अच्यात्-अञ्च्यात्, लुङ-आञ्चीत्, लृङ-आञ्चिष्यत् । णिच्-लट्-अञ्चयति-ते, सन्-अञ्चिचिषति, क्त-अञ्चित-अक्त, सम्+अञ्च्+क्त=समक्त, क्त्वा-अञ्चित्वा या अक्त्वा ।

**अञ्च्**--१ उ०, गतौ याचने च, (जाना, माँगना), लट्-अञ्चति-ते, लिट्-आनञ्च-ञ्चे, लृट्-अञ्चिष्यति-ते, लुङ-आञ्चीत्-आंचिष्ट, कर्म०-अञ्च्यते, क्त-अक्त, क्त्वा-अञ्चित्वा, तुम्-अञ्चितुम् ।

**अञ्च्**--१० उ०, विशेषणे (विशेषता बताना), लट्-अञ्चयति-ते, लिट्-अञ्चयांचकार-चक्रे, लुट्-अञ्चयिता, लुङ-आञ्चकत्-त, आ० लि०-अञ्च्यात्-अञ्चयिषीष्ट ।

**अञ्ज्**--७ प०, व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु (स्वच्छ करना, लीपना, सजाना, जाना ) लट्-अनक्ति, लङ-आनक्-ग्, लोट्-अनक्तु, (म० पु० एक० अङ्ग्धि), वि० लिङ-अञ्ज्यात्, लिट्-आनञ्ज, लुट्-अञ्जिता-अङ्क्ता, लृट्-अञ्जिष्यति-अङ्क्ष्यति, लृङ-आञ्जिष्यत्-आङ्क्ष्यत्, लुङ-आञ्जीत्, आ० लिङ-अज्यात् । सन्-अञ्जिजिषति, कर्म०-लट्-अज्यते, लुङ-आञ्जि, णिच्-लट्-अञ्जयति-अञ्जयते, लुङ-आञ्जिजत्-त, क्त-अक्त, तव्य-अञ्जितव्य[1], अङ्क्तव्य-व्यङ्ग्य, क्त्वा-अञ्जित्वा-अक्त्वा, ल्यप्-वि+व्यज्य, तुम्-अञ्जितुम्-अङ्क्तुम् ।

**अट्**--१ प०, गतौ (घूमना, फिरना), लट्-अटति, लिट्-आट, लुट्-अटिता, लृट्-अटिष्यति, लुङ-आटीत्, आ० लिङ-अट्यात् । सन्-अटिटिषति, णिच्-लट्-आटयति-ते, लुङ-आटिटत्, यङ-अटाट्यते ।

**अट्ट्**--१ आ०, अतिक्रमणहिंसयोः (अतिक्रमण करना, हिंसा करना), लट्-अट्टते, लिट्-आनट्टे, लुट्-अट्टिता, लृट्-अट्टिष्यते, लुङ-आट्टिष्ट, सन्-अटिटिषते-अट्टिषते, णिच्-लट्-अट्टयति-ते, लुङ-आटिट्टत्-त, आट्टिटत्-त ।

**अट्ट्**--१० उ०, अनादरे (अनादर करना), लुङ-आटिट्टत्-आट्टिटत्, आ० लिङ--अट्टयिषीष्ट । तुम्-अट्टयितुम् ।

**अण्**--१ प०, शब्दे (शब्द करना), लट्-अणति, लिट्-आण, लुट्-अणिता, लुङ-आणीत् । सन्-अणिणिषति । णिच्-लट्-आणयति-ते, लुङ-आणिणत्-त ।

---

१. नाञ्चेः पूजायाम् (६-४-३०) । पूजा अर्थ में अञ्च् धातु के न् का लोप नहीं होता है, बाद में ङित् प्रत्यय होने पर ।

**अण्**—४ आ०, प्राणने (साँस लेना, जीवित रहना), लट्–अण्यते, लिट्–आणे, लुट्–अणिता, लृट्–अणिष्यते, लुङ–आणिष्ट, आ० लिङ–अणिषीष्ट, सन्–अणिणिषते, णिच्-लट्–अण्यते, लुङ–आणि ।

**अत्**—१ प०, सातत्यगमने (निरन्तर चलना) लट्–अतति, लिट्–आत, लुट्– अतिता, लृट्–अतिष्यति, लृङ–आतिष्यत्, आ० लिङ–अत्यात्, लुङ–आतीत् । सन्–अतितिषति, कर्म० लट्–अत्यते, लुङ–आति । णिच् लट्–आतयति-ते, लुङ–आतितत्-त, क्त–अतित ।

**अद्**—२ प०, भक्षणे (खाना), लट्–अत्ति, लङ–प्र० पु० एक० आदत्, म० पु० एक० आदः, लिट्–आद, जघास, लुट्–अत्ता, लृट्–अत्स्यति, लुङ–अघसत्, सन्–जिघत्सति, लृङ–आत्स्यत्, आ० लिङ–अद्यात् । णिच् लट्–आदयते (आदयति, अकर्त्रभिप्राये), लुङ–आदिदत्-त । कर्म० लट्–अद्यते, लिट्–आदे-जक्षे, क्त-जग्ध-(अन्न), क्त्वा-जग्ध्वा प्रजग्ध्य, तुम्-अत्तुम् ।

**अन्**—२ प०, प्राणने (साँस लेना, जीवित रहना), लट्–अनिति, लङ–आनीः-नः (म० एक०), आनीत्,–आनत् (प्र० एक०), लिट्–आन, लुट्–अनिता, लृङ–आनिष्यत्, लुङ–आनीत्, सन्–अनिनिषति । णिच् लट्–आनयति-ते, लुङ–आनिनत्-त । कर्म० लट्–अन्यते, लुङ–आनि, क्त्वा–अनित्वा, प्र+अन् =प्राण्य ।

**अन्**—४ आ०, (जीवित रहना), लट्–अन्यते, लिट्–आने, लुट्–अनिता । यह अण् धातु का ही अन् रूप है ।

**अन्त्**—१ प०, बन्धने (बाँधना) लट्–अन्तति, लृट्–अन्तिष्यति, लुङ–आन्तीत्, आ० लिङ–अन्त्यात् । णिच्–अन्तयति, लुङ–आन्तीत्-त, सन्–अन्तितिषति ।

**अन्ध्**—१० उ०, दृष्ट्युपघाते, दृष्ट्युपसंहारे (अन्धा होना, अपनी आँखें बन्द करना), लट्–अन्धयति-ते, लृङ–आन्धयिष्यत्, लुङ–आन्दधत्-त, आ० लिङ–अन्ध्यात्, अन्धयिषीष्ट । सन्–अन्दिधयिषति-ते ।

**अभ्र्**—१ प०, गतौ (जाना, घूमना), लट्–अभ्रति, लिट्–आनभ्र, लुङ–आभ्रीत् ।

**अम्**—१ प०, गतिशब्दसंभक्तिषु (जाना, शब्द करना, खाना), लट्–अमति, लिट्–आम, लुट्–अमिता, लृट्–अमिष्यति, लुङ–आमीत् । णिच्-लट्–आमयति-ते, लुङ–आमिमत्-त, सन्–अमिमिषति, कर्म० लुङ–आमि, क्त–आन्त ।

**अम्**—१० उ०, रोगे (रोग उत्पन्न करना), लट्–आमयति-ते, लुङ–आमिमत्-त, आ० लिङ–अम्यात्-अमयिषीष्ट ।

**अय्**—१ आ०, गतौ (जाना), लट्–अयते, परा के साथ पलायते, लिट्–अयांचक्र, लुट्–अयिता, लुङ–आयिष्ट, आ० लिङ–अयिषीष्ट, सन्–

अयियिषते । कर्म० लट्–अय्यते, लुङ्–आयि । णिच्-लट्–आययति-ते, लुङ्–आयियत्-त, क्त्वा–अयित्वा, परा के साथ–पलाय्य ।

**अर्क्**––१० उ०, तपने स्तवने च (तपाना, स्तुति करना), लट्–अर्कयति-ते, लिट्–अर्कयांचकार-चक्रे-आस-वभूव, लुट्–अर्कयिता, लुङ्–आर्चिकत्-त, आ० लिङ्–अर्क्यात्-अर्कयिषीष्ट, क्त–अर्कित ।

**अर्घ्**––१ प०, मूल्ये (मूल्य होना, योग्य होना), लट्–अर्घति, लिट्–आनर्घ, लुट्–अर्घिता, लुङ्–आर्घीत्, सन्–अर्जिघिषति । णिच्-लट्–अर्घयति-ते, लुङ्–आर्जिघत्-त ।

**अर्च्**––१ प०, पूजायाम् (पूजा करना) लट्–अर्चति, लिट्–आनर्च, लुट्–अर्चिता, लृट्–अर्चिष्यति, लुङ्–आर्चीत्, आ० लिङ्–अर्च्यात् । सन्–अर्चिचिषति, णिच्-लट्–अर्चयति-ते, लुङ्–आर्चिचत्-त, कर्म० लट्–अर्च्यते, लुङ्–आर्चि, क्त्वा-अर्चित्वा ।

**अर्च्**––१० उ०, (पूजा करना), लट्–अर्चयति-ते, लिट्–अर्चयाम्बभूव-आस-चकार-चक्रे, लुट्–अर्चयिता, लृट्–अर्चयिष्यति-ते, आ० लिङ्–अर्च्यात्-अर्चयिषीष्ट, लृङ्–आर्चयिष्यत्-त, लुङ्–आर्चिचत्-त, सन्–अर्चिचयिषति-ते, कर्म० लट्–अर्च्यते, लुङ्–आर्चि, (आर्चयिषाताम्-आर्चिषाताम् प्र० पु० द्वि०)

**अर्ज्**––१ प०, अर्जने (प्राप्त करना, लेना), लट्–अर्जति, लिट्–आनर्ज, लुट्–अर्जिता, लृट्–अर्जिष्यति, लुङ्–आर्जीत्, आ० लिङ्–अर्ज्यात्, सन्–अर्जिजिषति, णिच् लट्–अर्जयति-ते, लुङ्–आर्जिजत्-त ।

**अर्ज्**––१० उ०, प्रतियत्ने संपादने च (प्राप्त करना), (उपर्युक्त का प्रेरणार्थक भी) लृट्–अर्जयिष्यति, सन्–अर्जिजयिषति-ते, कर्म० लुङ्–आर्जि, (आर्जयिषाताम्-आर्जिषाताम्, द्विव० ) ।

**अर्थ्**––१० आ०, उपयाच्ञायाम् (माँगना, प्रार्थना करना), लट्–अर्थयते, लिट्–अर्थयांबभूव-आस-चक्रे, लुट्–अर्थयिता, लुङ्–आर्तथत, आ० लिङ्–अर्थयिषीष्ट, सन्–अर्तिथयिषते । कर्म० लट्–अर्थ्यते-अर्थाप्यते, लुङ्–आर्थि ।

**अर्द्**––१ प०, गतौ याचने च (जाना, माँगना), लट्–अर्दति, लिट्–आनर्द, लुट्–अर्दिता, लृङ्–आर्दिष्यत्, लुङ्–आर्दीत्, आ० लिङ्–अर्द्यात्, सन्–अर्दिदिषति । णिच्-लट्–अर्दयति–ते, लुङ्–आर्दिदत्-त, कर्म० लट्–अर्द्यते, लुङ्–आर्दि, क्त–अर्दित, समर्ण (पूछा), अभ्यर्ण (समीप) ।

**अर्द्**––१० उ०, हिंसायाम् ( हिंसा करना), लुङ्–आर्दिदत्–त, आ० लिङ्–अर्द्यात्–अर्दयिषीष्ट, सन्–अर्दिदयिषति-ते । कर्म० लट्–अर्द्यते, लुङ्–आर्दि, क्त–अर्दित ।

**अर्ह्**––१ प०, पूजायां योग्यत्वे च–(पूजा करना, योग्य होना), लट्–अर्हति, लिट्–आनर्ह, लुट्–अर्हिता, लृङ्–आर्हिष्यत्, लुङ्–आर्हीत्, आ० लिङ्–अर्ह्यात्, सन्–अर्जिहिषति । कर्म लट्–अर्ह्यते, लुङ्–आर्हि । णिच के लिए देखो आगे अर्ह् १० उ० ।

**अर्ह्**—१० उ०, ( पूजा करना, योग्य होना ), लट्—अर्हयति-ते, लिट्—अर्हयांबभूव-आस-चकार-चक्रे, लुट्—अर्हयिता, लुङ—आर्जिहत्—त, आ० लिङ—अर्ह्यात्—अर्हयिषीष्ट, सन्—अर्जिहयिषति । कर्म० लट्—अर्ह्यते, लुङ—आर्हि, क्त्वा—अर्हित्वा ।

**अल्**—१ उ०, भूषणपर्याप्तिवारणेषु—( सजाना, पर्याप्त होना, रोकना ), लट्—अलति-ते, लिट्—आल—आले, लुट्—अलिता, लुङ—आलीत्—आलिष्ट । णिच्—लट्—आलयति—ते, लुङ—आलिलत्—त, सन्—अलिलिषति—ते । ( कुछ के मतानुसार यह धातु आत्मनेपदी है । )

**अव्**—१ प०, रक्षणगतिकान्तिप्रीतितृप्त्यवगमप्रवेशश्रवणस्वाम्यर्थयाचनक्रियेच्छादीप्त्यवाप्त्यालिङ्गनहिंसादानभागवृद्धिषु (रक्षा करना, बचाना, अच्छा काम करना, प्रसन्न करना, जानना तथा अन्य विभिन्न अर्थ) लट्—अवति, लिट्—आव, लुट्—अविता, लुङ—आवीत्, आ० लिङ—अव्यात् । णिच्—लट्—आवयति-ते, लुङ—आविवत्-त, क्त—अवित, कर्म० लट्—अव्यते, लुङ—आवि ।

**अश्**—५ आ०, व्याप्तौ संघाते च ( व्याप्त होना, एकत्र होना ), लट्—अश्नुते, लिट्—आनशे, लुट्—अशिता, अष्टा, लृट्—अशिष्यते—अक्ष्यते, लृङ—आशिष्यत—आक्ष्यत, लुङ—आशिष्ट-आष्ट, आ० लिङ—अक्षीष्ट-अशिषीष्ट । णिच्- लट्—आशयति—ते, लुङ—आशिशत्—त, सन्—अशिशिषते, कर्म० लट्—अश्यते, लुङ—आशि, क्त—अष्ट, क्त्वा—अष्ट्वा—अशित्वा, तुम्—अशितुम्—अष्टुम् ।

**अश्**—९ प०, भोजने ( खाना ) (प्र+अश्, पीना), लट्—अश्नाति, लोट्—म० पु० एक व० अशान, लिट्—आश, लुट्—अशिता, लुङ—आशीत्, आ० लिङ—अश्यात् । सन्—अशिशिषति, णिच् लट्—आशयति, लुङ—आशिशत्, कर्म० लट्— अश्यते, लुङ—आशि, क्त—अशित ।

**अस्**—२ प०, भुवि ( होना ), लट्—अस्ति, म० पु० एक० लोट्—एधि, लिट्—बभूव,[1] लुट्—भविता, लृट्—भविष्यति ।

**अस्**—४ प०, क्षेपणे—( फेंकना ), लट्—अस्यति, लिट्—आस, लुट्—असिता, लृङ—आसिष्यत्, लुङ—आस्थत्, आ० लिङ—अस्यात्, सन्—असिसिषति । णिच् लट्—आसयति—ते, लुङ—आसिसत्—त, कर्म० लट्—अस्यते, लुङ—आसि, क्त—अस्त, क्त्वा—असित्वा—अस्त्वा, तुम्—असितुम् ।

**आ**

**आञ्छ्**—१ प०, आयामे (लम्बा करना), लट्—आञ्छति, लिट्—आञ्छ (कुछ के मतानुसार आनाञ्छ), लुट्—आञ्छिता, लृट्—आञ्छिष्यति, लृङ—आञ्छिष्यत्, लुङ—आञ्छीत्, सन्—आञ्चिच्छिषति । णिच्—लट्—आञ्छयति—ते, **लुङ—आञ्चिचच्छत्—त** ।

---

१. अस्तेर्भूः । आर्धधातुक लकारों में अस् को भू हो जाता है ।

**आन्दोल्**—१० उ०, आन्दोलने ( गाना, क्षुब्ध करना), लुङ–आन्दूदुलत् —त, सन्–आन्दुदोलयिषति–ते ।

**आप्**—५ प०, व्याप्तौ–(व्याप्त होना, पाना), लट् प्र० पु० एक० आप्नोति, म० पु० एक० आप्नोषि, उ० पु० एक० आप्नोमि, (उ० पु० द्विव० आप्नुवः, प्र० पु० बहु० आप्नुवन्ति), लङ–प्र० पु० एक० आप्नोत्, (उ० पु० एक० आप्नवम्, उ० पु० द्वि० आप्नुव, प्र० पु० बहु० आप्नुवन्) लोट्–प्र० पु० एक० आप्नोतु, उ० पु० एक० आप्नवानि, म० पु० एक० आप्नुहि, प्र० पु० बहु० आप्नुवन्तु, लिट्–आप, लुट्–आप्ता, लृट्–आप्स्यति, लृङ–आप्स्यत्, लुङ–आपत् । णिच्–लट्–आपयति-ते, लुङ–आपिपत्-त, क्त–आप्त,–क्त्वा–आप्त्वा, तुम्–आप्तुम् ।

**आप्**—१० उ०, लम्भने (पाना ), लुङ–आपिपत्-त ।

**आस्**—२ आ०, (बैठना), लट्–आस्ते, लिट्–आसांचक्रे–बभूव–आस, लुट्–आसिता, लृट्–आसिष्यते, लृङ–आसिष्यत, लुङ–आसिष्ट, आ० लिङ–आसिषीष्ट । कर्म०–लट्–आस्यते, णिच्–आसयति ।

## इ

**इ**—१ प०, गतौ (जाना), लट्–अयति, लङ–आयत्, लिट्–इयाय, लुट्–एता, लृट्–एष्यति, लृङ–ऐष्यत्, लुङ-ऐषीत्, आ० लिङ–इयात् । णिच् लट्–आययति–ते, लुङ–आयियित्–त, सन्–इयीषति, कर्म० लट्–ईयते, लुङ–आयि ।

**इ**—२ प०, गतौ (जाना), लट्–एति, लिट्–इयाय, लुट्–एता, लृट्–एष्यति, लृङ–ऐष्यत्, लुङ–अगात् । कर्म० लट्–ईयते, लुङ–अगायि । णिच्–गमयति-ते, लुङ–अजीगमत्–त, प्रति के साथ प्रत्याययति–ते, सन्–जिगमिषति, (प्रति के साथ प्रतीषिषति) ।

**इ**—२ आ०, ( अधि+इ, पढ़ना), लट्–अधीते, लिट्–अधिजगे, लुट्–अध्येता, लृट्–अध्येष्यते, लृङ–अध्यगीष्यत-अध्यैष्यत, लुङ–अध्यगीष्ट –अध्यैष्ट, आ० लिङ–अध्येषीष्ट । कर्म० लट्–अधीयते, लुङ–अध्यगायि-अध्यायि ( प्र० पु० द्वि०, अध्यगायिषाताम्–अध्यगीषाताम्–,अध्यायिषाताम्–अध्यैषाताम् ), लुट्–अध्यायिता, अध्येता, लृट्–अध्यायिष्यते–अध्येष्यते, लृङ–अध्यगायिष्यत–अध्यगीष्यत, अध्यायिषत–अध्यैष्यत, आ० लिङ–अध्यायिषीष्ट–अध्येषीष्ट । णिच्–लट्–अध्यापयति, लुङ–अध्यापिपत्–अध्यजीगपत्, क्त–अधीत ।

**इख्**—१ प०, गतौ (जाना, हिलना), लट्–एखति, लिट्–इयेख, लुट्–एखिता, लुङ–ऐखीत् ।

**इङ्ग्**—१ प०, (जाना, क्षुब्ध करना), लट्–इङ्गति, लिट्–इङ्गाञ्चकार–बभूव–आस, लुट्–इङ्गिता, लुङ–ऐङ्गीत्, क्त–इङ्गित ।

**इट्**—१ प०, गतौ, ( जाना), लट्–एटति, लिट्–इयेट, लुट्–एटिता, लुङ–ऐटीत् ।

**इन्द्**—१ प०, परमैश्वर्ये (शक्तिसंपन्न होना), लट्–इन्दति, लङ–ऐन्दत्, लिट्–इन्दाञ्चकार–बभूव–आस, लुट्–इन्दिता, ऌट्–इन्दिष्यति, ऌङ–ऐन्दिष्यत्, लुङ–ऐन्दीत्, आ० लिङ–इन्द्यात्, क्त–इन्दित ।

**इन्ध्**—७ आ०, दीप्तौ (चमकना, जलाना), लट्–इन्धे, लिट्–इन्धांचक्रे–आस–बभूव (वेद में ईधे), लुट्–इन्धिता, ऌट्–इन्धिष्यते, ऌङ–ऐन्धिष्यत, लुङ–ऐन्धिष्ट, सन्–इंदिधिषते, आ० लिङ–इंधिषीष्ट, कर्म० लट्–इध्यते, णिच्–लट्–इन्धयति–ते, क्त–इद्ध ।

**इष्**—६ प०, इच्छायाम् (चाहना), लट्–इच्छति, लिट्–इयेष, लुट्–एष्टा या एषिता, ऌट्–एषिष्यति, ऌङ–ऐषिष्यत्, लुङ–ऐषीत्, सन्–एषिषिषति, आ० लिङ–इष्यात् । कर्म० लट्–इष्यते, लुङ–ऐषि । णिच्–लट्–एषयति–ते, लुङ–ऐषिषत्–त, क्त्वा–इष्ट्वा या एषित्वा, क्त–इष्ट ।

**इष्**—४ प०, गतौ, (जाना), लट्–इष्यति, लुट्–एषिता, क्त-इषित, क्त्वा–एषित्वा ।

**इष्**—९ प०, आभीक्ष्ण्ये[1] (दुहराना) लट्–इष्णाति । लिट्–इयेष आदि इष् ६ प० के तुल्य ।

## ई

**ई**—१ प०, गतौ (जाना), (२ प०, जाना, व्याप्त होना), लट्–अयति–एति, लिट्–अयांचकार-बभूव-आस, लुट्–एता, ऌट्–एष्यति, ऌङ–ऐष्यत्, लुङ–ऐषीत् ।

**ई**—४ आ०, (जाना), लट्–ईयते, लिट्–अयांचक्रे, ऌट्–एष्यते, लुङ–ऐष्ट, सन्–इयीषते । णिच्–लट्–आययति–ते ।

**ईक्ष्**—१ आ०, दर्शने (देखना), लट्–ईक्षते, लिट्–ईक्षांचक्रे–बभूव–आस, लुट्–ईक्षिता, ऌट्–ईक्षिष्यते, ऌङ–ऐक्षिष्यत, आ० लिङ–ईक्षिषीष्ट, लुङ–ऐक्षिष्ट । णिच्–लट्–ईक्षयति–ते, लुङ–ऐचिक्षत्–त, सन्–ईचिक्षिषते, कर्म० लट्–ईक्ष्यते, लुङ–ऐक्षि, क्त–ईक्षित, क्त्वा–ईक्षित्वा, तुम्–ईक्षितुम् ।

**ईज्**—१ आ०, गतिकुत्सनयोः (जाना, निन्दा करना), लट्–ईजते, लिट्–ईजांचक्रे, लुङ–ऐजिष्ट, क्त–ईजित ।

**ईड्**—२ आ० स्तुतौ (स्तुति करना), लट्–ईट्टे, लिट्–ईडांचक्रे–बभूव-आस, लुट्–ईडिता, ऌट्–ईडिष्यते, ऌङ–ऐडिष्यत, लुङ–ऐडिष्ट, आ० लिङ–ईडिषीष्ट । कर्म० लट्–ईड्यते, णिच्–लट्–ईडयति–ते, लुङ–ऐडिडत्–त, क्त्वा–ईडित्वा, तुम्–ईडितुम्, क्त–ईडित ।

**ईर्**—१ प०, गतौ (जाना, हिलाना), लट्–ईरति, क्त–ईरित ।

---

१. कुछ के मतानुसार इस धातु के लुट् और क्त्वा प्रत्यय में एषिता और एषित्वा ही रूप होते हैं ।

**ईर्**—२ आ०, गतौ ( जाना आदि ), लट्—ईर्ते, लिट्—ईराञ्चक्रे, लुट्—ईरिता, लृट्—ईरिष्यते, लृङ—ऐरिष्यत, लुङ—ऐरिष्ट, आ० लिङ—ईरिषीष्ट । णिच् लट्—ईरयति—ते, लुङ—ऐरिरत्—त, क्त—ईरित ।

**ईर्**—१० उ०, क्षेपे (हिलाना, फेंकना), लट्—ईरयति—ते, लिट्—ईरयांचकार—चक्रे, लुङ—ऐरिरत्—त, लुट्—ईरयिता, लृट्—ईरयिष्यति—ते, लृङ ऐरयिष्यत्—त, आ० लिङ—ईर्यात्—ईरयिषीष्ट । क्त—ईरित ।

**ईर्ष्य्**—१ प०, ईर्ष्यायाम् ( ईर्ष्या करना ), लट्—ईर्ष्यति, लिट्—ईर्ष्यांचकार-आस-बभूव, लुट्—ईर्ष्यिता, लृट्—ईर्ष्यिष्यति, लृङ—ऐर्ष्यिष्यत्, लुङ—ऐर्ष्यीत् । सन्—ईर्ष्यियिषति या ईर्ष्यिषिषति, णिच् लट्—ईर्ष्ययति-ते, लुङ—ऐर्ष्यियत्—त ।

**ईश्**—२ आ०, ऐश्वर्ये ( स्वामी होना, शासन करना, रखना), लट्—ईष्टे, लिट्—ईशांचक्रे—आस-बभूव, लुट्—ईशिता, लृट्—ईशिष्यते, लृङ—ऐशिष्यत, आ० लिङ—ईशिषीष्ट, लुङ—ऐशिष्ट, कर्म०—लट्—ईश्यते, लुङ—ऐशि, णिच् लट्—ईशयति-ते, लुङ—ऐशिशत्-त, क्त—ईशित ।

**ईष्**—१ आ०, गतिहिंसादर्शनेषु (जाना, हिंसा करना, देखना), लट्—ईषते, लिट्—ईषांचक्रे, लुट्—ईषिता, लृट्—ईषिष्यते, लृङ—ऐषिष्यत, लुङ—एषिष्ट, आ० लिङ—ईशिषीष्ट, क्त—ईषित ।

**ईह्**—१ आ०, चेष्टायाम् ( चेष्टा करना, चाहना), लट्—ईहते, लिट्—ईहांचक्रे—आस—बभूव, लुट्—ईहिता, लृट्—ईहिष्यते, लृङ—ऐहिष्यत, लुङ—ऐहिष्ट, सन्—ईजिहिषते, आ० लिङ—ईहिषीष्ट , णिच् लट्—ईहयति -ते, लुङ—ऐजिहत्—त ।

## उ

**उक्ष्**—१ प०, सेचने ( सींचना, गीला करना ), लट्—उक्षति, लिट्—उक्षांचकार-बभूव-आस, लुट्—उक्षिता, लृट्—उक्षिष्यति, लृङ—औक्षिष्यत्, लुङ—औक्षीत्, आ० लिङ—उक्ष्यात्, सन्—उचिक्षिषति । क्त—उक्षित ।

**उख्**—१ प०, ( जाना, हिलना), लट्—ओखति, लङ—औखत्, लिट्—उवोख, लुट्—ओखिता, लृट्—ओखिष्यति, लृङ—औखिष्यत्,लुङ—औखीत्, सन्—ओचिखिषति, आ० लिङ—उख्यात्, कर्म० लट्—उख्यते, णिच् लट्—ओखयति-ते, क्त—ओखित-उखित । (इसको उंख् भी लिखते हैं । लट्—उंखति आदि) ।

**उच्**—४ प०, समवाये ( इकट्ठा करना), लट्—उच्यति, लिट्—उवोच, लुट्—ओचिता, लृट्—ओचिष्यति लृङ—औचिष्यत्, आ० लिङ—उच्यात्, लुङ—औचत् । क्त—उचित—उग्न ।

**उच्छ्**—१ प०, विवासे ( पूरा करना, छोड़ना), लट्—उच्छति, लिट्—उच्छामास, लृट्—उच्छिष्यति, लुङ—औच्छीत्, सन्—उचिच्छिषति, णिच् लट्—उच्छयति-ते, लुङ—औचिच्छत्-त, क्त—उच्छित ।

**उज्झ्**——६ प०, उत्सर्गे (छोड़ना, बचना), लट्–उज्झति, लिट्–उज्झांचकार-आस-बभूव, लुट्–उज्झिता, लृट्–उज्झिष्यति, लृङ–औज्झिष्यत्, लुङ–औज्झीत् । णिच् लट्–उज्झयति-ते, लुङ–औजिज्झत्, सन्–उजिज्झिषति क्त–उज्झित ।

**उञ्छ्**——१, ६ प०, (कण चुनना), लट्–उञ्छति, लिट्–उञ्छाञ्चकार, लृट्–उञ्छिष्यति, लुङ–औञ्छीत्, सन्–उञ्चिच्छिषति । णिच् लट्–उञ्छयति, लुङ–औञ्चिच्छत्-त, क्त–उञ्छित ।

**उठ्**——१ प०, उपघाते–( चोट मारना, नष्ट करना), लट्–ओठति, लिट्–उवोठ, लुट्–ओठिता, लृट्–ओठिष्यति, लुङ–औठीत् । क्त–उठित ।

**उन्द्**——७ प०, क्लेदने ( गीला करना), लट्–उनत्ति, लिट्–उन्दांचकार, लुट्–उन्दिता, लृट्–उन्दिष्यति, लृङ–औन्दिष्यत्, लुङ–औन्दीत्, सन्–उन्दिदिषति । क्त–उत्त या उन्न ।

**उभ्**——या उम्भ्–६ प०, पूरणे (पूरा करना, भरना), लट्–उभति या उम्भति, लिट्–उवोभ-उम्भांचकार, लृट्–ओभिष्यति-उभिष्यति, लुङ–औभीत्-औम्भीत् । क्त–उभित-उम्भित ।

**उर्द्**——१ आ०, माने क्रीडायां च (तोलना, खेलना), लट्–उर्दते, लिट्–ऊर्दांचक्रे-बभूव-आस, लुट्–ऊर्दिता, लृट्–ऊर्दिष्यते, लृङ–और्दिष्यत, लुङ–और्दिष्ट, सन्–ऊर्दिदिषते । णिच् लट्–ऊर्दयति-ते, लुङ–और्दिदत्-त ।

**उर्व्**——१ प०, हिंसायाम् ( हिंसा करना), लट्–ऊर्वति, लिट्–ऊर्वांचकार, लुट्–ऊर्विता, लृङ–और्विष्यत्, लुङ–और्वीत् ।

**उष्**——१ प०, दाहे ( जलाना, दण्ड देना), लट्–ओषति, लिट्–उवोष, ओषांचकार-आस-बभूव, लुट्–ओषिता, लृट्–ओषिष्यति, लृङ–औषिष्यत्, आ० लिङ–उष्यात्, लुङ–औषीत्, क्त–ओषित, उषित ।

**उह्**——१ प०, अर्दने (चोट पहुँचाना, हिंसा करना, नष्ट करना), लट्–ओहति, लिट्–उवोह, लृट्–ओहिष्यति, लुङ–औहत्-औहीत् । क्त–उहित, ओहित ।

## ऊ

**ऊन्**——१० उ०, परिहाणे ( कम करना), लट्–ऊनयति-ते, लृट्–ऊनयिष्यति, लुङ–औननत्-त, सन्–ऊनिनयिषति-ते ।

**ऊय्**——१ आ०, तन्तुसंताने ( बुनना, सीना), लट्–ऊयते, लिट्–ऊयांचक्रे-बभूव-आस, लुट्–ऊयिता, लृट्–ऊयिष्यते, लृङ–औयिष्यत, लुङ–औयिष्ट, आ० लिङ–ऊयिषीष्ट । णिच् लट्–ऊययति-ते, क्त–ऊत ।

**ऊर्ज्**——१, १० उ०, बलप्राणनयोः (शक्तियुक्त बनाना, जीवित रहना), लट्–ऊर्जति, ऊर्जयति-ते, लुङ–और्जीत्, और्जिजत्-त ।

**ऊर्णु**——२ उ०, आच्छादने ( ढकना, छिपाना), लट्–ऊर्णोति-ऊर्णौति-ऊर्णुते, लिट्–ऊर्णुनाव-नव-ऊर्णुनुवे, लुट्–ऊर्णुविता-ऊर्णविता, लृट्–ऊर्णविष्यति-ते-ऊर्णुविष्यति-ते, लुङ–और्णवीत्-और्णावीत्-और्णुवीत्-और्णविष्ट-और्णुविष्ट, आ०

लिङ–ऊर्णूयात्-ऊर्णविषीष्ट-ऊर्णुविषीष्ट । णिच् लट्–ऊर्णावयति-ते, लुङ–और्णूनवत्-त, कर्म० लट्–ऊर्णूयते, लिट्–ऊर्णुनुवे, लुङ–और्णावि, लुट्–ऊर्णविता, ऊर्णाविता-ऊर्णुविता, आ० लिङ–ऊर्णविषीष्ट, ऊर्णाविषीष्ट-ऊर्णुविषीष्ट, लृङ–और्णाविष्यत-और्णविष्यत या और्णुविष्यत ।

**ऊर्द्**––१ आ० (खेलना, क्रीडा करना), लट्–ऊर्दते । (शेष उर्द के तुल्य)

**ऊष्**––१ प० रुजायाम् (रुग्ण होना, खिन्न चित्त होना), लट्–ऊषति, लिट्–ऊषांचकार, लुङ–औषीत् । क्त–ऊषित ।

**ऊह्**––१ आ० (कभी पर० भी) वितर्के (तर्क- वितर्क करना, अनुमान करना, अभिप्राय निकालना), लट्–ऊहते, लङ–औहत, लिट्–ऊहांचक्रे, लुट्–ऊहिता, लृट्–ऊहिष्यते, लृङ–औहिष्यत, लुङ–औहिष्ट, आ० लिङ–ऊहिषीष्ट, कर्म०– लट्–ऊह्यते, लुङ–औहि, णिच् लट्–ऊहयति-ते, लुङ–औजिहत्–त, क्त–ऊहित, क्त्वा–ऊहित्वा ।

**ऋ**

**ऋ**––१ प०, गतिप्रापणयोः (जाना, पाना), लट्–ऋच्छति, लुङ–आर्षीत् ।

**ऋ**––३ प० (जाना), लट्–इयर्ति, लुङ–आरत्, (सम् के साथ समारत) । ऋ १ प० और ऋ ३ प० दोनों धातुओं का लिट् में आर बनता है, और लुट् में-अर्ता बनता है । लृट्–अरिष्यति, लृङ–आरिष्यत्, आ० लिङ–अर्यात् । कर्म० लट्–अर्यते, लुङ–आरि, लिट्–आरे, लुट्–आरिता-अर्ता, लृट्–आरिष्यते-अरिष्यते, आ० लिङ–आरिषीष्ट, ऋषीष्ट । णिच् लट्–अर्पयति-ते, लुङ–आर्पयत्-त, सन्–अरिरिषति, क्त–ऋत (ऋण भी रूप होता है), क्त्वा–ऋत्वा ।

**ऋच्**––६ प०, स्तुतौ (प्रशंसा करना, चमकना), लट्–ऋचति, लिट्–आनर्च, लुङ–आर्चीत् । क्त–ऋचित ।

**ऋच्छ्**––६ प०, गतीन्द्रियप्रलयमूर्तिभावेषु–(कठोर होना, इन्द्रियों की शक्ति नष्ट होना, जाना), लट्–ऋच्छति, लङ–आर्च्छत्, लिट्–आनर्च्छ, लुट्–ऋच्छिता, लृट्–ऋच्छिष्यति, लुङ–आर्च्छीत् । णिच् लट्–ऋच्छयति-ते लुङ–आर्चिच्छत्-त, सन्–ऋचिच्छिषति, क्त–ऋच्छित ।

**ऋज्**––१ आ०, गतिस्थानार्जनोपार्जनेषु (जाना, प्राप्त करना), लट्–अर्जते, लिट्–आनृजे, लुट्–अर्जिता, लृट्–अर्जिष्यते, लृङ–आर्जिष्यत्, लुङ–आर्जिष्ट, सन्–अर्जिजिषते, आ० लिङ–अर्जिषीष्ट । कर्म०–लट्–ऋज्यते, लुङ–आर्जि, णिच्–लट्–अर्जयति-ते, लुङ–आर्जिजत्-त, क्त–ऋजित ।

**ऋण्**––८ उ०, (जाना), लट्–ऋणोति-ऋणुते-अर्णोति-अर्णुते, लिट्–आनर्ण-आनृणे, लुट्–अर्णिता, लुङ–आर्णीत्-आर्णिष्ट-आर्त, सन्–अर्णिणिषति ।

**ऋत्**[1]––जुगुप्सायां कृपायां च (निन्दा करना, दया करना), लट्–ऋतीयते, लिट्–ऋतीयांचक्रे-आनर्त, लुट्–ऋतीयिता-अर्तिता, लृट्–ऋतीयिष्यते-

१. यह धातु धातुपाठ में नहीं है, परन्तु ऋतेरीयङ सूत्र में दी गई है ।

अर्तिष्यति, आ० लिङ्–ऋतीयिषीष्ट-ऋत्यात्; लुङ्–आर्तीयिष्ट या आर्तीत् ।

**ऋध्**—४ प०, वृद्धौ (समृद्ध होना, प्रसन्न होना), लट्–ऋध्यति, लिट्–आनर्ध, लुट्–अर्धिता, लुङ्–आर्द्धीत्, सन्–अर्दिधिषति–ईर्त्सति । क्त–ऋद्ध, क्त्वा–अर्धित्वा–ऋद्ध्वा ।

**ऋध्**—५ प० (समृद्ध होना, बढ़ना), लट्–ऋध्नोति, लुङ्–आर्धीत् । (शेष रूप ऋध् ४ प० के तुल्य) ।

**ऋफ् या ऋम्फ्**—६ प०, (हिंसा करना), लट्–ऋफति, ऋम्फति, लिट्–आनर्फ, ऋम्फाञ्चकार ।

**ऋष्**—६ प०, (पहुँचना, हानि पहुँचाना), लट्–ऋषति, लिट्–आनर्ष, लुट्–अर्षिता, ऌट्–अर्षिष्यति, लुङ्–आर्षीत्, क्त–ऋष्ट ।

**ॠ**

**ॠ**—६ प०, ( जाना, हिलना), लट्–ॠणाति, लिट्–अराञ्चकार, लुट्–अरिता-अरीता, ऌट्–अरिष्यति-अरीष्यति, लुङ्–आरीत्, आ० लिङ्–ईर्यात्। क्त–ईर्ण ।

**ए**

**एज्**—१ आ०, दीप्तौ (चमकना), प०, कम्पने (काँपना), लट्–एजते–ति, लङ्–ऐजत-त्, लिट्–एजांचक्रे-चकार, लुट्–एजिता, ऌट्–एजिष्यते-ति, ऌङ्–ऐजिष्यत-त्, लुङ्–ऐजिष्ट-ऐजीत् । क्त–एजित ।

**एठ्**—१ आ०, बाधायाम् (क्रुद्ध होना, रोकना), लट्–एठते । **क्त**–एठित ।

**एध्**[1]—१ आ०, वृद्धौ (बढ़ना, समृद्ध होना), लट्–एधते, लिट्–एधांचक्रे–बभूव–आस, लुट्–एधिता, ऌट्–एधिष्यते, ऌङ्–ऐधिष्यत, लुङ्–ऐधिष्ट, सन्–एदिधिषते, आ० लिङ्–एधिषीष्ट । कर्म० लट्–एध्यते, लुङ्–ऐधि, णिच्–एधयति–ते, लुङ्–ऐदिधत् । क्त–एधित ।

**एष्**—१ आ० (जाना), लट्–एषते । क्त–एषित ।

**ओ**

**ओख्**[2]—१ प०, शोषणालमर्थयोः ( सूखना, सजाना, पर्याप्त होना), लट्–ओखति, लिट्–ओखांचकार-बभूव-आस, लुट्–ओखिता, ऌट्–ओखिष्यति, ऌङ्–औखिष्यत्, लुङ्–औखीत्, सन्–औचिखिषति । णिच् लट्–ओखयति, –ते, लुङ्–औचिखत्-त ।

**ओलंड्**—१० उ०, उत्क्षेपणे ( ऊपर फेंकना), लट्–ओलण्डयति । क्त–ओलण्डित ।

---

**१. उप के साथ उपैधते रूप होगा ।**

**२. प्र+ओखति=प्रोखति ।**

**क**

**कक्**—१ आ०, लौल्ये (चाहना, गर्वयुक्त होना), लट्—ककते, लिट्—चकके, लुट्—ककिता, लृट्—ककिष्यते, लृङ—अककिष्यत, लुङ—अककिष्ट ।

**कख्**—१ प०, हसने (हँसना), लट्—कखति, लिट्—चकाख, लुट्—कखिता, लृट्—कखिष्यति, लृङ—अकखिष्यत्, लुङ—अकखीत्-अकाखीत् ।

**कंक्**—१ आ०, (जाना), लट्—कंकते, लिट्—चकंके, लुट्—कंकिता, लुङ—अकंकिष्ट, क्त—कंकित ।

**कच्**—१ प०, रवे (शब्द करना), लट्—कचति, लिट्—चकाच, लुट्—कचिता, लृट्—कचिष्यति, लृङ—अकचिष्यत्, लुङ—अकचीत्-अकाचीत् ।

**कच्**—१ आ०, बन्धने, (बाँधना), लट्—कचते, लिट्—चकचे, लुट्—कचिता, लृट्—कचिष्यते, लृङ—अकचिष्यत, लुङ—अकचिष्ट ।

**कट्** या **कण्ट्**—१ प० (जाना), लट्—कटति-कंटति, लिट्—चकाट-चकंट, लुट्—कटिता-कंटिता, लृट्—कटिष्यति-कंटिष्यति, लृङ—अकटिष्यत्-अकंटिष्यत्, लुङ—अकटीत्-अकंटीत् ।

**कठ्**—१ प०, कृच्छ्रजीवने (कठिनाई से जीवन बिताना), लट्—कठति, लृट्—कठिष्यति, लुङ—अकठीत-अकाठीत् ।

**कण्ठ्**—१ प०, १० उ०, आध्याने (खेदपूर्वक स्मरण करना), लट्—कंठति, कंठयति-ते, लिट्—चकंठ, कंठयांचकार-चक्रे, लुट्—कंठिता-कंठयिता, लृट्—कंठिष्यति-कंठयिष्यति-ते, लृङ—अकंठिष्यत्-अकंठयिष्यत्-त, लुङ—अकंठीत्, अचकंठत्-त ।

**कण्ठ्**—१ आ०, शोके (चिन्तित होना), (उत्+), लट्—कंठते, लिट्—चकंठे, लुट्—कंठिता, लुङ—अकंठिष्ट ।

**कण्ड्**—१ उ०, मदे (गर्वयुक्त होना), लट्—कंडति-ते, लिट्—चकंडे, लुट्—कंडिता, लृट्—कंडिष्यति-ते, लृङ—अकंडिष्यत्-त, लुङ—अकंडीत्, अकंडिष्ट ।

**कण्ड्**—१० उ०, भेदने (भेदनं वितुषीकरणम्) रक्षणे च, (छिलका हटाना, रक्षा करना), लट्—कंडयति-ते, लिट्—कंडयांचकार-चक्रे, लुट्—कंडयिता, लृट्—कंडयिष्यति-ते, लुङ—अचकण्डत्—त ।

**कण्**—१ प०, आर्तस्वरे (दुःख में चिल्लाना), लट्—कणति, लिट्—चकाण, लुट्—कणिता, लृट्—कणिष्यति, लृङ—अकणिष्यत्, लुङ—अकणीत्, अकाणीत् ।

**कण्**—१० उ०, निमीलने ( आँख बन्द करना), लट्—काणयति-ते, लुङ—अचीकणत्-त, अचकाणत्-त ।

**कण्डूय्**—१ उ०, गात्रविघर्षणे, (खुजाना, रगड़ना), लट्—कंडूयति-ते, लुङ—अकण्डूयीत्-अकण्डूयिष्ट, आ० लिङ—कण्डूय्यात्-कण्डूयिषीष्ट ।

**कत्थ्**—१ आ०, श्लाघायाम्, (प्रशंसा करना, अपनी बड़ाई करना), लट्—कत्थते, लिट्—चकत्थे, लुट्—कत्थिता, लृट्—कत्थिष्यते, लृङ—अकत्थिष्यत, आ० लिङ—कत्थिषीष्ट, लुङ—अकत्थिष्ट । सन्—चिकत्थिषते, क्त—कत्थित ।

**कथ्**—१० उ०, वाक्यप्रबन्धे (कहना), लट्—कथयति—ते, लिट्—कथयांचकार, लुट्—कथयिता, लृट्—कथयिष्यति—ते, लृङ—अकथयिष्यत्—त, लुङ—अचकथत्—त, सन्—चिकथयिषति—ते, आ० लिङ—कथ्यात् या कथयिषीष्ट, कर्म० लट्—कथ्यते ।

**कद्**—१ आ०, वैकलव्ये (दुःखित होना), लट्—कदते, लिट्—चकदे, लुट्—कदिता, लुङ—अकदिष्ट, आ० लिङ—कदिषीष्ट ।

**कन्**—१ प०, दीप्तिकान्तिगतिषु (चमकना आदि), लट्—कनति, लिट्—चकान, लुट्—कनिता, लुङ—अकनीत् ।

**कनय्**—( नामधातु) लट्—कनयति ।

**कम्**—१ आ०, कान्तौ (चाहना), लट्—कामयते, लिट्—चकमे या कामयांचक्रे, लुट्—कामयिता या कमिता, लृट्—कामयिष्यते **या कमिष्यते**, लृङ—अकामयिष्यत या अकमिष्यत, आ० लिङ—कामयिषीष्ट या कमिषीष्ट, लुङ—अचीकमत या अचकमत, कर्म०—लट्—काम्यते या कम्यते, लुङ—अकामि । णिच्—लट्—कामयति—ते, क्त—कान्त, क्त्वा— कमित्वा, कान्त्वा, कामयित्वा ।

**कम्प्**—१ आ०, चलने ( काँपना, हिलना), लट्—कंपते, लिट्—चकंपे, लुट्—कंपिता, लृट्—कंपिष्यते, लृङ—अकंपिष्यत, आ० लिङ—कंपिषीष्ट, लुङ—अकंपिष्ट, कर्म०—लट्—कंप्यते । णिच्—लट्—कंपयति—ते, लुङ—अचकंपत्—त, सन्—चिकम्पिषते ।

**कम्ब्**—१ प०, (जाना), लट्—कम्बति, लिट्—चकंब, लुट्—कम्बिता, लुङ—अकम्बीत् ।

**कर्ण्**—१० उ०, भेदने ( छेद करना), लट्—कर्णयति—ते, लिट्—कर्णयांचकार—चक्रे, लुट्—कर्णयिता, लृट्—कर्णयिष्यति—ते, लृङ—अकर्णयिष्यत्—त, लुङ—अचकर्णत्—त ।

**कर्त्**—१० उ०, शैथिल्ये (शिथिल होना), लट्—कर्तयति—ते, लुङ—अचकर्तत्—त ।

**कल्**—१ आ०, शब्दसंख्यानयोः ( शब्द करना, गिनना), लट्—कलते, लिट्—चकले, लुट्—कलिता, लृट्—कलिष्यते, लृङ—अकलिष्यत, आ० लिङ—कलिषीष्ट, लुङ—अकलिष्ट, क्त—कलित ।

**कल्**—१० उ०, गतौ संख्याने च (जाना, गिनना), लट्—कलयति—ते, लिट्—कलयांचकार—चक्रे, लुट्—कलयिता, लृट्—कलयिष्यति—ते, लृङ—अकलयिष्यत्—त, लुङ—अचकलत्—त, सन्—चिकलयिषति—ते, क्त—कलित ।

**कल्**—१० उ०, क्षेपे (फेंकना), लट्—कालयति—ते, लिट्—कालयांचकार, लृट्—कालयिष्यति—ते, लुङ—अचीकलत्—त । सन्—चिकालयिषति—ते, कर्म०—लट्—काल्यते, लुङ—अकालि, क्त—कालित ।

**कव्**—१ आ०, स्तुतौ वर्णने च (प्रशंसा करना), लट्–कवते, लिट्–चकवे, लुट्–कविता, ऌट्–कविष्यते, ऌङ–अकविष्यत, लुङ–अकविष्ट । णिच्–लट्–कावयति–ते ।

**कश्**—१ प०, शब्दे (शब्द करना), लट्–कशति, लुङ–अकशीत्–अकाशीत् ।

**कश्**—२ आ०, गतिशासनयोः (जाना, दण्ड देना), लट्–कष्टे, लिट्–चकशे, लुट्–कशिता, लुङ–अकशिष्ट ।

**कष्**—१ प०, घर्षणे (घिसना, परीक्षा करना), लट्–कषति, लिट्–चकाष, लुट्–कषिता, ऌट्–कषिष्यति, ऌङ–अकषिष्यत्, लुङ–अकषीत्–अकाषीत्, सन्–चिकषिषति, क्त–कषित (कष्ट, दुःखद) ।

**कस्**—१ प० (जाना), लट्–कसति, लिट्–चकास, लुट्–कसिता, ऌट्–कसिष्यति, ऌङ–अकसिष्यत्, लुङ–अकासीत्–अकसीत्, सन्–चिकसिषति, णिच्–लट्–कासयति–ते, लुङ–अचीकसत्–त ।

**कस्**—२ आ० गतिनाशनयोः (जाना, कष्ट करना), लट्–कस्ते, लुङ–अकसिष्ट । (इसको कंस् भी लिखते हैं ।)

**कांक्ष्**—१ प०, कांक्षायाम् (चाहना), लट्–कांक्षति, लिट्–चकांक्ष, लुट्–कांक्षिता, ऌट्–कांक्षिष्यति, ऌङ–अकांक्षिष्यत्, लुङ–अकांक्षीत्, आ० लिङ–कांक्ष्यात् । सन्–चिकांक्षिषति, क्त–कांक्षित ।

**काश्**—१, ४ आ०, दीप्तौ (चमकना), लट्–काशते या काश्यते, लिट्–चकाशे, लुट्–काशिता, ऌट्–काशिष्यते, ऌङ–अकाशिष्यत, आ० लिङ–काशिषीष्ट, सन्–चिकाशिषते, लुङ–अकाशिष्ट, णिच्–लट्–काशयति–ते, कर्म०–लट्–काश्यते, क्त–काशित, क्त्वा–काशित्वा, ल्यप्–प्रकाश्य ।

**कास्**—१ आ०, शब्दकुत्सायाम् (खाँसना), लट्–कासते, लिट्–कासांचक्रे, लुट्–कासिता, ऌट्–कासिष्यते, ऌङ–अकासिष्यत, लुङ–अकासिष्ट, सन्–चिकासिषते, आ० लिङ–कासिषीष्ट, णिच्–कासयति–ते, लुङ–अचकासत्–त ।

**कित्**—१ प०, संशये रोगापनये च (सन्देह करना, चिकित्सा करना), लट्–चिकित्सति, लिट्–चिकित्सांचकार, लुट्–चिकित्सिता, ऌट्–चिकित्सिष्यति, ऌङ–अचिकित्सिष्यत्, लुङ–अचिकित्सीत्, कर्म०–लट्–चिकित्स्यते, णिच्–लट्–चिकित्सयति–ते, सन्–चिकित्सिषति । (आत्मने० भी है) लट्–चिकित्सते, लुङ–अचिकित्सिष्ट ।

**कित्**—१ प०, इच्छायाम् (चाहना, जीवित रहना), लट्–केतति, लिट्–चिकेत, लुङ–अकेतीत् ।

**कित्**—१० प०, निवासे (रहना), लट्–केतयति, ऌट्–केतयिष्यति, लुङ–अचीकितत् ।

**किल्**—१ प०, श्वेतक्रीडनयोः (सफेद होना, खेलना), लट्–किलति, लिट्–चिकेल, लुट्-केलिता, लृट्–केलिष्यति, लृङ-अकेलिष्यत्, लुङ–अकेलीत् ।

**कील्**—१ प०, बन्धने (बाँधना), लट्–कीलति, लिट्–चिकील, लुट्–कीलिता, लुङ–अकीलीत्, सन्–चिकीलिषति ।

**कु**—१ आ०, शब्दे (शब्द करना), लट्–कवते, लिट्–चुकुवे, लुट्–कोता, लृट्–कोष्यते, लृङ–अकोष्यत्, लुङ–अकोष्ट ।

**कु**—२ प०, (शब्द करना), लट्–कौति, लिट्–चुकाव, (म० पु० एक० चुकविथ, चुकोथ), लुट्–कोता, लृट्–कोष्यति, लृङ–अकोष्यत्, लुङ–अकौषीत्, यङ–चोकूयते ।

**कु**—६ आ०, शब्दे (आर्तस्वरे) (शब्द करना, रोना), लट्–कुवते, लिट्–चुकुवे, लुट्–कुता, लुङ–अकुत, यङ–कोकूयते ।

**कुच्**—१ प०, शब्दे तारे संपर्चनकौटिल्यप्रतिष्टम्भनविलेखनेषु च (जोर से शब्द करना, संपर्क में आना, कुटिल होना, आदि ), लट्–कोचति, लिट्–चुकोच, लुट्–कोचिता, लृट्–कोचिष्यति, लृङ–अकोचिष्यत्, लुङ–अकोचीत् ।

**कुच्**—६ प०, संकोचने (कुटादि) ( संकुचित होना), लट्–कुचति, लिट्–चुकोच ( म० पु० एक० चुकुचिथ), लुङ–अकुचीत् । सन्–चिकुचिषति ।

**कुट्**—६ प०, (मोड़ना, टेढ़ा करना), लट्–कुटति, लिट्–चुकोट (म० पु० एक० चुकुटिथ), लुट्–कुटिता, लृट्–कुटिष्यति, लृङ–अकुटिष्यत्, लुङ–अकुटीत् । णिच्–लट्–कोटयति–ते, क्त–कुटित ।

**कुण्**—६ प०, शब्दोपकरणयोः (शब्द करना, सहायता करना), लट्–कुणति, लिट्–चुकोण, लुट्–कोणिता, लुङ–अकोणीत्, क्त–कुणित ।

**कुण्ठ्**—१ प०, प्रतिघाते (कुण्ठित होना), लट्–कुण्ठति, लुङ–अकुण्ठीत् ।

**कुण्ठ्**—१० उ०, वेष्टने (घेरना), लट्–कुण्ठयति–ते, लुङ–अचुकुण्ठत्–त ।

**कुत्स्**—१० आ०, अवक्षेपणे ( निन्दा करना), लट्–कुत्सयते, लिट्–कुत्सयांचक्रे, लृट्–कुत्सयिष्यते, लुङ–अचुकुत्सत, आ० लिङ–कुत्सयिषीष्ट ।

**कुन्थ्**—१ प०, हिंसाक्लेशनयोः (मारना, आदि), लट्–कुंथति, लिट्–चुकुंथ, लुट्– कुंथिता, लृट्–कुंथिष्यति, लृङ–अकुंथिष्यत्, लुङ–अकुंथीत्, सन्–चुकुंथिषति । णिच्–लट्–कुंथयति–ते, कर्म–लट्–कुन्थ्यते, क्त्वा–कुन्थित्वा, क्त–कुन्थित ।

**कुप्**—४ प०, क्रोधे ( क्रोध करना), लट्–कुप्यति, लिट्–चुकोप, लुट्–कोपिता, लृट्–कोपिष्यति, लृङ–अकोपिष्यत्, लुङ–अकुपत् । सन्–चुकोपिषति, चुकुपिषति, आ० लिङ–कुप्यात्, क्त–कुपित, तुम्–कोपितुम् ।

**कुप्**—१० उ०, भाषायं द्युतौ च ( बोलना, चमकना), लट्–कोपयति–ते, लुङ–अचूकुपत्–त ।

**कुर्द्**—१ आ०, क्रीडायाम् (खेलना), लट्–कूर्दते, लिट्–चुकर्दे, लुङ–अकूर्दिष्ट ।

**कुंश्**—१० उ०, १ प०, दीप्तौ (चमकना), लट्—कुंशयति-ते, कुंशति, लिट्—कुंशयांचकार—चक्रे—चुकुंश, लुट्—कुंशयिता—कुंशिता, लुङ—अचुकुंशत्—त—अकुंशीत् ।

**कुष्**—९ प०, निष्कर्षे (फाड़ना, निकालना), लट्—कुष्णाति, लिट्—चुकोष,[1] लुट्—कोषिता, लृट्—कोषिष्यति, लुङ—अकोषीत्, सन्—चिकोषिषति, चिकुषिषति, कर्म०—लट्—कुष्यते, लुङ—अकोषि । णिच्—लट्—कोषयति—ते, लुङ—अचूकुषत्—त ।

**कुस्**—४ प०, संश्लेषणे ( आलिंगन करना), लट्—कुस्यति, लिट्—चुकोस, लुट्—कोसिता, लृट्—कोसिष्यति, लृङ—अकोसिष्यत्, आ० लिङ—कुस्यात्, लुङ—अकुसत् । सन्—चिकुसिषति, चिकोसिषति, क्त्वा—कुसित्वा, कोसित्वा ।

**कुंस्**—१० उ०, १ प०, भाषायाम् ( कहना), लट्—कुंसयति—ते, कुंसति, लुङ—अचुकुंसत्—त, अकुंसीत् ।

**कुह्**—१० आ०, विस्मापने ( आश्चर्ययुक्त करना), लट्—कुहयते, लिट्—कुहयांचक्रे, लुङ—अचुकुहत, सन्—चुकुहयिषते ।

**कू**—६ आ, शब्दे ( शब्द करना, दुःख में चिल्लाना), लट्—कुवते, लिट्—चुकुवे, लुट्—कुविता, लृट्—कुविष्यते, लृङ—अकुविष्यत, लुङ—अकुविष्ट ।

**कू**—९ उ० शब्दे ( शब्द करना), लट्—कुनाति—नीते, लृट्—कविष्यति—ते, लुङ—अकावीत्, अकविष्ट ।

**कूज्**—१ प०, अव्यक्ते शब्दे ( कूजना, अस्पष्ट शब्द करना), लट्—कूजति, लिट्—चुकूज, लुट्—कूजिता, लृट्—कूजिष्यति, लृङ—अकूजिष्यत्, लुङ—अकूजीत्, आ० लिङ—कूज्यात्, कर्म—लट्—कूज्यते, लुङ—अकूजि । णिच्—लट्—कूजयति—ते, क्त्वा—कूजित्वा, क्त—कूजित ।

**कूड्**—६ प०, दार्ढ्ये (दृढ़ होना), लट्—कूडति, लिट्—चुकूड, लुट्—कूडिता, लुङ—अकूडीत् ।

**कूण्**—१० उ०, आभाषणे (कहना, बातचीत करना), लट्—कूणयति—ते, क्त—कूणित ।

**कूण्**—१० आ०, संकोचने ( बन्द करना), लट्—कूणयते, लुङ—अचुकूणत, क्त—कूणित ।

**कूर्द्**—१ उ०, क्रीडायाम् ( कूदना, उछलना), लट्—कूर्दति—ते, क्त—कूर्दित ।

**कूल्**—१ प०, आवरणे (ढकना), लट्—कूलति, लिट्—चुकूल, लुट्—कूलिता, लृट्—कूलिष्यति, लृङ—अकूलिष्यत्, लुङ—अकूलीत् ।

**कृ**—५ उ०, हिंसायाम् (मारना, चोट पहुँचाना), लट्—कृणोति—कृणुते ।

---

**१. निर्+कुष् वेद् है । लिट् म० पु० एक० निश्चुकोषिथ, निश्चुकोष्ठ, लुङ—निरकोषीत्, निरकुक्षत् । सन् में निश्चुकुक्षति भी । तुम् में निष्कोष्टुम् भी ।**

**कृ**—८ उ०, करणे (करना), लट्–करोति–कुरुते, लिट्–चकार–चक्रे, लुट्–कर्ता, लृट्–करिष्यति–ते, लृङ–अकरिष्यत्–त, लुङ–अकार्षीत्–अकृत, आ० लिङ–क्रियात्-कृषीष्ट । कर्म०- लट्–क्रियते, लुङ–अकारि (प्र० पु० द्वि० अकारिषाताम्-अकृषाताम्), लुट्–कारिता-कर्ता, लृट्-कारिष्यते–करिष्यते, आ० लिङ–कारिषीष्ट–कृषीष्ट, लृङ–अकारिष्यत–अकरिष्यत । णिच्–लट्–कारयति–ते, लुङ–अचीकरत्–त, सन्–चिकीर्षति–ते, क्त–कृत, क्त्वा–कृत्वा, ल्यप्–अनुकृत्य, तुम्–कर्तुम् ।

**कृत्**—६ प०, छेदने (काटना), लट्–कृन्तति, लिट्–चकर्त, लुट्–कर्तिता, लृट्–कर्तिष्यति, लृङ–अकर्तिष्यत्, लुङ–अकर्तीत, आ० लिङ–कृत्यात्, सन्–चिकर्तिषति–चिकृत्सति । णिच्–लट्–कर्तयति–ते, लुङ–अचकर्तत्–त और अचीकृतत्–त । कर्म० लट्–कृत्यते, लुङ–अकर्ति, क्त–कृत्त, क्त्वा–कर्तित्वा, ल्यप्–अनुकृत्य, तुम्–कर्तितुम् ।

**कृत्**—७ प०, वेष्टने (घेरना), लट्–कृणत्ति ।

**कृश्**—४ प०, तनूकरणे ( पतला होना), लट्–कृश्यति, लिट्–चकर्श, लृट्–कर्शिष्यति, लृङ–अकर्शिष्यत्, लुङ–अकृशत् ।

**कृष्**—१ प०, विलेखने ( खींचना, हल चलाना), लट्–कर्षति, लिट्–चकर्ष, लुट्–कर्ष्टा या क्रष्टा, लृट्-कर्क्ष्यति या क्रक्ष्यति, लृङ–अकर्क्ष्यत् या अक्रक्ष्यत्, लुङ–अकार्क्षीत् या अक्राक्षीत् या अकृक्षत् । सन्–चिकृक्ष्यति, णिच्–लट्–कर्षयति–ते, लुङ–अचीकृषत्–त या अचकर्षत्–त, क्त–कृष्ट, क्त्वा–कृष्ट्वा, कर्म०-लट्–कृष्यते, लुङ–अकार्षि ।

**कृष्**—६ उ०, विलेखने ( हल चलाना, जोतना), लट्–कृषति–ते, लिट्–चकर्ष–चकृषे, लुट्–कर्ष्टा–क्रष्टा, लृट्–कर्क्ष्यति–ते, क्रक्ष्यति–ते, लृङ–अकर्क्ष्यत्–त, अक्रक्ष्यत्–त, लुङ–अकार्क्षीत्–अक्राक्षीत्–अकृक्षत्, अकृष्ट–अकृक्षत, आ० लिङ–कृष्यात्–कृक्षीष्ट, सन्–चिकृक्षति–ते, क्त–कृष्ट ।

**कॄ**—६ प०, विक्षपे (फैलाना, बखेरना), लट्—किरति, लिट्–चकार, लुट्–करिता या करीता, लृट्–करिष्यति–करीष्यति, लृङ–अकरिष्यत्–अकरीष्यत्, लुङ–अकारीत्, आ० लिङ–कीर्यात् । सन्–चिकरिषति, कर्म०–लट्–कीर्यते, णिच्–लट्–कारयति–ते, क्त–कीर्ण ।

**कॄ**—९ उ०, हिंसायाम् (मारना, हानि पहुँचाना), लट्–कृणाति या कृणीते, लिट्–चकार–चक्रे, लुङ–अकारीत्–अकरित्–रीत् –अकीर्ष्ट, सन्–चिकरिषति–ते, चिकरीषति–ते, चिकीर्षति–ते ।

**कॄत्**—१० उ०, संशब्दने ( नाम लेना, यश फैलाना), लट्–कीर्तयति–ते, लिट्–कीर्तयाञ्चकार–चक्रे, लुट्–कीर्तयिता, लृट्–कीर्तयिष्यति–ते, लृङ–अकीर्तयिष्यत्–त, आ० लिङ–कीर्त्यात्–कीर्तयिषीष्ट, लुङ–अचीकृतत्–त, कर्म०–लट्–कीर्तयते, क्त–कीर्तित ।

**क्लृप्**—१ आ०, सामर्थ्ये ( समर्थ होना), लट्—कल्पते, लिट्—चक्लृपे, लुट्—कल्पिता—कल्प्ता, लृट्—कल्पिष्यते, कल्प्स्यते—ति, लुङ—अक्लृपत्—अकल्पिष्ट—अक्लृप्त, आ० लिङ—कल्पिषीष्ट—क्लृप्सीष्ट । सन्—चिकल्पिषते—चिक्लृप्सति, क्त्वा—कल्पित्वा—क्लृप्त्वा, तुम्—कल्पितुम्—कल्प्तुम् ।

**केप्**—१ आ०, कम्पने ( हिलाना), लट्—केपते, लिट्—चिकेपे, लुङ—अकेपिष्ट ।

**केल्**—१ प०, चलने ( हिलाना), लट्—केलति, लुङ—अकेलीत्, क्त—केलित ।

**कै**—१ प०, शब्दे (शब्द करना), लट्—कायति, लिट्—चकौ, लुट्—काता, लृट्—कास्यति, लृङ—अकास्यत्, लुङ—अकासीत्, आ० लिङ—कायात् । सन्—चिकासति, कर्म०—कायते ।

**क्नथ्**—१ प०, १० उ०, हिंसायाम् (मारना), लट्—क्नथति—क्नथयति—ते, लुङ—अक्नथीत्, अक्नाथीत्, अचिक्नथत्—त ।

**क्नू**—९ उ०, (शब्द करना), लट्—क्नूनाति—क्नूनीते, लुङ—अक्नावीत्—अक्नविष्ट ।

**क्नूय्**—१ आ०, शब्दे उन्दे च ( धड़ाके का शब्द करना), लट्—क्नूयते, लिट्—चुक्नूये, लुट्—क्नूयिता, लृट्—क्नूयिष्यते, लुङ—अक्नूयिष्ट । णिच्—लट्—क्नोपयति—ते, लुङ—अचुक्नुपत्—त, सन्—चुक्नूयिषते ।

**क्रन्द्**—१ प०, रोदने आह्वाने च (रोना, पुकारना), लट्—क्रन्दति, लिट्—चक्रन्द, लुट्—क्रन्दिता, लृट्—क्रन्दिष्यति, लृङ—अक्रन्दिष्यत्, आ० लिङ—क्रन्द्यात्, लुङ—अक्रन्दीत् । सन्—चिक्रन्दिषति । णिच्—लट्—क्रन्दयति—ते, लुङ—अचक्रन्दत्—त, कर्म०—क्रन्द्यते, क्त—क्रन्दित,(आत्मने० भी है, लट्—क्रन्दते, लुङ—अक्रन्दिष्ट) ।

**क्रन्द्**—१० उ०, **क्रन्द** सातत्ये (निरन्तर रोना), (प्रायः आ के साथ), लट्—क्रन्दयति—ते, लिट्—क्रन्दयामास—बभूव, लुट्—क्रन्दयिता, लृट्—क्रन्दयिष्यति—ते, लृङ—अक्रन्दयिष्यत्—त, लुङ—अचक्रन्दत्—त, क्त—क्रन्दित ।

**क्रम्**—१ उ० और ४ प०, पादविक्षेपे (चलना, पैर रखना), लट्—क्रामति, क्राम्यति—क्रमते, लिट्—चक्राम—चक्रमे, लुट्—क्रमिता, क्रन्ता, लृट्—क्रमिष्यति, क्रंस्यते, लृङ—अक्रमिष्यत्—अक्रंस्यत, आ० लिङ—क्रम्यात्, क्रंसीष्ट, लुङ—अक्रमीत्—अक्रंस्त । सन्—चिक्रमिषति, चिक्रंसते । णिच्—क्रमयति—ते, लुङ—अचिक्रमत्—त, कर्म०—लट्—क्रम्यते, क्त—क्रान्त, क्त्वा—क्रमित्वा, क्रान्त्वा, क्रन्त्वा, ल्यप्—आक्रम्य ।

**क्री**—९ उ०, द्रव्यविनिमये (खरीदना), लट्—क्रीणाति या क्रीणीते, लिट्—चिक्रीय या चिक्रिये, लुट्—क्रेता, लृट्—क्रेष्यति—ते, आ० लिङ—क्रीयात्, क्रेषीष्ट, लुङ—अक्रैषीत्, अक्रेष्ट । सन्—चिक्रीषति—ते, कर्म० लट्—क्रीयते, लुङ—अक्रायि, क्त—क्रीत, णिच्—क्रापयति—ते, लुङ—अचिक्रपत् ।

**क्रीड्**—१ प०, क्रीडायाम् ( खेलना, आनन्दित होना), लट्–क्रीडति, लिट्–चिक्रीड, लुट्–क्रीडिता, लृट्–क्रीडिष्यति, लृङ–अक्रीडिष्यत्, आ० लिङ–क्रीडयात्, लुङ–अक्रीडीत्, सन्–चिक्रीडिषति, कर्म०–क्रीडयते, लुङ–अक्रीडि, णिच्–क्रीडयति–ते, लुङ–अचिक्रीडत्, क्त–क्रीडित, क्त्वा–क्रीडित्वा, तुम्–क्रीडितुम् ।

**क्रुध्**—४ प० क्रोधे ( क्रुद्ध होना), लट्–क्रुध्यति, लिट्–चुक्रोध, लुट्–क्रोद्धा, लृट्–क्रोत्स्यति, लृङ–अक्रोत्स्यत्, आ० लिङ–क्रुध्यात् लुङ–अक्रुधत्, क्त–क्रुद्ध, कर्म०–लट्–क्रुध्यते, लुङ–अक्रोधि, णिच्–क्रोधयति–ते, लुङ–अचुक्रुधत्–त, सन्–चुक्रुत्सति ।

**क्रुश्**—१ प०, आह्वाने रोदने च ( पुकारना, रोना), लट्–क्रोशति, लिट्–चुक्रोश, लुट्–क्रोष्टा, लृट्–क्रोक्ष्यति, लृङ–अक्रोक्ष्यत्, आ० लिङ–क्रुश्यात्, लुङ–अक्रुक्षत्, कर्म० लट्–क्रुश्यते, लुङ–अक्रोशि, णिच्–क्रोशयति–ते, लुङ–अचुक्रुशत्–त, सन्–चक्रुक्षति, क्त–क्रुष्ट, क्त्वा–क्रुष्ट्वा, तुम्–क्रोष्टुम् ।

**क्रेव्**—१ आ०, सेवने ( सेवा करना), लट्–क्रेवते, लिट्–चिक्रेवे, लुट्–क्रेविता, लुङ–अक्रेविष्ट ।

**क्लन्द्**—१ प०, रोदने (रोना, बुलाना), लट्–क्लन्दति, लिट्–चक्लन्द, लुट्–क्लन्दिता, लुङ–अक्लन्दीत् ।

**क्लद्**—४ आ०, वैकल्ये ( व्याकुल होना), लट्–क्लद्यते, लिट्–चक्लदे, लुट्–क्लदिता, लुङ–अक्लदिष्ट ।

**क्लप्**—१० उ०, अव्यक्तशब्दे ( कानाफूंसी करना), लट्–क्लपयति–ते, लिट्–क्लपयाञ्चकार–चक्रे, लुट्–क्लपयिता, लुङ–अचिक्लपत् ।

**क्लम्**—१ और ४ प०, ग्लानौ (थका हुआ होना), लट्–क्लामति–क्लाम्यति, लिट्–चक्लाम, लुट्–क्लमिता, लृट्–क्लमिष्यति, आ० लिङ–क्लम्यात्, लुङ–अक्लमत्, सन्–चिक्लमिषति, क्त–क्लान्त, क्त्वा–क्लमित्वा–क्लान्त्वा ।

**क्लिद्**—४ प०, आर्द्रीभावे (गीला होना), लट्–क्लिद्यति, लिट्–चिक्लेद, लुट्–क्लेदिता–क्लेत्ता, लृट्–क्लेदिष्यति–क्लेत्स्यति, लृङ–अक्लेदिष्यत्–अक्लेत्स्यत्, आ० लिङ–क्लिद्यात्, लुङ–अक्लिदत्, क्त–क्लिन्न, कर्म०–क्लिद्यते, लुङ–अक्लेदि ।

**क्लिन्द्**—( क्लिदि), १ उ०, परिदेवने ( रोना), लट्–क्लिन्दति–ते, लिट्–चिक्लिन्द–न्दे, लुट्–क्लिन्दिता, लृट्–क्लिन्दिष्यति–ते, लृङ–अक्लिन्दिष्यत्–त, लुङ–अक्लिन्दीत्–अक्लिन्दिष्ट, कर्म०–क्लिन्द्यते ।

**क्लिश्**—४ आ०, उपतापे (कभी पर० भी है, दुःखित होना, खिन्न होना), लट्–क्लिश्यते, लिट्–चिक्लिशे, लुट्–क्लेशिता, लृट्–क्लेशिष्यते, लृङ–अक्लेशिष्यत्, आ० लिङ–क्लेशिषीष्ट, लुङ–अक्लेशिष्ट, सन्–चिक्लिशिषते, चिक्लेशिषति । कर्म०–लट्–क्लिश्यते, लुङ–अक्लेशि, क्त–क्लिष्ट या क्लिशित ।

**क्लिश्**—९ प०, विबाधने (दुःखित करना), लट्—क्लिश्नाति, लिट्—चिक्लेश, लुट्—क्लेष्टा, लृट्—क्लेशिष्यति—क्लेक्ष्यति, लृङ—अक्लेशिष्यत्—अक्लेक्ष्यत्, आ० लिङ—क्लिश्यात्, लुङ—अक्लेशीत्—अक्लिक्षत्, सन्—चिक्लिशिषति—चिक्लेशिषति—चिक्लिक्षति, क्त—क्लिशित या क्लिष्ट, क्त्वा—क्लिशित्वा, क्लिष्ट्वा ।

**क्लीब्**—१ आ०, अधाष्ट्र्ये (दब्बू होना), लट्—क्लीबते, लिट्—चिक्लीबे, लुट्—क्लीबिता, लुङ—अक्लीबिष्ट ।

**क्लेश्**—१ आ०, अव्यक्तायां वाचि (अस्पष्ट बोलना ), लट्—क्लेशते, लिट्—चिक्लेशे, लुट्—क्लेशिता, लृट्—क्लेशिष्यते; सन्—चिक्लेशिषते ।

**क्वण्**—१ प०, अव्यक्त शब्दे (गूँजना, अस्पष्ट शब्द करना), लट्—क्वणति, लिट्—चक्वाण, लुट्—क्वणिता, लृट्—क्वणिष्यति, लृङ—अक्वणिष्यत्, आ० लिङ—क्वण्यात्, लुङ—अक्वणीत्—अक्वाणीत् । क्त—क्वणित, णिच्—क्वणयति—ते, लुङ—अचिक्वणत्—त, सन्—चिक्वणिषति ।

**क्वथ्**—१ प०, निष्पाके ( पकाना, उवालना), लट्—क्वथति, लिट्—चक्वाथ, लुट्—क्वथिता, लृट्—क्वथिष्यति, लृङ—अक्वथिष्यत्, आ० लिङ—क्वथ्यात्, लुङ—अक्वथीत्, सन्—चिक्वथिषति ।

**क्षज्**—१ आ०, वधे ( मारना), लट्—क्षजते, लृट्—क्षजिष्यते, लुङ—अक्षजिष्ट ।

**क्षंज्**—१ आ०, गतौ दाने च (चलना, देना), लट्—क्षंजते, लिट्—चक्षंजे, लुट्—क्षंजिता, लुङ—अक्षंजिष्ट । (यह १ प०, १० उ० भी है) लट्—क्षंजयति—ते—क्षंजति, लुट्—क्षंजयिता—क्षंजिता, लुङ—अचक्षंजत्—त—अक्षंजीत् ।

**क्षण्**—८ उ०, हिंसायाम् ( मारना, हानि पहुँचाना ), लट्—क्षणोति—क्षणुते, लिट्—चक्षाण, चक्षणे, लोट्—म० प्र० एक० क्षणु, क्षणुष्व, लुट्—क्षणिता, लृट्—क्षणिष्यति—ते, लृङ—अक्षणिष्यत्—त, लुङ—अक्षणीत्—अक्षणिष्ट—अक्षत । णिच्-लट्—क्षाणयति—ते, सन्—चिक्षणिषति, क्त्वा, क्षणित्वा, क्षत्वा ।

**क्षप्**—१० उ०, क्षेपे प्रेरणे च ( भेजना, प्रेरणा देना), लट्—क्षपयति—ते, लिट्—क्षपयाञ्चकार—चक्रे, लुट्—क्षपयिता, लृट्—क्षपयिष्यति—ते, लृङ—अक्षपयिष्यत्—त, लुङ—अचक्षपत्—त, सन्—चिक्षपयिषति—ते ।

**क्षम्**—१ आ०, सहने ( सहना, क्षमा करना), लट्—क्षमते, लिट्—चक्षमे, लुट्—क्षमिता, क्षन्ता, लृट्—क्षमिष्यते, क्षंस्यते, लृङ—अक्षमिष्यत्—त, आ० लिङ—क्षमिषीष्ट, क्षंसीष्ट, लुङ—अक्षमिष्ट, अक्षंस्त, सन्—चिक्षमिषते, चिक्षंसते । णिच्—क्षमयति—ते, लुङ—अचिक्षमत्—त, क्त—क्षान्त—क्षमित, क्त्वा—क्षमित्वा—क्षान्त्वा, कर्म०—क्षम्यते, लुङ—अक्षमि ।

**क्षम्**—४ प०, सहने (सहना), लट्—क्षाम्यति, लिट्—चक्षाम, लुट्—क्षमिता या क्षन्ता, लृट्—क्षमिष्यति—क्षंस्यति, लृङ—अक्षमिष्यत्—अक्षंस्यत्, आ० लिङ—क्षम्यात्, लुङ—अक्षमत् । सन्—चिक्षमिषति—चिक्षंसति ।

**क्षर्**—१ प०, संचलने ( बहना), लट्–क्षरति, लिट्–चक्षार, लुट्–क्षरिता, लृट्–क्षरिष्यति, लृङ–अक्षरिष्यत्, लुङ–अक्षारीत्, सन्–चिक्षरिषति। क्त–क्षरित।

**क्षल्**—१० उ०, शौचकर्मणि (धोना, साफ करना), लट्–क्षालयति–ते, लिट्–क्षालयाञ्चकार–चक्रे, लुट्–क्षालयिता, लृट्–क्षालयिष्यति–ते, लृङ–अक्षालयिष्यत्–त, आ० लिङ–क्षाल्यात्–क्षालयिषीष्ट, लुङ–अचिक्षलत्–त, सन्–चिक्षालयिषति–ते। क्त–क्षालित। (यह १ प० भी होती है,) लृट्–क्षलिष्यति, लुङ–अक्षालीत्। सन्–चिक्षलिषति।

**क्षि**—१ प०, क्षये (क्षीण होना), लट्–क्षयति।
**क्षि**—५ प०, हिंसायाम् ( नष्ट करना), लट्–क्षिणोति।
क्षि–६ प०, निवासगत्योः (रहना, जाना), लट्–क्षियति।
लिट्–चिक्षाय, लुट्–क्षेता, लृट्–क्षेष्यति, लृङ–अक्षेष्यत्, आ० लिङ–क्षीयात्, लुङ–अक्षैषीत्, सन्–चिक्षीषति। णिच्–क्षाययति–ते, लुङ–अचिक्षयत्–त, क्त–क्षित–क्षीण, क्त्वा–क्षित्वा, कर्म–क्षीयते।

**क्षिण्**—८ उ० हिंसायाम् ( हिंसा करना ), लट्–क्षिणोति–क्षेणोति, क्षिणुते, लिट्–चिक्षेण, चिक्षिणे, लुट्–क्षेणिता, लृट्–क्षेणिष्यति–ते, लृङ–अक्षेणिष्यत्–त, लुङ–अक्षेणीत् या अक्षेणिष्ट या अक्षित, सन्–चिक्षिणिषति–ते, चिक्षेणिषति–ते, क्त्वा–क्षिणित्वा–क्षेणित्वा–क्षित्वा।

**क्षिप्**—४ प०, प्रेरणे ( फेंकना), लट्–क्षिप्यति, लिट्–चिक्षेप, लुट्–क्षेप्ता, लृट्–क्षेप्स्यति, लृङ–अक्षेप्स्यत्, लुङ–अक्षैप्सीत्, आ० लिङ–क्षिप्यात्। कर्म०–क्षिप्यते, लुङ–अक्षेपि, णिच्–लट्–क्षेपयति–ते, लुङ–अचिक्षिपत्–त, सन्–चिक्षिप्सति, क्त–क्षिप्त।

**क्षिप्**–६ उ० (फेंकना), लट्–क्षिपति-ते, लिट्–चिक्षेप-चिक्षिपे, लुट्–क्षेप्ता, लृट्–क्षेप्स्यति-ते, लुङ–अक्षैप्सीत्-अक्षिप्त, सन्-चिक्षिप्सति-ते।

**क्षिव्**–१, ४ प०, निरसने (थूकना), लट्–क्षेवति, क्षीव्यति, लिट्–चिक्षेव, लृट्–क्षेविष्यति, लुङ–अक्षेवीत्, सन्–चिक्षेविषति, चुक्ष्यूषति।

**क्षी**–४ आ०, हिंसायाम् (हिंसा करना), लट्–क्षीयते, लिट्–चिक्षिये, लुङ–अक्षेष्ट। णिच्–क्षाययति-ते, अचिक्षयत्-त।

**क्षी**–९ प०, (हिंसा करना), लट्–क्षीणाति, लिट्–चिक्षाय, लुट्–क्षेता, लृट्–क्षेष्यति, लृङ–अक्षेष्यत्, आ० लिङ–क्षीयात्, लुङ–अक्षैषीत्।

**क्षीज्**–१ प०, अव्यक्ते शब्दे (अस्पष्ट बोलना), लट्–क्षीजति, लिट्–चिक्षीज, लुट्–क्षीजिता, लृट्–क्षीजिष्यति, लृङ–अक्षीजिष्यत्, **आ०** लिङ–क्षीज्यात्, लुङ–अक्षीजीत्, सन्–चिक्षीजिषति। **णिच्**–क्षीजयति-ते, लुङ–अचिक्षिजत्-त।

**क्षीब्**—१ आ०, मदे (मत्त होना), लट्—क्षीबते, लिट्—चिक्षीबे, लुट्—क्षीबिता, लृट्—क्षीबिष्यते, लुङ—अक्षीबिष्ट। णिच्—लट्—क्षीबयति—ते, लुङ—अचिक्षीवत्—त, सन्—चिक्षीबिषते।

**क्षीव्**—१ प०, निरसने (थूकना), लट्—क्षीवति, लिट्—चिक्षीव, लुट्—क्षीविता, लुङ—अक्षीवीत्।

**क्षु**—२ प० शब्दे (खाँसना), लट्—क्षौति, लिट्—चुक्षाव, लुट्—क्षविता, लृट्—क्षविष्यति, लृङ—अक्षविष्यत्, लुङ—अक्षावीत्, आ० लिङ—क्षूयात्, सन्—चुक्षूषति, कर्म० लट्—क्षूयते, लुङ—अक्षावि। णिच्—क्षावयति—ते, लुङ—अचुक्षवत्—त, तुम्—क्षवितुम्।

**क्षुद्**—७ उ०, संपेषणे (पीसना, चूर करना), लट्—क्षुणत्ति—क्षुन्ते, लिट्—चुक्षोद-चुक्षुदे, लुट्—क्षोत्ता, लृट्—क्षोत्स्यति—ते, आ० लिङ—क्षुद्यात्—क्षुत्सीष्ट, लुङ—अक्षुदत्-अक्षौत्सीत्, अक्षुत्त, सन्—चुक्षुत्सति—ते। क्त—क्षुण्ण।

**क्षुध्**—४ प०, बुभुक्षायाम् (भूखा होना), लट्—क्षुध्यति, लिट्—चुक्षोध, लुट्—क्षोद्धा, लृट्—क्षोत्स्यति, लृङ—अक्षोत्स्यत्, आ० लिङ—क्षुध्यात्, लुङ—अक्षुधत्। णिच्—लट्—क्षोधयति—ते, लुङ—अचुक्षुधत्—त, क्त—क्षुधित, क्त्वा—क्षुधित्वा, क्षोधित्वा, कर्म० लट्—क्षुध्यते, लुङ—अक्षोधि।

**क्षुभ्**—१ आ०, संचलने (क्षुब्ध होना, तंग करना), लट्—क्षोभते, लिट्—चुक्षुभे, लुट्—क्षोभिता, लृट्—क्षोभिष्यते, लृङ—अक्षोभिष्यत, आ० लिङ—क्षोभिषीष्ट, लुङ—अक्षुभत्—अक्षोभिष्ट, सन्—चुक्षुभिषते, चुक्षोभिषते। णिच्—लट्—क्षोभयति-ते, लुङ—अचुक्षुभत्-त, कर्म०—क्षुभ्यते, लुङ—अक्षोभि, क्त—क्षुभित-क्षोभित।

**क्षुभ्**—४ और ९ प० (काँपना), लट्—क्षुभ्यति और क्षुभ्नाति, लिट्—चुक्षोभ, लुट्—क्षोभिता, लृट्—क्षोभिष्यति, लृङ—अक्षोभिष्यत्, आ० लिङ—क्षुभ्यात्, लुङ—अक्षुभत् (४), अक्षोभीत् (९), क्त—क्षुब्ध, क्षुभित।

**क्षुर्**—६ प०, विलेखने (चिह्न लगाना, खुरचना), लट्—क्षुरति, लिट्—चुक्षोर, लुट्—क्षोरिता, लुङ—अक्षोरीत्।

**क्षै**—१ प०, क्षये (नष्ट करना), लट्—क्षायति, लिट्—चक्षौ, लुट्—क्षाता, लृट्—क्षास्यति, लृङ—अक्षास्यत्, लुङ—अक्षासीत्। णिच्—लट्—क्षपयति-ते, लुङ—अचिक्षपत्-त। सन्—चिक्षासति, क्त—क्षाम।

**क्ष्णु**—२ प०, तेजने (तेज करना), लट्—क्ष्णौति, लिट्—चुक्ष्णाव, लुट्—क्ष्णविता, लृट्—क्ष्णविष्यति, लृङ—अक्ष्णविष्यत्, लुङ—अक्ष्णावीत्, सन्—चुक्ष्णूषति, क्त—क्ष्णुत।

**क्ष्माय्**—१ आ०, विधूनने (हिलाना), लट्—क्ष्मायते, लिट्—चक्ष्माये, लुट्—क्ष्मायिता, लृट्—क्ष्मायिष्यते, लुङ—अक्ष्मायिष्ट, णिच्—क्ष्मापयति-ते, लुङ—अचक्ष्मपत्-त, सन्—चिक्ष्मायिष्यते, क्त-क्ष्मायित।

**क्ष्विड्**–१ उ०, ४ प०, स्नेहमोचनयोः (गीला होना, मुक्त करना), लट्–क्ष्वेडति-ते, क्ष्विड्यति, लिट्–चिक्ष्वेड, चिक्ष्विड़े, लुट्–क्ष्वेडिता, ऌट्–क्ष्वेडिष्यति–ते, ऌङ–अक्ष्वेडिष्यत्-त, लुङ–**अक्ष्विडत्**–अक्ष्वेडिष्ट, अक्ष्विडत्, क्त–क्ष्वेडित या क्ष्विट्ट ।

**क्ष्विद्**–१ उ०, ४ प०, स्नेहमोचनयोः (गीला होना, मुक्त करना), लट्–क्ष्वेदति–ते-क्ष्विद्यति, लिट्–चिक्ष्वेद-चिक्ष्विदे, लुट्–क्ष्वेदिता, ऌट्–क्ष्वेदिष्यति-ते, ऌङ–अक्ष्वेदिष्यत्-त, लुङ–(४ प०), अक्ष्विदत् १, अक्ष्विदत्, अक्ष्वेदिष्ट, सन्–चिक्ष्विदिषति-ते, चिक्ष्वेदिषति-ते । क्त–क्ष्विण्ण या क्ष्वेदित ।

**क्ष्वेल्**–१ प०, चलने (काँपना), लट्–क्ष्वेलति, लिट्–चिक्ष्वेल, लुट्–क्ष्वेलिता, लुङ–अक्ष्वेलीत् । णिच्–लट्–क्ष्वेलयति-ते, लुङ–अचिक्ष्वेलत्-त, सन्–चिक्ष्वेलिषति ।

## ख

**खक्ख्**––१ प०, हसने (हँसना), लट्–खक्खति, लिट्–चखक्ख, लुट्–खक्खिता, ऌट्–खक्खिष्यति, लुङ–अखक्खीत्, आ० लिङ–खक्ख्यात् ।

**खच्**–९ प०, भूतप्रादुर्भावे (दुबारा उत्पन्न या प्रकट होना), लट्–खच्नाति, लिट्–चखाच, लुट्–खचिता, ऌट्–खचिष्यति, लुङ–अखचीत्–अखाचीत्, सन्–चिखचिषति ।

**खज्**–१ प०, (घटादि) मन्थे (मथना), लट्–खजति, क्त–खजित ।

**खञ्ज्**–१ प०, गतिवैकल्ये (लँगड़ा कर चलना), लट्–खञ्जति, लिट्–चखंज, लुट्–खंजिता, ऌट्–खंजिष्यति, ऌङ–अखंजिष्यत्, लुङ–अखंजीत्, आ० लिङ–खंज्यात् । क्त–खंजित ।

**खट्**–१ प०, काङ्क्षायाम् (चाहना, खोजना), लट्–खटति, लिट्–चखाट, लुट्–खटिता, ऌट्–खटिष्यति, ऌङ–अखटिष्यत्, लुङ–आखटीत्–अखाटीत् ।

**खट्ट्**––१० उ०, संवरणे ( ढकना), लट्–खट्टयति–ते, लिट्–खट्टयाञ्चकार–चक्रे, लुङ–अचखट्टत्–त ।

**खण्ड्**––१ आ०, भेदने (तोड़ना), लट्–खंडते । क्त–खंडित ।

**खण्ड्**––१० उ० (तोड़ना), लट्–खंडयति–ते, ऌङ–अचखण्डत्–त, सन्–चिखंडयिषति–ते ।

**खद्**–१– प०, स्थैर्यहिंसाभक्षणेषु ( स्थिर होना, हिंसा करना, खाना), लट्–खदति, लिट्–चखाद, लुट्–खदिता, ऌट्–खदिष्यति, ऌङ–अखदिष्यत्, लुङ–अखदीत्–अखादीत्, आ० लिङ–खद्यात्, कर्म०–लट्– खद्यते, लुङ–अखादि । णिच्–लट्–खादयति–ते, लुङ–अचीखदत्–त, सन्–चिखदिषति, क्त–खदित ।

**खन्**––१ उ०, अवदारणे (खोदना), लट्–खनति–ते, लिट्–चखान या चख्ने, लुट्–खनिता, ऌट्–खनिष्यति–ते, ऌङ–अखनिष्यत्–त, लुङ–अखनीत्,

अखानीत्, अखनिष्ट, आ० लिङ्–खन्यात्, खायात्, खनिषीष्ट। कर्म०–खन्यते, खायते, लुङ्–अखानि। णिच्–खानयति–ते, लुङ्–अचीखनत्–त, सन्–चिखनिषति–ते, क्त–खात, क्त्वा–खात्वा या खनित्वा (उद् के साथ उत्खाय, उत्खन्य)।

**खब्**––१ प०, गतौ (जाना), लट्–खबति, लिट्–चखाव, लुङ्–अखबीत्, अखाबीत्।

**खर्ज्**––१ प०, पूजाव्यथनयोः (पूजा करना, दुःख देना, दुःखित होना), लट्–खर्जति, लिट्–चखर्ज, लुट्–खर्जिता, लृट्–खर्जिष्यति, लृङ्–अखर्जिष्यत्, लुङ्–अखर्जीत्। क्त–खर्जित।

**खर्द्**––१ प०, दन्दशूके (दाँत से काटना), लट्–खर्दति, लिट्–चखर्द, लुट्–खर्दिता, क्त–खर्दित।

**खर्व्**––१ प०, खर्वे (गर्वयुक्त होना, जाना, हिलना), लट्–खर्वति, लिट्–चखर्व, लुङ्–अखर्वीत्। क्त–खर्वित।

**खल्**––१ प०, चलने संचये च (चलना, इकट्ठा करना), लट्–खलति, लिट्–चखाल, लुट्–खलिता, लृट्–खलिष्यति, लुङ्–अखालीत्। क्त–खलित।

**खव्**––९ प०, भूतप्रादुर्भावे (प्रकट होना, पवित्र करना), लट्–खव्नाति।

**खष्**––१ प०, हिंसायाम् (मारना), लट्–खषति।

**खाद्**––१ प०, भक्षणे (खाना), लट्–खादति, लिट्–चखाद, लुट्–खादिता, लृट्–खादिष्यति, लृङ्–अखादिष्यत्, लुङ्–अखादीत्, आ० लिङ्–खाद्यात्। क्त–खादित।

**खिद्**––६ प०, परिघाते परितापे च (चोट मारना, दुःख देना), लट्–खिन्दति, लिट्–चिखेद, लुट्–खेत्ता, लृट्–खेत्स्यति, लृङ्–अखेत्स्यत्, लुङ्–अखैत्सीत्, सन्–चिखित्सति। क्त–खिन्न।

**खिद्**––४ और ७ आ०, दैन्ये (खिन्न होना, दीन होना), लट्–खिद्यते, खिन्त्ते, लिट्–चिखिदे, लुट्–खेत्ता, लृट्–खेत्स्यते, लुङ्–अखित्त। क्त–खिन्न।

**खिल्**––६ प०, उञ्छे (कण इकट्ठा करना), लट्–खिलति।

**खुज्**––१ प०, स्तेयकरणे (चुराना), लट्–खोजति। क्त–खुग्न।

**खुर्**––६ प०, छेदने (काटना), लट्–खुरति, लुङ्–अखोरीत्।

**खूर्द्**––१ आ०, क्रीडायाम् (खेलना), लट्–खूर्दते।

**खेल्**––१ प०, चलने (हिलाना, इधर-उधर जाना, खेलना), लट्–खेलति, लिट्–चिखेल, लुट्–खेलिता, लृट्–खेलिष्यति, लृङ्–अखेलिष्यत्, लुङ्–अखेलीत्। णिच्–लट्–खेलयति, लुङ्–अचिखेलत्, सन्–चिखेलिषति।

**खेला**––विलासे (क्रीड़ा करना), लट्–खेलायति, लिट्–खेलायाञ्चकार लुट्–खेलायिता, लुङ्–अखेलायीत्।

**खेव्**––१ आ०, सेवने (सेवा करना), लट्–खेवते, लिट्–चिखेवे, लृट्–खेविष्यति, लुङ्–अखेविष्ट। णिच्–खेवयति–ते।

**खै**—१ प०, खेदने ( चोट पहुँचाना ), लट्—खायति, लृट्—खास्यति, लुङ—अखासीत् ।

**खोर्**—१ प०, गतिप्रतिघाते (लँगड़ाना), लट्—खोरति, लुङ—अखोरीत् ।

**ख्या**—२ प०, प्रकथने ( कहना, सुनाना), लट्—ख्याति, लङ—प्र० पु० बहु०, अख्यान्—अख्युः । क्त—ख्यात ।

### ग

**गज्**—१ प०, शब्दे मदे च (गरजना, मत्त होना), लट्—गजति, लिट्—जगाज, लुट्—गजिता, लुङ—अगजीत्—अगाजीत् ।

**गञ्ज्**—१ प० ( विशेष ढंग से शब्द करना ) लट्—गञ्जति, लिट्—जगञ्ज, लुट्—गञ्जिता, लुङ—अगञ्जीत् ।

**गड्**—१ प०, सेचने ( सींचना, खींचना), लट्—गडति, लिट्—जगाड, लुट्—गडिता, लुङ—अगडीत् ।

**गण्**—१० उ०, संख्याने (गिनना), लट्— गणयति—ते, लिट्—गणयाञ्चकार—चक्रे, लुट्—गणयिता, लृट्—गणयिष्यति—ते, लृङ—अगणयिष्यत्—त, लुङ—अजीगणत्—त, अजगणत्—त, आ० लिङ—गण्यात्—गणयिषीष्ट, सन्—जिगणयिषति—ते । क्त—गणित, क्त्वा—गणयित्वा, विगणय्य, कर्म० लट्—गण्यते ।

**गद्**—१ प०, व्यक्तायां वाचि ( बोलना, कहना), लट्—गदति, लिट्—जगाद, लुट्—गदिता, लृट्—गदिष्यति, लृङ—अगदिष्यत्, लुङ—अगदीत्—अगादीत्, आ० लिङ—गद्यात्, सन्—जिगदिषति । णिच्—लट्—गादयति—ते, लुङ—अजीगदत्—त, कर्म० लट्—गद्यते, लुङ—अगादि, क्त्वा—गदित्वा, तुम्—गदितुम्, क्त—गदित ।

**गन्ध्**—१० आ०, अर्दने (हानि पहुँचाना, पूछना, जाना), लट्—गन्धयते, लुङ—अजगन्धत ।

**गम्**—१ प०, गतौ (जाना), लट्—गच्छति, लिट्—जगाम, लुट्—गन्ता, लृट्—गमिष्यति, लृङ—अगमिष्यत्, लुङ—अगमत्, आ० लिङ—गम्यात् । सन्—जिगमिषति । कर्म०— गम्यते, लुङ—अगामि । णिच्—गमयति—ते, लुङ—अजीगमत्—त । क्त—गत, क्त्वा—गत्वा, तुम्—गन्तुम् ।

**गर्ज्**—१ प०, शब्दे (गरजना), लट्—गर्जति, लिट्—जगर्ज, लुट्—गर्जिता, लृट्—गर्जिष्यति, लुङ—अगर्जीत्, लृङ—अगर्जिष्यत्, आ० लिङ—गर्ज्यात्, सन्—जिगर्जिषति ।

**गर्ज्**—१० उ०, (गरजना), लट्—गर्जयति—ते, लुङ—अजगर्जत्—त ।

**गर्द्**—१ प०, शब्दे ( चिल्लाना, शब्द करना), लट्—गर्दति, लिट्—जगर्द, लृट्—गर्दिष्यति, लुङ—अगर्दीत् ।

**गर्द्**—१० उ०, ( शब्द करना), लट्—गर्दयति—ते, लिट्—गर्दयाञ्चकार—चक्रे ।

**गर्ध्**—१० उ०, अभिकाङ्क्षायाम् (चाहना), लट्—गर्धयति-ते, लिट्—गर्धयांचकार—चक्रे, लुङ्—अजगर्धत्—त ।

**गर्ब्**—१ प०, (जाना), लट्—गर्बति, लिट्—जगर्ब, लुट्—गर्बिता, ऌट्—गर्बिष्यति ।

**गर्व्**—१ प०, दर्पे ( गर्वयुक्त होना), लट्—गर्वति , लिट्—जगर्व, लुट्—गर्विता, लुङ्—अगर्वीत्, सन्—जिगर्विषति ।

**गर्व्**—१० आ०, माने (गर्व करना), लट्—गर्वयते, लुङ्—अजगर्वत, सन्—जिगर्वयिषते ।

**गर्ह्**—१ आ०, कुत्सायाम्, ( निन्दा करना), लट्—गर्हते, लिट्—जगर्हे, लुट्—गर्हिता, ऌट्—गर्हिष्यते, ऌङ्—अगर्हिष्यत, लुङ्—अगर्हिष्ट, लिङ्—गर्हिषीष्ट । णिच्—गर्हयति—ते, लुङ्—अजगर्हत्—त, सन्—जिगर्हिषते ।

**गर्ह्**—१० उ०, १ प०, विनिन्दने ( निन्दा करना, बुरा भला कहना), लट्—गर्हयति—ते, गर्हति, लिट्—गर्हयांचकार—चक्रे आदि, जगर्ह, लुट्—गर्हयिता, गर्हिता, ऌट्—गर्हयिष्यति—ते, गर्हिष्यति, लुङ्—अजगर्हत्—त, अगर्हीत् । सन्—जिगर्हयिषति—ते, जिगर्हिषति ।

**गल्**—१ प०, भक्षणे स्रावे च (खाना, गिरना, बहना), लट्—गलति, लिट्—जगाल, लुट्—गलिता, ऌट्—गलिष्यति, ऌङ्—अगलिष्यत्, लुङ्—अगालीत्, सन्—जिगलिषति, कर्म० लट्—गल्यते, लुङ्—अगालि ।

**गल्**—१० आ०, स्रवणे ( बहना, निकालना), लट्—गालयते, लिट्—गालयांचक्रे, लुङ्—अजीगलत, क्त—गलित ।

**गल्भ्**—१ आ०, धार्ष्ट्ये (ढीठ होना) (प्रायः प्र के साथ), लट्—गल्भते, लिट्—जगल्भे, लुङ्—अगल्भिष्ट, सन्—जिगल्भिषते ।

**गवेष्**—१० उ०, मार्गणे (ढूंढ़ना, खोजना), लट्—गवेषयति—ते, लिट्—गवेषयांचकार, चक्रे, लुट्—गवेषयिता, ऌट्—गवेषयिष्यति—ते, लुङ्—अजगवेषत्—त । क्त—गवेषित, क्त्वा—गवेषयित्वा ।

**गह्**—१० उ०, गहने (घना होना, गहराई में घुसना), लट्—गहयति—ते, लिट्—गहयांचकार—चक्रे, लुङ्—अजगहत्—त ।

**गा**—१ आ०, (जाना), लट्—गाते, लिट्—जगे, लुट्—गाता, ऌट्—गास्यते, ऌङ्—अगास्यत, लुङ्—अगास्त, आ० लिङ—गासीष्ट । सन्—जिगासते । णिच् लट्—गाययति—ते, लुङ्—अजीगपत्, कर्म० लट्—गायते, लुङ्—अगायि ।

**गा**—३ प०, (प्रशंसा करना), लट्—जिगाति (वैदिक) ।

**गाध्**—१ आ०, प्रतिष्ठालिप्सयोर्ग्रन्थे च (प्रतिष्ठित होना, चाहना, ग्रन्थ बनाना ), लट्—गाधते, लिट्—जगाधे, लुट्—गाधिता, ऌट्—गाधिष्यते, लुङ्—अगाधिष्ट, आ० लिङ—गाधिषीष्ट । कर्म लट्—गाध्यते, लुङ्—अगाधि, सन्—जिगाधिषते ।

**गाह्**—१ आ०, विलोडने (नहाना, डुबकी लगाना), लट्-गाहते, लिट्-जगाहे, लुट्-गाहिता या गाढा, लृट्-गाहिष्यते, घाक्ष्यते, लृङ-अगाहिष्यत, अघाक्ष्यत, लुङ-अगाहिष्ट, अगाढ, आ० लिङ-गाहिषीष्ट, घाक्षीष्ट। णिच्-लट्-गाहयति-ते, लुङ-अजीगहत्-त क्त-गाढ, गाहित, क्त्वा-गाहित्वा-गाढ्वा, तुम्-गाढुम् ।

**गु**—१ आ०, अव्यक्ते शब्दे गतौ च (अस्पष्ट शब्द करना, जाना), लट्-गवते, लिट्-जुगुवे, लुट्-गोता, लृट्-गोष्यते, लृङ-अगोष्यत, लुङ-अगोष्ट, आ० लिङ-गोषीष्ट। सन्-जुगूषते, णिच्-गावयति-ते, लुङ-अजगवत्-त ।

**गु**—६ प०, पुरीषोत्सर्गे (शौच करना), लट्-गुवति, लिट्-जुगाव, लुट्-गुता, लृट्-गुष्यति, लृङ-अगुष्यत्, लुङ-अगुषीत् । क्त-गून ।

**गुज्, गुञ्ज्**- १ प०, कूजने (गूँजना, भिनभिनाना), लट्-गोजति, गुञ्जति, लिट्-जुगोज, जुगुञ्ज, लुङ-अगुजीत्, अगुञ्जीत् ।

**गुड्**—६ प०, रक्षणे (रक्षा करना), लट्-गुडति, लिट्-जुगोड (म० पु० एक० जुगुडिथ), लुङ-अगुडीत् ।

**गुण्**—१० उ०, आमन्त्रणे ( आमंत्रित करना, गुणा करना), लट्-गुणयति-ते, लिट्-गुणयांचकार-चक्रे, लुट्-गुणयिता, लृट्-गुणयिष्यति, लृङ-अगुणयिष्यत्, लुङ-अजूगुणत्-त, सन्-जुगूणयिषति ।

**गुण्ठ्**—१० उ०, वेष्टने, (ढकना, घेरना), लट्-गुण्ठयति-ते, लुङ-अजुगुण्ठत्-त । सन्-जुगुण्ठयिषति । १ प० भी है-लट्-गुण्ठति, लिट्-जुगुण्ठ । क्त-गुण्ठित ।

**गुद्**—१ आ०, क्रीडायाम् (खेलना), लट्-गोदते, लिट्-जुगुदे, लुङ-अगोदिष्ट । क्त-गुदित ।

**गुध्**—१ आ०, (खेल करना), लट्-गोधते, लिट्-जुगुधे, लुट्-गोधिता । शेष गुद् की तरह रूप चलेंगे ।

**गुध्**—४ प०, परिवेष्टने (ढकना), लट्-गुध्यति, लिट्-जुगोध, लुङ-अगोधीत् ।

**गुध्**—६ प०, रोषे (क्रुद्ध होना), लट्-गुध्नाति, (शेष रूप पूर्ववत्)

**गुप्**—१ प०, रक्षणे (रक्षा करना, छिपाना), लट्-गोपायति, लिट्-जुगोप, गोपायांचकार, लुट्-गोपायिता, गोपिता, गोप्ता, लृट्-गोपायिष्यति, गोपिष्यति, गोप्स्यति । लुङ-अगोपायीत्, अगौप्सीत् । सन्-जुगोपायिषति, जुगुपिषति, जुगोपिषति, जुगुप्सति । णिच्-लट्-गोपाययति-ते, गोपयति-ते, लुङ-अजुगोपायत्-त, अजूगुपत्-त, कर्म० लट्-गोपाय्यते, गुप्यते, क्त-गोपायित, गुप्त, क्त्वा-गोपायित्वा, गोपित्वा, गुप्त्वा ।

**गुप्**—१ आ०, निन्दायाम् (निन्दा करना), लट्-जुगुप्सते, लिट्-जुगुप्साञ्चक्रे, लुट्-जुगुप्सिता, लृट्-जुगुप्सिष्यते, लुङ-अजुगुप्सिष्ट, आ० लिङ-जुगुप्सिषीष्ट । कर्म० लट्-जुगुप्स्यते ।

**गुप्**—४ प०, व्याकुलत्वे (व्याकुल होना), लट्–गुप्यति, लिट्–जुगोप, लुट्–गोपिता, लुङ–अगुपत् । णिच्–लट्–गोपयति–ते, लुङ–अजूगुपत्–त । सन्–जुगुपिषति, जुगोपिषति, क्त–गोपित ।

**गुप्**—१० उ०, भाषायां भासने च ( बोलना, चमकना), लट्–गोपयति –ते, लिट्–गोपयांचकार–चक्रे, लुट्–गोपयिता, लुङ–अजूगुपत्–त, सन्–जुगोपिषति–ते, क्त–गोपित ।

**गुफ्, गुम्फ्**—६ प०, ग्रन्थे ( गूँथना), लट्–गुफति, गुम्फति, लिट्–जुगोफ, जुगुम्फ, लुट्–गोफिता, गुम्फिता, लुंङ–अगोफीत्, अगुम्फीत् । क्त–गुफित, गुम्फित, क्त्वा–गुफित्वा ।

**गुर्**—( कुटादि) ६ आ०, उद्यमने (प्रयत्न करना), लट्–गुरते, लिट्–जुगुरे, लुट्–गुरिता, लृट्–गुरिष्यते, लृङ–अगुरिष्यत, आ० लिङ–गुरिषीष्ट, लुङ–अगुरिष्ट । कर्म० लट्–गुर्यते, लुङ–अगोरि । णिच्–लट्–गोरयति–ते, लुङ–अजूगुरत्–त, सन्–जुगुरिषते, क्त–गूर्ण, तुम्–गुरितुम् ।

**गुर्द्**—१ आ०, क्रीडायाम् ( खेलना), लट्–गूर्दते, लृट्–गूर्दिष्यते, लुङ–अगूर्दिष्ट ।

**गुर्द्**—१० उ०, निकेतने ( रहना), लट्–गूर्दयति–ते, लिट्–गूर्दयांचकार–चक्रे, लृट्–गूर्दयिष्यति–ते, लुङ–अजुगूर्दत्–त ।

**गुह्**—१ उ०, संवरणे ( ढकना, गुप्त रखना, छिपाना), लट्–गूहति–ते, लिट्–जुगूह, जुगुहे, लुट्–गूहिता, गोढा, लृट्–गूहिष्यति–ते, घोक्ष्यति–ते, लुङ–अगूहीत्, अगूहिष्ट (५), अघुक्षत्–त, अगूढ (७), आ० लिङ–गुह्यात्, गूहिषीष्ट –घुक्षीष्ट । सन्–जुघुक्षति–ते । कर्म० लट्–गुह्यते, लुङ–अगूहि, णिच्–गूहयति –ते, लुङ–अजूगुहत्–त, क्त–गूढ ।

**गूर्**—४ आ०, हिंसागत्योः (मारना, जाना), लट्–गूर्यते, लिट्–जुगूरे, लुट्–गूरिता, लुङ–अगूरिष्ट । सन्–जुगूरिषते, क्त–गूर्ण ।

**गूर्**—१० आ०, उद्यमने (प्रयत्न करना), लट्–गूरयते, लुङ–अजूगुरत् ।

**गूर्द्**—१० उ०, स्तुतौ (प्रशंसा करना), लट्–गूर्दयति–ते, लुङ–अजुगूर्दत्–त ।

**गृ**—१ प०, सेचने ( सींचना), लट्–गरति, लिट्–जगार, लुट्–गर्ता, लृट्–गरिष्यति, लुङ–अगार्षीत् ।

**गृज्**—१ प०, शब्दे ( गरजना, चिल्लाना), लट्–गर्जति, लिट्–जगर्ज, लुङ–अगर्जीत् । णिच्–लट्–गर्जयति–ते, लुङ–अजीगृजत्–त, अजगर्जत्–त । ( गृञ्ज् धातु भी है) लट्–गृञ्जति, लिट्–जगृञ्ज, लुङ–अगृञ्जीत् ।

**गृध्**—४ प०, अभिकांक्षायाम् (चाहना, लालच करना), लट्–गृध्यति, लिट्–जगर्ध, लुट्–गर्धिता, लुङ–अगृधत् । णिच्–गर्धयति–ते, लुङ–अजीगृधत् –त, अजगर्धत्–त, सन्–जिगर्धिषति, क्त–गृद्ध, क्त्वा–गर्धित्वा–गृद्ध्वा ।

**गृह्**——१ आ०, ग्रहणे (लेना, पकड़ना), लट्–गर्हते, लिट्–जगर्हे, लुट्–गर्हिता, गर्ढा, लृट्–गर्हिष्यते, घर्क्ष्यते, लृङ–अगर्हिष्यत, अघर्क्ष्यत, आ० लिङ–गर्हिषीष्ट, घृक्षीष्ट, लुङ–अगर्हिष्ट, अघृक्षत । सन्–जिगर्हिषते, जिघृक्षते । णिच्–गर्हयति–ते, लुङ–अजीगृहत्–त, अजगर्हत्–त ।

**गृह**——१० आ०, ग्रहणे (पकड़ना), लट्–गृहयते, लिट्–गृहयाञ्चक्रे, लुङ–अजेगृहत । सन्–जिगृहयिषते ।

**गॄ**——६ प०, निगरणे ( खाना, निगलना), लट्–गिरति या गिलति, लिट्–जगार या जगाल, लुट्–गरिता, गरीता या गलिता, गलीता, लृट्–गरिष्यति, गरीष्यति या गलिष्यति, गलीष्यति, लुङ–अगारीत् या अगालीत्, आ० लिङ–गीर्यात् । सन्–जिगरिषति या जिगलिषति, णिच्–गारयति–गालयति, कर्म० लट्–गीर्यते, लुङ–अगारि या अगालि, क्त–गीर्ण ।

**गॄ**——९ प०, शब्दे ( बोलना, पुकारना), लट्–गृणाति, लिट्–जगार, लुट्–गरिता, गरीता, लृट्–गरिष्यति, गरीष्यति, लुङ–अगारीत् । णिच् लट्–गारयति–ते, लुङ–अजीगरत्–त, सन्–जिगरिषति, जिगरीषति, जिगीर्षति, क्त–गीर्ण ।

**गेव्**——१ आ०, सेवने (सेवा करना ), लट्–गेवते, लिट्–जिगेवे, लुङ–अगेविष्ट ।

**गेष्**——१ आ०, अन्विच्छायाम् (ढूँढ़ना), लट्–गेषते, लिट्–जिगेषे, लृट्–गेषिष्यते, लुङ–अगेषिष्ट, क्त–गेष्ण ।

**गै**——१ प०, शब्दे (गाना, गाने के ढंग से बोलना), लट्–गायति, लिट्–जगौ, लुट्–गाता, लृट्–गास्यति, लृङ–अगास्यत्, लुङ–अगासीत्, आ० लिङ–गेयात् । सन्–जिगासति, कर्म० लट्–गीयते, लुङ–अगायि, णिच्–लट्–गापयति–ते, लुङ–अजीगपत्–त, क्त–गीत, क्त्वा–गीत्वा, ल्यप्–प्रगाय ।

**गोष्ठ्**——१ आ०, संघाते (इकट्ठा होना), लट्–गोष्ठते, लिट्–जुगोष्ठे, लुङ–अगोष्ठिष्ट ।

**ग्रन्थ्**——१ आ०, कौटिल्ये ( कुटिल होना), लट्–ग्रन्थते, लिट्–जग्रन्थे, लुट्–ग्रन्थिता, लृट्–ग्रन्थिष्यते, लुङ–अग्रन्थिष्ट । सन्–जिग्रन्थिषते, कर्म० लट्–ग्रन्थ्यते, लुङ–अग्रन्थि, क्त–ग्रन्थित ।

**ग्रन्थ्**——९ प०, सन्दर्भे ( एकत्र करना, बाँधना), लट्–ग्रथ्नाति, लोट्–म० पु० एक० ग्रथान, लिट्–जग्रन्थ, लुट्–ग्रन्थिता, लृट्–ग्रन्थिष्यति, लुङ–अग्रन्थीत्, आ० लिङ–ग्रथ्यात्, कर्म० लट्–ग्रथ्यते, लुङ–अग्रन्थि । णिच्–लट्–ग्रन्थयति–ते, लुङ–अजग्रन्थत्–त, सन्–जिग्रन्थिषति, क्त–ग्रथित, क्त्वा–ग्रथित्वा, ग्रन्थित्वा ।

**ग्रन्थ्**——१० उ०, बन्धने, सन्दर्भे च (इकट्ठा करके गूँथना, कोई रचना करना ), लट्–ग्रन्थयति–ते, लिट्–ग्रन्थयांचकार–चक्रे, लुट्–ग्रन्थयिता, लुङ–अजग्रन्थत्–त, आ० लिङ–ग्रन्थ्यात्, ग्रन्थयिषीष्ट । सन्–जिग्रन्थयिषति–ते । ( १ प० भी है), लट्–ग्रन्थति, लुङ–अग्रन्थीत् ।

**ग्रस्**—१ आ०, अदने (निगलना,), लट्—ग्रसते, लिट्—जग्रसे, लुट्—ग्रसिता,ल्टट्—ग्रसिष्यते, लुङ—अग्रसिष्ट, आ० लिङ—ग्रसिषीष्ट । णिच् लट्—ग्रासयति, लुङ—अजिग्रसत्, सन्—जिग्रसिषते, क्त—ग्रस्त, क्त्वा—ग्रसित्वा या ग्रस्त्वा ।

**ग्रस्**—१० उ०, ग्रहणे (लेना), लट्—ग्रासयति—ते, लुङ—अजिग्रसत्—त ।

**ग्रह्**—९ उ०, उपादाने (लेना, पकड़ना), लट्—गृह्णाति, गृह्णीते, लोट्—म० पु० एक० गृहाण, लिट्—जग्राह, जग्रहे, लुट्—ग्रहीता, ल्टट्—ग्रहीष्यति-ते, लुङ—अग्रहीत्, अग्रहीष्ट, आ० लिङ—गृह्यात्, ग्रहीषीष्ट । सन्—जिघृक्षति-ते, कर्म० लट्—गृह्यते, लुङ—अग्राहि, णिच्—लट्—ग्राहयति-ते, लुङ—अजिग्रहत्—त, क्त—गृहीत, तुम्—ग्रहीतुम् ।

**ग्राम्**—१० उ०, आमन्त्रणे ( निमंत्रित करना), लट्—ग्रामयति—ते, लुङ—अजग्रामत्—त ।

**ग्रुच्**—१ प०, स्तेयकरणे गतौ च (चुराना, जाना), लट्—ग्रोचति, लिट्—जुग्रोच, लुट्—ग्रोचिता, लुङ—अग्रोचत्, अग्रोचीत्, आ० लिङ—ग्रुच्यात् । सन्—जुग्रुचिषति, जुग्रोचिषति, णिच्—लट्—ग्रोचयति—ते, लुङ—अजुग्रुचत्—त ।

**ग्लस्**—१ आ०, अदने (खाना), लट्—ग्लसते, लिट्—जग्लसे, ल्टट्—ग्लसिष्यते, लुङ—अग्लसिष्ट, क्त—ग्लस्त ।

**ग्लह्**—१ आ०, उपादाने (लेना), लट्—ग्लहते, लिट्—जग्लहे, लुङ—अग्लहिष्ट ।

**ग्लुच्**—१ प०, स्तेयकरणे गतौ च (चुराना, जाना), लट्—ग्लोचति, लिट्—जुग्लोच, लुट्—ग्लोचिता, क्त—ग्लुक्त ।

**ग्लुञ्च्**—१ प०, (जाना), लट्—ग्लुञ्चति, लिट्—जुग्लुञ्च, लुट्—ग्लुंचिता, लुङ—अग्लुचत्—अग्लुञ्चीत् ।

**ग्लेप्**—१ आ०, दैन्ये कम्पने च (दीन होना, काँपना), लट्—ग्लेपते, लिट्—जिग्लेपे, ल्टट्—ग्लेपिष्यते, लुङ—अग्लेपिष्ट ।

**ग्लै**—१ प०, हर्षक्षये ( हर्षक्षयो धातुक्षयः ), (तंग होना, खिन्न होना), लट्—ग्लायति, लिट्—जग्लौ, लुट्—ग्लाता, ल्टट्—ग्लास्यति, ल्टङ—अग्लास्यत्, आ० लिङ—ग्लेयात्, ग्लायात्, लुङ-अग्लासीत् । सन्—जिग्लासति, कर्म०—लट्—ग्लायते, लुङ—अग्लायि, णिच्—लट्—ग्लपयति—ते, ग्लापयति—ते, क्त—ग्लान, क्त्वा—ग्लात्वा, ल्यप्—संग्लाय, तुम्—ग्लातुम् ।

## घ

**घघ्**—१ प०, हसने ( हँसना), लट्—घघति, लिट्—जघाघ, लुङ—अघघीत्, अघाघीत् ।

**घट्**—१ आ०, चेष्टायाम् ( काम में लगा रहना, घटना घटित होना), लट्—घटते, लिट्—जघटे, लट्—घटिता, ल्टट्—घटिष्यते, आ० लिङ—घटिषीष्ट,

लुङ–अघटिष्ट । कर्म०–लट्–घट्यते, लुट्–घाटिता, घटिता, लृट्–घटिष्यते, घाटिष्यते, लृङ–अघाटिष्यत, अघटिष्यत, लुङ–अघाटि, अघटि । णिच्–लट्–घटयति–ते, लुङ–अजीघटत्–त, सन्–जिघटिषते ।

**घट्**—१० उ०, भाषायां संघाते च (कहना, इकट्ठा करना), लट्–घाटयति–ते, लिट्–घाटयांचकार–चक्रे, लुङ–अजीघटत्–त । सन्–जिघाटयिषति-ते ।

**घट्ट्**—१ आ० चलने (हिलाना, छूना), लट्–घट्टते, लिट्–जघट्टे, लुट्–घट्टिता, लृट्–घट्टिष्यते, आ० लिङ–घट्टिषीष्ट, लुङ–अघट्टिष्ट । सन्–जिघट्टिषते, क्त–घट्टित ।

**घट्ट्**—१० उ०, चलने (हिलाना, चलाना), लट्–घट्टयति–ते, लुङ–अजघट्टत्–त । सन्–जिघट्टयिषति ।

**घण्ट्**—१० उ०, भाषायाम् ( बोलना), लट्–घण्टयति–ते, लुङ–अजघण्टत्–त । ( १ प० भी है ), लट्–घण्टति, लुङ–अघण्टीत् ।

**घस्**[१]—१ प०, (खाना), लट्–घसति, लङ–अघसत्, लिट्–जघास, लुट्–घस्ता, लृट्–घत्स्यति, लृङ–अघत्स्यत्, लुङ–अघसत् । सन्–जिघत्सति, क्त–घस्त ।

**घिण्ण्**—१ आ०, ग्रहणे (लेना), लट्–घिण्णते, लिट्–जिघिण्णे, लुङ–अघिण्णिष्ट ।

**घु**—१ आ०, शब्दे ( शब्द करना), लट्–घवते, लिट्–जुघुवे, लुङ–अघोष्ट । सन्–जुघूषते, क्त–घुत ।

**घुट्**—१ आ०, परिर्वतने ( लौटाना, बदलना), लट्–घोटते, लिट्–जुघुटे, लुङ–अघुटत्, अघोटिष्ट, क्त–घुटित ।

**घुट्**—६ प०, प्रतिघाते (कुटादि), (चोट मारना), लट्–घुटति, लिट्–जुघोट (म० पु० एक० जुघुटिथ), लुङ–अघुटीत् ।

**घुड्**—६ प०, ( चोट मारना), लट्–घुडति ।

**घुण्**—६ प०, भ्रमणे ( घूमना, मुड़ना ), लट्–घुणति, लिट्–जुघोण, लुट्–घोणिता, लुङ–अघोणीत्, क्त—घुणित ।

**घुण्**—१ आ०, भ्रमणे ( घूमना, चक्कर खाना), लट्–घोणते, लिट्–जुघुणे, लुङ–अघोणिष्ट ।

**घुण्ण्**—ग्रहणे ( लेना, पाना), लट्–घुण्णते, लिट्–जुघुण्णे, लुट्–घुण्णिता, लुङ–अघुण्णिष्ट, क्त–घुण्णित ।

**घुर्**—६ प०, भीमार्थशब्दयोः (भयंकर होना, शब्द करना), लट्–घुरति, लिट्–जुघोर, लुट्–घोरिता, लृट्–घोरिष्यति, लृङ–अघोरिष्यत्, लुङ–अघोरीत् ।

---

**१. यह अपूर्ण धातु है और प्रायः अद् धातु के स्थान पर प्रयुक्त होती है । इसके लिट् लकार में अद् के स्थानीय के रूप में विकल्प से रूप चलते हैं ।**

**घुष्**—१ प०, अविशब्दने (शब्दे इत्यन्ये) (शब्द करना, घोषणा करना), लट्–घोषति, लिट्–जुघोष, लुट्–घोषिता, लृट्–घोषिष्यति, आ० लिङ–घुष्यात्, लङ–अघुषत्, अघोषीत्। णिच्–लट्–घोषयति–ते, लुङ–अजूघुषत्। सन्–जुघोषिषति, जुघुषिषति, क्त–घुषित, घोषित या घुष्ट।

**घष्**—१ आ०, कान्तिकरणे (चमकीला होना), लट्–घोषते, लिट्–जुघुषे, लुङ–अघोषिष्ट। सन्–जुघोषिषते, जुघुषिषते।

**घुष्**—१० उ०, विशब्दने (घोषणा करना), लट्–घोषयति–ते, लिट्–घोषयांचकार–चक्रे, लुट्–घोषयिता, लृट्–घोषयिष्यति-ते, लुङ–अजूघुषत्–त, क्त–घुषित, घुष्ट।

**घूर्**—४ आ०, हिंसावयोहान्योः (हिंसा करना, वृद्ध होना), लट्–घूरते, लुङ–अघूरिष्ट।

**घूर्ण्**—६ उ०, भ्रमणे (इधर उधर घूमना, चक्कर खाना), लट्–घूर्णति, घूर्णते, लिट्–जुघूर्ण, जुघूर्णे, लुट्–घूर्णिता, लृट्–घूर्णिष्यति–ते, लृङ–अघूर्णिष्यत्–त, लुङ–अघूर्णीत्। सन्–जुघूर्णिषति–ते। कर्म०–लट्–घूर्ण्यते, लुङ–अघूर्णि। णिच्–लट्–घूर्णयति–ते, लुङ–अजुघूर्णत्–त, क्त–घूर्णित।

**घृ**—१ प०, सेचने, १० उ०, प्रस्रवणे छादने च (टपकना, ढकना), लट्–घरति और घारयति–ते, लिट्–जघार, घारयांचकार, लुट्–घर्ता, घारयिता, **लुङ–अघारीत्, अजीघरत्**–त, क्त–घृत, घारित।

**घृण्**—८ उ०, **दीप्तौ** (चमकना, जलाना), लट्–घृणोति, घर्णोति और घृणुते, घर्णुते, लिट्–**जघर्ण**, जघृणे, लुट्–घर्णिता, लृट्–घर्णिष्यिति–ते, लुङ–**अघर्णीत्–अघर्णिष्ट, अघृत**। सन्–जिघर्णिषति, क्त–घृत, क्त्वा–घृणित्वा, **घृत्वा**।

**घृष्**—१ प०, **संघर्षे** स्पर्धायां च (रगड़ना, स्पर्धा करना), लट्–घर्षति, लिट्–जघर्ष, **लुट्**–घर्षिता, लृट्–घर्षिष्यति, लृङ–अघर्षिष्यत्, लुङ–अघर्षीत्, आ० लिङ–घृष्यात्। **सन्**–जिघर्षिषति, कर्म० लट्–घृष्यते, लुङ–अघर्षि। णिच् **लट्–घर्षयति–ते, लुङ**–अजीघृषत्–त, अजघर्षत्–त, क्त–घृष्ट, क्त्वा-घर्षित्वा, घृष्ट्वा।

**घ्रा**—१ प०, **गन्धोपादाने** (सूँघना), लट्–जिघ्रति, लिट्–जघ्रौ, लुट्–घ्राता, लृट्–घ्रास्यति, लृङ–अघ्रास्यत्, लुङ–अघ्रात्, अघ्रासीत्, आ० लिङ–घ्रायात्–घ्रेयात्। सन्–जिघ्रासति, कर्म०–लट्–घ्रायते, लुङ–अघ्रायि णिच्–लट्–घ्रापयति–ते, लुङ–अजिघ्रपत्–त, अजिघ्रिपत्–त, क्त–घ्रात, घ्राण।

## ङ

ङु—१ आ०, शब्दे (शब्द करना), लट्–ङवते, लिट्– **अङुवे**, लुट्–ङोता, लङ–अङोष्ट, आ० लिङ–ङोषीष्ट। **सन्–अङूषते**।

### च

**चक्**—१ आ०, तृप्तौ प्रतिघाते च (तृप्त होना, रोकना), लट्–चकते, लुट्–चेके, लुट्–चकिता, लृट्–चकिष्यते, लुङ्–अचकिष्ट। णिच्–लट्–चाकयति–ते, लुङ्–अचीचकत्–त, सन्–चिचकिषते, क्त–चकित ।

**चक्**—१ प०, तृप्तौ ( तृप्त होना), लट्–चकति, लिट्–चचाक, लुट्–चकिता, लुङ्–अचकीत्, अचाकीत्, णिच्–लट्–चकयति–ते, सन्–चिचकिषति, कर्म० लट्–चक्यते, लुङ्–अचकि, अचाकि ।

**चकास्**—२ उ०, दीप्तौ ( चमकना, समृद्ध होना), लट्–चकास्ति-स्ते, लिट्–चकासाञ्चकार–चक्रे, लुट्–चकासिता, लृट्–चकासिष्यति, लृङ्–अचकासिष्यत्, लुङ्–अचकासीत्, अचकासिष्ट । णिच्–लट्–चकासयति–ते, लुङ्–अचीचकासत्–त, अचचकासत्–त, क्त–चकासित, क्त्वा–चकासित्वा, तुम्–चकासितुम् ।

**चक्ष्**[1]—२ आ०, व्यक्तायां वाचि ( बोलना, कहना), लट्–चष्टे, लिट्–चचक्षे, चख्यौ, चख्ये, चक्शौ, चक्शे, लुट्–ख्याता, क्शाता, लुङ्–अख्यत्–त, अक्शासीत्, अक्शास्त, आ० लिङ्–ख्यायात्, ख्येयात्, ख्यासीष्ट, क्शायात्, क्शेयात्, क्शासीष्ट । णिच्–लट्–ख्यापयति–ते, क्शापयति–ते, लुङ्–अचिख्यपत्–त, अचिक्शपत्–त, सन्–चिख्यासति–ते ।

**चञ्च्**—१ प०, ( जाना, कूदना), लट्–चञ्चति, लिट्–चचञ्च, लुट्–चञ्चिता, लुङ्–अचञ्चीत्, क्त–चञ्चित ।

**चट्**—१ प०, वर्षावरणयोः ( तोड़ना, ढकना), लट्–चटति, लिट्–चचाट, लुट्–चटिता, लुङ्–अचटीत् । णिच्–लट्–चाटयति–ते, सन्–चिचटिषति ।

**चट्**—१० उ०, भेदने (मारना, चोट पहुँचाना), लट्–चाटयति–ते, लिट्–चाटयांचकार–चक्रे, लुङ्–चाटयिता, लृट्–चाटयिष्यति–ते, लृङ्–अचाटयिष्यत्–त, लुङ्–अचीचटत्–त । क्त–चटित ।

**चण्**—१ प०, दाने गतौ च (देना), लट्–चणति, लिट्–चचाण, लुट्–चणिता, लुङ्–अचणीत्, अचाणीत् । णिच्–चणयति–ते, सन्–चिचणिषति ।

**चण्ड्**—१ आ०, ( क्रुद्ध होना), लट्–चण्डते, लिट्–चचण्डे, लुट्–चण्डिता, लुङ्–अचण्डिष्ट, (परस्मैपदी भी है) लट्–चण्डति, लुङ्–अचण्डीत् ।

**चण्ड्**—१० उ०, (क्रुद्ध होना), लट्–चण्डयति–ते, लुङ्–अचचण्डत्–त, सन्–चिचण्डयिषति–ते ।

**चद्**—१ उ०, याचने ( माँगना), लट्–चदति–ते, लिट्–चचाद, चेदे, लृट्–चदिष्यति–ते, लुङ्–अचदीत्, अचदिष्ट ।

---

**१. इस धातु का आर्धधातुक लकारों में ही प्रयोग होता है । 'छोड़ना' अर्थ होने पर इसको क्शा आदेश नहीं होता है । लुङ्–समचक्षिष्ट ।**

**चन्**—१ प०, हिंसायाम् (मारना), लट्–चनति, लिट्–चचान, लृट्–चनिष्यति, लुङ–अचनीत्, अचानीत् । णिच्–चनयति–ते, सन्–चिचनिषति ।

**चन्**—१० उ०, श्रद्धापहृत्नयोः (विश्वास करना, चोट पहुँचाना), लट्–चानयति–ते, लुङ–अचीचनत्–त ।

**चन्द्**—१ प०, आह्लादे दीप्तौ च (प्रसन्न होना, चमकना) लट्–चन्दति, लिट्–चचन्द, लुट्–चन्दिता, लुङ–अचन्दीत्, सन्–चिचन्दिषति ।

**चप्**—१ प०, सान्त्वने ( सान्त्वना देना ), लट्–चपति, लिट्–चचाप, लुट्–चपिता, लुङ–अचपीत्, अचापीत् । णिच्–चापयति–ते, सन्–चिचपिषति ।

**चप्**—१० उ०, परिकल्पने ( पीसना), लट्–चपयति–ते, लिट्–चपयाञ्चकार–चक्रे, लुट्–चपयिता, लुङ–अचीचपत्–त ।

**चम्प्**—१० उ०, ( जाना, हिलना), लट्–चम्पयति–ते, लिट्–चम्पयाञ्चकार–चक्रे, लुट्–चम्पयिता, लुङ–अचचम्पत् ।

**चम्**—१ प०, अदने (खाना), (आ+चम्, पीना) लट्–चमति, लिट्–चचाम, लुट्–चमिता, लृट्–चमिष्यति, लुङ–अचमीत् । णिच्–लट्–चामयति, लुङ–अचीचमत्, सन्–चिचमिषति, क्त–चान्त, क्त्वा–चान्त्वा या चमित्वा ।

**चय्**—१ आ०, (जाना), लट्–चयते, लिट्–चेये, लुट्–चयिता, लृट्–चयिष्यते, लुङ–अचयिष्ट ।

**चर्**—१ प०, गतौ (चलना), (आ+चर्, करना) लट्–चरति, लिट्–चचार, लुङ–चरिता, लृट्–चरिष्यति, लृङ–अचरिष्यत्, आ० लिङ–चर्यात्, लुङ–अचारीत् । सन्–चिचरिषति, कर्म० लट्–चर्यते, लुङ–अचारि, क्त–चरित ।

**चर्**—१० उ०, संशये ( संदेह करना ), (वि+चर्, असंशये, सन्देह दूर करना), लट्–चारयति–ते, लुङ–अचीचरत्–त ।

**चर्च्**—१ प०, परिभाषणहिंसातर्जनेषु (निन्दा करना, वार्तालाप करना), लट्–चर्चति, लिट्–चचर्च लुट्–चर्चिता, लृट्–चर्चिष्यति, लृङ–अचर्चिष्यत्, लुङ–अचर्चीत्, क्त–चर्चित ।

**चर्च्**—१० उ०, अध्ययने ( पढ़ना, बाँचना), लट्–चर्चयति–ते, लिट्–चर्चयांचकार–चक्रे, लुट्–चर्चयिता, लुङ–अचचर्चत्–त ।

**चर्व्**—१ प०, अदने, १० उ० भक्षणे (खाना, चबाना), लट्–चर्वति, चर्वयति–ते, लिट्–चचर्व, चर्वयांचकार–चक्रे, लुट्–चर्विता, चर्वयिता, लुङ–अचर्वीत्, अचचर्वत्–त ।

**चल्**—१ प०, कम्पने ( चलना, हिलाना), लट्–चलति, लिट्–चचाल, लुट्–चलिता, लुङ–अचालीत्, णिच्–लट्–चलयति–ते ( चालयति–ते), लुङ–अचीचलत्–त, क्त–चलित ।

**चल्**—६ प०, विलसने, ( क्रीडा करना, विलास करना), ( अन्य रूप पूर्वोक्त धातु के तुल्य ) लट्–चलति ।

**चल्**—१० उ०, भृतौ ( पालना), लट्–चालयति–ते, लिट्–चालयांचकार–चक्रे, लुङ–अचीचलत् ।

**चष्**—१ उ०, भक्षणे (खाना), लट्–चषति–ते, लिट्–चचाष, चेषे, लुङ–अचषीत्, अचाषीत्, अचषिष्ट ।

**चह्**—१ प०, १० उ०, परिकल्पने (दुष्ट होना), लट्–चहति, चहयति–ते, लुङ–अचहीत्, अचचहत्-त, अचीचहत्-त (घटादि) ।

**चाय्**—१ उ०, पूजानिशामनयोः ( पूजा करा, देखना ), लट्–चायति–ते, लिट्–चचाय, चचाये, लुट्–चायिता, ऌट्–चायिष्यति–ते, लुङ–अचायीत्, अचायिष्ट । णिच्–लट्–चाययति-ते, लुङ–अचचायत्-त, सन्–चिचायिषति–ते ।

**चि**—५ उ०, चयने, (चुनना, इकट्ठा करना), लट्–चिनोति, चिनुते, लिट्–चिकाय, चिचाय, चिक्ये, चिच्ये, लुट्–चेता, ऌट्–चेष्यति–ते, ऌङ–अचेष्यत्-त, लुङ–अचैषीत्, अचेष्ट, आ० लिङ–चीयात्, चेचीष्ट । सन्–चिकीषति-ते, कर्म०–लट्–चीयते, लुङ–अचायि, क्त–चित, क्त्वा–चित्वा ।

**चि**—१० उ०, ( एकत्र करना), लट्–चययति–ते, चपयति–ते, लिट्–चययाञ्चकार–चक्रे, चपयांचकार–चक्रे, लुङ–अचीचपत्–त, अचीचयत्–त ।

**चिट्**—१ प०, १० उ०, परप्रेष्ये (भेजना), लट्–चेटति, चेटयति–ते, लिट्–चिचेट, चेटयांचकार–चक्रे, लुट्–चेटिता, चेटयिता, लुङ–अचेटीत्, अचीचिटत्–त ।

**चित्**—१ प०, संज्ञाने (देखना, समझना), लट्–चेतति, लिट्–चिचेत, लुट्–चेतिता, ऌट्–चेतिष्यति, ऌङ–अचेतिष्यत्, लुङ–अचेतीत्, आ० लिङ–चित्यात् । सन्–चिचितिषति, चिचेतिषति, णिच्–लट्–चेतयति–ते, लुङ–अचीचितत्–त, कर्म० लट्–चित्यते, लुङ–अचेति, क्त–चित्त, क्त्वा–चितित्वा–चेतित्वा ।

**चित्**—१० आ०, संचेतने (देखना, चिन्तित होना ), चेतयते, लुङ–अचीचितत । सन्–चिचेतयिषते ।

**चित्**—१० उ० संचेतने (देखना, चिन्तित होना), लट्–चेतयते, लुङ–अचीचितत । सन्–चिचेतयिषते ।

**चित्र्**—१० उ०, चित्रकरणे, अद्भुतदर्शने च ( चित्र बनाना, आदि ), लट्–चित्रयति–ते, लुङ–अचिचित्रत्–त । सन्–चिचित्रयिषति–ते ।

**चिन्त्**—१ प०, (सोचना), लट्–चिन्तति, लिट्–चिचिंत, लुट्–चिन्तिता, लुङ–अचिंतीत् । क्त–चिंतित ।

**चिन्त्**—१० उ०, स्मृत्याम् (सोचना, विचारना), लट्–चिंतयति–ते, लिट्–चिंतयांचकार–चक्रे, लुट्–चिंतयिता, लुङ–अचिचिंतत्–त, आ० लिङ–

चिंत्यात्, चिंतयिषीष्ट । कर्म० लट्–चिन्त्यते, लुङ–अचिन्ति, क्त–चिंतित, क्त्वा–चिंतयित्वा ।

**चिल्**—६ प०, वसने ( वस्त्र पहनना), लट्–चिलति, लिट्–चिचेल, लुट्–चेलिता, लुङ–अचेलीत् ।

**चिल्ल्**—१ प०, शैथिल्ये (शिथिल होना), लट्–चिल्लति, लिट्–चिचिल्ल लुट्–चिल्लिता, लुङ–अचिल्लीत् । क्त–चिल्लित ।

**चीक्**—१० उ०, १ प०, आमर्षणे (दुःख सहना), लट्–चीकयति-ते चीकति, लिट्–चीकयाञ्चकार–चक्रे, चिचीक, लुङ–अचीचिकत्–त, अचीकीत् ।

**चीभ्**—१ आ०, कत्थने ( आत्मप्रशंसा करना), लट्–चीभते, लिट्–चिचीभे, लुट्–चीभिता, लुङ–अचीभिष्ट ।

**चीव्**—१ उ०, आदानसंवरणयोः ( लेना, ढकना), लट्–चीवति–ते, लिट्–चिचीव–वे, लुट्–चीविता, लुङ–अचीवीत्–अचीविष्ट ।

**चीव्**–१० उ०, भाषायां दीप्तौ च (कहना, चमकना), लट्–चीवयात–ते ।

**चुच्य्**—१ प० अभिषवे ( नहाना), लट्–चुच्यति, लिट्–चुचुच्य, लृट्–चुच्यिष्यति, लुङ–अचुच्यीत् ।

**चुट्**—६ प०, छेदने ( कुटादि) (काटना), लट्–चुटति, लिट्–चुचोट, लुट्–चुटिता, लुङ–अचुटीत् ।

**चुड्**—६ प०, संवरणे ( कुटादि ) (छिपाना), लट्–चुडति, लिट्–चुचोड, लुट्–चुडिता, लुङ–अचुडीत् ।

**चुण्ट्**—१० उ०, १ प०, छेदने (काटना), लट्–चुण्टयति–ते, चुण्टति, लुङ–अचुचुण्टत्–त, अचुण्टीत् ।

**चुद्**—१० उ०, संचोदने ( प्रेरणा देना, फेंकना ), लट्–चोदयति–ते, लिट्–चोदयांचकार–चक्रे, लुट्–चोदयिता, लृट्–चोदयिष्यति–ते, लृङ–अचोदयिष्यत्–त, लुङ–अचूचुदत्–त । सन्–चुचोदयिषति-ते, क्त–चोदित ।

**चुप्**—१ प०, मन्दायां गतौ ( धीरे-धीरे जाना), लट्–चोपति, लिट्–चुचोप, लुट्–चोपिता, लुङ–अचोपीत् । सन्–चुचु–चो-पिषति ।

**चुम्ब्**—१ प०, वक्त्रसंयोगे (चुम्बन करना), लुट्–चुम्बति, लिट्–चुचुम्ब, लुट्–चुम्बिता, लुङ–अचुम्बीत् । सन्–चुचुम्बिषति, क्त–चुम्बित ।

**चुम्ब्**—१० उ०, हिंसायाम् ( मारना), लट्–चुम्बयति–ते, लिट्–चुम्बयांचकार–चक्रे, लुट्–चुम्बयिता, लुङ–अचुचुम्बत्, क्त–चुम्बित ।

**चुर्**—१० उ०, स्तेये ( चुराना, लूटना, लेना), लट्–चोरयति–ते, लिट्–चोरयाञ्चकार–चक्रे, लुट्–चोरयिता, लृट्–चोरयिष्यति-ते, लुङ–अचूचुरत्-त, आ० लिङ–चोर्यात्, चोरयिषीष्ट । सन्–चुचोरयिषति-ते, कर्म०–चोर्यते, लुङ–अचोरि, क्त–चोरित, क्त्वा–चोरयित्वा ।

**चुल्**—१० उ०, समुच्छ्राये ( उठाना), लट्—चोलयति—ते, लुङ—अचूचुलत्—त ।

**चूर्**—४ आ०, दाहे (जलाना), लट्—चूर्यते, लिट्—चुचूरे, लुङ—अचूरिष्ट । क्त—चूर्ण ।

**चूर्ण्**—१० उ०, प्रेरणे संकोचने (चूरा करना, संकुचित करना), लट्—चूर्णयति—ते, लिट्—चूर्णयांचकार—चक्रे, लुट्—चूर्णयिता, लृट्—चूर्णयिष्यति—ते, लृङ—अचूर्णयिष्यत्—त, लुङ—अचुचूर्णत्—त, क्त—चूर्णित ।

**चूष्**—१ प०, पाने ( पीना, चूसना), लट्—चूषति, लिट्—चुचूष, लुट्—चूषिता, लुङ—अचूषीत् । सन्—चुचूषिषति, क्त—चूषित ।

**चृत्**—६ प०, हिंसाग्रन्थनयोः ( मारना, चोट पहुँचाना, मिलाना), लट्—चृन्तति, लिट्—चचर्त, लुट्—चर्तिता, लुङ—अचर्तीत् । सन्—चिचर्तिषति, चिचृत्सति ।

**चृप्**—१० उ०, संदीपने (जलाना), लट्—चर्पयति—ते, लिट्—चर्पयांचकार—चक्रे, लुट्—चर्पयिता, लुङ—अचीचृपत्—त, अचचर्पत्—त, (१ पर० भी है) लट्—चर्पति, लुङ—अचर्पीत् ।

**चेल्**—१ प०, चलने ( हिलना, जाना), लट्—चेलति, लिट्—चिचेल, लुट्—चेलिता, लुङ—अचेलीत् ।

**चेष्ट्**—१ आ०, चेष्टायाम् (चेष्टा करना, यत्न करना), लट्—चेष्टते, लिट्—चिचेष्टे, लुट्—चेष्टिता, लृट्—चेष्टिष्यते, लुङ—अचेष्टिष्ट, आ० लिङ—चेष्टिषीष्ट । सन्—चिचेष्टिषते, णिच्—लट्—चेष्टयति, लुङ—अचिचेष्टत्—अचचेष्टत्, कर्म०—लट्—चेष्टयते, क्त—चेष्टित ।

**च्यु**—१ आ०, गतौ (जाना, उतरना), लट्—च्यवते, लिट्—चुच्युवे, लुट्—च्योता, लृट्—च्योष्यते, लुङ—अच्योष्ट, आ० लिङ—च्योषीष्ट । णिच्—च्यावयति—ते, सन्—चुच्यूषते, क्त—च्युत ।

**च्युत्**—१ प०, आसेचने ( बहना, गिरना), लट्—च्योतति, लिट्—चुच्योत, लुट्—च्योतिता, लृट्—च्योतिष्यति, लुङ—अच्युतत्, अच्योतीत्, आ० लिङ—च्युत्यात् । णिच्—लट्—च्योतयति—ते, लुङ—अचुच्युतत्—त, सन्—चिच्युतिषति, चिच्योतिषति, क्त—च्युतित, च्योतित ।

## छ

**छद्**—१ उ०, आच्छादने ( ढकना), लट्—छदति—ते, लिट्—चच्छाद, चच्छदे, लुट्—छदिता, लुङ—अच्छदीत्, अच्छादीत्, अच्छदिष्ट । सन्—चिच्छदिषति—ते, क्त—छन्न, कर्म० लट्—छद्यते, लुङ—अच्छादि, णिच्—छादयति—ते ।

**छद्**—१० उ० ( छिपाना), लट्—छादयति—ते, लिट्—छादयांचकार—चक्रे, लुट्—छादयिता, लुङ—अचिच्छदत—त ' सन्—चिच्छादयिषति—ते, क्त—छन्न, छादित ।

**छम्**—१ प०, अदने (खाना), लट्—छमति, लिट्—चच्छाम, लुट्—छमिता, लुङ—अच्छमीत्, अच्छामीत् । क्त—छान्त, क्वा—छमित्वा, छान्त्वा ।

**छर्द्**—१० उ०, वमने ( उगलना), लट्—छर्दयति—ते, लिट्—छर्दयांचकार—चक्रे, लुट्—छर्दयिता, लुङ—अचिच्छर्दत्—त । सन्—चिच्छर्दयिषति—ते, क्त—छर्दित ।

**छिद्**—७ उ०, द्वैधीकरणे (काटना), लट्—छिनत्ति, छिन्ते, लिट्—चिच्छेद, चिच्छिदे, लुट्—छेत्ता, लृट्—छेत्स्यति—ते, लृङ—अछेत्स्यत्—त, आ० लिङ—छिद्यात्, छेत्सीष्ट, लुङ—अच्छिदत्, अच्छैत्सीत्—अच्छित्त । सन्—चिच्छित्सति—ते, क्त—छिन्न ।

**छिद्र्**—१० उ०, भेदने (छेद करना), लट्—छिद्रयति—ते, लुङ—अचिछिद्रत् —त । सन्—चिछिद्रयिषति—ते ।

**छुट्**—६ प०, भेदने (रखना), लट्—छटति, लिट्—चुच्छोट, लुट्—छुटिता, लुङ—अच्छटीत् ।

**छुप्**—६ प०, स्पर्शे (छूना), लट्—छुपति, लिट्—चुच्छोप, लुट्—छोप्ता, लृट्—छोप्स्यति, लृङ—अच्छोप्स्यत्, लुङ—अच्छौप्सीत् ।

**छुर्**—६ प०, भेदने, (कुटादि), (काटना), लट्—छुरति, लिट्—चुच्छोर, लृट्—छुरिष्यति, लुङ—अच्छुरीत् । सन्—चुच्छुरिषति ।

**छर्द्**—१ प०, १० उ०, संदीपने (जलाना), लट्—छर्दति, छर्दयति—ते, लिट्—चच्छर्द, छर्दयांचकार—चक्रे, लुट्—छर्दिता, छर्दयिता, लृट्—छर्दिष्यति, छर्दयिष्यति—ते, लृङ—अच्छर्दिष्यत्, अच्छर्दयिष्यत्—त, लुङ—अच्छर्दीत्, अचिछृदत्—त, अचच्छर्दत्—त ।

**छृद्**—७ उ०, दीप्तिदेवनयोः (चमकना, खेलना, कै करना ) लट्—छृणत्ति, छृन्ते, लिट्—चच्छर्द, चच्छृदे, लुट्—छर्दिता, लृट्—छर्दिष्यति—ते, छर्त्स्यति—ते, लुङ—अच्छर्दत्—अच्छर्दीत्—अच्छर्दिष्ट, आ० लिङ—छृद्यात्, छर्दिषीष्ट—छृत्सीष्ट । सन्—चिच्छर्दिषति—ते, चिच्छृत्सति—ते ।

**छेद्**—१० उ०, द्वैधीकरणे ( काटना), लट्—छेदयति-ते, लृट्—छेदयिष्यति, लुङ—अचिच्छेदत्—त ।

**छो**—४ प०, छेदने (काटना), लट्—छ्यति, लिट्—चच्छौ, लुट्—छाता, लृट्—छास्यति, लृङ—अच्छास्यत्, लुङ—अच्छात्, अच्छासीत् । सन्—चिच्छासति, क्त—छात—छित, क्त्वा—छात्वा—छित्वा, कर्म०—लट्—छायते, लुङ—अच्छायि ।

### ज

**जक्ष्**—२ प०, भक्ष्यहसनयोः (खाना, हँसना), लट्—जक्षिति, लङ—अजक्षत्, अजक्षीत्, लिट्—जजक्ष, लुट्—जक्षिता, लृट्—जक्षिष्यति, लृङ—अजक्षिष्यत्, लुङ—अजक्षीत्, आ० लिङ—जक्ष्यात् । णिच्—लट्—जक्षयति, लुङ—अजजक्षत् । सन्—जिजक्षिषति, क्त—जक्षित ।

**जज्—जञ्ज्**—१ प०, युद्धे ( लड़ना ), लट्—जजति, जञ्जति, लिट्—जजाज, जजञ्ज, लुट्—जजिता, जञ्जिता, लुङ—अजजीत्, अजाजीत्, अजञ्जीत् ।

**जट्**—१ प०, संघाते ( इकट्ठा होना, ऐंठा हुआ होना ), लट्–जटति, लिट्–जजाट, लुट्–जटिता, लुङ–अजटीत्, अजाटीत् ।

**जड्**–पूर्ववत् रूप चलेंगे ।

**जन्**—४ आ०, प्रादुर्भावे ( उत्पन्न होना ), लट्–जायते, लिट्–जज्ञे, लुट्–जनिता, लृट्–जनिष्यते, लृङ–अजनिष्यत, लुङ–अजनि, अजनिष्ट, आ० लिङ–जनिषीष्ट । सन्–जिजनिषति, कर्म० लट्–जन्यते–जायते, लुङ–अजनि, णिच्–लट्–जनयति, लुङ–अजीजनत्, सन्–जिजनिषते, क्त्वा–जनित्वा, ल्यप् (य) –संज्ञाय, संजन्य, क्त–जात ।

**जप्**—१ प०, व्यक्तायां वाचि मानसे च (जप करना), जपति, लिट्–जजाप, लुट्–जपिता, लृट्–जपिष्यति, लृङ–अजपिष्यत्, लुङ–अजपीत्, अजापीत्, आ० लिङ–जप्यात् । सन्–जिजपिषति, कर्म० लट्–जप्यते, लुङ–अजापि, णिच्–लट्–जापयति–ते, लुङ–अजीजपत्–त, क्त–जपित ।

**जभ्**—१ आ०, गात्रविताने (जँभाई लेना), लट्–जम्भते, लिट्–जजम्भे, लुट्–जम्भिता, लुङ–अजम्भिष्ट, आ० लिङ–जम्भिषीष्ट । सन्–जिजम्भिषते । णिच्–लट्–जम्भयति, लुङ–अजजम्भत्, कर्म०–जभ्यते, लुङ–अजम्भि ।

**जम्**—१ प०, अदने (खाना), लट्–जमति, लिट्–जजाम, लुट्–जमिता, लुङ–अजमीत् । क्त–जान्त ।

**जम्भ्**—१ प०, १० उ०, नाशने ( नष्ट करना ), लट्–जम्भति, जम्भयति–ते, लिट्–जम्भयांचकार–जजम्भ, लुङ–अजम्भीत्, अजजम्भत् ।

**जल्**—१ प०, घातने ( तीक्ष्ण होना ), लट्–जलति, लुङ–अजालीत् ।

**जल्**—१० उ०, अपवारणे (ढकना), लट्–जालयति–ते, लुङ–अजीजलत् ।

**जल्प्**—१ प०, व्यक्तायां वाचि ( कहना, बकवाद करना ), लट्–जल्पति, लिट्–जजल्प, लुट्–जल्पिता, लृट्–जल्पिष्यति, लृङ–अजल्पिष्यत्, लुङ–अजल्पीत् । सन्–जिजल्पिषति । कर्म०–लट्–जल्प्यते, लुङ–अजल्पि, क्त–जल्पित ।

**जष्**—१ प०, हिंसायाम् ( मारना, हिंसा करना ), लट्–जषति, लिट्–जजाष, लुट्–जषिता, लुङ–अजषीत् ।

**जस्**—४ प०, मोक्षणे (छोड़ना, मुक्त करना,) लट्–जस्यति, लिट्–जजास, लुट्–जसिता, लुङ–अजसत्, क्त–जस्त ।

**जस्**—१० उ०, १ प० हिंसायां ताडने च (हिंसा करना, चोट पहुँचाना), लट्–जासयति–ते, जसति, लिट्–जासयांचकार–चक्रे, जजास, लुट्–जासयिता, जसिता, लुङ–अजीजसत्–त, अजसीत्, अजासीत् । सन्–जिजासयिषति–ते, जिजसिषति ।

**जंस्**—१० उ०, १ प०, रक्षणे मोक्षणे च (रक्षा करना, छोड़ना), लट्–जंसयति–ते, जंसति, लुङ–अजजंसत्–त, अजंसीत् ।

**जागृ**—२ प०, निद्राक्षये (जागना), लट्–जागर्ति, लिट्–जजागार–गर और जागराञ्चकार, लुट्–जागरिता, लृट्–जागरिष्यति, लृङ–अजागरिष्यत्,

लुङ्–अजागरीत्, आ० लिङ्–जागर्यात् । सन्–जिजागरिषति । कर्म०–लट्–जागर्यते, लुङ्–अजागारि, णिच्–लट्–जागरयति–ते, क्त–जागरित ।

**जि**[१]—१ प०, जये अभिभवे च (जीतना), लट्–जयति, लिट्–जिगाय, लुट्–जेता, लृट्–जेस्यति, लृङ्–अजेष्यत्, लुङ्–अजैषीत्, आ० लिङ्–जीयात्। सन्–जिगीषति, णिच्–लट्–जापयति–ते, लुङ्–अजीजपत्–त, यङ्–जिजीयते, जेजयीति, जेजेति । क्त–जित, क्त्वा–जित्वा, तुम्–जेतुम् ।

**जिन्व्**—१ प०, प्रीणने (प्रसन्न करना), लट्–जिन्वति, लिट्–जिजिन्व, लुङ्–अजिन्वीत् ।

**जिन्व्**—१ प०, १० उ०, भाषायाम् (बोलना), लट्–जिन्वति, जिन्वयति, लिट्–जिजिन्व, जिन्वयांचकार, लुट्–जिन्विता, जिन्वयिता, लुङ्–अजिन्वीत्, अजिजिन्वत्–त ।

**जिम्**—१ प०, भक्षणे ( खाना), लुट्–जेमति, लिट्–जिजेम, लुङ्–अजेमीत्, क्त–जिन्त ।

**जिरि**—५ प०, ( हिंसा करना), लट्–जिरिणोति ( वैदिक) ।

**जिष्**—१ प०, सेचने सेवने च (सींचना, सेवा करना), लट्–जेषति, लिट्–जिजेष, लुङ्–जेषिता, लृट्–जेषिष्यति, लुङ्–अजेषीत्, क्त्वा–जेषित्वा, जिष्ट्वा ।

**जीव्**—१ प०, प्राणधारणे (जीना), लट्–जीवति, लिट्–जिजीव, लुट्–जीविता, लृट्–जीविष्यति, लृङ्–अजीविष्यत्, लुङ्–अजीवीत् । कर्म० लट्–जीव्यते, लुङ्–अजीवि । णिच्–लट्–जीवयति–ते, क्त्वा–जीवित्वा, तुम्–जीवितुम्, क्त–जीवित ।

**जुट्**—६ प० (कुटादि) बन्धने (बाँधना), लङ्–जुटति, लिट्–जुजोट, लुङ्–अजुटीत् ।

**जुड्**—६ प०, गतौ ( जाना), लट्–जुडति, लुङ्–अजोडीत् ।

**जुत्**—१ आ०, भासने (चमकना) लट्–जोतते, लृट्–जोतिष्यते, लुङ्–अजोतिष्ट ।

**जुष्**—६ आ०, प्रीतिसेवनयोः ( चाहना, सेवन करना), लट्–जुषते, लिट्–जुजुषे, लुट्–जोषिता, लुङ्–अजोषिष्ट । कर्म० लट्–जुष्यते, लुङ्–अजोषि, णिच्–लट्–जोषयति–ते, लुङ्–अजूजुषत्–त । सन्–जुजोषिषते, जुजुषिषते, क्त–जुष्ट ।

**जुष्**—१ प०, १० उ०, परितर्कणे परितर्पणे च (सोचना, परीक्षा करना, तृप्त होना), लट्–जोषति और जोषयति–ते, लिट्–जुजोष और जोषयांचकार–चक्रे, लुट्–जोषिता, जोषयिता, लुङ्–अजोषीत्–अजूजुषत्–त । सन्–जुजोषिषते, जुजोषयिषति–ते, क्त–जुष्ट ।

---

१. वि और परा उपसर्ग पहले होने पर यह आत्मनेपदी है ।

**जूर्**—४ आ०, हिंसावयोहान्योः (मारना, वृद्ध होना), लट्–जूर्यते, लिट्–जुजूरे, लुङ–अजूरिष्ट ।

**जूष्**—१ प०, हिंसायाम् (मारना), लट्–जूषति, लुङ–अजूषीत् ।

**जृम्भ्**—१ आ०, गात्रविताने (जँभाई लेना), लट्–जृम्भते, लिट्–जजृम्भे, लुट्–जृम्भिता, लृट्–जृम्भिष्यते, लुङ–अजृम्भिष्ट । सन्–जिजृम्भिषते, क्त–जृम्भित ।

**जॄ**—४ प०, वयोहानौ (वृद्ध होना), लट्–जीर्यते, लिट्–जजार, लुट्–जरिता–जरीता, लृट्—जरिष्यति, जरीष्यति, लृङ–अजरिष्यत्, अजरीष्यत्, लुङ–अजारीत्, अजरत्, आ० लिङ–जीर्यात् । सन्–जिजरिषति, जिजरीषति, जिजीर्षति, णिच्–लट्–जरयति–ते, कर्म०–लट्–जीर्यते, क्त–जीर्ण ।

**जॄ**—१ और ६ प०, (जीर्ण होना), लट्–जरति, जृणाति, लिट्–जजार, लुट्–जरिता, जरीता, लुङ–अजारीत् । णिच् लट्–जारयति–ते ।

**जॄ**—१० उ० ( वृद्ध होना ), लट्–जारयति–ते, लिट्–जारयाञ्चकार–चक्रे, लुट्–जारयिता, लुङ–अजीजरत्–त । सन्–जिजारयिषति–ते ।

**जेष्**—१ आ०, (जाना), लट्–जेषते, लिट्–जिजेषे, लुट्–जेषिता, लुङ–अजेषिष्ट ।

**जेह्**—१ आ०, प्रयत्ने गतौ च (प्रयत्न करना, जाना), लट्–जेहते, लिट्–जिजेहे, लुट्–जेहिता, लुङ–अजेहिष्ट ।

**जै**—१ प०, क्षये (क्षीण होना), लट्–जायति, लिट्–जजौ, लुट्–जाता, लुङ–अजासीत् । सन्–जिजासति ।

**ज्ञप्**—१० उ०, ज्ञाने ज्ञापने च (जानना, बताना, देखना, प्रसन्न करना), लट्–ज्ञापयति–ते, लिट्–ज्ञापयांचकार–चक्रे, लुट्–ज्ञापयिता, ऌट्–ज्ञापयिष्यति, –ते, ऌङ–अज्ञपयिष्यत्–त, लुङ–अजिज्ञपत्–त । सन्–ज्ञीप्सति-ते । कर्म०–लट्–ज्ञप्यते, लुङ–अज्ञपि, अज्ञापि, क्त–ज्ञप्त, ज्ञपित ।

**ज्ञा**—९ उ०, अवबोधने (जानना), लट्–जानाति, जानीते, लिट्–जज्ञौ, जज्ञे, लुट्–ज्ञाता, ऌट्–ज्ञास्यति–ते, ऌङ–अज्ञास्यत्–त, लुङ–अज्ञासीत्, अज्ञास्त, आ० लिङ–ज्ञायात्–ज्ञेयात्, ज्ञासीष्ट । सन्–जिज्ञासति–ते, णिच्–लट्–ज्ञापयति–ते और ज्ञपयति–ते (प्रशंसा, करना, मारना और दिखलाना अर्थों में), लुङ–अजिज्ञपत्–त । कर्म०–लट्–ज्ञायते, लुङ–अज्ञायि, तुम्–ज्ञातुम्, क्त्वा–ज्ञात्वा, क्त–ज्ञात ।

**ज्ञा**—१० उ०, नियोगे ( प्रेरित करना), लट्–ज्ञापयति–ते, लिट्–ज्ञापयांचकार–चक्रे, लुट्–ज्ञापयिता, ऌट्–ज्ञापयिष्यति–ते । कर्म० ज्ञाप्यते, क्त–ज्ञापित ।

**ज्या**—९ प०, वयोहानौ (वृद्ध होना), लट्–जिनाति, लिट्–जिज्यौ, लुट्–ज्याता, लृट्–ज्यास्यति, लृङ–अज्यास्यत्, लुङ–अज्यासीत्, आ० लिङ–जीयात्। सन्–जिज्यासति, कर्म०–जीयते, लुङ–अज्यायि, णिच्–लट्–ज्यापयति–ते, क्त–जीन, क्त्वा–जीत्वा।

**ज्यु**—१ आ०, (जाना), लट्–ज्यवते, लिट्–जुज्युवे, लुट्–ज्योता, लुङ–अज्योष्ट।

**ज्रि**—१ प०, जये अभिभवे च (जीतना, हराना), लट्–ज्रयति, लिट्–जिज्राय, लुट्–ज्रेता, लुङ–अज्रैषीत्।

**ज्रि**—१० उ०, वयोहानौ (वृद्ध होना), लट्–ज्राययति–ते, लिट्–ज्राययांचकार–चक्रे, लुट्–ज्राययिता, लुङ–अजिज्रयत्–त।

**ज्वर्**—१ प०, रोगे (ज्वर या काम से पीडित होना), लट्–ज्वरति, लिट्–जज्वार, लुट्–ज्वरिता, लृट्–ज्वरिष्यति, लुङ–अज्वारीत्। णिच्–ज्वरयति–ते, अजिज्वरत्–त, सन्–जिज्वरिषति, क्त–जूर्ण।

**ज्वल्**—१ प०, दीप्तौ (जलना, चमकना), लट्–ज्वलति, लिट्–जज्वाल, लुट्–ज्वलिता, लृट्–ज्वलिष्यति, लुङ–अज्वालीत्। णिच्–लट्–ज्वलयति–ते, ज्वालयति–ते (प्र+ज्वल्–प्रज्वलयति–ते), सन्–जिज्वलिषति, क्त–ज्वलित।

## झ

**झट्**—१ प०, संघाते (एकत्र होना, जटारूप होना), लट्–झटति, लुङ–अझटीत्–अझाटीत्।

**झम्**—१ प०, अदने (खाना), लट्–झमति, लुट्–झमिता, लुङ–अझमीत्।

**झष्**—१ प०, हिंसायाम् (मारना), लट्–झषति, लिट्–जझाष, लुट्–झषिता, लुङ–अझषीत्–अझाषीत्।

**झष्**—१ उ०, आदानसंवरणयोः (लेना, पहनना, छिपाना), लट्–झषति–ते, लिट्–जझाष, जझषे, लुट्–झषिता, लुङ–अझषीत्, अझाषीत्, अझषिष्ट।

**झॄ**—४, ९ प०, वयोहानौ (वृद्ध होना), लट्–झीर्यति, झृणाति, लिट्–जझार, लुट्–झरिता, झरीता, लुङ–अझारीत्।

## ट

**टङ्क्**—१ प०, १० उ०, (बाँधना), लट्–टङ्कति, टङ्कयति–ते, लिट्–टटङ्क, टङ्कयांचकार–चक्रे, लुट्–टङ्किता, टङ्कयिता, लुङ–अटङ्कीत्, अटटङ्कत्–त, क्त–टङ्कित।

**टल्**—१ प०, वैक्लव्ये (व्याकुल होना), लट्–टलति, लिट्–टटाल, लुट्–टलिता, लुङ–अटालीत्।

**टिक्**—१ आ०, (जाना, हिलना), लट्–टेकते, लिट्–टिटिके, लुट्–टेकिता, लुङ–अटेकिष्ट। णिच्–लट्, टेकयति–ते, लुङ–अटिटेकत्–त।

**टिप्**—१० उ०, क्षेपे ( फेंकना, भेजना), लट्–टेपयति–ते, लिट्–टेपयांचकार–चक्रे, लुट्–टेपयिता, लुङ–अटिटेपत्–त ।

**टीक्**—१ आ०, ( जाना, हिलना), लट्–टीकते, लिट्–टिटीके, लुट्–टीकिता, लुङ–अटीकिष्ट । सन्–टिटीकिषते ।

**टौक्**—१ आ०, (जाना), लट्—टौकते, लुङ–अटौकिष्ट ।

## ड

**डप्**—१० आ०, संघाते (इकट्ठा करना), लट्–डापयते, लिट्–डापयांचक्रे, लुट्–डापयिता, लुङ–अडीडपत ।

**डम्ब्**—१० आ०, क्षेपे ( फेंकना, भेजना), लट् डम्बयति–ते, लिट्–डम्बयांचकार–चक्रे, लुट्–डम्बयिता, ऌट्–डम्बयिष्यति–ते, लुङ–अडडम्बत्–त ।

**डिप्**—४ प०, क्षेपे, (फेंकना), लट्–डिप्यति, लिट्–डिडेप, लुट्–डेपिता, लुङ–अडिपत् ।

**डिप्**—१० आ०, संघाते (इकट्ठा करना), लट्–डेपयते, लिट्–डेपयांचक्रे, लुट्–डेपयिता, लुङ–अडीडिपत ।

**डी**—१ आ०, विहायसा गतौ (उड़ना, जाना), लट्–डयते, लिट्–डिड्ये, लुट्–डयिता, ऌट्–डयिष्यते, लुङ–अडयिष्ट, आ० लिङ–डयिषीष्ट । णिच्–डाययति–ते, लुङ–अडीडयत्–त, सन्–डिडयिषते, क्त–डयित, डान ।

**डी**—४ आ० (जाना, उड़ना), लट्–डीयते, लिट्–डिड्ये । क्त–डीन ।

**डुल्**—१० उ० ( ऊपर फेंकना), लट्–डोलयति–ते, लिट्–डोलयांचकार–चक्रे, लुट्–डोलयिता, लुङ–अडूडुलत्–त ।

## ढ

**ढौक्**—१ आ०, गतौ (जाना, पहुँचना), लट्–ढौकते, लिट्–डुढौके, लुट्–ढौकिता, ऌट्–ढौकिष्यते, लुङ–अढौकिष्ट, आ० लिङ–ढौकिषीष्ट । णिच्–लट्–ढौकयति–ते, लुङ–अडुढौकत्–त । सन्–डुढौकिषते । कर्म०–ढौक्यते, क्त–ढौकित ।

## त

**तक्**—१ प०, हसने सहने च (हँसना, सहन करना), लट्–तकति, लिट्–तताक्, लुट्–तकिता, लुङ–अतकीत्, अताकीत् । क्त–तकित ।

**तक्ष्**—१ प०, त्वचने (त्वचनं संवरणं त्वचो ग्रहणं च) (छिपाना, छीलना), लट्–तक्षति, लिट्–ततक्ष, लुट्–तक्षिता, लुङ–अतक्षीत् ।

**तक्ष्**—१ प०, तनूकरणे ( छीलना, काटना), लट्–तक्षति, तक्ष्णोति, ( सार्वधातुक लकारों में विकल्प से स्वादिगणी भी है), लिट्–ततक्ष, लुट्–तक्षिता, ऌट्–तक्षिष्यति, तक्ष्यति, लुङ–अतक्षीत् । णिच्–लट्–तक्षयति । क्त–तष्ट, क्त्वा–तक्षित्वा–तष्ट्वा ।

**तङ्ग्**—१ प०, गतौ स्खलने कम्पने च (जाना, लड़खड़ाना, हिलाना), लट्—तङ्गति, लिट्—ततङ्ग, लुट्—तङ्गिता, लुङ—अतङ्गीत् । क्त—तङ्गित ।

**तञ्च्**—१ प०, (जाना), लट्—तञ्चति, लिट्—ततञ्च, लुट्—तञ्चिता, लुङ—अतञ्चीत् । क्त—तक्त, क्त्वा—तञ्चित्वा, तक्त्वा ।

**तञ्च्**—७ प०, संकोचने (संकुचित होना, सिकुड़ना), लट्—तनक्ति, लिट्—ततञ्च, लुट्—तंक्ता, तञ्चिता, लृट्—तङ्क्ष्यति, तञ्चिष्यति, लुङ—अतञ्चीत्, अताङ्क्षीत् । णिच्—तञ्चयति—ते । सन्—तितञ्चिषति, तितङ्क्षति ।

**तञ्ज्**—तञ्च् के तुल्य ।

**तट्**—१ प०, उच्छ्राये (उगना), लट्—तटति, लिट्—तताट, लुट्—तटिता, लुङ—अतटीत्—अताटीत् ।

**तड्**—१० उ०, आघाते भाषायां च (पीटना), लट्—ताडयति—ते, लिट्—ताडयांचकार—चक्रे, लुट्—ताडयिता, लृट्—ताडयिष्यति—ते, लुङ—अतीतडत्—त । कर्म०—लट्—ताड्यते, क्त—ताडित ।

**तण्ड्**—१ आ०, ताडने (पीटना), लुट्—तण्डते, लिट्—ततण्डे, लुट्—तण्डिता, लुङ—अतण्डिष्ट ।

**तन्**—८ उ०, विस्तारे (फैलाना, जाना), लट्—तनोति, तनुते, लिट्—ततान, तेने, लुट्—तनिता, लृट्—तनिष्यति, ते, लुङ—अतनीत्, अतानीत्, अतनिष्ट, अतत, आ० लिङ—तन्यात्—तनिषीष्ट । सन्—तितांसति—ते, तितंसति—ते, तितनिषति—ते, कर्म०—लट्—तन्यते—तायते, लुङ—अतानि, णिच्—लट्—तानयति—ते, लुङ—अतीतनत—त, क्त—तत, क्त्वा—तनित्वा, तत्वा ।

**तन्**—१ प०, १० उ०, श्रद्धोपकरणयोः (विश्वास करना, साधन होना), लट्—तनति, तानयति—ते, लुङ—अतनीत्, अतानीत्, अतीतनत्—त ।

**तन्त्र्**—१० आ०, कुटुम्बधारणे (पालन करना, स्वामी होना), लट्—तन्त्रयते, लिट्—तन्त्रयांचक्रे, लुङ—अततन्त्रत । तितन्त्रयिषते, कर्म०—तन्त्र्यते ।

**तप्**—१ प०, संतापे, (तपाना, चमकना), लट्—तपति, लिट्—तताप, लुट्—तप्ता, लुङ—अताप्सीत्, आ० लिङ—तप्यात् । सन्—तितप्सति, कर्म०—लट्—तप्यते, लुङ—अतप्त । णिच्—लट्—तापयति—ते, लुङ—अतीतपत्—त, क्त—तप्त ।

**तप्**—४ आ०, ऐश्वर्ये (शासन करना, शक्तियुक्त होना), लट्—तप्यते, लिट्—तेपे, लुट्—तप्ता, लृट्—तप्स्यते, लृङ—अतप्स्यत, लुङ—अतप्त, आ० लिङ—तप्सीष्ट, क्त—तप्त ।

**तप्**—१० उ०, (तपाना), लट्—तापयति—ते, लिट्—तापयांचकार—चक्रे, लुट्—तापयिता, लुङ—अतीतपत्—त ।

**तम्**—४ प०, कांक्षायां खेदे च (चिन्तित होना, थका हुआ होना), लट्—ताम्यति, लिट्—तताम, लुट्—तमिता, लृट्—तमिष्यति, लृङ—अतमिष्यत्, लुङ—अतमत्, क्त—तान्त, क्त्वा—तमित्वा, तान्त्वा ।

**तय्**—१ आ०, (जाना), लट्—तयते, लिट्—तेये, लुट्—तयिता, लुङ—अतयिष्ट ।

**तर्क्**—१० उ०, वितर्के ( अनुमान करना, तर्क करना), लट्—तर्कयति—ते, लिट्—तर्कयाञ्चकार—चक्रे, लुट्—तर्कयिता, लृट्—तर्कयिष्यति—ते, लृङ—अतर्कयिष्यत्—त, लुङ—अततर्कत्—त, क्त—तर्कित, क्त्वा—तर्कयित्वा ।

**तर्ज्**—१ प०, भर्त्सने ( डराना, धमकाना), लट्—तर्जति, लिट्—ततर्ज, लुट्—तर्जिता, लृट्—तर्जिष्यति, लृङ—अतर्जिष्यत्, लुङ—अतर्जीत् । सन्—तितर्जिषति, क्त—तर्जित ।

**तर्ज्**—१० आ०, भर्त्सने ( आक्षेप लगाना), लट्—तर्जयते, लिट्—तर्जयांचक्रे, लुट्—तर्जयिता, लुङ—अततर्जत, क्त—तर्जित ।

**तर्द्**—१ प०, हिंसायाम् ( मारना, चोट पहुँचाना), लट्—तर्दति, लिट्—ततर्द, लुट्—तर्दिता, लुङ—अतर्दीत् ।

**तल्**—१० उ०, प्रतिष्ठायाम् ( स्थिर होना ), लट्—तालयति—ते ।

**तस्**—४ प०, उपक्षये (क्षीण होना), लट्—तस्यति, लुङ—अतसत् ।

**तंस्**—१ प०, १० उ०, अलंकरणे (सजाना), लट्—तंसति और तंसयति—ते, लिट्—ततंस, तंसयांचकार—चक्रे, लुट्—तंसिता, तंसयिता, लुङ—अतंसीत्, अततंसत्—त ।

**ताय्**—१ आ०, संतानपालनयोः (फैलाना, रक्षा करना), लट्—तायते, लिट्—तताये, लुट्—तायिता, लुङ—आतयिष्ट, अतायि । णिच् लट्—ताययति—ते, लुङ—अततायत्—त । सन्—तितायिषते ।

**तिक्**—१ आ०, (जाना), लट्—तेकेते, लुट्—तेकिता, लुङ—अतेकिष्ट ।

**तिक्**—५ प०, आस्कन्दने वधे च (आक्रमण करना), लट्—तिक्नोति, लिट्—तितेक, लुट्—तेकिता, लुङ—अतेकीत् ।

**तिग्**—५ प० (आक्रमण करना), लट्—तिग्नोति, लिट्—तितेग, लुट्—तेगिता, लुङ—अतेगीत् ।

**तिघ्**—५ प०, हिंसायाम् ( हानि पहुँचाना ), लट्—तिघ्नोति, लिट्—तितेघ, लुट्—तेघिता, लुङ—अतेघीत् ।

**तिज्**—१ आ०, क्षमायाम् (सहन करना), लट्—तितिक्षते, लिट्—तितिक्षांचक्रे, लुट्—तितिक्षिता, लृट्—तितिक्षिष्यते, लुङ—अतितिक्षिष्ट, आ० लिङ—तितिक्षिषीष्ट । सन्—तितिक्षिषते, णिच्—तितिक्षयति—ते । (जब इसका अर्थ तीक्ष्ण करना होगा, निशाने), लट्—तेजते, लृट्—तेजिष्यते, लुङ—अतेजिष्ट ।

**तिज्**—१० उ०, निशाने ( तीक्ष्ण करना) लट्—तेजयति—ते, लिट्—तेजयांचकार—चक्रे, लुट्—तेजयिता, लुङ—अतीतिजत्—त ।

**तिप्**—१ आ०, क्षरणे (सींचना, टपकाना), लट्—तेपते, लिट्—तितिपे, लुट्—तेप्ता, लृट्—तेप्स्यते, लृङ—अतेप्स्यत, आ० लिङ—तिप्सीष्ट, लुङ—अतिप्त ।

**तिम्**——४ प०, आर्द्रीभावे (गीला होना), लट्–तिम्यति, लिट्–तितेम, लुट्–तेमिता, लुङ–अतेमीत् । सन्–तितिमिषति, तितेमिषति, क्त–तिमित ।

**तिल्**——१ प०, गतौ ( जाना), लट्–तेलति, लिट्–तितेल, लुट्–तेलिता, लुङ–अतेलीत् ।

**तिल्**——६ प० और १० उ० ( चिकना होना), लट्–तिलति, तेलयति–ते, लिट्–तितेल, तेलयांचकार–चक्रे, लुट्–तेलिता, तेलयिता, लुङ–अतेलीत्, अतीतिलत्–त ।

**तिल्ल्**——१ प०, ( जाना), लट्–तिल्लति, लुङ–अतिल्लीत् ।

**तीक्**——१ आ०, (जाना), लट्–तीकते, लिट्–तितीके, लुट्–तीकिता, लुङ–अतीकिष्ट ।

**तीम्**——४ प०, क्लेदने ( गीला होना), लट्–तीम्यति, लुङ–अतीमीत् ।

**तीव्**——१ प०, स्थौल्ये (मोटा होना), लट्–तीवति, लिट्–तितीव, लुट्–तीविता, लुङ–अतीवीत् ।

**तु**——२ प०, गतिवृद्धिहिंसासु (जाना, मारना, उगना), लट्—तौति, तवीति, लिट्–तुताव, लुट्–तोता, लृट्–तोष्यति, लृङ–अतोष्यत्, लुङ–अतौषीत् ।

**तुज्**——१ प०, हिंसायाम् ( मारना), लट्–तोजति, लिट्–तुतोज, लुट्–तोजिता, लुङ–अतोजीत् ।

**तुञ्ज्**——१ प०, प्रापणे हिंसायां बले च (पहुँचना, मारना, शक्तिशाली होना), लट्–तुञ्जति, लिट्–तुतुञ्ज, लुट्–तुञ्जिता, लुङ–अतुञ्जीत् ।

**तुज्, तुञ्ज्**——१० उ०, हिंसाबलादाननिकेतनेषु ( मारना, शक्तिशाली होना, जीना), लट्–तोजयति–ते, तुञ्जयति–ते, लिट्–तोजयांचकार-चक्रे, तुञ्जयांचकार–चक्रे, लुट्–तोजयिता, तुञ्जयिता, लुङ–अतूतुजत्–त, अतुतुञ्जत्–त ।

**तुट्**——६ प०, कलहकर्मणि (कुटादि), (झगड़ा करना, काटना), लट्–तुटति, लिट्–तुतोट, लुट्–तुटिता, लुङ–अतुटीत् ।

**तुड्**——१, ६ प० ( कुटादि), तोडने ( फाड़ना, मारना ), लट्–तोडति, तुडति, लुट्–तोडिता, तुडिता, लुङ–अतुडीत्, अतोडीत् ।

**तुड्ड्**——१ प०, अनादरे ( अनादर करना), लट्–तुड्डति, लुङ–अतुड्डीत् ।

**तुण्**——६ प०, कौटिल्ये (टेढ़ा करना), लट्–तुणति, लिट्–तुतोण, लुट्–तोणिता, लुङ–अतोणीत् ।

**तुत्थ्**——१० उ०, आवरणे (ढकना), लट्–तुत्थयति–ते, लुङ–अतुतुत्थत्–त ।

**तुद्**——६ उ०, व्यथने (दुःख देना, चोट मारना), लट्–तुदति–ते, लिट्–तुतोद–तुतुदे, लुट्–तोत्ता, लृट्–तोत्स्यति–ते, लृङ–अतोत्स्यत्–त लुङ–अतौ-

त्सीत्, अतुत्त, आ० लिङ–तुद्यात्–तोत्सीष्ट । सन्–तुतुत्सति–ते, कर्म० लट्–तुद्यते, लुङ–अतोदि, णिच्–लट्–तोदयति–ते, लुङ–अतूतुदत्–त, क्त–तुन्न, क्त्वा–तुत्त्वा ।

**तुन्द्**––१ प० (खोजना), लट्–तुन्दन्ति, लिट्–तुतुन्द, लुट्–तुन्दिता, लुङ–अतुन्दीत् ।

**तुप्**––१ और ६ प०, हिंसायाम् ( मारना ), लट्–तोपति, तुपति, लिट्–तुतोप, लुट्–तोपिता, लुङ–अतोपीत् ।

**तुफ्**––१, ६ प०, हिंसायाम् (मारना), लट्–तोफते ।

**तुभ्**––१ आ०, हिंसायाम् (मारना), लट्–तोभते, लुङ–अतुभत, अतोभिष्ट ।

**तुभ्**––४, ९ प०, ( मारना, चोट पहुँचाना ) लट्–तुभ्यति, तुभ्नाति, लिट्–तुतोभ, लुट्–तोभिता, लुङ––(४) अतुभत्, (९) अतोभीत् ।

**तुम्प्, तुम्फ्**––१, ६ (तुप् और तुफ् के तुल्य) लट्–तुम्पति, तुम्फति ।

**तुम्ब्**––१ प०, अर्दने (दुःख देना, कष्ट पहुँचाना), लट्–तुम्बति, लुङ–अतुम्बीत् । १० उ० (अदर्शने च) भी है ।

**तुर्**––३ प०, त्वरणे (शीघ्रता करना), लट्–तुतोर्ति, लिट्–तुतोर, लुट्–तोरिता, लुङ–अतोरीत् (वैदिक) ।

**तुर्व्**––१ प०, हिंसायाम् (मारना), लट्–तुर्वति, लिट्–तुतूर्व, लुट्–तूर्विता, लुङ–अतूर्वीत् ।

**तुल्**––१० उ०, उन्माने (तोलना, परीक्षा करना), लट्–तोलयति–ते, लिट्–तोलयाञ्चकार–चक्रे, लुट्–तोलयिता, लृट्–तोलयिष्यति–ते, आ० लिङ–तोल्यात्, तोलयिषीष्ट, लुङ–अतूतुलत्–त । कर्म०–लट्–तोल्यते, लुङ–अतोलीत्, क्त–तोलित ।

**तुष्**––४ प०, तुष्टौ (सन्तुष्ट होना), लट्–तुष्यति, लिट्–तुतोष, लुट्––तोष्टा, लृट्–तोक्ष्यति, लृङ–अतोक्ष्यत्, आ०, लिङ–तुष्यात्, लुङ–अतुषत् । सन्–तुतुक्षति, कर्म० लट्–तुष्यते, लुङ–अतोषि, क्त–तुष्ट, क्त्वा–तुष्ट्वा, तुम्–तोष्टुम् ।

**तुस्**––१ प० ( शब्द करना), लट्–तोसति, लिट्–तुतोस, लुट्–तोसिता, लुङ–अतोसीत् ।

**तुह्**––१ प०, अर्दने वधे च (दुःख देना, हिंसा करना), लट्–तोहति, लुङ–अतुहत्–अतोहीत् । सन्–तुतु–तो–हिषति ।

**तूण्**––१० आ०, पूरणे ( भरना), लट्–तूणयते, लुङ–अतुतूणत ।

**तूर्**––४ आ०, गतित्वरणहिंसयोः (शीघ्रता से जाना, हिंसा करना), लट्–तूर्यते, लिट्–तुतूरे, लुट्–तूरिता, लुङ–अतूरिष्ट । सन्–तुतूरिषते ।

**तूल्**—१ प०, निष्कर्षे (तोल के द्वारा भार निश्चित करना), लट्–तूलति, ऌट्–तूलिष्यति, लुङ–अतूलीत् ।

**तृक्ष्**—१ प० (जाना), लट्–तृक्षति, लिट्–ततृक्ष, लुट्–तृक्षिता, लुङ–अतृक्षीत्, आ०, लिङ–तृक्ष्यात् ।

**तृण्**—८ उ०, अदने (खाना), लट्–तर्णोति, तर्णुते, तृणोति, तृणुते, लिट्–ततर्ण, ततृण, लुट्–तर्णिता, ऌट्–तर्णिष्यति–ते, लुङ–अतर्णीत्, अतर्णिष्ट, अतृत । सन्–तितर्णिषति–ते, क्त—तृत, क्त्वा–तृणित्वा, तृत्वा ।

**तृद्**—७ उ०, हिंसानादरयोः (नष्ट करना, अनादर करना), लट्–तृणत्ति, तृन्ते, लिट्–ततर्द, ततृदे, लुट्–तर्दिता, ऌट्–तर्दिष्यति–ते, तर्त्स्यति–ते, ऌङ–अतर्दिष्यत्–त, लुङ–अतृदत्, अतर्दीत्–अतर्दिष्ट, आ० लिङ–तृद्यात्, तर्दिषीष्ट, तृत्सीष्ट । सन्–तितर्दिषति, तितृत्सति, क्त–तृण्ण, क्त्वा–तर्दित्वा, तृत्त्वा ।

**तृप्**—४ प०, तृप्तौ ( तृप्त होना), लट्–तृप्यति, लिट्–ततर्प, लुट्–तर्पिता, तर्प्ता, त्रप्ता, ऌट्–तर्पिष्यति, तर्प्स्यति, त्रप्स्यति, ऌङ–अतर्पिष्यत्, अतर्प्स्यत्, अत्रप्स्यत्, लुङ–अतृपत्–अतर्पीत्–अत्राप्सीत्–अतार्प्सीत्, आ० लिङ–तृप्यात् । सन्–तितर्पिषति, तितृप्सति, णिच्–तर्पयति–ते, लुङ–अततर्पत्–त, अतीतृपत्–त, क्त–तृप्त, तुम्–तर्पितुम्, तर्प्तुम्–त्रप्तुम् ।

**तृप्**—५ प०, प्रीणने (प्रसन्न होना, प्रसन्न करना), लट्–तृप्नोति, लिट्–ततर्प, लुट्–तर्पिता, लुङ–अतर्पीत्, आ० लिङ–तृप्यात् । सन्–तितर्पिषति, तितृप्सति, क्त–तर्पित, क्त्वा–तर्पित्वा ।

**तृप्**—६ प०, (प्रसन्न होना, प्रसन्न करना), लट्–तृपति, ( शेष रूप पूर्ववत्)

**तृप्**—१ प०, १० उ०, तृप्तौ संदीपने च, (सन्तुष्ट होना, जलाना ), लट्–तर्पति, तर्पयति–ते, लिट्–ततर्प, तर्पयांचकार–चक्रे, लुट्–तर्पिता, तर्पयिता, लुङ–अतर्पीत्, अततर्पत्–त, अतीतृपत्–त । क्त–तृपित, तर्पित ।

**तृफ्**, **तृम्फ्**—६ प०, प्रीणने (प्रसन्न करना), लट्–तृफति, तृम्फति, लुङ–अतर्फीत्, अतृम्फीत् ।

**तृम्प्**—६ प०, प्रीणने (प्रसन्न करना), लट्–तृम्पति, ऌट्–तृम्पिष्यति, लुङ–अतृम्पीत् ।

**तृष्**—४ प०, पिपासायाम् (प्यासा होना), लट्–तृष्यति, लिट्–ततर्ष, लुट्—तर्षिता, ऌट्–तर्षिष्यति, ऌङ–अतर्षिष्यत्, लुङ–अतृषत्, आ० लिङ–तृष्यात् । णिच्–लट्–तर्षयति–ते, लुङ–अतीतृषत्–त, अततर्षत्–त, सन्–तितर्षिषति, क्त–तृष्ट, क्त्वा–तृषित्वा, तर्षित्वा ।

**तृह्**—६ प०, हिंसायाम् (मारना), लट्–तृहति, लिट्–ततर्ह, लुट्–तर्हिता, तर्ढा, ऌट्–तर्हिष्यति, तर्क्ष्यति, लुङ–अतर्हीत्, अतृक्षत् । सन्–तितर्हिषति, तितृक्षति, णिच्–अगली धातु के तुल्य । क्त–तृढ, क्त्वा, तर्हित्वा, तृढ्वा ।

**तृह्**—७ प०, (हिंसा करना, चोट पहुँचाना), लट्–तृणेढि, लिट्–ततर्ह, लुट्–तर्हिता, लृट्–तर्हिष्यति, लृङ–अतर्हिष्यत्, लुङ–अतर्हीत्, आ० लिङ–तृह्यात् । सन्–तितृक्षति, णिच् लट्–तर्हयति–ते, लुङ–अततर्हत्–त, अतीतृहत्–त, कर्म० लट्– तृह्यते, लुङ–अतर्हि, क्त–तृहित, क्त्वा–तर्हित्वा, तुम्–तर्हितुम् ।

**तृंह्**—६ प० (मारना), लट्–तृंहति, लिट्–ततृंह, लुट्–तृंहिता, तृंढा, लृट्–तृंहिष्यति, तृंक्ष्यति, लुङ–अतृंहीत्, अताङ्क्षीत्, आ० लिङ–तृंह्यात् । सन्–तितृक्षति, तितृंहिषति, तुम्–तृंहितुम्, तृण्ढुम् ।

**तॄ**—१ प०, प्लवनतरणयोः (तैरना, पार करना), लट्–तरति, लिट्–ततार, लुट्–तरिता, तरीता, लृट्–तरिष्यति, तरीष्यति, लुङ–अतारीत्, आ० लिङ–तीर्यात् । सन्–तितीर्षति, क्त–तीर्ण, क्त्वा–तीर्त्वा । कर्म० लट्–तीर्यते, लिट्–तेरे, लुट्–तारिता, तरिता, तरीता, लुङ–अतारि, आ० लिङ–तारिषीष्ट, तरिषीष्ट, तीर्षीष्ट, णिच्–लट्–तारयति-ते, लुङ–अतीतरत्–त ।

**तेज्**—१ प०, निशाने पालने च (तीक्ष्ण करना, रक्षा करना), लट्–तेजति, लिट्–तितेज, लुट्–तेजिता, लुङ–अतेजीत् ।

**तेप्**— १ आ०, क्षरणे कम्पे च्युतौ च (गिरना, हिलाना), लट्–तेपते, लिट्–तितेपे, लुट्–तेपिता, लुङ–अतेपिष्ट ।

**तेव्**—१ आ०, देवने (खेलना), लट्–तेवते, लुङ–अतेविष्ट ।

**त्यज्**—१ प०, हानौ (छोड़ना), लट्–त्यजति, लिट्–तत्याज, लुट्–त्यक्ता, लृट्–त्यक्ष्यति, लृङ–अत्यक्ष्यत्, लुङ–अत्याक्षीत्, आ० लिङ–त्यज्यात्। णिच् लट्–त्याजयति–ते, लुङ–अतित्यजत्–त, सन्–तित्यक्षति, कर्म० लट्–त्यज्यते, लुङ–अत्याजि, क्त–त्यक्त, क्त्वा–त्यक्त्वा, तुम्–त्यक्तुम् ।

**त्रङ्क्**—१ आ०, (जाना), लट्–त्रङ्कते, लिट्–तत्रङ्के, लुट्–त्रङ्किता, लुङ–अत्रङ्किष्ट ।

**त्रख्—त्रंख्**—१ प०, (जाना), लट्–त्रखति, त्रङ्खति, लिट्–तत्राख, तत्रङ्ख, लुट्–त्रखिता, त्रंखिता, लुङ–अत्रखीत्, अत्राखीत्, अत्रङ्खीत् ।

**त्रङ्ग्**—१ प०, (हिलना), लट्–त्रङ्गति, लिट्–तत्रङ्ग, लुट्–त्रङ्गिता, लुङ–अत्रङ्गीत् ।

**त्रप्**—१ आ०, लज्जायाम् (लज्जित होना), लट्–त्रपते, लिट्–त्रेपे, लुट्—त्रपिता, त्रप्ता, लृट्–त्रपिष्यते, त्रप्स्यते, लृङ–अत्रपिष्यत्, अत्रप्स्यत, लुङ–अत्रपिष्ट, अत्रप्त, आ० लिङ–त्रपिषीष्ट, त्रप्सीष्ट , णिच् लट्–त्रपयति–ते, लुङ–अतित्रपत्–त । सन्–तित्रपिषते, क्त–त्रप्त, क्त्वा–त्रपित्वा, त्रप्त्वा, तुम्–त्रपितुम्, त्रप्तुम् ।

**त्रस्**—१ और ४ प०, उद्वेगे ( डरना, काँपना) लट्–त्रसति, त्रस्यति, लिट्–तत्रास, लट्–त्रसिता, लृट्–त्रसिष्यति, लृङ–अत्रसिष्यत्, लुङ–अत्रासीत्,

अत्रसीत्, आ० लिङ्–त्रस्यात्, कर्म० लट्–त्रस्यते, लुङ्–अत्रासि। णिच्–लट्–त्रासयति–ते, लुङ्–अतित्रसत्–त। सन्–तित्रसिषति, क्त–त्रस्त, क्त्वा–त्रसित्वा, तुम्–त्रसितुम्।

**त्रस्**––१० उ०, ग्रहणे धारणे वारणे च (लेना, पकड़ना, हटाना), लट्–त्रासयति–ते, लिट्–त्रासयांचकार–चक्रे, लुट्–त्रासयिता, लुङ्–अतित्रसत्–त।

**त्रंस्**––१ प० और १० उ०, भाषायाम् (बोलना), लट्–त्रंसति, त्रंसयति-ते, लुङ्–अत्रंसीत्, अतत्रंसत्–त।

**त्रिङ्ख**––१ प०, (जाना), लट्–त्रिङ्खति, लिट्–तित्रिङ्ख, लुट्–त्रिङ्खिता, लुङ्–अत्रिङ्खीत्।

**त्रुट्**––६ प०, छेदने (कुटादि) (फाड़ना, तोड़ना), लट्–त्रुट्यति, लिट्–तुत्रोट, लुट्–त्रुटिता, लृट्–त्रुटिष्यति, लुङ्–अत्रुटीत्, आ० लिङ्–त्रुट्यात्। णिच् लट्–त्रोटयति–ते, लुङ्–अतुत्रुटत्–त। सन्–तुत्रुटिषति, कर्म० लट्–त्रुट्यते, लुङ्–अत्रोटि, क्त–त्रुटित, क्त्वा–त्रुटित्वा।

**त्रुट्**––१० आ०, छेदने (फाड़ना), लट्–त्रोटयते, लिट्–त्रोटयाञ्चक्रे, लुट्–त्रोटयिता, लुङ्–अतुत्रुटत, आ० लिङ्–त्रोटयिषीष्ट।

**त्रुप्, त्रुम्प्**––१ प०, हिंसायाम् (मारना), लट्–त्रोपति, त्रुम्पति, लुङ्–अत्रोपीत्, अत्रुम्पीत्।

**त्रुफ्, त्रुम्फ्**––पूर्ववत्।

**त्रै**––१ आ०, पालने (रक्षा करना), लट्–त्रायते, लिट्–तत्रे, लुट्–त्राता, लृट्–त्रास्यते, लृङ्–अत्रास्यत, लुङ्–अत्रास्त, आ० लिङ्–त्रासीष्ट, णिच् लट्–त्रापयति–ते, लुङ्–अतित्रपत्–त सन्–तित्रासते, कर्म–लट्–त्रायते, लुङ्–अत्रायि, क्त–त्रात (त्राण), तुम्–त्रातुम्।

**त्रौक्**––१ आ०, (जाना), लट्–त्रौकते, लिट्–तुत्रौके, लुट्–त्रौकिता, लृट्–त्रौकिष्यते, लुङ्–अत्रौकिष्ट।

**त्वक्ष्**––१ प०, तनूकरणे (छीलना), लट्–त्वक्षति, लिट्–तत्वक्ष, लुट्–त्वक्षिता, त्वष्टा, लृट्–त्वक्षिष्यति, त्वक्ष्यति, लुङ्–अत्वक्षीत्, अत्वाक्षीत् आ० लिङ्–त्वक्ष्यात्। सन्–तित्वक्षिषति, तित्वक्षति, क्त–त्वष्ट, क्त्वा–त्वक्षित्वा, त्वष्ट्वा।

**त्वङ्ग्**––१ प०, गतौ कम्पने च (जाना, हिलाना), लट्–त्वङ्गति, लिट्–तत्वङ्ग, लुट्–त्वङ्गिता, लुङ्–अत्वङ्गीत्।

**त्वच्**––६ प०, संवरणे (ढकना), लट्–त्वचति, लिट्–तत्वाच, लुट्–त्वचिता, लुङ्–अत्वचीत्, अत्वाचीत्।

**त्वञ्च्**––१ प० (जाना, हिलना), लट्–त्वञ्चति, लिट्–तत्वञ्च, लुट्–त्वञ्चिता, लुङ्–अत्वञ्चीत्, आ० लिङ्–त्वच्यात्। सन्–तित्वञ्चिषति, कर्म० –त्वच्यते।

**त्वर्**——१ आ०, संभ्रमे (शीघ्रता करना, शीघ्रता से जाना), लट्–त्वरते, लिट्–तत्वरे, लुट्–त्वरिता, लुङ–अत्वरिष्ट, आ० लिङ–त्वरिषीष्ट । सन्–तित्वरिषते, क्त–त्वरित या तूर्ण । णिच्, लट्–त्वरयति–ते, लुङ–अतत्वरत्–त ।

**त्विष्**——१ उ०, दीप्तौ (चमकना), लट्–त्वेषति–ते, लिट्–तित्वेष, तित्विषे, लुट्–त्वेष्टा, ऌट्–त्वेक्ष्यति–ते, ऌङ–अत्वेक्ष्यत्–त, लुङ–अत्विक्षत्–त । सन्–तित्विक्षति–ते ।

**त्सर्**——१ प०, छद्मगतौ ( छल पूर्वक जाना), लट्–त्सरति, लिट्–तत्सार, लुट्–त्सरिता, लुङ–अत्सारीत् ।

**थ**

**थुड्**——६ प०, संवरणे (कुटादि) (ढकना, छिपाना), लट्–थुडति, लिट्–तुथोड, लुट्–थुडिता, लुङ–अथुडीत् ।

**थुर्व्**——१ प०, हिंसायाम् (हानि पहुँचाना), लट्–थूर्वति, लिट्–तुथूर्व, लुट्–थूर्विता, लुङ–अथूर्वीत् ।

**द**

**दंश्**——१ प०, दंशने भाषायां च (डंक मारना, कहना) लट्–दंशति, लिट्–ददंश, लुट्–दंष्टा, ऌट्–दंक्ष्यति, लुङ–अदांक्षीत् ( द्विव० अदांष्टाम् ), आ० लिङ–दश्यात् । सन्–दिदक्षति, कर्म०–दश्यते, लुङ–अदंशि, क्त–दष्ट, क्त्वा–दष्ट्वा, तुम्–दष्टुम् ।

**दंश्**——१० आ०, दंशने ( डंक मारना ), लट्–दंशयते, लुङ–अददंशत । सन्–दिदंशयिषते, कर्म० लट्–दंश्यते, क्त–दंशित ।

**दंश्**——१० उ०, भाषायाम् (बोलना), लट्–दंशयति–ते, लुङ–अददंशत्–त ।

**दक्ष्**——१ आ०, वृद्धौ शीघ्रार्थे (गतिहिंसनयोश्च), (बढ़ना, शीघ्रता से जाना, जाना, मारना ), लट्–दक्षते, लिट्–ददक्षे, ऌट्–दक्षिष्यते, लुङ–अदक्षिष्ट ।

**दघ्**——५ प०, घातने पालने च ( हिंसा करना, रक्षा करना), लट्–दघ्नोति, लिट्–ददाघ, लुट्–दघिता, लुङ–अदघीत्, अदाघीत्, (वैदिक) ।

**दण्ड्**——१० उ०, दण्डनिपातने दमने च ( दण्ड देना), लट्–दण्डयति–ते, लिट्–दण्डयांचकार–चक्रे, लुट्–दण्डयिता, ऌट्–दण्डयिष्यति–ते, लुङ–अददण्डत्–त । सन्–दण्डयिषीष्ट, क्त–दण्डित ।

**दद्**——१ आ०, दाने (देना), लट्–ददते, लिट्–दददे, लुट्–ददिता, ऌट्–ददिष्यते, लुङ–अददिष्ट, आ० लिङ–ददिषीष्ट । सन्–दिददिषते, णिच्–लट्–दादयति–ते, लुङ–अदीददत्–त ।

**दध्**——१ आ०, धारणे ( रखना, लेना), लट्–दधते, लिट्–देधे, लुट्–दधिता, लुङ–अदधिष्ट, आ० लिङ–दधिषीष्ट । सन्–दिदधिषते, णिच्–लट्–दाधयति–ते, कर्म० लट्–दध्यते ।

**दम्भ्**—५ प०, दम्भने (चोट पहुँचाना, धोखा देना), लट्–दम्नोति, लिट्–ददम्भ, लुट्–दम्भिता, ऌट्–दम्भिष्यति, लुङ–अदम्भीत् । सन्–धिप्सति, धीप्सति, दिदम्भिषति, कर्म० लट्–दभ्यते, लुङ–अदम्भि, क्त–दब्ध, क्त्वा–दम्भित्वा–दब्ध्वा ।

**दम्भ्**—१० उ०, प्रेरणे (भेजना), लट्–दम्भयति–ते, लिट्–दम्भयांचकार–चक्रे, लुङ–अददम्भत्–त, आ० लिङ–दम्भ्यात्, दम्भयिषीष्ट । कर्म०–दम्भ्यते ।

**दम्**—४ प०, उपशमे (शान्त होना), लट्–दाम्यति, लिट्–ददाम, लुट्–दमिता, ऌट्–दमिष्यति, ऌङ–अदमिष्यत्, लुङ–अदमत् । णिच्–दमयते, लुङ–अदीदमत, कर्म०–दम्यते, लुङ–अदमि, अदामि, क्त–दमित, दान्त, क्त्वा–दमित्वा, दान्त्वा ।

**दय्**—१ आ०, दानगतिरक्षणहिंसादानेषु (देना, दया करना, रक्षा करना, चोट पहुँचाना, लेना), लट्–दयते, लिट्–दयांचक्रे, लुट्–दयिता, ऌट्–दयिष्यते, लुङ–अदयिष्ट, आ० लिङ–दयिषीष्ट । सन्–दिदयिषते, क्त–दयित ।

**दरिद्रा**—२ प०, दुर्गतौ, (दरिद्र होना), लट्–दरिद्राति, लिट्–दरिद्राञ्चकार, ददरिद्रौ, लुट्–दरिद्रिता, लुङ–अदरिद्रीत्, अदरिद्रासीत्, आ० लिङ–दरिद्र्यात् । सन्–दिदरिद्रासति, दिदरिद्रिषति, क्त–दरिद्रित ।

**दल्**—१ प०, विशरणे (फटना, फैलना), लट्–दलति, लिट्–ददाल, लुट्–दलिता, लुङ–अदालीत् । क्त–दलित, णिच्–दलयति, दालयति, सन्–दिदलिषति ।

**दल्**—१० उ०, विदारणे (फाड़ना), लट्–दालयति, लुङ–अदीदलत्–त ।

**दस्**—४ प०, उपक्षये (नष्ट होना), लट्–दस्यति, लिट्–ददास, लुट्–दसिता, लुङ–अदसत् ।

**दंस्**—१ प०, १० आ०, दर्शनदंशनयोः (देखना, डंक मारना), लट्–दंसति, दंसयते, लिट्–ददंस, दंसयाञ्चक्रे, लुङ–अदंसीत्, अददंसत ।

**दंस्**—१ प०, १० उ०, भाषायाम् (बोलना), लट्–दंसति, दंसयति–ते ।

**दह्**—१ प०, भस्मीकरणे (जलाना, दुःख देना), लट्–दहति, लिट्–ददाह, लुट्–दग्धा, ऌट्–धक्ष्यति, लुङ–अधाक्षीत् (द्वि० अदाग्धाम्), आ० लिङ–दह्यात् । सन्–दिधक्षति, णिच् लट्–दाहयति–ते, लुङ–अदीदहत्–त, कर्म० लट्–दह्यते, लुङ–अदाहि, क्त–दग्ध, क्त्वा–दग्ध्वा, तुम्–दग्धुम् ।

**दा**—१ प०, दाने (देना) लट्–यच्छति, लिट्–ददौ, लुट्–दाता, ऌट्–दास्यति, ऌङ–अदास्यत्, लुङ–अदात्, आ० लिङ–देयात् । सन्–दित्सति, कर्म० लट्–दीयते, लुङ–अदायि, णिच्–लट्–दापयति–ते, लुङ–अदीदपत्–त, क्त–दत्त, क्त्वा–दत्त्वा, तुम्–दातुम् ।

**दा**—२ प०, लवने (काटना), लट्–दाति, (लिट् और लृट् में पूर्ववत्), लुङ–अदासीत्, आ० लिङ–दायात् । सन्–दिदासति, कर्म–दायते, क्त–दात ।

**दा**—३ उ०, दाने (देना, रखना), लट्–ददाति, दत्ते, लिट्–ददौ, ददे, लुट्–दाता, लृट्–दास्यति–ते, लृङ–अदास्यत्–त, लुङ–अदात्, अदित, आ०, लिङ–देयात्, दासीष्ट । सन्–दित्सति–ते, क्त–दत्त, क्त्वा–दत्त्वा, तुम्–दातुम्, कर्म० लट्–दीयते, लुङ–अदायि ।

**दान्**—१ उ०, खण्डने आर्जवे च (काटना, सीधा करना), लट्–दीदांसति–ते, लिट्–दीदांसाञ्चकार–चक्रे, लुङ–अदीदांसीत्, अदीदांसिष्ट । सन्–दीदांसिषति–ते ।

**दान्**—१० उ०, छेदने (काटना), लट्–दानयति–ते, लुङ–अदीदनत्–त ।

**दाय्**—१ आ०, दाने (देना), लट्—दायते, लिट्–ददाये, लृट्–दायिष्यते, लुङ–अदायिष्ट ।

**दाश्**—१ उ०, दाने (देना), लट्–दाशति–ते, लिट्–ददाश, ददाशे, लुङ–अदाशीत्, अदाशिष्ट ।

दाश्—५ प०, हिंसायाम् (हिंसा करना, चोट पहुँचाना), लट्–दाश्नोति (वैदिक) ।

**दास्**—१ उ०, दाने (देना), लट्–दासति–ते, लुङ–अदासीत्, अदासिष्ट ।

**दिव्**—४ प०, क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु (जुआ खेलना, बेचना, चमकना, चाहना, जीतना, आनन्दित होना, सोना, जाना आदि), लट्–दीव्यति, लिट्–दिदेव, लुट्–देविता, लुङ–अदेवीत्, आ० लिङ–दीव्यात् । सन्–दुद्यूषति, दिदेविषति, कर्म० लट्–दीव्यते, णिच् लट्–देवयति–ते, लुङ–अदीदिवत्–त, क्त–द्यूत या द्यून ।

**दिव्**—१ प०, १० उ०, मर्दने (रगड़ना) लट्–देवति, देवयति–ते, लिट्–दिदेव, देवयाञ्चकार–चक्रे, लुङ–अदेवीत्, अदीदिवत्–त ।

**दिव्**—१० आ०, परिकूजने (रोना, रुलाना) लट्–देवयते, लुङ–अदीदिवत ।

**दिश्**—६ उ०, अतिसर्जने (देना, स्वीकृति देना), लट्–दिशति–ते, लिट्–दिदेश, दिदिशे, लुट्–देष्टा, लृट्–देक्ष्यति–ते, लृङ–अदेक्ष्यत्–त, लुङ–अदिक्षत्–त, आ० लिङ–दिश्यात्, दिक्षीष्ट । सन्–दिदिक्षति–ते, कर्म० लट्–दिश्यते, लुङ–अदेशि, णिच्-लट् देशयति–ते, लुङ–अदीदिशत्–त, क्त–दिष्ट, तुम्–देष्टुम्, क्त्वा–दिष्ट्वा ।

**दिह्**—२ उ०, उपचये (बढ़ना, चिकना करना), लट्–देग्धि, दिग्धे, लिट्–दिदेह, दिदिहे, लुट्–देग्धा, लृट्–धेक्ष्यति–ते, लृङ–अधेक्ष्यत्–त, लुङ–अधिक्षत्, अधिक्षत, अदिग्ध, आ० लिङ–दिह्यात्, धिक्षीष्ट । सन्–दिधिक्षति–ते, कर्म० लट्–दिह्यते, लुङ–अदेहि, णिच् लट्–देहयति–ते । लुङ–अदीदिहत्–त, क्त–दिग्ध, क्त्वा–दिग्ध्वा, तुम्–देग्धुम् ।

**दी**—४ आ०, क्षये (नष्ट होना), लट्–दीयते, लिट्–दिदीये, लुट्–दाता, ऌट्–दास्यते, ऌङ–अदास्यत, लुङ–अदास्त, आ० लिङ–दासीष्ट । सन्–दिदीषते, क्त–दीन ।

**दीक्ष्**—१ आ०, मौण्ड्येज्योपनयननियमव्रतादेशेषु (यज्ञोपवीत धारण करना, किसी कार्य के लिए जीवन समर्पण करना, यज्ञ करना), लट्–दीक्षते, लिट्–दिदीक्षे, लुट्–दीक्षिता, लुङ–अदीक्षिष्ट । कर्म० लट्–दीक्ष्यते, लुङ–अदीक्षि, णिच्–लट्–दीक्षयति-ते, लुङ–अदिदीक्षत्–त । सन्–दिदीक्षते, क्त–दीक्षित, क्त्वा–दीक्षित्वा ।

**दीधी**—२ आ०, दीप्तिदेवनयोः (चमकना, प्रकट होना), लट्–दीधीते, लिट्–दीध्याञ्चक्रे, लुट्–दीधिता, ऌट्–दीधिष्यते, लुङ–अदीधिष्ट (वैदिक) ।

**दीप्**—४ आ०, दीप्तौ (चमकना, जलाना), लट्–दीप्यते, लिट्–दिदीपे, लुट्–दीपिता, लुङ–अदीपिष्ट, अदीपि, आ० लिङ–दीपिषीष्ट । सन्–दिदीपिषते, णिच् लट्–दीपयति–ते, लुङ–अदीदिपत्–त, अदिदीपत्–त, कर्म० लट्–दीप्यते, लुङ–अदीपि, क्त–दीप्त ।

**दु**—१ प०, (जाना), लट्–दवति, क्त–दून । शेष रूपों के लिए नीचे की धातु देखें ।

**दु**—५ प०, उपतापे (जलाना, दुःखित करना, कष्ट देना), लट्–दुनोति, लिट्–दुदाव, लुट्–दोता, ऌट्–दोष्यति, ऌङ–अदोष्यत्, लुङ–अदोषीत्, आ० लिङ–दूयात् । सन्–दुदूषति, कर्म०–लट्–दूयते, लुङ–अदावि, क्त–दूत ।

**दुःख**—१० उ०, दुःखक्रियाम् (दुःख देना), लट्–दुःखयति, लुङ–अदुदुःखत्–त ।

**दुर्व्**—१ प०, हिंसायाम् (मारना), लट्–दूर्वति, लिट्–दुदूर्व, ऌट्–दूर्विष्यति, लुङ–अदूर्वीत् ।

**दुल्**—१० उ०, उत्क्षेपे (इधर-उधर डुलाना), लट्–दोलयति–ते, लिट्–दोलयांञ्चकार–चक्रे, लुट्–दोलयिता, लुङ–अदूदुलत्–त । सन्–दुदोलयिषति–ते ।

**दुष्**—४ प०, वैक्लव्ये (दुष्ट होना, अपवित्र होना), लट्–दुष्यति, लिट्–दुदोष, लुट्–दोष्टा, ऌङ–अदोक्ष्यत्, ऌट्–दोक्ष्यति, लुङ–अदुषत्, आ० लिङ–दुष्यात् । णिच् लट्–दूषयति–ते, दोषयति–ते भी होता है (दूषित करना), लुङ–अदूदुषत्–त, सन्–दुदुक्षति, कर्म० लट्–दुष्यते, लुङ–अदोषि, क्त–दुष्ट ।

**दुह्**—१ प०, अर्दने (दुःख देना, चोट पहुँचाना), लट्–दोहति, लिट्–दुदोह, ऌट्–दोहिष्यति, लुङ–अदुहत्, अदोहीत् । क्त–दुहित ।

**दुह**—२ उ०, प्रपूरणे (दुहना, लाभ उठाना), लट्–दोग्धि, दुग्धे, लिट्–दुदोह, दुदुहे, लुट्–दोग्धा, ऌट्–धोक्ष्यति–ते, लुङ–अधुक्षत्, अधुक्षत, अदुग्ध, आ०

लिङ–दुह्यात्, धुक्षीष्ट । सन्–दुधुक्षति–ते, कर्म० लट्–दुह्यते (दुग्धे भी होता है, देखो सूत्र ३, १, ८९) । लुङ–अदोहि, (अदुग्ध, अधुक्षत), णिच् लट्–दोहयति –ते, लुङ–अदूदुहत्–त, क्त–दुग्ध, क्त्वा–दुग्ध्वा, तुम्–दोग्धुम् ।

**दू**—४ आ०, परितापे (दुःखित होना, कष्ट उठाना), लट्–दूयते, लिट्–दुदुवे, लुट्–दविता, लृट्–दविष्यते, लृङ–अदविष्यत, लुङ–अदविष्ट, आ० लिङ–दविषीष्ट । सन्–दुदूषते, णिच्–लट्–दावयति–ते, लुङ–अदूदवत्–त, कर्म० लट्–दूयते, लुङ–अदावि, क्त–दून ।

**दृ**—६ आ०, आदरे (पूजा करना), (आ+दृ) (आदर करना), लट्–द्रियते, लिट्–दद्रे, लुट्–दर्ता, लुङ–अदृत, आ० लिङ–दृषीष्ट । सन्–दिदरिषते, कर्म० लट्–द्रियते, लुङ–अदारि, णिच्–लट्–दारयति–ते, लुङ–अदीदरत्–त, क्त–दृत, क्त्वा–दृत्वा, तुम्–दर्तुम् ।

**दृप्**—४ प०, हर्षमोहनयोः ( प्रसन्न होना, गर्वयुक्त होना), लट्–दृप्यति, लिट्–ददर्प, लुट्–दर्पिता, दर्प्ता, द्रप्ता, लृट्–दर्पिष्यति, दर्प्स्यति, द्रप्स्यति, लृङ–अदर्पिष्यत्, अदर्प्स्यत्, अद्रप्स्यत्, लुङ–अदृपत्, अदर्पीत्, अदार्प्सीत्, अद्राप्सीत्, आ० लिङ–दृप्यात् । सन्–दिदर्पिषति दिदृप्सति, णिच् लट्–दर्पयति–ते, लुङ–अदीदृपत्–त, अददर्पत्–त, क्त–दृप्त, क्त्वा–दृप्त्वा, दर्पित्वा, तुम्–दर्पितुम्, दर्प्तुम्, द्रप्तुम् ।

**दृप्**—१ प०, १० उ०, संदीपने (क्रुद्ध करना, जलाना), लट्–दर्पति, दर्पयति–ते, लुट्–दर्पिता, दर्पयिता, लुङ–अदर्पीत्, अदीदर्पत्–त, अददर्पत्–त, आ० लिङ–दृप्यात्, दर्प्यात्, दर्पयिषीष्ट । सन्–दिदर्पिषति, दिदर्पयिषति–ते, कर्म० लट्–दृप्यते, दर्प्यते, लुङ–अदर्पि, क्त–दृपित, दर्पित ।

**दृभ्**—६ प०, ग्रन्थे (एकत्र करना, धागे में बाँधना), लट्–दृभति, लृट्–दर्भिष्यति, लुङ–अदर्भीत् । णिच्-लट्–दर्भयति–ते, लुङ–अदीदृभत्–त, अददर्भत्–त, लुङ–दिदर्भिषति, क्त–दृब्ध, क्त्वा–दर्भित्वा ।

**दृभ्**—१ प०, १० उ०, भये संदर्भे च (डरना, धागे में इकट्ठा करना), लट्–दर्भति, दर्भयति–ते ।

**दृश्**—१ प०, प्रेक्षणे (देखना, जानना), लट्–पश्यति, लिट्–ददर्श, लुट्–द्रष्टा, लृट्–द्रक्ष्यति, लृङ–अद्रक्ष्यत्, लुङ–अदर्शत्, अद्राक्षीत्, आ० लिङ–दृश्यात् । सन्–दिदृक्षते, णिच् लट्–दर्शयति–ते, लुङ–अदीदृशत्–त, अददर्शत्–त, यङ–दरीदृश्यते, दर्दृशीति, दर्दृष्टि, कर्म० लट्–दृश्यते, लुङ–अदर्शि, क्त–दृष्ट, क्त्वा –दृष्ट्वा, तुम्–द्रष्टुम् ।

**दृह्**—दृंह्–१ प०, वृद्धौ (बढ़ना, दृढ़ होना), लट्–दर्हति या दृंहति, लिट्–ददर्ह या ददृंह, लुट्–दर्हिता या दृंहिता, लुङ–अदर्हीत् या अदृंहीत् क्त–दृढ, (पुष्ट) या दृहित, दृंहित ।

**दृ**—१ प०, भये (डरना), लट्–दरति, लिट्–ददार, लुट्–दरिता–दरीता, लुङ–अदारीत् ।

**दृ**—६ प०, विदारणे (फाड़ना), लट्–दृणाति, लिट्–ददार, लुट्–दरिता, दरीता, लृट्–दरिष्यति, दरीष्यति, लृङ–अदरिष्यत्, अदरीष्यत्, लुङ–अदारीत्, आ० लिङ–दीर्यात् । सन्–ददरिषति, दिदरीषति, दिदीर्षति, णिच्–दारयति–ते, ( दरयति–ते, डरने अर्थ में ), कर्म० लट्–दीर्यते, लुङ–अदारि, क्त–दीर्ण, क्त्वा–दीर्त्वा, ल्यप् विदीर्य, तुम्–दरितुम्, दरीतुम् ।

**दे**—१ आ०, पालने ( पालन करना), लट्–दयते, लिट्–दिग्ये, लुट्–दाता, लुङ–अदित, आ० लिङ–दासीष्ट । सन्–दित्सते, कर्म० लट्–दीयते, णिच् लट्–दापयति–ते, लुङ–अदीदपत्–त, क्त–दात ।

**देव्**—१ आ०, देवने (क्रीडा करना, रोना), लट्–देवते, लिट्–दिदेवे, लुट्–देविता, लृट्–देविष्यते, लृङ–अदेविष्यत, लुङ–अदेविष्ट । सन्–दिदेविषते, कर्म० लट्–देव्यते ।

**दै**—१ प०, शोधने (शुद्ध करना, शुद्ध होना), लट्–दायति, लिट्–ददौ, लुट्–दाता, लृट्–दास्यति, लृङ–अदास्यत्, लुङ–अदासीत्, आ० लिङ–दायात् । सन्–दिदासति, कर्म० लट्–दायते, णिच्–लट्–दापयति–ते, क्त–दित, क्त्वा–दित्वा, ल्यप्–अवदाय ।

**दो**—४ प०, अवखण्डने (काटना, तोड़ना), लट्–द्यति, लिट्–ददौ, लुङ–अदात्, आ० लिङ–देयात् । सन्–दित्सति, णिच्–लट्–दापयति–ते, क्त–दित, क्त्वा, दित्वा, ल्यप्–अवदाय ।

**द्यु**—२ प०, अभिगमने (आक्रमण करना, आगे बढ़ना), लट्–द्यौति, लिट्–दुद्याव, लुट्–द्योता, लृट्–द्योष्यति, लृङ–अद्योष्यत्, लुङ–अद्यौषीत् । सन्–दुद्यूषति, कर्म० लट्–द्यूयते, लुङ–अद्यावि, णिच्–लट्–द्यावयति–ते, लुङ–अदुद्यवत्–त, क्त–द्युत ।

**द्युत्**—१ आ०, दीप्तौ ( चमकना), लट्–द्योतते, लिट्–दिद्युते, लुट्–द्योतिता, लृट्–द्योतिष्यते, लृङ–अद्योतिष्यत, लुङ–अद्योतिष्ट, अद्युतत्, आ० लिङ–द्योतिषीष्ट, सन्–दिद्युतिषते, दिद्योतिषते, णिच्–लट्–द्योतयति–ते, लुङ–अदुद्युतत्–त, यङन्त–देद्युत्यते, देद्योति, क्त–द्युतित, द्योतित ।

**द्यै**—१ प०, न्यक्करणे (तिरस्कार करना), लट्–द्यायति, लुट्–द्याता, लुङ–अद्यासीत्, आ० लिङ–द्यायात्–द्येयात् ।

**द्रम्**—१ प०, गतौ (दौड़ना), लट्–द्रमति, लिट्–दद्राम, लुङ–अद्रमीत् ।

**द्रा**—२ प०, कुत्सायां गतौ स्वप्ने च (दौड़ना, सोना), (प्रायः नि+द्रा) लट्–द्राति, लिट्–दद्रौ, लुट्–द्राता, लृट्–द्रास्यति, लृङ्–अद्रास्यत्, लुङ–अद्रासीत्, आ० लिङ–द्रायात्, द्रेयात् । सन्–दिद्रासति, क्त–द्राण ।

**द्राघ्**—१ आ०, सामर्थ्ये आयामे च (समर्थ होना, लम्बा करना), लट्–द्राघते, लिट्–दद्राघे, लुङ–अद्राघिष्ट, आ० लिङ–द्राघिषीष्ट ।

**द्रांक्ष्**—१ प०, घोरवाशिते ( भयंकर शब्द करना), लट्–द्रांक्षति, लिट्–दद्रांक्ष, लुङ–अद्रांक्षीत् ।

**द्रु**—१ प०, गतौ ( दौड़ना, पिघलना) लट्–द्रवति, लिट्–दुद्राव, लुट्–द्रोता, लृट्–द्रोष्यति, लृङ–अद्रोष्यत्, लुङ–अदुद्रवत् । सन्–दुद्रूषति, कर्म० लट्–द्रूयते, लुङ–अद्रावि, णिच्–लट्–द्रावयति, लुङ–अदिद्रवत् या अदुद्रवत्, यङन्त–दोद्रूयते, दोद्रवीति, दोद्रोति, क्त–द्रुत ।

**द्रुण्**—६ प०, गतिहिंसाकौटिल्येषु ( मारना, जाना आदि ), लट्–द्रुणति, लिट्–दुद्रोण, लृट्–द्रोणिष्यति, लुङ–अद्रोणीत् ।

**द्रुह्**—४ प०, जिघांसायाम् (द्रोह करना), लट्–द्रुह्यति, लिट्–दुद्रोह, ( म० पु० एक० दुद्रोहिथ, दुद्रोढ, दुद्रोग्ध), लुट्–द्रोहिता, द्रोग्धा, द्रोढा, लृट्–द्रोहिष्यति, ध्रोक्ष्यति, लृङ–अद्रोहिष्यत्, अध्रोक्ष्यत्, लुङ–अद्रुहत् । सन्–दुद्रोहिषति, दुद्रुहिषति, दुध्रुक्षति, णिच्–लट्–द्रोहयति–ते, लुङ–अदुद्रुहत्–त, क्त–द्रुग्ध, या द्रूढ, तुम्–द्रोहितुम्, द्रोग्धुम्, द्रोढुम्, क्त्वा–द्रुहित्वा, द्रोहित्वा, द्रुग्ध्वा, द्रुढ्वा ।

**द्रू**—९ उ०, हिंसायाम् ( मारना, चोट पहुँचाना), लट्–द्रूणाति, द्रूणीते, लिट्–दुद्राव, दुद्रुवे, लृट्–द्रविष्यति–ते, लुङ–अद्रावीत्, अद्रविष्ट ।

**द्रेक्**—१ आ०, शब्दोत्साहयोः ( शब्द करना, उत्साह दिखाना), लट्–द्रेकते, लिट्–दिद्रेके, लृट्–द्रेकिष्यते, लुङ–अद्रेकिष्ट ।

**द्रै**—१ प०, स्वप्ने ( सोना), (साधारणतया नि के साथ) लट्–द्रायति, लिट्–दद्रौ, लुङ–अद्रासीत्, आ० लिङ–द्रायात्, द्रेयात् ।

**द्विष्**—२ उ०, अप्रीतौ ( द्वेष करना, घृणा करना ), लट्–द्वेष्टि, द्विष्टे, लङ–अद्वेट्–ड् (अन्य पु०, बहु० अद्विषन्–षुः), लिट्–दिद्वेष, दिद्विषे, लुट्–द्वेष्टा, लृट्–द्वेक्ष्यति–ते, लृङ–अद्वेक्ष्यत्–त, लुङ–अद्विक्षत्–त, आ० लिङ–द्विष्यात्, द्विक्षीष्ट । सन्–दिद्विक्षति–ते, णिच्–लट्–द्वेषयति–ते, लुङ–अदिद्विषत्–त, यङन्त–देद्विष्यते, देद्वेष्टि, देद्विषिति, कर्म० लट्–द्विष्यते, लुङ–अद्वेषि, क्त–द्विष्ट, तुम्–द्वेष्टुम् ।

**द्वृ**—१ प०, संवरणे अंगीकृतौ च (ढकना, स्वीकार करना), लट्–द्वरति, लिट्–दद्वार, लुङ–अद्वार्षीत् ।

## ध

**धक्क्**—१० उ०, नाशने ( नष्ट करना), लट्–धक्कयति–ते, लिट्–धक्कयांचकार–चक्रे, लुङ–अदधक्कत्–त ।

**धण्**—१ प०, शब्दे ( शब्द करना), लिट्–धणति लुङ–अधणीत्, अधाणीत् ।

**धन्**—१ प० (शब्द करना), लट्–धनति ।

**धन्**—( वैदिक), ३ प०, धान्ये ( धन उत्पन्न करना), लट्–दधन्ति, दधन्तः, दधनति, लिट्–दधान, लृट्–धनिष्यति ।

**धन्व्**—१ प०, गतौ (जाना), लट्–धन्वति, लिट्–दधन्व, लुङ–अधन्वीत् ।

**धा**—३ उ०, धारणपोषणयोर्दाने च (रखना, उत्पन्न करना, देना, धारण करना), लट्–दधाति, धत्ते, लिट्–दधौ और दधे, लुट्–धाता, लृट्–धास्यति–ते, लृङ–अधास्यत्–त, लुङ–अधात्, अधित, आ० लिङ–धेयात्, धासीष्ट । सन्–धित्सति–ते, कर्म० लट्–धीयते, लुङ–अधायि, णिच्–लट्–धापयति–ते, लुङ–अदीधपत्–त, यङन्त–देधीयते, दाधाति, दाधेति, क्त–हित, क्त्वा–हित्वा, ल्यप्–संधाय ।

**धाव्**—१ उ०, गतिशुद्ध्योः (रगड़ना, स्वच्छ करना, दौड़ना), लट्–धावति–ते, लिट्–दधाव, दधावे, लुट्–धाविता, लृट्–धाविष्यति–ते, लृङ–अधाविष्यत्–त, लुङ–अधावीत्—अधाविष्ट, आ० लिङ–धाव्यात्, धाविषीष्ट । सन्–दिधाविषति–ते, णिच्–लट्–धावयति–ते, लुङ–अदीधवत्–त, क्त–धावित, धौत, क्त्वा–धावित्वा, धौत्वा, ल्यप्–प्रधाव्य ।

**धि**—६ प०, धारणे ( रखना, धारण करना), लट्–धियति, लिट्–दिधाय, लुङ–अधैषीत्, सन्–दिधिषति ।

**धिक्ष्**—६ आ०, संदीपनक्लेशनजीवनेषु (जलाना, थकना, जीवित रहना), लट्–धिक्षते, लिट्–दिधिक्षे, लृट्–धिक्षिष्यते, लुङ–अधिक्षिष्ट ।

**धिन्व्**—१ प०, प्रीणने ( प्रसन्न होना, प्रसन्न करना ), लट्–धिनोति, लिट्–दिधिन्व, लुट्–धिन्विता, लुङ–अधिन्वीत्, आ० लिङ–धिन्व्यात् । क्त–धिन्वित ।

**धिष्**—३ प०, (शब्द करना), लट्–दिधेष्टि (वेदों में ही प्रयोग होता है) ।

**धी**—४ आ०, आधारे (रखना, पकड़ना), लट्–धीयते, लिट्–दिध्ये, लृट्–धेष्यते, लुङ–अधेष्ट । णिच्–लट्–धाययति–ते, लुङ–अदीधयत्–त, सन्–दिधीषते, क्त–धीन ।

**धु**—५ उ०, कम्पने (हिलाना, उत्तेजित करना), लट्–धुनोति, धुनुते, लिट्–दुधाव, दुधवे, लुट्–धोता, लृट्–धोष्यति–ते, लृङ–अधोष्यत्–त, आ० लिङ–धूयात्, धूषीष्ट, लुङ–अधौषीत्, अधोष्ट । सन्–दुधूषति–ते, क्त–धुत ।

**धुक्ष्**—१ आ०, संदीपनक्लेशनजीवनेषु (जलना, व्याकुल होना, जीवित रहना), लट्–धुक्षते, लिट्–दुधुक्षे, लुट्–धुक्षिता, लुङ–अधुक्षिष्ट । सन्–दुधुक्षिषते, क्त–धुक्षित ।

**धू**—१ उ०, कम्पने और ६ प० विधूनने (हिलाना), लट्–धवति–ते, धुवति, लिट्–दुधाव, दुधुवे, (धूतुदादि० कुटादि में है, दुधुविथ म० पु० एक०), लुट्–धविता, धुविता, लृट्–धविष्यति–ते, धुविष्यति, लृङ–अधविष्यत्–त ।

अधुविष्यत्, लुङ–अधावीत्, अधविष्ट, अधुवीत्, आ० लिङ–धूयात्, धविषीष्ट, क्त–धूत, तुम्–धवितुम् (१), धुवितुम् (६) ।

**धू**––५, ९ उ०, कम्पने ( हिलाना, कँपाना), लट्–धूनोति, धूनुते, धुनाति, धुनोते, लिट्–दुधाव, दुधुवे, लुट्–धोता, धविता, लृट्–धोष्यति–ते, धविष्यति–ते, लृङ–अधोष्यत्–त, अधविष्यत्–त, लुङ–अधावीत्, अधविष्ट, अधोष्ट, आ० लिङ–धूयात्, धविषीष्ट, धोषीष्ट, सन्–दुधूषति–ते, णिच्–धूनयति, लुङ–अदूधुनत्, कर्म० लट्–धूयते, लुङ–अधावि, क्त–धूत (५), धून (९) ।

**धू**––१० उ०, ( हिलाना ), लट्–धूनयति–ते, लिट्–धूनयांचकार–चक्रे, लृट्–धूनयिष्यति–ते, लुङ–अदूधुनत्, आ० लिङ–धून्यात्, धूनयिषीष्ट, णिच्–लट्–धूनयति, सन्–दुधूनयिषति–ते ।

**धूप्**––१ प०, संतापे (तपाना, तपना), लट्–धूपायति, लिट्–दुधूप, धूपायांचकार, लुट्–धूपिता, धूपायिता, लृट्–धूपिष्यति, धूपायिष्यति, लृङ–अधूपिष्यत्, अधूपायिष्यत्, लुङ–अधूपीत्, अधूपायीत्, आ० लिङ–धूप्यात्, धूपाय्यात् । णिच् लट्–धूपयति–ते, धूपाययति–ते, लुङ–अदुधूपत्–त, अदुधूपायत्–त, सन्–दूधूपिषति, दुधूपायिषति, कर्म० लट्–धूप्यते, धूपाय्यते, लुङ–अधूपायि, अधूपि, क्त–धूपित, धूपायित ।

**धूप्**––१० उ०, भाषायां दीप्तौ च (बोलना, चमकना), लट्–धूपयति–ते, लिट्–धूपयांचकार–चक्रे, लुट्–धूपयिता, लुङ–अदूधुपत्–त ।

**धूर्**––४ आ०, हिंसागत्योः (मारना, जाना), लट्–धूर्यते, लिट्–दुधूरे, लुङ–अधूरिष्ट । क्त–धूर्त ।

**धृ**––१ उ०, धारणे (धारण करना), लट्–धरति–ते, लिट्–दधार, दध्रे ( म० पु० एक० दधर्थ, दध्रिषे ), लुट्–धर्ता, लृट्–धरिष्यति–ते, लृङ–अधरिष्यत्–त, लुङ–अधार्षीत, अधृत, आ० लिङ–ध्रियात्, धृषीष्ट । सन्–दिधीर्षति–ते, णिच् लट्–धारयति–ते, लुङ–अदीधरत्–त, कर्म० ध्रियते, क्त–धृत ।

**धृ**––१ आ०, अवध्वंसने (नष्ट करना), लट्–धरते । (शेष पूर्ववत्) ।

**धृ**––६ आ०, अवस्थाने (होना, विद्यमान होना), लट्–ध्रियते, । सन्–दिधरिषते । (शेष रूपों के लिए धृ १ उ० के आत्मने० के रूप देखो) ।

**धृ**––१० उ०, धारणे ( रखना, धारण करना), लट्–धारयति–ते, लिट्–धारयाचकार–चक्रे, लुट्–धारयिता, लुङ–अदीधरत्–त, आ० लिङ–धार्यात्, धारयिषीष्ट । सन्–दिधारयिषति–ते, कर्म०–धार्यते, लुङ–अधारि ।

**धृज्, धृञ्ज्**––१ प०, गतौ (जाना, हिलना), लट्–धर्जति, धृञ्जति, लिट्–दधर्ज, दधृञ्ज, लुङ–अधर्जीत्, अधृञ्जीत् ।

**धृष्**––१ प० (एकत्र होना, चोट पहुँचाना), लट्–धर्षति, लिट्–दधर्ष, क्त–धर्षित ।

**धृष**—५ प०, प्रागल्भ्ये ( निडर होना, धृष्ट होना, गर्वयुक्त या वीर होना). लट्–धृष्णोति, लिट्–दधर्ष, लुट्–धर्षिता, ऌट्–धर्षिष्यति, ऌङ–अधर्षिष्यत्, लुङ–अधर्षीत् । णिच् लट्–धर्षयति–ते, लुङ–अदीधृषत्–त, अदधर्षत्–त, सन्–दिधर्षिषति, क्त–धर्षित, धृष्ट ( अशिष्ट ) ।

**धृष्**—१ प०, १० उ०, प्रहसने ( आक्रमण करना, अपमान करना, जीतना), लट्–धर्षति, धर्षयति–ते, लिट्–दधर्ष, धर्षयांचकार–चक्रे, लुङ–अधर्षीत्, अदीधृषत्–त, अदधर्षत्–त। आ० लिङ–धृष्यात्, धर्ष्यात्, धर्षयिषीष्ट । सन्–दिधर्षिषति, दिधर्षयिषति–ते ।

**धॄ**—९ प०, (वृद्ध होना), लट्–धृणाति, ऌट्–धरिष्यति, धरीष्यति, लुङ–अधारीत् ।

**धे**—१ प०, पाने (पीना, चूसना, खींचना), लट्–धयति, लिट्–दधौ, लुट्–धाता, लुङ–अधात्, अधासीत्, अदधत्, आ० लिङ–धेयात् । सन्–धित्सति, कर्म० लट्–धीयते, लुङ–अधायि, णिच्–लट्–धापयते ( परस्मै० भी है, यदि स्व या कर्ता का अर्थ न हो तो, वत्सान् धापयति पयः), लुङ–अदीधपत्, क्त–धीत ।

**धोर्**—१ प०, गतिचातुर्ये (चतुरता से चलना, चतुर होना), लट्–धोरति, लिट्–दुधोर, लुङ–अधोरीत् ।

**ध्मा**—१ प०, शब्दाग्निसंयोगयोः (फूँकना, साँस बाहर छोड़ना, फेंकना), लट्–धमति, लिट्–दध्मौ, लुट्–ध्माता, ऌट्–ध्मास्यति, ऌङ–अध्मास्यत्, लुङ–अध्मासीत्, आ० लिङ–ध्मायात्, ध्मेयात्, सन्–दिध्मासति, कर्म० लट्–ध्मायते, लुङ–अध्मायि, णिच् लट्–ध्मापयति–ते, लुङ–अदिध्मपत्–त, क्त–ध्मात ।

**ध्यै**—१ प०, चिन्तायाम् ( सोचना, ध्यान करना), लट्–ध्यायति, लिट्–दध्यौ, लुट्–ध्याता, ऌट्–ध्यास्यति, ऌङ–अध्यास्यत्, लुङ–अध्यासीत्, आ० लिङ–ध्येयात्–ध्यायात् । सन्–दिध्यासति, कर्म० लट्–ध्यायते, लुङ–अध्यायि, णिच्–लट्–ध्यापयति–ते, लुङ–अदिध्यपत्–त, यङन्त–दाध्यायते, दाध्याति, दाध्येति, क्त–ध्यात, क्त्वा–ध्यात्वा, तुम्–ध्यातुम् ।

**ध्रज्** ( ध्रञ्ज्), १ प०, गतौ (जाना), लट्–ध्रजति या ध्रञ्जति, लिट्–दध्राज, दध्रञ्ज, लुङ–अध्रजीत्, अध्राजीत्, अध्रञ्जीत् ।

**ध्रण्**—१ प०, शब्दे ( शब्द करना, ढोल पीटना), लट्–ध्रणति, लिट्–दध्राण, ऌट्–ध्रणिष्यति, लुङ–अध्रणीत्, अध्राणीत् ।

**ध्रस्**—९ प०, उञ्छे (कण चुनना), लट्–ध्रस्नाति, लिट्–दध्रास, ऌट्–ध्रसिष्यति, लुङ–अध्रसीत्, अध्रासीत् । क्त–ध्रस्त ।

**ध्रस्**—१० उ०, १ प०, (कण चुनना), लट्–ध्रासयति–ते, ध्रसति, लिट्–ध्रासयांचकार–चक्रे, दध्रास, लुट्–ध्रासयिता, ध्रसिता, लुङ–अदिध्रसत–त, अध्रसीत्, अध्रासीत् ।

**ध्राक्ष्**—१ प० (चाहना, शब्द करना), लट्–ध्राक्षति ।

**ध्राघ्**—१ आ०, सामर्थ्ये ( समर्थ होना), लट्–ध्राघते, लिट्–दध्राघे, लुङ–अध्राघिष्ट ।

**ध्राड्**—१ आ०, विशरणे ( काटना, फाड़ना), लट्–ध्राडते, लुङ–अध्राडिष्ट ।

**ध्रिज्**—१ प०, (जाना), लट् ध्रेजति, ऌट्–ध्रेजिष्यति, लुङ–अध्रेजीत् ।

**ध्रु**—१ प०, ( दृढ़ होना), लट्–ध्रवति, लिट्–दुध्राव, लुट्–ध्रोता, लुङ–अध्रौषीत्, सन्–दुध्रषति ।

**ध्रु**—६ प० ( कुटादि) गति स्थैर्ययोः ( जाना, स्थिर होना), लट्–ध्रुवति, लिट्–दुध्राव, (म० पु० एक० दुध्रुविथ, दुध्रुथ) ऌट्–ध्रुष्यति, लुङ–अध्रुवीत् ।

**ध्रुव्**—( पूर्वोक्त धातु का ही रूपान्तर ), लट्–ध्रुवति, लिट्–दुध्राव, (म० पु० एकवचन में दुध्रुविथ), ऌट्–ध्रुविष्यति, लुङ–अध्रुवीत् ।

**ध्रै**—१ प०, तृप्तौ ( सन्तुष्ट होना), लट्–ध्रायति, लिट्–दध्रौ, लुङ–अध्रासीत्, आ० लिङ–ध्रायात्, ध्रेयात् ।

**ध्वंस्**—१ आ०, अवस्रंसने गतौ च (गिरना, नष्ट होना), लट्–ध्वंसते, लिट्–दध्वंसे, लुट्–ध्वंसिता, ऌट्–ध्वंसिष्यते, ऌङ–अध्वंसिष्यत्, लुङ–अध्वसत्, अध्वंसिष्ट, आ० लिङ–ध्वंसिषीष्ट । सन्–दिध्वंसिषते, कर्म० लट्–ध्वस्यते, लुङ–अध्वंसि, णिच् लट्–ध्वंसयति–ते, क्त–ध्वस्त, क्त्वा–ध्वंसित्वा, ध्वस्त्वा ।

**ध्वज्-ध्वञ्ज्**—१ प० (जाना), लट्–ध्वजति, ध्वञ्जति ।

**ध्वन्**—१ प०, शब्दे ( शब्द करना, प्रतिध्वनि होना, गरजना ), लट्–ध्वनति, लिट्–दध्वान, लुट्–ध्वनिता, ऌट्–ध्वनिष्यति, ऌङ–अध्वनिष्यत्, लुङ–अध्वनीत् या अध्वानीत् । णिच्-लट्–ध्वनयति–ते ( अस्पष्ट ध्वनि करना), ध्वानयति–ते, सन्–दिध्वनिषति, क्त–ध्वनित, ध्वान्त (अन्धेरा) ।

**ध्वन्**—१० उ०, अव्यक्ते शब्दे (अस्पष्ट शब्द कहना), लट्–ध्वनयति–ते, लुङ–अदध्वनत्-त, सन्–दिध्वनयिषति-ते, कर्म० लट्–ध्वन्यते, लुङ–अध्वनि ।

**ध्वृ**—१ प०, मूर्च्छने ( हिंसा करना, प्रशंसा करना, वर्णन करना), लट्–ध्वरति, लिट्–दध्वार, लुङ–अध्वार्षीत् ।

### न

**नक्क्**—१० उ०, नाशने (नष्ट होना), लट्–नक्कयति–ते, लुङ–अननक्कत्-त ।

**नक्ष्**—१ प० (जाना, हिलना), लट्–नक्षति, लिट्–ननक्ष, लुङ–अनक्षीत् ।

**नख्**—१ प० (जाना), लट्–नखति, लुङ–अनखीत्, अनाखीत् ।

**नट्**—१ प०, नाट्ये (नाचना, अभिनय करना), लट्—नटति, लिट्—ननाट, लुट्—नटिता, लृट्—नटिष्यति, लृङ—अनटिष्यत्, लुङ—अनटीत्—अनाटीत् । णिच्-लट्—नाटयति—ते (प्रनाट०), लुङ—अनीनटत्—त, सन्—निनटिषति, कर्म० लट्—नट्यते, लुङ—अनाटि, अनटि, क्त—नटित ।

**नट्**—१० उ०, भाषायाम् ( कहना, चमकना), लट्—नाटयति—ते ।

**नद्**—१ प०, अव्यक्ते शब्दे (शब्द करना, गरजना), लट्—नदति, लिट्—ननाद, लुट्—नदिता, लुङ—अनादीत्, अनदीत् । णिच् लट्—नादयति—ते, लुङ—अनीनदत्—त, सन्—निनदिषति, क्त—नदित ।

**नद्**—१० उ० (कहना, चमकना), लट्—नादयति—ते ।

**नन्द्**—१ प०, समृद्धौ (आनन्दित होना), लट्—नन्दति, लिट्—ननन्द, लुट्—नन्दिता, लुङ—अनन्दीत्, आ० लिङ—नन्द्यात् । सन्—निनन्दिषति, क्त—नन्दित, णिच् लट्—नन्दयति—ते, कर्म० लट्—नन्द्यते ।

**नभ्**—१ आ०, हिंसायाम् अभावेऽपि ( हिंसा करना, हानि पहुँचाना), लट्—नभते, लिट्—नेभे, लुङ—अनभत्, अनभिष्ट ।

**नम्**—१ प०, प्रह्वत्वे शब्दे च (प्रणाम करना, झुकना, शब्द करना), लट्—नमति, लिट्—ननाम, लुट्—नन्ता, लृट्—नंस्यति, लृङ—अनंस्यत्, लुङ—अनंसीत्, आ० लिङ—नम्यात्, सन्—निनंसति, णिच् लट्—नमयति—नामयति, लुङ—अनीनमत्—त, कर्म० लट्—नम्यते, लुङ—अनामि, क्त—नत, क्त्वा—नत्वा, तुम्—नन्तुम् ।

**नय्**—१ आ० (जाना, रक्षा करना), लट्—नयते, लिट्—नेये, लुङ—अनयिष्ट ।

**नर्द्**—१ प०, शब्दे (शब्द करना, गरजना, चिंघाड़ना), लट्—(प्र) नर्दति, लिट्—ननर्द, लुट्—नर्दिता, लृट्—नर्दिष्यति, लृङ—अनर्दिष्यत्, लुङ—अनर्दीत् । सन्—निनर्दिषति, क्त—नर्दित ।

**नल्**—१ प०, गन्धे बन्धने च (सूँघना, बाँधना), लट्—नलति, लिट्—ननाल, लृट्—नलिष्यति, लुङ—अनालीत् ।

**नल्**—१० उ०, भाषायाम् (कहना), लट्—नालयति—ते लृट्—नालयिष्यति—ते, लुङ—अनीनलत्—त ।

**नश्**—४ प०, अदर्शने (नष्ट होना, लुप्त होना), लट्—नश्यति, लिट्—ननाश, लुट्—नशिता, नंष्टा, लृट्—नशिष्यति, नंक्ष्यति, लृङ—अनशिष्यत्, अनंक्ष्यत्, लुङ—अनशत्, आ० लिङ—नश्यात् । सन्—निनंक्षति, निनशिषति, णिच्—लट्—नाशयति—ते, लुङ—अनीनशत्—त, क्त—नष्ट, क्त्वा—नष्ट्वा, नंष्ट्वा, नशित्वा, तुम्—नशितुम्—नंष्टुम् ।

**नह्**—४ उ०, बन्धने (बाँधना), लट्—नह्यति—ते, लिट्—ननाह, नेहे, लुट्—नद्धा, लृट्—नत्स्यति—ते, लृङ—अनत्स्यत्—त, लुङ—अनात्सीत्, अनद्ध, आ० लिङ—

नह्यात्–नत्सीष्ट । सन्–निनत्सति–ते, कर्म०–लट्–नह्यते, लुङ–अनाहि, णिच् लट्–नाहयति–ते, लुङ–अनीनहत्–त, यङन्त–नानह्यते, नानहीति, नानद्धि, क्त–नद्ध, क्त्वा–नद्ध्वा, तुम्–नद्धुम् ।

**नाथ्**––१ प०, याच्ञोपतापैश्वर्याशीःषु ( माँगना, स्वामी होना, तंग करना), लट्–नाथति, लिट्–ननाथ, लुट्–नाथिता, लुङ–अनाथीत्, ( १ आ०, आशीर्वाद देना), लट्–नाथते, लिट्–ननाथे, लुट्–नाथिता, लुङ–अनाथिष्ट, क्त–नाथित ।

**नाध्**––१ आ० (नाथ् के तुल्य) ।

**निज्**––३ उ०, शौचपोषणयोः (धोना, पवित्र होना, पालन करना), लट्–नेनेक्ति, नेनिक्ते, लिट्–निनेज, निनिजे, लुट्–नेक्ता, लृट्–नेक्ष्यति–ते, लृङ–अनेक्ष्यत्–त, लुङ–अनिजत्, अनैक्षीत्, अनिक्त, आ० लिङ–निज्यात्, निक्षीष्ट । सन्–निनिक्षति–ते, कर्म० लट्–निज्यते, लुङ–अनेजि, णिच्–लट्–नेजयति–ते, लुङ–अनेनिजत्–त, क्त–निक्त, क्तवा–निक्त्वा ।

**निञ्ज्**––२ आ०, शुद्धौ (धोना, स्वच्छ करना), लट्–निङ्क्ते (प्रणिङ्क्ते), लिट्–निनिञ्जे, लृट्–निञ्जिष्यते, लुङ–अनिञ्जिष्ट, आ० लिङ–निञ्जिषीष्ट । सन्–निनिञ्जिषते, णिच्–लट्–निञ्जयति–ते, कर्म०–लट्–निञ्ज्यते, लुङ–अनिञ्जि, क्त–निञ्जित ।

**निन्द्**––१ प०, कुत्सायाम् ( निन्दा करना, दोष निकालना ), लट्–निन्दति, लिट्–निनिन्द, लुट्–निन्दिता, लुङ–अनिन्दीत्, आ० लिङ–निन्द्यात् । सन्–निनिन्दिषति, णिच् लट्–निन्दयति–ते, लुङ–अनिनिन्दत्–त, कर्म० लट्–निन्द्यते, क्त–निन्दित ।

**निद्**––१ उ०, कुत्सासन्निकर्षयोः (दोष देना, पहुँचाना), लट्–नेदति–ते, लिट्–निनेद, निनिदे, लुङ–अनेदीत्, अनेदिष्ट ।

**निन्व्**––१ प०, सेचने सेवने च (सींचना, खाना), लट्–निन्वति, लिट्–निनिन्व, लुङ–अनिन्वीत् ।

**निल्**––६ प०, गहने (घना होना), लट्–निलति, लिट्–निनेल, लृट्–नेलिष्यति, लुङ–अनेलीत् ।

**निश्**––१ प०, समाधौ ( सोचना, चिन्तन करना), लट्–नेशति, लृट्–नेशिष्यति, लुङ–अनेशीत् ।

**निष्**––१ प०, सेचने (सींचना), लट्–नेषति, लिट्–निनेष, लुङ–अनेषीत् ।

**निष्क्**––१० आ०, परिमाणे (तोलना, नापना), लट्–निष्कयते, लिट्–निष्कयांचक्रे, लृट्–निष्कयिष्यते, लुङ–अनिनिष्कत ।

**निंस्**––२ आ०, चुम्बने (चूमना), लट्–निंस्ते, लिट्–निनिंसे, लृट्–निंसिष्यते, लुङ–अनिंसिष्ट ।

**नी**––१ उ०, प्रापणे (ले जाना, ढोना, विवाह करना, रहना), लट्–नयति–ते, लिट्–निनाय निन्ये, लुट्–नेता, लृट्–नेष्यति–ते, लृङ–अनेष्यत्–त,

लुङ–अनैषीत्, अनेष्ट, आ० लिङ–नीयात्, नेषीष्ट । सन्–निनीषति–ते, कर्म० लट्–नीयते, लुङ–अनायि, णिच्–लट्–नाययति–ते, लुङ–अनीनयत्–त, यङन्त–नेनीयते, नेनयीति, नेनेति, क्त–नीत, क्त्वा–नीत्वा, तुम्–नेतुम् ।

**नील्**––१ प०, वर्णे (रंग लगाना), लट्–नीलति, लुङ–अनीलीत् ।

**नीव्**––१ प०, स्थौल्ये (मोटा होना, बढ़ना), लट्–नीवति, लिट्–निनीव, लुङ–अनीवीत् ।

**नु**––२ प०, स्तुतौ (स्तुति करना), लट्–नौति, लिट्–नुनाव, लुट्–नविता, लृट्–नविष्यति, लृङ–अनविष्यत्, लुङ–अनावीत् । सन्–नुनूषति, णिच्-लट्–नावयति–ते, लुङ–अनूनवत्–त, सन्–नुनावयिषति–ते, क्त–नुत ।

**नुद्**––६ उ०, प्रेरणे (प्रेरणा देना, धक्का देना, हटाना, फेंकना), लट्–नुदति–ते, लिट्–नुनोद, नुनुदे, लुट्–नोत्ता, लृट्–नोत्स्यति–ते, लृङ–अनोत्स्यत्–त, लुङ–अनौत्सीत्, अनुत्त, आ० लिङ–नुद्यात्, नुत्सीष्ट । सन्–नुनुत्सति–ते, णिच्-लट्–नोदयति–ते, लुङ–अनूनुदत्–त, कर्म०–लट्–नुद्यते, लुङ–अनोदि, क्त–नुत्त–नुन्न ।

**नू**––६ प०, स्तुतौ (कुटादि) (प्रशंसा करना), लट्–नुवति, लिट्–नुनाव, (म० पु० एक० नुनुविथ), लुट्–नुविता, लृट्–नुविष्यति, लुङ–अनुवीत् । सन्–नुनूषति, णिच्-लट्–नावयति–ते, लुङ–अनूनवत्–त, क्त–नूत, तुम्–नुवितुम् ।

**नृत**––४ प०, गात्रविक्षेपे ( नाचना, अभिनय दिखाना), लट्–नृत्यति, लिट्–ननर्त, लुट्–नर्तिता, लुङ–अनर्तीत्, आ० लिङ–नृत्यात् । सन्–निनर्तिषति, निनृत्सति, कर्म० लट्–नृत्यते, लुङ–अनर्ति, णिच्-लट्–नर्तयते, लुङ–अनीनृतत, अननर्तत, क्त–नृत्त ।

**नॄ**––१, ९ प०, नये ( ले जाना, आगे चलना), लट्–नृणाति, नरति, लुट्–नरिता, नरीता, लृट्–नरिष्यति, नरीष्यति, लुङ–अनारीत् । णिच्–नरयति–ते (नये), नारयति–ते (अन्यत्र) ।

**नेष्**––१ आ० (जाना, पहुँचना), लट्–नेषते, लिट्–निनेषे, लुङ–अनेषिष्ट ।

## प

**पक्ष्**––१ प०, १० उ०, परिग्रहे (लेना, स्वीकार करना), लट्–पक्षति, पक्षयति–ते, लृट्–पक्षयिष्यति–ते, पक्षिष्यति, लुङ–अपक्षीत्, अपपक्षत्–त । सन्–पिपक्षिषति, पिपक्षयिषति–ते, णिच्-लट्–पक्षयति–ते ।

**पच्**––१ उ०, (पकाना, हजम करना), लट्–पचति–ते, लिट्–पपाच, पेचे, लुट्–पक्ता, लृट्–पक्ष्यति–ते, लृङ–अपक्ष्यत्–त, लुङ–अपाक्षीत्, अपक्त; आ० लिङ–पच्यात्, पक्षीष्ट । सन्–पिपक्षति–ते, कर्म० लट्–पच्यते, लुङ–अपाचि, णिच्-लट्–पाचयति–ते, लुङ–अपीपचत्–त, क्त–पक्व ।

**पञ्च्**—१ आ०, व्यक्तीकरणे (स्पष्ट करना), लट्–पञ्चते, लिट्–पपञ्चे, ऌट्–पञ्चिष्यते, लुङ–अपञ्चिष्ट ।

**पञ्च्**–१० उ०, १ प०, विस्तारवचने (फैलाना), लट्–पञ्चयति-ते, पञ्चति, लुङ–अपपञ्चत्-त, अपञ्चीत् ।

**पट्**—१ प० (जाना, हिलना), लट्–पटति, लिट्–पपाट, लुट्–पटिता, ऌट्–पटिष्यति, ऌङ–अपटिष्यत्, लुङ–अपटीत्-अपाटीत्, णिच्–लट् पाटयति-ते, लुङ–अपीपटत्–त । सन्–पिपटिषति ।

**पट्**—१० उ०, ग्रन्थे ( कपड़ा पहनना, लपेटना ), लट्–पटयति-ते, लिट्-पटयांचकार–चक्रे, लुट्–पटयिता, लुङ–अपपटत्-त । सन्–पिपटयिषति-ते ।

**पट्**—१० उ०, भाषायां वेष्टने च (कहना, ढकना), लट्–पाटयति-ते, ऌट्–पाटयिष्यति-ते, लुङ–अपीपटत्-त ।

**पठ्**—१ प०, व्यक्तायां वाचि लिखिताक्षरवाचने च (पढ़ना, वर्णन करना), लट्—पठति, लिट्–पपाठ, लुट्–पठिता, ऌट्–पठिष्यति, ऌङ–अपठिष्यत्, लुङ–अपठीत्, अपाठीत् । सन्–पिपठिषति, कर्म० लट्–पठ्यते, लुङ–अपाठि, णिच्-लट्–पाठयति-ते, लुङ–अपीपठत्-त, क्त–पठित, क्त्वा–पठित्वा, तुम्-पठितुम् ।

**पण्ड्**—१ आ०, गतौ (जाना), लट्–पण्डते, लिट्–पपण्डे, लुङ–अपण्डिष्ट, क्त–पण्डित ।

**पण्ड्**—१० उ०, नाशने (नष्ट करना), १ प०, संहतौ च, (इकट्ठा करना, ढेर बनाना), लट्–पण्डयति-ते, पण्डति ।

**पण्**—१ आ०, व्यवहारे ( खरीदना, बाजी लगाना), लट्–पणते, लिट्–पेणे, लुट्–पणिता, लुङ–अपणिष्ट, आ० लिङ–पणिषीष्ट । सन्–पिपणिषते, णिच् लट्–पाणयति-ते, लुङ–अपीपणत्-त, क्त–पणित ।

**पण्**—१ आ०, ( पण्+आय पर० है), स्तुतौ ( प्रार्थना करना), लुट्–पणायति, पणते, लिट्–पणायांचकार-पेणे, लुट्–पणायिता, पणिता, ऌट्–पणायिष्यति, पणिष्यते, लुङ–अपणायीत्, अपणिष्ट, आ० लिङ–पणाय्यात्, पणिषीष्ट । णिच् लट्–पणाययति-ते, पाणयति-ते, लुङ–अपपणायत्-त, अपीपणत्-त । सन्–पिपणायिषति, पिपणिषते, क्त–पणायित ।

**पत्**—१ प० (गिरना, उड़ना, उतरना), लट्–पतति, लिट्–पपात, लुट्–पतिता, ऌट्–पतिष्यति, ऌङ–अपतिष्यत्, लुङ–अपप्तत्, आ० लिङ–पत्यात् । सन्–पित्सति, पिपतिषति, कर्म० लट्–पत्यते, लुङ–अपाति, णिच्–लट्–पातयति–ते, लुङ–अपीपतत्-त, यङन्त–पनीपत्यते, पनीपतीति, पनीपत्ति, क्त–पतित, क्त्वा–पतित्वा, तुम्–पतितुम् ।

**पत्**—४ आ०, ऐश्वर्ये (स्वामी होना, शासन करना), लट्–पत्यते, लिट्–पेते, लुङ–अपतिष्ट ।

**पथ्**—१ प० (जाना), लट्–पथति, लिट्–पपाथ, लुङ–अपथीत् ।

**पथ्**—१० उ०, प्रक्षेपे (फेंकना, भेजना), लट्–पाथयति-ते, लुङ–अपीपथत्-त ।

**पद्**—४ आ०, गतौ (जाना, पाना), लट्–पद्यते, लिट्–पेदे, लुट्–पत्ता, लृट्–पत्स्यते, लृङ–अपत्स्यत्, लुङ–अपादि, आ० लिङ–पत्सीष्ट । सन्–पित्सते, कर्म० लट्–पद्यते, लुङ–अपादि, णिच् लट्–पादयति–ते, लुङ–अपीपदत्, क्त–पन्न, क्त्वा–पत्त्वा, तुम्–पत्तुम् ।

**पद्**—१० आ०, गतौ (जाना), लट्–पदयते, लिट्–पदयाञ्चक्रे, लृट्–पदयिष्यते, लुङ–अपपदत । सन्–पिपदयिषते, कर्म० लट्–पद्यते, लुङ–अपदि ।

**पन्**—१ आ० ( प्रशंसा करना), लट्–पनते, पनायति, लिट्–पेने–पनायञ्चकार, लुट्–पनिता, पनायिता, लृट्–पनिष्यते, पनायिष्यति, लुङ–अपनिष्ट, अपनायोत्, आ० लिङ–पनिषोष्ट, पनाय्यात् । क्त–पनित, पनायित ।

**पन्थ्**—१० उ०, १ प०, (जाना) लट्–पन्थयति-ते, पन्थति, लुङ–अपपन्थत्-त, अपन्थीत् ।

**पय्**—१ आ० ( जाना, हिलना), लट्–पयते, लिट्–पेये, लुङ–अपयिष्ट ।

**पर्ण्**—१० उ०, हरितभावे ( हरा करना), लट्–पर्णयति-ते, लिट्–पर्णयांचकार-चक्रे, लुट्–पर्णयिता, लुङ–अपपर्णत्-त ।

**पर्द्**—१ आ० ( अपानवायु छोड़ना), लट्–पर्दते, लिट्–पपर्दे, लुङ–अपर्दिष्ट ।

**पर्प्**—१ प० (जाना), लट्–पर्पति, लिट्–पपर्प, लुङ–अपर्पीत् ।

**पर्व्**—१ प० (जाना), लट्–पर्वति, लिट्–पपर्व ।

**पर्व्**—१ प०, पूरणे (पूरा करना), लट्–पर्वति, लिट्–पपर्व, लुङ–अपर्वीत् ।

**पल्**—१ प० (जाना, हिलना), लट्–पलति, लिट्–पपाल, लुङ–अपालीत् ।

**पश्**—१० उ०, बन्धने (बाँधना), लट्–पाशयति-ते, लुङ–अपीपशत्-त, आ० लिङ–पाश्यात्, पाशयिषीष्ट । सन्–पिपाशयिषति-ते ।

**पष्**—१० उ० (जाना), लट्–पषयति–ते ।

**पंश्**—१० उ०, १ प०, नाशने (नष्ट होना), लट्–पंसयति-ते, पंसति लुट्–पंसयिता–पंसिता, लुङ–अपपंसत्-त, अपंसीत् ।

**पा**—१ प०, पाने (पीना), लट्–पिबति, लिट्–पपौ, लुट्–पाता, लृट्–पास्यति, लृङ–अपास्यत्, लुङ–अपात्, आ० लिङ–पेयात् । सन्–पिपासति, कर्म० लट्–पीयते, लुङ–अपायि, णिच्–लट्–पाययति-ते, लुङ–अपीप्यत्-त यङन्त–पेपीयते, पापाति, पापेति, क्त–पीत, क्त्वा, पीत्वा, तुम्–पातुम् ।

पा—२ प०, रक्षणे ( रक्षा करना, शासन करना), लट्–पाति, लिट्–पपौ, लृट्–पास्यति, लृङ–अपास्यत्, लुङ–अपासीत्, आ० लिङ–पायात् । सन्–पिपासति, कर्म० लट्–पायते, णिच्–लट्–पालयति-ते, लुङ–अपीपलत्-त, क्त–पीत ।

**पार्**—१० उ०, कर्मसमाप्तौ ( पूरा करना, समर्थ होना, काम निपटाना), लट्–पारयति-ते, लिट्–पारयांचकार-चक्रे, लुट्–पारयिता, लृट्–पारयिष्यति-ते, लृङ–अपारयिष्यत्-त, लुङ–अपपारत्-त । कर्म० लट्–पार्यते, क्त–पारित ।

**पाल्**—१० उ०, रक्षणे (रक्षा करना), लट्–पालयति-ते, लिट्–पालयांचकार–चक्रे, लुट्–पालयिता, लुङ–अपीपलत्-त, कर्म० लट्–पाल्यते, क्त–पालित, क्त्वा–पालयित्वा ।

**पि**—६ प० ( जाना, हिलाना), लट्–पियति, लुङ–अपैषीत् ।

**पिञ्ज्**—२ आ०, वर्णे संपर्चने ( रँगना, छूना आदि ), लट्–पिक्ते, लुङ–अपिञ्जिष्ट ।

**पिञ्ज**—१० उ०, १ प०, भाषायां दीप्तौ च (चमकना, जीवित रहना, देना, हिंसा करना), लट्–पिञ्जयति–ते, पिञ्जति, लिट्–पिञ्जयांचकार–चक्र, पिपिञ्ज, लुङ–अपिपिञ्जत्–त, अपिञ्जीत् ।

**पिट्**—१ प०, शब्दसंघातयोः (शब्द करना, इकट्ठा करना), लट्–पेटति, लिट्–पिपेट, लुङ–अपेटीत् ।

**पिट्**—१ प०, हिंसासंक्लेशनयोः (मारना, दुःख देना), लट्–पेटति ।

**पिण्ड्**—१ आ०, १० उ०, १ प०, संघाते (इकट्ठा करना, ढेर बनाना), लट्–पिण्डते, पिण्डयति-ते, पिण्डति, लिट्–पिपिण्डे, पिडयांचकार-चक्रे, पिपिंड, लुङ–अपिण्डिष्ट, अपिपिंडत्-त, अपिण्डीत् । क्त–पिण्डित ।

**पिल्**—१० उ० ( फेंकना, उत्तेजित करना), लट्–पेलयति–ते, लिट्–पेलयांचकार-चक्रे, लुट्–पेलयिता ।

**पिन्व्**—१ प०, सेचने सेवने च (सींचना, सेवा करना), लट्–पिन्वति, लिट्–पिपिन्व, लुट्–पिन्विता, लृट्–पिन्विष्यति, लृङ–अपिन्विष्यत्, लुङ–अपिन्वीत्, आ० लिङ–पिन्व्यात् । कर्म० लट्–पिन्व्यते ।

**पिश्**—६ प०, अवयवे दीपनायां च (रूप बनाना, जलाना), लट्–पिशति, लिट्–पिपेश, लुट्–पेशिता, लुङ–अपेशीत् । णिच्-लट्–पेशयति-ते, लुङ–अपीपिशत्–त । सन्–पिपिशिषति, पिपेशिषति, क्त–पिशित, क्त्वा–पिशित्वा ।

**पिष्**—७ प०, संचूर्णने ( पीसना, दुःख देना), लट्–पिनष्टि, लिट्–पिपेश, लुट्–पेष्टा, लृट्–पेक्ष्यति, लृङ–अपेक्ष्यत्, लुङ–अपिषत्, आ० लिङ–पिष्यात्, कर्म० लट्–पिष्यते, लुङ–अपेषि, णिच्–लट्–पेषयति-ते, लुङ–अपीपिषत्–त । सन्–पिपिक्षति, क्त–पिष्ट, क्त्वा–पिष्ट्वा, तुम्–पेष्टुम् ।

**पिस्**—१ प० ( जाना), लट्—पेसति, लिट्—पिपेस, लुट्—पेसिता, लुङ्—अपेसीत् ।

**पिस्**—१० उ० (जाना), लट्—पेसयति-ते, लिट्—पेसयांचकार—चक्रे ।

**पी**—४ आ०, पाने (पीना), लट्—पीयते, लिट्—पिप्ये, ऌट्—पेष्यते, लुङ्—अपेष्ट । णिच् लट्—पाययति-ते, लुङ्—अपीपयत्-त, सन्—पिपीषते ।

**पीड्**—१० उ०, ( पीड़ा देना, दुःख देना), लट्—पीडयति-ते, लिट्—पीडयांचकार—चक्रे, लुट्—पीडयिता, ऌट्—पीडयिष्यति-ते, ऌङ—अपीडयिष्यत्—त, लुङ्—अपीपिडत्-त, अपिपीडत्-त । सन्—पिपीडयिषति-ते, क्त—पीडित ।

**पीव्**—१ प०, स्थौल्ये ( मोटा या पुष्ट होना), लट्—पीवति, ऌट्—पीविष्यति, लुङ्—अपीवीत् ।

**पुंस्**—१० उ०, अभिवर्धने (बढ़ना, दबाना), लट्—पुंसयति-ते, लुङ्—अपुपुंसत्-त ।

**पुट्**—६ उ०, संश्लेषणे ( कुटादि) (चिपटना), लट्—पुटति, लिट्—पुपोट, ( म० पु० एक० पुपुटिथ) ऌट्—पुटिष्यति, लुङ्—अपुटीत् ।

**पुट्**—१० उ०, संसर्गे (जोड़ना), लट्—पुटयति—ते, लुट्—पुटयिता, लुङ्—अपुपुटत्-त ।

**पुट्**—१० उ०, भाषायां दीप्तौ च (बोलना, चमकना, चूर्ण करना), लट्—पोटयति-ते, लिट्—पोटयांचकार-चक्रे, ऌट्—पोटयिष्यति-ते, लुङ्—अपुपुटत्—त ।

**पुड्**—१ प०, मर्दने (पीसना), लट्—पोडति, लिट्—पुपोड, ऌट्—पोडिष्यति, लुङ्—अपोडीत् ।

**पुड्**—६ प०, उत्सर्गे ( कुटादि), (छोड़ना, पता लगाना), लट्—पुडति, ऌट्—पुडिष्यति, लुङ्—अपुडीत् । सन्—पुपुडिषति ।

**पुण्**—६ प०, शुभकर्मणि (शुभ कर्म करना), लट्—पुणति, ऌट्—पुणिष्यति, लुङ्—अपोणीत् । सन्—पुपुणिषति, पुपोणिषति ।

**पुथ्**—४ प०, हिंसायाम् ( हिंसा करना, दुःख पहुँचाना), लट्—पुथ्यति, लिट्—पुपोथ, लुङ्—अपोथीत् ।

**पुथ्**—१० उ०, भाषायां दीप्तौ च (बोलना, चमकना), लट्—पोथयति-ते, लुङ्—अपुपुथत्-त ।

**पुन्थ्**—१ प०, हिंसाक्लेशनयोः (हिंसा करना, क्लेश देना), लट्—पुन्थति, ऌट्—पुन्थिष्यति, लुङ्—अपुन्थीत् ।

**पुर्**—६ प०, अग्रगमने (आगे चलना), लट्—पुरति, लिट्—पुपोर, ऌट्—पोरिष्यति, लुङ्—अपोरीत् ।

**पुर्व्**—१ प०, पूरणे (पूरा करना), लट्—पूर्वति, लिट्—पुपूर्व, ऌट्—पूर्विष्यति, लुङ्—अपूर्वीत् । कर्म० लट्—पूर्व्यते, लुङ्—अपूर्वि ।

**पुर्व्**—१० उ०, निकेतने (रहना), लट्–पूर्वयति-ते, लुट्–पूर्वयिता, लुङ–अपुपूर्वत्-त ।

**पुल्**—१ प०, ६ प०, महत्त्वे, १० उ०, संघाते च (लम्बा होना, बड़ा होना), लट्–पोलति, पुलति, पोलयति-ते, लुङ–अपोलीत्, अपूपुलत्-त ।

**पुष्**—४ प०, पुष्टौ ( पुष्ट करना, पालन करना, बढ़ाना, दिखाना), लट्–पुष्यति, लिट्–पुपोष, लुट्–पोष्टा, लृट्–पोक्ष्यति, लृङ–अपोक्ष्यत्, लुङ–अपुषत्, आ० लिङ–पुष्यात् । सन्–पुपुक्षति, क्त–पुष्ट ।

**पुष्**—१ और ६ प०, (पालन करना, बढ़ाना, पुष्ट करना), लट्–पोषति, पुष्णाति, लिट्–पुपोष, लुट्–पोषिता, लृट्–पोषिष्यति, लुङ–अपोषीत् । कर्म० लट्–पुष्यते, लुङ–अपोषि, णिच्–लट्–पोषयति-ते, लुङ–अपूपुषत्-त, क्त–पुषित ( पोषित भी), क्त्वा–पुषित्वा, पोषित्वा ।

**पुष्**—१० उ०, धारणे ( मानना, बढ़ाना, पुष्ट करना), लट्–पोषयति–ते, लिट्–पोषयांचकार-चक्रे, लुट्–पोषयिता, लुङ–अपूपुषत्-त । सन्–पुपोषयिषति-ते ।

**पुष्प्**—४ प०, विकसने (विकसित करना, विकसित होना), लट्–पुष्प्यति, लिट्–पुपुष्प, लुट्–पुष्पिता, लृट्–पुष्पिष्यति, लृङ–अपुष्पिष्यत्, लुङ–अपुष्पीत् । णिच्–लट्–पुष्पयति-ते, क्त–पुष्पित ।

**पुस्त्**—१० उ०, आदरानादरयोः (आदर करना, अनादर करना, बाँधना), लट्–पुस्तयति-ते, लुङ–अपुपुस्तत्-त ।

**पू**—१ प०, पवने ( पवित्र करना, हवा में उड़ाकर अन्नादि साफ करना), लट्–पवते, लिट्–पुपुवे, लुट्–पविता, लुङ–अपविष्ट, आ० लिङ–पविषीष्ट । सन्–पिपविषते, णिच्–लट्–पावयति-ते, लुङ–अपीपवत्–त, यङन्त–पोपूयते, पोपवीति, पोपोति, क्त–पूत ।

**पू**—९ उ० ( पवित्र करना आदि), लट्–पुनाति, पुनीते, लिट्–पुपाव, पुपुवे, लुट्–पविता, लृट्–पविष्यति-ते, लृङ–अपविष्यत्-त, लुङ–अपविष्ट, अपावीत्, आ० लिङ–पूयात्, पविषीष्ट सन्–पुपूषति-ते, क्त-पूत ।

**पूज्**—१० उ०, पूजायाम् ( पूजा करना, सत्कार करना, उपहार देना), लट्–पूजयति-ते, लिट्–पूजयांचकार–चक्रे, लुट्–पूजयिता, लृट्–पूजयिष्यति–ते, लृङ–अपूजयिष्यत्–त, लुङ–अपूपुजत्–त । सन्–पुपूजयिषति–ते, क्त–पूजित, क्त्वा–पूजयित्वा, तुम्–पूजयितुम् ।

**पूण्**—१० उ० (ढेर लगाना), लट्–पूणयति-ते, लिट्–पूणयांचकार-चक्रे ।

**पूय्**—१ आ०, विशरणे दुर्गन्धे च (घृणा करना, दुर्गन्धित होना), लट्–पूयते, लिट्–पुपूये, लुट्–पूयिता, लुङ–अपूयिष्ट । णिच्–लट्–पूययति-ते, लुङ–अपूपुयत्-त, सन्–पुपूयिषते, क्त–पूत ।

**पूर्**—४ आ०, आप्यायने, ( भरना, सन्तुष्ट करना), लट्–पूर्यते, लिट्–पुपूरे, लुट्–पूरिता, लुङ–अपूरिष्ट, अपूरि । णिच्–लट्–पूरयति–ते, लुङ–अपूपुरत्-त । सन्–पुपूरिषते, क्त–पूर्त ।

**पूर्**—१० उ०, १ प० (भरना, ढकना), लट्–पूरयति-ते, पूरति, लिट्–पूरयांचकार-चक्रे, पुपूर, लुट्–पूरयिता, पूरिता, लृट्–पूरयिष्यति–ते, लृङ–अपूरयिष्यत्–त, अपूरिष्यत्, लुङ–अपूपुरत्–त, लुङ–अपूरीत् । क्त–पूरित, कर्म० लट्–पूर्यते ।

**पूण्**—१० उ०, संघाते (ढेर लगाना, इकट्ठा करना), लट्–पूर्णयति-ते, लुङ–अपुपूर्णत्-त ।

**पूल्**—१ प०, १० उ० ( इकट्ठा करना, संग्रह करना), लट्–पूलति, पूलयति–ते, लुट्–पूलिता, पूलयिता, लुङ–अपूलीत्, अपूपुलत्-त ।

**पूष्**—१ प०, वृद्धौ (बढ़ना), लट्–पूषति, लिट्–पुपूष, लृट्–पूषिष्यति, लुङ–अपूषीत् ।

**पॄ**—३ प०, पालनपूरणयोः ( पूरा करना, पालन करना), लट्–पिपर्ति, लङ–अपिपः, लिट्–पपार, लृट्–परिष्यति, लुङ–अपार्षीत्, आ० लिङ–प्रियात्, णिच्–लट्–पारयति-ते, लुङ–अपीपरत्-त । सन्–पुपूर्षति ।

**पृ**—६ आ०, व्यायामे व्यापारे च ( प्रायः आ+ पृ) (लगा रहना, क्रियाशील होना), लट्–प्रियते, लिट्–पप्रे, लुट्–पर्ता, लृट्–परिष्यते, लृङ–अपरिष्यत, आ० लिङ–पृषीष्ट, लुङ–अपृत, कर्म० लट्–प्रियते, णिच् लट्–पारयति-ते, लुङ–अपीपरत्-त, सन्–पुपूर्षते, क्त–पृत, तुम्–पर्तुम् ।

**पृच्**—२ आ०, संपर्चने ( संपर्क में आना), लट्–पृक्ते, लिट्–पपृचे, लुट्–पर्चिता, लुङ–अपर्चिष्ट । सन्–पिपर्चिषते, क्त–पृक्त ।

**पृच्**—७ प० (मिलना, जुड़ना), लट्–पृणक्ति, लिट्–पपर्च, लृट्–पर्चिष्यति, लुङ–अपर्चीत् । सन्–पिपर्चिषति, क्त–पृक्त, क्त्वा–पर्चित्वा, तुम्–पर्चितुम् ।

**पृच्**—१ प०, १० उ० (विघ्न डालना, मिलना), लट्–पर्चति, पर्चयति–ते, लुङ–अपर्चीत्, अपपर्चत्-त, अपीपृचत्-त । सन्–पिपर्चिषति, पिपर्चयिषति-ते ।

**पृञ्ज्**—२ आ० (संपर्क में आना), लट्–पृङ्क्ते, पपृञ्जे ।

**पृड्**—६ प०, सुखने (प्रसन्न होना, सुखी होना), लट्–पृडति, लृट्–पर्डिष्यति, लुङ–अपर्डीत् ।

**पृण्**—६ प०, प्रीणने ( प्रसन्न करना, सन्तुष्ट करना), लट्–पृणति, लुङ–अपर्णीत् ।

**पृथ्**—१० उ०, प्रक्षेपे ( फेंकना, भेजना), लट्–पर्थयति-ते, लृट्–पर्थयिष्यति–ते, लुङ–अपपर्थत्-त, अपीपृथत्–त ।

**पृष्**—१ प०, सेचनहिंसाक्लेशनेषु ( सींचना, मारना, क्लेश देना ), लट्–पर्षति, लिट्–पपर्ष, लुङ–अपर्षीत्, णिच् लट्–पर्षयति-ते, लुङ–अपपषत्–त, अपीपृषत्-त । सन्–पिपर्षिषति, क्त–पर्षित, पृष्ट ।

**पॄ**—३ प०, पालनपूरणयोः (भरना, पालन करना, पूरा करना), लट्–पिपर्ति, लिट्–पपार, लुट्–परिता, परीता, लृट्–परिष्यति, परीष्यति, लुङ–अपारीत्, आ० लिङ–पूर्यात् । सन्–पुपूर्षति, पिपरिषति, पिपरीषति, कर्म० लट्–पूर्यते, णिच्-लट्–पारयति–ते, लुङ–अपीपरत्–त, क्त–पूर्ण, पूरित, क्त्वा, पूर्त्वा ।

**पॄ**—९ प० ( पूरा करना), लट्–पृणाति, लिट-पपार, ( शेष पूर्ववत्), शतृ–पृणत् ।

**पॄ**—१० उ०, १ प०, लट्–पारयति-ते, परति, लृट्–पारयिष्यति-ते, परिष्यति, परीष्यति, लुङ–अपीपरत्-त, लुङ–अपारीत् ।

**पेल्**—१ प०, १० उ० (जाना, हिलाना), लट्–पेलति, पेलयति-ते ।

**पेव्**—१ आ०, सेवने (सेवा करना), लट्–पेवते, लुङ–अपेविष्ट ।

**पेष्**—१ आ०, सेवने निश्चये प्रयत्ने च ( सेवा करना, निश्चय करना), लट्–पेषते, लुङ–अपेषिष्ट ।

**पेस्**—१ प० (जाना), लट्–पेसति ।

**पै**—१ प०, ( सूखना, मुरझाना), लट्–पायति, लुङ–अपासीत् ।

**पैण्**—१ प०, गतिप्रेरणश्लेषणेषु ( जाना, कहना, चिपकना ), लट्–पैणति ।

**प्याय्**—१ आ०, वृद्धौ (बढ़ना, सूजना), लट्–प्यायते, लिट्–पिप्ये, लुट्–प्यायिता, लृट्–प्यायिष्यते, लृङ–अप्यायिष्यत, लुङ–अप्यायि, अप्यायिष्ट । सन्–पिप्यायिषते, क्त–प्यान, पीन ।

**प्यै**—१ आ०, वृद्धौ (बढ़ना), लट्–प्यायते, लिट्–पप्ये, लुट्–प्याता, लृट्–प्यास्यते, लृङ–अप्यास्यत, लुङ–अप्यास्त । क्त–पीन ।

**प्रच्छ**—१ प० ज्ञीप्सायाम् (पूछना), लट्–पृच्छति, लिट्–पप्रच्छ, लुट्–प्रष्टा, लृट्–प्रक्ष्यति, लृङ–अप्रक्ष्यत्, लुङ–अप्राक्षीत् (द्वि० अप्राष्टाम्), आ० लिङ–पृच्छ्यात् । सन्–पिपृच्छिषति-ते, कर्म० लट्–पृच्छ्यते, णिच्-लट्–प्रच्छयति-ते, क्त–पृष्ट, क्त्वा–पृष्ट्वा, तुम्–प्रष्टुम् ।

**प्रथ्**—१ आ०, प्रख्याते (प्रसिद्ध होना, बढ़ना, उठना), लट्–प्रथते, लिट्–पप्रथे, लुट्–प्रथिता, लृट्–प्रथिष्यते, लृङ–अप्रथिष्यत, लुङ–अप्रथिष्ट । णिच्-लट्–प्रथयति-ते, लुङ–अपप्रथत्-त । सन्–पिप्रथिषते, क्त–प्रथित ।

**प्रथ्**—१० उ०, (प्रसिद्ध होना), लट्–प्रथयति–ते, लिट्–प्रथयांचकार-चक्रे लृट्–प्रथयिता, लुङ–अपप्रथत्–त । सन्–पिप्रथयिषति-ते ।

**प्रा**——१ प०, पूरणे ( भरना), लट्–प्राति, लिट्–पप्रौ, लुट्–प्राता, लुङ–अप्रासीत्, आ० लिङ–प्रायात्, प्रेयात्, कर्म० प्रायते ।

**प्री**——४ आ०, प्रीतौ (प्रेम करना, प्रसन्न होना), लट्–प्रीयते, लिट्–पिप्रिये, लुट्–प्रेता, लुङ–अप्रेष्ट, आ० लिङ–प्रेषोष्ट, सन्–पिप्रीपते, क्त–प्रीत, क्त्वा–प्रीत्वा, तुम्–प्रेतुम् ।

**प्री**——९ उ०, तर्पणे (प्रसन्न करना, आनन्दित होना), लट्–प्रीणाति, प्रीणीत, लिट्–पिप्राय, पिप्रिये, लुट्–प्रेता, ऌट्–प्रेष्यति-ते, लुङ–अप्रैषीत्, अप्रेष्ट, आ० लिङ–प्रीयात्, प्रेषोष्ट । सन्–पिप्रीपति-ते, क्त–प्रीत ।

**प्री**——१० उ० और १ उ०, तर्पणे (प्रसन्न करना), लट्–प्रीणयति-ते, प्रयति-ते, ऌट्–प्रीणयिष्यति-ते, प्रेष्यति-ते, लुङ–अपिप्रीणत्-त, अप्रैषीत्, अप्रेष्ट ।

**प्रु**——१ आ०, गतौ (जाना, कूदना), लट्–प्रवते, लिट्–पुप्रुवे, लुट्–प्रोता, लुङ–अप्रोष्ट । कर्म० लट्–प्रूयते, णिच् लट्–प्रावयति-ते ।

**प्रुट्**——१ प०, मर्दने ( रगड़ना), लट्–प्रोटति, लिट्–पुप्रोट, लुङ–अप्रोटीत् ।

**प्रुष्**——१ प०, दाहे ( जलाना), लट्–प्रोषति, लिट्–पुप्रोष, ऌट्–प्रोषिष्यति, लुङ–अप्रोषीत् । सन्–पुप्रुषिषति, पुप्रोषिषति, क्त–प्रुष्ट, क्त्वा–प्रुष्ट्वा, प्रोषित्वा, प्रुषित्वा ।

**प्रुष्**——९ प०, स्नेहनस्वेदनपूरणेषु ( गीला होना, सींचना, भरना), लट्–प्रुष्णाति । क्त–प्रुषित, क्त्वा–प्रोषित्वा ।

**प्रेङ्खोल्**——१० उ०, आन्दोलने (हिलना, हिलाना), लट्–प्रेङ्खोलयति-ते, लुङ–अपिप्रेङ्खोलत्–त । कर्म० लट्–प्रेङ्खोल्यते ।

**प्रेष्**——१ आ० (जाना), लट्–प्रेषते, लुङ–अप्रेषिष्ट ।

**प्रोथ्**——१ उ०, पर्याप्तौ ( पूरा होना, बराबर होना), लट्–प्रोथति-ते, लुङ–अप्रोथीत्, अप्रोथिष्ट ।

**प्लक्ष्**——१ उ०, अदने (खाना), लट्–प्लक्षति-ते, लुङ–अप्लक्षीत्, अप्लक्षिष्ट ।

**प्लिह**——१ प० (जाना), लट्–प्लेहति-ते, लुङ–अप्लेहिष्ट ।

**प्ली**——९ प० ( जाना), प्लीनाति, ऌट्–प्लेष्यति, लुङ–अप्लैषीत् ।

**प्लु**——१ आ०, गतौ ( तैरना, उड़ना, कूदना), लट्–प्लवते, लिट्–पुप्लुवे, लुट्–प्लोता, ऌट्–प्लोष्यते, ऌङ–अप्लोष्यत, लुङ–अप्लोष्ट । णिच्-लट्–प्लावयति-ते, लुङ–अपुप्लुवत्-त, अपिप्लवत्-त, क्त–प्लुत ।

**प्लुष्**——१ और ४ प०, दाहे (जलाना), लट्–प्लोषति, प्लुष्यति, लिट्–पुप्लोष, लुट्–प्लोषिता, ऌट्–प्लोषिष्यति, ऌङ–अप्लोषिष्यत्, लुङ–अप्लोषीत् (१), अप्लुषत् (४), क्त–प्लुष्ट (१), प्लुषित (४), क्त्वा–प्लुष्ट्वा (१), प्लुषित्वा, प्लोषत्वा (१,४) ।

**प्लुष्**—६ प०, स्नेहनसेवनपूरणेषु (सींचना, भरना, गीला होना) लट्–प्लुष्णाति, लुङ–अप्लोषीत् । (शेष रूप प्लुष् ४ के तुल्य) ।

**प्सा**—२ प०, भक्षणे (खाना, निगलना), लट्–प्साति, लिट्–पप्सौ, लुट्–प्साता, लृट्–प्यास्यति, लृङ–अप्सास्यत्, लुङ–अप्सासीत्, आ० लिङ–प्सायात्, प्सेयात् । सन्–पिप्सासति, कर्म० लट्–प्सायते, णिच्-लट्–प्सापयति, लुङ–अपिप्सत्, क्त–प्सात ।

## फ

**फक्क्**—१ प०, नीचैर्गतौ (दुर्व्यवहार करना, धीरे से जाना), लट्–फक्कति, लिट्–फफक्क, लुङ–अफक्कीत्, क्त–फक्कित ।

**फण्**—१ प०, गतिदीप्त्योः (जाना, सरलता से उत्पन्न करना), लट्–फणति, लिट्–पफाण, लुट्–फणिता, लुङ–अफणीत्, अफाणीत्, आ० लिङ–फण्यात् । सन्–पिफणिषति, णिच्-लट्–फणयति-ते, लुङ–अपीफणत्-त, क्त–फणित ।

**फल्**—१ प०, विशरणे ( फटना, खोलना, फाड़ना) लट्–फलति, लिट्–पफाल, लुट्–फलिता, लृट्–फलिष्यति, लृङ–अफलिष्यत्, लुङ–अफालीत् । सन्–पिफलिषति, क्त–फुल्ल (प्रफुल्ल) ।

**फल्**—१ प०, निष्पत्तौ (जाना, परिणाम होना, सफल होना), लट्–फलति । क्त–फलित । (शेष रूप पूर्ववत्) ।

**फुल्ल्**—१ प०, विकसने ( खोलना, पुष्प आदि का विकसित होना), लट्–फुल्लति, लिट्–पुफुल्ल, लुट्–फुल्लिता, लृट्–फुल्लिष्यति, लृङ–अफुल्लिष्यत्, लुङ–अफुल्लीत् । सन्–पुफुल्लिषति, क्त–फुल्लित ।

**फेल्**—१ प०, (जाना), लट्–फेलति, लृट्–फेलिष्यति, लृङ–अफेलीत् ।

## ब

**बंह्**—१ आ०, वृद्धौ ( बढ़ना), लट्–बंहति, लृट्–बंहिष्यते, लुङ–अबंहिष्ट । क्त–बंहित ।

**बठ्**—१ प०, (बढ़ना), लट्–बठति ।

**बण्**—१ प०, शब्दे ( शब्द करना), लट्–बणति, लिट्–बबाण, लुङ–अबणीत्, अबाणीत् ।

**बद्**—१ प० (स्थिर होना), लट्–बदति, लिट्–बबाद, लुङ–अबदीत्–अबादीत् ।

**बध्**—१ आ०, चित्तविकारे (घृणा करना, डरना), लट्–बीभत्सते, लिट्–बीभत्सांबभूव-आस-चक्रे, लुट्–बीभत्सिता, लृट्–बीभत्सिष्यते, लृङ–अबीभत्सिष्यत्, आ० लिङ–बीभत्सिषीष्ट, लुङ–अबीभत्सिष्ट । सन्–बीभत्सिषते, कर्म० लट्–बीभत्स्यते, लुङ–अबीभत्सि, क्त–बीभत्सित ।

**बध्**—१० उ०, संयमने (बाँधना), लट्—बाधयति, बाधयते, लुङ—अबीबधत्—त, आ० लिङ—बाध्यात्, बाधयिषीष्ट । सन्—बिबाधयिषति—ते ।

**बन्ध्**—९ प०, बन्धने (बाँधना, आकृष्ट करना, बनाना), लट्—बध्नाति, लिट्—बबन्ध, लुट्—बन्द्धा, लृट्—भन्त्स्यति, लृङ—अभन्त्स्यत्, लुङ—अभान्त्सीत्, आ० लिङ—बध्यात् । सन्—बिभन्त्सति, कर्म० लट्—बध्यते, णिच् लट्—बन्धयति—ते, लुङ—अबबन्धत्—त, क्त—बद्ध, क्त्वा—बध्वा ।

**बन्ध्**—१० उ० (बाँधना), लट्—बन्धयति—ते, लिट्—बन्धयांचकार-चक्रे, लुङ—अबबन्धत्—त, सन्—बिबन्धयिषति—ते । कर्म०लट्—बन्ध्यते ।

**बर्ब्**—१ प०, ( जाना), लट्—बर्बति, लिट्—बबर्ब, लुट्—बर्बिता ।

**बर्ह्**—१ आ०, परिभाषणहिंसाप्रदानेषु ( कहना, देना, हिंसा करना ), लट्—बर्हते, लिट्—बबर्हे, लुङ—अबर्हिष्ट ।

**बर्ह्**—१० उ०, हिंसायां भाषायां दीप्तौ च (मारना, बोलना), लट्—बर्हयति-ते, लुङ—अबबर्हत्-त ।

**बल्**—१ प०, प्राणने धान्यावरोधने च (जीवित रहना, अन्न-संग्रह करना), लट्—बलति, लिट्—बबाल, लुट्—बलिता, लुङ—अबालीत् ।

**बल्**—१० उ०, प्राणने (साँस लेना), लट्—बलयति ते ।

**बस्**—४ प०, स्तम्भे (रुकना), लट्—बस्यति, लिट्—बबास, लुट्—बसिता, लुङ—अबसत् ।

**बाड्**—१ आ०, आप्लाव्ये ( नहाना, डुबकी लगाना), लट्—बाडते, लिट्—बबाडे, लुङ—अबाडिष्ट ।

**बाध्**—१ आ०, लोडने (तंग करना, दुःख देना), लट्—बाधते, लिट्—बबाधे, लुट्—बाधिता, लृट्—बाधिष्यते, लृङ—अबाधिष्यत, लुङ—अबाधिष्ट । णिच्-लट्—बाधयति-ते, लुङ—अबबाधत्—त, कर्म०—लट्—बाध्यते, लुङ—अबाधि, क्त—बाधित, क्त्वा—बाधित्वा, तुम्—बाधितुम् ।

**बिट्**—१ प०, आक्रोशे (शाप देना, चिल्लाना), लट्—बेटति, लिट्—बिबेट, लुट्—बेटिता, लुङ—अबेटीत् ।

**बिन्द्**—१ प०, अवयवे (काटना, पृथक् करना), लट्—बिन्दति, लिट्—बिबिन्द, लुट्—बिन्दिता ।

**बिल्**—६ प०, भेदने (तोड़ना), लट्—बिलति, लिट्—बिबेल, लुट्—बेलिता, लुङ—अबेलीत्, (१० उ०), लट्—बेलयति-ते ।

**बिस्**—४ प०, क्षेपे प्रेरणे च (फेंकना, जाना, प्रेरणा देना), लट्—बिस्यति, लिट्—बिबेस, लृट्—बेसिष्यति, लुङ—अबिसत् ।

**बुक्क्**—१ प०, १० उ०, भाषणे ( भोंकना, कहना), लट्—बुक्कति, बुक्कयति-ते, लुङ—अबुक्कीत्-अबबुक्कत्-त ।

**बुध्**—१ उ०, बोधने (जानना, देखना, आदर करना), लट्—बोधति-ते, लिट्—बुबोध, बबुधे, लुट्—बोधिता, लृट्—बोधिष्यति-ते, लृङ—अबोधिष्यत्-त, लुङ—अबुधत्, अबोधीत्, अबोधिष्ट। णिच्—लट्—बोधयति-ते, लुङ—अबूबुधत्-त। सन्—बुबुधिषति-ते, बुबोधिषति-ते, कर्म० लट्—बुध्यते, लुङ—अबोधि, क्त—बुधित, क्त्वा—बुधित्वा, बोधित्वा।

**बुध्**—४ आ० (जानना, समझना), लट्—बुध्यते, लिट्—बुबुधे, लुट्—बोद्धा, लृट्—भोत्स्यते, लृङ—अभोत्स्यत, लुङ—अबुद्ध, अबोधि, आ० लिङ—भुत्सीष्ट। सन्—बुभुत्सते, कर्म०—लट्—बुध्यते, णिच्—लट्—बोधयति—ते, क्त—बुद्ध, क्त्वा—बुध्द्वा, तुम्—बोद्धम्।

**बुल्**—१० उ० (डूबना), लट्—बोलयति-ते, लिट्—बोलयांचकार-चक्रे, लुट्—बोलयिता।

**बुस्**—४ प० (उगलना), लट्—बुस्यति, लिट्—बुबोस।

**बुस्त्**—१० उ० (आदर करना, आदरयुक्त व्यवहार करना), लट्—बुस्तयति-ते, लिट्—बुस्तयांचकार-चक्रे, लुट्—बुस्तयिता।

**बृह्**—१ प०, वृद्धौ (बढ़ना), लट्—बर्हति, लिट्—बबर्ह, लुट्—बर्हिता, लृट्—बर्हिष्यति, लृङ—अबर्हिष्यत्, लुङ—अबर्हीत्।

**बृह्**—६ प०, उद्यमने (काम करना), लट्—बृहति, लिट्—बबर्ह (म० पु० एक० बबर्हिथ, बबर्ढ), लृट्—बर्हिष्यति, भर्क्ष्यति, लुङ—अबर्हीत्, अभृक्षत्। णिच्—लट्—बर्हयति-ते, लुङ—अबबर्हत्-त, अबीबृहत्-त, सन्—बिबर्हिषति, बिभृक्षति, क्त—बृढ, क्त्वा—बर्हित्वा, बृढ्वा।

**बृंह्**—१ प०, वृद्धौ शब्दे च (बढ़ना, गरजना), लट्—बृंहति, लिट्—बबृंह, लृट्—बृंहिष्यति, लुङ—अबृंहीत्।

**बेह्**—१ आ०, प्रयत्ने (प्रयत्न करना), लट्—बेहते, लुङ—अबेहिष्ट।

**ब्रू**—२ उ०, व्यक्तायां वाचि (कहना), लट्—ब्रवीति, ब्रूते-आह, लिट्—उवाच, ऊचे, लुट्—वक्ता, लृट्—वक्ष्यति-ते, लृङ—अवक्ष्यत्-त, लुङ—अवोचत्-त, आ० लिङ—उच्यात्, वक्षीष्ट। कर्म० लट्—उच्यते, णिच्—लट्—वाचयति-ते, लुङ—अवीवचत्—त, क्त—उक्त, क्त्वा—उक्त्वा, तुम्—वक्तुम्।

**ब्रूस्**—हिंसायाम् (हिंसा करना, चोट पहुँचाना), लट्—ब्रूसयति-ते, लिट्—ब्रूसयांचकार-चक्रे, लुट्—ब्रूसयिता, लुङ—अबुब्रूसत्-त।

## भ

**भक्ष्**—१ उ०, भ्रक्ष् धातु के तुल्य।

**भक्ष्**—१० उ०, अदने (खाना, दाँत से काटना, उपयोग करना), लट्—भक्षयति-ते, लिट्—भक्षयांचकार-चक्रे-आस—बभूव, लुट्—भक्षयिता, लृट्—भक्षयिष्यति-ते, लुङ—अबभक्षत्-त, आ० लिङ—भक्ष्यात्, भक्षयिषीष्ट। सन्—

बिभक्षयिषति-ते, कर्म० लट्—भक्ष्यते, क्त—भक्षित, क्त्वा—भक्षित्वा, तुम्—भक्षि-तुम् ।

**भज्**—१ उ०, सेवायाम् ( सेवा करना, प्राप्त करना, छाँटना, आदर करना ), लट्—भजति-ते, लिट्—बभाज, भेजे, लुट्—भक्ता, लृट्—भक्ष्यति-ते, लृङ—अभक्ष्यत्-त, लुङ—अभाक्षीत्, अभक्त, आ० लिङ—भज्यात्—भक्षीष्ट । सन्—बिभक्षति-ते, कर्म० लट्—भज्यते, लुङ—अभाजि, णिच्—लट्—भाजयति—ते, लुङ—अबीभजत्—त, क्त—भक्त, क्त्वा—भक्त्वा, तुम्—भक्तुम् ।

**भज्**—१० उ०, विश्राणने ( पकाना, देना), लट्—भाजयति-ते, लिट्—भाजयांचकार-चक्रे, लुट्—भाजयिता, लुङ—अबीभजत्-त । सन्—विभाजयि-षति-ते ।

**भञ्ज्**—१० उ०, भाषायां दीप्तौ च (कहना, चमकना), लट्—भञ्जयति—ते, लुङ—अबभञ्जत्-त ।

**भञ्ज्**—७ प०, आमर्दने (तोड़ना, निराश करना), लट्—भनक्ति, लिट्—बभञ्ज, लुट्—भङ्क्ता, लृट्—भङ्क्ष्यति, लृङ—अभङ्क्ष्यत्, लुङ—अभांक्षीत्, आ० लिङ—भज्यात्, सन्—बिभङ्क्षति, कर्म० लट्—भज्यते, लुङ—अभञ्जि, अभाजि, णिच्—लट्—भञ्जयति-ते, लुङ—अबभञ्जत्-त, क्त—भग्न, क्त्वा—भक्त्वा, भङ्क्त्वा, तुम्—भङ्क्तुम् ।

**भट्**—१ प०, भृतौ (वेतन पाना, पालन करना), लट्—भटति, लिट्—बभाट, लुट्—भटिता, लुङ—अभटीत्, अभाटीत् ।

**भण्ड्**—१ आ०, परिभाषणे (परिहास करना), लट्—भण्डते, लिट्—बभण्डे, लुट्—भण्डिता, लुङ—अभण्डिष्ट ।

**भण्ड्**—१० उ०, कल्याणे सुखे प्रतारणे च (भाग्यशाली बनाना, धोखा देना), लट्—भण्डयति-ते, लिट्—भण्डयांचकार—चक्रे, लुट्—भण्डयिता, लुङ—अबभण्डत्—त, (१ प० भी है), लट्—भण्डति, लुङ—अभण्डीत् ।

**भण्**—१ प०, शब्दे ( कहना, पुकारना), लट्—भणति, लिट्—बभाण, लुट्-भणिता, लृट्—भणिष्यति, लुङ—अभणीत्, अभाणीत् । सन्—बिभणिषति, कर्म० लट्—भण्यते, लुङ—अभाणि, क्त—भणित, क्त्वा—भणित्वा ।

**भर्त्स्**—१० आ०, (कभी पर० भी है) ( डराना, धमकाना, गाली देना), लट्—भर्त्सयते, लिट्—भर्त्सयांचक्रे, लुट्—भर्त्सयिता, लुङ—अबभर्त्सत । सन्—बिभर्त्सयिषते ।

**भल्**—१ आ०, परिभाषणहिंसादानेषु ( कहना, मारना, देना ), लट्—भलते, लुङ—अभलिष्ट ।

**भल्**—१० आ०, आभण्डने (देखना), लट्—भालयते, लिट्—भालयांचक्रे, लुट्—भालयिता, लुङ—अबीभलत् ।

**भल्ल्**—१ आ०, परिभाषणहिंसादानेषु ( वर्णन करना, चोट मारना, देना), लट्–भल्लते, लिट्–बभल्ले, लुट्–भल्लिता, लुङ–अभल्लिष्ट, क्त–भल्लित।

**भष्**—१ प०, ( भोंकना), लट्–भषति, लिट्–बभाष, लुट्–भषिता, लुङ–अभषीत् । सन्–बिभषिषति ।

**भस्**—३ प०, भर्त्सनदीप्त्योः ( धमकाना, दोष लगाना, चमकना), लट्–बभस्ति, लिट्–बभास ( केवल वेदों में प्रयुक्त होती है ) ।

**भा**–२ प०, दीप्तौ ( चमकना, प्रकट होना, होना), लट्–भाति, लुङ–प्र० पु० बहु० अभान्-अभुः, लिट्–बभौ, लुट्–भाता, लुङ–अभासीत् । कर्म० । लट्–भायते, लुङ–अभायि, णिच्–लट्–भापयति-ते, लुङ–अबीभयत्-त ।

**भाज्**—१० उ०, पृथक्करणे (विभाजित करना), लट्–भाजयति-ते, लिट्–भाजयांचकार-चक्रे, लुट्–भाजयिता, लुङ–अबभाजत्-त । सन्–बिभाजयिषति-ते, क्त–भाजित ।

**भाम्**—१ आ०, क्रोधे (क्रोध करना), लट्–भामते, लिट्–बभामे, लृट्–भामिष्यते, लुङ–अभामिष्ट ।

**भाष्**—१ आ० (कहना, पुकारना), लट्–भाषते, लिट्–बभाषे, लुट्–भाषिता, लुङ–अभाषिष्ट। (१० उ० भी है), लुङ–अबभाषत्-त ।

**भिक्ष्**—१ आ०, भिक्षायां लाभेऽलाभे च (माँगना, पाना), लट्–भिक्षते, लिट्–बिभिक्षे, लुट्–भिक्षिता, लृट्–भिक्षिष्यते, लुङ–अभिक्षिष्ट । णिच्–लट्–भिक्षयति-ते, लुङ–अबिभिक्षत्-त ।

**भिद्**—७ उ०, विदारणे ( तोड़ना, फोड़ना), लट्–भिनत्ति, भिन्ते, लिट्–बिभेद, बिभिदे, लुट्–भेत्ता, लृट्–भेत्स्यति-ते, लृङ–अभेत्स्यत्-त, लुङ–अभिदत्, अभैत्सीत्, (द्वि० अभैत्ताम्), अभित्त, णिच्–लुङ–अबीभिदत्-त, सन्–बिभित्सति, यङन्त–बेभिद्यते, बेभिदीति, बेभेत्ति, कर्म० लुङ–अभेदि, क्त–भिन्न (भित्त भी होता है) ।

**भिन्द्**—१ प० (विभाजित करना, काटना), लट्–भिन्दति, लिट्–बिभिन्दे, लुङ–अभिन्दीत्, कर्म० लट्–भिन्द्यते ।

**भी**—३ प०, भये ( डरना, चिन्तित होना), लट्–बिभेति, लिट्–बिभाय, बिभयांचकार, लुट्–भेत्ता, लृट्–भेष्यति, लृङ–अभेष्यत्, लुङ–अभैषीत्, आ० लिङ–भीयात् । सन्–बिभीषति, कर्म० लट्–भीयते, लुङ–अभायि, णिच्–लट्–भाययति, भापयते, भीषयते, लुङ–अबीभयत्–अबीभपत–अबीभिषत, यङन्त–बेभीयते, बेभयीति, बेभेति, क्त–भीत ।

**भुज्**—६ प०, कौटिल्ये (मोड़ना, टेढ़ा करना), लट्–भुजति, लिट्–बुभोज, लुट्–भोक्ता, लुङ–अभोक्षीत्, क्त–भुग्न ।

**भुज्**—७ उ०, पालनाभ्यवहारयोः (रक्षा करना अर्थ में आत्मने० है), ( खाना, उपभोग करना, अर्थ में पर० है), लट्–भुनक्ति, भुङ्क्ते, लिट्–बुभोज,

बुभुजे, लुट्—भोक्ता, लृट्—भोक्ष्यति-ते, लृङ—अभोक्ष्यत्-त, लुङ—अभोक्षीत्, अभुक्त, आ० लिङ—भुज्यात्, भुक्षीष्ट । सन्—बुभुक्षति, कर्म० लट्—भुज्यते, लुङ—अभोजि, णिच्—लट्—भोजयति-ते, लुङ—अबूभुजत्-त, यङन्त—बोभुज्यते, बोभुजीति, बोभोक्ति, क्त—भुक्त ।

भू—१ प०, सत्तायाम् (कभी कभी आत्मने० भी है), (होना, जीवित रहना, उत्पन्न होना), लट्—भवति-ते, लिट्—बभूव, बभूवे, लुट्—भविता, लृट्—भविष्यति—ते, लृङ—अभविष्यत्—त, लुङ—अभूत्—अभविष्ट, आ० लिङ—भयात्, भविषीष्ट । णिच्—लट्—बुभूषति-ते, कर्म० लट्—भूयते, लुट्—भाविता, भविता, लृट्—भविष्यते, भाविष्यते, लुङ—अभावि, आ० लिङ—भाविषीष्ट, भविषीष्ट, णिच्—लट्—भावयति—ते, लुङ—अबीभवत्—त, यङन्त—बोभूयते, बोभोति, बोभवीति, क्त—भूत ।

**भू**—१० आ०, प्राप्तौ (पाना), लट्—भावयते, लिट्—भावयांचक्रे, लुट्—भावयिता, लुङ—अबीभवत, आ० लिङ—भावयिषीष्ट । कर्म०—भाव्यते ।

**भू**—१० उ०, अवकल्कने (पवित्र होना, समझना, मिलना), लट्—भावयति-ते, लिट्—भावयांचकार-चक्रे, लुट्—भावयिता, लुङ—अबीभवत्—त, आ० लिङ—भाव्यात्, भावयिषीष्ट ।

**भूष्**—१ प०, अलङ्कारे (सजाना), लट्—भूषति, लिट्—बुभूष, लुट्—भूषिता, लुङ—अभूषीत् । सन्—बुभूषिषति ।

**भूष्**—१० उ० (सजाना), लट्—भूषयति-ते, लिट्—भूषयांचकार-चक्रे, लुट्—भूषयिता, लुङ—अबुभूषत्—त, आ० लिङ—भूष्यात्, भूषयिषीष्ट । सन्—बुभूषयिषति—ते, कर्म०—भूष्यते, लुङ—अभूषि, क्त—भूषित ।

**भृ**—१ उ०, भरणे (पालन-पोषण करना, भरना), लट्—भरति—ते, लिट्—बभार, बभ्रे, लुट्—भर्ता, लृट्—भरिष्यति-ते, लुङ—अभार्षीत्, अभृत, आ० लिङ—भ्रियात्—भृषीष्ट । सन्—बुभूर्षति-ते, बिभरिषति—ते, यङन्त—बेभ्रीयते, बर्भर्ति, बर्भरीति, कर्म० भ्रियते, क्त—भृत ।

**भृ**—३ उ०, धारणपोषणयोः ( पालन-पोषण करना, धारण करना ), लट्—बिभर्ति—बिभृते, लिट्—बभार—बभ्रे—बिभरांचकार-चक्रे, लुट्—भर्ता, लृट्—भरिष्यति-ते, लुङ—अभार्षीत्—अभृत । सन्—बिभरिषति, बुभूर्षति, कर्म० लट्—भ्रियते, लुङ—अभारि, णिच्—लट्—भारयति-ते, लुङ—अबीभरत्—त ।

**भृज्**—१ आ०, भर्जने (भूनना), लट्—भर्जते, लिट्—बभर्जे, लुट्—भर्जिता, लुङ—अभर्जिष्ट, आ० लिङ—भर्जिषीष्ट । णिच्—भर्जयति-ते, लुङ—अबभर्जत्—त, सन्—बिभर्जिषते, कर्म० लट्—भृज्यते, लुङ—अभर्जि, क्त—भृक्त, क्त्वा—भर्जित्वा ।

**भृश्**—४ प०, अधःपतने (गिरना), लट्—भृश्यति, लिट्—बभर्श, लुट्—भर्शिता, लुङ—अभृशत् । क्त—भृष्ट, क्त्वा—भृष्ट्वा, भर्शित्वा ।

**भॄ**—९ प० (भूनना, निन्दा करना, पालन करना), लट्—भृणाति, लिट्—बभार, लुट्—भरिता, भरीता, लुङ—अभारीत् । क्त—भूर्ण ।

**भेष्**—१ उ०, भये गतौ च (डरना, जाना), लट्—भेषति-ते, लृट्—भेषिष्यति-ते, लुङ्—अभेषीत्—अभेषिष्ट, आ० लिङ्—भेष्यात्, भेषिषीष्ट ।

**भ्रंश्**—१ आ०, अवस्रंसने, ४ प०, अधःपतने (गिरना, ढलना, बचना), लट्—भ्रशते, भ्रश्यति, लिट्—बभ्रंशे, बभ्रंश, लुट्—भ्रंशिता, लृट्—भ्रंशिष्यति-ते, लुङ्—अभ्रंशत्, अभ्रंशिष्ट, अभ्रशत् । णिच्—भ्रंशयति-ते, लुङ्—अबभ्रंशत्—त, सन्—बिभ्रंशिषति—ते, यङन्त—बाभ्रश्यते, बाभ्रंशीति, बाभ्रंष्टि, क्त—भ्रष्ट, क्त्वा—भ्रंशित्वा, भ्रष्ट्वा ।

**भ्रंस्**—१ आ०, ४ प० (गिरना), लट्—भ्रंसते, भ्रंस्यति । (शेष भ्रंश् की तरह रूप चलेंगे, श् को स् में बदल दें) ।

**भ्रक्ष्**—१ उ०, अदने (खाना), लट्—भ्रक्षति-ते, लिट्—बभ्रक्ष—क्षे, लुट्—भ्रक्षिता, लुङ्—अभ्रक्षीत्, अभ्रक्षिष्ट, आ० लिङ्—भ्रक्ष्यात्, भ्रक्षिषीष्ट ।

**भ्रण्**—१ प०, शब्दे (शब्द करना), लट्—भ्रणति, लिट्—बभ्राण, लुट्—भ्रणिता, लुङ्—अभ्रणीत्, अभ्राणीत् ।

**भ्रम्**—१ प०, चलने, ४ प० अनवस्थाने ( घूमना, इधर-उधर फिरना ), लट्—भ्रमति, भ्रम्यति, भ्राम्यति, लिट्—बभ्राम ( म० पु० एक० बभ्रमिथ, भ्रेमिथ), लुट्—भ्रमिता, लृट्—भ्रमिष्यति, लुङ्—( १ प०) अभ्रमीत्, ( ४ प०) अभ्रमत् । णिच्-लट्—भ्रमयति, लुङ्—अबिभ्रमत्, सन्—बिभ्रमिषति, यङन्त—बम्भ्रम्यते, बम्भ्रमीति, बम्भ्रन्ति, कर्म० लट्—भ्रम्यते, लुङ्—अभ्रमि, क्त—भ्रान्त, क्त्वा—भ्रमित्वा, भ्रान्त्वा ।

**भ्रश्**—१ आ०, अवस्रंसने (गिरना), लट्—भ्रशते, लिट्—बभ्रशे, लृट्—भ्रशिष्यते, लुङ्—अभ्रशत्—अभ्रशिष्ट ।

**भ्रस्ज्**—६ उ०, पाके (भूनना), लट्—भृज्जति-ते, लिट्—बभ्रज्ज, बभर्ज, बभ्रज्जे, बभर्जे, लुट्—भ्रष्टा, भर्ष्टा, लृट्—भ्रक्ष्यति-ते, भर्क्ष्यति-ते, लुङ्—अभ्राक्षीत्—अभार्क्षीत्—अभ्रष्ट, अभर्ष्ट, आ० लिङ्—भृज्यात्, भ्रक्षीष्ट, भर्क्षीष्ट । सन्—बिभ्रक्षति-ते, बिभर्क्षति-ते, बिभ्रज्जिषति-ते, बिभर्जिषति-ते, कर्म० लट्—भृज्यते, लुङ्—अभर्जि, अभ्रज्जि, णिच्—लट्—भ्रज्जयति-ते, भर्जयति-ते, लुङ्—अबभ्रज्जत्—त, अबभर्जत्—त, क्त—भृष्ट, तुम्—भ्रष्टुम्, भर्ष्टुम् ।

**भ्राज्**—१ आ०, दीप्तौ ( चमकना), लट्—भ्राजते, लिट्—बभ्राजे, भ्रेजे, लुट्—भ्राजिता, लृट्—भ्राजिष्यते, लुङ्—अभ्राजिष्ट, आ० लिङ्—भ्राजिषीष्ट, णिच्—लट् भ्राजयति-ते, लुङ्—अबिभ्रजत्—त, अबभ्राजत्—त, सन्—बिभ्राजिषते, कर्म० लट्—भ्राज्यते, लुङ्—अभ्राजि, क्त—भ्राजित ।

**भ्राश्**—(भ्लाश्)—१ आ०, ४ आ०, दीप्तौ (चमकना), लट्—भ्राशते, भ्राश्यते, लिट्—बभ्राशे, भ्रेशे, लुट्—भ्राशिता, लुङ्—अभ्रशिष्ट, आ० लिङ्—भ्राशिषीष्ट । णिच्—भ्राशयति-ते, लुङ्—अबभ्राशत्—त । सन्—बिभ्राशिषते, क्त—भ्राशित, तुम्—भ्राशितुम् ।

**भ्रास्**—पूर्ववत् ।

**भ्री**—९ प०, भये भरण इत्येके ( डरना, रक्षा करना), लट्—भ्रिणाति, भ्रीणाति, लिट्—बिभ्राय, ऌट्—भ्रेष्यति, लुङ—अभ्रैषीत् ।

**भ्रुड्**—६ प०, आच्छादने संचयेच (ढकना, इकट्ठा करना), लट्—भ्रुडति, लिट्—बुभ्रोड, बुभ्रुडिथ (कुटादि के तुल्य), लुट्—भ्रुडिता, लुङ—अभ्रुडीत् ।

**भ्रूण्**—१० आ०, आशाविशंकनयोः (चाहना, विश्वास करना), लट्—भ्रूणयते, लिट्—भ्रूणयाञ्चक्रे, लुट्—भ्रूणयिता, लुङ—अबुभ्रूणत्, आ० लिङ—भूणयिषीष्ट । सन्—बुभ्रूणयिषते ।

**भ्रेज्**—१ आ०, दीप्तौ (चमकना), लट्—भ्रेजते, लिट्—बिभ्रेजे, ऌट्—भ्रेजिष्यते, लुङ—अभ्रेजिष्ट ।

**भ्रेष्**—१ उ०, भये गतौ च (जाना, डरना), लट्—भ्रेषति-ते, लिट्—बिभ्रेष, बिभ्रेषे, लुङ—अभ्रेषिष्ट ।

**भ्लक्ष्**—१ उ० (खाना), लट्—भ्लक्षति-ते, लिट्—बभ्लक्ष, बलभ्क्षे, लुङ—अभ्लक्षीत्, अभ्लक्षिष्ट ।

भ्लाश् — देखो — भ्राश् केवल ल को र कर दें ।
भ्लास् — देखो — भ्रास् ,, ,, ,,
भ्लेष् — देखो — भ्रेष् ,, ,, ,,

## म

**मंह्**—१ आ०, वृद्धौ (बढ़ना), १ प०, भाषायां दीप्तौ च (कहना, चमकना), लट्—मंहते—ति, लिट्—ममंहे—ह्, लुट्—मंहिता, लुङ—अमंहिष्ट, अमंहीत्, आ० लिङ—मंहिषीष्ट, मंह्यात्, कर्म० मंह्यते, सन्—मिमंहिषते—ति, क्त—मंहित ।

**मंह्**—१० उ० (कहना, चमकना), ऌट्—मंहयिष्यति—ते, लुङ—अममंहत्—त ।

**मक्क्**—१ आ० (जाना, हिलना), लट्—मक्कते, लिट्—ममक्के, लुङ—अमक्किष्ट ।

**मक्ष्**—१ प०, संघाते (इकट्ठा करना, क्रुद्ध होना), लट्—मक्षति, लिट्—ममक्ष, लुङ—अमक्षीत् ।

**मख्**—१ प०, गतौ (जाना, रेंगना), लट्—मखति, लिट्—ममाख, लुट्—मखिता, लुङ—अमखीत्, अमाखीत् ।

**मङ्क्**—१ आ०, मण्डने (सजाना), लट्—मङ्कते, लिट्—ममङ्के, लुट्—मङ्किता, लुङ—अमङ्किष्ट ।

**मङ्ख्**—१ प०, गतौ (जाना), लट्—मङ्खति, लिट्—ममङ्ख, लुट्—मङ्खिता, लुङ—अमङ्खीत्, कर्म० मङ्ख्यते, लुङ—अमङ्खि ।

**मङ्ग्**—१ प० (जाना, हिलना), पूर्ववत् ।

**मङ्घ्**—१ प०, मण्डने (सजाना), लट्—मङ्घति, लिट्—ममङ्घ, लुट्—मंघिता, लुङ—अमंघीत्, कर्म० मंघ्यते ।

**मंघ्**—१ आ०, गत्याक्षेपे आरम्भे कैतवे च (शीघ्र चलना, प्रस्थान करना, प्रारम्भ करना, धोखा देना ), लट्—मंघते, लिट्—ममंघे, लुट्—मंघिता, लुङ—अमंघिष्ट, आ० लिङ—मंघिषीष्ट ।

**मंच्**—१ आ०, दम्भ कत्थने कल्कने च (धोखा देना, दुष्ट होना, अपनी प्रशंसा करना, पीसना), लट्—मचते, लिट्—मेचे, लुट्—मचिता, लुङ—अमचिष्ट ।

**मंच्**—१ आ०, धारणोच्छ्रायपूजनेषु ( पकड़ना, ऊँचा होना, जाना, सजाना, चमकना ), लट्—मञ्चते, लिट्—ममञ्चे, लुट्—मञ्चिता, लुङ—अमञ्चिष्ट ।

**मञ्ज्**—१० उ०, शब्दे ( शब्द करना), लट्—मञ्जयति—ते, लिट्—मञ्जयांचकार—चक्रे, लुट्—मञ्जयिता, लुङ—अमिमञ्जत्—त ।

**मठ्**—१ प०, मर्दननिवासनयोः ( पीसना, रहना, जाना), लट्—मठति, लिट्—ममाठ, लुट्—मठिता, लुङ—अमठीत् ।

**मण्ठ्**—१ आ०, शोके (शोकपूर्वक स्मरण करना, चाहना), लट्—मण्ठते, लिट्—ममण्ठे, लुट्—मण्ठिता, लुङ—अमण्ठिष्ट ।

**मण्**—१ प०, शब्दे, ( शब्द करना, चरचर करना), लट्—मणति, लिट्—ममाण, लुट्—मणिता, लुङ—अमणीत् ।

**मण्ड्**—१ प०, भूषायाम् (अपने आपको सजाना), लट्—मण्डति, लिट्—ममण्ड, लुट्—मण्डिता, लृट्—मण्डिष्यति, लुङ—अमण्डीत्, आ० लिङ—मण्ड्यात् । णिच्—लट्—मण्डयति—ते, लुङ—अममण्डत्—त । सन्— मिमण्डिषति ।

**मण्ड्**—१ आ०, विभाजने (बाँटना), लट्—मण्डते, लिट्—ममण्डे, लुट्—मण्डिता, लृट्—मण्डिष्यते, लुङ—अमण्डिष्ट, आ० लिङ—मण्डिषीष्ट । सन्—मिमण्डिषते, कर्म०—लट् मण्ड्यते, लुङ—अमण्डि ।

**मण्ड्**—१० उ०, (सजाना), लट्—मण्डयति-ते, लिट्—मण्डयांचकार-चक्रे, लुट्—मण्डयिता, लुङ—अममण्डत्—त, आ० लिङ—मण्ड्यात्, मण्डयिषीष्ट । सन्—मिमण्डयिषति-ते ।

**मथ्**—१ प०, विलोडने (मथना, हिलाना), लृट्—मथिष्यति, लुङ—अमथीत् । णिच्—लट्—माथयति-ते, लुङ—अमीमथत्—त, सन्—मिमथिषते ।

**मद्**—४ प०, हर्षग्लेपनयोः (प्रसन्न होना, दयनीय दशा में होना), लट्—माद्यति, लिट्—ममाद, लुट्—मदिता, लृट्—मदिष्यति, लुङ—अमदीत्, अमादीत्, णिच्—लट्—मदयति—ते, (मादयति-ते, प्रमत्त करना) लुङ—अमीमदत्—त । सन्—मिमदिषति, यङन्त—मामद्यते, मामदीति, मामत्ति, कर्म० लट्—मद्यते, लुङ—अमादि—अमदि, क्त—मत्त ।

**मद्**—१० आ०, तृप्तियोगे ( प्रसन्न करना), लट्—मादयते, लिट्—मादयांचक्रे, लुट्—मादयिता, लृट्—मादयिष्यते, लुङ—अमीमदत, आ० लिङ—मादयिषीष्ट । सन्—मिमादयिषते, कर्म० लट्—माद्यते, लुङ—अमादि, क्त—मादित ।

**मन्**—४ आ०, ज्ञाने ( जानना, सोचना), लट्—मन्यते, लिट्—मेने, लुट्—मन्ता, लृट्—मंस्यते, लृङ—अमंस्यत, लुङ—अमंस्त, आ० लिङ—मंसीष्ट । सन्—मिमंसते, णिच्—लट्—मानयति-ते, लुङ—अमीमनत्—त, यङन्त—मम्मन्यते, मम्मनीते, मम्मन्ति, क्त—मत, क्त्वा—मत्वा, तुम्—मन्तुम् ।

**मन्**—८ आ०, अवबोधने (सोचना, मानना), लट्—मनुते, लिट्—मेने, लुट्—मनिता, लृट्—मनिष्यते, लुङ—अमनिष्ट, अमत, (म० पु० एक० अमनिष्ठाः, अमथाः) । सन्—मिमनिषते, तुम्—मनितुम्, णिच्—पूर्ववत् ।

**मन्**—१० आ०, स्तम्भे ( गर्वयुक्त होना), लट्—मानयते, लिट्—मानयांचक्रे, लुट्—मानयिता, लुङ—अमीमनत, आ० लिङ—मानयिषीष्ट सन्—मिमानयिषते, कर्म० लट्—मान्यते, क्त—मानित ।

**मन्त्र्**—१० आ०, गुप्तपरिभाषणे ( मन्त्रणा करना, संमति देना, राय लेना, कहना), लट्—मन्त्रयते, ( कभी मन्त्रयति भी होता है), लिट्—मन्त्रयांचक्रे, लुट्—मन्त्रयिता, लृट्—मन्त्रयिष्यते, लुङ—अममन्त्रत । सन्—मिमन्त्रयिषते, क्त—मन्त्रित, क्त्वा—मन्त्रयित्वा ।

**मन्थ्**—१ प०, ९ प०, विलोडने (मथना, क्षुब्ध करना), लट्—मन्थति, मथ्नाति- ( म० पु० एक० लोट्—मथान), लिट्—ममन्थ, लुट्—मन्थिता, लृट्—मन्थिष्यति, लुङ—अमन्थीत्, आ० लिङ—मथ्यात् । सन्—मिमन्थिषति, कर्म० थ्यते लट्—मथ्यते, लुङ—अमन्थि, णिच्—लट्—मन्थयति—ते, लुङ—अममन्थत्—त, यङन्त—मामन्थ्यते, मामन्थीति, मामन्ति, क्त—मथित, क्त्वा—मन्थित्वा, शतृ—मन्थत् (१), मथ्नत् (९) ।

**मन्थ्**—१ प०, हिंसाक्लेशनयोः ( मारना, दुःख देना), लट्—मन्थति, लिट्—ममन्थ, लुट्—मन्थिता, लृट्—मन्थिष्यति, लुङ—अमन्थीत्, कर्म० लट्—मन्थ्यते, लुङ—अमन्थि, क्त—मन्थित, क्त्वा—मन्थित्वा ।

**मन्द्**—१ आ०, स्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु (प्रशंसा करना, प्रशंसित होना, प्रसन्न होना, प्रमत्त होना, सोना, चमकना, मन्द-गति होना), लट्—मन्दते, लिट्—ममन्दे, लुट्—मन्दिता, लृट्—मन्दिष्यते, लुङ—अमन्दिष्ट, आ० लिङ—मन्दिषीष्ट, कर्म० लट्—मन्द्यते ।

**मभ्र्**—१ प०, गतौ (जाना, हिलना), लट्—मभ्रति, लिट्—ममभ्र, लुट्—मभ्रिता, लुङ—अमभ्रीत् ।

**मय्**—१ आ० ( जाना, हिलना), लट्—मयते, लिट्—ममये, लुट्—मयिता, लुङ—अमयिष्ट, आ० लिङ—मयिषीष्ट ।

**मर्च्**—१० उ०, शब्दे ग्रहणे च (लेना, शब्द करना, जाना, चोट पहुँचाना), लट्—मर्चयति-ते, लिट्—मर्चयांचकार-चक्रे, लुट—मर्चयिता, लुङ—अममर्चत्—त, आ० लिङ—मर्च्यात्, मर्चयिषीष्ट ।

**मर्ब्**—१ प० (जाना, हिलना), लट्—मर्बति, लिट्—ममर्ब, लुट्—मर्बिता, लुङ—अमर्बीत् ।

**मर्व्**—१ प०, पूरणे (पूरा करना), लट्—मर्वति, लिट्—ममर्व, लुट्—मर्विता, लुङ—अमर्वीत् । णिच्—(शब्द करना), लट्—मर्वयति-ते ।

**मल्**—१ आ०, १० उ०, धारणे ( पकड़ना, रखना), लट्—मलते, मलयति-ते, लिट्—मेले, मलयांचकार-चक्रे, लुट्—मलिता, मलयिता, लुङ—अमलिष्ट, अमीमलत्—त ।

**मल्ल्**—१ आ०, (पकड़ना, रखना), लट्—मल्लते, शेष पूर्ववत् ।

**मव्**—१ प०, बन्धने हिंसायां च (बाँधना, हिंसा करना), लट्—मवति, लिट्—ममाव, लुट्—मविता, लुङ—अमवीत्—अमावीत् ।

**मश्**—१ प०, शब्दे कोपे च (गूँजना, क्रोध करना), लट्—मशति, लिट्—ममाश, लुट्—मशिता, लुङ—अमशीत्—अमाशीत् ।

**मष्**—१ प०, हिंसायां शब्दे च(चोट मारना, नष्ट करना), लट्—मषति, लिट्—ममाष, लुट्—मषिता, लुङ—अमषीत्—अमाषीत् ।

**मस्**—४ प०, परिमाणे (तोलना, बदलना), लट्—मस्यति, लिट्—ममास, लुट्—मसिता, लुङ—अमसत्, क्त—मस्त, तुम्—मसितुम् ।

**मस्क्**—१ आ० (जाना, हिलना), लट्—मस्कते, लिट्—ममस्के, लुट्—मस्किता, ऌट्—मस्किष्यते, लुङ—अमस्किष्ट ।

**मस्ज्**—६ प०, शुद्धौ (नहाना, डूबना, शुद्ध करना), लट्—मज्जति, लिट्—ममज्ज, ( म० पु० एक० ममज्जिथ, ममङ्क्थ ) लुट्—मङ्क्ता, ऌट्—मङक्ष्यति, लुङ—अमांक्षीत्, (प्र० पु० द्वि० अमाङक्ताम्), आ० लिङ—मज्यात् । सन्—मिमंक्षति, णिच्—लट्—मज्जयति, लुङ—अममज्जत्—त, कर्म० मज्यते, क्त—मग्न ।

**मह्**—१ प०, १० उ०, पूजायाम् (आदर करना, प्रसन्न होना, बढ़ाना), लट्—महति, महयति-ते, लिट्—ममाह, महयांचकार-चक्रे, लुट्—महिता, महयिता, लुङ—अमहीत्, अममहत्—त । सन्—मिमहिषति, मिमहयिषति, णिच् (१ प०)—माहयति-ते, लुङ—अमीमहत्—त, कर्म० लट्—मह्यते, क्त—महित, तुम्—महितुम्—महयितुम् ।

**मह्**—१० आ०, पूजायाम् (आदर करना), लट्—महीयते, लिट्—महीयांचक्रे, ऌट्—महीयिष्यते, लुङ—अमहीयिष्ट ।

**मा**—२ प०, माने (तोलना, तुलना करना, बनाना, दिखाना आदि), लट्—माति, लिट्—ममौ, लुट्—माता, ऌट्—मास्यति, ऌङ—अमास्यत्, लुङ—अमासीत्, आ० लिङ—मेयात् । सन्—मित्सति, यङन्त—मेमीयते, मामाति, मामेति, कर्म० लट्—मीयते, लुङ—अमायि, णिच्—लट्—मापयति-ते, लुङ—अमीमपत्—त, क्त—मित, क्त्वा—मित्वा ।

**मा**—३ और ४ आ०, (नापना, तोलना आदि), लट्—मिमीते, मायते, लिट्—ममे, लुट्—माता, ऌट्—मास्यते, लुङ—अमास्त, आ० लिङ—मासीष्ट । सन्—मित्सते (शेष रूप पूर्ववत्) ।

**मांक्ष**—१ प०, कांक्षायाम् (चाहना), लट्–मांक्षति, लुङ–अमांक्षीत् ।

**मान्**—१ आ०, जिज्ञासायाम् (जिज्ञासा करना), लट्–मीमांसते, लिट्–मीमांसांबभूव-आस-चक्रे, लुट्–मीमांसिता, लुङ–अमीमांसिष्ट, आ०, लिङ–मीमांसिसीष्ट । सन्–मीमांसिषते, णिच्–लुङ–अमोमांसत्-त, कर्म० लट्–मीमांस्यते, लुङ–अमीमांसि, क्त–मीमांसित ।

**मान्**—१० आ०, स्तम्भे (रोकना, गर्वयुक्त होना), लट्–मानयते, ऌट्–मानयिष्यते, लुङ–अमीमनत, आ० लिङ–मानयिषीष्ट ।

**मान्**—१० प०, १ प०, पूजायाम् (आदर करना, पूजा करना), लट्–मानयति, मानति, लुङ–अमीमनत्, अमानीत् । सन्–मिमानयिषति–मिमानिषति ।

**मार्ग्**—१ प०, अन्वेषणे (खोजना, ढूँढ़ना, पोछा करना), लट्–मार्गति, लिट्–ममार्ग, लुट्–मार्गिता, लुङ–अमार्गीत् । सन्–मिमार्गिषति, कर्म० लट्–मार्ग्यते, लुङ–अमार्गि ।

**मार्ग्**—१० उ०, (ढूँढ़ना, जाना, सजाना), लट्–मार्गयति-ते, लिट्–मार्गयांचकार-चक्रे, लुट्–मार्गयिता, ऌट्–मार्गयिष्यति-ते, लुङ–अममार्गत्-त, आ० लिङ–मार्ग्यात्–मार्गयिषीष्ट, क्त–मार्गित, तुम्–मार्गयितुम् ।

**मार्ज्**—१० उ०, शब्दे शुद्धौ च (शब्द करना, पवित्र करना, साफ करना), लट्–मार्जयति-ते, लिट्–मार्जयांचकार-चक्रे, लुट्–मार्जयिता, लुङ–अममार्जत्–त, आ० लिङ–मार्ज्यात्–मार्जयिषीष्ट । सन्–मिमार्जयिषति–ते ।

**मि**—५ उ०, प्रक्षेपणे (फेंकना, फैलाना, तोलना), लट्–मिनोति, मिनुते, लिट्–ममौ, मिम्ये, लुट्–माता, ऌट्–मास्यति–ते, लुङ–अमासीत्, अमास्त, आ० लिङ–मोयात्–मासोष्ट । सन्–मित्सति-ते, कर्म० लट्–मोयते, णिच्–लट्–मापयति-ते, लुङ–अमीमपत्–त, क्त–मित ।

**मिथ्**—१ उ०, मेधाहिंसयोः (मिलना, समझना, हिंसा करना, पकड़ना), लट्–मेथति-ते, लिट्–मिमेथ, मिमिथे, लुट्–मेथिता, लुङ–अमेथीत्, अमेथिष्ट, आ० लिङ–मिथ्यात्–मेथिषीष्ट ।

**मिद्**—१ आ०, स्नेहने (गीला होना, पिघलाना, प्रेम करना), लट्–मेदते, लिट्–मिमिदे, लुट्–मेदिता, लुङ–अमिदत्–अमेदिष्ट, आ० लिङ–मेदिषोष्ट । सन्–मिमिदिषते–मिमेदिषते । णिच्–लट्–मेदयति–ते, लुङ–अमीमिदत्–त, क्त–मिन्न, मेदित, क्त्वा–मिदित्वा, मेदित्वा ।

**मिद्**—४ प० (पिघलाना, आदि), लट्–मेद्यति, लिट्–मिमेद, लुट्–मेदिता, लुङ–अमिदत् । सन्–मिमिदिषति, मिमेदिषति ।

**मिद्**—१ उ० (मिथ् के तुल्य), लट्–मेदति–ते ।

**मिन्द्**—१ प०, १० उ०, लट्–मिन्दति, मिन्दयति–ते, लुट्–मिन्दिता, मिन्दयिता, लुङ–अमिन्दोत्–अमिमिन्दत्–त, आ० लिङ–मिन्द्यात्–मिन्दयिषीष्ट ।

**मिन्व्**—१ प०, स्नेहने सेचने च (आदर करना, सींचना), लट्—मिन्वति, लिट्—मिमिन्व, लृट्—मिन्विष्यति, लुङ्—अमिन्वीत्, कर्म०—मिन्व्यते ।

**मिल्**—६ उ०, संगमे (मिलना, एक होना), लट्—मिलति-ते, लिट्—मिमेल-मिमिले, लुट्—मेलिता, लृट्—मेलिष्यति—ते, लृङ्—अमेलिष्यत्—त, लुङ्—अमेलीत्—अमेलिष्ट । सन्—मिमिलिषति-ते, मिमेलिषति-ते, कर्म०—लट्—मिल्यते, लुङ्—अमेलि, णिच्—लट्—मेलयति-ते, लुङ्—अमीमिलत्—त, क्त—मिलित, क्त्वा—मिलित्वा, मेलित्वा ।

**मिश्**—१ प०, शब्दे रोषकृते च (हल्ला करना, क्रोध करना), लट्—मेशति, लिट्—मिमेश, लुट्—मेशिता, लुङ्—अमेशीत् ।

**मिश्र्**—१० उ०, संपर्के ( मिलाना), लट्—मिश्रयति-ते, लिट्—मिश्रयांचचार—चक्रे, लुट्—मिश्रयिता, लुङ्—अमिमिश्रत्-त, आ० लिङ्—मिश्रयात्, मिश्रयिषीष्ट । सन्—मिमिश्रयिषति—ते, क्त—मिश्रित, क्त्वा—मिश्रयित्वा ।

**मिष्**—६ प० ( आँख खोलना, देखना), लट्—मिषति, लिट्—मिमेष, लुट्—मेषिता, लुङ्—अमेषीत्। सन्—मिमिषिषति, मिमेषिषति, क्त्वा—मिषित्वा, मेषित्वा ।

**मिष्**—१ प०, सेचने (सींचना, गीला करना), लट्—मेषति, (शेष पूर्ववत्)। क्त्वा—मिषित्वा, मेषित्वा, मिष्ट्वा ।

**मिह्**—१ प०, सेचने ( गीला करना, मूत्र करना), लट्—मेहति, लिट्—मिमेह, लुट्—मेढा, लृट्—मेक्ष्यति, लुङ्—अमिक्षत् । सन्—मिमिक्षति, णिच्—लट्—मेहयति-ते, लुङ्—अमीमिहत्—त, क्त—मीढ, क्त्वा—मीढ्वा, तुम्—मेढुम् ।

**मी**—४ आ०, हिंसायाम्, ( हिंसाऽत्र प्राणवियोगः) (मरना, नष्ट होना), लट्—मीयते, लिट्—मिम्ये, लृट्—मेष्यते, लुङ्—अमेष्ट । सन्—मिमीषते, णिच्—लट्—माययति-ते, लुङ्—अमीमयत्-त ।

**मी**—९ उ०, हिंसायाम् (हिंसा करना, कम करना, बदलना, नष्ट होना), लट्—मीनाति, मीनीते, लिट्—ममौ, मिम्ये, लुट्—माता, लुङ्—अमासीत्, अमास्त, आ० लिङ्—मीयात्—मासीष्ट । सन्—मित्सति-ते, कर्म० लट्—मीयते, णिच्—लट्—मापयति-ते, लुङ्—अमीमपत्—त, क्त—मीत, क्त्वा—मीत्वा ।

**मी**—१ प०, १० उ० गतौ ( जाना, समझना), लट्—मयति, माययति—ते, लिट्—मिमाय, माययांचकार-चक्रे, लुट्—मेता, माययिता, लुङ्—अमैषीत्—अमीमयत्—त ।

**मील्**—१ प०, निमेषणे ( आँख आदि बन्द करना, फूलों आदि का बन्द होना, मिलना, बन्द करना), लट्—मीलति, लिट्—मिमील, लुट्—मीलिता, लुङ्—अमीलीत् । णिच्—लट्—मीलयति-ते, लुङ्—अमीमिलत्—त, अमिमीलत्—त । सन्—मिमीलिषति ।

**मीव्**—१ प०, स्थौल्ये (मोटा होना, जाना), लट्—मीवति, लिट्—मिमीव, लुट्—मीविता, लुङ्—अमीवीत् ।

**मच्**—१ आ०, कल्कने (धोखा देना), लट्—मुञ्चते, लिट्—मुमुञ्चे, लुङ्—अमुञ्चिष्ट ।

**मुच्**—६ उ०, मोक्षणे (छोड़ना, मुक्त करना, त्यागना), लट्—मुञ्चति-ते, लिट्—मुमोच, मुमुचे, लुट्—मोक्ता, ऌट्—मोक्ष्यति-ते, लुङ्—अमुचत्, अमुक्त, आ० लिङ्—मुच्यात्, मुक्षीष्ट । सन्—मुमुक्षति (मुमुक्षते, मोक्षते, अकर्मक), णिच्—लट्—मोचयति-ते, लुङ्—अमूमुचत्—त, क्त—मुक्त, क्त्वा—मुक्त्वा ।

**मुज्, मुञ्ज्**—१ प०, १० उ०, शब्दे ( साफ करना, पवित्र करना, शब्द करना), लट्—मोजति, मुञ्जति, मोजयति-ते, मुञ्जयति—ते, लिट्—मुमोज, मुमुञ्ज, मोजयांचकार-चक्रे, मुञ्जयांचकार-चक्रे ।

**मुट्**—१ प०, मर्दने ( रगड़ना, पीसना, हिंसा करना), लट्—मोटति, लिट्—मुमोट, लुट्—मोटिता, लुङ्—अमोटीत् ।

**मुट्**—६ प०, आक्षेपमर्दनबन्धनेषु ( दोष लगाना, दबाना, बाँधना), लुट्—मुटति, शेष पूर्ववत् ।

**मुट्**—१० उ०, संचूर्णने (तोड़ना, चूरा करना), लट्—मोटयति-ते, लुङ्—अमूमुटत्—त ।

**मुण्ट्**—१ प०, मर्दने (पीसना, रगड़ना), लट्—मुण्टति, लिट्—मुमुण्ट, लुट्—मुण्टिता, लुङ्—अमुण्टीत् ।

**मुण्ठ्**—१ आ०, पालने पलायने वा ( रक्षा करना, भाग जाना), लट्—मुण्ठते, लिट्—मुमुण्ठे, लुट्—मुण्ठिता, लुङ्—अमुण्ठिष्ट, आ० लिङ्—मुण्ठिषीष्ट, कर्म०—लट्—मुण्ठ्यते, ।

**मुण्ड्**—१ प०, खण्डने (मुण्डन कराना, पीसना), लट्—मुण्डति, लिट्—मुमुण्ड, लुट्—मुण्डिता, लुङ्—अमुण्डीत् । सन्—मुमुण्डिषति, णिच्—लट्—मुण्डयति—ते, लुङ्—अमुमुण्डत्—त ।

**मुण्ड्**—१ आ०, मार्जने मज्जने वा (डूबना), लट्—मुण्डते, लिट्—मुमुण्डे, लुट्—मुण्डिता, लुङ्—अमुण्डिष्ट ।

**मुण्**—६ प०, प्रतिज्ञाने (प्रतिज्ञा करना), लट्—मुणति, लिट्—मुमोण, लुट्—मोणिता, लुङ्—अमोणीत् ।

**मुद्**—१ आ०, हर्षे (आनन्दित होना, प्रसन्न होना), लट्—मोदते, लिट्—मुमुदे, लुट्—मोदिता, ऌट्—मोदिष्यते, लुङ्—अमोदिष्ट, आ० लिङ्—मोदिषीष्ट, सन्—मुमुदिषते, मुमोदिषते, क्त—मुदित, मोदित ।

**मुद्**—१० उ०, संसर्गे (मिलाना, पवित्र करना), लट्—मोदयति-ते, लिट्—मोदयांचकार-चक्रे, लुट्—मोदयिता, लुङ्—अमूमुदत्—त ।

**मुर्**—६ प०, संवेष्टने (ढकना), लट्—मुरति, लिट्—मुमोर, लुङ—अमोरीत् ।

**मुर्च्छ्**—१ प०, मोहसमुच्छाययोः ( मूर्च्छित होना, संज्ञाहीन होना, बढ़ना, व्याप्त होना, योग्य होना), लट्—मूर्च्छति, लिट्—मुमूर्च्छ, लुट्—मूर्च्छिता, लुङ—अमूर्च्छीत्, आ० लिङ—मूर्च्छ्यात्, णिच्—लट्—मूर्च्छयति-ते, लुङ—अमुमूर्च्छत्—त । सन्—मुमूर्च्छिषति, क्त—मूर्छित, मूर्त ।

**मुर्व्**—१ प०, बन्धने ( बाँधना), लट्—मुर्वति, लिट्—मुमुर्व, लुट्—मुर्विता, लुङ—अमुर्वीत् ।

**मुल्**—देखो मूल् धातु ।

**मुष्**—९ प०, स्तेये ( चुराना), लट्—मुष्णाति, लोट्—म० पु० एक० मुषाण, लिट्—मुमोष, लुट्—मोषिता, लृट्—मोषिष्यति, लुङ—अमोषीत्, आ० लिङ—मुष्यात् । सन्—मुमुषिषति, क्त—मुषित, क्त्वा—मुषित्वा, ल्यप्—सम्मुष्य, तुम्—मोषितुम् ।

**मुस्**—४ प०, खण्डने ( फाड़ना, टुकड़े करना), लट्—मुस्यति, लिट्—मुमोस ।

**मुस्त्**—१० उ०, संघाते ( ढेर लगाना, इकट्ठा करना), लट्—मुस्तयति, —ते, लिट्—मुस्तयांचकार-चक्रे, लुट्—मुस्तयिता, लुङ—अमुमुस्तत्—त, आ० लिङ—मुस्त्यात्, मुस्तयिषीष्ट ।

**मुह्**—४ प०, वैचित्यै ( मूर्च्छित होना, चक्कर खाना, गिरना, त्रुटि करना, मूर्ख होना), लट्—मुह्यति, लिट्—मुमोह, लुट्—मोहिता, मोग्धा, मोढा, लृट्—मोहिष्यति, मोक्ष्यति, लृङ—अमोहिष्यत्—अमोक्ष्यत्, लुङ—अमुहत्, आ० लिङ—मुह्यात् । सन्—मुमुहिषति, मुमोहिषति, मुमुक्षति, कर्म०—लट्—मुह्यते, लुङ—अमोहि, णिच्—लट्—मोहयति-ते, लुङ—अमूमुहत्—त, क्त—मुग्ध—मूढ, क्त्वा—मोहित्वा, मुग्ध्वा, मूढ्वा, ल्यप्—सम्मुह्य, तुम्—मोहितुम्, मोग्धुम्, मोढुम् ।

**मू**—१ आ०, बन्धने (बाँधना), लट्—मवते, लिट्—मुमुवे, लृट्—मविष्यते, लुङ—अमविष्ट ।

**मूल्**—१ प०, प्रतिष्ठायाम् (दृढ़ होना), लट्—मूलति, लिट्—मुमूल, लुट्—मूलिता, लुङ—अमूलीत् । सन्—मुमूलिषते, णिच्—लट्—मूलयति-ते, लुङ—अमूमुलत्—त ।

**मूल्**—१० उ०, रोपणे (पेड़ लगाना, अंकुरित होना), लट्—मूलयति—ते, लिट्—मूलयांचकार-चक्रे, लुट्—मूलयिता, लुङ—अमूमुलत्—त, सन्—मुमूलयिषति-ते, क्त—मूलित ।

**मूष्**—१ प०, स्तेये (चुराना), लट्—मूषति, लिट्—मुमूष, लुङ—अमूषीत् । सन्—मुमूषिषति, णिच्—लट्—मूषयति-ते, लुङ—अमुमूषत्—त, क्त—मूषित ।

**मृ**—६ आ०[1], प्राणत्यागे (मरना, नष्ट होना), लट्—म्रियते, लिट्—ममार, लुट्—मर्ता, लृट्—मरिष्यति, लुङ—अमृत, आ० लिङ—मृषीष्ट। सन्—मुमूर्षति, कर्म० लट्—म्रियते, णिच्—लट्—मारयति-ते, लुङ—अमीमरत्—त, क्त—मृत, तुम्—मर्तुम्, क्त्वा—मृत्वा।

**मृक्ष्**—१ प०, संघाते (इकट्ठा करना), लट्—मृक्षति, लिट्—ममर्क्ष, लुङ—अमृक्षीत्।

**मृग्**—४ प०, अन्वेषणे (ढूँढ़ना, शिकार खेलना, परीक्षा करना, माँगना), लट्—मृग्यति, लिट्—ममर्ग, लुट्—मर्गिता, लृट्—मर्गिष्यति, लुङ—अमर्गीत्, क्त—मृगित।

**मृग्**—१० आ०, अन्वेषणे (ढूँढ़ना आदि), लट्—मृगयते, लिट्—मृगयांचक्रे, लुट्—मृगयिता, लृट्—मृगयिष्यते, लुङ—अममृगत, आ० लिङ—मृगयिषीष्ट। सन्—मिमृगयिषते, कर्म० लट्—मृग्यते, लुङ—अमर्गि।

**मृज्**—१ प०, शौचालङ्कारयोः (सफाई करना, आदि), लट्—मार्जति, लिट्—ममार्ज, (नीचे की मृज् धातु देखो)।

**मृज्**—२ प०, शुद्धौ (स्वच्छ करना, शासन करना, घोड़ा आदि ले जाना, सजाना), लट्—मार्ष्टि, लिट्—ममार्ज, लुट्—मार्जिता, मार्ष्टा, लृट्—मार्जिष्यति, मार्क्ष्यति, लृङ—अमार्जिष्यत्—अमार्क्ष्यत्, लुङ—अमार्जीत्—अमार्क्षीत्, आ० लिङ—मृज्यात्। सन्—मिमृक्षति, मिमार्जिषति, कर्म०—लट्—मृज्यते, लुङ—अमार्जि, णिच्—लट्—मार्जयति-ते, लुङ—अममार्जत्—त, अमीमृजत्—त, क्त—मृष्ट, मार्जित।

**मृज्**—१० उ०, शौचालङ्करयोः (स्वच्छ करना, आदि), लट्—मार्जयति-ते, लिट्—मार्जयांचकार-चक्रे, लुट्—मार्जयिता, लृट्—मार्जयिष्यति-ते, लुङ—अममार्जत्—त, अमीमृजत्—त, कर्म० लट्—मार्ज्यते, लुङ—अमार्जि।

**मृड्**—६ और ९ प०, सुखने (दया करना, क्षमा करना, प्रसन्न होना), लट्—मृडति, मृड्नाति, लिट्—ममर्ड, लुट्—मर्डिता, लुङ—अमर्डीत्।

**मृण्**—६ प० हिंसायाम् (मारना, नष्ट करना), लट्—मृणति, लिट्—ममर्ण, लुङ—अमर्णीत्।

**मृद्**—९ प०, क्षोदे (दबाना, मारना, रगड़ना), लट्—मृद्नाति, लिट्—ममर्द, लुट्—मर्दिता, लृट्—मर्दिष्यति, लृङ—अमर्दिष्यत्, लुङ—अमर्दीत्। कर्म०—लट्—मृद्यते, लुङ—अमर्दि, णिच्०—लट्—मर्दयति-ते, लुङ—अमीमृदत्—त, अममर्दत्—त। सन्—मिमर्दिषति, क्त—मृदित।

**मृध्**—१ उ०, उन्दने हिंसाया च (गीला होना, मारना, वेद में इसका मारना अर्थ है, अनादर करना), लट्—मर्धति-ते, लिट्—ममर्ध, ममृधे, लुङ—अमर्धीत्—अमर्धिष्ट, क्त्वा—मर्धित्वा, मृद्ध्वा।

---

**१. मृ धातु इन स्थानों पर परस्मैपदी है—लिट्, लुट्, लृट्, लृङ और सन्।**

**मृश्**—६ प०, आमर्शने (छूना, हिलाना, विचार करना), लट्—मृशति, लिट्—ममर्श, लुट्—मर्ष्टा, म्रष्टा, ऌट्—मर्क्ष्यति—म्रक्ष्यति, लुङ—अमार्क्षीत्, अम्राक्षीत्, अमृक्षत् । सन्—मिमृक्षति, कर्म० लट्—मृश्यते, लुङ—अमर्शि, णिच्—लट्—मर्शयति-ते, लुङ—अमीमृशत्—त, अममर्शत्—त, क्त—मृष्ट, क्त्वा—मृष्ट्वा ।

**मृष्**—१ प०, सेचने (सींचना, सहन करना), लट्—मर्षति, लिट्—ममर्ष, लट्—मर्षिता, लुङ—अमर्षीत्, णिच्-लट्—मर्षयति-ते, लुङ—अममर्षत्—त, अमीमृषत्—त ।

**मृष्**—१ उ०, सहने (सहन करना, सींचना), लट्—मर्षति, ( शेष रूप नीचे की धातु के तुल्य) ।

**मृष्**—४ उ०, तितिक्षायाम् (दुःख सहना, क्षमा करना), लट्—मृष्यति-ते, लिट्—ममर्ष, ममृषे, लुट्—मर्षिता, ऌट्—मर्षिष्यति-ते, लुङ—अमर्षीत्—अमर्षिष्ट । सन्—मिमर्षिषति, कर्म० लट्—मृष्यते, णिच्—लट्—मर्षयति-ते, क्त्वा—मर्षित्वा, मृषित्वा ।

**मृष्**—१० उ०, (दुःख सहना, आदि), लट्—मर्षयति-ते, लिट्—मर्षयांचकार-चक्रे, लुङ—अमीमृषत्—त, अममर्षत्—त ।

**मॄ**—९ प०, हिंसायाम् (मारना, हानि पहुँचाना), लट्—मृणाति, लिट्—ममार, लुट्—मरिता, मरीता, ऌट्—मरिष्यति, मरीष्यति, लुङ—अमारीत् । सन्—मिमरिषति, मिमरीषति, मुमूर्षति ।

**मे**—१ आ०, प्रणिदाने (अदल-बदल करना), लट्—मयते, लिट्—ममे, लुट्—माता, ऌट्—मास्यते, लुङ—अमास्त, आ० लिङ—मासीष्ट । सन्—मित्सते, णिच्—लट्—मापयति-ते, लुङ—अमीमपत्—त, कर्म० लट्—मीयते, लुङ—अमायि ।

**मेट्**-मेड्—१ प०, (पागल होना), लट्—मेटति, मेडति ।

**मेथ्**—१ उ०, मेधाहिंसनयोः (जानना, दुःख देना), लट्—मेथति-ते, लिट्—मिमेथ—थे, लुट्—मेथिता, लुङ—अमेथिष्ट ।

**मेद्**-मेध्—१ उ०, संगमे (मिलना), पूर्ववत् ।

**मेप्**—१ आ०, गतौ (जाना, हिलना), लट्—मेपते, लिट्—मिमेपे, लुङ—अमेपिष्ट ।

**मेव्**—१ आ०, सेवने (सेवा करना, पूजा करना), लट्—मेवते ।

**मोक्ष्**—१ प०, १० उ०, (मुक्त करना, छोड़ना), लट्—मोक्षति, मोक्षयति-ते, लिट्—मुमोक्ष, मोक्षयांचकार-चक्रे ।

**म्ना**—१ प०, अभ्यासे, (मन में दुहराना, पढ़ना, याद करना, वेद में प्रशंसा करना अर्थ है), लट्—मनति, लिट्—मम्नौ, लुट्—म्नाता, ऌट्—म्नास्यति, लुङ—अम्नासीत्, आ० लिङ—म्नायात्—म्नेयात् । सन्—मिम्नासति, णिच्—लट्—म्नापयति-ते, लुङ—अमिम्नपत्—त, कर्म० लट्—म्नायते, लुङ—अम्नायि, क्त—म्नात ।

**म्रक्ष्**––१ प०, संघाते (इकट्ठा करना, चोट मारना), लट्–म्रक्षति, लिट्–मम्रक्ष, लुट्–म्रक्षिता, लुङ–अम्राक्षीत् ।

**म्रक्ष्**––१० उ०, संयोजने स्नेहने म्लेच्छने च (ढेर लगाना, मिलाना, चिकनाना, अस्पष्ट बोलना), लट्–म्रक्षयति-ते, लिट्–म्रक्षयांचकार–चक्रे, लुट्–म्रक्षयिता, लुङ–अमम्रक्षत्–त, आ० लिङ–म्रक्ष्यात्–म्रक्षयिषीष्ट ।

**म्रद्**––१ आ०, मर्दने (रगड़ना, पीसना), लट्–म्रदते, लिट्–मम्रदे, लृट्–म्रदिष्यते, लुङ–अम्रदिष्ट । सन्–मिम्रदिषते ।

**म्रुच्**––१ प० (जाना), लट्–म्रोचति, लिट्–मुम्रोच, लुङ–अम्रुचत्, अम्रोचोत् । सन्–मुम्रुचिषति, मुम्रोचिषति । क्त्वा–म्रोचित्वा, म्रुचित्वा ।

**म्रुञ्च्**––१ प० (जाना), लट्–म्रुञ्चति, लिट्–मुम्रुञ्च, लृट्–मुञ्चिष्यति, लुङ–अम्रुञ्चोत् । सन्–मुम्रुञ्चिषति, क्त–म्रुक्त, क्त्वा–म्रुञ्चित्वा, म्रुक्त्वा ।

**म्रेट्** (म्रेड्)–१ प०, (पागल होना), लट्–म्रटति–म्रेडति ।

**म्लक्ष्**––१० उ० (काटना, पृथक् करना), लट्–म्लक्षयति-ते, लिट्–म्लक्षयांचकार-चक्रे, लुट्–म्लक्षयिता, लुङ–अमम्लक्षत्–त ।

**म्लुच्**––१ प० (जाना), लट्–म्लोचति, लिट्–मुम्लोच, लुट्–म्लोचिता, लृट्–म्लोचिष्यति, लुङ–अम्लुचत्–अम्लोचीत् ।

**म्लुञ्च्**––१ प० (जाना), लट्–म्लुञ्चति, लिट्–मुम्लुञ्च ।

**म्लेच्छ्**––१ प०, १० उ०, अव्यक्ते शब्दे (अस्फुटे अपशब्दे च), (अस्पष्ट बोलना या जंगली की तरह बोलना), लट्–म्लेच्छति–ते लिट्–मिम्लेच्छ, म्लेच्छयांचकार–चक्रे, लुङ–अम्लेच्छीत्, अमिम्लेच्छत्–त । सन्–मिम्लेच्छिषति, मिम्लेच्छयिषति–ते, क्त–म्लिष्ट, म्लेच्छित ।

**म्लेट्**, म्लेड्––१ प०, उन्मादे (पागल होना), लट्–म्लेटति, म्लेडति, अम्लेटीत्–अम्लेडीत् ।

**म्लेव्**––१ आ०, सेवने (सेवा करना, पूजा करना), लट्–म्लेवते, लिट्–मिम्लेवे, लृट्–म्लेविष्यते, लुङ–अम्लेविष्ट ।

**म्लै**––१ प०, हर्षक्षये (मुरझाना, खिन्न होना, दुःखित होना), लट्–म्लायति, लिट्–मम्लौ, लुट्–म्लाता, लृट्–म्लास्यति, लुङ–अम्लासीत्, आ० लिङ–म्लायात्–म्लेयात् । णिच्–लट्–म्लापयति-ते, लुङ–अमिम्लपत्–त, सन्–मिम्लासति, कर्म० लट्–म्लायते, लुङ–अम्लायि, क्त–म्लान ।

**य**

**यक्ष्**––१ प० (हिलाना, हिलना), लट्–यक्षति, लिट्–ययक्ष, लुट्–यक्षिता, लुङ–अयक्षीत् ।

**यक्ष्**––१० आ०, पूजायाम् (आदर करना, पूजा करना), लट्–यक्षयते, लिट्–यक्षयांचक्रे, लुट्–यक्षयिता, लुङ–अययक्षत, क्त–यक्षित ।

**यज्**—१ उ०, देवपूजासंगतिकरणयजनदानेषु ( यज्ञ करना, आहुति डालना, देना, संगति करना), लट्—यजति-ते, लिट्—इयाज, ईजे, लुट्—यष्टा, लृट्—यक्ष्यति-ते, लृङ—अयक्ष्यत्—त, लुङ—अयाक्षीत् (द्वि० अयाष्टाम्), अयष्ट, आ० लिङ—इज्यात्—यक्षीष्ट । सन्—यियक्षति-ते, कर्म० लट्—इज्यते, लुङ—अयाजि, णिच्—लट्—याजयति-ते, लुङ—अयीयजत्—त, क्त—इष्ट, क्त्वा—इष्ट्वा, ल्यप्—सनिज्य, तुम्—यष्टुम् ।

**यत्**—१ आ०, प्रयत्ने ( यत्न करना, परिश्रम करना), लट्—यतते, लिट्—येते, लुट्—यतिता, लृट्—यतिष्यते, लुङ—अयतिष्ट, आ० लिङ—यतिषीष्ट । सन्—यियतिषते, कर्म० लट्—यत्यते, लुङ—अयाति, णिच्—लट्—यातयति—ते, लुङ—अयीयतत्—त, क्त—यत, क्त्वा—यतित्वा, ल्यप्—आयत्य ।

**यत्**—१० उ०, निकारोपस्कारयोः (चोट पहुँचाना, उत्साहित करना), लट्—यातयति-ते, लृट्—यातयिष्यति-ते, लुङ—अयीयतत्—त । सन्—यियातयिषति-ते ।

**यन्त्र्**—१० उ०, संकोचे (रुकना आदि), लट्—यन्त्रयति-ते, लिट्—यन्त्रयांचकार-चक्रे, लुट्—यन्त्रयिता, लृट्—यन्त्रयिष्यति-ते, लुङ—अययन्त्रत्-त । सन्—यियन्त्रयिषति—ते, कर्म०—लट्—यन्त्र्यते, क्त—यन्त्रित, क्त्वा—यन्त्रयित्वा ।

**यभ्**—१ प०, मैथुने (संभोग करना), लट्—यभति, लिट्—ययाभ, लुट्—यब्धा, लृट्—यप्स्यति, लृङ—अयप्स्यत्, लुङ—अयाप्सीत् । णिच्—लट्—याभयति—ते, लुङ—अयीयभत्—त, सन्—यियप्सते ।

**यम्**—१ प०, उपरमे (रोकना, देना, उठाना, जाना, दिखाना),लट्—यच्छति, लिट्—ययाम, लुट्—यन्ता, लृट्—यंस्यति, लृङ—अयंस्यत्, लुङ—असयंसीत्, आ० लिङ—यम्यात्, सन्—यियंसति, णिच्—लट्—यामयति-ते, नियमयति-ते, लुङ—अयीयमत्—त, कर्म० लट्—यम्यते, क्त—यत, क्त्वा—यत्वा ।

**यम्**—१० उ०, परिवेषणे (घेरना), लट्—यमयति-ते, लुङ—अयीयमत्—त ।

**यस्**—४ प०, प्रयतने (प्रयत्न करना, उद्यम करना), लट्—यसति[1]—यस्यति, लिट्—ययास, लुट्—यसिता, लृट्—यसिष्यति, लुङ—अयसत् । णिच्—लट्—यासयति-ते, (आ+यस्, आत्मने० है ), क्त—यस्त, क्त्वा—यसित्वा, यस्त्वा । तुम्—यसितुम् ।

**या**—२ प०, प्रापणे (प्रापणं गतिः) ( जाना, आक्रमण करना, बीतना), लट्—याति, लिट्—ययौ, लुट्—याता, लृट्—यास्यति, लुङ—अयासीत्, आ० लिङ—

---

१. सम् के अतिरिक्त कोई उपसर्ग पहले नहीं होगा तो यस् धातु विकल्प से भ्वादि० भी है । संयस्यति, संयसति ।

यायात् । सन्—यियासति, कर्म० लट्—यापयति-ते, लुङ—अयीयपत्—त, क्त—यात, क्त्वा—यात्वा, प्रयाय, तुम—यातुम् ।

**याच्**—१ उ०, याञ्चायाम् (माँगना, विवाहार्थ माँगना), लट्—याचति-ते, लिट्, ययाच—ययाचे, लुट्—याचिता, लृट्—याचिष्यति-ते, लुङ—अयाचीत्—अयाचिष्ट, आ० लिङ—याच्यात्—याचिषीष्ट । णिच्—लट्—याचयति-ते, लुङ—अययाचत्—त, क्त—याचित, क्त्वा—याचित्वा, तुम्—याचितुम् ।

**यु**—२ प०, मिश्रणेऽमिश्रणे च (मिलना, पृथक् होना), लट्—यौति, लिट्—युयाव, लुट्—यविता, लृट्—यविष्यति, लुङ—अयवीत्, आ० लिङ—यूयात् । सन्—युयूषति—यियविषति, कर्म० लट्—यूयते, लुङ—अयावि, णिच्—लट्—यावयति-ते, लुङ—अयीयवत्—त, क्त—युत ।

**यु**—९ उ०, बन्धने (मिलना, मिलाना), लट्—युनाति, युनीते, लिट्—युयाव, युयुवे, लुट्—योता, लृट्—योष्यति-ते, लुङ—अयौषीत्, अयोष्ट, आ० लिङ—यूयात्—योषीष्ट । सन्—युयूषति-ते, क्त—युत ।

**यु**—१० आ०, जुगुप्सायाम् (निन्दा करना), लट्—यावयते, लिट्—यावयांचक्रे, लुट्—यावयिता, लुङ—अयीयवत । सन्—यियावयिषते ।

**युज्**—१ प०, संयमने (मिलाना आदि), लट्—योजति, लिट्—युयोज, लुट्—योक्ता, लुङ—अयौक्षीत् । सन्—युयुक्षति ।

**युज्**—४ आ०, समाधौ (ध्यान लगाना), लट्—युज्यते, लिट्—युयुजे, लुट्—योक्ता, लृट्—योक्ष्यते, लृङ—अयोक्ष्यत, लुङ—अयुक्त, आ० लिङ—युक्षीष्ट । सन्—युयुक्षते, णिच्—लट्—योजयति-ते, लुङ—अयूयुजत्—त ।

**युज्**—७ उ०, योगे (मिलाना, लगाना, देना, तैयार करना आदि), लट्—युनक्ति, युङ्क्ते, लिट्—युयोज, युयुजे, लुट्—योक्ता, लृट्—योक्ष्यति—ते, लुङ—अयुजत्, अयौक्षीत्, अयुक्त, आ० लिङ—युज्यात्, युक्षीष्ट । कर्म० लट्—युज्यते, णिच्—लट्—योजयति-ते, लुङ—अयूयुजत्—त, सन्—युयुक्षति-ते, क्त—युक्त ।

**युज्**—१० उ०, संयमने (मिलाना आदि), लट्—योजयति-ते, लिट्—योजयाञ्चकार-चक्रे, लुट्—योजयिता, लृट्—योजयिष्यति-ते, लुङ—अयूयुजत्—त । सन्—युयोजयिति—ते ।

**युज्**—१० आ० (निन्दा करना), लट्—योजयते ।

**युत्**—१ आ०, भासने (चमकना), लट्—योतते, लिट्—युयुते, लृट्—योतिष्यते, लुङ—अयोतिष्ट ।

**युध्**—४ आ०, संप्रहारे (लड़ना, युद्ध में जीतना), लट्—युध्यते, लिट्—युयुधे, लुट्—योद्धा, लृट्—योत्स्यते, लृङ—अयोत्स्यत, लुङ—अयुद्ध, आ० लिङ—युत्सीष्ट । कर्म० लट्—युध्यते, लुङ—अयोधि, णिच्—लट्—योधयति—ते, लुङ—अयूयुधत्—त, सन्—युयुत्सते, क्त—युद्ध ।

**युप्**—४ प०, विमोहने (पोंछना, कष्ट देना, सरल बनाना), लट्—युप्यति, लिट्—युयोप, लुट्—योपिता, लुङ—अयुपत् ।

**यूष्**—१ प०, हिंसायाम् (मारना, चोट पहुँचाना), लट्—यूषति, लिट्—युयूष, लुङ—अयूषीत् ।

**येष्**—१ आ०, प्रयत्ने (प्रयत्न करना), लट्—येषते, लिट्—यियेषे, लुङ—अयेषिष्ट ।

**यौट्, यौड्**—१ प० (मिला देना), लट्—यौटति—यौडति, लिट्—युयौट, युयौड, लुङ—अयौटीत् अयौडीत् ।

**र**

**रंह्**—१ प०, गतौ (जाना, बहना), लट्—रंहति, लिट्—ररंह, लुट्—रंहिता, लुङ—अरंहीत् । णिच्—लट्—रंहयति-ते, लुङ—अररंहत्—त । सन्—रिरंहिषति ।

**रक्**—१० उ०, आस्वादने प्राप्तौ च (स्वाद लेना, पाना), लट्—राकयति—ते, लुट्—राकयिता, लिट्—राकयांचकार-चक्रे, लुट्—अरीरकत्—त । ( रग्, रघ् भी इसी प्रकार चलेंगे) ।

**रक्ष्**—१ प०, पालने (रक्षा करना, बचाना), लट्—रक्षति, लिट्—ररक्ष, लुट्—रक्षिता, लृट्—रक्षिष्यति, लुङ—अरक्षीत्, आ० लिङ—रक्ष्यात् । कर्म० लट्—रक्ष्यते, णिच्—लट्—रक्षयति-ते, लुङ—अररक्षत्—त । सन्—रिरक्षिषति, क्त—रक्षित ।

**रख्**—१ प०, (जाना, हिलना), लट्—रखति, लिट्—रराख, लुङ—अरखीत्, अराखीत् ।

**रग्**—१ प०, शंकायाम् ( संदेह करना), लट्—रगति, लिट्—रराग ।

**रङ्ग्**—१ प०, (जाना, हिलना), लट्—रङ्गति, लिट्—ररङ्ग, लुङ—अरङ्गीत् ।

**रङ्घ्**—१ उ० (तेज चलना), लट्—रङ्घति-ते, लिट्—ररंघ, ररङ्घे, लुट्—रंघिता, लुङ—अरंघीत्—अरंघिष्ट ।

**रंघ्**—१० उ० (चमकना, बोलना), लट्—रंघयति-ते, लिट्—रंघयांचकार—चक्रे, लुङ—अररंघत्—त, अरंघीत् ।

**रच्**—१० उ०, प्रतियत्ने (बनाना, रचना करना, लिखना, सजाना, निर्देश देना), लट्—रचयति—ते, लिट्—रचयांचकार-चक्रे, लुट्—रचयिता, लृट्—रचयिष्यति-ते, लुङ—अररचत्—त । सन्—रिरचयिषति-ते, क्त—रचित, क्त्वा—रचयित्वा ।

**रञ्ज्**—१ और ४ उ०, रागे (रंगा जाना, रंगना, प्रसन्न होना, अनुरक्त होना, प्रेम करना), लट्—रजति-ते, रज्यति-ते, लिट्—ररञ्ज—ररञ्जे । लुट्—रङ्क्ता, लृट्—रङ्क्ष्यति-ते, लृङ—अरङ्क्ष्यत्—त, लुङ—अराङ्क्षीत्, अरङ्क्त, आ० लिङ—रज्यात्—रङ्क्षीष्ट । सन्—रिरंक्षति—ते, णिच्—लट्—रञ्जयति-

ते, लुङ–अररञ्जत्–त, (मृगों का शिकार करना) लट्–रञ्जयति–ते, लुङ–अरीरञ्जत्–त, कर्म० लट्–रज्यते, क्त–रक्त, शतृ–शानच्–(१) रजत्, रजमान (४) रज्यत्, रज्यमान, क्त्वा–रङ्क्त्वा, रक्त्वा ।

**रट्**––१ प०, परिभाषणे (चिल्लाना, रटना, पुकारना, आनन्द से पुकारना), लट्–रटति, लिट्–रराट, लुट्–रटिता, लुङ–अरटीत्, अराटीत्, क्त–रटित ।

**रठ्**––१ प० (बोलना), लट्–रठति, लिट्–रराठ ।

**रण्**––१ प०, शब्दे (शब्द करना, जाना, वेद में आनन्दित होना अर्थ है), लट्–रणति, लिट्–रराण, लुट्–रणिता, लुङ–अरणीत्, अराणीत् । णिच् लट्–रणयति-ते, लुङ–अरीरणत्–त, अरराणत्–त, सन्–रिरणिषति ।

**रद्**––१ प०, विलेखने (खोदना, रगड़ना, फाड़ना), लट्–रदति, लिट्–रराद, लुट्–रदिता, लृट्–रदिष्यति, लुङ–अरदीत्–अरादीत् । सन्–रिरदिषति ।

**रध्**––४ प०, हिंसासंराध्योः (संराद्धिर्निष्पत्तिः) (चोट पहुँचाना, नष्ट-करना, समाप्त करना, पूरा करना, वेद में पूर्ण होना अर्थ है), लट्–रध्यति, लिट्–ररन्ध, लुट्–रधिता, रद्धा, लृट्–रधिष्यति, रत्स्यति, लृङ–अरधिष्यत्, अरत्स्यत्, लुङ–अरधत् । कर्म० लट्–रध्यते, लुङ–अरन्धि, णिच्-लट्–रन्धयति-ते, लुङ–अररन्धत्–त । सन्–रिरधिषति, रिरत्सति, क्त–रद्ध ।

**रप्**––१ प०, व्यक्तायां वाचि (स्पष्ट बोलना, वेद में प्रशंसा करना अर्थ है), लट्–रपति, लिट्–रराप, लुङ–अरपीत्–अरापीत् । सन्–रिरपिषति ।

**रफ्**––१ प०, हिंसायां गतौ च (मारना, जाना), लट्–रफति, लिट्–रराफ ।

**रभ्**––१ आ०, राभस्ये (प्रारम्भ करना, चिपकना, इच्छा करना, शीघ्रता से काम करना), लट्–रभते, लिट्–रेभे, लुट्–रब्धा, लृट्–रप्स्यते, लृङ–अरप्स्यत, लुङ–अरब्ध, आ० लिङ–रप्सीष्ट । सन्–रिप्सते, णिच्–लट्–रम्भयति-ते, लुङ–अररम्भत्–त, कर्म० लट्–रभ्यते, लुङ–अरम्भि, क्त–रब्ध ।

**रम्**[1]––१ आ०, (खेलना, क्रीडा करना, विश्राम करना), लट्–रमते, लिट्–रेमे, लुट्–रन्ता, लृट्–रंस्यते, लृङ–अरंस्यत, लुङ–अरंस्त, (वि+रम्), व्यरंसीत्, आ० लिङ–रंसीष्ट । सन्–रिरंसते, कर्म० लट्–रम्यते, णिच्–लट्–रमयति-ते, लुङ–अरीरमत्–त, क्त–रत, क्त्वा–रत्वा, ल्यप्–आरम्य, आरत्य ।

**रम्भ्**––१ प०, शब्दे ( शब्द करना), लट्–रम्भते, लिट्–ररम्भे, लृट्–रम्भिष्यते, लुङ–अरम्भिष्ट, कर्म० रम्भ्यते ।

**रय्**––१ आ० (जाना, हिलना), लट्–रयते, लिट्–रेये, लुट्–रयिता, लुङ–अरयिष्ट, क्त–रयित ।

---

**१. वि, आ, परि और उप उपसर्ग पहले होंगे तो यह परस्मैपदी है ।**

**रस्**—१ प०, शब्दे (गरजना, हल्का करना, गाना, वेद में प्रशंसा करना अर्थ है), लट्–रसति, लिट्–ररास, लुट्–रसिता, लुङ–अरसीत्–अरासीत्, सन्–रिरसिषति ।

**रस्**—१० उ०, आस्वादनस्नेहनयोः (स्वाद लेना, अनुभव करना), लट्–रसयति-ते, लिट्–रसयांचकार–चक्रे, लुङ–अररसत्–त ।

**रह्**—१ प०, त्यागे (छोड़ना, त्याग करना), लट्–रहति, लिट्–रराह, लुट्–रहिता, ऌट्–रहिष्यति, लुङ–अरहीत् । सन्–रिरहिसति ।

**रह्**—१० उ०, त्यागे (छोड़ना, त्याग करना), लट्–रहयति–ते, लिट्–रहयांचकार–चक्रे, लुट्–रहयिता, ऌट्–रहयिष्यति-ते, लुङ–अररहत्–त, क्त–रहित, क्त्वा–रहयित्वा ।

**रा**—२ प०, दाने (देना), लट्–राति, लिट्–ररौ, लुट्–राता, लुङ–अरासीत् । णिच् लट्–रापयति-ते, लुङ–अरीरपत्–त । सन्–रिरासति ।

**राख्**—१ प०, शोषणालमर्थयोः (सूखना, सजाना, समर्थ होना, पर्याप्त होना), लट्–राखति, लिट्–रराख, लुङ–अराखीत् ।

**राघ्**—१ आ०, सामर्थ्ये (समर्थ हाना), लट्–राघते, लिट्–रराघे, ऌट्–राघिष्यते, लुङ–अराघिष्ट ।

**राज्**—१ उ०, दीप्तौ (चमकना, प्रकट होना, निर्देश देना, राजा होना), लट्–राजति–ते, लिट्–रराज, रराजे, रेजे, लुट्–राजिता, ऌट्–राजिष्यति-ते, लुङ–अराजीत्, अराजिष्ट, आ० लिङ–राज्यात्, राजिषीष्ट । सन्–रिराजिषति-ते, क्त–राजित, क्त्वा–राजित्वा, ल्यप्–विराज्य ।

**राध्**—४ प०, वृद्धौ (बढ़ना, समृद्ध होना), लट्–राध्यति, लिट्–रराध, लुट्–राद्धा, ऌट्–रात्स्यति, ऌङ–अरात्स्यत्, आ० लिङ–राध्यात् । लुङ–अरात्सीत्, (द्वि० अराद्धाम्), णिच् लुङ–अरीरधत्–त । सन्–रिरात्सति ।

**राध्**—५ प०, संसिद्धौ हिंसायां च (पूरा करना, मारना, प्रसन्न करना), लट्–राध्नोति, लिट्–रराध, (म० पु० एक० अप+राध्–अपरेधिथ) । सन्–रिरात्सति, (रित्सति, मारना चाहता, है), शतृ–राध्नुवत् ।

**रास्**—१ आ०, शब्दे (चिल्लाना, हल्ला करना, शब्द करना), लट्–रासते, लिट्–ररासे, लुङ–अरासिष्ट, सन्–रिरासिषते ।

**रि**—६ प०, (जाना, हिलना), लट्–रियति, लिट्–रिराय, ऌट्–रेष्यति, लुङ–अरैषीत् ।

**रि**—५ प० (मारना), लट्–रिणोति (वैदिक) । सन्–रिरीषति ।

**रि**—९ उ० (निकालना, बाहर करना, जाना, हिंसा करना, उगलना, वेद में पृथक् करना अर्थ है), लट्–रिणाति, रिणीते ।

**रिख्**—१ प०, गतौ (जाना), लट्–रेखति, लिट्–रिरेख, ऌट्–रेखिष्यति, लुङ–अरेखीत् ।

**रिङ्ख्, रिङ्ग्**——१ प०, गतौ (रेंगना, सरकना, धीरे चलना), लट्—रिङ्खति—रिङ्गति, लिट्—रिरिङ्ख—रिरिङ्ग, लुङ—अरिङ्खीत्—अरिङ्गीत् ।

**रिच्**——७ उ०, विरेचने (खाली करना, छोड़ना, रिक्त करना), लट्—लट्—रिणक्ति—रिङ्क्ते, लिट्—रिरेच—रिरिचे, लुट्—रेक्ता, लृट्—रेक्ष्यति-ते, लृङ—अरेक्ष्यत्—त, लुङ—अरिचत्, अरैक्षीत्, अरिक्त, आ० लिङ—रिच्यात्, रिक्षीष्ट । कर्म० लट्—रिच्यते, लुङ—अरेचि, णिच्-लट्—रेचयति-ते, लुङ—अरीरिचत्—त । सन्—रिरिक्षति—ते, क्त—रिक्त, क्त्वा—रिक्त्वा ।

**रिच्**——१ प०, १० उ०, वियोजनसंपर्चनयोः (पृथक् करना, छोड़ना, मिलकर आना), लट्—रेचति, रेचयति, लिट्—रिरेच, रेचयांचकार, लुङ—अरैक्षीत्, अरीरिचत्—त । सन्—रिरिक्षति, रिरेचयिषति-ते, क्त—रेचित ।

**रिफ्**——६ प०, कत्थनयुद्धनिन्दादानेषु (आत्मप्रशंसा करना, कहना, लड़ना, निन्दा करना, देना), लट्—रिफति, लिट्—रिरेफ, लुट्—रेफिता, लुङ—अरेफीत् । सन्—रिरिफिषति, रिरेफिषति, क्त—रिफित । (रिफ् को रिह् भी लिखा जाता है) ।

**रिभ्**——१ आ०, (कड़कड़ करना, चरचर शब्द करना), लट्—रेभते, लिट्—रिरिभे ।

**रिम्फ्**——६ प० (हिंसा करना, हानि पहुँचाना), लट्—रिम्फति, लिट्—रिरिम्फ, लुट्—रिम्फिता, लुङ—अरिम्फीत् ।

**रिश्**——६ प०, हिंसायाम् (फाड़ना, हानि पहुँचाना), लट्—रिशति, लिट्—रिरेश, लुट्—रेष्टा, लृट्—रेक्ष्यति, लृङ—अरेक्ष्यत्, लुङ—अरिक्षत् । सन्—रिरिक्षति ।

**रिष्**——१ और ४ प०, हिंसायाम् (मारना, नष्ट होना, चोट खाना), लट्—रेषति, रिष्यति, लिट्—रिरेष, लुट्—रेषिता, रेष्टा, लृट्—रेषिष्यति, लुङ—अरेषीत् (भ्वादि०), अरिषत् (दिवादि०), सन्—रिरिषिषति, रिरेषिषति, क्त—रिष्ट ।

**री**——४ आ०, स्रवणे (चूना, बहना), लट्—रीयते, लिट्—रिर्ये, लृट्—रेष्यते, लुङ—अरेष्ट ।

**री**——९ प०, गतिरेषणयोः (जाना, हानि पहुँचाना, रेंकना), लट्—रिणाति, लिट्—रिराय, लृट्—रेष्यति, लुङ—अरैषीत् । सन्—रिरीषति ।

**रीव्**——१ उ० (लेना, ढकना), लट्—रीवति—ते ।

**रु**——१ आ०, गतिरेषणयोः (जाना, चोट पहुँचाना, वेद में टुकड़े करना अर्थ है), लट्—रवते, लिट्—रुरुवे, लुट्—रविता, लुङ—अरविष्ट । णिच्—लट्—रावयति-ते, लुङ—अरीरवत्—त । सन्—रुरूषते ।

**रु**——२ प०, शब्दे (चिल्लाना, हल्ला करना, गूँजना, शब्द करना), लट्—रौति या रवीति, लिट्—रुराव, लुट्—रविता, लृट्—रविष्यति, लुङ—अरावीत्, आ० लिङ—रूयात् । सन्—रुरूषति, कर्म० लट्—रूयते, णिच्—लट्—रावयति-ते, क्त—रुत ।

**रुच्**—१ आ०, दीप्तावभिप्रीतौ च ( चमकना, सुन्दर लगना, अच्छा लगना, किसी मनुष्य से प्रसन्न होना), लट्—रोचते, लिट्—रुरुचे, लुट्—रोचिता, लृट्—रोचिष्यते, लुङ—अरुचत्—अरोचिष्ट । सन्—रुरुचिषते, रुरोचिषते, णिच्-लट्—रोचयते, लुङ—अरूरुचत, क्त—रुचित ।

**रुज्**—६ प०, भङ्गे (टुकड़े टुकड़े करना, दुःख देना, कष्ट देना), लट्—रुजति, लिट्—रुरोज, लुट्—रोक्ता, लृट्—रोक्ष्यति, लुङ—अरौक्षीत् (अरौक्ताम्, द्वि०) । णिच् लट्—रोजयति, लुङ—अरूरुजत्—त, सन्—रुरुक्षति, क्त—रुग्ण, क्त्वा—रुक्त्वा ।

**रुज्**—१० उ०, हिंसायाम् (मारना, हानि पहुँचाना), लट्—रोजयति-ते, लिट्—रोजयांचकार-चक्रे, लुट्—रोजयिता, लुङ—अरूरुजत्—त ।

**रुट्**—१ आ०, प्रतिघाते (चोट मारना), लट्—रोटते, लिट्—रुरुटे, लुङ—अरुटत्—अरोटिष्ट, आ० लिङ—रोटिषीष्ट ।

**रुट्**—१० उ० (विघ्न डालना, रोकना, चमकना, कहना), लट्—रोटयति-ते, लिट्—रोटयांचकार—चक्रे, लुङ—अरूरुटत्—त ।

**रुठ्**—१ प०, उपघाते (चोट मारना), लट्—रोठति, लिट्—रुरोठ, लृट्—रोठिष्यति, लुङ—अरोठीत् ।

**रुठ्**—१० उ०, भाषायां दीप्तौ च (कहना, चमकना), लट्—रोठयति-ते, लिट्—रोठयांचकार-चक्रे, लुङ—अरूरुठत्—त ।

**रुठ्**—१ आ० (रोकना, विरोध करना, दुःख देना, दुःख सहना), लट्—रोठते, लिट्—रुरुठे ।

**रुण्ट्**—१ प०, स्तेये (चुराना), लट्—रुण्टति, लिट्—रुरुण्ट, लुङ—अरुण्टीत् । कर्म० लट्—रुण्ट्यते, लुङ—अरुण्टि ।

**रुण्ठ्**—१ प० (जाना, चुराना, पालतू बनाना, विरोध करना), लट्—रुण्ठति, लिट्—रुरुण्ठ । (यह और पूर्वोक्त धातु एक ही हैं । इसे रुण्ड् भी लिखते हैं) ।

**रुद्**—२ प०, अश्रुविमोचने (रोना, चिल्लाना, चीखना), लट्—रोदिति, लङ—अरोदत्, अरोदीत्, लिट्—रुरोद, लुट्—रोदिता, लुङ—अरुदत्—अरोदीत्, आ० लिङ—रुद्यात् । सन्—रुरुदिषति, कर्म० लट्—रुद्यते, लुङ—अरोदि, णिच्—लट्—रोदयति-ते, लुङ—अरूरुदत्—त, क्त—रुदित ।

**रुध्**—४ आ० (अनु के साथ) कामे (चाहना, आज्ञा मानना), लट्—रुध्यते, लिट्—रुरुधे, लृट्—रोत्स्यते, लुङ—अरुद्ध । सन्—रुरुत्सते ।

**रुध्**—७ उ०, आवरणे (घेरना, रोकना, विरोध करना, दुःख देना, ढकना), लट्—रुणद्धि—रुन्द्धे, लिट्—रुरोध, रुरुधे, लुट्—रोद्धा, लृट्—रोत्स्यति-ते, लुङ—अरुधत्, अरौत्सीत्, अरुद्ध, (द्वि० अरौद्धाम्, अरुत्साताम्), आ० लिङ—रुध्यात्—

रुत्सीष्ट । सन्–रुरुत्सति-ते, कर्म० लट्–रुध्यते, लुङ–अरोधि, णिच्–लट्–रोधयति–ते, लुङ–अरूरुधत्–त, क्त–रुद्ध, तुम्–रोद्धुम् ।

**रुप्**—४ प०, विमोहने (घबड़ाना, दुःख सहना, उल्लंघन करना, विघ्न डालना, वेद में दुःख देना अर्थ है), लट्–रुप्यति, लिट्–रुरोप, लुङ–अरुपत्, णिच्–लट्–रोपयति, लुङ–अरूरुपत् । सन्–रुरुपिषति, रुरोपिषति ।

**रुश्**—६ प०, हिंसायाम् (हानि पहुँचाना, नष्ट करना), लट्–रुशति, लिट्–रुरोश, लुङ–अरुक्षत् । सन्–रुरुक्षति ।

**रुंश्**—१० उ०, १ प०, भाषायां दीप्तौ च (कहना, चमकना), लट्–रुंशयति-ते, रुंशति, लृट्–रुंशयिष्यति, रुंशिष्यति, लुङ–अरुरुंशत्–त, अरुंशीत् ।

**रुष्**—१ प०, हिंसायाम् (मारना, हानि पहुँचाना, रुष्ट होना), लट्–रोषति, लिट्–रुरोष, लुट्–रोषिता, रोष्टा, लृट्–रोषिष्यति, लङ–अरोषीत् । सन्–रुरुषिषति, रुरोषिषति, क्त्वा–रुषित्वा, रोषित्वा, रुष्ट्वा, तुम्–रोषितुम्–रोष्टुम् ।

**रुष्**—४ प० (मारना, हानि पहुँचाना, तंग करना), लट्–रुष्यति, लुङ–अरुषत् । (शेष रूप पूर्ववत्) ।

**रुष्**—१० उ०, रोषे (रुष्ट होना), लट्–रोषयति–ते, लुङ–अरूरुषत्–त ।

**रुह्**—१ प०, बीजजन्मनि प्रादुर्भावे च (उगना, बढ़ना, ऊपर निकलना, पहुँचना), लट्–रोहति, लिट्–रुरोह, लुट्–रोढा, लृट्–रोक्ष्यति, आ० लिङ–रुह्यात्, लुङ–अरुक्षत् । सन्–रुरुक्षति, क्त–रूढ, क्त्वा–रूढ्वा, ल्यप्–आरुह्य, तुम्–रोढुम् ।

**रूक्ष्**—१० उ०, पारूष्ये (रूखा होना, निर्दय होना, वेद में सुखाना अर्थ है), लट्–रूक्षयति-ते, लिट्–रूक्षयांचकार-चक्रे, लुट्–रूक्षयिता, लुङ–अरुरूक्षत्–त ।

**रूप्**—१० उ०, रूपक्रियायाम् (पता लगाना, बनाना, समझाना, लगाना), लट्–रूपयति-ते, लिट्–रूपयांचकार-चक्रे, लुट्–रूपयिता, लुङ–अरुरूपत्–त । सन्–रुरूपयिषति-ते ।

**रूष्**—१ प०, भूषायाम् (सजाना, अलंकृत करना), लट्–रूषति, लिट्–रुरूष, लुट्–रूषिता, लुङ–अरूषीत् । क्त–रूषित ।

**रेक्**—१ आ०, शंकायाम् (शंका करना), लट्–रेकते, लिट्–रिरेके, लृट–रेकिष्यते, लुङ–अरेकिष्ट ।

**रेज्**—१ आ०, (चमकना, हिलाना), लट्–रेजते ।

**रेट्**—१ प०, परिभाषणे (कहना, पूछना), लट्–रेटति, लिट्–रिरेट, लुङ–अरेटीत् ।

**रेप्**––१ आ० (जाना), लट्–रेपते, लृट्–रेपिष्यते, लुङ–अरेपिष्ट ।

**रेभ्**––१ आ०, शब्दे (शब्द करना), लट्–रेभते ।

**रेष्**––१ आ०, अव्यक्ते शब्दे ( अव्यक्त शब्द करना, हिनहिनाना), लट्–रेषते, लिट्–रिरेषे, लुट्–रेषिता, लुङ–अरेषिष्ट, क्त–रेषित । (रेष् को रेव् भी लिखा जाता है) ।

**रै**––१ प० (शब्द करना, भोंकना), लट्–रायति, लिट्–ररौ, लुङ–अरासीत् ।

**रोड्**––१ प०, अनादरे उन्मादे च (अनादर करना), लट्–रोडति, लिट्–रुरोड, लुङ–अरोडीत् ।

**रोट्** (रोड्)––१ प० (अनादर करना), लट्–रोटति, रोडति ।

**ल**

**लक्**––१० उ०, आस्वादने प्राप्तौ च (स्वाद लेना, पाना), लट्–लाकयति-ते, लुङ–अलीलकत्–त ।

**लक्ष्**––१ आ०, आलोचने (देखना), लट्–लक्षते, लिट्–ललक्षे, लुट्–लक्षिता, लुङ–अलक्षिष्ट, आ० लिङ–लक्षिषीष्ट ।

**लक्ष्**––१० उ०, दर्शनाङ्कनयोः (देखना, लक्षण बताना, मानना), लट्–लक्षयति–ते, लिट्–लक्षयांचकार-चक्रे, लुट्–लक्षयिता, लुङ–अललक्षत्–त, क्त–लक्षित, सन्–लिलक्षयिषति–ते ।

**लख्, लङ्ख्**––१ प०, (जाना), लट्–लखति, लङ्खति ।

**लग्**––१ प०, सङ्गे (लगना, छूना, मिलना, पीछे लगना), लट्–लगति, लिट्–ललाग, लुट्–लगिता, लुङ–अलगीत्, सन्–लिलगिषति, क्त–लग्न ।

**लग्**––१० उ०, आस्वादने प्राप्तौ च (चखना, पाना), लट्–लागयति-ते, लिट्–लागयांचकार-चक्रे, लुट्–लागयिता, लुङ–अलीलगत् ।

**लङ्ग्**––१ प० (जाना, लँगड़ाना), लट्–लङ्गति ।

**लंघ्**––१ प०, शोषणे (सूखना), (भाषायां दीप्तौ सीमातिक्रमे च) (कहना, चमकना, सीमा का उल्लंघन करना), १ आ०, गत्यर्थे भोजननिवृत्तौ च (जाना, उपवास या लंघन करना), लट्–लंघति-ते, लिट्–ललंघ, ललङ्घे, लुट्–लंघिता, लुङ–अलंघीत्–अलंघिष्ट । क्त–लंघित ।

**लंघ्**––१० उ० (बोलना, चमकना), लट्–लंघयति-ते, लृट्–लंघयिष्यति-ते, लुङ–अललंघत्–त, आ० लिङ–लङ्घ्यात्, लंघयिषीष्ट । सन्–लिलंघयिषति-ते ।

**लच्छ्**––१ प०, लक्षणे (चिह्न लगाना), लट्–लच्छति, लिट्––ललच्छ ।

**लज्**––१ प०, भर्जने (भूनना), लट्–लजति, लिट्–ललाज, लुट्–लजिता, लुङ–अलजीत्, अलाजीत् । (लज् को लज्ज् भी लिखते हैं) ।

**लज्**—६ आ०, व्रीडने (लज्जित होना), लट्—लजते—लेजे, लुट्—लजिता, लुङ—अलजिष्ट । सन्—लिलजिषते, क्त—लग्न ।

**लज्**—१० उ०, प्रकाशने (प्रकट होना) लट्—लजयति-ते, (अपवारणे—छिपाना), लाजयति-ते, लिट्—लजयांचकार-चक्रे, लाजयांचकार-चक्रे, लुट्—लजयिता, लाजयिता, लुङ—अललजत्—त, अलीलजत्—त ।

**लञ्ज्**—१ प०, हिंसाबलादाननिकेतनेषु भाषायां दीप्तौ च (मारना, शक्तिशाली होना, लेना, रहना, कहना, चमकना), लट्—लञ्जति, लिट्—ललञ्ज, लुङ—अलञ्जीत् ।

**लञ्ज्**—१० उ० ( पूर्वोक्त धातु के तुल्य अर्थ हैं, देना अर्थ भी है), लट्—लञ्जयति-ते, लिट्—लञ्जयांचकार-चक्रे, लुट्—लञ्जयिता ।

**लट्**—१ प०, बाल्ये (बच्चे की तरह काम करना, चिल्लाना), लट्—लटति, लिट्—ललाट, लुङ—अलटीत् ।

**लड्**—१ प०, विलासे (खेलना, क्रीडा करना), लट्—लडति, लुङ—अलडीत्, अलाडीत् ।

**लड्**—१० उ०, उपसेवायाम् (लाड़ या प्यार करना), लट्—लाडयति-ते, लिट्—लाडयांचकार-चक्रे, लुङ—अलीलडत्—त ।

**लप्**—१ प०, व्यक्तायां वाचि (बोलना, रोना, शोक प्रकट करना, कानाफूँसी करना), लट्—लपति, लिट्—ललाप, लुट्—लपिता, लुङ—अलपीत्, अलापीत् । णिच्—लट्—लापयति-ते, लुङ—अलीलपत्—त । सन्—लिलपिषति ।

**लभ्**—१ आ०, प्राप्तौ ( पाना, लेना, रखना, समर्थ होना आदि ), लट्—लभते, लिट्—लेभे, लुट्—लब्धा, लृट्—लप्स्यते, लुङ—अलब्ध । सन्—लिप्सते, णिच्—लट्—लम्भयति—ते, लुङ—अललम्भत्—त, क्त—लब्ध ।

**लम्ब्**—१ आ०, शब्दे अवस्रंसने च (शब्द करना, लटकाना, लटकना, डूबना आदि) लट्—लम्बते, लिट्—ललम्बे, लुट्—लम्बिता, लुङ—अलम्बिष्ट । कर्म० लट्—लम्ब्यते, लुङ—अलम्बि, णिच्—लट्—लम्बयति-ते, लुङ—अललम्बत्—त । सन्—लिलम्बिषते, क्त—लम्बित ।

**लय्**—१ आ० (जाना, हिलना), लट्—लयते, लिट्—लेये, लुट्—लयिता, लुङ—अलयिष्ट ।

**लर्ब्**—१ प० (जाना, हिलना), लट्, लर्बति, लिट्—ललर्ब, लुङ—अलर्बीत् ।

**लल्**—१ प०, विलासे (खेलना, इधर-उधर घूमना) लट्—ललति, लिट्—ललाल, लृट्—ललिष्यति, लुङ—अललीत् । सन्—लिललिषति, णिच्—लट्—लालयति, लुङ—अलीललत्, क्त—ललित ।

**लल्**—१० आ०, ईप्सायाम् (चाहना, प्यार करना), लट्—लालयते, लिट्—लालयांचक्रे, लुट्—लालयिता, लुङ—अलीललत । सन्—लिलालयिषते

**लश्**——१० उ०, शिल्पयोगे (किसी शिल्प का प्रयोग करना), लट्—लाशयति-ते, लिट्—लाशयांचकार–चक्रे, लुङ—अलीलशत्—त, (लस् के स्थान पर यह लश् धातु है ) ।

**लष्**——१ और ४ उ०, कान्तौ (चाहना, इच्छा करना), लट्—लषति-ते, लष्यति-ते, लिट्—ललाष, लेषे, लुट्—लषिता, लुङ—अलषीत्, अलाषीत्, अलषिष्ट । सन्—लिलषिषति, क्त—लषित ।

**लस्**——१ प०, श्लेषणक्रीडनयोः (प्रकट होना, आलिंगन करना, खेलना, चमकना), लट्—लसति, लिट्—ललास, लुट्—लसिता, लुङ—अलसीत्—अलासीत् । णिच्-लट्—लासयति-ते, लुङ—अलीलसत्—त । सन्—लिलसिषति, क्त—लसित ।

**लस्**——१० उ०, शिल्पयोगे (देखो पूर्वोक्त लश् धातु) ।

**लस्ज्**——१ आ०, व्रीडने (लज्जित होना, झेंपना), लट्—लज्जते, लिट्—ललज्जे, लुट्—लज्जिता, लुङ—अलज्जिष्ट । कर्म० लट्—लज्ज्यते, लुङ—अलज्जि, णिच्—लट्—लज्जयति-ते, लङ—अललज्जत्—त । सन्—लिलज्जिषते, क्त—लग्न ।

**ला**——२ प०, आदाने दाने च (लेना, पाना, देना), लट्—लाति, लिट्—ललौ, लुट्—लाता, लुङ—अलासीत् । णिच्—लट्—लापयति-ते, लालयति-ते, (पिघलाना अर्थ में), लुङ—अलीलपत्—त, अलीलयत्—त । सन्—लिलासति ।

**लाख्**——१ प०, शोषणालमर्थयोः (सूखना, सजाना, पर्याप्त होना), लट्—लाखति, लुङ—अलाखीत्, णिच्—लृट्—लाखयति-ते ।

**लाघ्**——१ आ०, सामर्थ्ये (समर्थ होना, समान होना) लट्—लाघते लुङ—अलाघिष्ट ।

**लाज्, लांज्**——१ प०, अर्जन भर्त्सने च (भूनना, डाँटना), लट्—लाजति, लांजति, लुङ—अलाजीत्, अलांजीत् ।

**लाञ्छ्**——१ प०, लक्षणे (चिह्न करना), लट्—लाञ्छति, लङ—अलाञ्छीत् ।

**लिख्**——६ प०, अक्षरविन्यासे (लिखना, रगड़ना, छूना), लट्—लिखति, लिट्—लिलेख, लुट्—लेखिता, लुङ—अलेखीत् । सन्—लिलिखिषति—लिलेखिषति, णिच्—लट्—लेखयति-ते, लुङ—अलीलिखत्—त ।

**लिङ्ख्**——१ प०, (जाना, हिलना), लट्—लिङ्खति ।

**लिङ्ग्**——१ प०, (जाना, हिलना), लट्—लिङ्गति, लिट्—लिलिङ्ग, लुट्—लिङ्गिता, लुङ—अलिङ्गीत् । क्त—लिङ्गित ।

**लिङ्ग्**——१० उ०, चित्रीकरणे (चित्र बनाना, लिंग-निर्देश करना), लट्—लिङ्गयति-ते, लिट्—लिङ्गयांचकार-चक्रे, लुट्—लिङ्गयिता, लुङ—अलिलिङ्गत्—त ।

**लिप्**——६ उ०, उपदेहे (उपदेहो वृद्धिः) (लीपना, ढकना, दाग लगाना), लट्—लिम्पति-ते, लिट्—लिलेप, लिलिपे, लुट्—लेप्ता, लृट्—लेप्स्यति-ते, लुङ—

अलिपत्–त, अलिप्त । णिच्–लट्–लेपयति-ते, लुङ–अलीलिपत्–त । सन्–लिलिप्सति-ते, क्त–लिप्त ।

**लिश्**––४ आ०, अल्पीभावे (कम होना), लट्–लिश्यते, लिट्–लिलिशे, ऌट्–लेक्ष्यते, लुङ–अलिक्षत, णिच्–लट्–लेशयति-ते, लुङ–अलीलिशत्–त, सन्–लिलिक्षति, क्त–लिष्ट ।

**लिश्**––६ प० (जाना), लट्–लिशति, लिट्–लिलेश, लुङ–अलिक्षत् । सन्–लिलिक्षति ।

**लिह्**––२ उ०, आस्वादने (चाटना, चखना), लट्–लेढि, लीढे, लिट्–लिलेह, लिलिहे, लुट्–लेढा, ऌट्–लेक्ष्यति-ते, लुङ–अलिक्षत्–त, अलीढ, आ० लिङ–लिह्यात्, लिक्षीष्ट । सन्–लिलिक्षति-ते, क्त–लीढ ।

**ली**––१ प०, १० उ०, द्रवीकरणे (पिघलाना, विलीन होना), लट्–लयति, लाययति–ते, लिट्–लिलाय, लाययांचकार-चक्रे, लुङ–अलैषीत्, अलील-यत्–त । सन्–लिलीषति, लिलाययिषति-ते ।

**ली**––४ आ०, श्लेषणे (चिपकना, लेटना), लट्–लीयते, लिट्–लिल्ये, लुट्–लेता, लाता, ऌट्–लास्यते, लुङ–अलेष्ट–अलास्त, आ० लिङ–लेषीष्ट, लासीष्ट । णिच्–लट्–लाययति-ते । सन्–लिलीषते, क्त–लीन, क्त्वा–लीत्वा, ल्यप्–विलाय, विलीय ।

**ली**––९ प०, श्लेषणे (लगना, पिघलाना), लट्–लिनाति, लिट्–लिलाय, ललौ, लुट्–लेता, लाता, ऌट्–लेस्यति, लास्यति, लुङ–अलैषीत्, अलासीत् । सन्–लिलीषति ।

**लुञ्च्**––१ प०, अपनयने (नोंचना, चुनना, उखाड़ना), लट्–लुञ्चति, लिट्–लुलुञ्च, लुट्–लुञ्चिता, लुङ–अलुञ्चीत्, सन्–लुलुञ्चिषति, क्त–लुञ्चित ।

**लुञ्ज्**––१ प०, १० उ०, हिंसाबलादाननिकेतनेषु भाषायां दीप्तौ च (मारना, बलवान् होना), लट्–लुञ्जति, लुञ्जयति-ते, लुङ–अलुञ्जीत्, अलु-लुञ्जत्–त ।

**लुट्**––१ आ०, प्रतिघाते (विरोध करना), लट्–लोटते, लिट्–लुलुटे, लुट्–लोटिता, लुङ–अलुटत्–अलोटिष्ट । सन्–लुलुटिषते ।

**लुट्**––१ प०, विलोडने (लपेटना, भूमि पर लोटना), लट्–लोटति, लिट्–लुलोट, लुट्–लोटिता, लुङ–अलोटीत् । सन्–लुलुटिषति–लुलोटिषति, णिच्–लट्–लोटयति-ते, लुङ–अलूलुटत्–त, अलुलोटत्–त, क्त–लुटित, लोटित ।

**लुट्**––४ प० (लपेटना आदि), लट्–लुट्यति, लिट्–लुलोट, लुट्–लोटिता, लुङ–अलुटत् । (शेष रूप पूर्ववत्) ।

**लुट्**––६ प० (कुटादि) संश्लेषणे (देखो आगे लुठ् धातु) ।

**लुट्**––१० उ०, भाषायां दीप्तौ च (कहना, चमकना), लट्–लोटयति-ते, लिट्–लोटयांचकार-चक्रे, लुट्–लोटयिता ।

**लुट्**—१ प०, उपघाते (चोट मारना, ठोकर मारना, गिराना), लट्–लोटति, लिट्–लुलोट, लुट्–लोटिता, लुङ–अलोटीत् । णिच्–लुङ–अलूलुटत्–त, अलुलोटत्–त ।

**लुठ्**—१ आ०, प्रतिघाते ( विरोध करना, लपेटना), लट्–लोठते, लिट्–लुलुठे, लुट्–लोठिता, लुङ–अलुठत्–अलोठिष्ट ।

**लुठ्**—६ प०, संश्लेषणे (कुटादि) (चिपकना), लट्–लुठति, लिट्–लुलोठ, ऌट्–लुठिष्यति, लुङ–अलुठीत् । सन्–लुलुठिषति ।

**लुड्**—१ प०, विलोडने (हिलाना, बिलोना, मथना), लट्–लोडति, लिट्–लुलोड, लुट्–लोडिता, लुङ–अलोडीत्, णिच्–लट्–लोडयति-ते । सन्–लुलुडिषति ।

**लुड्**—६ प० (कुटादि), लट्–लुडति (शेष रूप लुठ् के तुल्य) ।

**लुण्ट्**—१ प०, स्तेये (चुराना, आलसी होना), लट्–लुण्टति, लिट्–लुलुण्ट, ऌट्–लुण्टिष्यति, लुङ–अलुण्टीत् ।

**लुण्ट्**—१० उ०, (देखो आगे लुण्ठ् धातु) ।

**लुण्ठ्**—१ प०, आलस्ये प्रतिघाते च (आलसी होना, क्षुब्ध करना), लट्–लुण्ठति, ऌट्–लुण्ठिष्यति, लुङ–अलुण्ठीत् । णिच्–लट्–लुण्ठयति-ते, लुङ–अलुलुण्ठत्–त, सन्–लुलुण्ठिषति ।

**लुण्ठ्**—१० उ०, स्तेये (चोरी करना, लूटना), लट्–लुण्ठयति-ते, ऌट्–लुण्ठयिष्यति–ते, लुङ–अलुलुण्ठत्–त ।

**लुण्ड्**—१० उ० (चुराना), लट्–लुण्डयति-ते, लिट्–लुण्डयांचकार-चक्रे, (शेष लुण्ठ् के तुल्य) ।

**लुन्थ्**—१ प०, हिंसाक्लेशनयोः (मारना, दुःख देना), लट्–लुन्थति, लिट्, लुलुन्थ, ऌट्–लुन्थिष्यति, लुङ–अलुन्थीत् ।

**लुप्**—४ प०, विमोहने (व्याकुल करना, नष्ट होना), लट्–लुप्यति, लिट्–लुलोप, लुट्–लोपिता, लुङ–अलुपत्, णिच्–लट्–लोपयति-ते, लुङ–अलूलुपत्–त, अलुलोपत्–त, सन्–लुलुपिषति, लुलोपिषति, क्त्वा–लुप्त्वा, लुपित्वा, लोपित्वा, क्त–लुप्त ।

**लुप्**—६ उ०, छेदने (तोड़ना, लेना, पकड़ना, दबाना), लट्–लुम्पति-ते, लिट्–लुलोप, लुलुपे, लुट्–लोप्ता, लुङ–अलुपत्, अलुप्त, आ० लिङ–लुप्यात्, लुप्सीष्ट । सन्–लुलुप्सति–ते, कर्म० लट्–लुप्यते, लुङ–अलोपि, णिच् (पूर्वोक्त धातु के तुल्य), क्त–लुप्त ।

**लुभ्**—१ और ४ प०, गार्ध्ये (लोभ करना, व्याकुल होना), लट्–लोभति, लुभ्यति, लिट्–लुलोभ, लुट्–लोभिता, लोब्धा, लुङ–(१) अलोभीत्, (४) अलुभत्, णिच्–लट्–लोभयति-ते लुङ–अलूलुभत्–त । सन्–लुलुभिषति, लुलोभिषति, क्त–लुब्ध ।

**लुभ्**—६ प०, विमोहने (व्याकुल होना, मुग्ध होना), लट्–लुभति, लुङ–अलोभीत् । क्त–लुभित ।

**लुम्ब्**—१ प०, अर्दने (दुःख देना), लट्–लुम्बति, लुङ–अलुम्बीत् ।

**लू**—६ उ०, छेदने (काटना, पृथक् करना), लट्–लुनाति, लुनीते, लिट्–लुलाव, लुलुवे, लुट्–लविता, लुङ–अलावीत्–अलविष्ट, आ० लिङ–लूयात्, लविषीष्ट । सन्–लुलूषति-ते, णिच्-लट्–लावयति-ते, क्त–लून ।

**लूष्**—१ प०, भूषायाम् (सजाना), लट्–लूषति, लिट्–लुलूष, लुङ–अलूषीत् ।

**लूष्**—१० उ०, हिंसायाम् (चोट पहुँचाना, लूटना), लट्–लूषयति-ते, लिट्–लूषयांचकार-चक्रे, लुङ–अलूलुषत्–त ।

**लेख्**—४ प०, स्खलने (लड़खड़ाना), लट्–लेख्यति, लुङ–अलेखीत् ।

**लेप्**—१ आ० (जाना, पूजना), लट्–लेपते, लुङ–अलेपिष्ट ।

**लैण्**—१ प० (जाना, भेजना, आलिंगन करना), लट्–लैणति, लुङ–अलैणीत् ।

**लोक्**—१ आ०, दर्शने (देखना, ताकना), लट्–लोकते, लिट्–लुलोके, लुट्–लोकिता, लुङ–अलोकिष्ट । सन्–लुलोकिषते, णिच्–लट्–लोकयति-ते, लुङ–अलुलोकत्–त, क्त–लोकित ।

**लोक्**—१० उ०, भाषायां दीप्तौ च (देखना, कहना, चमकना, ढूंढ़ना), लट्–लोकयति-ते, लिट्–लोकयांचकार–चक्रे, लुट्–लोकयिता, लुङ–अलुलोकत्–त । सन्–लुलोकयिषति-ते ।

**लोच्**—१ आ०, दर्शने (देखना), लट्–लोचते, लिट्–लुलोचे, लुट्–लोचिता, लुङ–अलोचिष्ट, क्त–लोचित ।

**लोच्**—१० उ० (बोलना, चमकना), लट्–लोचयति-ते, लिट्–लोचयांचकार-चक्रे–आस–बभूव, लुट्–लोचयिता, लुङ–अलुलोचत्–त, ( देखो पूर्वोक्त लोक् १० । )

**लोट्**—१ प०, धौर्त्ये पूर्वभावे स्वप्ने च (धोखा देना, पहले होना), लट्–लोटति, लिट्–लुलोट, लुङ–अलोटीत् ।

**लोष्ट्**—१ आ०, संघाते (ढेर लगाना), लट्–लोष्टते, लिट्–लुलोष्टे, लुङ–अलोष्टिष्ट ।

## व

**वक्ष्**—१ प०, रोषे, संघाते च (क्रुद्ध होना, बढ़ना), लट्–वक्षति, लिट्–ववक्ष, लृट्–वक्षिष्यति, लुङ–अवक्षीत् ।

**वख्**—वङ्ख्–१ प० (जाना, हिलना), लट्–वखति, वङ्खति, लिट्–ववाख, ववङ्ख ।

**वङ्क्**—१ आ०, कौटिल्ये गतौ च (कुटिल होना, जाना), लट्—वङ्कते, लुङ—अवङ्किष्ट ।

**वङ्ग्**—१ प० (जाना) लट्—वङ्गति (वङ्क् के तुल्य) ।

**वच्**—२ प०, परिभाषणे (कहना, वर्णन करना), लट्—वक्ति, लिट्—उवाच, लुट्—वक्ता, लृट्—वक्ष्यति, लुङ—अवोचत्, आ० लिङ—उच्यात् । सन्—विवक्षति, णिच्—लट्—वाचयति-ते, लुङ—अवीवचत्—त ।

**वच्**—१ प० और १० उ०, (कहना, बाँचना, पढ़ना), लट्—वचति, वाचयति-ते, लिट्—उवाच, वाचयांचकार-चक्रे, लुट्—वक्ता, वाचयिता, लुङ—अवाक्षीत्, अवोवचत्—त, क्त—उक्त, वाचित ।

**वज्**—१ प० (जाना, इधर-उधर घूमना), लट्—वजति, लिट्—ववाज, लुट्—वजिता, लुङ—अवजीत्—अवाजीत् ।

**वज्**—१० उ०, (जाना), लट्—वाजयति-ते, लिट्—वाजयामास, लुङ—अवीवजत्—त ।

**वञ्च्**—१ प०, (जाना, पहुँचना), लट्—वञ्चति, लिट्—ववञ्च, लुट्—वञ्चिता, लुङ—अवञ्चीत् । सन्—विवञ्चिषति, क्त—वञ्चित, कर्म० लट्—वच्यते, लुङ—अवञ्चि ।

**वञ्च्**—१० आ०, प्रलम्भने (धोखा देना, ठगना) लट्—वञ्चयते, लिट्—वञ्चयामास, लुङ—अववञ्चत । सन्—विवञ्चयिषते ।

**वट्**—१ प०, वेष्टने ( घेरना, ढकना), लट्—वटति, लिट्—ववाट, लुङ—अवटीत्, अवाटीत् ।

**वट्**—१० उ०, ग्रन्थे विभाजने ( पिरोना, बाँटना, घेरना), लट्—वटयति-ते, लिट्—वटयांचकार-चक्रे, लुङ—अवीवटत्—त । सन्—विवटयिषति-ते ।

**वठ्**—१० प०, स्थौल्ये (मोटा या पुष्ट होना), लट्—वठति, लिट्—ववाठ, लुङ—अवठीत्—अवाठीत् ।

**वण्**—१ प०, शब्दे (शब्द करना), लट्—वणति, लुङ—अवणीत्, अवाणीत् । सन्—विवणिषति ।

**वण्ट्**—१ प०, १० उ०, विभाजने (बाँटना), लट्—वण्टति, वण्टयति-ते, लृट्—वण्टिष्यति, वण्टयिष्यति, लुङ—अवण्टीत्, अववण्टत्—त ।

**वद्**—१ प०, व्यक्तायां वाचि (कहना, बोलना, बताना), लट्—वदति, लिट्—उवाद, लुट्—वदिता, लुङ—अवादीत् । सन्—विवदिषति, कर्म० लट्—उद्यते, लुङ—अवादि, क्त—उदित ।

**वद्**—१ और १० उ०, संदेशवचने (सूचना देना), लट्—वदति-ते, वादयति-ते, लिट्—ववाद, ववदे, वादयांचकार, लुङ—अवादीत्, अवदिष्ट, अवीवदत्—त ।

**वन्**—१ प०, शब्दे सम्भक्तौ च (शब्द करना, आदर करना, सहायता देना), लट्—वनति, लिट्—ववान, लृट्—वनिष्यति, लुङ—अवनीत्, अवानीत् । णिच्—लट्, वानयति-ते । सन्—विवनिषति ।

**वन्**—८ आ०, ( चन्द्र के मतानुसार पर०) (माँगना, ढूँढ़ना), लट्—वनुते, लिट्—वेने, लुङ—अवनिष्ट, अवत । सन्—विवनिषति ।

**वन्**—१ प० और १० उ०, (कृपा करना, चोट पहुँचाना, शब्द करना), लट्—वनति, वानयति-ते ।

**वन्द्**—१ आ०, अभिवादन, स्तुत्योः (नमस्कार करना, प्रशंसा करना, स्तुति करना), लट्—वन्दते, लिट्—ववन्दे, लुट्—वन्दिता, लुङ—अवन्दिष्ट । सन्—विवन्दिषते, कर्म० लट्—वन्द्यते, क्त—वन्दित ।

**वप्**—१ उ०, बीजसन्ताने छेदने च (बीज बोना, फैलाना, बुनना, काटना, बाल बनाना), लट्—वपति-ते, लिट्—उवाप, ऊपे, लुट्—वप्ता, लुङ—अवाप्सीत्, अवप्त, आशीर्लिङ—वप्सीष्ट, णिच्—लट्—वापयति-ते, लुङ—अवीवपत्—त । सन्—विवप्सति-ते, कर्म० लट्—उप्यते, लुङ—अवापि ।

**वभ्र्**—१ प०, (जाना), लट्—वभ्रति, लुङ—अवभ्रीत् ।

**वम्**—१ प०, उद्गिरणे ( उगलना, बाहर निकालना), लट्—वमति, लिट्—ववाम, लुट्—वमिता, लुङ—अवमीत् णिच्—लट्—वमयति-ते, वामयति-ते, (उपसर्ग के साथ वमयति-ते ही होगा), लुङ—अवीवमत्—त, क्त—वमित (वान्त, कुछ के मतानुसार ) ।

**वय्**—१ आ०, (जाना), लट्—वयते, लृट्—वयिष्यते, लुङ—अवयिष्ट ।

**वर्**—१० उ०, ईप्सायाम् (चाहना, पाना), लट्—वरयति-ते, लिट्—वरयाञ्चकार-चक्रे, लुट्—वरयिता, लुङ—अववरत्—त ।

**वर्च्**—१ आ०, दीप्तौ (चमकना), लट्—वर्चते, लिट्—ववर्चे, लुङ—अवर्चिष्ट ।

**वर्ण्**—१० उ०, वर्णक्रियाविस्तारगुणवचनेषु प्रेरणे च (रँगना, वर्णन करना, गुण वर्णन करना, भेजना, पोसना), लट्—वर्णयति-ते, लिट्—वर्णयांचकार—चक्रे—आस—बभूव, लुट्—वर्णयिता, लुङ—अववर्णत्—त । सन्—विवर्णयिषति-ते, क्त—वर्णित ।

**वर्ध्**—१० उ०, छेदनपूरणयोः (काटना, भरना, बढ़ाना), लट्—वर्धयति-ते, लुङ—अववर्धत्—त । सन्—विवर्धयिषति-ते ।

**वर्ष्**—१ आ०, स्नेहने (प्रेम करना), लट्—वर्षते, लुङ—अवर्षिष्ट ।

**वल्**—१ आ०, संवरणे सञ्चरणे च (ढकना, इधर-उधर घूमना), लट्—वलते, लृट्—वलिष्यते, लुङ—अवलिष्ट । सन्—विवलिषति-ते ।

**वल्क्**—१० उ०, परिभाषणे (कहना), लट्—वल्कयति-ते, लिट्—वल्कयाञ्चकार—चक्रे, लुङ—अववल्कत्—त ।

**वल्ग्**——१ उ०, (जाना, नाचना, प्रसन्न होना, खाना), लट्—वल्गति-ते, लिट्—ववल्ग—ववल्गे, लुट्—वल्गिता, लुङ—अवल्गीत्—अवल्गिष्ट । क्त—वल्गित ।

**वल्भ्**——१ आ०, भोजने (खाना), लट्—वल्भते, लुङ—अवल्भिष्ट ।

**वल्ल्**——१ आ०, संवरणे (ढकना, ढका जाना), लट्—वल्लते, लिट्—ववल्ले ।

**वल्ह्**——१ आ०, परिभाषणहिंसादानेषु (कहना, प्रमुख होना, मारना, देना), लट्—वल्हते, लिट्—ववल्हे, लुङ—अवल्हिष्ट ।

**वश्**——२ प०, कान्तौ (चाहना, चमकना), लट्—वष्टि, लिट्—उवाश, लुट्—वशिता, लुङ—अवशीत्—अवाशीत्, आ० लिङ—उश्यात् । सन्—विवशिषति, कर्म० लट्—उश्यते, लुङ—अवाशि, क्त—उशित ।

**वष्**——१ प०, हिंसायाम् (हिंसा करना, चोट मारना), लट्—वषति, लिट्—ववाष, लुङ—अवषीत्—अवाषीत् ।

**वस्**——१ प०, निवासे (रहना, होना, समय बिताना), लट्—वसति, लिट्—उवास, लुट्—वस्ता, लुङ—अवात्सीत्, आ० लिङ—उष्यात् । सन्—विवत्सति, कर्म० लट्—उष्यते, लुङ—अवासि, णिच्—लट्—वासयति-ते, लुङ—अवीवसत्—त, क्त—उषित, क्त्वा—उषित्वा, प्रोष्य ।

**वस्**——२ आ०, आच्छादने (पहनना, धारण करना), लट्—वस्ते, लिट्—ववसे, लुट्—वसिता, लुङ—अवसिष्ट, णिच्—लट्—वासयति-ते, लुङ—अवीवसत्—त, सन्—विवसिषते, क्त—वसित ।

**वस्**——४ प०, स्तम्भे (दृढ़ होना, स्थिर होना, लगाना), लट्—वस्यति, ऌट्—वसिष्यति, लुङ—अवसत् । क्त—वस्त, क्त्वा—वसित्वा, वस्त्वा, तुम्—वसितुम् ।

**वस्**——१० उ०, स्नेहच्छेदापहरणेषु (प्रेम करना, काटना, हरण करना), लट्—वासयति-ते, ऌट्—वासयिष्यति-ते, लुङ—अवीवसत्—त, आ० लिङ—वास्यात्—वासयिषीष्ट ।

**वस्**——१० उ०, निवासे (निवास करना, रहना), लट्—वसयति-ते, लुट्—वसयिता, लुङ—अववसत्—त ।

**वस्क्**——१ आ०, (जाना), लट्—वस्कते, ऌट्—वस्किष्यते, लुङ—अवस्किष्ट ।

**वस्त्**——१० आ०, अर्दने (चोट पहुँचाना, मारना, पूछना, जाना), लट्—वस्तयते, लिट्—वस्तयांचक्रे, लुङ—अववस्तत । (इसको बस्त् भी लिखते हैं) ।

**वह्**——१ उ० प्रापणे (ढोना, ले जाना, बहना, उद्+वह्—विवाह करना आदि), लट्—वहति-ते, लिट्—उवाह—ऊहे, लुट्—वोढा, ऌट्—वक्ष्यति-ते, लुङ—अवाक्षीत्—अवोढ, आ० लिङ—उह्यात्—वक्षीष्ट । सन्—विवक्षति-ते, णिच्—लट्—वाहयति—ते, लुङ—अवीवहत्—त, क्त—ऊढ ।

**वा**——२ प०, गतिगन्धनयोः (हवा बहना, जाना, चोट मारना, हिंसा करना), लट्—वाति, लिट्—ववौ, लुट्—वाता, लुङ—अवासीत्, आ० लिङ—वायात् । णिच्—लट्— (उड़ाना) वाययति-ते, ( हिलाना) वाजयति-ते, । सन्—विवासति, क्त—

वात (निर्+वा–निर्वाण, जब वायु अर्थ न हो तो। जैसे—निर्वाणो मुनि-रग्निर्वा) ।

**वांक्ष्**—१ प०, कांक्षायाम् (चाहना, इच्छा करना), लट्–वांक्षति, लृट्–वांक्षिष्यति, लुङ–अवांक्षीत् ।

**वाञ्छ्**—१ प०, वाञ्छायाम् (चाहना, ढूँढ़ना), लट्–वाञ्छति, लिट्–ववाञ्छ, लुट्–वाञ्छिता, लुङ–अवाञ्छीत् । सन्–विवाञ्छिषति, कर्म० लट्–वाञ्छ्यते, लुङ–अवाञ्छि ।

**वाड्**—१ आ०, (नहाना, डुबकी लगाना), लट्–वाडते, लिट्–ववाडे ।

**वात्**—१० उ०, सुखसेवनयोः (प्रसन्न होना, सेवा करना), लट्–वातयति-ते, लृट्–वातयिष्यति-ते, लुङ–अववातत्–त । सन्–विवातयिषति-ते ।

**वाश्**—४ आ०, शब्दे (गरजना, गूँजना), लट्–वाश्यते, लिट्–ववाशे, लुट्–वाशिता, लुङ–अवाशिष्ट, क्त–वाशित ।

**वास्**—१० उ०, उपसेवायाम् (सुगन्धित बनाना, इत्र लगाना), लट्–वासयति-ते, लिट्–वासयाञ्चकार-चक्रे, लुट्–वासयिता, लुङ–अववासत्–त । सन्–विवासयति-ते ।

**वाह्**—१ आ०, प्रयत्ने (प्रयत्न करना, चेष्टा करना), लट्–वाहते, लिट्–ववाहे, लुङ–अवाहिष्ट ।

**विच्**—७ उ०, पृथग्भावे (पृथक् करना, आदि), लट्–विनक्ति, विङ्क्ते, लिट्–विवेच–विविचे, लुट्–वेक्ता, लुङ–अविचत्, अवैक्षीत्, अविक्त, आ० लिङ–विच्यात्, विक्षीष्ट । सन्–विविक्षति-ते, क्त–विक्त ।

**विच्छ्**—६ प०, (जाना), लट्–विच्छायति, लिट्–विविच्छ, विच्छाञ्चकार, लुट्–विच्छिता, विच्छायिता, लुङ–अविच्छीत्–अविच्छायीत् । णिच्–लट्–विच्छयति-ते, विच्छाययति-ते, लुङ–अविविच्छत्–त, अविविच्छायत्–त । सन्–विविच्छिषति, विविच्छायिषति । कर्म० लट्–विच्छ्यते, विच्छाय्यते ।

**विच्छ्**—१० उ०, भाषायां दीप्तौ च (बोलना, चमकना), लट्–विच्छयति-ते, लिट्–विछयाञ्चकार-चक्रे, लुङ–अविविच्छत्–त ।

**विज्**—३ उ०, पृथग्भावे (पृथक् करना, छाँटना), लट्–वेवेक्ति, वेविक्ते, लिट्–विवेज, विविजे, लृट्–वेक्ष्यति-ते, लुङ–अविजत्, अवैक्षीत्, अविक्त । सन्–विविक्षति-ते ।

**विज्**—६ आ०, भयचलनयोः (डरना, काँपना), लट्–विजते, लिट्–विविजे, लुट्–विजिता, लुङ–अविजिष्ट, णिच्–लट्–वेजयति, लुङ–अवीविजत्, सन्–विविजिषति ।

**विज्**—७ प०, (हिलाना, डरना) लट्–विनक्ति, लिट्–विवेज, लुट्–विजिता, लुङ–अविजीत् । सन्–विविजिषति ।

**विट्**—१ प० आक्रोशे शब्दे च (कोसना, शब्द करना), लट्–वेटति, लिट्–विवेट, लुङ–अवेटीत् ।

**विड्**—विट् के तुल्य ।

**विडम्ब्**—१० उ०, विडम्बने (उपहास करना, मजाक उड़ाना, धोखा देना), लट्–विडम्बयति-ते, लुङ–अविविडम्बत्–त ।

**विथ्**—१ आ०, याचने (माँगना), लट्–वेथते, लृट्–वेथिष्यते, लुङ–अवेथिष्ट ।

**विद्**—२ प०, ज्ञाने (जानना, मानना), लट्–वेत्ति–वेद लिट्–विवेद–विदाञ्चकार, लृट्–वेदिष्यति, लुङ–अवेदीत्, आ० लिङ–विद्यात् । क्त–विदित, णिच्–लट्–वेदयति-ते, लुङ–अवीविदत्–त । सन्–विविदिषति-ते ।

**विद्**—४ आ०, सत्तायाम् (होना, घटित होना), लट्–विद्यते, लिट्–विविदे, लुट्–वेत्ता, लृट्–वेत्स्यते, लुङ–अवित्त, आ० लिङ–वित्सीष्ट । सन्–विवित्सते, क्त–वित्त ।

**विद्**—६ उ०, लाभे (पाना, अनुभव करना), लट्–विन्दति-ते, लिट्–विवेद–विविदे, लुट्–वेदिता–वेत्ता, लुङ–अविदत्–अवित्त–अवेदिष्ट, आ० लिङ–विद्यात्–वेदिषीष्ट, वित्सीष्ट, सन्–विवित्सति-ते, विविदिषति–विवेदिषते, क्त–विन्न, वित्त ।

**विद्**—७ आ०, विचारणे (विचार करना, सोचना), लट्–विन्ते, लिट्–विविदे । क्त–वित्त, विन्न, (अन्य रूप विद् ४ आ० के तुल्य) ।

**विद्**—१० आ०, चेतनाख्याननिवासेषु (अनुभव करना, कहना, रहना), लट्–वेदयते, लिट्–वेदयांचक्रे, लुट्–वेदयिता, लुङ–अवीविदत । सन्–विवेदयिषते, कर्म० लट्–वेद्यते, लुङ–अवेदि ।

**विध्**—६ प०, विधाने (बींधना) लट्–विधति, लृट्–वेधिष्यति, लुङ–अवेधीत्, णिच्–लट्–वेधयति–ते, लुङ–अवीविधत्-त ।

**विश्**—६ प०, प्रवेशने ( घुसना, प्रवेश करना, हिस्से में पड़ना), लट्–विशति, लिट्–विवेश, लुट्–वेष्टा, लुङ–अविक्षत्–त, सन्–विविक्षति, क्त–विष्ट ।

**विष्**—१ प०, सेचने (सींचना, डालना), लट्–वेषति, लिट्–विवेष्, लृट्–वेक्ष्यति, लुङ–अविक्षत् । क्त–विष्ट ।

**विष्**—३ उ०, व्याप्तौ (व्याप्त होना, घेरना), लट्–वेवेष्टि, वेविष्टे, लिट्–विवेष–विविषे, लुट्–वेष्टा, लुङ–अविक्षत्–त । सन्–विविक्षति–ते ।

**विष्**—९ प०, विप्रयोगे (पृथक् करना, वियुक्त होना), लट्–विष्णाति, लिट्–विवेष, लुङ–अविक्षत् ।

**विष्क्**—१० आ०, हिंसायाम् (मारना), उ०, दर्शने–देखना, लट्–विष्कयते, विष्कयति-ते, लुङ–अविविष्कत–अविविष्कत्–त ।

**वी**---२ प०, गतिव्याप्तिप्रजननकान्त्यसनखादनेषु (जाना, व्याप्त होना, गर्भधारण करना, उत्पन्न होना, चमकना, पाना, फेंकना, सुन्दर होना, चाहना, खाना), लट्–वेति, लिट्–विवाय, लुट्–वेता, लुङ–अवैषीत्, आ० लिङ–वीयात् । सन्–विविषति, णिच्–लट्–वाययति-ते, (वापयति–ते), क्त–वीत ।

**वीज्**---१० उ०, व्यजने (पंखा करना), लट्–वीजयति-ते, लुङ–अवीविजत्–त ।

**वीर्**---१० आ०, विक्रान्तौ (वीरता दिखाना), लट्–वीरयते, लृट्–वीरयिष्यते, लुङ–अविवीरत ।

**वृ**---१ उ०, आवरणे (ढकना, घेरना), लट्–वरति–ते (शेष रूप नीचे की धातु के तुल्य) ।

**वृ**---५ उ०, वरणे (चुनना), लट्–वृणोति, वृणुते, लिट्–ववार–वव्रे, लुट्–वरिता–वरीता, लुङ–अवारीत्, अवरिष्ट, अवरीष्ट, अवृत, आ० लिङ–व्रियात्, वरिषीष्ट, वृषीष्ट । णिच्–लट्–वारयति–ते, लुङ–अवीवरत्–त, सन्–विवरिषति-ते, विवरीषति-ते, वुवूर्षति-ते ।

**वृ**---९ आ०, (चुनना), लट्–वृणीते, लिट्–वव्रे । (शेष वृ आ० के तुल्य)।

**वृक्**---१ आ०, आदाने (लेना, स्वीकार करना), लट्–वर्कते, लिट्–ववृके, लृट्–वर्किष्यति, लुङ–अवर्किष्ट । सन्–विवर्किषते ।

**वृक्ष्**---१ आ०, आवरणे (ढकना), लट्–वृक्षते, लिट्–ववृक्षे, लुङ–अवृक्षिष्ट ।

**वृच्**---७ प०, वर्चने (चुनना), लट्–वृणक्ति, लिट्–ववर्च, लृट्–वर्चिष्यति, लुङ–अवर्चीत् । क्त–वृक्त ।

**वृज्**---२ आ०, वर्जने (छोड़ना, त्यागना), लट्–वृक्ते, लिट्–ववृजे, लृट्–वर्जिष्यते, लुङ–अवर्जिष्ट । सन्–विवर्जिषते ।

**वृज्**---७ प०, वर्जने (छोड़ना, चुनना, हटाना, हिलना, चोट पहुँचाना), लट्–वृणक्ति, लिट्–ववर्ज, लुट्–वर्जिता, लुङ–अवर्जीत् । सन्–विवर्जिषति ।

**वृज्**---१ प०, १० उ०, (छोड़ना, हटाना, त्यागना), लट्–वर्जति, वर्जयति-ते, लिट्–ववर्ज, वर्जयाञ्चकार–चक्रे, लुट्–वर्जिता, वर्जयिता, लुङ–अवर्जीत्–अवीवृजत्–त, अववर्जत्–त ।

**वृञ्ज्**---२ आ०, वर्जने (छोड़ना, त्यागना), लट्–वृङ्क्ते, लृट्–वृञ्जिष्यते, लुङ–अवृञ्जिष्ट ।

**वृण्**---६ प०, प्रीणने (प्रसन्न करना), लट्–वृणति, लिट्–ववर्ण, लुङ–अवर्णीत् ।

**वृत्**[1]—१ आ०, वर्तने (होना, घटित होना, रहना आदि), लट्—वर्तते, लिट्—ववृते, लुट्—वर्तिता, लृट्—वर्तिष्यते, वर्त्स्यति, लुङ्—अवृतत्, अवर्तिष्ट, आ० लिङ्—वर्तिषीष्ट । सन्—विवर्तिषते, विवृत्सति, णिच् लट्—वर्तयति-ते, लुङ्—अवीवृतत्—त, अववर्तत्—त, क्त—वृत्त ।

**वृत्**—४ आ०, वरणे (चुनना, पृथक् करना,), लट्—वृत्यते (शेष पूर्ववत्) ।

**वृत्**—१ प०, १० उ०, भाषायां दीप्तौ च (कहना, चमकना), लट्—वर्तति, वर्तयति-ते, लिट्—ववर्त, वर्तयांचकार—चक्रे, लुङ्—अवर्तीत्, अवीवृतत्—त, अववर्तत्—त ।

**वृध्**[2]—१ आ०, वृद्धौ (बढ़ना, उगना) लट्—वर्धते, लिट्—ववृधे, लुट्—वर्धिता, लृट्—वर्धिष्यते, वर्त्स्यति, लुङ्—अवृधत्, अवर्धिष्ट, आ० लिङ्—वर्धिषीष्ट । क्त—वृद्ध । सन्—विवर्धिषते, विवृत्सति ।

**वृध्**—१ प०, १० उ०, भाषायां दीप्तौ च (बोलना, चमकना), लट्—वर्धति, वर्धयति-ते (शेष वृत् के तुल्य) ।

**वृश्**—४ प०, वरणे (छाँटना), लट्—वृश्यति, लिट्—ववर्श, लृट्—वर्शिष्यति, लुङ्—अवृशत् ।

**वृष्**—१ प०, सेचनहिंसाक्लेशनेषु (बरसना, सींचना, दुःख देना), लट्—वर्षति, लिट्—ववर्ष, लुट्—वर्षिता, लुङ्—अवर्षीत् । सन्—विवर्षिषति, क्त—वृष्ट ।

**वृष्**—१० आ०, शक्तिबन्धने (वीर्यवान् होना), लट्—वर्षयते, लृट्—वर्षयिष्यते, लुङ्—अवीवृषत—अववर्षत ।

**वृह्**—६ प०, उद्यमने (उद्यम करना, होना), (बृह के तुल्य) ।

**वृ**—९ उ०, वरणे (चुनना), लट्—वृणाति, वृणीते, लिट्—ववार—ववरे, लुट्—वरिता, वरीता, लुङ्—अवारीत्, अवरिष्ट, अवरीष्ट, अवूर्ष्ट, आ० लिङ्—वूर्यात्, वरिषीष्ट, वूर्षीष्ट । सन्—वुवूर्षति-ते, विवरिषति-ते, विवरीषति-ते ।

**वे**—१ उ०, तन्तुसन्ताने (बुनना, ढकना), लट्—वयति-ते, लिट्—उवाय, ऊये, ऊवे, ववौ, ववे, लुट्—वाता, लुङ्—अवासीत्—अवास्त, आ० लिङ्—ऊयात्, वासीष्ट । सन्—विवासति-ते, णिच्—लट्—वाययति-ते, कर्म० लट्—ऊयते, लुङ्—अवायि, क्त—उत, क्त्वा—उत्वा, प्रवाय ।

**वेण्**—१ उ०, गतिज्ञानचिन्तानिशामनवादित्रग्रहणेषु (जाना, जानना, सोचना आदि), लट्—वेणति-ते, लिट्—विवेण, विवेणे, लृट्—वेणिष्यति—ते, लुङ्—अवेणीत्—अवेणिष्ट ।

**वेथ्**—१ आ०, याचने (माँगना), लट्—वेथते, लुङ्—अवेथिष्ट ।

---

**१. यह लृट्, लङ्, लुङ् और सन् में परस्मैपदी भी है ।**
**२. यह लृट्, लृङ्, लुङ् और सन् में परस्मैपदी भी है ।**

**वेन्**——वेण् के तुल्य ।

**वेप्**——१ आ०, कम्पने (काँपना, हिलना), लट्–वेपते, लिट्–विवेपे, लुट्–वेपिता, लुङ–अवेपिष्ट, णिच्-लट्–वेपयति-ते, लुङ–अविवेपत्–त । सन्–विवेपिषते ।

**वेल्**——१ प०, चलने (हिलाना, चलना), लट्–वेलति, लिट्–विवेल, लुट्–वेलिता, लुङ–अवेलीत् ।

**वेल्**——१० उ०, कालोपदेशे (समय बताना), लट्–वेलयति-ते, लिट्–वेलयाञ्चकार–चक्रे, लुट्–वेलयिता, लुङ–अविवेलत्–त ।

**वेल्ल्**——१ प०, चलने (जाना, हिलाना), लट्–वेल्लति, लिट्–विवेल्ल, लुङ–अवेल्लीत् ।

**वेवी**——२ आ०, गतिव्याप्त्यादिषु (जाना, पाना, गर्भिणी होना, व्याप्त होना, खाना, चाहना, चमकना), लट्–वेवीते, लुङ–अवेविष्ट, (वैदिक) ।

**वेष्ट्**——१ आ०, वेष्टने (घेरना, लपेटना, वस्त्रपहनाना), लट्–वेष्टते, लिट्–विवेष्टे, लुट्–वेष्टिता, लुङ–अवेष्टिष्ट, णिच्–लट्–वेष्टयति-ते । सन्–विवेष्टिषते ।

**वेह्**——१ आ०, (प्रयत्न करना), लट्–वेहते, लिट्–विवेहे, लुङ–अवेहिष्ट ।

**वे**——१ प०, शोषणे (सूखना, क्षीण होना), लट्–वायति, लिट्–ववौ, लृट्–वास्यति, लुङ–अवासीत् ।

**व्यच्**——६ प०, व्याजीकरणे (धोखा देना, घेरना, व्याप्त होना), लट्–विचति, लिट्–विव्याच, लुट्–व्यचिता, लुङ–अव्यचीत्, अव्याचीत्, आ० लिङ–विच्यात्, कर्म० लट्–विच्यते, सन्–विव्यचिषति, णिच्-लट्–व्याचयति-ते, क्त–विचित ।

**व्यथ्**——१ आ०, भयचलनयोः (डरना, दुःखित होना, काँपना), लट्–व्यथते, लिट्–विव्यथे, लुट्–व्यथिता, लुङ–अव्यथिष्ट । णिच्–लट्–व्यथयति-ते, सन्–विव्यथिषते, क्त–व्यथित ।

**व्यध्**——४ प०, ताडने (बींधना, दुःख देना), लट्–विध्यति, लिट्–विव्याध, लुट्–व्यद्धा, लुङ–अव्यात्सीत्, आ० लिङ–विध्यात् । सन्–विव्यत्सति, कर्म० लट्–विध्यते, णिच्-लट्–व्याधयति-ते, लुङ–अविव्यधत्–त, क्त–विद्ध ।

**व्यय्**——१ उ०, (जाना), लट्–व्ययति-ते, लिट्–वव्याय, वव्यये, लृट्–व्ययिष्यति-ते, लुङ–अव्ययीत्–अव्ययिष्ट ।

**व्यय्**——१० उ०, वित्तसमुत्सर्गे (व्यय करना), लट्–व्यययति-ते, लिट्–व्यययांचकार–चक्रे, लृट्–व्यययिष्यति-ते, लुङ–अवव्ययत्–त । सन्–विव्यययिषति-ते ।

**व्युष्**——४ प०, दाहे विभागे च (जलाना, पृथक् करना), लट्–व्युष्यति लिट्–वुव्योष, लृट्–व्योषिष्यति, लुङ–अव्योषीत् अव्युषत्, (पृथक् करना) ।

**व्ये**—१ उ०, संवरणे (ढकना), लट्—व्ययति-ते, लिट्—विव्याय, विव्ये, लुट्—व्याता, लुङ—अव्यासीत्, अव्यास्त, आ० लिङ—वीयात्—व्यासीष्ट । सन्—विव्यासति-ते, कर्म० लट्—वीयते, णिच्—लट्—व्याययति-ते, लुङ—अविव्ययत्—त, क्त—वीत ।

**व्रज्**—१ प०, (जाना, समय बिताना), लट्—व्रजति, लिट्—वव्राज, लुट्—व्रजिता, लुङ—अव्राजीत् । सन्—विव्रजिषति, क्त—व्रजित ।

**व्रज्**—१० उ०, मार्गसंस्कारगत्योः (मार्ग साफ करना, जाना), लट्—व्राजयति-ते, लुङ—अविव्रजत्—त ।

**व्रड्**—६ प०, संवरणे—(कुटादि) (ढकना, एकत्र होना, डूबना), लट्—व्रडति, लृट्—व्रडिष्यति, लुङ—अव्रडीत् ।

**व्रण्**—१ प०, शब्दे (शब्द करना), लट्—व्रणयति, लिट्—वव्राण, लुङ—अव्रणीत्—अव्राणीत् ।

**व्रण्**—१० उ०, गात्रविचूर्णने (घाव करना), लट्—व्रणयति-ते, लिट्—व्रणयांचकार—चक्रे, लुङ—अवव्रणत्—त ।

**व्रश्च्**—६ प०, छेदने (काटना, फाड़ना, घाव करना), लट्—वृश्चति, लिट्—वव्रश्च, लुट्—व्रश्चिता, व्रष्टा, लुङ—अव्राक्षीत्, अव्रश्चीत्, आ० लिङ—वृश्च्यात् । सन्—विव्रश्चिषति, विव्रक्षति, कर्म० लट्—वृश्च्यते, क्त—वृक्ण, तुम्—व्रश्चितुम्—व्रष्टुम् ।

**व्री**—४ आ०, वरणे (चुनना), लट्—व्रीयते, लिट्—विव्रिये, लृट्—व्रेष्यते, लुङ—अव्रेष्ट । क्त—व्रीण ।

**व्री**—९ प०, (चुनना), लट्—व्रिणाति, व्रीणाति, लृट्—व्रेष्यति, लुङ—अव्रैषीत् ।

**व्रीड्**—४ प०, चोदने लज्जायां च (फेंकना, लज्जित होना), लट्—व्रीडयति, लिट्—विव्रीड, लुङ—अव्रीडीत् ।

**व्ली**—९ प०, वरणे (चुनना, जाना), लट्—व्लिनाति, लृट्—व्लेष्यति, लुङ—अव्लैषीत् । णिच्—लट्—व्लेपयति-ते ।

## श

**शंस्**—१ प०, स्तुतौ दुर्गतौ च (वर्णन करना, सुझाव देना, प्रशंसा करना, चोट मारना), लट्—शंसति, लिट्—शशंस लुट्—शंसिता, लुङ—अशंसीत्, आ० लिङ—शस्यात् । सन्—शिशंसिषति, कर्म० लट्—शस्यते, लुङ—अशंसि, क्त्वा—शंसित्वा, शस्त्वा, क्त—शस्त, (आ+शंस्) इच्छायाम्, लट्—आशंसते, लृट्—आशंसिष्यते, लुङ—आशंसिष्ट, आ० लिङ—आशंसिषीष्ट, सन्—आशिशंसिषते ।

**शक्**—४ उ०, मर्षणे ( सहना, समर्थ होना), लट्—शक्यति-ते, लिट्—शशाक—शेके, लुट्—शकिता, शक्ता, लृट्—शकिष्यति-ते, शक्ष्यति-ते, लुङ—अशकत्—अशकिष्ट—अशक्त । सन्—शिशकिषति-ते ।

**शक्**—५ प०, शक्तौ, (सकना समर्थ होना, सहना, शक्तियुक्त होना), लट्—शक्नोति, लिट्—शशाक, लुट्—शक्ता, लुङ—अशकत्, आ० लिङ—शक्यात् । सन्—शिक्षति, कर्म० लट्—शक्यते, णिच्—लट्—शाकयति-ते, लुङ—अशीशकत्—त, क्त—शक्त ।

**शङ्क्**—१ आ०, शङ्कायाम् (शंका करना, डरना), लट्—शङ्कते, लिट्—शशङ्के, लुट्—शङ्किता, लुङ—अशङ्किष्ट । सन्—शिशङ्किषते, क्त—शङ्कित ।

**शच्**—१ आ०, व्यक्तायां वाचि (बोलना, कहना), लट्—शचते, लिट्—शेचे, लुङ—अशचिष्ट ।

**शठ्**—१ प०, कैतवे (धोखा देना, हिंसा करना, दुःख सहना, दुःख देना), लट्—शठति, लिट्—शशाठ, लुट्—शठिता, लुङ—अशठीत्—अशाठीत् ।

**शठ्**—१० उ०, सम्यगवभाषणे (ठीक या बुरा कहना, धोखा देना), लट्—शठयति-ते, लिट्—शठयांचकार, लुट्—शठयिता, लुङ—अशशठत्—त, क्त—शठित ।

**शठ्**—१० उ०, असंस्कारगत्योः (काम अधूरा छोड़ना, जाना), लट्—शाठयति-ते, लृट्—शाठयिष्यति-ते, लुङ—अशीशठत्—त । क्त—शाठित ।

**शठ्**—१० आ०, श्लाघायाम् (खुशामद करना), लट्—शाठयते, लृट्—शाठयिष्यते, लुङ—अशीशठत । क्त—शठित ।

**शण्**—१ प०, दाने गतौ च (देना, जाना), लट्—शणति, लिट्—शशाण, लृट्—शणिष्यति, लुङ—अशणीत्—अशाणीत् ।

**शद्**—१ प०, (सार्वधातुक लकारों में आत्मने० है) शातने (नष्ट होना), लट्—शीयते, लिट्—शशाद, लुट्—शत्ता, लुङ—अशदत्, आ० लिङ—शद्यात् । सन्—शिशत्सति, णिच्-लट्—शातयति-ते, (शादयति-ते, भी होता है) क्त—शन्न ।

**शप्**—१, ४ उ०, आक्रोशे (शाप देना, दोष लगाना), लट्—शपति-ते, शप्यति-ते, लिट्—शशाप—शेपे, लुट्—शप्ता, लुङ—अशाप्सीत्—अशप्त, आ० लिङ—शप्यात्—शप्सीष्ट, कर्म० लट्—शप्यते, णिच्—लट्—शापयति-ते, लुङ—अशीशपत्—त, सन्—शिशप्सति-ते, क्त—शप्त ।

**शब्द्**—१० उ०, (शब्द करना, कहना, पुकारना), लट्—शब्दयति-ते, लिट्—शब्दयांचकार-चक्रे, लुट्—शब्दयिता, लुङ—अशशब्दत्—त । क्त—शब्दित ।

**शम्**—४ प०, उपशमे (शान्त होना, शान्त करना, रोकना), लट्—शाम्यति, लिट्—शशाम, लुट्—शमिता, लुङ—अशमत्, आ० लिङ—शम्यात्, कर्म० लट्—शम्यते, णिच्-लट्—शमयति-ते, शामयति-ते, क्त—शान्त ।

**शम**—१० आ०, आलोचने (देखना, दिखाना), लट्—शामयते, लिट्—शामयांचक्रे, लुट्—शामयिता, लुङ—अशीशमत, सन्—शिशामयिषते ।

**शम्ब्**—१० उ०, सम्बन्धने (इकट्ठा करना, संग्रह करना), लट्—शम्बयति-ते, लिट्—शम्बयाञ्चकार—चक्रे, लुङ—अशशम्बत्—त ।

**शर्ब्**––१ प०, (जाना, चोट पहुँचाना, मारना), लट्–शर्बति, लिट्–शशर्ब, लुङ–अशर्बीत् ।

**शर्व्**––१ प०, हिंसायाम् (मारना), लट्–शर्वति ।

**शल्**––१ आ०, चलन संवरणयोः (हिलाना, क्षुब्ध करना), लट्–शलते, लिट्–शेले, लुट्–शलिता, लुङ–अशलिष्ट ।

**शल्**––१ प०, (जाना, दौड़ना), लट्–शलति, लिट्–शशाल ।

**शल्भ्**––१ आ०, कत्थने (प्रशंसा करना, आत्म-प्रशंसा करना), लट्–शल्भते, लिट्–शशल्भ ।

**शव्**––१ प०, (जाना, पहुँचना, कहना), लट्–शवति, लिट्–शशाव, लुङ–अशवीत्–अशावीत् ।

**शश्**––१ प०, प्लुतगतौ (कूदना, उछलते हुए जाना), लट्–शशति, लिट्–शशाश, लुट्–शशिता, लुङ–अशशीत्–अशाशीत् ।

**शष्**––१ प०, हिंसायाम् (मारना, हानि पहुँचाना), लट्–शषति, लिट्–शशाष, लुङ–अशषीत्–अशाषीत् ।

**शस्**––१ प०, हिंसायाम् (काटना, नष्ट करना), लट्–शसति, लिट्–शशास, लुट्–शसिता, लुङ–अशसीत्–अशासीत् । क्त–शस्त ।

**शाख्**––१ प०, व्याप्तौ (व्याप्त होना) लट्–शाखति, लुङ–अशाखीत् ।

**शान्**––१ उ०, तेजने (तीक्ष्ण करना, धार रखना), लट्–शीशांसति-ते, ऌट्–शीशांसिष्यति-ते, लुङ–अशीशांसिष्ट, अशीशांसीत् ।

**शाल्**––१ आ०, श्लाघायां दीप्तौ च (कहना, प्रशंसा करना, चमकना) लट्–शालते, लिट्–शशाले, ऌट्–शालिष्यते, लुङ–अशालिष्ट । सन्–शिशालिषते ।

**शास्**––२ प०, अनुशिष्टौ (पढ़ाना, शिक्षा देना, शासन करना, ठीक करना, परामर्श देना), लट्–शास्ति, लिट्–शशास, लुट्–शासिता, लुङ–अशिषत्, आ० लिङ–शिष्यात् । सन्–शिशासिषति, कर्म० लट्–शिष्यते, क्त–शिष्ट, क्त्वा–शासित्वा, शिष्ट्वा ।

**शास्**––(आ के साथ) २ आ०, इच्छायाम् (आशा करना, आशीर्वाद देना), लट्–आशास्ते, लिट्–आशशासे, लुङ–आशासिष्ट ।

**शि**––५ उ०, निशाने (तीक्ष्ण करना, धार रखना, उत्तेजित करना), लट्–शिनोति, शिनुते, लिट्–शिशाय–शिश्ये, ऌट्–शेष्यति-ते, लुङ–अशैषीत्–अशेष्ट । सन्–शिशीषति-ते ।

**शिक्ष्**––१ आ०, विद्योपादाने (सीखना, पढ़ना), लट्–शिक्षते, लिट्–शिशिक्षे, लुट्–शिक्षिता, लुङ–अशिक्षिष्ट । सन्–शिशिक्षिषते, क्त–शिक्षित ।

**शिङ्ख्**––१ प०, (जाना), लट्–शिङ्खति, लिट्–शिशिङ्ख, ऌट्–शिङ्खिष्यति, लुङ–अशिङ्खीत् ।

**शिघ्**—१ प०, आघ्राणे (सूँघना), लट्–शिंघति, लिट्–शिशिंघ, लुट्–शिंघिता, लुङ–अशिंघीत् ।

**शिञ्ज्**—२ आ०, अव्यक्ते शब्दे (झनझनाना, टन टन करना), लट्–शिङ्क्ते, लुङ–अशिञ्जिष्ट ।

**शिट्**—१ प०, अनादरे (अनादर करना), लट्–शेटति, लिट्–शिशेट, लुङ–अशेटीत् ।

**शिष्**—१ प०, हिंसायाम् (हिंसा करना, चोट पहुँचाना), लट्–शेषति, लिट्–शिशेष, लृट्–शेक्ष्यति, लुङ–अशिक्षत् (कुछ के मतानुसार सेट् है–शेषिता, शेषिष्यति, अशेषीत्) ।

**शिष्**—१ प०, १० उ० (शेष रहने देना, छोड़ना), (वि+शिष्, अतिशये, बढ़कर होना), लट्–शेषति, शेषयति-ते, लिट्–शिशेष, शेषयांचकार-चक्रे, लुङ–अशिक्षत्–अशिशिषत्–त ।

**शिष्**—७ प०, विशेषणे (छोड़ना, अन्यों से विशेषता बताना या छाँटना), लट्–शिनष्टि, लिट्–शिशेष, लुट्–शेष्टा, लुङ–अशिषत्, आ० लिङ–शिष्यात् । सन्–शिशिक्षति, णिच्–लट्–शेषयति-ते, क्त–शिष्ट ।

**शी**—२ आ०, स्वप्ने (सोना, लेटना), लट्–शेते, लिट्–शिश्ये, लुट्–शयिता, लुङ–अशयिष्ट, आ० लिङ–शयिषीष्ट । सन्–शिशयिषते, कर्म० लट्–शय्यते, लुङ–अशायि, णिच्–लट्–शाययति-ते, क्त–शयित ।

**शीक्**—१ आ०, सेचने (सींचना, धीरे से जाना), लट्–शीकते, लिट्–शशीके, लुङ–अशीकिष्ट ।

**शीक्**—१ प०, १० उ०, आमर्षणे (क्रुद्ध होना), (१० उ० भाषायां दीप्तौ च) (बोलना, चमकना), लट्–शीकति–शीकयति-ते, लिट्–शिशीक, शीकयांचकार–चक्रे ।

**शीभ्**—१ आ०, कत्थने (कहना, समाचार पहुँचाना), लट्–शीभते, लिट्–शिशीभे, लुङ–अशीभिष्ट ।

**शील्**—१ प०, समाधौ (ध्यान लगाना), लट्–शीलति, लिट्–शिशील, लुट्–शीलिता, लुङ–अशीलीत् ।

**शील्**—१० उ०, उपधारणे (पढ़ना, अभ्यास करना, आदर करना, पास जाना), लट्–शीलयति-ते, लिट्–शीलयांचकार–चक्रे, लुट्–शीलयिता, लुङ–अशिशीलत्–त । सन्–शिशीलयिषति-ते ।

**शुक्**—१ प०, (जाना, हिलना), लट्–शोकति, लिट्–शुशोक, लुट्–शोकिता, लुङ–अशोकीत् ।

**शुच्**—१ प०, शोके (शोक करना, दुःख करना, खेद प्रकट करना), लट्–शोचति, लिट्–शुशोच, लुट्–शोचिता, लुङ–अशोचीत् । सन्–शुशुचिषति, शुशोचिषति, क्त–शुचित, शोचित ।

**शुच्**—४ उ०, पूतीभावे (क्लेदे) (गीला होना, दुःखित होना), लट्–शुच्यति-ते, लिट्–शुशोच, शुशुचे, लुट्–शोचिता, लुङ–अशुचत्–अशोचीत्–अशोचिष्ट, क्त–शुचित ।

**शुच्य्**—१ प०, स्नानपीडनसुरासन्धानेषु (स्नान करना, रस निकालना, मथकर रस निचोड़ना), लट्–शुच्यति, लिट्–शुशुच्य, लुङ–अशुच्यीत् ।

**शुठ्**—१ प०, (रोकना, लँगड़ाना, विघ्न पड़ना), लट्–शोठति, लिट्–शुशोठ, लुट्–शोठिता, लुङ–अशोठीत् ।

**शुठ्**—१० उ०, आलस्ये (आलसी होना, सुस्त होना), लट्–शोठयति-ते, लिट्–शोठयांचकार–चक्र, लुङ–अशूशुठत्–त ।

**शुण्ठ्**—१ प०, (पूर्वोक्त शुठ् के तुल्य), लुङ–अशुण्ठीत् ।

**शुण्ठ्**—१ प०, १० उ०, शोषणे (सूखना, शुद्ध करना), लट्–शुण्ठति, शण्ठयति-ते, लिट्–शुशुण्ठ, शुण्ठयांचकार–चक्रे ।

**शुध्**—४ प०, शौचे ( शुद्ध होना, सन्देहों का निराकरण होना), लट्–शुध्यति, लिट्–शुशोध, लुट्–शोद्धा, लुङ–अशुधत्, कर्म० लट्–शुध्यते, लुङ–अशोधि, णिच्–लट्–शोधयति-ते, लुङ–अशूशुधत्–त, सन्–शुशुत्सति, क्त–शुद्ध ।

**शुन्**—६ प०, (जाना, हिलना), लट्–शुनति, लिट्–शुशोन, लुङ–अशोनीत् ।

**शुन्ध्**—१ प०, शुद्धौ–१० उ०, शौच कर्मणि (शुद्ध करना, स्वच्छ करना), लट्–शुन्धयति-ते, लिट्–शुशुन्ध, शुन्धयांचकार-चक्रे, लुङ–अशुन्धीत्, अशुशुन्धत्–त । क्त–शुन्धित ।

**शुभ्**—१ आ०, दीप्तौ (चमकना, प्रसन्न होना), लट्–शोभते, लिट्–शुशुभे, लुट्–शोभिता, लुङ–अशुभत्, अशोभिष्ट । सन्–शुशुभिषते, शुशोभिषते ।

**शुभ्**–शुम्भ्—१ प०, भाषणे, भासने हिंसायां च (कहना, चमकना, चोट पहुँचाना), लट्–शोभति, **शुम्भति**, लिट्–शुशोभ, शुशुम्भ, ऌट्–शोभिष्यति, शुम्भिष्यति, लुङ–अशोभीत्, अशुम्भीत् । क्त–शुभित, शोभित, शुम्भित ।

**शुभ्**—६ प०, शोभायाम् (चमकना, तेजस्वी होना), लट्–शुभति, क्त–शुभित, शतृ–शुभत् । (इसको शुम्भ् भी लिखते हैं) ।

**शुल्क्**—१० उ०, अतिस्पर्शने (प्राप्त करना, शुल्क देना, त्यागना), लट्–शुल्कयति-ते, लिट्–शुल्कयांचकार-चक्रे, लुङ–अशुशुल्कत्–त ।

**शुल्ब्** (**शुल्व्**)—१० उ०, माने (तोलना, उत्पन्न करना), लट्–शुल्बयति-ते, शुल्वयति-ते ।

**शुष्**—४ प०, शोषणे (सूखना, सुखाना, दुःखित होना), लट्–शुष्यति लिट्–शुशोष, लुट्–शोष्टा, लुङ–अशुषत्, णिच्–लट्–शोषयति-ते, लुङ–अशूशुषत्–त, सन्–शुशुक्षति, क्त–शुष्क ।

**शूर्**—४ आ०, हिंसास्तम्भनयोः (चोट मारना, दृढ़ होना), लट्–शूर्यते, लिट्–शुशूरे, लुङ–अशूरिष्ट, क्त–शूर्ण ।

**शूर्**—१० आ०, विक्रान्तौ (शूरवत् कार्य करना, बहादुरी दिखाना), लट्—शूरयते, लिट्—शूरयांचक्रे, लुङ—अशुशूरत । सन्—शुशूरयिषते ।

**शूर्प्**—१० उ०, माने (नापना), लट्—शूर्पयति-ते, लिट्—शूर्पयांचकार-चक्रे, लुङ—अशुशूर्पत्-त ।

**शूल्**—१ प०, रुजायां संघाते च (रुग्ण होना, इकट्ठा करना), लट्—शूलति, लिट्—शुशूल, लुङ—अशूलीत् ।

**शूष्**—१ प०, प्रसवे (उत्पन्न करना, जन्म देना), लट्—शूषति, लिट्—शुशूष ।

**शृध्**—१ आ०, शब्दकुत्सायाम् ( यह लट्, लुङ और ऌङ में परस्मैपदी भी है), (अपानवायु छोड़ना) लट्—शर्धते, लिट्—शशर्धे, लुट्—शर्धिता, ऌट् शर्धिष्यते, शर्त्स्यति, लुङ—अशृधत्—अशर्धिष्ट । सन्—शिशर्धिषते, शिशृत्सति, क्त—शृद्ध ।

**शृध्**—१ उ०, उन्दने (गीला होना) लट्—शर्धति-ते, ऌट्—शर्धिष्यति-ते, लुङ—अशर्धीत्—अशर्धिष्ट ।

**शृध्**—१ प०, १० उ०, प्रहसने (हँसी करना, मजाक उड़ाना), लट्—शर्धति, शर्धयति—ते, लुङ—अशर्धीत्-अशशर्धत्—त, लुङ—अशीशृधत्—त ।

**शॄ**—९ प०, हिंसायाम् (टुकड़े टुकड़े करना, मारना, हानि पहुँचाना), लट्—शृणाति, लिट्—शशार, लुट्—शरिता, शरीता, लुङ—अशारीत् । सन् शिशरिषति, शिशरीषति—शिशीर्षति, कर्म० लट्—शीर्यते, क्त—शीर्ण ।

**शेल्**—१ प०, (जाना, काँपना), लट्—शेलति, लिट्—शिशेल, लुट्—शेलिता, लुङ—अशेलीत् ।

**शेव्**—१ आ०, सेवने (सेवा करना), लट्—शेवते (शेष सेव् के तुल्य) ।

**शै**—१ प०, पाके (खाना बनाना), लट्—शायति, ऌट्—शास्यति, लुङ—अशासीत् ।

**शो**—४ प०, तनूकरणे (छीलना, पतला करना), लट्—श्यति, लिट्—शशौ, लुट्—शाता, लुङ—अशात्—अशासीत् । सन्—शिशासति, कर्म० लट्—शायते, णिच्-लट्—शाययति-ते, क्त—शात—शित ।

**शोण्**—१ प०, वर्णगत्योः (लाल रंग का होना, जाना), लट्—शोणति, लिट्—शुशोण, लुङ—अशोणीत् ।

**शौट्(शौड्)**—१ प०, गर्वे (गर्व करना), लट्—शौटति, शौडति, ऌट्—शौटिष्यति, लुङ—अशौटीत् ।

**श्चुत्**—१ प०, क्षरणे (चूना, टपकना), लट्—श्चोतति, लिट्—चुश्चोत, लुट्—श्चोतिता, लुङ—अश्चोतीत्—अश्चुतत् । क्त—श्चुतित, श्चोतित ।

**श्च्युत्**—१ प०, ( चूना, फैलाना), लट्—श्च्योतति ( शेष पूर्ववत्) ।

**श्मील्**—१ प०, निमेषणे (पलक मारना, आँख बन्द करना), लट्—श्मीलति, लिट्—शिश्मील, लुङ्—अश्मीलीत् ।

**श्यै**—१ आ०, (जाना, सुखाना, बधाई देना), लट्—श्यायते, लिट्—शिश्ये, लुट्—श्याता, लुङ्—अश्यास्त । क्त—श्यान, शीन, शीत ।

**श्रङ्क्**—१ आ०, (जाना, रेंगना), लट्—श्रङ्कते, लिट्—शश्रङ्के, लुङ्—अश्रङ्किष्ट ।

**श्रङ्ग्**—१ प०, (जाना, हिलना), लट्—श्रङ्गति, लिट्—शश्रङ्ग ।

**श्रण्**—१ प०, १० उ०, दाने (प्रायः वि के साथ) (देना, दान देना), लट्—श्रणति, श्राणयति-ते, लिट्—शश्राण, श्राणयांचकार—चक्रे, लुङ्—अश्राणीत्, अश्रणीत्—अशिश्रणत्—त, अशश्राणत्—त ।

**श्रथ्**—१ प०, हिंसायाम् (मारना), लट्—श्रथति, लिट्—शश्राथ, लुङ्—अश्रथीत्—अश्राथीत् ।

**श्रथ्**—१ प०, १० उ०, मोक्षणे हिंसायाम् इत्येके (मुक्त करना, छोड़ना, मारना), लट्—श्रथति, श्राथयति-ते, लिट्—शश्राथ, श्राथयांचकार—चक्रे, लुङ्—अश्रथीत्—अश्राथीत्—अशिश्रथत्—त ।

**श्रथ्**—१० उ०, दौर्बल्ये (दुर्बल होना), लट्—श्रथयति-ते, लिट्—श्रथयांचकार—चक्रे, लुट्—श्रथयिता, लुङ्—अशश्रथत्—त ।

**श्रन्थ्**—१ आ०, शैथिल्ये (शिथिल होना), लट्—श्रन्थयते, लिट्—शश्रन्थे, लुङ्—अश्रन्थिष्ट ।

**श्रन्थ्**—९ प०, विमोचनप्रतिहर्षयोः (ढीला करना, प्रसन्न होना, क्रमबद्ध लगाना), लट्—श्रथ्नाति, लिट्—शश्रन्थ, श्रेथ, लुट्—श्रन्थिता, लुङ्—अश्रन्थीत् । सन्—शिश्रन्थिषति ।

**श्रन्थ्**—१ प०, १० उ०, ग्रन्थसन्दर्भे (ग्रन्थ रचना करना), लट्—श्रन्थति, श्रन्थयति-ते ।

**श्रम्**—४ प०, तपसि खेदे च (परिश्रम करना, थकना), लट्—श्राम्यति लिट्—शश्राम, लुट्—श्रमिता, लुङ्—अश्रमत् । क्त—श्रान्त, क्त्वा—श्रमित्वा, श्रान्त्वा ।

**श्रम्भ्**—१ आ०, प्रमादे (लापरवाही करना), लट्—श्रम्भते, लिट्—शश्रम्भे, लुट्—श्रम्भिता, लुङ्—अश्रम्भिष्ट, क्त—श्रब्ध ।

**श्रा**—२ प०, पाके (पकाना, वस्त्र पहनाना), लट्—श्राति, लिट्—शश्रौ, लुट्—श्राता, लुङ्—अश्रासीत् । णिच्—लट्—श्रापयति-ते, क्त—श्रात, श्राण ।

**श्रि**—१ उ०, सेवायाम् (सेवा करना, निर्भर होना, आश्रय लेना), लट्—श्रयति-ते, लिट्—शिश्राय, शिश्रिये, लुट्—श्रयिता, लुङ्—अशिश्रियत्—त, आ० लिङ्—श्रीयात्, श्रयिषीष्ट । सन्—शिश्रीषति-ते, शिश्रयिषति-ते कर्म०—लट्—श्रीयते, लुङ्—अश्रायि, णिच्—लट्—श्राययति-ते, लुङ्—अशिश्रयत्—त, क्त—श्रित ।

**श्रिष्**—१ प०, दाहे (जलाना), लट्–श्रेषति, लिट्–शिश्रेष, लुट्–श्रेषिता, लुङ–अश्रेषीत् ।

**श्री**—९ उ०, पाके (पकाना, उबालना), लट्–श्रीणाति, श्रीणीते, लिट्–शिश्राय, शिश्रिये, लुट्–श्रेता, लुङ–अश्रैषीत्–अश्रेष्ट । सन्–शिश्रीषति-ते, क्त–श्रीत ।

**श्रु**—१ प०, श्रवणे (सुनना, आज्ञापालन करना ), लट्–शृणोति, लिट्–शश्राव, लुट्–श्रोता, लुङ–अश्रौषीत्, आ० लिङ–श्रूयात् । सन्–शुश्रूषते, कर्म० लट्–श्रूयते, लुङ–अश्रावि, णिच्–लट्–श्रावयति-ते, लुङ–अशुश्रवत्–त, अशिश्रवत्–त, क्त–श्रुत ।

**श्रै**—१ प०, पाके (खाना बनाना), लट्–श्रायति, लिट्–शश्रौ, लुट्–श्राता, लुङ–अश्रासीत्, आ० लिङ–श्रायात्–श्रेयात् ।

**श्रोण्**—१ प०, संघाते ( संग्रह करना, संग्रह किया जाना), लट्–श्रोणति, लिट्–शुश्रोण ।

**श्लङ्क्**—१ आ०, (जाना, हिलना), लट्–श्लङ्कते, लिट्–शश्लङ्के, लुङ–अश्लङ्किष्ट ।

**श्लङ्ग्**—१ आ०, (जाना, हिलना), लट्–श्लङ्गते, लिट्–शश्लङ्गे ।

**श्लथ्**—१ प०, हिंसायाम् (हिंसा करना, ढीला होना), लट्–श्लथति, लिट्–शश्लाथ, लुङ–अश्लथीत्–अश्लाथीत् ।

**श्लाख्**—१ प०, व्याप्तौ—(व्याप्त होना), लट्–श्लाखति, लिट्–शश्लाख, लुङ–अश्लाखीत् ।

**श्लाघ्**—१ आ०, कत्थने (प्रशंसा करना, अपनी बड़ाई करना, खुशामद करना), लट्—श्लाघते, लिट्–शश्लाघे, लुट्–श्लाघिता, लुङ–अश्लाघिष्ट । सन्–शिश्लाघिषते, क्त–श्लाघित ।

**श्लिष्**—१ प०, दाहे (जलाना), लट्–श्लेषति, लिट्–शिश्लेष, लुट्–श्लेषिता, लुङ–अश्लेषीत् । क्त–श्लिष्ट, क्त्वा–श्लिषित्वा, श्लेषित्वा, श्लिष्ट्वा ।

**श्लिष्**—४ प०, आलिङ्गने (चिपटना, आलिंगन करना, मिलना), लट्–श्लिष्यति, लिट्–शिश्लेष, लुट्–श्लेष्टा, लुङ–अश्लिक्षत् (आलिंगन अर्थ में), अश्लिषत् (अन्य अर्थों में) । सन्–शिश्लिक्षति, क्त–श्लिष्ट ।

**श्लिष्**—१० उ०, श्लेषणे ( आलिंगन करना), लट्–श्लेषयति-ते, लुङ–अशिश्लिषत्–त ।

**श्लोक्**—१ आ०, संघाते (श्लोक बनाना, प्राप्त करना), लट्–श्लोकते, लिट्–शुश्लोके, लुङ–अश्लोकिष्ट । सन्–शुश्लोकिषते ।

**श्लोण्**—१ प०, संघाते (इकट्ठा करना), लट्–श्लोणति, लिट्–शुश्लोण, लुङ–अश्लोणीत् ।

**श्वङ्क्**—१ आ०, (जाना, हिलना), लट्–श्वङ्कते, लिट्–शश्वङ्के ।

**श्वच्**—१ आ०, (जाना, खुलना), लट्–श्वचते, श्वञ्चते, लिट्–शश्वचे, शश्वञ्चे, लुङ–अश्वचिष्ट अश्वञ्चिष्ट ।

**श्वठ्**—१० उ०, असंस्कारगत्योः (अधूरा छोड़ना, जाना), लट्–श्वाठयति-ते, लिट्–श्वाठयांचकार–चक्रे, लृट्–श्वाठयिष्यति-ते, लुङ–अशिश्वठत्–त । (इसे श्वण्ट् भी लिखते हैं) ।

**श्वठ्**—१० उ० सम्यगवभाषणे (अच्छा या बुरा कहना), लट्–श्वठयति-ते, लिट्–श्वठयांचकार-चक्रे, लुङ–अशश्वठत्-ते ।

**श्वभ्र**—१ उ०, (जाना, गड्ढा खोदना), लट्–श्वभ्रयति–ते, लिट्–श्भ्रयांचकार–चक्रे ।

**श्वल्**—१ प०, आशुगमने (दौड़ना), लट्–श्वलति, लिट्–शश्वाल, लुट्–श्वलिता, लुङ–अश्वालीत् ।

**श्वल्क्**—१० उ०, परिभाषणे (कहना), लट्–श्वल्कयति-ते, लिट्–श्वल्कयांचकार–चक्रे, लुङ–अशश्वल्कत्–त ।

**श्वल्ल्**—१ प०, आशुगमने (दौड़ना), लट्–श्वल्लति, लिट्–शश्वल्ल, लुङ–अश्वल्लीत् ।

**श्वस्**—२ प०, प्राणने (साँस लेना, साँस छोड़ना), लट्–श्वसिति, लिट्–शश्वास, लुट्–श्वसिता, लुङ–अश्वसीत् । सन्–शिश्वसिषति, क्त–श्वसित (किन्तु आश्वस्त रूप होता है) ।

**श्वि**—१ प०, गतिवृद्ध्योः (जाना, सूजना, बढ़ना), लट्–श्वयति, लिट्–शुशाव, शिश्वाय, लुट्–श्वयिता, लुङ–अश्वत्–अश्वयीत्–अशिश्वियत्, आ० लिङ–शूयत् । सन्–शिश्वयिषति, कर्म०–लट्–शूयते, लुङ–अश्वायि, णिच्–क्त्–लट्–श्वातति-ते, लुङ–अशिश्वयत्–त, अशूशवत्–त, क्त–शून, क्तवा–श्वयित्वा, उच्छ्वय ।

**श्वित्**—१ आ०, वर्णे (सफेद होना), लट्–श्वेतते, लिट्–शिश्विते, लुट्–श्वतिता, लुङ–अश्वितत्–अश्वेतिष्ट ।

**श्विन्द्**—१ आ०, श्वैत्ये (सफेद होना), लट्–श्विन्दते, लिट्–शिश्विन्दे, लुङ–अश्विन्दिष्ट ।

## ष

**ष्ठिव्**—१, ४ प०, निरसने (थूकना), लट्–ष्ठीवति, ष्ठीव्यति, लिट्–तिष्ठव, टिष्ठेव लुट्–ष्ठेविता, लुङ–अष्ठेवीत्, आ० लिङ–ष्ठीव्यात् । सन्–तिष्ठेविषति, तुष्ठ्यूषति, टुष्ठ्यूषति, णिच्–लट्–ष्ठेवयति-ते, क्त–ष्ठ्यूत ।

**ष्वष्क्**—१ आ०, (जाना, हिलना), लट्–ष्वष्कते, लिट्–षष्वष्के, लुट्–ष्वष्किता, लुङ–अष्वष्किष्ट ।

## स

**सग्**—१ प०, संवरणे (ढकना), लट्–सगति, ऌट्–सगिष्यति, लुङ–असगीत् ।

**सघ्**—५ प०, हिंसायाम् (मारना), लट्–सघ्नोति, लुङ–असघीत्–असाघीत् ।

**सङ्केत्**—१० उ०, आमन्त्रणे (निमंत्रण देना), लट्–सङ्केतयति-ते, लुङ–अससङ्केतत्–त ।

**संग्राम्**—१० आ०, युद्धे (लड़ना), लट्–संग्रामयते, ऌट्–संग्रामयिष्यते, लुङ–अससंग्रामत ।

**सच्**—१ आ०, सेचने सेवने च (सींचना, सेवा करना), लट्–सचते, ऌट्–सचिष्यते, लुङ–असचिष्ट ।

**सच्**—१ उ०, समवाये (एकत्र होना), लट्–सचति-ते, लुङ–असचीत्, असाचीत्–असचिष्ट ।

**सञ्ज्**—१ प०, सङ्गे (आलिंगन करना, चिपटना, बाँधना), लट्–सञ्जति, लिट्–ससञ्ज, लुट्–सङ्क्ता, लुङ–असांक्षीत्, आ० लिङ–सज्यात् । कर्म०लट्–सज्यते, लुङ–असञ्जि, क्त–सक्त ।

**सट्**—१ प०, अवयवे (किसी वस्तु का अवयव होना), लट्–सटति, लुङ–असटत्–असाटीत् ।

**सट्ट्**—१० उ०, हिंसायाम् (मारना, दृढ़ होना, रहना, देना), लट्–सट्टयति-ते, लिट्–सट्टयांचकार–चक्रे, लुट्–सट्टयिता, लुङ–अससट्टत्–त ।

**सठ्**—१० उ०, (पूरा करना, सजाना, जाना, अधूरा छोड़ना), लट्–साठयति-ते, लिट्–साठयांचकार–चक्रे, लुट्–साठयिता, लुङ–असीसठत् ।

**सत्र्**—१० आ०, संतानक्रियायाम् (फैलाना), लट्–सत्रयते, ऌट्–सत्रयिष्यते, लुङ–अससत्रत ।

**सद्**—६ प०, विशरणगत्यवसादनेषु (तोड़ना, जाना, डूबना, नष्ट होना, सुस्त होना), लट्–सीदति, लिट्–ससाद, लुट्– सत्ता, लुङ–असदत्, आ०, लिङ–सद्यात् । सन्–सिषत्सति, कर्म० लट्–सद्यते, णिच्–लट्–सादयति-ते, लुङ–असीषदत्–त, क्त–सन्न ।

**सद**—१० उ०, (जाना), लट्–सादयति-ते, लुङ–असीषदत्–त, सन्–सिषादयिषति-ते ।

**सन्**—१ प०, सम्भक्तौ (बाँटना), ८ उ०, दाने (देना, पूजा करना), लट्–सनति, सनोति, सनुते, लिट्–ससान, सेने, लुट्–सनिता, लुङ–असानीत्–असनीत्–असनिष्ट–असात (८) । सन्–सिसनिषति, सिषासति, सिषनिषति–ते, सिषासति-ते, कर्म० लट्–सन्यते, सायते, क्त–(१) सनित, (८) सात ।

**सप्**—१ प०, समवाये (जोड़ना, मिलाना), लट्–सपति, लिट्–ससाप, लुट्–सपिता, लुङ–असपीत, असापीत् ।

**सभाज्**—१० उ०, प्रीतिदर्शनयोः (सेवा करना, आदर करना, प्रशंसा करना), लट्–सभाजयति-ते, लुङ–अससभाजत्–त ।

**सम्**—१ प०, वैकल्ये (व्याकुल होना), लट्–समति, लिट्–ससाम, लुङ–असामीत् ।

**सम्**—४ प०, परिणामे (परिणत होना), लट्–सम्यति, लिट्–ससाम, लुङ–असमत् ।

**सम्ब्**—१ प०, सम्बन्धने (संबद्ध होना), लट्–सम्बति, लिट्–ससम्ब, लुट्–सम्बिता, लुङ–असम्बीत् ।

**सम्ब्**—१० उ०, (एकत्र करना), लट्–सम्बयति-ते, लिट्–सम्बयांचकार–चक्रे, लुङ–अससम्बत्–त ।

**सय्**—१ आ०, (जाना, हिलना), लट्–सयते, लिट्–ससये ।

**सर्ज्**—१ प०, सर्जने (पाना, परिश्रम से प्राप्त करना), लट्–सर्जति, लिट्–ससर्ज, लुट्–सर्जिता, लुङ–असर्जीत् ।

**सर्ब्**–१ प०, (जाना, हिलना), लट्–सर्बति, लृट्–सर्बिष्यति, लुङ–असर्बीत् ।

**सर्व्**—१ प०, गतौ हिंसायां च (जाना, हिंसा करना), लट्–सर्वति, लिट्–ससर्व ।

**सल्**—१ प० (जाना, हिलना)' लट्–सलति, लिट्–ससाल, लुङ–असालीत्।

**सस्**—२ प०, स्वप्ने (सोना), लट्–सस्ति, लिट्–ससास (वैदिक) ।

**सस्ज्**—१ उ०, गतौ (जाना, तैयार होना), लट्–सज्जति-न्ते, लिट्–ससज्जे, लुट्–सज्जिता, लुङ–असज्जिष्ट, असज्जीत् । सन्–सिसज्जिषति-ते ।

**सह्**—१ आ०, मर्षणे ( सहना, दुःख सहना, करने देना), लट्–सहते, लिट्–सेहे, लुट्–सहिता, सोढा, लृट्–सहिष्यते, लुङ–असहिष्ट, आ० लिङ–सहिषीष्ट । सन्–सिसहिषते, णिच्–लट्–साहयति-न्ते, लुङ–असीषहत्–त, सन्– सिसाहयिषति-ते, क्त–सोढ ।

**सह्**—४ प०, तृप्तौ (प्रसन्न होना, सहना), लट्–सह्यति, लिट्–ससाह, लुट्–सहिता, सोढा, लुङ–असहीत् । सन्–सिसहिषति, क्त–सहित ।

**सह्**—१ प०, १० उ०, मर्षणे (सहन करना), लट्–सहति–साहयति-न्ते, लुङ–असहीत्, असीषहत्–त । क्त–सहित, साहित ।

**साध्**—५ प०, संसिद्धौ (पूरा करना, समाप्त करना). लट्–साध्नोति, लिट्–ससाध, लुट्–साद्धा, लृट्–सात्स्यति, लुङ–असात्सीत् । णिच्–लट्–साधयति-न्ते, सन्–सिषात्सति ।

**सान्त्व्**—१० उ०, सामप्रयोगे (सान्त्वना देना, समझाना, धैर्य बाँधना), लट्–सान्त्वयति-ते, लिट्–सान्त्वयांचकार–चक्रे, लुट्–सान्त्वयिता, लुङ–अससान्त्वत्–त । सन्–सिसान्त्वयिषति–ते, क्त–सान्त्वित ।

**साम्**—१० उ०, सान्त्वप्रयोगे (समझौता कराना, मनाना), लट्–सामयति-ते, लुङ–अससामत्–त । सन्–सिसामयिषति-ते ।

**सार्**—१० उ०, दौर्बल्ये (दुर्बल होना), लट्–सारयति-ते, लुङ–अससारत्–त ।

**सि**—५, ९ उ०, बन्धने (बाँधना), लट्–सिनोति, सिनुते, सिनाति, सिनीते, लिट्–सिषाय–सिष्ये, लुट्–सेता, लुङ–असैषीत्–असेष्ट, आ० लिङ–सायात्–सेषीष्ट । सन्–सिषीसति-ते, कर्म० लट्–सीयते, क्त–सित, सिन ।

**सिच्**—६ उ०, क्षरणे (सींचना, पानी देना, गर्भिणी होना), लट्–सिञ्चति-ते, लिट्–सिषेच, सिषिचे, लुट्–सेक्ता, लृट्–सेक्ष्यति-ते, लुङ–असिचत्–त, असिक्त, आ० लिङ–सिच्यात्–सिक्षीष्ट । सन्–सिसिक्षति-ते, कर्म० लट्–सिच्यते, लुङ–असेचि, णिच्–लट्–सेचयति-ते, क्त–सिक्त ।

**सिट्**—१ प०, अनादरे (अनादर करना), लट्–सेटति, लिट्–सिषेट, लुङ–असेटीत् ।

**सिध्**—१ प०, (जाना, हटाना), लट्–सेधति, लिट्–सिषेध, लुट्–सेधिता, लुङ–असेधीत्, आ० लिङ–सिध्यात् । णिच्–लट्–सेधयति-ते, लुङ–असीसिधत्–त, सन्–सिसिधिषति, सिसेधिषति, क्त–सिद्ध, क्त्वा–सिधित्वा, सेधित्वा, सिद्ध्वा ।

**सिध्**—१ प०, शास्त्रे माङ्गल्ये च (आदेश देना, मंगलयुक्त होना), लिट्–सिषेध (म० पु० एक० सिषेधिथ–सिषेद्ध) लुट्–सेधिता, सेद्धा, लुङ–असैधीत्–असैत्सीत् (द्वि० असेधिष्टाम्, असैद्धाम्) । सन्–सिसिधिषति, सिसित्सति, सिसेधिषति ।

**सिध्**—४ प०, संराद्धौ (पहुँचना, लक्ष्य प्राप्त करना, सफल होना, पूरा करना), लट्–सिध्यति, लिट्–सिषेध, लुट्–सेद्धा, लुङ–असिधत् । सन्–सिषित्सति, णिच्–साधयति–ते (सेधयति-ते, सचाई पता चलाना) ।

**सिन्व्**—१ प०, सेचने (गीला करना), लट्–सिन्वति, लिट्–सिषिन्व, लुट्–सिन्विता, लुङ–असिन्वीत् ।

**सिव्**—४ प०, तन्तुसन्ताने (सीना, लिखना, मिलाना), लट्–सीव्यति, लिट्–सिषेव, लुट्–सेविता, लुङ–असेवीत्, आ० लिङ–सीव्यात् । कर्म० लट्–सीव्यते, क्त–स्यूत, क्त्वा–सेवित्वा, स्यूत्वा ।

**सीक्**—१ आ०, सेचने (सींचना, जाना, हिलना), लट्–सीकते, लिट्–सिषीके, लुट्–सीकिता, लुङ–असीकिष्ट ।

**सु**—१ प०, प्रसवैश्वर्ययोः (उत्पन्न करना, समृद्ध होना), लट्—सवति लिट्—सुषाव, लुट्—सोता, लुङ—असावीत्, असौषीत् । सन्—सुसूषति-ते ।

**सु**—२ प०, प्रसवैश्वर्ययोः (उत्पन्न करना, ऐश्वर्ययुक्त होना), लट्—सौति, लिट्—सुषाव, लुट्—सोता, लुङ—असौषीत् ।

**सु**—५ प०, स्नपनपीडनस्नानसुरासन्धानेषु (सींचना, बहाना, नहाना, रस निकालना, अर्थ निकालना), लट्—सुनोति, सुनुते, लिट्—सुषाव—सुषवे, लुट्—सोता, लुङ—असावीत्—असोष्ट, आ० लिङ—सूयात्—सोषीष्ट । सन्—सुसूषति-ते, कर्म० लट्—सूयते, लुङ—असावि, णिच्—लट्—सावयति-ते, लुङ—असूषवत्—त ।

**सुख्**—१० उ०, सुखक्रियायाम् (सुखी करना), लट्—सुखयति-ते ।

**सुट्ट्**—१० उ०, अनादरे (अनादर करना), लट्—सुट्टयति-ते ।

**सुभ्**—१, ६ प०, भाषार्हिंसयोः (कहना, चोट पहुँचाना), लट्—सोभति, सुभति, लुङ—असोभीत् । (सुम्भ् १, ६ प० भी है) ।

**सू**—२, ४ आ०, प्राणिगर्भविमोचने (जन्म देना, उत्पन्न करना), लट्—सूते, सूयते, लिट्—सुषुवे, लुट्—सोता, सविता, लुङ—असोष्ट, असविष्ट, आ० लिङ—सोषीष्ट, सविषीष्ट । सन्—सुषूषते, कर्म० लट्—सूयते, लुङ—असावि, णिच्—लट्—सावयति-ते, लुङ—असूषवत्—त, क्त—(२) सूत, (४) सून ।

**सू**—६ प०, प्रेरणे (प्रेरणा देना, उत्तेजित करना), लट्—सुवति, लृट्—सविष्यति, लुङ—असावीत् ।

**सूच्**—१० उ०, पैशुन्ये (चुगली करना, बताना, संकेत करना, धोखा देना, पता लगाना), लट्—सूचयति-ते, लिट्—सूचयांचकार—चक्रे, लुट्—सूचयिता, लुङ—असुसूचत्—त । सन्—सुसूचयिषति-ते, क्त—सूचित ।

**सूत्र्**—१० उ०, वेष्टने (पिरोना, सूत्ररूप में लिखना, योजना बनाना), लट्—सूत्रयति-ते, लिट्—सूत्रयामास, लुट्—सूत्रयिता, लुङ—असुसूत्रत्—त ।

**सूद्**—१ आ०, क्षरणे (चोट मारना, बहाना, जमा करना, नष्ट करना) लट्—सूदते, लिट्—सुषूदे, लुट्—सूदिता, लुङ—असूदिष्ट । सन्—सुषूदिषते, णिच्—लट्—सूदयति-ते, लुङ—असूषुदत्—त ।

**सूद्**—१० उ०, क्षरणे (उत्तेजित करना, चोट मारना, पकाना, बहाना, प्रतिज्ञा करना), लट्—सूदयति-ते लिट्—सूदयांचकार—चक्रे, लुट्—सूदयिता, लुङ—असूषुदत्—त । क्त—सूदित ।

**सूर्क्ष्**—१ प०, आदरे (आदर करना, अनादर करना), लट्—सूर्क्षति, लिट्—सुषूर्क्ष, लुट्—सूर्क्षिता, लुङ—असूर्क्षीत् ।

**सृ**—**३** (वैदिक), १ प०, (जाना, दौड़ना), लट्–सर्सर्ति, सरति, (धावति, वह दौड़ता है), लिट्–ससार, लुट्–सर्ता, लुङ असरत् ( ३प० ), असार्षीत् (१ प०), आ०लिङ–स्रियात् । सन्–सिसीर्षति, णिच्–लट्–सारयति-ते ।

**सृज्**—४ आ०, विसर्गे (छोड़ना, भेजना), लट्–सृज्यते, ऌट्–स्रक्ष्यते, लुङ–असृष्ट । सन्–सिसृक्षते ।

**सृज्**—६ प०, विसर्गे (बनाना, उत्पन्न करना, बहाना), लट्–सृजति, लिट्–ससर्ज, लुट्–स्रष्टा, ऌट्–स्रक्ष्यति, लुङ–अस्राक्षीत्, आ० लिङ–सृज्यात्, सन्–सिसृक्षति, क्त–सृष्ट, तुम्–स्रष्टुम् ।

**सृप्**—१ प०, गतौ (जाना, रेंगना), लट्–सर्पति, लिट्–ससर्प, लुट्–सर्प्ता, स्रप्ता, लुङ–असृपत्, आ० लिङ–सृप्यात् । सन्–सिसृप्सति, णिच् लट्–सर्पयति-ते, लुङ–अससर्पत्–त, असीसृपत्–त, क्त–सृप्त ।

**सृभ्**—सृम्भ्–१ प०, हिंसायाम् (मारना, चोट पहुँचाना), लट्–सर्भति, सृम्भति, लिट्–ससर्भ, ससृम्भ, लुङ–असर्भीत्–असृम्भीत् ।

**सेक्**—१ आ०, (जाना, हिलना), लट्–सेकते, लिट्–सिषेके, लुट्–सेकिता, लुङ–असेकिष्ट ।

**सेल्**—१ प०, (जाना, हिलना), लट्–सेलति, लिट्–सिषेल, लुट्–सेलिता, लुङ–असेलीत् ।

**सेव्**—१ आ०, सेवने (सेवा करना, आनन्द लेना, लगे रहना), लट्–सेवते, लिट्–सिषेवे, ऌट्–सेविष्यते, लुङ–असेविष्ट । सन्–सिसेविषते, णिच् लट्–सेवयति-ते, लुङ–असिषेवत्–त, क्त–सेवित ।

**सै**—१ प०, क्षये (नष्ट होना, क्षीण होना), लट्–सायति, ऌट्–सास्यति, लुङ–असासीत् ।

**सो**—४ प०, अन्तकर्मणि (नष्ट करना, अवसान होना), लट्–स्यति, लिट्–ससौ, लुट्–साता, लुङ–असात्–असासीत्, आ० लिङ–सेयात् । सन्–सिषासति, कर्म०–लट्–सीयते, णिच्–लट्–साययति-ते, क्त–सित ।

**स्कन्द्**—१ प०, गतिशोषणयोः (जाना, कूदना, सूखना, नष्ट होना), लट्–स्कन्दति, लिट्–चस्कन्द, लुट्–स्कन्त्ता, लुङ–अस्कन्दत्, अस्कान्त्सीत्, आ० लिङ–स्कद्यात् । सन्–चिस्कन्त्सति, कर्म० लट्–स्कद्यते, णिच्–लट्–स्कन्दयति-ते, लुङ–अचस्कन्दत्–त, क्त–स्कन्न ।

**स्कन्ध्**—१० उ० ( एकत्र करना), लट्–स्कन्धयति-ते, लिट्–स्कन्धयाञ्चकार–चक्रे ।

**स्कम्भ्**—१ आ०, प्रतिबन्धने (रोकना), लट–स्कम्भते, लिट्–चस्कम्भे, लुङ–अस्कम्भिष्ट ।

**स्कम्भ्**—५, ९ प०, रोधनस्तम्भनयोः (उत्पन्न करना, विघ्न डालना, रोकना), लट्—स्कभ्नोति—स्कभ्नाति, लिट्—चस्कम्भ, लुट्—स्कम्भिता, लुङ—अस्कभत्—अस्कम्भीत्, आ० लिङ—स्कभ्यात् । क्त—स्कब्ध ।

**स्कु**—५, ९ उ०, आप्रवणे (उछलते हुए जाना, पहुँचना, ढकना, उठाना), लट्—स्कुनोति, स्कुनुते, स्कुनाति स्कुनीते, लिट्—चुस्काव, चुस्कुवे, लुट्—स्कोता, लुङ—अस्कौषीत्, अस्कोष्ट । सन्—चुस्कूषति ।

**स्कुन्द्**—१ आ०, आप्रवणे (कूदना, उठाना), लट्—स्कुन्दते, लिट्—चुस्कुन्दे, लुङ—अस्कुन्दिष्ट ।

**स्कुम्भ्**—५, ९ प०, रोधने धारणे च (रोकना, पकड़ना), लट्—स्कुभ्नोति, स्कुभ्नाति, लुङ—अस्कुम्भीत् ।

**स्खद्**—१ आ०, विद्रावणे (भगाना, काटना, नष्ट करना), लट्—स्खदते, लिट्—चस्खदे, लृट्—स्खदिष्यते, लुङ—अस्खदिष्ट ।

**स्खल्**—१ प०, सञ्चलने (हिलना, त्रुटि करना, लड़खड़ाना), लट्—स्खलति, लिट्—चस्खाल, लुट्—स्खलिता, लुङ—अस्खालीत् । सन्—चिस्खलिषति, क्त—स्खलित ।

**स्तक्**—१ प०, प्रतिघाते (रोकना, चोट मारना), लट्—स्तकति, लिट्—तस्ताक, लुट्—स्तकिता, लुङ—अस्ताकीत् ।

**स्तग्**—१ प०, संवरणे (ढकना), लट्—स्तगति, लृट्—स्तगिष्यति, लुङ—अस्तगीत् ।

**स्तन्**—१ प०, शब्दे (शब्द करना, गरजना, साँस लेना), लट्—स्तनति, लिट्—तस्तान, लुट्—स्तनिता, लुङ—अस्तनीत्—अस्तानीत् । सन्—तिस्तनिषति, णिच्—लट्—स्तनयति-ते ।

**स्तन्**—१० उ०, देवशब्दे (बादल गरजना), लट्—स्तनयति-ते, लिट्—स्तनयाञ्चकार—चक्रे, लुङ—अतस्तनत्—त ।

**स्तम्**—१ प०, अवैक्लव्ये (व्याकुल न होना), लट्—स्तमति, लिट्—तस्ताम, लुङ—अस्तमीत् ।

**स्तम्भ्**—१ आ०, प्रतिबन्धने (रोकना, अचल बनाना, सहारा देना), लट्—स्तम्भते, लिट्—तस्तम्भे, लुट्—स्तम्भिता, लुङ—अस्तम्भिष्ट । सन्—तिस्तम्भिषते ।

**स्तम्भ्**—५, ९ प०, रोधने धारणे च (रोकना, जमाना, सहारा देना), लट्—स्तभ्नोति, स्तभ्नाति, लिट्—तस्तम्भ, लुट्—स्तम्भिता, लुङ—अस्तम्भत्, अस्तम्भीत्, आ० लिङ—स्तंभ्यात् । सन्—तिस्तम्भिषति, कर्म० लट्—स्तम्भ्यते, णिच्—लट्—स्तम्भयति-ते, क्त—स्तब्ध, क्त्वा—स्तम्भित्वा, स्तब्ध्वा ।

**स्तिप्**—१ आ०, क्षरणे (चूना, डालना), लट्—स्तेपते, लिट्—तिष्टिपे, लुङ—अस्तेपिष्ट । सन्—तिस्तिपिषते, तिस्तेपिषते ।

**स्तिम्-स्तीम्**—४ प०, आर्द्रीभावे (गीला होना, स्थिर होना), लट्—स्तिम्यति, स्तीम्यति, लिट्—तिष्टेम, तिष्टीम, लृट्—स्तेमिष्यति, स्तीमिष्यति, लुङ्—अस्तेमीत्, अस्तीमीत् ।

**स्तु**—२ उ०, स्तुतौ (प्रशंसा करना, स्तुति करना, मन्त्रों से स्तुति करना), लट्—स्तौति, स्तवीति, स्तुते—स्तुवीते, लिट्—तुष्टाव, तुष्टुवे, लुट्—स्तोता, लृट्—स्तोष्यति-ते, लुङ्—अस्तावीत्—अस्तोष्ट, आ० लिङ्—स्तूयात्—स्तोषीष्ट । सन्—तुष्टूषति-ते, कर्म० लट्—स्तूयते, लुङ्—अस्तावि, णिच्—लट्—स्तावयति-ते, लुङ्—अतुष्टवत्—त, क्त—स्तुत ।

**स्तुभ्**—१ आ०, स्तम्भे (रोकना, दबाना), लट्—स्तोभते, लिट्—तुष्टुभे, लुङ्—अस्तोभिष्ट । क्त्वा—स्तुभित्वा, स्तुब्ध्वा ।

**स्तुम्भ्**—५, ९ प०, रोधने धारणे च (रोकना, निकालना, धारण करना), लट्—स्तुभ्नोति, स्तुभ्नाति, लिट्—तुष्टुम्भ, लुङ्—अस्तुम्भीत् ।

**स्तूप्**—४ प०, १० उ०, समुच्छ्राये (इकट्ठा करना, स्तूप आदि खड़ा करना), लट्—स्तूप्यति, स्तूपयति-ते, लिट्—तुष्टूप, स्तूपयांचकार—चक्रे, लुङ्—अस्तूपीत्, अतुष्टुपत्—त ।

**स्तृ**—५ उ०, आच्छादने (ढकना), लट्—स्तृणोति, स्तृणुते, लिट्—तस्तार—तस्तरे, लुट्—स्तर्ता, लुङ्—अस्तार्षीत्—अस्तरिष्ट, अस्तृत, आ० लिङ्—स्तर्यात्, स्तृषीष्ट, स्तरिषीष्ट । सन्—तिस्तीर्षति-ते, कर्म० लट्—स्तर्यते, णिच्—लट्—स्तारयति-ते ।

**स्तृक्ष्**—१ प० (जाना, हिलना) लट्—स्तृक्षति, लिट्—तस्तृक्ष, लुङ्—अस्तृक्षीत् ।

**स्तृह्**—६ प०, हिंसायाम् (मारना, चोट पहुँचाना) लट्—स्तृहति, लिट्—तस्तर्ह, लुट्—स्तर्हिता, स्तर्ढा, लुङ्—अस्तर्हीत्, अस्तृक्षत् । सन्—तिस्तृहिषति—तिस्तृक्षति, णिच्—लट्—स्तर्हयति-ते, लुङ्—अतस्तर्हत्—त, अतिस्तृहत्—त ।

**स्तॄ**—९ उ०, आस्तरणे (फैलाना, ढकना), लट्—स्तृणाति, **स्तृणीते**, लिट्—तस्तार, तस्तरे, लुट्—स्तरिता, स्तरीता, लुङ्—अस्तरीत्, अस्तरिष्ट, अस्तरीष्ट, अस्तीर्ष्ट, आ०, लिङ्—स्तीर्यात्, स्तरिषीष्ट—स्तीर्षीष्ट । कर्म० लट्—स्तीर्यते । सन्—तिस्तरिषति-ते ।

**स्तेन्**—१० उ०, चौर्ये (चुराना), लट्—स्तेनयति-ते, लिट्—स्तेनयांचकार—चक्रे, लुङ्—अतिस्तेनत्—त ।

**स्तेप्**—१ आ०, क्षरणे (चूना, टपकना), लट्—स्तेपते, लिट्—तिष्टेपे, लुट्—स्तेपिता, लुङ्—अस्तेपिष्ट ।

**स्तै**—१ प०, वेष्टने (ढकना, पहनना, सजाना), लट्—स्तायति, लिट्—तस्तौ, लुङ्—अस्तासीत् ।

**स्त्यै**——१ प०, शब्दसंघातयोः (शब्द करना, ढेर बनाना, फैलाना), लट्–स्त्यायति, लिट्–तस्त्यौ, लुट्–स्त्याता, लुङ–अस्त्यासीत्, आ० लिङ–स्त्यायात्, स्त्येयात् । सन्–तिस्त्यासति, णिच्–लट्–स्त्यापयति-ते ।

**स्थग्**——१ प०, संवरणे (ढकना), लट्–स्थगति, लिट्–तस्थाग, लुट्–स्थगिता, लुङ–अस्थगीत् । सन्–तिस्थगिषति, णिच्–लट्–स्थगयति-ते, लुङ–अतिष्ठगत्–त ।

**स्थल्**——१ प०, स्थाने (स्थिर होकर खड़ा होना), लट्–स्थलति, लिट्–तस्थाल, लृट्–स्थलिष्यति, लुङ–अस्थालीत् ।

**स्था**——१ प०, गतिनिवृत्तौ (रुकना, प्रतीक्षा करना, होना, पास रहना), लट्–तिष्ठति, लिट्–तस्थौ, लुट्–स्थाता, लुङ–अस्थात्, आ०, लिङ–स्थेयात् । सन्–तिष्ठासति, कर्म० लट्–स्थीयते, लुङ–अस्थायि, णिच्–लट्–स्थापयति, लुङ–अतिष्ठिषत्–त, क्त–स्थित, क्त्वा–स्थित्वा ।

**स्थुड्**——१ प०, संवरणे (ढकना), लट्–स्थुडति, लिट्–तुस्थोड, लुट्–स्थुडिष्यति, लुङ–अस्थुडीत् ।

**स्थूल्**——(नामधातु)–(मोटा होना), लट्–स्थूलयति, लुङ–अतुस्थूलत् ।

**स्नस्**——४ प०, निरसने (निकालना), लट्–स्नस्यति, लिट्–सस्नास, लुङ–अस्नसीत्, अस्नासीत् ।

**स्ना**——२ प०, शौचे (नहाना), लट्–स्नाति, लिट्–सस्नौ, लुट्–स्नाता, लुङ–अस्नासीत्, आ० लिङ–स्नायात्, स्नेयात् । सन्–सिस्नासति, कर्म०–लट्–स्नायते, लुङ–अस्नायि, क्त–स्नात, (निष्णात, दक्ष या चतुर), णिच् लट्–स्नपयति–स्नापयति ।

**स्निह्**——४ प०, स्नेहे (स्नेह करना, दयालु होना), लट्–स्निह्यति, लिट्–सिष्णेह, लुट्–स्नेहिता, स्नेग्धा, स्नेढा, लुङ–अस्निहत् । सन्–सिस्निक्षति, सिस्निहिषति, सिस्नेहिषति, क्त–स्निग्ध–स्नीढ, क्त्वा, स्निहित्वा, स्नेहित्वा, स्निग्ध्वा, स्नीढ्वा ।

**स्निह्**——१० उ०, स्नेहे (प्रेम करना), लट्–स्नेह्यति-ते, लुङ–असिष्णिहत्, क्त–स्नेहित ।

**स्नु**——२ प०, (बहना, रस निकालना) लट्–स्नौति, लिट्–सुष्णाव, लुट्–स्नविता, लुङ–अस्नावीत्, आ० लिङ–स्नूयात्, कर्म०–लट्–स्नूयते, णिच्–लट्–स्नावयति–ते, लुङ–असुष्णवत्–त, क्त–स्नुत ।

**स्नु**——४ प०, उद्गिरणे (उगलना), लट्–स्नुह्यति, लिट्–सुष्णोह, लुट्–स्नोहिता, स्नोग्धा, स्नोढा, लृट्–स्नोहिष्यति, स्नोक्ष्यति, लुङ–अस्नुहत्, क्त–स्नुग्ध, स्नूढ ।

**स्नै**——१ प०, वेष्टने (शोभायामित्येके, शौच इत्यन्ये) (सजाना, लपेटना), लट्–स्नायति, लिट्–सस्नौ, लुङ–अस्नासीत् ।

**स्पन्द्**—१ आ०, किञ्चिच्चलने (फड़कना, जाना), लट्—स्पन्दते, लिट्—पस्पन्दे, लुट्—स्पन्दिता, लुङ—अस्पन्दिष्ट । सन्—पिस्पन्दिषति, णिच्-लट्—स्पन्दयति, लुङ—अपस्पन्दत्, क्त—स्पन्दित ।

**स्पर्ध्**—१ आ०, संघर्षे (स्पर्धा करना, सन्तुष्ट रहना), लट्—स्पर्धते, लिट्—पस्पर्धे, लुट्—स्पर्धिता, लुङ—अस्पर्धिष्ट, सन्—पिस्पर्धिषते ।

**स्पर्श्**—१० आ०, (छूना, लेना), लट्—स्पर्शयते, लिट्—स्पर्शयांचक्रे—आदि, लुट्—स्पर्शयिता, लुङ—अपस्पर्शत ।

**स्पश्**—१ उ०, बाधनस्पर्शनयोः (विघ्न डालना, छूना, दूत का काम करना), लट्—स्पशति-ते, लिट्—पस्पाश, पस्पशे, लुङ—अस्पशीत्, अस्पाशीत्, अस्पशिष्ट ।

**स्पश्**—१० आ०, ग्रहणसंश्लेषणयोः (लेना, आलिंगन करना), लट्—स्पाशयते, लुङ—अपिस्पशत ।

**स्पृ**—५ उ०, (प्रशंसा करना, रक्षा करना), लट्—स्पृणोति, लिट्—पस्पार (वैदिक) ।

**स्पृश्**—६ प०, संस्पर्शने (छूना, संपर्क में आना), लट्—स्पृशति, लिट्—पस्पर्श, लुट्—स्पर्ष्टा, स्प्रष्टा, लुङ—अस्प्राक्षीत्, अस्पार्क्षीत्, अस्पृक्षत्, आ० लिङ—स्पृश्यात् । सन्—पस्पृक्षति, णिच्—लट्—स्पर्शयति-ते, क्त—स्पृष्ट, तुम्—स्पर्ष्टुम्, स्प्रष्टुम् ।

**स्पृह्**—१० उ०, ईप्सायाम् (चाहना, ईर्ष्या करना), लट्—स्पृहयति-ते, लिट्—स्पृहयांचकार—चक्रे, लुट्—स्पृहयिता, लुङ—अपिस्पृहत्—त । कर्म० लट्—स्पृह्यते, सन्—पिस्पृहयिषति-ते, क्त—स्पृहित ।

**स्पॄ**—९ प०, (मारना, चोट पहुँचाना), लट्—स्पॄणाति, लिट्—पस्पार ।

**स्फर्**—६ प०, (कुटादि) संचलने (फड़कना, काँपना), लट्—स्फरति, लिट्—पस्फार, लुङ—अस्फारीत् ।

**स्फाय्**—१ आ०, वृद्धौ (बढ़ना, मोटा होना), लट्—स्फायते, लिट्—पस्फाये, लुट्—स्फायिता, लुङ—अस्फायिष्ट । णिच्—लट्—स्फावयति-ते, लुङ—अपिस्फवत्—त, सन्—पिस्फायिषते, क्त—स्फीत ।

**स्फिट्**—१० उ०, स्नेहने (प्रेम करना), लट्—स्फेटयति-ते, लिट्—स्फेटयाञ्चकार—चक्रे, लुङ—अपिस्फिटत्—त ।

**स्फिट्ट्**—१० उ०, हिंसायाम् (मारना), लट्—स्फिट्टयति-ते, लुङ—अपिस्फिट्टत्—त ।

**स्फुट्**—१ आ०, विकसने (खिलना, विकसित होना), प०, विशरणे—(फटना), लट्—स्फोटति-ते, लिट्—पुस्फोट—पुस्फुटे, लुङ—अस्फुटत्—अस्फोटीत्—अस्फोटिष्ट । सन्—पुस्फुटिषति, पुस्फुटिषते—पुस्फोटिषते, णिच्—लट्—स्फोटयति-ते, लुङ—अपुस्फुटत्—त, क्त—स्फुटित, स्फोटित ।

**स्फुट्**—६ प०, (कुटादि) विकसने (फट जाना, फूल खिलना), लट्—स्फुटति, लिट्—पुस्फोट (म० पु० एक० पुस्फुटिथ), लुट्—स्फुटिता, लुङ—अस्फुटीत्। सन्—पुस्फुटिषति, क्त—स्फुटित ।

**स्फुट्**—१० उ०, भेदने (खुल जाना), लट्—स्फोटयति-ते, लिट्—स्फोटयांचकार—चक्रे, लुङ—अपुस्फुटत्—त । सन्—पुस्फोटयिषति-ते

**स्फुड्**—६ प०, संवरणे—(कुटादि) (ढकना), लट्—स्फुडति, लिट्—पुस्फोड ( म० पु० एक० पुस्फुडिथ), लुङ—अस्फुडीत् ।

**स्फुण्ट्**—१ प०, परिहासे (हँसी करना), लट्—स्फुण्टति, लिट्—पुस्फुण्ट, ऌट्—स्फुण्टिष्यति, लुङ—अस्फुण्टीत् ।

**स्फुण्ट्**—१० उ०, (हँसी करना, मजाक उड़ाना), लट्—स्फुण्टयति-ते, लुङ—अपुस्फुण्टत्—त ।

**स्फुण्ड्**—१ प०, १० उ०, (स्फुण्ट् के तुल्य) ।

**स्फुर्**—६ प०, स्फुरणे—(कुटादि) (फड़कना, काँपना, चमकना), लट्—स्फुरति, लिट्—पुस्फोर, लुट्—स्फुरिता, लुङ—अस्फुरीत् । क्त—स्फुरित, णिच्—लट्—स्फोरयति—स्फारयति ।

**स्फुर्च्छ्**—१ प०, विस्तृतौ (फैलाना), लट्—स्फूर्च्छति, लिट्—पुस्फूर्च्छ, लुङ—अस्फूर्च्छीत् । क्त—स्फूर्च्छित, स्फूर्ण ।

**स्फुल्**—१ प०, सञ्चलने (कुटादि) (काँपना, इकट्ठा करना, मारना), लट्—स्फुलति, लिट्—पुस्फोल, (म० पु० एक० पुस्फुलिथ), लुङ—अस्फुलीत् ।

**स्फुर्ज्**—१ प०, वज्रनिर्घोषे (बिजली का गड़गड़ाना, चमकना), लट्—स्फूर्जति, लिट्—पुस्फूर्ज, लुट्—स्फूर्जिता, लुङ—अस्फूर्जीत् । सन्—पुस्फूर्जिषति, णिच् लट्—स्फूर्जयति-ते, लुङ—अपुस्फूर्जत्—त, क्त—स्फूर्जित—स्फूर्ण ।

**स्मि**—१ आ०, ईषद्धसने (मुस्कराना, खिलना), लट्—स्मयते, लिट्—सिष्मिये, लुट्—स्मेता, लुङ—अस्मेष्ट । सन्—सिस्मयिषते, णिच्—लट्—स्माययति-ते, स्मापयते ।

**स्मिट्**—१० उ०, अनादरे (अनादर करना, प्रेम करना, जाना), लट्—स्मेटयति-ते, लिट्—स्मेटयांचकार—चक्रे, लुट्—स्मेटयिता, लुङ—असिस्मिटत्—त ।

**स्मील्**—१ प०, निमेषणे (पलक मारना), लट्—स्मीलति, लिट्—सिस्मील ।

**स्मृ**—१ प०, चिन्तायाम् (स्मरण करना), आध्याने (ध्यान करना, चाहना), लट्—स्मरति, लिट्—सस्मार, लुट्—स्मर्ता, लुङ—अस्मार्षीत् । सन्—सुस्मूर्षति, णिच्—लट्—स्मारयति-ते, स्मरयति-ते (आध्याने) । कर्म० लट्—स्मर्यते, लुङ—अस्मारि—अस्मरि, क्त—स्मृत ।

**स्मृ**—५ प०, (जीवित रहना, प्रसन्न करना), लट्—स्मृणोति, लिट्—सस्मार । णिच्—स्मारयति-ते ।

**स्यन्द्**—१ आ०, प्रस्रवणे (बहना, टपकना, दौड़ना), लट्—स्यन्दते, लुट्—स्यन्दिता, स्यन्ता, ऌट्—स्यन्दिष्यते, स्यन्त्स्यति-ते, लुङ—अस्यन्दत्—अस्यन्दिष्ट, अस्यन्त, आ० लिङ—स्यन्दिषीष्ट, स्यन्त्सीष्ट । सन्—सिष्यन्दिषते, सिस्यन्त्सति-ते, क्त—स्यन्न क्त्वा—स्यन्दित्वा, स्यन्त्वा, णिच्—लट्—स्यन्दयति-ते ।

**स्यम्**—१ प०, शब्दे (शब्द करना, जाना, सोचना), लट्—स्यमति, लिट्—सस्याम, लुट्—स्यमिता, लुङ—अस्यमीत् । सन्—सिस्यमिषति, क्त—स्यान्त, क्त्वा—स्यमित्वा, स्यान्त्वा ।

**स्यम्**—१० आ०, वितर्के (चिन्तन करना), लट्—स्यामयते, लिट्—स्यामयांचक्रे, लुट्—स्यामयिता, लुङ—असिस्यमत् ।

**स्रंस्**—१ आ०, अवस्रंसने (सरकना, गिरना, लटकना, जाना, प्रसन्न होना), लट्—स्रंसते, लिट्—सस्रंसे, लुट्—स्रंसिता, लुङ—अस्रंसिष्ट, अस्रसत्, आ० लिङ—स्रंसिषीष्ट, सन्—सिस्रंसिषते, कर्म०—लट्—स्रस्यते, लुङ—अस्रंसि, क्त—स्रस्त, क्त्वा—स्रंसित्वा ।

**स्रंह्**—१ आ०, (विश्वास करना), लट्—स्रंहते, लिट्—सस्रंहे, लुट्—स्रंहिता, लुङ—अस्रंहिष्ट ।

**स्रङ्क्**—१ आ०, गतौ (जाना), लट्—स्रङ्कते, लिट्—सस्रङ्के, लुङ—अस्रंकिष्ट ।

**स्रम्भ्**—१ आ०, विश्वासे (विश्वास करना), लट्—स्रम्भते, लिट्—सस्रम्भे, लुट्—स्रम्भिता, लुङ—अस्रभत्—अस्रम्भिष्ट । णिच्—लट्—स्रम्भयति-ते, लुङ—असस्रम्भत्—त, सन्—सिस्रम्भिषते, क्त—स्रब्ध, क्त्वा—स्रम्भित्वा, स्रब्ध्वा ।

**स्रिव्**—४ प०, गतिशोषणयोः (जाना, सूखना), लट्—स्रीव्यति, लिट्—सिस्रेव, ऌट्—स्रेविष्यति, लुङ—अस्रेवीत् । णिच्—लट्—स्रेवयति-ते, असिस्रिवत्—त, सन्—सिस्रेविषति, सुस्रयूषति, कर्म० लट्—स्रीव्यते, लुङ—अस्रेवि, क्त—स्रुत ।

**स्रु**—१ प०, (बहना, टपकना, जाना), लट्—स्रवति, लिट्—सुस्राव, लुट्—स्रोता, लुङ—असुस्रवत्, आ० लिङ—स्रूयात् । णिच्—लट्—स्रावयति, लुङ—असुस्रवत्, असिस्रवत्, सन्—सुस्रूषति, क्त—स्रुत ।

**स्रेक्**—१ आ०, (जाना), लट्—स्रेकते, लुट्—स्रेकिष्यते, लुङ—अस्रेकिष्ट ।

**स्रै**—१ प०, (उबालना, गर्म करना), लट्—स्रायति, लिट्—सस्रौ । (शेष श्रै के तुल्य) ।

**स्वञ्ज्**—१ आ०, परिष्वंगे (आलिंगन करना), लट्—स्वञ्जते, लिट्—सस्वञ्जे, सस्वजे, लुट्—स्वङ्क्ता, ऌट्—स्वङक्ष्यते, लुङ—अस्वङक्त, आ० लिङ—स्वङक्षीष्ट । सन्—सिस्वङक्षते, कर्म० लट्—स्वज्यते, लुङ—अस्वञ्जि । णिच्—लट्—स्वञ्जयति-ते, लुङ—असस्वञ्जत्—त, क्त—स्वक्त, क्त्वा—स्वङत्वा, स्वक्त्वा ।

**स्वद्**—१ आ०, आस्वादने (स्वादिष्ट होना, स्वाद लेना), लट्—स्वदते, लिट्—सस्वदे, लुट्—स्वदिता, लुङ—अस्वदिष्ट । णिच्—लट्—स्वादयति-ते, लुङ—असिस्वदत्—त, सन्—सिस्वदिषते, क्त—स्वदित ।

**स्वद्**—१० उ०, (स्वादिष्ट बनाना), लट्—स्वादयति-ते, लिट्—स्वादयांचकार—चक्रे, लुट्—स्वादयिता, लुङ—असिस्वदत्—त ।

**स्वन्**—१ प०, शब्दे (शब्द करना, हल्ला करना, गाना), लट्—स्वनति, लिट्—सस्वान, लट्—स्वनिता, लुङ—अस्वनीत्—अस्वानीत् । णिच्—लट्—स्वानयति-ते, लुङ—असिस्वनत्—त, सन्—सिस्वनिषते, क्त—स्वनित, स्वान्त ।

**स्वन्**—१ प०, अवतंसने (सजाना) पूर्ववत् । णिच्—लट्—स्वनयति-ते, कर्म० लट्—स्वन्यते, लुङ—अस्वनि अस्वानि, ।

**स्वप्**—२ प०, शयने (सोना) लट्—स्वपिति, लङ—अस्वपीत्—अस्वपत्, लिट्—सुष्वाप, लुट्—स्वप्ता, लुङ—अस्वाप्सीत्, आ० लिङ—सुप्यात् । सन्—सुषुप्सति, णिच्—लट्—स्वापयति-ते, लुङ—असिष्वपत्—त, कर्म० लट्—सुप्यते, क्त—सुप्त ।

**स्वर्**—१० उ, आक्षेपे (दोष निकालना, निन्दा करना), लट्—स्वरयति—ते, लिट्—स्वरयांचकार—चक्रे, लुट्—स्वरयिता, लुङ—असस्वरत्, आ० लिङ—स्वर्यात्—स्वरयिषीष्ट । सन्—सिस्वरयिषति-ते ।

**स्वर्द्**—१ आ०, आस्वादने (चखना), लट्—स्वर्दते, लिट्—सस्वर्दे, लुट्—स्वर्दिता, लुङ—अस्वर्दिष्ट । सन्—सिस्वर्दिषते ।

**स्वल्**—१ प०, (जाना, हिलना), लट्—स्वलति, लिट्—सस्वाल ।

**स्वस्क्**—१ आ०, (जाना), लट्—स्वस्कते, लिट्—सस्वस्के ।

**स्वाद्**—१ आ०, आस्वादने (देखो स्वद् धातु) (स्वाद लेना, स्वादिष्ट होना), लट्—स्वादते, लिट्—सस्वादे, लृट्—स्वादिष्यते, लुङ—अस्वादिष्ट । सन्—सिस्वादिषते ।

**स्वाद्**—१० उ०, आस्वादने (चखना), लट्—स्वादयति-ते, लुङ—असिस्वदत्—त । सन्—सिस्वादयिषति-ते, क्त—स्वादित ।

**स्विद्**—१ आ०, (स्नेहनमोचनयोः, स्नेहनमोहनयोरित्येके), (चिकना होना, तेलयुक्त होना), लट्—स्वेदते, लिट्—सिस्विदे, लृट्—स्वेदिष्यते, लुङ—अस्विदत्—अस्वेदि । णिच्—लट्—स्वेदयति-ते, सन्—सिस्विदिषते, सिस्वेदिषते, क्त—स्विन्न, स्विदित, स्वेदित ।

**स्विद्**—४ प०, गात्रप्रक्षरणे (पसीना बहना), लट्—स्विद्यति, लिट्—सिष्वेद, लुट्—स्वेत्ता, लुङ—अस्विदत् । क्त—स्विन्न ।

**स्वुर्च्छ्**—१ प०, (फैलाना, भूलना), लट्—स्वूर्च्छति ।

**स्वृ**—१ प०, शब्दोपतापयोः (शब्द करना, प्रशंसा करना, जाना, दुःखित होना), लट्—स्वरति, लिट्—सस्वार, लुट्—स्वरिता, स्वर्ता, लुङ—अस्वारीत्—अस्वार्षीत्, आ० लिङ—स्वर्यात् । सन्—सिस्वरिषति, सुस्वूर्षति, णिच्—लट्—स्वारयति-ते, लुङ—असिस्वरत्—त, क्त—स्वृत ।

**स्वॄ**—९ प०, (हिंसा करना, दुःख पहुँचाना), लट्—स्वृणाति, लिट्—सस्वार ।

**स्वेक्**—१ आ०, (जाना), लट्—स्वेकते, लिट्—सिस्वेके ।

## ह

**हट्**—१ प०, दीप्तौ (चमकना, चमकीला होना), लट्—हटति, लिट्—जहाट, लुट्—हटिता, लुङ—अहटीत्—अहाटीत्, क्त—हटित ।

**हठ्**—१ प०, प्लुतिशठत्वयोः (कूदना, उछलना, खंभे से बाँधना, दुःख देना), लट्—हठति, लिट्—जहाठ, लुङ—अहठीत्—अहाठीत् ।

**हद्**—१ आ०, पुरीषोत्सर्गे (शौच करना), लट्—हदते, लिट्—जहदे, लुट्—हत्ता, लुङ—अहत्त । सन्—जिहत्सते, क्त—हन्न ।

**हन्**—२ प०, (हिंसा करना, मारना, तपाना, जीतना आदि), लट्—हन्ति, लङ—अहन् (बहु० अघ्नन्), लिट्—जघान, लुट्—हन्ता, लुङ—अवधीत्—आहत (आ+हन्)—अवधिष्ट, आ० लिङ—वध्यात् । सन्—जिघांसति, कर्म० लट्—हन्यते, लुङ—अघानि, अवधि, णिच् लट्—घातयति-ते, लुङ—अजीघनत्—त, यङ—जेघ्नीयते, जंघन्यते, जंघनीति, जंघन्ति, क्त—हत, क्त्वा—हत्वा ।

**हम्म्**—१ प०, गतौ (जाना), लट्—हम्मति, लिट्—जहम्म, लृट्—हम्मिष्यति, लुङ—अहम्मीत् ।

**हय्**—१ प०, (जाना, पूजा करना, शब्द करना, दुःखित होना), लट्—हयति, लिट्—जहाय, लुट्—हयिता, लुङ—अहयीत् । क्त—हयित ।

**हर्य्**—१ प०, गतिकान्त्योः (जाना, पूजा करना, लेना), लट्—हर्यति, लिट्—जहर्य, लुङ—अहर्यीत्, सन्—जिहर्यिषति ।

**हल्**—१ प०, विलिखने गतौ च (हल चलाना, जाना), लट्—हलति, लिट्—जहाल, लुङ—अहालीत् । सन्—जिहलिषति ।

**हस्**—१ प०, हसने (हँसना, मुस्कराना, मजाक उड़ाना, खिलना), लट्—हसति, लिट्—जहास, लुट्—हसिता, लुङ—अहसीत् । कर्म० लट्—हस्यते, णिच्—लट्—हासयति-ते, लुङ—अजीहसत्—त, सन्—जिहसिषति, क्त—हसित ।

**हा**—३ आ०, (जाना, पाना), लट्—जिहीते, लिट्—जहे, लुट्—हाता, लृट्—हास्यते, आ० लिङ—हासीष्ट, लुङ—अहास्त । सन्—जिहासते, कर्म० लट्—हायते, लुङ—अहायि, क्त—हान ।

**हा**—३ प०, त्यागे (छोड़ना, त्यागपत्र देना, गिरने देना), लट्—जहाति, लिट्—जहौ, लुट्—हाता, लुङ—अहासीत्, आ० लिङ—हेयात् । सन्—जिहासति ।

कर्म०—लट्—हीयते, लुङ—अहायि। णिच् लट्—हापयति-ते, लुङ—अजीहपत्—त। क्त—हीन, क्त्वा—हित्वा।

हि—५ प०, गतौ (जाना, भेजना, उठाना), लट्—हिनोति, लिट्—जिघाय, लुट्—हेता, लुङ—अहैषीत्, आ० लिङ—हीयात्। सन्—जिहीषति, णिच्-लट्—हाययति-ते, लुङ—अजीहयत्-त, कर्म० लट्—हीयते, लुङ—अहायि, क्त—हित।

हिंस्—१ प०, हिंसायाम् ( मारना, चोट पहुँचाना, दुःख देना ), लट्—हिंसति, लिट्—जिहिंस, लुट्—हिंसिता, लुङ—अहिंसीत्। कर्म० लट्—हिंस्यते, लुङ—अहिंसि, सन्—जिहिंसिषति, क्त—हिंसित।

हिंस्—७ प०, (मारना), लट्—हिनस्ति, लुङ—अहिनत्—द्, लोट्—हिन्धि, (म० पु० एक०), शेष रूप पूर्ववत्।

हिंस्—१० उ०, (मारना), लट्—हिंसयति-ते, लिट्—हिंसयांचकार—चक्रे—आस—बभूव, लुट्—हिंसयिता, लुङ—अजिहिंसत्-त। सन्—जिहिंसयिषति-ते।

हिक्क्—१ उ०, अव्यक्ते शब्दे ( अस्पष्ट शब्द करना, छींकना ), लट्—हिक्कति-ते, लिट्—जिहिक्क, जिहिक्के, लुट्—हिक्किता, लुङ—अहिक्कीत्—अहिक्किष्ट। क्त—हिक्कित।

हिक्क्—१० आ०, हिंसायाम् (मारना, दुःख देना), लट्—हिक्कयते, लिट्—हिक्कयांचक्रे, लुङ—अजिहिक्कत।

हिट्—१ प०, आक्रोशे ( कोसना, शपथ लेना ), लट्—हेटति, लिट्—जिहेट, लुङ—अहेटीत्।

हिट्—९ प०, भूतप्रादुर्भावे (पुनः प्रकट होना), लट्—हिट्णाति, लिट्—जिहेट, लुङ—अहेटीत्।

हिण्ड्—१ आ०, गत्यनादरयोः (जाना, घूमना, अनादर करना), लट्—हिण्डते, लिट्—जिहिण्डे, लुट्—हिण्डिता, लुङ—अहिण्डिष्ट। क्त—हिण्डित।

हिन्व्—१ प०, प्रीणने (प्रसन्न करना), लट्—हिन्वति, लिट्—जिहिन्व, लुङ—अहिन्वीत्।

हिल्—६ प०, भावकरणे (भावुकता के साथ खेल करना, भाव प्रदर्शन करना), लट्—हिलति, लिट्—जिहेल, लुङ—अहेलीत्।

हु—३ प०, दानादनयोः ( देना, यज्ञ करना, खाना), लट्—जुहोति, लोट्—जुहुधि, (म० पु० एक०), लिट्—जुहाव, जुहुवांचकार, लुट्—होता, लुङ—अहौषीत्, आ० लिङ—हूयात्। सन्—जुहूषति, णिच्—लट्—हावयति-ते, लुङ—अजूहवत्-त, क्त—हुत।

हुड्—१ प० (जाना), लट्—होडति, लिट्—जुहोड, लृट्—होडिष्यति, लुङ—अहोडीत्।

हुड्—६ प०, संघाते (एकत्र करना), लट्—होडति, लिट्—जुहोड, णिच्—लट्—होडयति-ते, लुङ—अजूहुडत्—त।

**हुण्ड्**—१ आ०, संघाते वरणे (हरणे इत्येके) (इकट्ठा करना, चुनना, अपहरण करना), लट्–हुण्डते, लिट्–जुहुण्डे, लुङ–अहुण्डिष्ट ।

**हुच्छ्**—१ प०, कौटिल्ये (कुटिल होना, धोखा देना), लट्–हूर्च्छति, लिट्–जुहूर्च्छ, लुट्–हूर्च्छिता, लुङ–अहूर्च्छीत् । क्त–हूर्च्छित ।

**हुल्**—१ प०, (जाना, ढकना, मारना), लट्–होलति, लिट्–जुहोल, ऌट्–होलिष्यति, लुङ–अहोलीत् ।

**हुड्**—१ प०, (जाना), लट्–हुडति, लिट्–जुहूड, लुङ–अहोडीत् ।

**हृ**—१ उ०, हरणे (लेना, हरण करना, जीतना, पाना, आदि), लट्–हरति-ते, लिट्–जहार–जह्रे, लुट्–हर्ता, ऌट्–हरिष्यति-ते, लुङ–अहार्षीत्–अहृत, आ० लिङ–ह्रियात्, हृषीष्ट । सन्–जिहीर्षति-ते, णिच्–लट्–हारयति-ते, लुङ–अजीहरत्–त, कर्म० लट्–ह्रियते, लुङ–अहारि, क्त–हृत ।

**हृणी**—आ०, रोषणे लज्जायां च (क्रुद्ध होना, लज्जित होना), लट–हृणीयते, लिट्–हृणीयांचक्रे, ऌट्–हृणीयिष्यते, लुङ–अहृणीष्ट ।

**हृष्**—१ प०, अलीके (झूठ बोलना), लट्–हर्षति, लिट्–जहर्ष, लुङ–अहर्षीत् । सन्–जिहर्षिषति, णिच्–लट्–हर्षयति-ते, लुङ–अजहर्षत्–त, अजीहृषत्–त, क्त–हृष्ट ।

**हृष्**—४ प०, तुष्टौ (प्रसन्न होना, बाल आदि का खड़ा होना), लट्–हृष्यति, लिट्–जहर्ष, लट्–हर्षिता, लुङ–अहृषत् । क्त–हृषित, हृष्ट ।

**हेट्–हेठ्**—१ आ०, विबाधायाम् (दुष्ट होना, उत्पन्न होना, शुद्ध करना), लट्-हेटते–हेठते, लुङ–अहेटिष्ट, अहेठिष्ट ।

**हेड्**—१ प०, वेष्टने (घेरना), लट्–हेडति, लिट्–जिहेड, ऌट्–हेडिष्यति, लुङ–अहेडीत् । सन्–जि डिषति ।

**हेड्**—१ आ०, अनादरे (अनादर करना), लट्-हेडते, लिट्–जिहेडे, लुङ–अहेडिष्ट ।

**·ल्**—१ आ०, (अनादर करना), लट्–हेलते (हेड् के तुल्य) ।

**ेष्**—१ आ०, अव्यक्ते शब्दे (हिनहिनाना, दहाड़ना), लट्–हेषते, लिट्–जिहेषे, लुट्- हेषिता, लुङ–अहेषिष्ट, क्त–हेषित ।

**होड्**—१ प०, चलने (जाना, आना), लट्–होडति, लिट्–जुहोड, ऌट्–होडिष्यति, लुङ–अहोडीत् ।

**होड्**—१ आ०, अनादरे (अनादर करना), लट्–होडते, लिट्–जुहोडे, ऌट्–होडिष्यते, लुङ–अहोडिष्ट । णिच्–लट्–होडयति-ते, लुङ–अजुहोडत्–त ।

**होड्**—१ प० (अपमान करना, जाना), लट्–होडति ।

**ह्नु**—२ आ०, अपनयने (छिपाना, अपहरण करना), लट्–ह्नुते, लिट्–जुह्नुवे, लुट्–ह्नोता, आ०, लिङ–ह्नोषीष्ट, लुङ–अह्नोष्ट, सन्–जुह्नूषते, क्त–ह्नुत ।

**ह्मल्**—१ प०, (जाना, हिलाना), लट्—ह्मलति, लिट्—जह्माल, लुङ्—अह्मालीत् ।

**ह्लग्**—१ प०, संवरणे (छिपाना, ढकना), लट्—ह्लगति, लिट्—जह्लाग, ऌट्—ह्लगिष्यति, लुङ्—अह्लगीत् ।

**ह्लप्**—१० उ०, व्यक्तायां वाचि (बोलना, आवाज करना), लट्—ह्लापयति-ते, लिट्—ह्लापयांचकार—चक्रे, लुट्—ह्लापयिता, लुङ्—अजिह्लपत्—त ।

**ह्लस्**—१ प०, शब्दे लाघवे च (शब्द करना, लुप्त होना, न्यून होना), लट्—ह्लसति, लिट्—जह्लास, लुट्—ह्लसिता, लुङ्—अह्लासीत्—अह्लसीत् । सन्—जिह्लसिषति, क्त—ह्लसित ।

**ह्लाद्**—१ आ०, अव्यक्ते शब्दे (शब्द करना, दहाड़ना, गरजना), लट्—ह्लादते, लिट्—जह्लादे, लुट्—ह्लादिता, लुङ्—अह्लादिष्ट ।

**ह्ली**—३ प०, लज्जयाम् (लज्जित होना), लट्—जिह्लेति, लिट्—जिह्लयांचकार, जिह्लाय, लुट्—ह्लेता, लुङ्—अह्लैसीत्, आ० लिङ्—ह्लीयात् । सन्—जिह्लीषति, कर्म० लट्—ह्लीयते, लुङ्—अह्लायि, णिच्—लट्—ह्लेपयति-ते, लुङ्—अजिह्लियत्—त । क्त—ह्लीत, ह्लीण ।

**ह्लीच्छ्**—१ प०, लज्जायाम् (लज्जित होना), लट्—ह्लीच्छति लिट्—जिह्लीच्छ, लुङ्—अह्लीच्छीत् ।

**ह्लुड्—ह्लूड्**—१ प० (जाना), लट्—ह्लोडति—ह्लडति ।

**ह्लेप्**—१ आ० (जाना), लट्—ह्लेपते, लिट्—जिह्लेपे, लुट्—ह्लेपिता ।

**ह्लेष्**—१ आ०, अव्यक्ते शब्दे (हिन हिनाना, जाना), लट्—ह्लेषते, लिट्—जिह्लेषे, (देखो ह्लेप् धातु) ।

**ह्लौड्**—१ प० (जाना), लट्—ह्लौडति ।

**ह्लग्**—१ प०, संवरणे (ढकना), लट्—ह्लगति, लिट्—जह्लाग, लुट्—ह्लगिता, लुङ्—अह्लगीत् ।

**ह्लप्**—१० उ०, व्यक्तायाम् वाचि (बोलना, शब्द करना), लट्—ह्लापयति—ते, लिट्—ह्लापयांचकार—चक्रे, ऌट्—ह्लापयिष्यति-ते, लुङ्—अजिह्लपत्—त ।

**ह्लस्**—१ प०, शब्दे (शब्द करना), लट्—ह्लसति, लिट्—जह्लास, लुङ्—अह्लसीत्—अह्लासीत् ।

**ह्लाद्**—१ आ०, सुखे अव्यक्ते शब्दे च (प्रसन्न होना, शब्द करना), लट्—ह्लादते, लिट्—जह्लादे, लुट्—ह्लादिता, लुङ्—अह्लादिष्ट । णिच्-लट्—ह्लादयति-ते, सन्—जिह्लादिषते । क्त—ह्लन्न ।

**ह्वल्**—१ प०, वैक्लव्ये (विह्वल होना, व्याकुल होना, जाना, हिलाना), लट्—ह्वलति, लिट्—जह्वाल, लुट्—ह्वलिता, लुङ्—अह्वालीत् । णिच्— लट्—

ह्वलयति-ते, ह्वालयति-ते, (उपसर्ग के साथ ह्वलयति-ते ही होगा), लुङ्-अजिह्वलत् । सन्-जिह्वलिषति, क्त-ह्वलित ।

**ह्‌वृ**—१ प०, कौटिल्ये (कुटिल होना, धोखा देना, दुःखित होना), लट्-ह्वरति, लिट्-जह्वार, लुट्-ह्वरिता, लृट्-ह्वरिष्यति, लुङ्-अह्वार्षीत्, आ० लिङ्-ह्वर्यात्, सन्-जुहूर्षति । णिच्-लट्-ह्वारयति-ते, क्त-ह्वृत ।

**ह्वे**—१ उ०, स्पर्धायां शब्दे च (स्पर्धा करना, नाम लेकर पुकारना, आह्वान करना, पूछना), लट्-ह्वयति-ते, लिट्-जुहाव, जुहुवे, लुट्-ह्वाता, लुङ्-अह्वत्-त, अह्वास्त, आ० लिङ-हूयात्-ह्वासोष्ट । सन्-जुहूषति-ते, कर्म० लट्-हूयते, लुङ-अह्वायि, णिच्-लट्-ह्वाययति-ते, लुङ-अजूहवत्-त । क्त-हूत । क्त्वा-हूत्वा, तुम्-ह्वातुम् ।

———